स म र्प ण

श्रद्धेय साहित्यकार मण्डल !

जब हम हिन्दी भाषा शिक्षार्थियो को इस की वर्णमाला का भी बोध न था, तब आप का ही आश्रय लेकर हम आगे बढ़े। आप के इस ऋण से हम कैसे अनृण हो सकते है ! अनेक शताब्दियो तक इस भारत वर्ष पर यवनो का राज्य रहा और उन की भाषा उर्दू रही। पीछे अंग्रेजो का आधिपत्य हुआ। उन की अपनी भाषा चली। परन्तु जहाँ तक भारत वर्ष के नागरिको की बोली और भाषा का प्रश्न है, वह अंग्रेजी से उतनी प्रभावित नही हुई, जितनी उर्दू से। हमारे आदरणीय हिन्दी साहित्यकारो ने अपने हिन्दी के गौरव को पहचाना और सस्कृत से शब्द ग्रहण करने की चेष्टा की। जहाँ वे और अब हम इस क्षेत्र मे आगे बढ़े, वहाँ युग पुरुष महर्षि दयानन्द द्वारा अपने हिन्दी ग्रन्थ लिखने के प्रकार से ध्यान दिलाये जाने पर भी हम सब ही अनवधानता-वश एक आवश्यक विषय पर ध्यान न दे सके, जिस ने कि अहिन्दी भाषा भाषी प्रान्तवासियो को अत्यधिक असमञ्जस मे डाल रक्खा है। स्थिति यह हो गयी है कि उन के कतिपय संस्कृत-सम हिन्दी के शुद्ध प्रयोगों को भी हम अशुद्ध ठहरा देते हैं। इस कारण आवश्यक है कि हमे अपनी भाषा मे अहिन्दी भाषियो की सुगमता के लिए सुधार कर लेना चाहिए। वह सुधार यही है कि जैसे हम ने उर्दू शब्दों का रूपान्तर करने मे सस्कृत साहित्य का आश्रय लिया है, वैसे ही शब्दों के लिङ्ग परिवर्तन भी सस्कृत से ही ग्रहण करने योग्य है। अब तक ध्यान न जाने से जो हुआ, सो हुआ ! आगे से पूर्ण सावधानता रखने से हम अहिन्दी और हिन्दी दोनो ही प्रान्त वालो के लिए क्रमश: हिन्दी और सस्कृत पढने वाले विद्यार्थियो का मार्ग प्रदर्शन कर सकेंगे। उदाहरण रूप मे—जय, आत्मा, वायु आदि शब्दो को पुल्लिङ्ग तथा ज्योति, इन्द्रिय, वस्तु प्रभृति शब्दों को नपु सक लिङ्ग मे प्रयोग कर जहाँ हम अपने हिन्दी साहित्य को प्रशस्त करेगे, वहाँ सस्कृत पढ़ने वाले हिन्दी भाषी प्रान्तीय छात्रों को भी अनुवाद के समय लिङ्ग-भ्रम से निकालने मे सहयोगी होगे।

इसी आधार पर मैंने इस ग्रन्थ मे शब्दो के लिङ्ग ठीक रखने का प्रयत्न किया है। आशा है साहित्यकार इसे सहन करेंगे। इस प्रकार मुझ से यह कृति जैसी बन सकी है, वह अति सम्मान के साथ आप की सेवा मे समर्पित है।

—विनीत

वेदानन्द वेदवागीश

इस ग्रन्थ के लिए श्रद्धा भेंट करने वाले दानी महानुभाव बायें से दायें सम्मुख पृष्ठ पर

१. श्री मेल्हूराम रांझे मल जोधाणी (कटारिया) द्वारा
 श्री नारायणदास जी, जेतपुर (राजकोट) रु० ५००-००

२. श्री नरेन्द्रनाथ मोहन, मोहननगर गाजियाबाद रु० २००-००

३. श्री वैद्य भगवान् स्वरूप जी सब्जी मण्डी, शोरा कोठी, दिल्ली रु० १०१-००

४. श्री वेदमित्र जी Babli Products Goregaon (East) Bombay-62 रु० १०१-००

५. श्री पृथ्वीचन्द जी १६A/१६ करोल बाग दिल्ली रु० १०१-००

६. श्री वैद्य बद्रीप्रसाद जी आर्य, राजकीय आयुर्वेदिक
 औषधालय साहूवाला (गङ्गानगर) राजस्थान रु० १०१-००

इसके अतिरिक्त बिना चित्र के—

७. श्री माता शान्ति देवी जी भूतपूर्व आचार्या कन्या गुरुकुल नरेला रु० १२५

८. श्री माता ब्रह्मशक्ति जी भूतपूर्व अधिष्ठात्री कन्या गुरुकुल नरेला रु० १०१

९. श्री जालूराम जी साहू, दौलतपुरा, गङ्गानगर (राजस्थान) रु० १०१
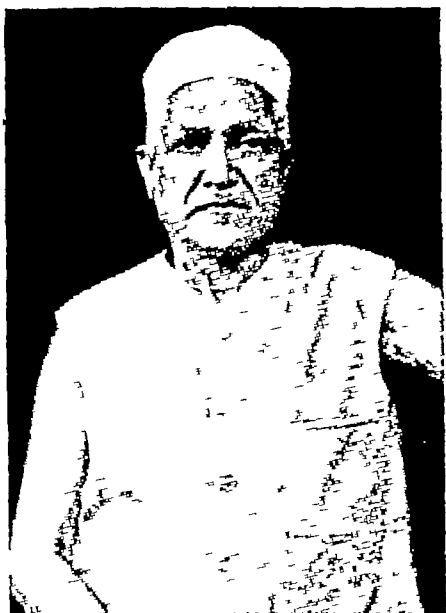
१ २ ३ ४ ५ ६

अपार करुणा से अभिषिक्त प्राणिमात्र के हितैषी
स्वामी आत्मानन्द सरस्वती (प० मुक्तिराम उपाध्याय)

ओ३म्

।। वेदारम्भ संस्कारे पित्रा दीयमान उपदेशः ।।

(उद्गाता श्रद्धेय श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती)

वर्णिन् ! व्रतमेव घनन्ते ।। ध्रुव पदम् ।

आचमनं कुरु कृत्यमथाचर, लोभदिवाशयने न तथाचर ।
अञ्जनगन्धशुचो जहि हेय, नीरसमाहरणन्ते ।।
वर्णिन् व्रतमेव घनन्ते ।।१।।

निन्दनमोहभयानि विवर्जय, अतिजागरमशन न समर्जय ।
वाजिगजादिकयानममानित-मेवमधिकशयनन्ते ।।
वर्णिन् व्रतमेव घनन्ते ।।२।।

दश दश पञ्च समा गुरु गेहे, बहु वा वस बलमानय देहे ।
मानसमर्जय चापि बल शुचि, तात ! सुपथ्यतमन्ते ।।
वर्णिन् व्रतमेव घनन्ते ।।३।।

वेदमथाङ्गयुतं परिशीलय, गुरुतन्त्रो गुणगणमुन्मीलय ।
आचर घोषय चार्ष वचोऽथ च, धारय भक्तिमनन्ते ।।
वर्णिन् व्रतमेव घनन्ते ।।४।।

रेतस ऊर्ध्वगति सम्पादय, मानसज पशुमार मारय ।
प्राणानायच्छापि यतः स्यात्, सर्वेन्द्रियदमनन्ते ।।
वर्णिन् व्रतमेव घनन्ते ।।५।।

चञ्चलतामपहाय धृति भज, सूनृतमाश्रयतामनृतं त्यज ।
भावय हार्दरसाञ्चितवचनं, सन्मधुना सदृशन्ते ।।
वर्णिन् व्रतमेव घनन्ते ।।६।।

भव मितभाषी धीर. श्रीलो, युक्ताहारविहारसुशीलः ।
विद्यामाराधय तपसाऽर, सव्रज दूरदिगन्ते ।।
वर्णिन् व्रतमेव घनन्ते ।।७।।

जागृहि प्रातःशौचमथाचर, सन्ध्यानं कुरु समिधश्चाहर ।
देवेष्टि यज गुरुदेव भज, नित्य कृत्यमिदन्ते ।।
वर्णिन् व्रतमेव घनन्ते ।।८।।

नाभ्यङ्गादिकमण्डनरक्तो, नो भव सायक इव संसक्त ।
अत्यम्लाधिकतिक्तविरेचन-वस्तुसमाहरणन्ते ।।
वर्णिन् व्रतमेव घनन्ते ।।९।।

सङ्कल्प पूर्ण हुआ

पूज्यपाद आचार्य प्रवर श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के आचार्यत्व में सञ्चालित श्रीमद्दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय मे १४ नवम्बर सन् १९५३ को प्रविष्ट हो सन् १९५८ तक अध्ययन काल मे, और पुनः १२ दिसम्बर सन् १९६० तक सेवक रूप में श्री चरणो मे रहने का सु-अवसर उपलब्ध हुआ। इस सान्निध्य-वेला में उनके महद् व्यक्तित्व, सोम्य स्वभाव, अलौकिक प्रतिभा, आदर्श वाग्मिता, हृदय हारिणी शान्ति धारा प्रवाहित करने वाली भव्य-मुद्रा, तपः-पूत जीवन आदि अनेक गुणों से मैं इसी परिणाम पर पहुँचा कि महाराज जी का जीवन चरित्र अवश्य ही लिखा जाना चाहिए। तदर्थ सेवा काल में ही विचार थे; किन्तु उपदेशक विद्यालय के विद्यार्थियो को भी अवशिष्ट समय पाठनार्थ देने के कारण मैं इस कार्य के लिए समय न दे सका।

१२ दिसम्वर सन् १९६० के उत्तरायण पक्ष की ब्राह्म वेला की वह उषा भी महाराज के अभाव मे अन्धकारमय हो गयी और मेरा सेवा का सन्तोषप्रद कार्य विधिवशात् अवसान को प्राप्त हुआ। तब प्रभु से अनेकशः प्रार्थना करते हुए मैंने निवेदन किया, "हे मेरे देव! अब मुझे क्या आदेश है? तत्क्षण मन में यह सङ्कल्प घर कर गया कि पुरुषोत्तम पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज के जीवन-वृत्तों का सङ्कलन शीघ्र किया जावे। उसी समय से अनेक स्थानो मे परिभ्रमण करते हुए तद्विषयक तथ्यो का सङ्ग्रह आरम्भ कर दिया।

आज वह सङ्कल्प मूर्त्त रूप धारण कर आप लोगो के समक्ष है। इस कार्य मे अनेक महानुभावो ने जो हार्दिक सहयोग दिया एव उत्साहित किया, उनमें प्रमुख श्री आचार्य भगवान् देव जी और ग्रन्थ के लेखक गुरुवर्य्य श्री स्वामी वेदानन्द जी वेदवागीश के प्रति विनीत भाव से कृतज्ञता पूर्वक आभार प्रकट करने मे मैं अकिञ्चन हूँ। वस्तुत: यह उन्ही उदार चेताओ के आशीर्वाद तथा पुरुषार्थ का परिणाम है।

शेष सभी सहयोगियों और साथियो को, जो इस कार्य मे यत्किञ्चित् भी मनसा, वाचा, कर्मणा मुझे उत्साहित कर सके, वार-वार साधुवाद है!

विनीत
ओम्प्रकाश

आवश्यक वचन

'आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः' ग्रन्थ के लेखन में मै गुरुकुल झज्जर के आचार्य श्री भगवान्‌देव जी की प्रेरणा से समुद्यत हुआ। जीवन–सामग्री श्री ओम्प्रकाश जी सिद्धान्त शिरोमणि के भरपूर प्रयास से एकत्रित की गयी। वे दो बार श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज की जन्मभूमि भी गये। उनके ग्राम के वृद्ध महानुभावों तथा पारिवारिक वृद्ध देवी देवताओं से आरम्भिक काल की घटनाओं का यथार्थ परिचय मिल गया है, यह सन्तोष का विषय है।

गुरुकुल झज्जर ने अपनी रजत जयन्ती के महोत्सव पर फर्वरी सन् १९४७ मे श्री स्वामी जी महाराज का उस समय तक का जीवन चरित प्रकाशित करने का निश्चय किया था; किन्तु अनेक कारणों से वह उस समय ऐसा करने में असमर्थ रहा।

आर्य महानुभावों को ज्ञात है कि इस 'आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः' से पूर्व स्वामी जी महाराज की एक 'सङ्क्षिप्त जीवनी' प्रकाशित हो चुकी थी। उसका आधार था—एकत्रित किए गए वे समाचार, जो गुरुकुल रावल मे सन् १९४६ में ही सङ्गृहीत करके गुरुकुल झज्जर में सुरक्षित रख दिए गए थे। वह ग्रन्थ-सामग्री भी इस समय ग्रन्थ-लेखन में अत्यधिक सहायक रही।

श्री गणेशचन्द्र जी देव जी भाई पटेल द्वारा स्वामी जी के जीवन-काल मे ही एकत्रित सामग्री से भी सहयोग लिया गया है।

इस ग्रन्थ की 'उत्थानिका' लिखने मे उन पत्रिकाओ तथा समाचार पत्रों को भी नहीं भुलाया गया, जिनके द्वारा आर्य महानुभावो ने महाराज के महा-प्रयाण समय में उनके प्रति अपने श्रद्धोद्गार प्रकट किये थे।

मैं ने ये घटनाएँ तिथि, सँम्वत्, सन् जैसा भी है, उसी के अनुसार क्रमश दी हैं, जिससे यतिवर्य आत्मानन्द सरस्वती के जीवन से सम्बन्धित महानुभाव सरलता से यह अवगत कर सकें कि किस समय की घटनाएँ इसमे लिखने से अवशिष्ट हैं, जो महानुभाव शेष घटनाओ का परिज्ञान गुरुकुल झज्जर मे भेज देंगे, गुरुकुल उनका अति आभार प्रकट करेगा। द्वितीय संस्करण मे उन्हे स्थान देने का प्रयत्न किया जायेगा।

अङ्ग्रेजी शब्दों के रूपान्तर करने मे डा० रघुवीर शरण के कोश का आश्रय लिया है।

गुरुकुल झज्जर के अधिकारी वर्ग ने इस ग्रन्थ के लिखते समय समुचित व्यवस्था का जो ध्यान रक्खा, वह मुझे उनके समक्ष मस्तक झुकाने को प्रेरित करता है।

श्री सुदर्शन देव आचार्य, श्री राजवीर आचार्य, श्री बलदेव चित्रकार तथा ब्रह्मचारी आनन्ददेव जी और विरजानन्द जी ने मुद्रणार्थ लिपिकरण में जो तत्परता दिखाई है, वह ग्रन्थ के नायक देवर्षि आत्मानन्द में उनके श्रद्धातिरेक की परिचायिका है। ऐसी अवस्था में मेरे द्वारा धन्यवाद के दो शब्द लिख देना उनके स्तर को निम्न करना होगा।

धनाभाव के कारण हमने इस ग्रन्थ के ग्राहक अल्प मूल्य में पहले से ही बनाने का सङ्कल्प किया। श्री चिरञ्जीत राय साहनी आदि सत्पुरुष अपने कार्यों को छोड़ कर भी जो इस कार्य मे हमारे साथ रहे, सार्वजनिक कार्यों के लिये उनकी यह निष्ठा अनुकरणीय है।

ग्रन्थ-प्रकाशन के समय अपनी ही सुविधा के लिए मैं ने कन्या गुरुकुल नरेला का आश्रय लिया। वहां की आचार्या और उपाचार्या चन्द्रकला जी तथा सुशीला जी साहित्याधिस्नातिका इन मेरी दोनों बहिनों ने अपने सामर्थ्य के अनुसार मेरा पर्याप्त ध्यान रक्खा। ग्रन्थ-प्रकाशन मे आने वाली अनेक कठिनाइयों को ध्यान में रखकर मुझे पुन: दिल्ली ही आना पड़ा। वहां आर्यसमाज करोल बाग के अधिकारी श्री वंशी लाल जी और ओम्प्रकाश जी ने आर्य-मन्दिर की प्रत्येक विषम परिस्थिति में भी हमें निवास का स्थान दिया। सर्वोपकारक कर्मों मे समय-समय पर आने वाला उनका अपना कर्त्तव्य उक्त दोनों सस्थाओं जैसी अन्य सस्थाओं को भी आशा है, कभी नहीं भूलेगा।

इस ग्रन्थ के ईक्ष्य-शोधन एवं प्रकाशन के लिए उद्योग करने में जीवन-सामग्री के सङ्ग्रहीता श्री ओम्प्रकाश जी सिद्धान्त शिरोमणि ने जो अथक श्रम किया है, उसका विनिमय धन्यवाद से होना असम्भव है। अध्येतृवर्ग ही उनके प्रयास का मूल्य अपने जीवन को उदात्त भावनाओं से रंग कर चुका सकता है।

सम्राट् मुद्रणालय के प्रबन्धक एवं उनके सहकारिवृन्द ने इस ग्रन्थ के शुद्ध प्रकाशन में पर्याप्त ध्यान रक्खा है। इस कारण उनकी भद्रता को कैसे विस्मरण कर सकता हूँ।

इन शब्दों के साथ मैं आप सब की ओर से भी उन सभी का कृतज्ञ हूँ, जिनके उदार सहयोग से यह ग्रन्थ अब आपके कर कमलों की शोभा प्रदान कर रहा है।

आपका ही—

वेदानन्द वेदवागीश

विषय-सूचि

चित्र-सूचि क्रमशः

इस ग्रन्थ के प्रकाशों की सूचि

*

आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

उत्थानिका

वर्तमान युग मे स्वामी आत्मानन्द सरस्वती एक ऐसे महापुरुष हुए है, जिन्होने महर्षि दयानन्द के मन्तव्यो को अपने विचार-मन्थन से गहरा मथा है। केवल तर्क से ही नही, योगाभ्यास-जनित आत्म-शक्ति से भी हस्तामलक किया है। महर्षि दयानन्द को यथार्थ रूप में समझने के लिये उनके समीप ये दो ही निकषोपल थे।

तर्क-शक्ति का चमत्कार प्रतिभाशाली पुरुष की मेधा से असत्य को सत्य और सत्य को असत्य सिद्ध करने मे भी सफल हुआ है। अतः मनु ने वेद-शास्त्र-विरोधी तर्क पर अङ्कुश लगाया है। आत्मानन्द सरस्वती ने वैदिक ज्ञान की शरण मे रह कर ही सर्व प्रथम तर्क का आश्रय लिया था। और पुनः उसका साक्षात् योग से किया था। विना साक्षात् किये तर्कोपनत ज्ञान पर वह आस्था दृढ नही होती, जो किसी भी परिस्थिति मे मनुष्य को अपने कर्तव्य से विचलित न होने दे। उन्होने जो कुछ भी लिखा है और कहा है वह सब उनके आत्मा का उद्भूत स्रोत है। जिस पर परमात्मा के ज्ञान की परत और प्राचीन ऋषियो के प्रमाण की छाप है।

महाराज, शान्तमूर्ति थे। वे बहुत ही नपा-तुला बोलते थे उनका वह बोलना महर्षि दयानन्द की उप्तबेल को ज्ञान-नीर मे सींचता चला जाता था। महर्षि दयानन्द ने विश्व के समक्ष विस्तृत वैदिक कार्य प्रस्तुत किया और योगी आत्मानन्द ने उसकी सफलता के निमित्त विभिन्न साधनो का आविष्कार किया; इस प्रकार महर्षि के कार्य पर दूसरे ऋषि ने प्रामाणिकता का ठप्पा लगा कर उन लोगो को आर्य धर्म की ओर आकर्षित किया, जो वेद भगवान् की ज्ञान-गङ्गा मे गहरा न

पैठ, ऋषि दयानन्द से ही विमुख होते चले जा रहे थे। यह उनका ठीक ऐसा ही कार्य था जैसे ऋषि पाणिनि-प्रणीत अष्टाध्यायी के सूत्रो पर ऋषि पतञ्जलि ने अपनी प्रतिभा के आलोक मे एक विचित्र महाभाष्य की रचना कर, उसे प्रामाणिकता के दृढकवच से आवृत कर दिया। महर्षि दयानन्द-प्रदर्शित कार्यों की रक्षा के हेतु श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने अनेकश भीषण कष्टो में पड जाने पर भी इस शरीर को नश्वर समझ कर, सत्य के आग्रह का पल्ला नही छोडा।

सन्यास-आश्रम की दीक्षा से पूर्व और पश्चात् प्रति दिन प्रातः दो बजे उठ कर समाधि मे लीन होकर श्री स्वामी जी ने महर्षि दयानन्द की उस परम्परा को स्थिर किया जो मन वचन कर्म से वैदिक धर्म पर दृढ आस्था को पल्लवित करती है।

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने वैदिक-ज्ञान पर्वत पर आरूढ़ होकर प्राणिमात्र को कृपापूर्ण दृष्टि से देखा। अद्यतन सभ्य कहलाने वाली जाति केवल मनुष्यो पर ही तरस खाती है, शेष प्राणियो को वह स्व-उदरदरी मे धकेल लेती है। वेदस्पर्शी उस महात्मा ने अथर्ववेद के सन्दिग्ध मासाशन-स्थल को स्पष्ट करके उस गहन अज्ञान तिमिर से लोगो को उबारा, जिसमें पडकर वे प्राचीन ऋषियो पर भी माँस-भक्षण का कलङ्क लगाकर स्व-पाप के सरक्षण की असफल चेष्टा करते थे।

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा."-निष्काम कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीवित रहने की इच्छा करो। वेद के इस उज्ज्वल रत्न से स्वजीवन को अलकृत करके उस लोकोत्तर महाप्रभु ने मुक्ति प्राप्त करने के उस पथ को प्रशस्त किया, जिसके परित्याग से सन्यासि-जन आलसी हुए निजजीवन नौका को भवर मे फसा कर इतरजनो को पार पहुँचाने का प्रयत्न करते है।

ऋषियो की शैली लोकैषणा से भरपूर हुए विद्वज्जनो से विपरीत होती है। वे पहले सभी ऋषि-कृत ग्रन्थो का अवलोकन करते है, पश्चात् लोकहित की रक्षा मे वे उसी विषय को जनता के समक्ष उपस्थित करते है, जिसे किसी ऋषि ने प्रतिपादित न किया हो। इस से उनके ग्रन्थो मे पिष्टपेषण नही होता। यदि उन्हे कुछ लिखने की आवश्यकता प्रतीत नही होती, तो वे चुप रहते है; इसलिए उनके ग्रन्थ विश्व में अन्य लेखको के ग्रन्थो की अपेक्षा सख्या मे कम है, किन्तु है शाश्वत। श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती इसी शैली के अनुयायी थे,

उन्होने ऋषित्व शैली से भगवद्गीता का अद्भुत भाष्य करके योगीश्वर कृष्ण का वह वास्तविक रूप प्रकट किया, जिसके आलोक मे सब गीता भाष्य निस्तेज हो गए। इतना होने पर भी यदि कोई रूढिगत प्रथा की तिलाञ्जलि करने मे अग्रसर नही होता, तो अन्त मे सिर धुनने के अतिरिक्त उसके समीप है ही क्या ?

महाराज आर्य सामाजिक क्षेत्र से प्रकट नही हुए थे। उनका समस्त ज्ञान स्वोपज्ञ था। उन्होने उस ज्ञान को आर्य समाज के उन मन्तव्यो के अनुकूल पाया, जो ईश्वरीय वेदज्ञान के अनुरूप था, अतः वे महर्षि दयानन्द मे गाढ अनुरक्त हो गए। वे उस समय अति खिन्न हो जाते थे, जब उस विश्वहितैषी विषपायी दयानन्द के स्वच्छ ज्ञानालोक मे रह कर भी आर्यजन पारस्परिक मतभेदो मे फस कर भावी-सन्तति के लिए निकृष्ट दृष्टान्त उपस्थित करते दीखते थे। अतः उन्हो ने निष्पक्ष होकर समस्त आर्य महानुभावो को एक वेदी पर लाने की निरन्तर चेष्टा की। यह ही कारण था कि उनके समक्ष सब आंखे बिछाते थे।

सर्व शास्त्रतत्त्वज्ञ ऋषि आत्मानन्द ने तर्कों से यह सिद्ध किया कि मुक्त प्राणी किन कारणो से अवसर आने पर पुन जन्म लेता है ? उन्होने आर्यजनो को चेतावनी दी कि जब मुक्ति से लौट कर भी यही आना है, और भगवान् की आज्ञा मे रहते हुए पुन. शुभ कर्मों मे रत हो जाना है, तब हमे इन वर्तमान शरीरो के मोह का परित्याग कर के अभी से ही कार्यरत हो जाना चाहिए। ईश्वर सदा मुक्त रहता हुआ भी जब निठल्ला नही बैठता, तब मनुष्य के लिए आलसी बने रहना उचित नही उसे तो मुक्ति भी प्रयत्न करने पर ही मिलेगी और वह प्रयत्न है भगवान् की भाँति अपने जीवन को शुभ कर्मो मे लगा देना। ऐसे निष्कामी पुरुष के लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि जब यह सारा ही ससार-चक्र उस भगवान् के निरीक्षण मे चल रहा है, तो हमे क्या पता कि वह हमारे इन शरीरो से ही कौन से निराले कर्म कराना चाहता है ? उसने एक बार अपना वेद ज्ञान दे दिया। अब उसके अनुसार देव-ऋषि और मनुष्यो ने ही प्राणिमात्र के हित के लिए कार्य करना है। यह कैसे सभव है कि भगवान् द्वारा निर्दिष्ट कार्य को करने वाली व्यक्तियो के ऊपर उसकी अपनी छत्रच्छाया न हो। ऐसी अवस्था मे भेद भाव भुलाकर यदि आर्य समाज ही विश्व का मार्ग-प्रदर्शन नही करेगा, तो फिर विश्व किसकी ओर एक टक देखेगा ?

धर्म के रक्षक देव आत्मानन्द ने, कर्म-विज्ञान के अन्तस्तल में पहुँचकर अपने लिए उस पथ का अनुसरण किया, जिसकी उस समय आवश्यकता थी। वे विद्यानिधि थे, किन्तु उन्होने सर्व ऋषियो का लिखा गया साहित्यही अनुष्ठातव्य समझ, स्वय को निष्काम-कर्म के अग्नि मे होमकर दिया। ससार ने अति सूक्ष्मेक्षिका से देखा कि ऋषि की परम्परा को एक ऋषि ही स्थिर करता है। उनकी कार्य परम्परा मे लोगो को पुन. ऋषि-शैली के दर्शन हूए। जिस कार्य को उन्होने अपने हाथो लिया' उसी मे पूर्ण कौशल प्राप्त करने की चेष्टा की। स्वजीवन का स्तर आदर्श रख कर आर्त भारत के वे पूर्ण कर्णधार बने। अपने कार्यकाल में उनका सम्पर्क लाखों नही, करोड़ों से हुआ होगा; किन्तु ऋषि दयानन्द की सरणी पर चलने वाले आभावान् महानुभाव ही यह समझ सके, कि स्वामी आत्मानन्द क्या थे ?

श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने महाराज को अति निकट से देखा था, वे कहते है-"स्वामी जी मेरे बहुत पुराने परिचित थे. बडे योग्य विद्वान् आर्य समाज के स्तम्भ, वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द के मर्मज्ञ एव निष्ठावान् थे। पूज्य स्वामी जी का जीवन क्या था, उनका पाण्डित्य कितना था, उनमे वैदिक धर्म के लिए कितना प्रेम और भावना थी। उनका तप, त्याग, सरलता, ज्ञान, योगानुराग-गम्भीर परिशीलन एव बलिदान उत्सर्ग की भावना कितनी थी, इन सब पर प्रकाश डालने के लिए एक लम्बे लेख की आवश्यकता है। समन्वयवाद की भावना आपके जीवन में गहरी थी।"

श्री महाशय कृष्ण जी भी स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के समाचारो का विशेषत ध्यान रखते रहे, उनका कथन है—

"स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा खोले गये चोहा भक्ताँ गुरुकुल के वे वर्षो आचार्य रहे और फिर उस गुरुकुल को रावल पिण्डी से १३ सहस्रमान दूर रावल ग्राम के समीप ले आये थे। उन्हों ने उसे एक औद्योगिक विद्यालय का रूप दिया था, उस मे २५० से अधिक छात्र प्रविष्ट हुए थे; ये उसकी सफलता के लक्षण थे। किन्तु स्वामी जी को उसकी शिक्षा-पद्धति रुचिकर न थी, इस कारण उसे समाप्त कर दिया। स्वामी जी बहुत सौम्य-स्वभाव के थे। बहुत कम बोलते थे। यद्यपि उनका रुधिर-निपीड बढा हुआ था। उनका जीवन सङ्कट मे था। उन्हे कई वार चिकित्सालय ले जाना पडा, किन्तु हिन्दी-रक्षा के सर्वाधिकारी के रूप मे एक क्षण भी ऐसा न आया, जब उन के पैर लड़खड़ाए हो। अपनी बात पर डटे रहे।"

तुर्याश्रमसेवी उस महापुरुष के जीवन सम्बन्ध में

"श्री जगदेवसिंह शास्त्री 'सिद्धान्ती' महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाव की वाक्य योजना में यह सुनिश्चित मत है कि कोई किसी का स्थान नही ले सकता, महात्माओ के स्थान की तो वात ही क्या है ? स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने आर्य समाज के गौरव को सुरक्षित रक्खा। उनकी तेजस्विता के दर्शन सामान्य रूप से उत्तर भारतीयो और विशेष रूप से पजाव वासियो ने उस समय किए जव उन्होने हिन्दी रक्षा आन्दोलन का नेतृत्व किया। आपकी उच्च स्थिति का आदर करते हुए ही पजाव सरकार ने आपको आदर पूर्वक उनके वैदिक साधन आश्रम मे ही छोड़ा। एक वार नही, अनेक वार।

आप क्या थे-यह वताना साधारण वात नही। फिर भी उनके विशिष्ट गुणों पर प्रकाश डालते है—

१—वीतराग सन्यासी—सन्यासी का यह प्रमुख लक्षण है कि वह लोक-वित्त-पुत्र इन तीनो प्रकार की एषणाओ से परे हो, जिसको लौकिक मान-अपमान प्रभावित न कर सके। धनैश्वर्य की आसक्ति न हो। कुटुम्ब परिवार का मोह वन्धन मे न डाल सके। लोक-हित के रूप मे समवृत्ति धारण करके कार्य करे। यह गुण स्वामी जी महाराज मे प्रत्यक्ष दिखाई देता था।

२—विद्या—आपमे सस्कृत विद्या का अगाध पाण्डित्य था। वेद, व्याकरण, दर्शन और साहित्य विषयो पर साधिकार लिखते और वोलते थे। सस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अवधि और व्रजभापा मे भाव पूर्ण कविता भी करते थे। आपने अनेक ग्रन्थ लिखे। "मनोविज्ञान और शिवसङ्कल्प" ग्रन्थ मे आपका वैज्ञानिक पाण्डित्य भलीभाति प्रकाशित हुआ है।

३—जन सेवा—इस विपय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि पंजावी मुसलमान, पठान और काश्मीरी मुस्लिम आपको धर्मगुरु के रूप मे मान देते थे। १९४७ के भीषण सङ्घर्ष के समय रावलपिण्डी शिविर से एक-एक हिन्दू सिख को भारत भिजवा कर सव से पीछे भारत मे पहुँचे।

४—योगाभ्यास—स्वय योगारूढ होकर जनता मे योग-प्रणाली के प्रचार के लिए अनेक शिविरो का आयोजन किया। प्रति वर्ष वैदिक साधन आश्रम यमुना नगर मे योग-शिविर लगाते रहे।

५—सभा-प्रधान—पाकिस्तान वनने से आर्य समाज की शक्ति विखर गई थी। इसका प्रभाव आर्य प्रतिनिधि सभा पजाव पर पड़ना

अनिवार्य था। वेद-प्रचार का स्थिर निधि समाप्त हो गया। ऐसे समय सभा के प्रधान पद का आपने सभाला और सभा की गिरती हुई प्रतिष्ठा को बचा ही नही लिया, अपितु उन्नति के मार्ग पर अग्रसर कर दिया।

आपके इन गुणों के कारण कुछ स्वार्थी लोग आपकी सच्चरित्रता से अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे, परन्तु आप समदृष्टि होने पर उनका भी भला ही करते थे।"

जालन्धर वासी श्री सूर्यभानु जी कला अधिस्नातक विधान परिषत् पार्षद ने कहा, "आर्य समाज मे जहाँ अभिनव उपदेशक निर्मित हो रहे थे, विद्वान् बनाए जा रहे थे, युवक आकर्षित हो रहे थे, वहाँ आर्य समाज की नवीन पीढी के सन्यासी बनने के इच्छुक महानुभाव भी आपके ही परमपवित्र हाथो से सन्यास आश्रम मे प्रविष्ट होना अपना सौभाग्य समझते थे। वास्तव मे वह ज्ञान, त्याग, तपस्या का आदर्श स्रोत था। उनका वरद हस्त सभी के लिए आशीर्वाद था।"

आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ की शब्दावली मे—

"स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती सीमान्त प्रदेश मे, जहा मुसलमान ही मुसलमान दिखाई पड़ते थे, गुरुकुल चलाते रहे। स्वामी दर्शनानन्द जी ने यह गुरुकुल नि.शुल्क स्थापित किया था। नि.शुल्क शिक्षा का घर में अर्थात् आर्य समाज मे भी बड़ा विरोध रहा। महाशयकृष्ण उन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा के कर्ताधर्ता थे। उनकी लेखनी विरोध में चलती रही। पण्डित मुक्तिराम जी (भूतपूर्व) डटे ही रहे। अड़े ही रहे, पंजाब विभाजन के दिनो तक अड़े रहे और गुरुकुल को चलाते रहे। बड़े धैर्य का काम था, बड़ी तपस्या का काम था।

बहुत से मुसलमान तो इन को औलिया (त्यागी) विरक्त पहुँचा हुआ समझते थे। स्वभाव के निर्मल सामाजिक कार्यो में निस्पृह और निष्पक्ष थे। आपने आर्य समाज मे अपने जीवन से मूक सेवा करने की प्रथा डाली।

दु ख की बात यह है कि इतना बड़ा स्वामी चल बसा, पर अंग्रेजी समाचार पत्रों मे केवल दो-दो, चार-चार पंक्तियो का समाचार छपा है। अंग्रेजी वाले सम्भवतः उसी को बड़ा आदमी समझते हैं, जिसका नाम बड़े-बड़े अक्षरों में छपता रहा हो। अंग्रेजी वृत्त पत्रो की छोटे बड़े की कल्पना निराली अपने ढङ्ग की ही रहती है। स्वामी आत्मानन्द जी जैसे तपस्वी सन्यासी के दर्शन अब कहा ?"

श्री विद्यानन्द विदेह के आत्मिक भावो मे—

"श्री आत्मानन्द जी सरस्वती आर्य समाज मे विशेष रत्न थे। उससे आर्य समाज आभावान् और आचार-विचार में धनी था। मेरा उनका एक ऐसा सम्बन्ध रहा, जिसे मौन और आत्मिक सम्बन्ध कहा जा सकता है। १५ अगस्त सन् १९५५ को मैंने उनके हाथ से वटाला मे सन्यास आश्रम की दीक्षा ली थी। उसके पूर्व और उसके पश्चात् भी हमारे सम्बन्ध गहन किन्तु मौन ही रहे। उन्हो ने मुझे वहुत प्यार किया और मैं उनके लिए अपने हृदय मे सदा ही श्रद्धा सजोये रहा फिर भी न उन्होने अपनी वाणी से कभी मेरे प्रति अपने प्रेम का प्रकाशन किया, न मैंने अपने मुख से कभी उनके प्रति अपनी श्रद्धा का प्रकटीकरण किया। हम जव भी मिले, उन्होने आशीष भरे नेत्रो से मेरी ओर एक पलक देखा और मैने श्रद्धा भरी दृष्टि से उनका टुक दर्शन किया। हम मिले, हमने एक दूसरे की ओर देखा और हम विदा हो गए। मिलने के प्रत्येक अवसर पर ऐसा ही हुआ।

अनेक ग्रन्थो के लेखक श्री गङ्गाप्रसाद उपाध्याय ने श्री आत्मानन्द जी सरस्वती को अनेकवार आकस्मिक अपनी भेट के अवसर पर नैतिक उलझनो से न बधने के लिए चेतावनी दी थी, किन्तु उनकी चेतावनी का उन पर कोई प्रभाव न पडा, महाराज अपने जीवन में जनता को अधिक साहित्य देने की अपेक्षा वैदिक ज्योति से जगमगाता जीवन प्रदान करना चाहते थे। इस कार्य मे वे निरन्तर जूझते रहे। परन्तु जनता श्री महाराज से अधिक से अधिक साहित्य की भी अपेक्षा रखती थी, अत श्री गङ्गाप्रसाद उपाध्याय को यह कहना पडा, "हमको यह पता नही कि उस दार्शनिक मस्तिष्क में कौन से अमूल्य रत्न छिपे पडे थे, जो हमारे दुर्भाग्य से हम तक न आसके।"

श्री राधाकृष्ण-सस्कृत कालेज खुरजा (उत्तर-प्रदेश) के साहित्य विभागाध्यक्ष कविरत्न श्री ब्रह्मानन्द जी शुक्ल कला-अधिस्नातक साहित्याचार्य व्याकरण-अलङ्कार शास्त्री काव्यतीर्थ का परिचय तो श्री आत्मानन्द सरस्वती से वाल्यकाल से सम्वन्धित था, उन द्वारा भेजे गये एक संस्मरण से पता चलता है कि स्वामी आत्मानन्द सरस्वती क्या थे। वे लिखते हैं—

"काशी से आकर स्व० पूज्य गुरुदेव विद्यावाचस्पति पण्डित परमानन्द जी शास्त्री अपनी जन्मभूमि ग्राम वामनौली जिला मेरठ (उत्तर-प्रदेश) मे अध्यापन करने लगे थे। उस समय संस्कृत विद्या का प्रचार

बहुत कम था, परन्तु जो भी विद्वान् कहीं होता था। वह वास्तव में योग्य होता था। पूज्य शास्त्री जी की ख्याति दिन-प्रतिदिन बढती गई। इधर-उधर से विद्यार्थी आकर विद्याध्ययन करने लगे, उसी समय बामनौली के समीप का एक होन हार बालक मुक्तिराम भी श्री शास्त्री जी के चरणों में बैठ कर सस्कृत पढ़ने लगा। कौन कह सकता था कि वह बालक आगे चल कर आर्य समाज का विद्वान् निष्ठावान् संन्यासी श्री स्वामी आत्मानन्द नाम से विश्वविदित महापुरुष होगा।

जिन लोगो ने स्वामी जी को देखा है वे उनके गुणों को भलीभाँति जानते है। उनके सम्बन्ध मे स्वय श्री गुरुदेव प्रशसा किया करते थे। उनकी गीता सम्बन्धी खोज के विषय मे स्वयं मुझ से कहते थे।

साधु आश्रम अलीगढ़ मे श्री धुरेन्द्र शास्त्री जी ने सन्यासी होने के अवसर पर श्री राधाकृष्ण सस्कृत महाविद्यालय खुरजा से पूज्य श्री विद्यावाचस्पति जी, जो उस समय इस विद्यालय के प्रधानाचार्य एव श्री धुरेन्द्र शास्त्री के गुरु भी थे, को बुलाया। इन पक्तियों का लेखक भी साथ गया था। सहस्रो लोग आए थे। यज्ञमण्डप मे यज्ञ कार्य हो रहा था। श्री स्वामी आत्मानन्द जी ही उस समय श्री धुरेन्द्र जी के सन्यास आश्रम के गुरु बने थे। सहसा उनकी दृष्टि जन-समूह मे बैठे हुए श्री गुरुदेव विद्यावाचस्पति जी पर पड़ी, वे बीच में ही यज्ञ कार्य*को छोड़कर नीचे उतर आए और अपने गुरु जी को नतमस्तक होकर प्रणाम किया। मैं श्री स्वामी जी की इस पावन गुरु-भक्ति को देख कर अवाक् रह गया। क्या यह साधारण घटना थी ? धन्य थे वे हमारे गुरु भाई श्री स्वामी आत्मानन्द जी।"

श्री ईश्वरचन्द्र जी दर्शनाचार्य ने श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की अपने ऊपर असीम अनुकम्पा मानी है, वे लिखते है —

"मुझे उनकी असीम अनुकम्पा से न्याय-वैशेषिक के कुछ अक्षरों का परिचय अपनो सामान्य बुद्धि के अनुसार प्राप्त हुआ। उनके कुछ सस्कृत भाषा मे लेख 'किमिद स्निग्धम्' और 'इन्द्रिय चक्षु.' नामक, प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'शारदा' नामक मासिक सस्कृत पत्रिका मे मुद्रित हुए थे। अब वे प्राप्य नही है ? किसी एक हिन्दी मासिक में उनकी एक हिन्दी कविता छपी थी, जिसकी टेक थी—

---

*संन्यास-दीक्षा के पश्चात् वहीं यज्ञ वेदी पर प्रतिष्ठित व्यक्तियो के भाषण हो रहे थे, उस समय किसी ने व्याख्यान देने के लिए श्री पं० परमानन्द जी का नाम लिया, तब की घटना है।

"यह चाल मराल रसीली ना।"

कुछ दोहे भी उन्होने बनाए थे, यह सब लगभग चालीस वर्ष पहले की वार्ता है।

मै उनके आदेश से बनारस गया था और कुछ दिन अध्ययन करता रहा था।"

हकीम वीरूमल आर्य-प्रेमी ने कहा—कि स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के तेजोमय दिव्य तथा भव्य मुख मण्डल को देखकर ऋषि दयानन्द की स्मृति आ जाती थी। ये प्रत्येक सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे।"

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती सन् १९५५ मे आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के प्रधान थे और प० बुद्धदेव जो विद्यालङ्कार थे उप-प्रधान। श्री स्वामी जी ने पाँच लाख रुपये सङ्ग्रह करने के लिए जनता से कहा कि प्रति व्यक्ति इस यज्ञ मे न्यून से न्यून एक रुपया अवश्य दे" इस पर श्री प० बुद्धदेव जी नें जनता को सावधान किया कि श्री स्वामी आत्मानन्द सरीखे वीतराग सन्यासी की झोली मे एक रुपया डालने से तो कोई निषेध ही नही कर सकता।

सन् १९४७ के भयङ्कर दिनो की घटना है—रावलपिण्डी से लोग भारत की ओर भाग रहे थे जत्थे पर जत्था चलता था और प्रत्येक व्यक्ति उनसे आग्रह करता था कि आप भी तो चलिए, आप यहाँ क्यो बैठे है? परन्तु वह महापुरुष अटल था। जब अन्तिम जत्था चलने लगा तो, चलने वालो ने आग्रह किया कि अब तो चलिए, किन्तु उन्होने मुस्कराकर उत्तर दिया "अभी नही, अभी कुछ काम शेष है। लोगो ने पूछा "वह क्या काम है?" उस वीर पुरुष ने उत्तर दिया- "हमारे कुछ भङ्गी भाई शेप हैं। मुसलमान इन्हे अपने स्वार्थवश यही रोक रखना चाहते हैं और इनके निकलने मे अडचन उत्पन्न कर रहे हैं, किन्तु इनकी इच्छा भारत जाने की है। मैं अपने इन भङ्गी भाईयो को कैसे छोड दूँ।" अन्त में वे-सब को निकाल कर ही आए।

वे नाम मात्र के सन्यासी नही थे। उनका योगाभ्यास उनके जीवन का अङ्ग था। ऐसा सन्यासी केवल आर्य समाज का नही, शिखा सूत्रधारी सभी की श्रद्धा का पात्र था। वस्तुत. देखा जाय तो मनुष्य मात्र की श्रद्धा का पात्र था।"

श्री देशबन्धु सिद्धान्त भूपण की वाक्य रचना मे—

'ऋषि आत्मानन्द जिन्हे हम समझे तो वास्तविक अर्थो मे आप्त पुरुप थे। उनका समाधि असम्प्रज्ञात होता था। इस मध्य उनको किसी

ने उठाना चाहा वा अन्य कोई विघ्नस्वरूप कार्य अनवधानता से होगया, तो उनका समाधि भङ्ग नही होता था। महाराज जी अपने जीवन में चार-पाच घण्टे समाधि लगाया करते थे। उनके सहवास के अनुभव और अष्टाङ्ग योग के अध्ययन से प्रत्यक्ष हो जाता है कि उन्हो ने आत्मा का प्रत्यक्ष किया हुआ था, क्योंकि निम्नलिखित पंक्तियो को कोई साक्षात्कृतधर्मा विशेष पुरुष ही लिख सकता है—

उपासक की प्रथम अवस्था मे—अन्तःकरण सस्कारो से श्याम है। भगवान् के प्रकाश के किरण आत्मा में प्रकट नही हो सकते। आत्मा इन ज्ञान के किरणो का अभिलापी है।

दूसरी अवस्था मे— अन्त करण के कुछ संस्कार निकल गए है। वह ठोस अन्धकार कम हो गया है। कुछ प्रकाश आत्मा तक पहुँचने लगा है।

तीसरी अवस्था मे "अन्तः करण मे पृदाकू जैसे प्रवल सरकार शेष रह गये है। ओ३म् का ज्ञान अब आत्मा का भोजन बन गया है।

चौथी अवस्था मे—"अन्त करण के सस्कार समाप्त हो गए है, वह विषय के आकार मे नही, अपने ही रूप मे परिणत होता है। ओ३म् का ज्ञान विद्युत् रूप मे आत्मा मे प्रकट होता है।

पाचवी अवस्था मे—अन्त करण निश्चल हो जाता है, उसमे से स्वज वृत्तियो को भी बाहर फेंक दिया जाता है। अब आत्मा को समाधि लगाने पर आनन्द रस प्राप्त होता है।

छठी अवस्था मे—यह अवस्था शान्त है, इस मे अन्तःकरण परमात्मा के आनन्द मे आनन्दित है, जहाँ अमृत की वर्षा हो रही है।

उनके अष्टाङ्ग योग मे लिखे इन विचारो से स्पष्ट होता है कि उन्होने आत्मा का प्रत्यक्ष किया था, जो आप्त विद्वान् आत्मा का प्रत्यक्ष करता है, वह ऋषि कहलाता है।"

स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने वैदिक साधन-आश्रम यमुनानगर के गत वार्षिक शिविर-समारोह मे कहा था- "जब मैं बनारस मे विद्याध्ययन किया करता था, तो मैंने श्री स्वामी वेदानन्द जी उन दिनो के ब्रह्मचारी दमानन्द जी से दर्शन-शास्त्राध्ययन की चर्चा की तो उन्होने कहा था कि मैंने एक ऐसे प्रकाण्ड पण्डित जी से दर्शन शास्त्रो का अध्ययन किया है, जो अप्रतिहत गति से बिना पुस्तक के ही पढाते चले जाते

हैं। उस समय उन्होने श्री पण्डित जी का नाम निर्देश नही किया था। जब मुझे पीछे परिज्ञात हुआ कि वे तो पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ही थे, तो मुझे अतिशय पश्चात्ताप रहा और मै दर्शन शास्त्रो के उस विचित्र स्रोत से वञ्चित रह गया, जो स्वामी आत्मानन्द जी द्वारा उपलब्ध होना था।"

इतना कहते ही स्वामी ब्रह्ममुनि जी के नयनयुगल से अविरल अश्रु धारा प्रवाहित हो चली।

श्री वलदेव जी नैष्ठिक सिद्धान्त शिरोमणि के शब्दो मे—

"जिन ऋषियो, मुनियो, योगियो, आचार्यो तथा विद्वानो की ससार पर अमिट छाप पडी है, जिसके कारण हम कभी उन्हे भूल नही सकते, जिनके ऋण से कदापि अनृण नही हो सकते, उन्ही अद्भुत, प्रतापी महामान्य महात्माओ मे स्वामी आत्मानन्द जी महाराज भी हैं। उनका गहन वेदाध्ययन, दर्शनशास्त्र पर पूर्ण अधिकार, व्याकरणादि समस्त ग्रन्थो का विस्तृत अनुशीलन, अखण्ड ब्रह्मचर्य, महान् त्याग, तप·पूत अनुपम जीवन, सासारिक भोगो मे अलिप्तता, अद्वितीय बुद्धिवादिता, दीर्घ काल और निरन्तर आचरण मे लाया गया योगाभ्यास, इन्द्रिय सयम, असीम उदारता, अद्वितीय अहिसा, परम विरक्तता अप्रतिम दयालुता, अक्रोध और अपार क्षमा ऐसे विशेप गुण थे जो उन्हे युग युगान्तर के महान् आत्माओ के उच्च आसन पर आसीन करने के लिए विवश करते है। इस भूत दया से आप्लावित ब्रह्मनिष्ठ महात्मा के जिसने जीवन मे एक वार भी दर्शन किए है, वह यही कहता है कि मुझे आदर्श पुरुष के दर्शन हो गए है।

वे दिन धन्य थे, जब रात्रि की अमृत वेला मे शिष्य-मण्डल पूज्यप्रवर स्वामी जी महाराज को चहुँ ओर से मण्डलाकार मे घेर कर वैठता था, तव कपिल, कणाद, पतञ्जलि, गोतम, जैमिनि, याज्ञवल्क्य, वेद व्यास आदि ऋषि मुनियो के समय की स्मृति हो उठती थी उनके सत्सङ्ग का सुख अपूर्व था, अतीव आह्लादक था। अन्तर्गुहा से निकली वह ज्ञान-गङ्गा शीतल थी, मनोहारिणी थी और थी अपार सुखदायिनी।

कुछ भी हो, वे ऋषि थे, योगी थे, ब्रह्मज्ञानी थे सन्त-शिरोमणि थे, परम मनीषी थे, अनन्य कवि थे, क्रान्तदर्शी थे, सिद्ध पुरुष थे, महा विद्वान् थे, धीर थे, गम्भीर थे धर्मवीर थे, जपी थे, तपी थे, ध्यानी

थे, संयमी थे, कर्मयोगी थे, प्रतिभा के धनी थे, संन्यासी थे, वीतराग थे और थे मोक्ष के पूर्ण अधिकारी।

तीव्र वैराग्य से युक्त होकर धुन के धनी हमारे चरित्रनायक ने जीवन के प्रथम चरण में ही माता पिता के पूर्ण प्रेम की, सगे-सम्बन्धियों के सरल अनुराग की और सब से बढ कर यौवन अवस्था के जटिल वासना जाल की, वैराग्य हवन कुण्ड में पूर्णाहुति डालकर अपनी आन्तरिक ब्रह्मचर्य की गहरी लग्न का प्रदर्शन कर दिया था। वैवाहिक बन्धन का प्रतिरोध करके ब्रह्मचर्य का जो असिधारा व्रत ग्रहण किया था, उसे सासारिक असख्य प्रलोभन आने पर और विकट से विकट परिस्थितियों के आह्वान करने पर भी न टूटने दिया। सदाचार तो आपको प्राणों से भी प्रिय था, अतः उस पर सर्वस्व की बलि चढाकर भी आपने उसकी विधिवत् परिपालना की। मृत्यु पर्यन्त पूर्ण श्रद्धा से इस सोमरस का पान करते रहे और ब्रह्मचर्य-प्रेमियो को कराते रहे। बाल ब्रह्मचारी व्रत के धनी आपने 'आदर्श ब्रह्मचारी" नाम की छोटी सी पुस्तिका लिख गागर में सागर भर, कदाचार-भ्रष्टाचार के बढते प्रचार पर तीक्ष्ण प्रहार किया था। इन्द्रिय-निरोध आपका अनुकरणीय तथा अतुलनीय था। जिस प्रकार एक सुषारथि अपने घोडो को नियन्त्रण मे रखता है, उसी प्रकार आपने अपने इन्द्रिय रूपी अश्वो को सुसयत कर रक्खा था।

चरित्र की ऐसी तीव्र तप की भट्ठी मे जब आपने अपने को झोका तो आप उस तप के प्रदीप्त अग्नि से कुन्दन और बल के भण्डार बन कर निकले। आपका विमल भाल, अद्भुत आभा से चन्द्रमा के सदृश चमकता था, आखे कमल-सम विकसित रहती थी। शरीर वज्र के समान सुगठित और कठोर था। आचरण की चित्रकला आपके जीवन पर मनोमोहक राग आलापती थी।

आपके सभ्य आचरण की गुप्त गुहा में प्रवेश करना सरल कार्य नही था। निरन्तर विराजमान आपके उज्ज्वल आचरण की ज्योतिष्मती मौन व्याख्या को अनेक अवसरो पर बडे-बडे महानुभाव भी नही समझ पाते थे।

मेरी यह प्रबल मनोवाञ्छा थी कि मै गुरु राज के जीवन प्रकाश को अपने जीवन पृष्ठों पर ही अङ्कित करता रहूँ और चित्रपटल से बाहर न आने दूँ। परन्तु यह अनुपम ज्ञान प्रकाश इतना विपुल था कि प्राणिमात्र की कल्याण कामना से अपने आप अकस्मात् उमड़ पडा है। और जब

अन्त करण को अतिक्रान्त करके बाहर आ ही गया है, तब मेरा यही पवित्र उत्कट अभिलाष है कि शीतांशु मुनिराज का यह शीतल प्रकाश ससार के प्रत्येक कोने में विस्तार पा जावे और विश्व के किसी गृह मे किसी परिवार मे, किसी मठ मन्दिर मे, किसी विद्यालय-किसी महाविद्यालय मे, किसी नगर मे, किसी ग्राम मे, किसी कोने मे किसी नूतन आत्मानन्द का निर्माण कर सके।"

गतवर्ष यश. पाल नामक एक युवक जगाधरी मे एक वृद्धपौराणिक सन्यासी के समीप गया, वे विशेषत. वार्तालाप अतिन्यून करते थे। युवक ने वार्तालाप करते हुए कहा "स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के चरणो मे भी मुझे रहने का अवसर प्राप्त हुआ है।" इतना सुनते ही सन्यासिप्रवर की आखे अश्रु धारा से भीग गईं। हृदय को सभाल कर स्वस्थ प्रकृति मे लौटकर, उन्होने युवक से अतिशय प्रेमालाप किया और अन्त मे कहा—"मैं आज कल बहुत कम बोलता हूँ, किन्तु जब तुमने वीतराग स्वामी आत्मानन्द जी का नाम लिया, तो मुझ से रहा न गया। सचमुच वे बहुत बडे आदमी थे। तुम भी बहुत वृद्ध और अनुभवी प्रतीत होते हो, जो उनके समीप रहने का सौभाग्य प्राप्त कर सके। अभागे रहे वे जन जो उनके जीवन मे उनके दर्शनों से वञ्चित रह गये।" युवक ने कहा, "महाराज मैं तो एक छोटा-सा युवक हूँ। मुझे उनके विद्यालय मे पढने का अवसर मिल गया था। मैं क्या कहूँ, वे तो बहुत ही अधिक शान्त थे।"

इस प्रकार देव आत्मानन्द के विषय मे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अनेक महापुरुषो की प्रशस्त सम्मतियाँ है।

हमारे इस चरित्र नायक ने अनेक पुस्तक-पुस्तिकाए लिखी। "स्वर्गलोक के पाँच द्वारपाल" मे वे वाणी के मुख से कहलवाते है; "मैं एक निवेदन किए बिना नही रह सकती। मुझ अकिञ्चन का भी इस पुरुष ने अपयश फैलाया है। परमात्मा ने मुझे जिस लिए बनाया है, यदि मनुष्य मुझ से वैसा ही कार्य ले तो, न ससार मे इतने युद्धो का प्रवर्तन हो और न ही मनुष्य के लिए स्वर्ग का द्वार बन्द हो। आपको विदित है कि मैं अग्नि देव की पुत्री हूँ। और शास्त्रो मे अग्नि का शाब्दिक अर्थ आगे ले जाने वाला है। जो लोग इस विशिष्टता को ध्यान मे रखकर मुझे जगत् के सभ्य पुरुषो के आगे खडी होने योग्य बनाते है। उनका इसलोक मे भी सम्मान होता है और स्वर्गलोक मे भी।

रामचन्द्र का नाम तीन युगों के पश्चात् आज भी आदर के साथ क्यो लिया जाता है ? इस का एक ही कारण है कि उसकी वाणी एक थी; उसने दृढता पूर्वक कहा था 'रामोद्विर्न भाषते' राम की वाणी दो नही हो सकती। मैने जो कुछ कह दिया पत्थर की लकीर है। 'पितामह भीष्म ने पिता के समक्ष एक ही वार कहा था कि मै जीवन भर विवाह नही करूँगा, अत वह अपने पिता के पश्चात् भी आजीवन अपने मुख से निकली हुई वाणी पर अटल रहा।

मन के प्रसङ्ग मे स्वामी जी लिखते हैं—"मेघ जव तक आकाश-मण्डल मे दौडते रहते है, वायु उन्हे एक स्थान पर ठहरने नही देता, तव तक वे पानी वर्षा कर ससार के लोगो को आनन्द देने के योग्य नहीं हो सकते। किन्तु जैसे ही वायु का वेग शान्त होता है। और मेघो का एक स्थान पर समूह एकत्र होता है, वैसे ही पवित्र जल वर्षा कर संसार के मनुष्यो को प्रसन्न करना आरम्भ कर देते है, ठीक इसी प्रकार भगवान् पतञ्जलि के वचनानुसार जो लोग अपने मन को लौकिक सम्बन्धो के वायु से बचाकर इसकी गतियों को रोकना आरम्भ कर देते है, उनके लिए वही चञ्चल मन आनन्द की वर्षा करना आरम्भ कर देता है और स्वर्ग का द्वार खुल जाता है।"

महाराज मनोविज्ञान में उपोद्घात के तीसवे पृष्ठ पर लिखते है— "आत्मा मन के ऊपर अधिकार करने के पश्चात् ही विज्ञान और आनन्द की प्राप्ति के लिए मस्तिष्क के हृदय मे पहुँचता है। यही पहुँच कर इसे ब्रह्मज्ञान होता है और इस से पहले उसका स्थान नीचे वाले हृदय मे ही रहता है।"

इसी प्रकार "सन्ध्या अष्टाङ्ग योग" की प्रस्तावना के आरम्भ में लिखते हैं कि "वेदमन्त्रों के व्याख्यान तीन प्रकार के होते है। आधि-दैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक। अपने जीवन काल मे मनुष्यो का सम्बन्ध और सङ्घर्ष भी भूतो, देवो और आध्यात्मिक तत्त्वो से ही होता है। इस सम्बन्ध का योग्यतापूर्वक निर्वाह जिस विधि से होना चाहिए, उसका उपदेश मनुष्य को वेद के अतिरिक्त और किसी मे नही मिल सकता।"

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती द्वितीय विवाह के बहुत विरोधी थे। जो कोई नि सन्तान गृहस्थ अपने द्वितीय विवाह की अनुमति वा परा-मर्श लेने उनके चरणो मे उपस्थित हुए, उन्हे महाराज ने स्पष्ट कहा— "अनेक विवाहों से सन्तान नही होते, उनकी प्राप्ति तो सयमी जीवन

के विताने से होती है ।" इस ऋषि वाक्य को सम्मुख रख कर जो चेष्टावान् बने, उनका जीवन तो सयमी बना ही, इसके अतिरिक्त सयमी सन्तानो ने ही उस घर मे जन्म लेकर उस घर को जगमगा दिया और जीवन पर्यन्त सम्पूर्ण परिवार उनमे श्रद्धा बनाए रहा ।

महाराज का जीवन एकाङ्गी नही था । उन्होने अपने सम्पूर्ण जीवन से एक व्यावहारिक आदर्श उपस्थित किया था । यदि किसी समय जनता मे भयङ्कर रोग का आक्रमण व्यापक रूप से हो गया है, तो वे सब कार्य छोडकर उसमे लग जाते थे, यदि कही राष्ट्र मे बाढ-ग्रस्त जन बिल-बिला उठे हैं । तो उन्हे सहायता पहुँचाना उस समय उनका मुख्य कर्त्तव्य हो जाता था, यदि निर्वाचन के दिनो मे किसी ने उनके सहयोग की अपेक्षा की है, तो उन्होने उसका अपनी पूर्णशक्ति से सहयोग किया था । निर्वाचन क्षेत्र से वे अवैदिकता को सर्वथा विनष्ट देखना चाहते थे, इसलिए उन्होने "वैदिक निर्वाचन प्रणाली" इस नाम की एक लघु पुस्तक का प्रणयन किया था । दक्षिण हैदराबाद मे जब एक वर्ग पर अत्याचार हो रहे थे और उसके निवारण के लिए आर्य समाज ने सत्याग्रह आरम्भ किया था, तो अपने प्रमुख कार्यों को छोडकर वे उसी कार्य मे जुट गये थे । यद्यपि वे उस समय कार्य के भार से रुधिर-निपीड के रोग में ग्रस्त हो गये थे; पुनरपि भावी जीवन के कार्यक्रमो मे वे अधिक से अधिक चमकते दृष्टिगोचर हुए ।

स्वामी जी को इच्छानुसार उनका अपना मुख्य कार्य विशेषत: अन्तिम जीवन मे योगाभ्यास-रत रहना था, इसके लिए उन्होने यदा-कदा अपने भावो का प्रकटीकरण किया भी, किन्तु तत्कालीन जनकल्याण की आवश्यकताओ को देखकर वे अपने निर्धारित कार्यक्रम को स्थगित कर देते थे । इस प्रकार जनता की आवश्यकता ही उनका जीवन था; अत. लम्बे समय तक एकान्त सेवन के दिन उनके जोवन मे दृष्टिगत नही हुए । वे जिस भी स्थिति मे रहे, अन्त तक ब्रह्मोपासना मे पगे रहे । ब्रह्म की सृष्टि मे उन्हे मानव-मात्र से प्रेम था । अतः आर्येतर जन भी उनमे अनुरक्त थे । वे ज्योतिष्पुरुष चले गये, किन्तु अपनी उद्दीप्तियां छोड गए ।

जनता सोचती है कि मनुष्य, अपना जीवन ऐसा भव्य बनाने मे कैसे समर्थ होता है ? और अन्त मे वह महापुरुष कैसे बन जाता है ? इसके उत्तर मे ऋग्वेद १-७ का छठा मन्त्र है "स नो वृषन्नमु चरु सत्राद्यावन्नपावृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुत" ॥ इसका भाव है—"जो

मनुष्य अपनी दृढ़ता से सत्यविद्या का अनुष्ठान और नियम से ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है, उसके आत्मा में से अविद्या रूपी अन्धकार का नाश अन्तर्यामी परमेश्वर कर देता है, जिससे वह पुरुष धर्म और पुरुषार्थ को कभी नहीं छोड़ता।"

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती उपर्युक्त सिद्धान्त के पालन में आरम्भ से अन्त तक सतर्क और चेष्टावान् रहे थे। इस से वे बाल्यावस्था से ही चमकते चले गये। उन्होंने पूर्व महापुरुषों की भांति स्वय को आदर्श बना कर अपने जीवन में अनेकों को परिपूत कर दिया।

वेदानन्द वेदवागीश शास्त्री

ओ३म्

आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

शैशवप्रकाश

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती का जन्म सन् १८७९ ई० में हुआ था यह वह काल था, जब महर्षि दयानन्द अपने पचपन वर्ष के वयः में उत्तर प्रदेश का परिभ्रमण करते हुए आर्यावर्तीया सस्कृति से परिभ्रष्ट आर्त्तमानव को वैदिक सुधा-रस पिला रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है, मानो आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द का श्रीमद् आत्मानन्द सरस्वती को आजीवन ब्रह्मचारी रख कर प्राणिमात्र के हित में रत रहने का यह एक मूक सन्देश हो। लोकोत्तर महापुरुषो की ऐसी लीलाएं लोकोत्तर ही होती हैं। वैदिक सिद्धान्तो का घोष, निरन्तर गुञ्जायमान रहे, यह पर्यवेक्षण तो सर्वनियन्ता भगवान् ने ही करना है। वह ही स्ववेद-निधि का सर्वोत्तम रक्षक और निरीक्षक है। वह ही समय-समय पर धर्म की रक्षा करने तथा उसे प्रगति पथ पर अग्रसर बनाने के लिए नैष्ठिक ब्रह्मचारियो को जन्म देता है।

जन्मभूमि

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की जन्म भूमि 'अञ्छाड़" है। राजकीय कार्यालयो मे 'रनछाड' लिखा जाता है, जो उत्तर प्रदेश के मेरठ मण्डल में एक ग्राम है। यह मेरठ एक प्राचीन नगर है। इसका पुरातन नाम "मयराट" है। 'मय' एक अत्यन्त कुशल शिल्पकार था, जो अपने 'मय नामक वंश से ही प्रख्यात था। उस वंश के पुरुष विभिन्न स्थानो में

थे, जहां-जहां इनका वाहुल्य था, वे देश उन्ही के नाम से प्रसिद्धि पाये थे , जैसे मयवर्त (मेवात) मयराट (मेरठ)। खाण्डव वन-दाह के समय जब उस शिलपराट् मय को योगिराज कृष्ण द्वारा सम्मति दिए जाने पर अर्जुन ने प्राण-दान दिया था, उस रक्षा के प्रत्युपकार में अर्जुन की आज्ञासे श्री कृष्ण की प्रेरणा पाकर उसने धर्मराज युधिष्ठिर के एक ऐसे-सभा भवन का निर्माण किया था, जिसकी सुषमा इन्द्रपुरी की कान्ति को भी निष्कान्त करती थी। पश्चात् इसी का नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा गया था। शिल्पकौशल से विख्यात इस मय की निवासभूमि मेरठ थी।

मेरठ के ही आचल में पृथ्वीराज के पितामह 'विग्रहराज' ने यवनो के छक्के छुडाए थे। जब सोमनाथ के मन्दिर पर गजनवी ने आक्रमण किया था, तब भी मेरठ के राजा श्री हरदत्त सिंह ने ही उसके दाँत खट्टे किए थे।

महमूदगौरी ने गजनवी के प्रतिशोध के लिए जो आक्रमण किया, उसे मृत्यु के घाट यहाँ के वीरो ने ही उतारा था। पश्चात् कुतुबुद्दीन खि़लजी, तुग़लक, और लौधी भी यहां के सिंहो के समक्ष खेत रहे।

मेरठ नगर ही स्वदेशानुरागी श्री मंगलपाण्डे के बलिदान के पश्चात् सन् १८५७ के विप्लव का प्रारम्भ कर्त्ता बना। मेरठ से प्रारम्भ होने वाले इस विप्लव ने ब्रिटिश शासन के सुदृढ़ शिलान्यास को हिला डाला। यद्यपि ब्रिटिश शासन के तत्कालीन क्रूर अत्याचारो से भारत वासी अतिम्लान हो त्रायस्व-त्रायस्व पुकार उठे थे, पर उन्हे यह दृढ़ विश्वास हो चुका था कि स्व सङ्घटन को सुदृढ़ बनाकर किसी-न किसी समय वे अग्रेजो को भारत भूमि से उखेड़ देंगे। स्वतन्त्रता के इस सूत्र-पात के पश्चात् ही इलाहाबाद जलियां वाला बाग, कानपुर और झासी मे रक्त की अविरल धाराए बही थी अत: स्वातन्त्र्य सग्राम में भी हमारे चरित्र नायक स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की जन्म भूमि मेरठ का स्थान प्रथम और प्रमुख माना जाता है।

मेरठ से उद्भूत उस विप्लव के अनन्तर मेरठ मण्डल के अधिवासी अंग्रेजों की आंखो मे अहर्निश खटकने लगे थे। ब्रिटिश शासको ने

जितना भी बन सका, इस समृद्ध भूप्रदेश को आर्थिक दृष्टि से निर्बल बना डाला। ब्राह्मण तो थे ही पहले से त्यागीयो, तपस्वी और निर्धन। विप्लव के पश्चात् हुए अत्याचारो ने उन्हे और भी घात पहुँचाया; किन्तु ऐसी घटनाओ से तपस्याग्नि से प्रतप्त मनुष्यो का आत्मज्ञान उत्तरोत्तर निखरता ही है, धूमिल नही होता। उनका यह आत्मज्ञान जीवन-सग्राम की उन्नतावनत अवस्थाओं मे अतिधीरज बधाता है। आद्यसृष्टि से अद्य पर्यन्त भारत का यह अमूल्य निधि सुरक्षित चला आ रहा है जिसका प्रभाव भारतवासियो के अन्त करण में अति गम्भीर है।

परिवार परिचय

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के पिता श्री पण्डित दीनदयालु जी उपर्युक्त निधि के धनी थे। सम्भवतः उन्हे भी यह निधि उनके पिता श्री पण्डित बिन्दराजी से उपलब्ध हुआ हो। पर यह निर्विवाद सत्य है—आत्मानन्द जी सरस्वती ने इसे अपने माता और पिता से ही बहुत अशो मे प्राप्त किया था।

श्री पण्डित दीनदयालु जी के समीप कृषि—योग्य बत्तीस बीघा भूमि थी, जिसका आय, व्यय-भार अधिक होने के कारण अपर्याप्त रहता था, किन्तु घरेलु जीवन के लिए अन्न पर्याप्त हो जाता था। घर पर दो बैल, एक भैंस और एक गाय चतुष्पदो मे थी। ग्रामीण जनों का हृदय पण्डित दीनदयालु जी के प्रति पुष्कल श्रद्धा से भरपूर था वे सीधे सादे गौड़ ब्राह्मण थे। परम्परा से पौरोहित्य कर्म भी परिवार मे चला आ रहा था। वह भी आर्थिक सङ्कट मे यदा-कदा सम्बल बन जाता था। आपके पौरोहित्य कर्म की धाक सब पर थी। जब कभी भी ग्राम मे किसी विशिष्ट कार्य के निमित्त ग्राम्यजन एकत्रित होते थे, वे श्री पण्डित दीनदयालु जी का अवश्य स्मरण रखते थे। उनके बिना उन्हे वह सभा चन्द्रमा से रहित शर्वरी के समान प्रतीत होती थी। वे दरिद्र-नारायण और धनी मानी सकलजनो के समान रूप में हितैषी एव पथ-प्रदर्शक थे। पौरोहित्य कर्म से उन्हे यत्किञ्चित् उपलब्धि हो अथवा न हो, वे स्व कर्तव्य कर्म से विमुख कदापि नही हुए। यह उनका प्रण था।

हिन्दी भाषा के साथ-साथ उन्हे सस्कृत भाषा का ज्ञान भी था। लोगो की भावनाओ को परिष्कृत करने के हेतु वे यदा-कदा सीता,

द्रौपदी, सावित्री; अर्जुन, युधिष्ठिर और कृष्ण की पवित्र कथाएं भी सुनाया करते थे।

इन विलक्षण गुणों से अनुप्राणित पण्डित दीनदयालु जी वैद्यक में भी विचक्षण थे। द्वार पर आगत रोगार्त्त प्राणी को वे शीतल वचनो से शान्ति प्रदान करने के अनन्तर यथाशक्य औषध भी दिया करते थे। उनमे नाम मात्र को भी भेदभाव न था। इतना ही नही यदि वे किसी के सम्बन्ध में किसी से रुग्णता का समाचार सुन लेते थे, तो विना आहूत ही स्वयं औषध की पुडिया लेकर रोगी के गृह पर जा उपस्थित होते थे। यदा-कदा इस कार्य में शीघ्रता लाने के निमित्त उनकी पत्नी श्रीमती धनदेवी जी भी सहयोग दिया करती थी। वे तत्क्षण ओषधियां कूट-पीस छानकर पतिदेव को समर्पित कर देती थी। पण्डित दीनदयालु जी इस वैद्यककृत्य से किसी प्रकार के शुल्क वा धन की आशा नही रखते थे। सब कुछ यह सार-संभार वे स्वशान्ति-निमित्त ही किया करते थे। किसी को दु.खी देख कर उनका हृदय पसीज जाता था, जब उन्होने जन्मानुजन्म करुणा की ही उपासना की थी, तो भगवान् ने भी उन्हे करुणा से ही अलङ्कृत किया था, न कि धन-सम्पत्ति से। परिवार में श्री आत्मानन्द सरस्वती के जन्म से पूर्व दो बहने, दो भाई उनके और थे। उत्पाद-क्रम से प्रथमा एवं ज्येष्ठा भगिनी निहालदेवी का वयः उस समय तीसवे वर्ष को पारित कर रहा था। निहालदेवी से छोटे दो सहोदर भ्राता हरनारायण और हरदेवा तथा एक बहिन ज्ञान देवी थी। स्वामी आत्मानन्द का क्रम पञ्चम और अन्तिम था। वे स्व ज्येष्ठ भ्राताओ से क्रमश: वयः मे बीस और पांच वर्ष न्यून थे। द्वितीया भगिनी का वयः तीन वर्ष अधिक था। चारो भाई बहनो को अपना छोटा भाई अति प्यारा था। माता धनदेवी का हृदय तो सभी के लिए एक सी दया दर्शाता था; पर उस समय छोटे पुत्र का पालन अन्य दुलारों की अपेक्षा विशेष सावधानी चाहता था, अतः बड़ो के सरक्षण में न्यूनता भले ही रह जाय, बालक आत्मानन्द का ध्यान वे विशेषतः रखती थी।

ब्राह्मण तथा पुरोहित होने के नाते श्री पण्डित दीनदयालु जी ने अपने सब बालको के जातकर्म आदि सस्कार कुल में प्रचलित प्रथा के अनुसार विधिवत् अति प्रसन्नता से किए थे। श्री आत्मानन्द सरस्वती का जब नाम करण संस्कार हुआ तब बन्धु बान्धव परिवार परिजनों ने शुभाशीष के साथ उन्हे अपने वरद हस्त से आप्यायित किया।

नामकरण के उपरान्त वे तत्कालीन निर्धारित 'मुख्त्यार' नाम से व्यवहृत होने लगे।

बालक मुख्त्यार का शैशव काल अति आकर्षक था—गोलमटोल रक्ताभ मुखमण्डल, मन्द-मन्द मुस्कान लिए प्रसन्न वदन, सुडौल शरीर, चलने के लिए मुट्ठियां बाधकर आगे पग रखने का उपक्रम आदि गुण और चेष्टाएं गृहागत ललनाओ के चित्तो को बरबस ही लुभा लेती थी। उनकी लुभावनी सुन्दर मूरत में वे किस कार्य से वहाँ आई थी, सब कुछ भूल जाती थी। इस प्रकार दिन व्यतीत होते गये और हमारे चरित्र-नायक बडे होते गये।

भौगोलिकस्थिति

कृष्णा नदी अन्छाड़ ग्राम के पूर्वीय भूतल चरण को प्रक्षालित करती हुई आगे बढ़ती है। उसमे बारह मास जल रहता है। ग्रीष्म ऋतु मे नदी का पाट लगभग पन्द्रह मीटर रह जाता हैं; किन्तु गहराई बहुत बढ जाती है। अतः पारावार के लिए लकड़ी का एक पुल बाध लिया जाता है, जो वर्षा काल में स्वयं बह जाता है। उस समय नौका ही आवागमन का एक मात्र साधन बनती है।

आर्य सस्कृति मे जल, शान्ति का प्रतीक माना गया है। अत तीज-त्योहारो एव उपवास, व्रत आदि के दिनो में अन्छाड़ ग्रामवासी उस कृष्णा नदी के पवित्र जल से ही अपना अभिषेक करते है। अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते एव पूजा-रत रहते है। ग्राम से पाच सहस्रमान* दूर एक पञ्चतीर्थी स्थान है। वहा पर पांच नदियां मिलती है; जिनके नाम कृष्णा, हिण्डन, वाण, काली और कागाडूवनी है। इन नदियो के मध्य भाग में चान्द्रायण वन स्थित है। 'वारणावत' नाम से महाभारत में जो वर्णन आता है, वह कृष्णा और हिण्डन के सङ्गम पर 'बरनावा' नाम से प्रसिद्ध है। वहां कतिपय शिलालेख भी है; जो अपने काल और महत्त्व का दिग्दर्शन कराते है। उस स्थान की शोभा-सुषमा देखते ही बनती है। वह देवस्थान माना जाता है, जो पर्यटन के लिए प्राय. लोगो के हृदयों में अपना विशेष स्थान रखता है। इन देवस्थानो के संस्कार बालकों के अन्त करण मे अङ्कित होजावे, इस दृष्टि से श्री पण्डित दीनदयालु जी किसी-न किसी बालक को, जो चलने और समझने मे समर्थ होता गया, अपने साथ ले जाया करते थे। वे मार्ग मे

*किलोमीटर

चलते-चलते मनोरञ्जक कहानिया भी उन्हे सुनाया करते थे। बालक मुख्त्यार को भी इस अवसर का लाभ उपलब्ध हुआ।

बालक ने जब सात वर्ष के वयः मे पदार्पण किया, तो पिता जी ने उन्हे अपने साथ बडौत भी ले जाना आरम्भ कर दिया, जो अञ्छाड से ११ सहस्रमान की दूरी पर है। श्री पण्डित दीनदयालु जी वहा यदा-कदा आवश्यक गृह-सामग्री क्रय करने जाया करते थे। वहाँ अच्छी मण्डी है। †सयान ‡स्थात्र है, जो देहली शाहदरे से सहारनपुर को जाने वाले लघु सयान पर सातवाँ स्थात्र है।

---

†रेल ‡स्टेशन

आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

शिक्षा प्रकाश

उन दिना आज कल की भाति शिक्षा पर वहुत वल नही था। अत: सात-आठ वर्ष के वय: तक बालक केवल खेलते कूदते ही फिरा करते थे। बालकों का जीवन नितान्त शान्त और सादा रहा करता था। वृद्ध महानुभाव भी इसी वृत्ति मे पगे हुए थे। ससार की वर्तमान चका चौंध से वे सर्वथा अछूते थे। सीधे सादे सरल प्रकृति के मानव थे। हिन्दुओ के तेतीस करोड देवता विदेशियो के लिए ये भारतवासी ही थे। उन दिनो ग्रामीण जन काम काज के योग्य ही थोड़ा-बहुत अध्ययन किया करते थे अथवा जीवन-निर्वाह के साधन जिनके अत्यन्त अल्प थे, प्राय: वे ही स्कूलो के चक्र लगाया करते थे। ब्राह्मण परिवारो के लिए तो अध्ययन अनिवार्य माना जाता था। बालक मुख्त्यार जब नवे वर्ष की अवस्था में चल रहे थे, तो उन्हे ग्राम की प्रारम्भिक पाठशाला मे प्रवेश दिला दिया गया। बूढपुर ग्राम के श्री पण्डित भगवाना जी पाठशाला के अध्यापक थे। पाठशाला का स्थान ग्राम की चौपाल था। शनै. शनै. अक्षराभ्यास से वे प्रतिभा के निखार मे आने आरम्भ हो गये। अध्यापक द्वारा दिए गये पाठ को वे झटिति कण्ठ गत कर लेते थे। इस कारण गुरु देव का शिष्य मे विशेष अनुराग हो गया। दो वर्ष मे दो श्रेणिया उन्हो ने उत्तम योग्यता से उत्तीर्ण की। प्रतिभा सम्पन्न पुत्र से माता-पिता भी प्रसन्न थे। पश्चात् श्री पण्डित भगवाना जी वहा से नसौली ग्राम मे चले गये और वही अध्यापकीय कर्म मे लग गए। पण्डित दीन-दयालु जी ने भी उनकी सेवा मे उपस्थित हो, मुख्त्यार को दो कक्षाए एक ही वर्ष मे पारित करा देने का निवेदन किया। भगवाना जी ने इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मुख्त्यार जी ने आयु के बारह वर्ष

व्यतीत होते-होते चतुर्थ श्रेणी पारित करली। नसौली ग्राम में चतुर्थ कक्षा तक ही पाठशाला थी।

पश्चात् श्री मुख्त्यार जी श्री पण्डित नवल दत्त जी के समीप जो उनके दूर के सम्बन्ध मे फूफा लगते थे, लाख ग्राम मे निवास करने लगे। पण्डित नवलदत्त जी का एक पुत्र था, जो बहुत नटखट था, उस पर उन्हे विश्वास न था। श्री पण्डित जी ने अपने सन्दूको की चाबी श्री मुख्त्यार जी को दी हुई थी। वह उन्हे बहुत तंग करता और चाबी मांगता रहता था; किन्तु श्री नवल जी की ओर से उसे ताली देने का प्रतिषेध था। श्री मुख्त्यार जी हृदय के पवित्र और आदर्श आदेश पालक थे। उन्हे यह झगडा न रुचा, अत' वर्ष-समाप्ति पर वे अपने फूफा और गुरु श्री नवल दत्त जी को मञ्जूषओ की ताली सभलवाकर घर चले आये। कुछ दिनों के पश्चात् श्री नवल जी गाड़ी लेकर अञ्छाड़ आए और श्री मुख्त्यार जी को साथ ले जाने लगे। रुचि न होने पर भी वे उनके साथ चल तो पडे; किन्तु साथ मे लाख ग्राम ले जाने के लिए लिया हुआ लोटा थाली स्वग्राम की चौपाल में चुपके से रख चले। जब गाड़ी के साथ- साथ बड़ौत तक पहुँच गए, तो घर लौट आने के लिए उन्होने श्री फूफा जी से आञ्ञा ले ली। घर लौटने का विशेष कारण उन्होंने चौपाल मे लोटाथाली छूट जाना वर्णित किया। श्री नवल जी ने कहा- "अच्छा शीघ्र जाकर पहले पात्र सभाल लो, किसी समय पुनः आकर मैं तुम्हे ले जाऊँगा।'

श्री मुख्त्यार जी को अपने अध्ययन में अवरोध हो जाना पसन्द था, किन्तु पारस्परिक वैमनस्य उन्हे न रुचता था। निकटवर्ती स्थानो में शिक्षा का और कही उचित प्रबन्ध भी न था। इस प्रकार अग्रिम शिक्षा-क्रम अवरुद्ध हो जाने पर वे ज्येष्ठ भ्राता श्री हरनारायण के साथ कृषि कर्म में सहयोग देने लगे। श्री हरनारायण जी अपने लघु भ्राता श्री मुख्त्यार से अति प्रेम दर्शाते थे। कनिष्ठ भ्राता के शिक्षा-क्रम का अवरोध उन्हे खटकता था, किन्तु कुछ कर भी न सकते थे।

एक दिन श्री मुख्त्यार जी घास की गठरी सिर पर रक्खे खेत से घर ला रहे थे। कि मार्ग मे खुल गई। उसे दुबारा बांधने के लिए घास को दबाते समय, जो घुटने का प्रबल धक्का दिया, तो एक बड़ा शूल पग में घुस गया। वह खजूर का काटा था, जो कही घास मे आ गया था। उससे बड़ा कष्ट रहा, वह ठीक होने मे एक मास ले गया।

सभी पारिवारिक जनो का व्यवहार श्री मुख्त्यार जी के प्रति अति प्रेम पूर्ण था। उन पर कार्य करने के लिए कोई बल न देता था। जितना

कुछ भी वे किया करते थे, उसमे उनकी स्वेच्छाचारिता ही थी; अत किसी कार्य का उत्तरदातृत्व भी उन पर न था। खेलने-कूदने, कोलाहल करने की प्रवृत्ति उनमे न थी। वे अपने इससे पूर्व वय मे भी शान्त स्वभाव और एकान्त प्रिय थे। वे अपनी विश्रान्ति (वैठक) मे वैठे रहते थे। उनकी प्रत्येक चेष्टा मे निरालापन था। सव भाई वहनो से उन केरग-रूप मे भी दिव्यता थी। सभी को वे प्रिय दीख पडते थे। माता जी उनके भोजन मे कुछ विशेष ध्यान रखती थी। भाई-वहिन भी उन्हे खिलाकर प्रसन्न होते थे।

श्री पण्डित दीनदयालु जी शिवोपासक थे और थे अतिश्रद्धावान्। शिवार्चन मे उन्होने कदाचित् प्रमादवश निर्धारित वेला का अतिक्रमण नही किया। ग्राम के शिवालय मे वे प्रतिवर्ष शिवरात्रि से कुछ दिन पूर्व शिव-कथा का सत्र भी लगाया करते थे। उन के परिवार मे प्राय. सभी जन अन्तिम दिन शिव-व्रत भी रक्खा करते थे। किन्तु इसके लिए किसी को वाधित नही किया जाता था। श्री मुख्यार जी ने शिव-महिम्न स्तोत्र के श्लोक शनै. शनै. कण्ठस्थ कर लिए थे। उनके स्वर मे पदलालित्य और माधुर्य विराजता था। उनके आयु का वह ऐसा काल अति वाहित हो रहा था, जो उन्हे अभी विद्याध्ययन की ही प्रेरणा दे रहा था, पाच छ वर्ष विद्या के अभाव मे उनके व्यर्थ चले गये। पण्डित दीनदयालु जी को पुत्र के अध्ययन की प्रभूत चिन्ता थी, अतः वे श्री पण्डित परमानन्द जी के समीप उनके ग्राम वामनौली गए जो अन्छाड़ से पाँच सहस्रमान दूरी पर है। उनसे विचार-विमर्श करके उन्होने पुत्र के अध्ययन की व्यवस्था उनकी शिष्यता मे कर दी। श्री पण्डित परमानन्द जी काशी के उद्भट विद्वान् थे। उन्होने श्री मुख्यार जी को सारस्वत व्याकरण का पाठ देना प्रारम्भ कर दिया। अव मुख्यार के केवल दो कर्म थे—शिव-स्नान करा देना और वामनौली जाकर सारस्वत का पाठ ले आना। शिव-पूजा मे उनकी अभिरुचि न थी। अत. उन्होने पिताजी से निवेदन किया—"पिताजी ? मैं शिव स्नान करा दिया करूगा और पूजा आप कर लिया कीजिये। पूजा करने मे मुझे गुरुदेव के चरणो मे पहुँचने मे विलम्व की सम्भावना है"। कुछ दिनो के पश्चात् उन्होने वामनौल ही रहना आरम्भ कर दिया। प्राप्त हुए सिद्धे को वे वही रोटियां पका लेते और खा लेते थे। यह क्रम उनका कुछ ही दिन चला। पुन प्रतिदिन घर आते-जाते रहे।

निर्धनता की चिन्ता परिवार की सभी व्यक्तियो मे व्याप्त थी।

ससार की परिपाटी यह है कि वह दान वहाँ देता है जहाँ उसे उसका यशोगान करने वाले चारण मिलते हैं। जहाँ आवश्यकता है, वहाँ के लिए उसके द्वार अवरुद्ध रहते हैं। ऐसे स्थल उसकी दृष्टि से सर्वथा ओझल बने रहते हैं। निर्धन पुरुष यदि ऋणी होकर निर्वाह करे, तो वह कभी ऋण-मुक्त नही हो पाता। जगत् में वडा घराना धन से मापा जाता है। धनाभाव मे कोई कार्य सिद्ध नही होता। श्री दीनदयालुजी के घर पर शीतकाल के दिन बड़ी कठिनता से कटते थे। ग्राम मे न वास करते हुए आपको अन्य साधन उपलब्ध न होता था। उनके लिए एक ज्योतिष ही ऐसा विषय था जिससे कालान्तर में कुछ सौख्य समृद्धि के दिन आने की सम्भावना थी। वे अल्प ज्योतिर्विन् थे, जो विना पैसे के तिथि और दिन वता सकते थे। वित्तोपार्जन के लिए तो ज्योतिष के उच्च ग्रन्थों का अध्ययन अपेक्षित है। उन्होने केवल होडा चक्र और शीघ्रबोध ही पढा था। पुत्र को उत्तम ज्योतिर्वित् बनाने के लिए उन्होने उसे अपनी उस विद्या का प्रदान करना आरम्भ कर दिया। ज्योतिष पटल की ओट मे उलटी सीधी बाते बना कर लोगो से धन ऐंठना पण्डित जी की प्रकृति से बाहर था; किन्तु उन्हे यह विश्वास अवश्य था कि यदि ज्योतिप मे कोई पारङ्गत हो जाये तो वह निर्वाह-योग्य पुष्कल धनराशि अर्जित कर सकता है। ये भाव पिता ने पुत्र के मानस पटल पर भी भलीभाति अङ्कित कर दिए थे।

अव श्री मुख्त्यार जी विद्याध्ययन की दृष्टि से कही दूर निकल जाना चाहते थे; किन्तु श्रद्धेया माता जी के जीवनकाल मे उन्हें यह कार्य उचित प्रतीत न होता था। यह उनकी प्रतिज्ञा थी कि माता जी के रहते वे दूर नही जाएँगे। कालान्तर में दैव ने ऐसा खेल खेला कि छोटी दीवाली के दिन पैंसठ वर्ष के आयु में वे परलोक सिधार गयी।

गृहपरित्याग

एक दिन श्री हरदेवा जी उन्हे खेत में पानी देने के लिए अपने साथ ले गए। कुएँ से चरस द्वारा पानी निकाल कर सिंचाई करनी थी। चरस के पकड़ने का काम हरदेवा जी ने स्वय लिया और लाव मे किल्ली लगाकर बैल हांकने का काम लघु भ्राता को दिया। एक बार किल्ली लगाने में उनसे कुछ भूल होगई, जिससे चरस के उल्टा कुएं मे जाने की आशङ्का बन गई। इस पर श्री हरदेवा जी ने उन्हे बहुत धमकाया तथा ताडना भी की। श्री मुख्त्यार उस समय समुद्र-समान गम्भीर बने रहे; परन्तु धमकाने के वे शब्द उनके हृदय में

तीरवत् चुभते रहे। उनसे गृह-त्याग के विचार-तरङ्ग उत्पन्न होने लगे, जो उनके मानसवर-सागर को ऊपर से नीचे तक उद्वेलित कर रहे थे। उनके हृदय मे तत्कालीन गृह-त्याग का कारण वैराग्य न था अपितु गार्हस्थ्य वातावरण से दूर रहकर अग्रिम शिक्षा के आरम्भ का एक उपक्रम था। यत विद्याध्ययन के सस्कार उनके हृदय मे बहुत गम्भीर थे, अत. इसके अतिरिक्त उनके मन का समाधान अन्यत्र न होता था। विचारो के इस सङ्घर्ष ने उन्हे शान्त न रहने दिया। विक्रम सवत् १९५६ का वह वर्ष अन्छाड़ वासियो को स्मरण बना रहा, जब वे प्रतिदिन के समान शिव-शंङ्कर को स्नान कराके घर से निकल पडे थे। उस दिन उनके पग श्री पण्डित परमानन्दजी की ओर नही बढ रहे थे, ज्योतिष् के आचार्य की अन्वेषणा कर रहे थे। उन्होने एक समय पूज्य पिताजी से श्रवण किया था कि श्रीनगर के ज्योतिपी इस विपय मे पारङ्गत होते हैं। उनके लिए भूत, वर्तमान और भविष्यत् के वृत्त बता देना कठिन नही है। उन्हे उससे प्रचुर धनोपलब्धि भी हो जाती है।

श्री मुख्त्यार जी को क्या पता था कि विश्व अति विशाल है, उसमे भारतवर्ष भी लघु प्रदेश नही है। वे तो ग्रामवासी एक भोले-भाले बालक थे, जो पच्चीस-तीस सहस्रमान से अधिक कभी बाहर नही गए थे। स्वोद्देश्य-पथ पर सतत चलते हुए उनका एक व्यक्ति से साक्षात् हुआ, जो उनके समक्ष से आ रही था। उन्होने उससे पूछा 'श्रीनगर कितनी दूर है ?' उसने उत्तर दिया—'यहाँ 'श्रीनगर' नाम का कोई ग्राम नही है। मैंने इस नाम का कोई ग्राम न अभी तक देखा है और न सुना है।' इस प्रश्नोत्तर मे दोनो एक दूसरे को पार कर गए। इस उत्तर ने मुख्त्यार को कुछ अनुत्साहित किया। वे थोडी दूर चलकर खडे हो गये और सोचने लगे—"अब किधर चला जाए ? विना जानकारी न जाने कहाँ पहुँचूँगा। नित्य प्रति की भाँति भोजन तो साथ मे बधा ही है, अत. भूख की तो कोई चिन्ता है नही। अच्छा ! और आगे बढा जाय. सम्भवत कोई दूसरा पुरुप ऐसा मिल जाय, जो श्रीनगर के सम्बन्ध मे कुछ प्रकाश डाल सके। यह सोचकर वे आगे बढ गए। मार्ग छोटी पगडण्डी का था। दूर, अपने-अपने खेतो पर कृपकजन कृपि कार्य मे व्यस्त थे। भय तो वहाँ किसी प्रकार का न था; परन्तु उस पगडण्डी पर आता जाता कोई पुरुप उन्हें दृष्टिगत न हो रहा था, जिससे अपना समाधान पाते। वे अपनी ही विचार-धारा को साथ लिए पांच सहस्रमान आगे निकल गए। ऋतु गरम था,

आकाश विहारी प्रचण्ड मार्तण्ड अपने प्रतप्त तनु की प्रखर-किरणो से उनके शरीर को भेद रहा था। उसकी वह भेदन-क्रिया उन्हे उनके मार्ग से विरत करने मे असमर्था थी। हाथ से कते-बुने मोटे खद्दर का पहना हुआ कुर्ता शरीर से निकलते हुए प्रस्वेद विन्दुओ को साथ-साथ पी रहा था, मन्थर गति से वहता हुआ पवन उष्णता के साथ मिलकर कुर्ते की उस आर्द्रता को सुखा रहा था। मुख मण्डल पर प्रस्वेद बिन्दु एकत्र होकर सूक्ष्म और लम्बायमान रेखा बनाते हुए नीचे ढलक जाते थे। कभी-कभी वे दृष्टि को भी तिरोहित कर देते थे। मध्याह्न का समय निकट था। कृषक-जन कृषि-कर्म से निवृत्त होकर हाथ मे और कन्धो पर कस्सी फावडे लिए लम्बे-लम्बे डिग भरते हुए घर का मार्ग मापने लगे। श्री मुख्त्यार ने उनमे से कुछ को सीधे जाते और कुछ को अपनी ओर आते देखा। निकटस्थ होने पर श्रीनगर के प्रश्न का उत्तर उन्होने भी नकारात्मक ही दिया। वे अपने घर पहुँचने की धुन में थे, अतः शीघ्र आगे निकल गए और श्री मुख्त्यार थोड़ी दूर और चलकर एक सघन वृक्ष की शीतल छाया मे विश्राम करने लगे। वही एक ओर छोटा-सा कूप था, जिस पर रस्सी और डोल पड़ा था। हस्त-पाद प्रक्षालन के पश्चात् उन्होने पाथेय लिया और पानी पिया। यत्किञ्चित् पुन विश्राम करने लगे थे कि उन्हे निद्रा ने आ दबाया। आगे चलने की लगन थी, अतः शीघ्र उठकर धूप की अवहेलना करते हुए शान्तिप्रद उस शीतल छाया को छोड चले। उनके पग मे उपानत् न थे, अत उष्णता असह्य हो जाने पर वे पगडण्डी के दोनो किनारो पर उद्भूत घास का आश्रय लेते थे। जिस प्रचण्ड धूप मे लोग ग्राम्य-विश्रान्तियो मे विश्राम ले रहे थे, उसकी अवहेलना करता हुआ श्रीनगर अन्वेषण का वह अथक पथिक आगे ही आगे बढ़ता जा रहा था। जब वे ग्राम ग्रामान्तर के बाहर से निकलते हुए बहुत दूर पहुँच गए और उष्णता की वृष्टि से दिवाकर के परिश्रान्त हो जाने पर गृह द्वारो से बाहर आकर जब कृषक पुनः खेतो मे दृष्टिगोचर होने लगे, तो उन्होंने समीप आए एक पुरुष से वही अपना उद्दिष्ट मार्ग पूछा, किन्तु वहाँ भी नकारात्मक उत्तर ही पा सके। आगे चलकर कतिपय दयार्द्र जनो ने उनसे स्वय ही उनका परिचय प्राप्त करने का यत्न किया; किन्तु उनमे भी किसी को श्रीनगर का अभिज्ञान न था। अन्ततः हताश होकर वे अपने ननिहाल मे पहुँच गए, जो पलडा-पलडी के समीप झूण्डपुर में है। वहाँ आपने श्रीनगर सम्बन्धी कोई चर्चा न चलाई। दो दिन निवास कर, आप 'कुटबा' ग्राम पहुँच गए, जहाँ आपकी दोनो बहनें

परिणीता (विवाहिता) थी, कुटवा ग्राम मे आपका आगमन दो बार पहले भी हो चुका था। किन्तु इस बार यहाँ पहुँचने का मार्ग कई सहस्रमान का चक्कर लेकर था। बहनो से साक्षात् होने पर पारस्परिक प्रेम उमड़ आया, जो शीघ्र ही अविरल अश्रुधारा मे परिणत हो गया। भाई को एकाकी आया देख, उन्होने आश्चर्य के साथ गृह-सम्बन्धी कुशल-क्षेम पूछे। पश्चात् उन्होने अपना वह ही राग अलापा और बलपूर्वक कहा—"मुझे श्रीनगर का मार्ग बता दो। मैं वहाँ जाकर ज्योतिष पढ़ूंगा। मैं घर से बिना पूछे चला आया हूँ। दो दिन नानाजी के यहाँ रहा, अब घर जाने की इच्छा नही है।" प्रिय लघु भ्राता के इन शब्दो को सुनकर दोनो बहने घबरा गई और उन्होने खेद प्रकट करते हुए कहा—"श्रीनगर तो हम नही जानती, बिना पूछे चले आने से घर पर सब दुखी होगे। कितने दिन वहाँ से चले होगए ?" "तीन" मुख्त्यार ने उत्तर मे कहा।

बन्धु-बान्धव-समेत श्री पण्डित दीनदयालुजी मुख्त्यार के बामनौली से न लौट आने पर चिन्ताग्रस्त थे। वे थोडी रात्रि व्यतीत होने पर ही घर से उन्हे खोजने निकल पडे थे। जब वे श्रीपण्डित परमानन्द जी के घर पहुँचे, तो ज्ञात हुआ कि मुख्त्यार आज यहाँ नही आया है। वे रात्री वही बिताकर बहुत प्रात घर लौट आए। सम्भव है मुख्त्यार घर पहुँच गया हो; किन्तु जब घर पर उन्हे न देखा, तो पिता जी के साथ सभी पारिवारिक सदस्य चिन्ता-कुल हो उठे। समस्त ग्राम मे समाचार विस्तार पा गया कि मुख्त्यार घर से भाग गया है। अन्छाड़ ग्राम के सहृदय बन्धुओ को इधर-उधर उन्हे खोजने भेजा गया। लोगो ने ईशेपुर के टीले आदि भी देख डाले, पर वहाँ हो तो मिले। अत सब निराश होकर घर आगए। फिर पण्डित दीनदयालुजी अपने ससुराल गए। वहाँ से पता लगा कर, वे सीधे कुटवा पहुँचे। वहाँ श्री मुख्त्यार जी विराजमान थे ही। पुत्रियो ने पिताजी को पृथक लेजाकर कहा—'पिताजी! मुख्त्यारजी को भर्त्सना मत करना, यह कुछ और ही धुन मे है, यह ज्योतिष पढने के लिए श्रीनगर की खोज कर रहा है। श्रीनगर न मिलने से अब यह निराश हो गया है। घर जाने की इसकी इच्छा नही है। अत. इसे यहाँ ही रहने दीजिए। आगे जैसा होगा देख लेंगे।'

श्री मुख्त्यार के एक बहनोई ने, जिस दिन वे कुटवा पहुँचे थे, बहुत प्रात. उठकर अन्छाड की ओर, सूचना देने के लिए, प्रस्थान

कर दिया था। २५ सहस्रमान (१५ मील) लम्बे इस मार्ग को पार करके वे मध्याह्न से पूर्व ही वहाँ पहुँच गए थे।

अब श्री मुख्त्यारजी कुटवा में निवास कर, अपने भागिनेय श्री दाताराम और श्री रघुवीरशरण के साथ रहकर, पारस्परिक मेल-मिलाप से सुख शान्ति के दिन बिताते रहे।

श्री मुख्त्यार की इस गृह-पलायन घटना ने समस्त सम्बन्धी एवं परिवार परिजनो को सचेत कर दिया, अतः उनका यह भूरि प्रयास रहा कि किसी के मुख से कोई ऐसा शब्द न निकले, जो मुख्त्यार को चोट पहुँचाने वाला हो।

मानव-देह भले ही छोटा बडा हो, आत्मा तो उन देहो मे समान ही है, जो पृथक-पृथक कृतकर्म के अनुसार मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार उपकरण लिए हुए है। देह की छुटाई और बड़ाई मानव के भावो को मापने का ठोक मापक यन्त्र नही है। विशिष्ट चित्त आदि उपकरणो से सयुक्त आत्मा लघु देहो में भी विकास के साधन उपलब्ध न होने पर औषध पुटपाक की भाँति भीतर ही भीतर सन्तप्त होता रहता है। उन्नति के उपाय की झलक आने पर उसका यह सन्ताप असह्य होकर फूट निकलता है। भले ही श्री मुख्त्यार जी की अवस्था २० वर्ष थी, परन्तु उनके हृदय मे विद्या-प्राप्ति के वे अङ्कुर-विद्यमान थे, जो किसी समय प्रस्फुटित होकर उनसे कठोर से कठोर तप कराने के लिए समुद्यत थे। आवश्यकता होने पर वे उनसे पर्वतमालाएँ लघा सकते थे। शरीर-शोषण करा सकते थे।

मुख्त्यार के इस गृह-त्याग की घटना ने उस ब्राह्मण परिवार को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वे उसके हितार्थ कोई-न कोई कार्य शोघ्र खोजे, जिससे उसकी चित्त-वृत्ति तत्कार्य मे रत रह सके।

अध्यापकीय एवं उसका परित्याग

श्री मुख्त्यारजी माता-पिता के होनहार पुत्र थे। वे माता-पिता के प्रति स्वकर्तव्य को समझते थे। जब उनके विद्या-प्राप्ति विषयक समस्त प्रयास विफल हो गए, तब सर्वथा हताश होकर वे पितृ ऋण से उन्मुक्त होने के लिए विभिन्न उपाय सोचने लगे। बिना काम के उन्हे समय बिताना अच्छा न प्रतीत होता था, उन्होने उसी कुटवा ग्राम मे अध्यापक कर्म के लिए दौड धूप आरम्भ करदी। बहनोइयो ने भी उनका मार्ग प्रदर्शन किया। भरपूर किया गया प्रयास समय आने पर

अपना परिणाम दिखाता है। अन्तत उन्हे मुजफ्फरनगर के उसी कुटवा ग्राम मे चौथी कक्षा के अध्यापन का कार्य उपलव्ध होगया। उन दिनो ब्राह्मण ही अध्यापन कार्य पर नियुक्त किए जाते थे। श्री मुख्त्यारजी दत्त-चित्त होकर वहाँ पढाने लगे। साढ़े वीस वर्ष की अवस्था और समुचित उच्चता होने के कारण वे पाठशाला मे वालक से प्रतीत होते थे। गुणो की दृष्टि से देखा जाय, तो गुण उनमे एक विशिष्ट अध्यापक के थे। अध्यापन-कार्य में वच्चो के प्रति स्नेह-प्रेम और दया उनके गुणो को अत्यधिक निखार रहे थे। निर्धन और धनी सभी वालको के साथ समानता का वर्ताव उनके उच्च आत्मा का द्योतक था। विद्यार्थियो के अक्षम्य अपराध करने पर भी उन्हे ताडना देने के स्थान पर दोष-दर्शन पूर्वक समझाने मे उनका विशेष प्रयास रहता था। उनके अध्यापकत्व का कार्य-काल लगभग छह महीने वीता होगा कि पाठशाला के एक निरीक्षक निरीक्षणार्थ उनकी पाठशाला मे आए। विद्यार्थियो का निरीक्षण करने और पञ्जिका मे प्रशस्त सम्मति लिखने के उपरान्त अध्यापक पद पर प्रतिष्ठित इस समुचित उच्चता वाली अल्पवयाः व्यक्ति का परिचय प्राप्त करने के हेतु वे वोले, "आपने न्यूनवय मे ही यह अध्यापन कार्य क्यो स्वीकार किया है?" श्री मुख्त्यारजी ने प्रतिवचन मे कहा—"श्रीमन्! अभिलाष तो अभी भी अध्ययन चालू रखने का है, किन्तु घर की अर्थ-स्थिति अग्रिम अध्ययन के व्ययभार को उठाने मे अशक्त है, अत विवश होकर यह कार्य अङ्गीकार किया है। निरीक्षक महोदय ने फिर कहा—"मैं ब्राह्मण कुलजन्मा हूँ-इस नाते भी और आपसे वडे होने के नाते भी मेरा यह कर्तव्य है कि आपको सत्परामर्श दूं, जिससे आपके जीवन का उत्थान हो और देश का कल्याण हो।" श्री मुख्त्यारजी ने तथास्तु कह कर उन्हे आगे वोलने के लिए उत्साहित किया। वे युवक अध्यापक को सम्वोधित करते हुए पुन. वोले—"देखिए, आप ब्राह्मण है। उच्च-कुलोत्पन्न हैं। प्रतिभावान् हैं। ब्राह्मण स्वभाव-सम्पन्न हैं और वयस्क हैं, इस प्रथमवयः मे अभी आपको अधिक से अधिक अध्ययन करना अपेक्षित है। वह भी आपके लिए ऐसी विद्या अनिवार्य है, जो ब्राह्मणो को जगद्गुरु वनाती है। हमारे देश के प्राचीन ब्राह्मण विद्यावल से ही मानव जाति मे शिरोमणि कहलाए हैं। उन्ही के प्रताप से देश की सभ्यता और सस्कृति अद्यपर्यन्त सुरक्षित है। उस विकसित वाटिका को सीचते रहना ब्राह्मण मात्र का परम कर्त्तव्य है, उससे अन्यत्र परिश्रम करना ब्राह्मण की दृष्टि मे हेय है। ऐसी विश्वहितैषिणी

परमोत्कृष्ट विद्या हमारे देश मे अभी भी बिना व्यय के चली आरही है, अतः यहाँ से त्याग-पत्र देकर उसी की आराधना करो; वह ही परम कल्याणकारिणी है। उससे यह और परलोक दोनो सुधर जाते है" इन शब्दो के उत्तर मे श्री मुख्त्यारजी ने निवेदन किया—"मैं आपका अतिकृतज्ञ होऊँगा, यदि आप मुझे इस विद्या का निर्देश करेगे और मैं उसे अवश्य पढ गा" निरीक्षक महोदय ने पुनः कहना आरम्भ किया, "वह सस्कृत विद्या है, पण्डित परमानन्दजी के निकट उसे पढने का पूर्ण प्रबन्ध हो सकता है। मैं आपके पिताजी को जानता हूँ। आपके ग्राम अञ्छाड से परिचित हूँ। आपके ग्राम के समीप ही बामनौली ग्राम के श्रीपण्डितजी निवासी हैं और वे आजकल मुजफ्फर-नगर में सेठो की एक पाठशाला में अध्यापन कार्य कर रहे है। वे धुरन्धर विद्वान् है। उनका कुल, कुल-परम्परा से विद्यानिधि रहा है, उनके प्रपितामह पण्डित मोतीरामजी राज्यज्योतिर्वित् थे। यवन राज्य में उनको महती ख्याति प्राप्त थी। पितामह पण्डित विहारीलालजी साधारण विद्वान् थे, किन्तु पिता गङ्गासहायजी और चाचा मोहनलालजी प्रकाण्ड पण्डित थे। मै पण्डित परमानन्दजी के नाम हस्तक पत्र लिख देता हूँ। आप उनके समीप चले जाइए। आपके शिक्षण मे वे पूर्ण सहायक होगे।" श्रीमुख्त्यारजी ने कहा—"ठीक है, मैं उनकी शिष्यता मे पहले भी सारस्वत का अध्ययन करता रहा हूँ। इस समय पुन. आपके इस सत्परामर्श का मैं अति सम्मान करता हूँ और इसके लिए अनेकशः साधुवाद भी श्री सेवा में प्रस्तुत करता हूँ।" इस गम्भीर वार्तालाप के पश्चात् निरीक्षक महाशय ने श्री पण्डित परमान्दजी के नाम एक पत्र लिखकर श्री मुख्त्यारजी को दे दिया और पाठशाला से वहिर्गमन करने के लिए समुद्यत हो गए। श्री मुख्त्यारजी ने भी कुछ दूर तक उनका अनुगमन करते हुए भारतीय शिष्ट परम्परा का पालन किया।

उक्त सन्देश देने के लिए श्री मुख्त्यार जी स्वयं घर नही आए। उन्होने अपने छोटे बहनोई श्री शङ्कर को इस बात के लिए समुद्यत किया और कहा—"श्री पितृचरणों मे उपस्थित होकर निरीक्षक महोदय से सम्बन्धित वृत्त को निवेदन करते हुए अग्रिम अध्ययन को चालू करने के निमित्त पाठशाला से त्याग-पत्र देने की अनुमति मागना।" श्री शङ्कर ने ससुर के समीप पहुँच कर उनसे जब यह वृत्तान्त निवेदन किया, तो उन्होने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। यद्यपि पुत्र के अध्यापन कार्य से प्राप्त रुपयो का पिता को पर्याप्त आश्रय था; किन्तु उन्होने इस

क्षति की अवहेलना करते हुए पुत्र को आगे पढाना ही उचित समझा उन्होने इतना अवश्य सङ्केत कर दिया कि श्री पण्डित परमानन्द जी से अब वह श्रीमद्भागवत का पाठ आरम्भ करे। वह कथा-प्रसङ्ग मे ठीक रहता है। श्रीमुख्त्यार जी यह नही जानते थे कि क्या पढ़ना चाहिए और क्या नही ? वे तो केवल इतना ही समझते थे कि ब्राह्मणो की विद्या सस्कृत है। उसी से ब्राह्मण स्वजीविका भी चलाते है। इसकी पुष्टि के लिए वे अनेक बार श्रीमद्भागवत की कथा भी यत्र-तत्र श्रवण कर चुके थे। वहाँ उपस्थित श्रोतृवर्ग का समूह भी देख चुके थे। कथा-प्रसङ्ग मे भगवान् को समर्पित पुष्कल नैवेद्य भी उनकी दृष्टि मे था। श्री पिताजी की वार्ता उनके अन्त स्थित हो गयी। और उन्होने श्रीमद्भागवत के ही अध्ययन की धारणा पुष्ट करली।

श्री मुख्त्यार जी ने पाठशाला से मुक्त होने के लिए त्याग पत्र लिख दिया। त्याग-पत्र की स्वीकृति और नूतन अध्यापक की नियुक्ति मे लगभग दो मास बीत गए। पाठशाला का कार्य आगत अध्यापक महोदय को सभलवा कर स्ववेतन का लेखा भी सम्पुष्ट करा दिया।

मुजफ्फरनगर में

श्री मुख्त्यार अपने बडे बहनोई श्री भगवाना के साथ पण्डित वर्य श्री परमानन्दजी के पाद-पद्मो मे अध्ययनार्थ जा उपस्थित हुए। पण्डित राज ने मुख्त्यार को चार-पाँच वर्ष पश्चात् आया देख कर कहा—"कहो मुख्त्यार ! इतने दिन कहाँ रहे ? सारस्वत छोडकर भाग गए थे। बहुत दिनो मे दृष्टिगत हुए हो, कुशल तो है?" श्री मुख्त्यारजी ने उत्तर दिया-"आपकी कृपा है गुरुदेव ! घर पर ज्योतिष पढता रहा था।"

"और अब क्या पढोगे ?"<br>"श्रीमद् भागवत पढूँगा।"<br>"पढोगे या भाग जाओगे ?"

"पढने-का तो उत्कट अभिलाष है, परन्तु आप की दयादृष्टि चाहिए। पढने मे पूर्ण प्रयास करूँगा गुरुदेव, फिर कह नही सकता, पढ जाऊगा वा नही।"

पश्चात् श्री मुख्त्यारजी ने श्री निरीक्षक महोदय का लिखित पत्र पण्डित प्रवर के अर्पण किया। श्री पण्डित परमानन्दजी ने उसे बाचा और पूछा—"क्या व्याकरण पढा है ?"

"अभी तो नहीं पढा।"

"विना व्याकरण पढ़े भागवत कैसे पढोगे?"

"अच्छा तो पहले व्याकरण ही पढ़ा दीजिए। फिर भागवत पढ़ूंगा?"

श्री पण्डितराज ने शिष्य को लघु कौमुदी और संस्कृत भाषा का पाठ देना आरम्भ कर दिया और कुछ घरों से उन के आटे दाल आदि का प्रबन्ध भी करा दिया। मुख्त्यार भोजन पकाना तो जानते ही थे। अतः घर से बहुत दूर चले जाने पर भी उन्हे कोई विशेष कठिनाई अनुभव न हुई। तथा थोड़ा-बहुत कष्ट विद्योपलब्धि के उत्कट अभिलाष में तिरोहित हो चला। वहाँ कौमुदी में उनके कतिपय सहाध्यायी और भी थे। उन सभी में मुख्त्यार विलक्षण प्रतिभाशाली थे, वे दिए गये पाठ को दो-चार आवृत्ति मे ही स्मरण कर लेते थे। यह ही कारण था कि वे श्री गुरुदेव के प्रिय-भाजन बन गए थे। श्री मुख्त्यार अपने गुरुप्रवर का बहुत ध्यान रखते और थोड़ा सङ्केत पाते ही कैसा भी कार्य हो, तुरन्त कर देते थे। वे यह जानते थे कि गुरु-शुश्रूषा और आदेश-पालन से हृदय शुद्ध रहता है, उस में गुरुगत विद्या निर्मल दर्पण पर पड़े प्रकाश की न्याई प्रविष्ट हो जाती है। गुरु-सेवा करते हुए इस प्रकार गुरु का अन्त.-प्रसाद वे प्रतिदिन प्राप्त कर लेते थे। श्री पण्डित परमानन्द जी का कथन था "वे मेरे प्रधान शिष्यो मे से थे। वे बडे सौम्य सुशील और योग्य थे। किसी के साथ उनका किसी प्रकार का द्वेष न था। वे सर्वथा आज्ञा पालक रहे। व्यवहार में उन्होंने किसी प्रकार की कमी न आने दी। मै उन से हार्दिक प्रेम करता था। मैं सर्वथा उन की उन्नति के लिए अभिलषित था। सच तो यह है कि "सर्वतो जयमन्विच्छेत् शिष्यादिच्छेत् पराभवम्' को मैं चरितार्थ करने में लगा।"*

लघुकौमुदी के पश्चात् मध्यकौमुदी का पाठ आरम्भ कर दिया गया। इन दिनों श्री मुख्त्यार जी संस्कृत-सम्भाषण में विशेष रुचि प्रदर्शित करने लगे । श्री अनुभवानन्द जी 'शान्त' वहां प्रथम से ही

---

*सन् १९४६ में गुरुकुल रावल से आत्मभिक्षु ने श्री पण्डित परमानन्द जी से स्वामी आत्मानन्द जी के सम्बन्ध मे पत्र व्यवहार किया था, तो उन्होने उपर्युक्त शब्द लिख कर भेजे थे, उनदिनों स्वामी जी की जीवन घटनाएँ चुपचाप एकत्रित की जा रही थीं।

सिद्धान्त कौमुदी पढा करते थे। उन्होंने श्री मुख्त्यार का रहन-सहन उठना-बैठना-कर्तव्य-पालन एवं व्यवहार बडे ध्यान से देखा।

उन्हे सब प्रकार से योग्य श्रद्धावान् तथा प्रतिभावान् समझ कर उन्होंने उन्हें अपने सान्निध्य में ले लिया और स्वयं ही उनकी मध्यकौमुदी का पाठ विचरवाना आरम्भ कर दिया। श्री मुख्त्यार की अध्ययन मे विशेष रुचि देख, श्री शान्तजी अति आह्लादित होते थे। वे उनका सव प्रकार से लघुभ्राता की न्याई ध्यान रखते थे। इस प्रकार स्नेहलता शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भांति प्रतिदिन बढती जा रही थी। श्री स्वामी अनुभवानन्दजी 'शान्त' आर्य समाज मन्दिर में रहा करते थे। इससे पण्डित परमानन्द जी की अति उदारवृत्ति और हृदयविशालता का परिचय मिलता है कि वे सनातन और आर्य बालको को समान रूप से भारतीय संस्कृति के भावी सरक्षक समझते थे। सचमुच आदर्श विद्वान् विद्या के अन्तस्थल में पहुँच कर समदृष्टि होजाता है।

विद्याव्यसन और अतिसार रोग

श्री मुख्त्यारजी विद्या के इतने व्यसनी थे कि वे अपने शरीर की सुध-बुध भी भूल जाते थे। इतना अधिक परिश्रम शरीर के स्वास्थ्य को झकझोर डालता है प्रकृति वहाँ किसी को क्षमा नही करती। विद्वान् हो वा अविद्वान्, बाल हो वा वृद्ध, युवा हो वा युवती, जो उस के प्रतिकूल चलेगा, वह उस का उत्तर अवश्य देती है। विद्या मे प्रभूत परिश्रम से श्री मुख्त्यार के शरीर मे अपच के लक्षण दृष्टिगत होने लगे और कुछ दिनो के पश्चात् वे रक्तातिसार मे परिवर्तित हो गऐ। एक दिन में पचास-पचास वार जाना पडता था। यह अतिसार का उग्ररूप था। इस विकराल रूप ने मुख्त्यार के काय को क्षीणतम अवस्था मे पहुँचा दिया। शरीर का लावण्य तिरोहित हो चला। चक्षुर्गोलक अन्तर्गत हो गए। ज्योतिः मन्द पडने लगा मुख म्लान हो गया। हाथ-पैर शिथिलता दर्शाने लगे। तन-रक्तिमा पीतिमा मे परिवर्तित होगया। नखो की श्वेतता रक्त की न्यूनता झलकाने लगी। श्री मुख्त्यार मानव की आकृति में तो थे, परन्तु शरीर में अस्थि-पञ्जर ही शेष था। उनका बाईस वर्ष का यौवन छह मास के भीतर ही वृद्धत्व मे परिणत हो गया। औषधोपचार से भी कोई लाभ न पहुँचा। जीवन की आशाएं धूमिल पड़ गई। अब केवल प्रभु की शरण के अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय

न था। अशरण के शरण वे ही हैं। श्री 'शान्त' जी ने श्री मुख्त्यार जी से अपने स्थान पर चलने का अनुरोध किया और वे अति सावधानी से नगर से बाहर आर्य समाज मन्दिर मे उन्हे ले गए। श्री शान्त जी पंजाबी थे। वे बडे उदारचेता थे और थे विशाल हृदय। उनसे कोई उर्दू का विद्वान् यदि पूछता—"स्वामी जी, आपका दौलतखाना कहाँ है, तो वे अपना बटवा दिखा देते। फिर वह सभल कर कहता–'नही, मेरा आशय है—आपकी जन्म भूमि ? तो स्वामी जी का उत्तर होता—'माता का पेट।'

श्री 'शान्त' जी ने आर्य समाज मन्दिर में पजाबी ढग की बडी और मोटी रोटियाँ मक्का की बनाईं। उन्हे भली प्रकार सेका। पश्चात् श्री मुख्त्यारजी से भोजन पाने के लिए कहा। यह सुनकर वे झिझके। वे अब तक बडे सयम से चले आ रहे थे। सोचने लगे—पेट में डाल लेने पर ये रोटियाँ न जाने क्या दुष्प्रभाव दिखाएँ। संभाला हुआ सयम भी व्यर्थ जावे, अत उन्होने उन रोटियो का आहार निषेध कर दिया। किन्तु श्री 'शान्त जी' ने उनसे पुन अनुरोध किया, मानो यह ही उनकी सर्वोत्तम चिकित्सा है। इस बार श्रीमुख्त्यारजी अस्वीकार न कर सके और अपने सयम-शिखर से नीचे उतर आये। अन्तरात्मा से प्रभु का स्मरण करते हुए उन्होने तब अतिशय खाया, बहुत स्वाद आया और अत्यन्त तृप्ति हुई। रोग के छह मासो मे वह प्रथम दिन था, जिस दिन श्रीमुख्त्यारजी ने भर पेट भोजन किया। वह रोटी नही थी, चमत्कार था जिसने दूसरे ही दिन पचास अतिसार की संख्या को चार-पाँच पर ला दिया। उसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि उन्हे अन्तर्हित ईश्वर की विचित्र चिकित्सा पर दृढ विश्वास हो गया। रोग ने सात दिन के अवधि मे ही अपना विस्तर बोरिया उस शरीर से समेट लिया। तन अभी कृश था, जो मन्द गति से प्रगति पर था। शरीर मे शक्ति का सञ्चार अनुभव हुआ और अध्ययन प्रारम्भ करने की आशाए बधने लगी। कलेवर, काल-कवलित होने से बच गया। दो मास मे शरीर पूर्ववत् हृष्ट-पुष्ट हो गया। मुजफ्फरनगर मे आने के दो वर्ष पश्चात् श्री मुख्त्यारजी सात दिन के अवकाश पर अपने घर अच्छाड़ गए। श्री पण्डित परमानन्द जी ने उन्हे वामनौली पहुँचाने के लिये एक श्रीमान् ढक्कन वाला हरिद्वारी लोटा दिया। अवकाश समाप्ति पर, वे पुनः गुरुचरण-शरण मे मुज़फ्फरनगर आ विराजे। श्री मुख्त्यार ने मध्यकौमुदी में योग्यता उत्तम रूप से सम्पादित की

तत्पश्चात् सिद्धान्तकौमुदी का पाठ 'प्रारम्भ कर दिया। संस्कृत साहित्य के भी अनेक ग्रन्थ वे पढ चुके थे। सम्भाषण में उनकी योग्यता पर्याप्त हो चुकी थी। सिद्धान्तकौमुदी को वे कारकान्त ही पकड़ पाये थे कि किसी कारण गुरुराज कही अन्यत्र चले गए। श्री मुख्त्यार जी को पाठावरोध का अतिखेद हुआ। उनके सात-आठ मास रक्तातिसार राहु ने ग्रस लिये थे और अब शेष दिन गुरु-विरह ने जकड़ लिये। गुरुराज का वह वियोग, अध्ययन के प्रतिवन्ध में शिष्यराज से न सहा गया और चित्त उचाट हो चला। वहा से कही अन्यत्र चले जाने की भावनाएं चित्त में स्थान पाने लगीं।

मेरठ मे सहपाठियो के पारस्परिक स्थान-परिवर्तन सम्वन्धी वार्ता सङ्घर्ष मे श्री पण्डित कन्हैयालाल जी की चर्चा चल पडी कि कन्हैयालाल जी श्री गुरुदेव जी के गुरु है, वे मेरठ मे विराजते है। उनकी शिक्षा-दीक्षा काशी मे हुई थी, जो सस्कृत विद्या का प्रमुख केन्द्र है। व्याकरण उनकी रसना पर नृत्य करता है। वे साहित्य के अच्छे रसिक है। अन्य विपयो मे भी काशी के पण्डित विचक्षण होते है। इस अश्रुत पूर्व शुभ सवाद को सुनकर श्री मुख्त्यार जी मेरठ चले गये और विल्वेश्वर मन्दिर मे पहुँच कर श्री पण्डित कन्हैयालाल जी को चरण स्पर्श प्रणाम किया। पण्डितराज अध्यापन-कार्य में व्यस्त थे। अभिवादन के अनन्तर श्री मुख्त्यार जी सकुचाते हुए अध्येतृवर्ग के पीछे जा बैठे। अध्यापन से अवकाश मिलने पर विप्रवर ने पूछा—"किसलिए आगमन हुआ है?" श्री मुख्त्यार ने उत्तर मे निवेदन किया—"कारकान्त सिद्धान्त कौमुदी का पाठ मुजफ्फरनगर मे गुरुदेव श्री पण्डित परमानन्द जी से पढा है, अब वे कही चले गये है, अतः आपकी शरण ली है। इसके आगे पाठारम्भ की अनुमति दीजिए।"

श्री मुख्त्यार का गौर वर्ण सुघटित शरीर, सौम्य आकृति और अभिवादन की कुशल शैली को देखकर पण्डित मिश्र ने उनकी कुलीनता का अनुमान लगा लिया और कहा, "ब्राह्मण कुमारो के लिये यहा के कपाट सदा खुले है, जब चाहो आ सकते हो। श्री मुख्त्यार जी अति आश्वस्त हुए, पाठशाला समाप्ति तक वही बैठे रहे। दूसरे दिन जब वे पाठशाला पहुँचे तो पूछने पर उन्होंने अपना नाम मुख्त्यार बताया। पण्डित कन्हैयालाल जी को वह नाम

सुसंस्कृत प्रतीत नहीं हुआ, अतः उन्होने उस नाम के स्थान पर 'मुक्तिराम' यह नाम रख दिया, जिसका अर्थ है—'मुक्ति के लिये यत्न करने वाला।'

गुरुदेव श्री पण्डित कन्हैयालाल जी के समीप पाठ लेते-लेते श्री मुक्तिराम जी का परिचय एक सहपाठी श्री सूर्यभानु जी से हुआ। उन्होंने बताया* "श्री पण्डित कन्हैयालाल जी मेरठ मण्डलान्तंगत ग्राम खिवाई (हरा) के निवासी हैं। बनारस में शिक्षोपलब्धि के पश्चात् वे अध्यापन का कार्य भी वहां पर्याप्त समय तक करते रहे है। इनकी ख्याति को सुनकर, रीवाँ राज्यान्तर्गत नई गढी के महाराज ने अपने उपराज्य की राजकीय पाठशाला में इन्हें अध्यापक रख लिया था और वे पांच सौ रुपये प्रतिमास श्री चरणों मे समर्पित करते थे। थोड़े ही समय के पश्चात् इनके मन को जन्मभूमि की सेवा के कर्त्तव्य ने झकझोर डाला। ये परम निर्भीक और सर्वथा निर्लोभी थे। शीघ्र ही निज भावना को कार्य रूप में परिणत करने के लिए उस राजकीय पाठशाला से आपने त्यागपत्र दे दिया और यहां बिल्वेश्वर मन्दिर में चले आए।

निवास-प्रबन्ध

श्री मुक्तिराम जी ने निवास का प्रबन्ध मेरठ के डालम पाड़ा मुहल्ले मे किया था। गोधू भाट की कुइया के सहारे से होती हुई एक छोटी गली जहाँ समाप्त होती है, वहाँ बाये हाथ एक बड़ा मकान था, जिसमे वहुत से किरायेदार रहते थे। प्राध्यापक श्री शिवानन्द जी के पिता श्री मुरारीलाल जी ने भी उसी मे किराये पर मकान लिया हुआ था उन्होने श्री मुक्तिराम जी को रहने की सुविधा अपने यहाँ ही दे रक्खी थी। वहाँ बहुत बड़ा पिलखन का पेड़ था, जिसकी सघन छाया थी। श्री मुक्तिराम जी स्वभावतः ही शान्त एव एकान्त प्रिय आदर्श युवक थे। उन्हे वहाँ गृहस्थो के बाल बच्चो का कोलाहल विघ्न प्रतीत होता था। इस कारण उन्होने अपने अनुकूल कोई दूसरा स्थान देखना आरम्भ कर दिया और प्राप्त हो जाने पर श्री मुरारी लाल जी के यहाँ से, जो कि अञ्छाड़ ग्राम के ही थे, छोड़कर गोलखबाबू

---

*यहां से आगे श्री मुक्तिराम से सम्बन्धित मेरठ की सम्पूर्ण घटना श्री सूर्यभानु जी से प्राप्त हुई है।

के मन्दिर में रहने लगे*। वे नीचे ही शयन किया करते थे। एक दिन उनकी छाती से होकर एक विषधर सर्प जा रहा था। वह आधा ही जा पाया था कि उसकी सरसराहट से उनकी आखें खुल गई। उन्होने उसे आनन्द से पार हो लेने दिया। इसके पश्चात् उन्होंने नीचे शयन करना छोड़ दिया।

संस्कृत में ही सम्भाषण

मुक्तिराम जी, पाठशाला में पहुँचने के लिये समय का व्यतिक्रम कभी न करते थे। गुरुदेव की अनुपम अनुकम्पा से व्याकरण और साहित्य के ग्रन्थ उनके सुचारु रूप से चल रहे थे। वे स्वय आत्मदृढता से सस्कृत-सम्भाषण का सतत प्रयत्न करने में अग्रगामी थे। जो विद्यार्थी सस्कृत-सम्भाषण मे शिथिल थे, वे उन्हे भी इसके लिए प्रेरणा देने में न चूकते थे। श्री मुक्तिराम जी का सस्कृत मे ही अपने प्रत्येक भाव की अभिव्यक्ति करने का अभ्यास इतना बढ़ चुका था कि वे कही अटकते प्रतीत न होते थे। उनकी धारा-प्रवाह सस्कृत मे छात्रो को अति आनन्द आता था। एक दिन वे और उनके सहाध्यायी श्री सूर्यभानु जी बाबू गोलखनाथ के मन्दिर मे विद्यमान कुएँ की मेड़ पर बैठे थे। कुआँ उनके आवास-स्थल के समक्ष ही था। वहाँ एक भद्रपुरुष दैव योग से आ पहुँचा, श्री मुक्तिराम जी ने उससे पूछा—"किमिच्छसि" क्या चाहते हो ? उसने भी संस्कृत मे ही उत्तर दिया—"पिपासुरस्मि" पानी पीना चाहता हूँ। अब तो श्री मुक्तिराम जी का चाहता विद्वान् मिल गया, जिससे वे खुलकर सस्कृत मे वार्तालाप करें। जल का पान करा चुकने के पश्चात् उन्होंने उनसे संस्कृत-सम्भाषण द्वारा यह ज्ञात कर लिया कि वे पजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री उत्तीर्ण हैं। अतः जब उन्होंने उनसे शास्त्रीय योग्यता के स्तर पर सस्कृत मे सम्भाषण करना आरम्भ किया, तो वे लड़खड़ा गये तथा स्वगन्तव्य मार्ग से चलते बने। तब मुक्तिराम जी ने सूर्यभानु जी से कहा—"देखा, आज कल के शास्त्रियो की यह अवस्था है।"

श्री पण्डित कन्हैयालाल जी पाठो के मध्य आनुषङ्गिक रूप से छात्रों के समक्ष संस्कृत के प्रमुख केन्द्र काशी के विद्वन्मण्डल की पारस्परिक

*आजकल गोलख बाबू के मन्दिर के समक्ष दूसरी ओर नानक चन्द ऐंग्लो संस्कृत विद्यो कालिज है।

शास्त्र-चर्चा, उनके रहन-सहन, एव रीति-रिवाजो की चर्चाएँ भी ले आया करते थे, जिन्हे श्री मुक्तिराम जी वड़े चाव से सुनते और वहां पहुँचकर एक अद्भुत विद्वान् वनने की आकाङ्क्षा के पुलाव वांधते। इस विषय मे उनकी उत्सुकता अति तीव्र होती जा रही थी। इस इच्छा से कि मैंने काशी पहुँचना है, मेरी योग्यता वहाँ के छात्रों से कम न रह जाए, मुझे उनके समक्ष नीचा न देखना पड़े, वे विद्याध्ययन में और भी अधिक परिश्रम करने लगे। किन्तु कभी-कभी काशी प्रस्थान की लगन मे मन उचाट हो जाता था; अतः यह अन्तराय उनसे सहन न हुआ।

आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

ज्ञानप्रकाश

काशी प्रस्थानोत्थानिका

प्रभु ने मानव मात्र को मन एक ऐसा शक्ति सम्पन्न, अनुपम और अद्भुत उपकरण प्रदान किया है कि जितना भी इसके विषय मे अन्वेषण करे अल्प है। जब यह अपने भीतर उमङ्ग भरता है, तब यह आगा देखता है और न पीछा। भगवान् दयानन्द को इसी ने सत्य तत्त्व के प्रकाशनार्थ कठोरतम तप करने के लिए समुद्यत किया था। ऊबड-खाबड पर्वतो के निविड विकट वन प्रान्तो मे जहाँ मनुष्य के चिह्न भी दृष्टिगत न हो, हिस्र जन्तुओ की पद-पद पर जहा आशङ्का हो, पीने के लिए पानी की एक बूद न हो, जठर-ज्वाला प्रशान्त करने के लिए रोटी का एक टुकडा न हो, जितना इससे बन सका, उन्हे साहसी बनाकर घुमाया। छब्वीस वर्ष के वीर सावरकर को देश स्वतन्त्रता की धुन मे निरन्तर सात दिन तक निराहार बनाकर भुजाओ से समुद्र तैरवाना भी इसी का काम है। इसने ही रामप्रसाद बिस्मिल को फासी के फदे को गले का हार समझ लेने के लिए प्रेरित किया था। इसने ही महाराणा प्रताप को आर्यो की रक्षा के निमित्त निरन्तर समराङ्गण मे डटे रहने का आदेश दिया था। इसने ही, लेखराम के हृदय सरोवर मे वैदिक धर्म की वेदी पर बलिदान होने की अमिट लहरी उत्पन्न की थी। स्वामी श्रद्धानन्द को न्याय की वेदी पर गोली खाने के लिए छाती तान देने का औत्सुक्य भी इसी ने दिया, और जो ब्रिटिश क्रूर शासन से भिड जाने के लिए सुभाषचन्द्र को अदम्य साहस और चातुरी प्रदान कर गया, उस मन को बार-बार प्रणाम है। वह मानव को दानव और दानव को मानव बनाने की अपार शक्ति रखता है। सच पूछो तो अखिल ब्रह्माण्ड ही उसका प्रपञ्च है। वह ही आज

श्री मुक्तिराम को विद्योपलब्धि की धुन में स्वगृह से अतिदूर चले जाने की अप्रतिहत शक्ति देने चला है। उनके हृदय मे नई उमङ्ग है। नूतन स्फूर्ति है, विचित्र अभिलाष का समन्वय है। न घर की चिन्ता है न पिता का ध्यान है, न बन्धु बान्धव में स्नेह है, न भगिनी में मोह है; यदि कुछ है, तो वह है, काशी पहुँचने की उत्कट भावना। भावी जीवन की निर्मात्री शक्ति।

प्रयत्न करके श्री मुक्तिराम ने मेरठ में पत्थर वालो से जो बहुत प्रसिद्ध है, आज तक भी जिनकी वही दुकान है, बनारस तक के भाटक का प्रबन्ध कर लिया।

श्री मुक्तिराम जी काशी में

चो वर्ष पर्यन्त मेरठ में पढ़ने के पश्चात् घर वालो की अनुमति के बिना वे २५ वर्ष के यौवन में काशी जा विराजे। वहां पहुँचकर पितृ-चरणों में पत्र लिखा, "मैं विद्याध्ययन की दृष्टि से मेरठ छोडकर काशी चला आया हूँ। यह संस्कृत वाङ्मय का प्रमुख केन्द्र है। यहा मैं पर्याप्त प्रगति कर सकू गा। यहा मेरे समान बहुत से विद्यार्थी मुझसे भी अधिक दूर-दूर से अकेले ही आए हुए हैं। भोजनाच्छादन का प्रबन्ध कतिपय सेठो की ओर से यहा छात्रो का हो जाता है। अतः चिन्ता करने की कोई बात नही।

मेरठ-त्याग से पूर्व उन्होने घर पर कोई सूचना इस कारण न भेजी कि उन्हे भय था—सम्भव है काशी जाने की सम्मति पिता जी न दे वा कोई ऐसी अड़चन खड़ी करदे, जिससे काशी पहुँचने में विलम्ब हो, और जीवन के अमूल्य क्षण यो ही व्यर्थ चले जावे।

पुत्र के काशी सम्बन्धी इस पत्र से समस्त परिवार मे गहरी चिन्ता व्याप्त हो गई। वे जानते थे कि उनके पुत्र के समीप काशी पहुँचने के लिये मार्ग व्यय नही था। कितने कष्टो को झेलते हुए वह काशी पहुँचा होगा, इसका कुछ पता नही है। न उसी ने इस विषय पर अपने पत्र में कुछ प्रकाश डाला है और न ही अपने आवास आदि के विषय में कुछ लिखा है। पत्र डालने का पता भी नही लिखा यदि लिख देता तो कम से कम यहाँ से पत्र लिखकर ऐसा भी समाचार होता मँगा लेते। अतः वे उसके द्वितीय पत्र की प्रतीक्षा में चिन्ता के मध्य दिन

बिताने लगे। कभी-कभी समस्त रात्रि जागरण करते हुए आँखो मे कटती थी।

श्री मुक्तिराम जी का काशी नगरी में कोई परिचय न था। न रथ्याओ के नाम जानते थे, न विपणियों का परिज्ञान था। वह नगरी श्री मुक्तिराम जी के लिए सर्वथा अद्भुत और निराली थी। किन्तु वे धुन के पक्के थे और लगन के सच्चे थे। ऐसे आदर्श पुरुषो के काम कभी अटका नही करते। अन्तर्यामी ईश्वर उनका सम्मिलन ऐसी व्यक्तियो से करा देता है, जिनसे उनकी समस्यायें सुलझ जाती है। नगर मे चतुष्पथ पर खड़े हुए उनके कुछ ही क्षण व्यतीत हुए थे कि समक्ष से आते हुए चार नवयुवको से उनकी भेंट हो गई। वे अपने हाथो मे कुछ पुस्तक थामे हुए थे। मुक्तिराम ने उन्हे विद्यार्थी समझते हुए पूछा—"आप सब कहाँ पढ़ते हैं? प्रत्युत्तर मे वे बोले—श्री पण्डित तिवारी जी के समीप हमारा व्याकरण का पाठ चल रहा है। यह हमारे समीप "सिद्धान्तकौमुदी" का पुस्तक है। श्री तिवारी जी व्याकरण विषय के काशी मे अपने ढग के एक ही विद्वान् हैं। उनकी अध्यापन शैली अति सुन्दर और रुचिकर है। हमे काशी में आये चिरकाल हो गया, किन्तु हमने श्री तिवारी सदृश व्याकरण विषय का अब तक कोई विद्वान् देखा है, न सुना है। जब हम नये-नये यहा आये, हमे कुछ ऐसे पण्डित भी मिले जहाँ हमारी साध पूरी न हुई, किन्तु अब सर्वथा सन्तोष है।" वे विना पूछे ही स्वय आगे कहने लगे—"हम चारो भूरामल जी बाँके मारवाड़ी के क्षेत्र मे भोजन पाते हैं और वही रहते है।" यह सुनते ही मुक्तिराम के अन्तरात्मा मे कुछ धीरज की धारा प्रवाहित हुई और उनकी पैनी दृष्टि सब ओर व्याप्त हो गई। उन्हे निश्चय हो गया कि मेरठ निवासी श्री पण्डित कन्हैयालाल जी की सब बाते ठीक हैं। दो-चार दिनों में अपनी समस्या भी इन विद्यार्थियों के समान समाधान पा जायेगी। मुक्तिराम जी उनसे और भी अधिक जानकारी की आशा मे उन्ही के साथ उल्टे लौट चले। नगर-रथ्या पर चलते हुए उन सब वयस्को का परस्पर जो वार्तालाप हुआ, उसने मुक्तिराम को भी उन चारो की लड़ी मे पिरो दिया और पारस्परिक सौहार्द से पाँचों युवक मारवाड़ी क्षेत्र में आ पहुँचे। भोजन का समय हो चुका था। श्री चुन्नीलाल उस भोजनालय के मुनीम थे। उनसे कहकर वर्णिवर्ग ने श्री मुक्तिराम को भी भोजन करा दिया। भोजनोपरान्त श्री मुक्तिराम जी स्वयं मुनीम जी से जा मिले। और अपनी

सब आवश्यकताएँ निवेदन कर दी। इस प्रकार भोजन आच्छादन और आवास का प्रबन्ध कर श्री मुक्तिराम जी निश्चिन्त हो गये। उन्होने घर पर अपने सब प्रकार का प्रबन्ध हो जाने के समाचार भेज दिये। साथ मे यह भी लिख दिया कि "अब मेरे विषय मे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही है। मैं चित्त लगाकर अध्ययन करता रहूँगा। जब कोई विशेष बात होगी मैं स्वय ही पत्र द्वारा सूचना भेज दूँगा। जब तक मेरा पत्र आपके समीप न पहुँचे, तब तक यही समझते रहना कि उनका पुत्र कुशल से है। ठीक इसी भाँति आप भी व्यर्थ मे पत्र न डालते रहना। इससे विद्या मे हानि होने की सम्भावना रहती है। मन पत्रो के आदान-प्रदान में ही फँसा रहता है।"

श्री मुक्तिराम जी ने देखा कि इस मारवाडी भोजनालय का भवन बहुत विशाल है, जिसमें अनेक छोटे-बडे कक्ष है, जहा विद्यार्थियो और भोजनालय परिचारको का आवास है। क्षेत्र के भवन नवीन है। प्रतीत होता है—कतिपय वर्ष पूर्व ही इसका निर्माण हुआ होगा। सहवासियोसे ज्ञात हुआ कि इस भोजनालय में छात्र और पण्डित सब मिलाकर लगभग पैंतीस व्यक्तियाँ प्रतिदिन मध्याह्न मे भोजन पाती है। और सायकाल मे एक दो पैसे के चने यही से सबको प्राप्त हो जाते है। श्री मुक्तिराम को यह भी विदित हुआ कि इस प्रकार के क्षेत्र काशी मे और भी है, वहाँ भी ऐसी ही व्यवस्था है। जिसने जहाँ कही भी भोजन करना हो, कर सकता है; किन्तु अपने भोजन करने की सूचना पाकशाला मे भोजन पकना आरम्भ होने से पूर्व उसके प्रबन्धक को अवश्य देनी पड़ती है और जहाँ वह अब तक भोजन पाता रहा है, वहाँ भी सूचित करना होता है कि मै यहाँ आज भोजन नही करूगा।

श्री मुक्तिराम जी आदर्श विद्यार्थी थे। यहाँ मारवाडी भोजनालय के अतिरिक्त कोई दूसरा क्षेत्र उत्तम भी है वा नही, इस ओर उन्होने ध्यान ही नही दिया। वे तो अपने ध्येय की चिन्ता मे व्यग्र हो गये। उन्होने भोजन भट्ट नही बनना था, सस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित होना था, अत. वे व्याकरण के सूर्य श्री तिवारी जी को सप्रश्रय अभिवादन करके विद्यार्थियो की पड्क्ति मे जाकर बैठ गये। वहाँ वे क्या देखते है कि श्री तिवारी जी पाठ क्या पढा रहे है, वे तो एक उदेशक की भाँति अविरत बोलते चले जा रहे है। उनके समीप न कोई व्याकरण का ग्रन्थ है और न ही लिखे गये कोई उद्धरण हैं, जैसे परम पवित्र

हिमालय के उच्च शिखर-गङ्गोत्री से गङ्गा प्रवाह अविरत वहता रहता है, ठीक उसी प्रकार उच्च पीठिका पर आसीन शव्दशास्त्र से पूत उस निष्णात वैयाकरण की मुख श्री से श्रीमत्पाणिनि-प्रणीत सूत्रो के अर्थ-उदाहरण प्रत्युदाहरण सिद्धि और फक्किकाओ से अनुप्राणित वर्ण श्रेणी निरन्तर निकल रही है। उनके पाठन मे न्यास-पदमञ्जरी और शेखर के प्रमाण आवश्यकता के समय स्वयं उपस्थित हो जाते हैं। विद्यार्थियो के लिए वह एक कौतुक का विषय था। यदि कोई विद्यार्थी अत्यन्त सावधान न हो, तो उसके पल्ले वहा कुछ पडने वाला नही था। उनके अध्यापन की लडी विना रोक टोक के अविचल चलती रहती थी। वहुत से विद्यार्थी तो पाठ समझ मे न आने पर आनन्द-मयी निद्रा की गोद मे अपने पाठ का अधिकाश स्थल अतिक्रान्त कर जाते थे। श्री तिवारी जी किसी को कुछ कहने वाले न थे। उनकी वला से कोई सुने वा न सुने। उनकी एक-सी चाल थी। एक-सा ढग था। वे स्वय ऊङ्घते हुए ठीक उसी प्रकार वोलते चले जाते थे; जैसे एक पुराना उपदेशक निरन्तर व्याख्यान करने से रटे गये शव्दो को स्वप्न मे भी अविशृङ्खलरूप से वोलता चला जाता है। श्री पण्डित तिवारी जी का सूत्रो पर विशेष बल रहता था। क्रमश: अष्टाध्यायी के सूत्र सुनाने वाले से वे अति प्रसन्न होते थे। इस प्रकार अध्यापन का वह सत्र प्रात से रात्रि पर्यन्त चलता रहता था।

श्री मुक्तिराम ने थोड़े ही दिनो मे यह अनुभव कर लिया कि यहाँ से उत्तम स्थान व्याकरण के अध्ययन का और नही हो सकता। वे वहुत दत्तचित होकर श्री गुरु जी के अन्त करण से निकलते हुए शव्दो को सुनते रहते थे और उनकी शङ्काओ का समाधान भी साथ ही साथ होता चला जाता था। वहुत कम ऐसे अवसर आते थे, जव कि उन्हे कोई अश समझ न पडने पर पूछना पडता था। जो शङ्का श्री मुक्तिराम को उत्पन्न होती थी, वह इतनी जटिल होती थी कि अन्य विद्यार्थी तो मुंह ताकते ही रह जाते थे कि ये क्या पूछ रहे है। इनकी शङ्का मे कोई सार नही है; किन्तु जव श्री तिवारी जी की ओर से उसका उत्तर मिलता था, तव अनुमान से यह समझते थे कि हाँ कोई गम्भीर प्रश्न था। यदि कोई पाठ के मध्य मे ऊल-जलूल प्रश्न कर वैठता था, जिसका तत्सम्वन्धी अंश से कोई सम्वन्ध न होता था तो वे विना उत्तर दिये ही आगे वढते जाते थे। धीरे-धीरे श्री मुक्तिराम जी की अप्रतिम प्रतिभा का प्रभाव सहाध्यायी विद्यार्थियों

पर पड़ने लगा। और जब वे विद्यार्थियों को पाठ विचरवाते थे। तो वे भी श्री तिवारी जी के समान ही व्याकरण शास्त्र मे पारङ्गत प्रतीत होने लगते थे। उनका यह अनुपम बुद्धि-कौशल छात्रो को अपनी ओर आकर्षित करने लगा था।

काशी आने के दो-तीन महीनो में श्री मुक्तिराम जी ने अध्ययनाध्यापन के विभिन्न विषयो की बहुत पीठिकाएं देखीं, सभी में अतिसुन्दर पाठ-प्रणाली थी। मुक्तिराम जी से रहा न गया। मन में अपने मेरठ के सहपाठी एवं सहृदय मित्र श्री पण्डित सूर्यभानु जी का ध्यान आ गया और उन्हें लिखा कि आप यहाँ काशी ही आ जाइये। शक्तिवाद और व्युत्पत्तिवाद के छात्रों के अध्ययन का भी यहाँ अच्छा प्रबन्ध है। भोजन-निवास की व्यवस्था यहाँ क्षेत्रों में हो जाती है।

श्री मुक्तिराम जी सदोचार की मूर्ति थे। वे परस्पर के व्यवहारो में अति जागरूक थे। यदि उनसे कभी व्यवहार में त्रुटि हो जाती तो, तुरन्त उसमे संशोधन कर लेते थे। इससे उनका मन अत्यन्त निर्मल हो जाता था, जो उनकी विद्या और आत्मिक उन्नति मे प्रत्यक्ष रूप से अत्यन्त सहायक दीख पड़ता था। परोक्ष रूप मे इसका प्रभाव शरीर पर भी उत्तम ही पडता था। गौर मुख मे ब्रह्मचर्य से प्रस्फुटित मुक्तिराम जी के मुख की आभा सदाचार मे शिथिल विद्यार्थी जनो को स्वत ही अधोमुख वना देती थी। उनकी आखो से एक विशिष्ट प्रभा निकलती थी, जो अनायास ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती थी। श्री मुक्तिराम जी की वेष-भूषा कुर्ता उस पर एक बण्डी, पाच गज लम्बी साधारण किन्तु स्वच्छ धोती और सिर पर रेशमी पगडी थी। पगड़ी के नीचे मोटी चोटी, कन्धे पर से छह लड़ियो का लटका हुआ एक मोटा यज्ञोपवीत और अनावृत पग उनके ब्रह्मचर्य व्रत के प्रतीक थे। उस साधारण वेश के नीचे स्वच्छ लाल पत्थर को भांति उनका रक्तिम सुघटित शरीर छिपा था जिसका अनुमान उनके मुख और पद-लालिमा से किया जा सकता था। तन की अस्थियाँ, माँस और त्वचा एक दूसरे में परस्पर सटे हुए थे। त्वचा को किसी भी स्थल में अगूठे और तर्जनी से खीचकर पृथक् नही किया जा सकता था।

ज्यो-ज्यो काल अतिकान्त होता गया, श्री मुक्तिराम जी की चिरकाङ्क्षित आशाएँ पल्लवित होती गईं। इस प्रकार प्रतिदिन उन्नति के क्षेत्र मे उत्तरोत्तर बढते हुए उन्हें मेरठ के सहाध्यायी श्री सूर्यभानु

जी का पत्र प्राप्त हुआ, जिसमे उन्होने पूछा था कि आप के चित्त की अवस्था, अब कैसी है ? श्री मुक्तिराम जी ने उत्तर में लिख भेजा "शान्तिश्चैत्तिकी दामिनीधामोपमानमलङ्करोति"। प्रायः मुक्तिराम जी पत्रो का उत्तर संस्कृत पठित महानुभावो को संस्कृत मे ही देते थे। यदि कभी हिन्दी मे लिखना पड़ा, तो उसमें संस्कृत शब्दो का बाहुल्य होता था। श्री मुक्तिराम जी ने सूर्यभानु जी को यह भी लिखा था कि यदि आप यहाँ आवे, तो अपने साथ टीट अवश्य लेते आना; क्योकि काशी नगरी का जलवायु स्वास्थ्यप्रद नही है।

दृढ प्रतिज्ञ मुक्तिराम

व्याकरण के आचार्य श्री तिवारी जी के समीप सन्था लेते हुए जब कुछ दिन व्यतीत होगये, तो मुक्तिराम जी को पितृ-गृह से आया हुआ एक पत्र मिला, जिसमे कोई विशेष वार्ता न लिखी थी, केवल कुशल क्षेम के समाचार थे, पत्र का उत्तर शीघ्र देना, तुम्हारी वहन तुम्हे बहुत स्मरण करती है। यह भी लिखा था।

श्री मुक्तिराम जी ने पत्रोत्तर नही दिया और प्रभु को साक्षी बनाकर दृढ प्रतिज्ञा की "हे प्रभो! मैं यहाँ काशी मे पूज्य पिता सहित सब बन्धु बान्धवो को छोडकर आया हूँ ऐसी अवस्था मे, मेरा यह उत्कट अभिलाष है कि मैं पण्डित मण्डल के मध्य अपने ज्ञान का परिवर्धन करता हुआ शीघ्र ही समस्त सस्कृत वाङ्मय को अपने अधिकार मे कर लूँ मेरा विचार है कि मैं विद्वान् होकर असहायो का सहायक बनूं। विछुडे हुए भाइयो को गले लगाऊँ। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति मे मैं आपका आश्रय चाहता हूँ। विना आपके विद्यासरित् मे पडी यह नौका किनारे नही लगेगी। मेरे उद्देश्य की पूर्ति मे मुझे घर से आए हुए पत्र बाधक दीख पड़ते हैं, जिनसे मुझे उनकी अवस्था का ध्यान आजाता है और चित्त चलायमान हो जाता है। चञ्चल चित्त फिर पाठ को ग्रहण नही कर पाता और गया हुआ पाठ फिर हाथ नही आता, जिससे मुझे पर्याप्त अन्तर्वेदना होती है। अतः आपसे मैं अति विनय भाव से निवेदन करता हूँ कि मुझे ऐसा सामर्थ्य प्रदान कीजिए कि अबसे जो भी पत्र आदि मुझे पाप्त हो, उसे विना पढ़े ही सन्दूक की पेटी के एक कोने में डाल दिया करूँ और विद्या-समाप्ति के पश्चात् चाहे, वह कितना भी लम्बा काल हो, सबको इकट्ठा ही खोल कर देखूँ और उत्तर दे दूँ।"

श्री मुक्तिराम जी का उस समय जन्म भी नही हुआ था जब महर्षि दयानन्द अपनी पाखण्ड-खण्डनी-पताका लेकर, आर्य सभ्यता, आर्य सस्कृति, आर्य विद्या और आर्य धर्म की प्राचीन नगरी श्री काशी मे इसलिये पधारे थे कि आर्यावर्त का यह भू-प्रदेश अति प्राचीनकाल से सस्कृत वाङ्मय की रक्षा करता चला आरहा है। यहाँ भारत के कोने कोने से प्रतिवर्ष सहस्रो की सख्या मे विद्यार्थी आकर शिक्षा-ग्रहण करते है। यहाँ के उदारचेता पण्डितो ने भूखे-नङ्गे रह कर भी चिर-पोषित वैदिक सस्कृति की रक्षा की है। यहाँ की पाठशालाओ मे प्रशिक्षित छात्रो ने स्व-स्व प्रदेश में जाकर वेद, स्मृति श्रौत और धर्म-ग्रन्थो के आधार पर गार्हस्थ्य धर्म निभाते हुए अपने जीवन से आर्यों के आचार का सच्चा प्रचार किया है। दुर्भाग्य से उसी नगरी ने कुछ ऐसा मोड़ लिया कि आर्य पद्धति से सर्वथा विमुख होकर किसी दूसरी ओर को ही वह चली है। जिससे काशी शिक्षालयो से प्रशिक्षित छात्र अब भारत के कोने-कोने में पहुँचकर भारतीयो की जीवन नौका को नरक की ओर धकेल रहे हैं। इसलिये जब तक इस काशी के दिग्गज पण्डित-मण्डल का प्रवाह पौराणिक सरणी से हटाकर वैदिक पद्धति की ओर नही बदला जायगा, तब तक देश का सुधार होना कठिन है। इसलिये महर्षि दयानन्द ने काशी के माने गये प्रकाण्ड पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ करके वैदिक धर्म की वैजयन्ती पताका साधारण जन समुदाय मे ऐसी फहराई कि वह उदात्त पण्डितों के हृदय-सदन में निवास करती हुई वेदप्रतिपादित धर्मवायु का सञ्चार करने लगी।

इस घटना के ३४ वर्ष पश्चात् श्री मुक्तिराम जी ने पच्चीस वर्ष के वय मे जबकि काशीनगरी ने अपने चरण वेद-धर्म की ओर बढ़ा दिये थे इस नगरी में पदार्पण किया था। यही कारण था कि व्याकरणदिवाकर श्री पण्डित तिवारी जी भले ही दीखने में पौराणिक प्रतीत होते थे परन्तु, आर्य समाज के छात्रो को भी वे पक्षपातरहित होकर पढा देते थे। हाँ, कुछ पण्डित ऐसे भी थे, जिन्होंने अपनी वही चिररक्षित मर्यादा अपनायी हुई थी। पौराणिकता से भिन्न विचारो वाले छात्र, उनके समीप विद्या ग्रहण करना चाहते हुए भी अपनी साध पूरी नहीं कर पाते थे। उस पण्डित-मण्डली में वेदान्तदर्शन केसरी महामहोपाध्याय श्री पण्डित लक्ष्मणदत्त जी का नाम भी उल्लेखनीय है। काशी नगर में वे अपने विषय के अद्वितीय ख्याति प्राप्त विद्वान् थे। छात्रसमूह प्रायः इस प्रयास में रहता था

कि जो भी जिस विषय का पारदर्शी हो, उसी से वही विषय ग्रहण किया जावे। इस दृष्टि से आर्य छात्र कही-कही घाटे मे रह जाते थे। श्री मुक्तिराम के मार्ग मे यह कठिनाई उपस्थित नही हुई। उनके विचार चाहे कितने भी उदात्त थे, पर बाह्यशरीर-भूषा और सरणी वही पौराणिक चली आ रही थी—उनका चन्दन चर्चित भाल, छह धागो का ब्रह्मसूत्र और अभिवादन के समय अन्त करण मे गहरे स्थान पाये हुए पुरातन शब्द उन्हे पौराणिक छात्रो की पङ्क्ति में खडा कर देते थे। अतः काशी के वेदान्तदर्शन केसरी महामहोपाध्याय श्री पण्डित लक्ष्मणदत्त जी से वेदान्त दर्शन पढने का श्री मुक्तिराम जी को उत्तम अवसर प्राप्त हो गया।

भवितव्यता

जन्म से देह समाप्ति तक मनुष्य जो-जो आचार व्यवहार और कार्य करता है, उस प्रत्येक कार्य के सस्कार उसके अन्त करण पर अङ्कित होते चले जाते हैं और देहपात समय मे जिस विषय के सस्कार प्रबल हो जाते हैं उन सस्कारों का भोग जिस शरीर मे और जिस स्थान मे होना योग्य होता है, परमात्मा की व्यवस्था से उसे वैसा ही अन्त.करण विशिष्ट शरीर और वैसे ही स्थान उपलब्ध होते रहते है। श्री मुक्तिराम जी को भी उनके सस्कारों के आधार पर ब्राह्मणकुल मे श्रेष्ठ शरीर तथा तदनुकूल ही विद्या-प्राप्ति के स्थान उत्तरोत्तर प्राप्त होते जा रहे थे। सस्कृत वाङ्मय के प्रधान केन्द्र काशी मे देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशो से प्रति वर्ष सहस्रो की सख्या मे छात्रगण स्व-स्व सस्कारो से प्रेरित होकर अध्ययन-निमित्त उपस्थित होते हैं, किन्तु उनका समाज मे उतना ही स्थान है, जितना आकाश मे तारो का। उन तारो के मध्य चन्द्रमा अकेला ही ऐसा है, जो अति न्यून उज्ज्वल तारो को सर्वथा कान्तिहीन और विशेष उज्ज्वल तारो को अल्पज्योतिर्हीन बनाता हुआ, समस्त भू-भाग पर अपनी ज्योत्स्ना बिखेरता है। ठीक इसी प्रकार श्री मुक्तिराम जी अपनी विद्या और सदाचार के प्रभाव मे काशी के अधिकाश छात्रो को सर्वथा निष्कान्त करते हुए और कतिपय श्रेष्ठ छात्रो को अपने प्रभाव मे लाकर एकाकी शोभा पा रहे थे।

ज्यो-ज्यों वे गुरुदेव महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मण शास्त्री से वेदान्त-सूत्र पढते जा रहे थे, त्यो-त्यो वेदान्त के स्थल उनकी सस्कार लता मे

पानी और खाद बन रहे थे। इसलिये जीवनप्रदायिनी, वेदान्त वाक्य-शक्ति की ओर श्री महाराज का उत्तरोत्तर स्नेह बढता चला गया। उस सस्कार लता मे परलोकहित की भावनाएँ अङ्कुरित होने लगी। ससार की असारता स्पष्ट झलकने लगी। 'ऐहलौकिक और पारमार्थिक सुखो की भावनाएँ श्री ब्रह्मचारी जी को तिलाञ्जलि देकर स्वार्थियो का आश्रय खोजने लगी। कर्तव्यपरायण रहते हुए मुक्तिराम जी की भोग व्यवस्था मे विशेष आस्था जमने लगी। मोक्ष-धर्म के सस्कार उदय होने लगे। उस समय उन्हे यौवन, जीवन और धन आदि सकल पदार्थ अस्थिर दीखने लगे। उन दिनो श्री ब्रह्मचारी जी का यह विशेष प्रयत्न रहता था कि शीघ्र से शीघ्र ऐसा पुण्यराशि सङ्गृहीत कर लेना चाहिए, जिससे अग्रिम जीवन सच्चे सुख और शान्ति का अनुभव करे। उनमे अपने और पराये का भेद तिरोहित होने लगा। उन्होने कष्ट सहते हुए भी जीवन-सागर को शुभ सङ्कल्पो की नौका से पार करने का दृढ सङ्कल्प कर लिया। अशुभ सङ्कल्पो से वे एक क्षण भी जीना नही चाहते थे। जीवन को नष्ट करने वाले झूठे यश: और कीर्ति को उठाकर उन्होने ताक पर रख दिया था। ब्रह्मचर्य धैर्य और सहिष्णुता को अपने लक्ष्य की पूर्ति मे वे अति उज्ज्वल साधन समझने लगे थे। सन्तोष तथा अवेक्षा का कडवा घूँट पीकर वे विद्याध्ययन मे अत्यन्त परिश्रम करने लगे। यहाँ उनकी मित्रता मे विहार निवासी स्वामी सहजानन्द जी, नैपाल निवासी पण्डित सीताराम जी शास्त्री केलकर* और सहाध्यायी फफूण्डा निवासी श्री मुरारीलाल जी थे।

श्री मुमुक्षु ब्रह्मचारी जी की दिनचर्या अत्यधिक नियमबद्ध थी। वे प्रतिदिन बहुत प्रात उठ जाते थे। कोष्ठ शुद्धि उस समय हो अथवा न हो, पर जाते नियम से थे। दन्तधावन और स्नान से निवृत्त होकर अत्यन्त भक्ति पूर्वक दुर्गास्तोत्र का पाठ तथा सन्ध्या करते थे। यह सब कार्य सूर्योदय से पूर्व ही समाप्त हो जाता था। फिर यथोचित व्यायाम करने के पश्चात् वे अपने पाठ स्मरण करने के आसन पर जा विराजते थे। एक ही आसन पर समाधिस्थ-से हुए श्री मुमुक्षु जी घण्टो पाठ दुहराते रहते थे। युवक होते हुए भी उनके जीवन मे चञ्चलता न थी। उनकी गम्भीर मुद्रा बडे-बडे बूढो को चकित करती थी। उन वृद्धो को क्या पता था कि सर्व साधारण शरीर मे छिपा हुआ यह एक अमूल्य रत्न है, जो अपने भावी जीवन की नीव डाल रहा है। जो कभी

---

* श्री केलकर जी का आवास काशी मे ब्रह्मघाट पर है।

दूसरो के कष्ट-निवारण करने मे अपने सुख की अपेक्षा नही करेगा, जिसका व्यवहार मित्रो और अमित्रो से एक-सा होगा। जो लोभ, मोह, मास, मदिरा से भरे इस संसार मे सर्वथा अलिप्त रहेगा। जो विपत्ति मे पड़ जाने पर भी अग्नि मे पड़े तगर के समान निज स्वभाव को चमका देगा। जो निराश्रितो का आश्रय और दुःखितो का आधार होगा। यदि धन की उपलब्धि होगी तो उसमे उसे उसके व्यय का विवेक होगा। वेदो का प्रकाण्ड पण्डित होता हुआ भी अति विनयी होगा। जिसका साधारण रूप से निकला वचन भी पत्थर की लकीर होगा। वह कभी अपने वचन से न टलेगा। जिसका पाण्डित्य केवल दूसरो को ही उपदेश देने के लिये नही अपितु, उसके जीवन का पहले अङ्ग बन चुका होगा। जिसमे दया के भाव कूट-कूट कर भरे होगे। जो असाधु जनो मे भी अपनी साधुता दर्शायेगा। जो रजोगुण और तमोगुण के प्राबल्य से रहित होकर सत्वगुण के प्रकाश मे झलकते हुये ज्ञान से अज्ञानान्धकार का विनाश करेगा। जिसकी वाणी रूप फुलवारी से सदा सद्भावरूपी फूल झडेगें। जिसमे किसी के अनिष्ट चिन्तन की भावना न होगी। जो दूसरो से अपना काम कराने मे सकुचायेगा और उपकार करके भूल जायगा।

मारवाड़ी भोजनालय

ऐसे पवित्रहृदय समदर्शी युवक, जिस मारवाडी भोजनालय मे भोजन पाते थे, उसके अधिपति का कलकत्ते में भारी व्यापार था उन्होने एक मुनीम प्रबन्ध के लिए वहाँ छोडा हुआ था। सारी भोजन-व्यवस्था उसके हाथ मे थी। बाजार से सस्ती से सस्ती वह भोजन सामग्री खरीद कर लाता था। दाल नही छोकता था और घी मे पानी डालकर रोटी चुपड़वाता था। दाल मे पानी भी खूब डलवाता था। यह भोजनालय वर्षो से ऐसा ही चला आ रहा था। अनेक पण्डित और छात्र यहाँ भोजन करके चले गये, पर इसकी सरणी एक-सी रहती रही। किसी ने कोई हेर फेर न देखा। शेष भोजनालय भी ऐसे ही थे और सभी मे लूले, लगडे, कोढी, काणे, भूखे, नगे और पेट्ट भी भोजन करते थे। यह शिक्षितो के साथ अच्छा समन्वय न था। काशी मे और कोई दूसरी व्यवस्था भी नही थी। इस कारण श्री मुक्तिराम जी मन मसोस कर, जैसा-तैसा खाकर अपने पठन-पाठन मे लगे रहते और सोचते रहते—"विद्यार्थी को सुख नही मिलता और सुखार्थी को विद्या नही आती।" इस कही की उक्ति को कही लगाते रहते।

अपने को प्रसन्न रखने का और कोई उपाय भी न था। रूखे-सूखे और वह भी अव्यवस्थित भोजन से सबके स्वास्थ्य गिरते जा रहे थे। महाराज के जीवन में ब्रह्मचर्य ही ऐसा बल था; जो उनके शरीर की भित्ति को खडे किए हुए था। इस प्रकार पठन-पाठन और शरीर में सङ्घर्ष चल रहा था कि कलकत्ते से श्री सेठ भूरामल जो के मन्त्री श्री तेजपाल भोजनालय का निरीक्षण करने काशी आये। श्री महाराज उस समय वही थे। तेजपाल ने आकर किसी दूसरे से वार्तालाप नहीं किया, महाराज को अपने समीप एकान्त में बुलाया और पूछा "भोजन में आप लोगो को प्रतिदिन क्या मिलता है? श्री ब्रह्मचारी जी निर्भीक और सत्यप्रिय तो थे ही, उत्तर मे बोले—"सभी को समान रूप से बिना छोक की पानी वाली दाल, जो किसी काम की नहीं होती, मिलती है। जलमिश्रित घृत से रोटिया चुपड़ दी जाती है। यह दोपहर का भोजन हुआ और साय केवल भुने हुए थोड़ी मात्रा मे चने। इस मेरे कथन की पुष्टि के लिए आप भोजनालय मे भोजन पाने वाली व्यक्तियो के स्वास्थ्य का निरीक्षण कर सकते हैं। मत्री तेजपाल, श्री मुक्तिराम जी के ये वचन सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए। सयोगवश उस समय भोजन का परिवेपण भी किया जा रहा था। अतः उस भोजन मे तत्काल कोई परिवर्तन कर देना भी असम्भव था। दिन ग्रीष्म ऋतु के थे। पण्डित और छात्र समूह निरस्त वस्त्र ही प्रलिप्त चौके में अपने अपने पात्र स्त्राभिमुख रक्खे आसीन था। विना छोकी दाल और साधारण चुपड़ी रोटी का कारण पूछने पर उत्तर मिला—"घृत समाप्त हो गया है। फिर जब भोजन-पङ्क्ति की ओर निहारा, तो उनमें कोई ऐसा पुरुष न दीखा, जिसके मुख पर यत्किञ्चित् आभा हो, जो इस ब्रह्मचर्यवय. में हृष्ट-पुष्ट हो। सबकी मुखकान्ति म्लान थी। मुख उदास थे। उनका गौर-वर्ण पीला पड गया था और श्याम वर्ण काले तवे के सदृश था। अब परिवेष्टा पर जो दृष्टिपात किया वह उनसे भी गया बीता दीखा। उसका पृष्ठवश शरीर का मास छोडकर ऊपर उभर आया था। जब वह परोस कर ऊपर उठा, तो वृद्ध-सदृश आचरण कर रहा था। इन सबका वक्षस्थल और पार्श्व अस्थिया मांस के सूख जाने से स्पष्ट चमक रही थी। स्वयं चने चबाने और प्रातः सर्वथा अनशन से पेट भीतर घुसा जाता था। दूसरी ओर नीचे खड़े हुए लूले-लङ्गडे, काणे, कोढी पुरुष उस क्षेत्र से दो-दो फुलके लेकर शेष भिक्षा पूरी करने के निमित्त अन्य क्षेत्रो की ओर बढ रहे थे। इस दुर्व्यवस्था को देखकर मन्त्री महोदय के हृदय मे गहरी चोट

पहुँची और उन्हे श्री ब्रह्मचारी जी के वक्तव्य पर पूर्ण विश्वास हो गया।

भोजनालय के अधिपति सेठ भूरामल बाके की कलकत्ते की वहियों में भोजनालय के निमित्त जितनी धन सामग्री, दी गयी, अङ्कित थी, उसका चतुर्थांश भी यहाँ भोजनालय मे व्यय हुआ प्रतीत नही होता; ऐसा मन्त्री तेजपाल ने अनुमान लगा लिया। इससे मुनीम की धूर्तता का पता चल गया। श्री तेजपाल ने मुनीम चुन्नीलाल से इस सम्बन्ध मे यत्किञ्चित भी चर्चा नही की। हाँ, भोजनान्त मे श्री महाराज से उनके अध्ययन आदि के विषय मे सबके समक्ष पूछताछ अवश्य की। अब मुनीम भी वहाँ उपस्थित था। जब श्री मुक्तिराम जी ने यह कहा कि आजकल मेरा व्याकरण, साहित्य और वेदान्त का पाठ चल रहा है। तो तेजपाल का अभीष्ट विषय भी वहाँ मिल गया। वे वेदान्त मे यत्किञ्चित् हस्तक्षेप रखते थे। अत महाराज के साथ उनकी वेदान्त पर पर्याप्त चर्चा हुई। वेदान्त मे महाराज के सूक्ष्म परिशीलन को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और श्री ब्रह्मचारी जी को इसी प्रकार उन्नति करते रहने के लिए प्रोत्साहित किया। मुक्तिराम जी की आकाट्य युक्ति प्रयुक्तियो को सुनकर मन्त्री तेजपाल मन ही मन विचारने लगा "न जाने ऐसे कितने होनहार बालक इस सस्कृत केन्द्र काशी नगरी मे अपने पितृ चरणो का परित्याग कर दूर-दूर से आए हुए है। अध्यापक-पीठिका पर आसीन प्रकाण्ड पण्डितो की भी यहाँ कमी नही है। भोजन सत्र के स्वामी महानुभाव भी अपने धन के सदुपयोग की आशाए बाधे स्व-व्यापार मे मग्न हैं। पर अत्यन्त खेद है कि भोजनालय के प्रबन्ध पर नियुक्त किये मुनीम ऐसे है जो, लोभी, लालची, कृपण, और दया-हीन बनकर सबकी आशाओ पर पानी फेर रहे है। यदि इन्होने यही करना था तो, पैसा बटोरने के अन्य बहुत से स्थान है और साधन है, वहाँ अपनी साध पूरी कर लेते। पर विशेषत विद्या-क्षेत्र मे ऐसा करना महापाप है। जिसे किसी भी अवस्था मे सहन नही किया जा सकता। अब कुछ न कुछ ऐसा प्रबन्ध करना ही होगा, जिसमे अध्यापक और अध्येतृ-वर्ग को भोजन की सुख सुविधा उपलब्ध हो"। श्री महाराज के साथ मन्त्री श्रेष्ठ ने दूसरे दिन एकान्त मे पुन वार्तालाप किया। आज की बात-चीत से उसने श्री ब्रह्मचारी के व्यवहार-कौशल और उनके हृदय मे विद्यार्थियो के प्रति हितैषिणी चित्तवृति का पता लगा लिया और कहा—"जब ऐसी बात है, तो

भोजनालय का प्रबन्ध आपको ही संभालना पडेगा और चुन्नीलाल को पृथक कर देना होगा। मुझे आशा है कि आप मुझे इस प्रबन्ध में सहयोग देगे।" महाराज ने प्रत्युत्तर में निवेदन किया—"श्रीमन्! विद्यार्थियो में परस्पर सहयोग की भावनाएं कम है। कुछ के असहयोग से मुझे एक समय बहुत दु ख हुआ था। यद्यपि वह प्रसङ्ग दूसरा था; तथापि भोजन के प्रबन्ध मे ऐसा हो जाने की सम्भावना है। इसलिये यह उचित रहेगा कि आप बडे-बडे छात्रो की एकसभा बना दीजिये और जिसे आप उचित समझे, एक दो छात्रो को देख-रेख के लिये नियुक्त कर दीजिए। इससे मुझे विद्यार्थियो की विरोधी भावनाओ का आखेट नही बनना पडेगा सत्परामर्शी मक्ति राम के इस प्रतिवचन से मन्त्री महोदय गम्भीर मुद्रा मे आगये। और सेठ जी से इस सम्बन्ध मे परामर्श करके ही आगामो पग उठाने का निश्चय कर लिया।

चुन्नीलाल मुनाम को इस रहस्य पूर्ण घटना का यत्किञ्चित भी पता नही लगा और वह आश्वस्त होकर पूर्ववत् ही भोजनालय चलाता रहा। किन्तु अन्य छात्र कुछ द्विविधा में अवश्य पड गये कि मुक्तिराम भोजन प्रबन्ध के सम्बन्ध मे अपना रग दिखाने मे नही चूके हागे। पूछने पर महाराज ने इस सम्बन्ध में विद्यार्थियो को कुछ नही बताया।

तीसरे दिन मन्त्री तेजपाल ने निम्न पद्य को हृदय मे स्थान देते हुए काशी मे कलकत्ता को और प्रस्थान कर दिया।

फलं स्वेच्छालभ्य प्रतिदिनमखेद क्षितिरुहाम्,
पय स्थाने-स्थाने शिशिर मधुर पुण्यसरिताम्।
मृदुस्पर्शा शय्या सुललितलता पल्लवमयी,
सहन्ते सन्ताप तदिह धनिना द्वारि कृपणा ॥

भोजन क्षेत्र के स्वामी लाला भूरामल जी उदारचेता पुरुष थे। भारतीय सस्कृति के रक्षक और निराश्रितो के आश्रय थे। अतः प्रत्येक विषय को वे गम्भीरता से लेते थे। उन्होने श्री मन्त्री की बात का ध्यान-पूर्वक श्रवण किया और इतने दु खित हुए कि दु ख को रेखाएँ मुख-मण्डल पर फूट निकली। मन्त्रिप्रवर के इस सत्परामर्श को, कि पण्डित मुक्तिराम को यदि क्षेत्र का प्रबन्धक नियुक्त कर दिया जावे तो सब समस्याओ का समाधान स्वतः हो जायेगा, श्री सेठ जी ने अङ्गीकार कर लिया। मन्त्रिराज ने महाराज के आचार-विचार, व्यवहार,

प्रतिभा-चमत्कार और वीतरागता का परिचय सेठ जी को पहले ही दे दिया था। सेठ जी से आदेश पाने पर तेजपाल ने मुक्तिराम जी को क्षेत्र के प्रवन्ध-सम्बन्ध मे एक वन्द पत्र लिख भेजा। उन्होने उसे अपनी सुलभ प्रकृति के अनुसार, अन्य पत्रो की भाँति, कि यह भी घर का कोई पत्र होगा, समझ कर विना पढ़े सन्दूक-पेटी मे, अन्य पत्रो के साथ रख दिया। श्री ब्रह्मचारी जी पठन-पाठन मे इतने व्यस्त रहते थे कि विद्यातिरिक्त सभी वाते उनकी दृष्टि से सर्वथा ओझल रहा करती थी। आये हुए पत्रो के सम्वन्ध मे भी उनकी यही वात थी। पत्र पेटी मे पत्रो को रख देने के पश्चात् उन्हे उनके रख देने की स्मृति तक न रहती थी। उनके अभिमुख केवल उनका लक्ष्य ही विराजमान था।

वे प्रत्येक स्थिति मे अपने कल्याण-पथ की ओर वढने का प्रयत्न करते थे। वे समझते थे कि यदि परिस्थितियाँ सभालने मे ही समय समाप्त कर दिया गया तो प्रमुख उद्देश्य आखो मे अदृश्य हो जायगा। अत. जहाँ तक उन परिस्थितियो का उनसे सम्वन्ध होता था, वहाँ तक उन्हे अपने अनुकूल कर वे अध्ययन मे रत हो जाते थे। एक समय दाल के साथ सूखी रोटियाँ और दूसरे समय अल्प मात्रा मे शुष्क भुने हुए चने, इस पर अध्ययन मे अत्यधिक परिश्रम, उनके हृदय मे यह कहलवाने के लिए समुद्यत हो गया कि जो कुछ पूर्व जन्म मे कर आये है, उनके आधार पर जितने और जैसे भोग प्राप्त होते है, उनमे न्यून वा अधिक कोई नही कर सकता। इस जन्म मे किया गया पुरुषार्थ वही तक सफल होता है, जहाँ तक उसके मध्य मे पूर्व किये गये कर्मो के सस्कारो से वना दैव प्रतिवन्धक न हो। और जव वह भोग देकर समाप्त हो जाता है, तव पुरुषार्थ-पथ मे उसके प्रतिवन्धक न रहने पर वह पुरुषार्थ चमक उठता है। इसलिये यह कहना पडेगा कि कर्म की प्रधानता सर्वत्र विराजमान है। सुख और दु ख जो भी मानव जीवन मे आते है, वह उसके कृतकर्मो का ही परिपाक है। इन विचारो की परम्परा मे श्री मुक्तिराम जी ने यह धारणा दृढ वनाली कि चाहे कितनी भी विपत्ति आए, कभी दु ख प्रकट नही करूँगा। यह सम्पूर्ण ससार पहले किये गये कर्म सस्कारो का ही मूर्त रूप है। इसलिये सुख की इच्छा का परित्याग करके निश्चित लक्ष्य का अनुगमन करते रहना ही श्रेष्ठ है। "कार्यं वा साधयेयम् देह वा पातयेयम्" ऐसी उक्तियाँ वीरों ने ऐसे समय पर ही उच्चारित की थी। जव तक दैव सहायक न हो, इच्छाएँ किसी की पूर्ण नही होती। इसलिए न चाहते

हुए भी निर्धनों के यहाँ अधिक सन्तान हो जाते हैं और लाख यत्न करने पर भी अपुत्रो के पुत्र नही होते। न चाहते हुए भी अन्न के अभाव मे और अधिक कष्ट पहुँचाने के लिये जठराग्नि प्रदीप्त हो जाता है। लोग पूर्ण सावधानी रखते है कि घाव में चोट न पहुँचे, पर अदवद से वही लगती है। कष्ट के दिनो मे जब एक व्यक्ति दया-याचना की दृष्टि से मित्रो की ओर निहारती हैं, तब मित्र दूर भागते है और कष्ट देने वाले समीप आते है। आपत्तियाँ अधिक मुँह फाड कर उसकी ओर बढती है। वह कष्ट निवारणार्थ जो भी यत्न करता है, वह निष्फल हो जाता है। मुख की कान्ति परिम्लान हो जाती है। चिररक्षित कीर्ति क्षण भर मे धूलि-धूसर हो जाती है। ऐसी विपत् मे पड़ जाने पर दूसरो के द्वारा किया गया कुकर्म भी उसी के मत्थे मढ दिया जाता है। यह ही दुर्दैव किन्ही पापियो को सौ वर्ष से भी अधिक जीवन प्रदान करता है और यह ही सुकृतकर्मा को नवयौवन मे, जबकि जगत् उसके अधिक जीवन की अभ्यर्थनाएँ करता है, परलोक मे पहुँचा देता है। इसी कर्म के परिणामस्वरूप गृह मे सुरक्षित व्यक्ति को भी सर्प डस लेता है और व्याल समाकीर्ण वन प्रान्तो मे जंगली जातियाँ निर्भय विचरती है। जीवन में ऐसे अवसर आते हैं, जिनकी कभी सम्भावनाएँ भी नही होती। एक धन सञ्चित करके भी उसका उपयोग नही कर पाता और दूसरा उसका बैठ-बैठ उपभोग कर आनन्द मनाता है। अयोध्या नगरी से मर्यादा पुरुषोत्तम राम का वन-वन में विचरण, देवी सीता का अपहरण उसके प्राप्त्यर्थ सुग्रीव से मैत्री और राम का वध, ये सब असम्भावित घटनाएँ ही थी। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और युधिष्ठिर ये सभी सुदृढ़ाङ्ग और बलवान् थे किसी निर्धन के नही, धनवान् पाण्डुराज के सुपुत्र थे, योगीराज कृष्ण भी जिन की पीठ पर थे, ऐसी व्यक्तियो को भी जब भवितव्यता ने ग्रस लिया, तब साधारण प्राणियो का तो कहना ही क्या है ? अत कोई छोटा हो वा बडा, राजा हो वा रङ्क, जब सभी इसके अधीन हैं, तब पुन. चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। इसलिये जैसा भी अवसर होगा, उसी मे अपने कल्याण का मार्ग निकालना होगा। यह ही उचित प्रतीत होता है।

सदसद्विवेकी श्री ब्रह्मचारी जी के समीप भेजे गये पत्र का उत्तर महीने भर प्रतीक्षा करने पर भी जब मन्त्री श्री तेजपाल को न मिला तो वे कलकत्ते से काशी की ओर चल पडे। काशी पहुँचने पर मारवाडी सत्रवासियो ने उनका यथोचित सम्मान किया। लम्बी यात्रा

से श्री मन्त्री महोदय अतिश्रान्त हो चुके थे, अत स्नान आदि से निवृत्ति पाकर वे शय्याशायी हो गये। शय्या-परित्याग के पश्चात् वे एकाकी भ्रमण करने निकल गए। भ्रमण से निवृत्त होकर सबसे प्रथम, सदाव्रत का परिज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होने श्री मुक्तिराम को ही आहूत किया। निर्देश पाकर मुक्तिराम उनके समीप पहुँचे और बोले— "मुक्तिराम जी! मैने आपको एक पत्र यहाँ से जाने के छह-सात दिन पश्चात् कलकत्ता से भेजा था, जो श्री सेठ भूरामल जी के परामर्श से लिखा गया था। हम दोनो ने उसके उत्तर की बहुत प्रतीक्षा की, किन्तु मास पर्यन्त प्रतीक्षा करने पर भी जब हम आप की ओर से निराश हो गये, तो सेठ जी ने मुझे पुन भोजनालय को सुव्यवस्थित रूप देने के लिये प्रेषित किया है, 'कहिए उस पत्र के विषय मे आपने क्या विचारा ?" यह सुनते ही मुक्तिराम कुछ स्मरण-सा करते हुए प-त्-र अच्छा मैं देखता हूँ—यह कह कर ज्यो ही वे पत्र खोजने जाने लगे, तुरन्त मन्त्री जी बोले "प्रतीत होता है आपको वह पत्र नही मिला है। श्री ब्रह्मचारी जी ने उत्तर दिया—"मिला तो होगा पर मैने उसे पढा नही।" "पढा क्यो नही ? क्या मुझ से अप्रसन्न हो गये हो। मैने तो वेदान्त विषय पर आपसे चर्चा करते हुए अपनी मैत्री का हाथ आपकी ओर बढाया था और आपने मेरे पत्र की भी अवेहलना करदी।" महाराज ने प्रत्युत्तर मे कहा—"न तो मैं आपसे अप्रसन्न हूँ और न ही मैंने आपके पत्र की अवेहलना की है। बात ऐसी है "जब मैं घर से यहाँ आया, तो मैने पत्रो को विद्याध्ययन मे बहुत बाधक समझकर प्रतिज्ञा की थी कि हे प्रभो! मैं यहाँ काशी मे, पूज्य पिता सहित समस्त वन्धु वर्ग को परित्याग करके आगया हूँ। ऐसी परिस्थिति मे मेरा यह उत्कट अभिलाष है कि मैं पण्डित-मण्डल के मध्य अपने ज्ञान का परिवर्द्धन करता हुआ शीघ्र ही समस्त सस्कृत वाङ्मय को स्व-अधिकार मे करलूँ। मेरा विचार है कि मैं विद्वान् होकर असहायो का सहायक बनूँ और बिछुडे हुए भाइयो को गले लगाऊँ। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति मे, आपका आश्रय चाहता हूँ। बिना आपके विद्या सरित् मे पडी नौका किनारे नही लगेगी। मेरे उद्देश्य की पूर्ति में मुझे घर से आए हुए पत्र बाधक दीख पडते है, जिनसे मुझे उन की अवस्था का ध्यान आजाता है और चित्त चलायमान हो जाता है। चञ्चलचित्त पुन पाठ को ग्रहण नही कर पाता और गया हुआ पाठ फिर हाथ नही आता, जिससे मुझे पर्याप्त अन्वेदना होती है। अत आप से मैं अति विनीत भाव से निवेदन करता हूँ कि मुझे ऐसा

सामर्थ्य प्रदान कीजिए कि अब से जो भी पत्रादि मुझे प्राप्त हो, उसे बिना पढे ही सन्दूक पेटी के एक कोने मे डाल दिया करूँ। और 'विद्या-समाप्ति के पश्चात् चाहे यह कितना भी लम्बा काल हो, सबको इकट्ठा ही खोल कर देखूँ और उत्तर दे दूँ। तब से जो भी पत्र मुझे प्राप्त होता है, मैं यह भी नही देखता कि कहाँ से आया है और किसने लिखा है। उठाकर पत्र-पेटी मे रख देता हूँ। अत आपका पत्र भी सम्भवत उसी पेटी मे पहुँच गया होगा। मुझे पत्र प्रेषको से कोई द्वेष नही है। सभी का मै हृदय से आदर करता हूँ। यह मेरी एक साधना है। आशा है मेरे हित की दृष्टि से इसे आप सहन करेगे।"

इतना निवेदन करने के पश्चात् श्री मुक्तिराम जी पत्र-पेटी में श्री मन्त्री जी का पत्र देखने चले गये और मन्त्री महोदय भी श्री महाराज की प्रतिज्ञा से अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए, तथा अपनी ही विचार सन्तति मे विलीन हो गये :—

"कैसी अद्भुत और अश्रुत पूर्व विचार सरणी है इस युवक की, जिसे श्रवण कर दाँतो तले अगुली दबाना पडता है। धन्य है वह माता जिसकी कुक्षि से ऐसा पुत्र रत्न जन्मा है, स्तुत्य है वह कुल, जिसने ब्राह्मणत्व की इस परम्परा को स्थिर रक्खा है। सौभाग्यशाली है वह देश, जो भारतीय सस्कृति की अक्षुण्णता के लिए भविष्यत् के गर्भ मे ऐसे उदात्त तनयों का निर्माण कर रहा है और कृतकृत्य है यह मेरा जीवन, जिसे ऐसे होनहार युवक के दर्शन हुए है। यह मनुष्य नही देवता है। भगवान् का साक्षात् रूप है, जो पर-हित की कामना के लिये यहाँ के रूखे-सूखे टुकडे खाकर स्व-जीवन की इतिश्री कर रहा है। प्रणाम है इस विभूति को, जो भारत के भूले-भटके लोगो को सत्पथ का पथिक बनाने के हेतु ब्रह्मचर्य की कठोर तपस्या रूप भट्टी मे नव यौवन के इस कोमल कलेवर को झोक कर अपने भावी जीवन की आधार शिला रखने चला है। कितना उच्च है, इसका आत्मा, जिसके अन्त करण मे आर्यावर्त की दुर्दशा का चित्र इस वय मे ही पूर्णतया चित्रित हो गया है। जिन माता-पिता ने जन्म देकर पाला-पोसा, उनकी सान्त्वनार्थ उन्हे, निज धुन मे दो शब्द लिखने का भी इसे अवकाश नही है। यह उन्हे भी ससार का एक अश मानकर समष्टि रूप से देख रहा है। तुझे शतश. प्रणाम! तुझे शतश. प्रणाम!! तुझे शतश प्रणाम!!! और फिर वे समाधिस्थ-से नितान्त शान्त बैठे रहे। इतनी देर मे श्री वीतराग ब्रह्मचारी जी, मन्त्री महोदय के

पत्र को ले आये। पत्र वन्द था, खोला और पढने लगे। उसमे लिखा था—

श्री मुक्तिराम जी,

जय हरि वाचना

अत्र कुशलम् तत्रास्तु। अपरञ्च वृत्तान्त यह है कि मैं काशी मे आप से भोजनालय के एक कक्ष मे मिला था और भोजनालय के प्रवन्ध सम्वन्ध मे हमारी कुछ वात-चीत हुई थी। मैने आपको श्री सेठ जी की कलकत्ता फर्म का पता भी दिया था, स्मरण होगा। यहाँ आने पर सेठ जी को मैंने सव समाचारो से अवगत करा दिया है। उससे उन्हे वहुत खेद हुआ है। उनका कथन है कि हमने सदावर्त को अवश्य चालू रखना है, क्योकि यह एक पुण्य का कार्य है। हम व्यापार मे फसे रहते है। अवकाश मिलता नही। मुनीम तो अच्छा ही समझकर रखते है। वह उस समय विश्वास पात्र भी वनता है, परन्तु वहाँ बैठकर वह अपना ही उल्लू सीधा करने लग जाता है। निन्दा सदावर्त के सञ्चालको की होती है, जो पूर्णरूपेण निर्दोष होते है. यदि आप हमारे अन्न-सत्र का प्रवन्ध अपने हाथ मे ले ले तो यह हम पर अपार कृपा होगी। आपका उत्तर प्राप्त हो जाने पर मैं काशी आकर मुनीम चुन्नीलाल से अधिकार ले लूँगा। और आपको दे दूँगा। उत्तर की प्रतीक्षा है।

शुभचिन्तक

तेजपाल

पत्र वाच लेने पर स्थितप्रज्ञ श्री युवक ने मन्त्री महोदय से कहा—"यदि मैं भोजनालय का प्रवन्ध सभाल लेता हूँ, तो अध्ययन में मुझे पर्याप्त हानि होगी।" प्रतिवचन मे मन्त्री जी वोले—"प्रवन्ध के कारण जितनी क्षति पहुँचने की सम्भावना है। आपके सुचारु प्रवन्ध से उसकी पूर्ति अवश्यम्भावी है" फिर महाराज ने कहा—"आपके भोजनालय मे अधिकतर भिखमगे, निकम्मे, आलसी, गुण्डे, दुराचारी पुरुष भोजन लेते है, पण्डितो की संख्या तो अति न्यून है। ऐसी अवस्था मे श्री सेठ जी के सत्र चलाने मे कोई लाभ नही" मन्त्री तेजपाल ने श्री मुक्तिराम के इस कथन पर सहमति प्रकट की और वोले—"आप उत्तमोत्तम व्यक्ति को इस सत्र मे स्थान दीजिए, यह चुनाव आपके अपने अधिकार की वात है। हमे प्रकर्ष हर्ष होगा कि हमारा दान

सुपात्रो को पहुँच रहा है।' कुशल ब्रह्मचारी ने एक बात और पूछी—"मन्त्रिवर! जब आप यह सब कुछ करने को समुद्यत है, तब यह शोभा की बात प्रतीत नही होती, कि आप सरीखे सहृदय दानियों के प्रबन्ध से पण्डित समूह मध्याह्न मे प्रसन्नता से भोजन पावे और सायकाल भूंगड़े चबावे। यदि सायाह्न के लिये प्रति व्यक्ति दो, दो परामठो का प्रबन्ध कर दिया जावे तो आपका अन्न-सत्र काशी के सभी सत्रो में उच्चशिखर पर होगा। कहिए इसमे आपको क्या वक्तव्य है?" मेधावी मुक्तिराम के इस वचन से मन्त्रिराज गद्गद् हो गये और बोले—"यह तो आपकी अति प्रशस्त सम्मति है, इससे हमारा क्षेत्र चमक उठेगा। इसमे अस्वीकार को अवकाश कहाँ?" फिर ब्रह्मचारी जी का ध्यान भोजनालय के लेखे की ओर चला गया, यद्यपि वे गणक-कार्य बहुत अच्छा जानते थे फिर भी कहने लगे, "मैं लेखे के झमेले में नही पडना चाहता, यह उत्तरदायित्व आपका ही रहेगा।" प्रतिवचन मे मन्त्री जी बोले—"लेखा तो अभी तक भी हो रहा था, केवल इस लेखे के विवरण से समस्या का समाधान नही होता। अब यह प्रबन्ध गणक के हाथ मे न देकर धन के एक सदुपयोगी को दे रहा हूँ। कर्मचारियो समेत ३५ व्यक्तियो के भोजन पर जो व्यय आये उससे हमे सूचित करते रहिए, हम कलकत्ते से भेजते रहेगे।"

भोजनालय के प्रबन्धक

चुन्नीलाल, सत्र से चलते कर दिये गये। भोजन-सत्र का प्रबन्ध आदर्श विद्यार्थी जी के अधीन हो जाने से विद्यार्थियो को अति उल्लास हुआ। यह उनके सौभाग्य का प्रथम दिन था। भोजन सत्र को स्वायत्त कर लेने पर समदर्शी श्री मुक्तिराम जी ने अपने लिये वैयक्तिक रूप से यत्किञ्चित भी विशेष प्रबन्ध नही किया। वे उसी समय, उसी पङ्क्ति मे, सबके साथ बैठकर, भोजन कर लेते थे। छात्रों ने श्री महाराज से कुछ विशेष ले लेने का आग्रह भी किया किन्तु उन्हे यह भेद भला प्रतीत न हुआ। ऐसे अवसरो पर जबकि समस्त अधिकार मनुष्य के निज हाथो मे हो, उनके सम्मुख अनागत का दृश्य वर्तमान वन जाता था। उन्हे पहले ही झलक आ जाती थी कि वर्तमान समय मे किए ये विशेष आचरण भविष्यत् मे जाकर अत्यन्त विपरीत परिणाम दिखाया करते है और उस समय कुछ करते नही बना करता। अत कठिनाई सहन करके भी मनुष्य को मनुष्यत्व का प्रग्रह अति दृढता के साथ पकडे रहना चाहिए। सङ्घटन को विघटन

करने वाला सदा वैपम्य ही हुआ करता है। वे विचारने लगे—"समता से सौहार्द्र की भावनाए जन्म लेकर मनोमन्दिर मे द्वेप को निवास का स्थान नही लेने देती। यह ही देवताओ की सरणी है, देव बनने के लिए इसे पहले ही स्वीकार कर लेना चाहिए। समता एक ऐसी शक्ति है, जो सबको एक सूत्र मे पिरो देती है। धर्म का सच्चा स्वरूप समानता ही है और भेद-भाव सदा अधर्म को जन्म देता है। जो मनुष्यो से सुख का अपहरण करके उन्हे दु ख सागर मे डुबो देता है। ऐसी बाते हमे कुछ पशु पक्षियो से भी सीखनी चाहिए। वानर सदा सङ्गठन मे रहते है। जङ्गलो मे हिरणो की पक्तियो की पक्तिया घूमती है। किसी एक काक पर आपत्ति आ जाने पर सभी काक एकत्रित हो जाते है। मधुमक्खिया एकाकी रहना पसन्द नही करती। इसलिए मुझे भी ऐसा जीवन नही बिताना चाहिए, जो एकाङ्गी न हो जाये। सभी के साथ अन्न का समान भाग लेना भोजनालय को नीव को सुदृढ करेगा और इसके दृढ रहने पर देश के अधिक से अधिक ऐसे विद्यार्थी विद्योन्नति कर सकेगे, जो भविष्यत् मे ससार के सुधार का प्रमुख अङ्ग बनेगे। इस प्रकार भोजनालय का प्रबन्ध सम्भालना तत्त्वदर्शी परम सहिष्णु श्री मुक्तिराम के लिए सामाजिक सेवा के क्षेत्र मे प्रथम चरण था। यह उन्हे दृढ विश्वास था कि सुख और दु ख कालान्तर मे परिवर्तित होने वाले अस्थिर पदार्थ है। इसके चक्कर मे आकर धर्म छोड बैठना, अन्त:करण को मलीन बनाना है। अत. वे अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा मे यदा कदा गाया करते थे।

> कस्यात्यन्त सुखमुपनत दु खमेकान्ततो वा,
> नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

साहित्य-अध्ययन

साहित्य शिरोमणि श्री पण्डित देवीप्रसाद जी शुक्ल अपने विषय के काशी नगरी मे एक ही थे। उनकी अध्यापन शैली अति सरल एव सर्वोत्तम थी। उनके बुद्धि-वैभव का पता तो तब लगता था, जब वे एक श्लोक मे से अनेको अर्थ निकालते थे। इतना ही नही यदा-कदा ऐसा भी हो जाता था कि सीधे रूप से श्लोक का जो अर्थ हो रहा है, उसे उलटा बाँचने पर ठीक उसके विपरीत हो रहा है। यह भी उनमे एक विशेष बात थी कि समीप मे पान से भरी रक्खी हुई एक टोकरी पढाते ही पढाते रिक्त कर देते थे, जिसमे लगभग साठ पान होते थे। श्री आदर्श

ब्रह्मचारी जी ने साहित्य का विशेष भाग श्री शुक्ल जी की चरण-सेवा में रह कर ही पारित किया। श्लोक रचना का प्रभूत अभ्यास श्री महाराज को गुरु-सेवा का ही प्रसाद था। गुरु की अन्तेवासिता मे महाराज ने अमर कोष भी कण्ठगत कर लिया था। उन दिनो श्री मुक्तिराम ने संस्कृत साहित्य का पाठन भी साथ-साथ प्रारम्भ कर रखा था। इससे महाराज को लाभ यह हुआ कि उनकी साहित्य मे विशेष प्रगति हो गयी।

कहते है संस्कृत साहित्य प्राय अश्लीलता से भरा हुआ है, यहाँ, तक कि वेदो मे भी हीन उपमाएँ अधिक है, तब वह विद्यार्थियो पर अपनी छाप लगाए बिना नही रहता। महाराज ने भी इसी साहित्य का परिशीलन किया था, अल्प नही, प्रभूत किया था, परन्तु महाराज इससे अछूते रह गये, यह एक आश्चर्य है। ऐसे साहित्य पर महाराज का यह भारी विजय है। इस सम्बन्ध में पूछने पर श्री मुक्तिराम जी कहा करते थे—"जिसके अन्त.करण मे तज्जन्य सस्कार इस जन्म के हो अथवा पूर्व जन्म के, उसे ही वह अश्लीलता अपनी ओर आकर्षित करती है और जिसके भीतर वे सस्कार दग्धबीज की भाँति योग रूप ज्ञानाग्नि से दग्ध हो चुके हो, चाहे वे इस जन्म में हुए हो कि वा पूर्व जन्म मे, विषय के अभिमुख होते हुए भी उसमे क्रिया-सञ्चालन की लहरे नही उठती। जिसका सुवर्ण मे राग है, विरक्ति नही है, उसीके लिए सुवर्ण का कुछ मूल्य है, पूर्ण वैरागी के लिये, तो वह केवल मिट्टी-पत्थर का रूपान्तर मात्र है। मनुष्य मे पतन का जो कारण है, उसमें विषय की इतनी कारणता नही है, जितनी उसके अन्त करण मे उसके अपने संस्कारो की। भगवान् की सृष्टि मे सार्वत्रिक विषयो का अभाव नही किया जा सकता। हा, अपने सस्कारो का क्षय उसके अपने हाथ की बात है। अत जब तक अपने ही भीतर के संस्कारो का नाश नही किया जावेगा, तब तक विषय के सम्मुख न आने पर भले ही कोई अपने को संयमी समझे, किन्तु विषय के सम्मुख होते ही वह अपने ही सस्कारो का दास बन जावेगा और उसके सयम का बाध टूट जावेगा। जिसे जगत् मे ही घोर नरक भोगने का अभिलाष हो, वह भले ही ब्रह्मचर्य का पालन न करे; किन्तु जिसने इसे जगत् को जीतने का एव सभी प्रकार की शक्तियों के सञ्चय का आगार माना है, वह इसके संरक्षण मे प्राणोत्सर्ग तक के लिये भी समुद्यत रहा है। निरन्तर दीर्घ काल तक भगवान् को स्तुति प्रार्थना और उपासना, ब्रह्मचर्य विरोधी

संस्कारो के क्षय करने मे प्रमुख साधन मानी जाती है और उनका सर्वथा निर्मूलन तब ही माना जाता है, जब एक योगी, जीवन्मुक्त कोटि मे पहुँच जाता है।

ब्रह्मचर्य विरोधी सस्कारो को उत्तेजित करने के लिए जो साहित्य का निर्माण हुआ है, वह ही अश्लील कोटि मे गिना जाता है। उसका विरोध करना सर्व साधारण की दृष्टि से अनिवार्य हो जाता है। वेद इस दोष से सर्वथा शून्य है।

स्वसञ्चालित मारवाडी सदावर्त मे उस दान्त, शान्त ब्रह्मचारी मुक्तिराम जी ने कहार और पाचक के अतिरिक्त बत्तीस भोजनार्थी रखने थे। पैंतीसवे वे स्वय आप थे। कुछ पण्डितो समेत पच्चीस विद्यार्थी वहाँ प्रथम से थे। सात व्यक्तियो का स्थान रिक्त था। उसकी पूर्ति पाठशालाओ से सुशील एव विनीत विद्यार्थियो का चयन करके करली। भिखमगे आदि जो भोजनशाला से भोजन लेकर शेष पूर्ति के निमित्त दूसरे भोजनालयो की देहली झाकते थे, उनका वहाँ प्रतिषेध कर दिया गया। कारण कि वह क्षेत्र श्री सेठ जी की ओर से ब्राह्मणो और छात्रो के लिये ही सञ्चालित किया गया था। क्षेत्र मे निवास करने वाले विद्यार्थियो मे कुछ पहले से ही सुशील थे और पाँच सात अर्ध सुशील। यत. महाराज सुधारकत्व का गुण जन्मत मातृ कुक्षि से लेकर आये थे; अत. वे जानते थे कि सुधार उन्ही का किया जाता है, जो सुधार की अपेक्षा रखते है। पाँच-सात उन अर्ध सुशील छात्रो पर महाराज की कोई प्रतिक्रिया नही हुई। महाराज की सुतीक्ष्ण दृष्टि समझ गई कि अब इनका सुधार स्वत हो जायेगा। उनके जीवन मे वाक् सयम, वाङ्-माधुर्य, ब्रह्मचर्य, तपोवृत्ति, सत्य-वक्तृता, धर्म-परायणता, व्यवहार-कुशलता और मनोरमा काय-कान्ति आदि ऐसे विशिष्ट गुणो का समावेश था, जिनसे श्री चरणो की कीर्तिचन्द्रिका दिनो दिन काशी नगरी मे जन समुदाय, छात्र-समूह और पण्डित मण्डलाकाश मे मालती सुमनस सौरभ के समान स्वत. ही छिटक रही थी। जैसे-जैसे श्री मुक्तिराम द्वारा किये भोजनालय के सुचारु प्रबन्ध एव सुव्यवस्थित भोजन का समाचार लोक चर्चा का विषय बनता गया, वैसे-वैसे अन्य क्षेत्रो की निन्दा भी साथ ही साथ फैलती चली गयी। क्षेत्र स्वामियो को यह अपना अपवाद-प्रसार असह्य प्रतीत हुआ। ऐसी अवस्था मे उनके सम्मुख दो ही पक्ष थे लोक-परिवाद से बचने के लिये अपने क्षेत्र को समाप्त कर देना, अथवा उसका कोई समीचीन प्रबन्ध करना। प्रथम

पक्ष द्वितीय पक्ष की अपेक्षा निर्बल जान पड़ा, अत द्वितीय पक्ष को निश्चित करके सुयोग्य प्रबन्धको की खोज होने लगी; किन्तु यह वेल मढ़े चढने वाली न थी। इस कारण सत्र-सञ्चालको ने उनका अपना भोजनालय सभालने के लिये श्री मुमुक्षु मुक्तिराम जी से ही सानुरोध अभ्यर्थना की। महाराज ने सवका प्रवन्धक बन जाने मे अपनी अक्ष-मता प्रकट का, क्योंकि, ऐसा करने मे उनको पठन-पाठन मे महती क्षति दीख रही थी। फिर भो चार पाँच क्षेत्र महाराज के मत्थे मढ़ ही दिये गये।

चारु प्रवन्धक श्री मुक्तिराम जी का चढता हुआ वह नवयौवन इतनी कार्य क्षमता रखता था कि उन्होने स्वाधीन किसी भी भोजनालय के प्रवन्ध मे न अव्यवस्था आने दी और न ही अध्ययनाध्यापन में कोई कमी। उन दिनो महाराज के जीवन मे ब्रह्मचर्य के चरम तप से एक मदमाति मस्ती भरी हुई थी।

काशी के दार्शनिक विद्वान्

गौराङ्ग प्रभुओ को भारत मे अपना प्रभुत्व स्थापिन करने, राज्य को सुदृढ वनाने और उसका शासन सूत्र निरन्तर चालू रखने के लिये तदनुकूल ही कर्मचारी वर्ग की अपेक्षा थी; अतः उन्होने समस्त देश मे आंग्ल पद्धति के विद्यालयो, महाविद्यालयो और उनके पश्चात् विश्व विद्यालयो की स्थापनाएं प्रारम्भ करदी। जिनका परिणाम यह हुआ कि भारत के होनहार नवयुवक भारतीय संस्कृति को तिलाञ्जलि देकर अँग्रेजो शासन से आकर्पित होने लगे। श्री महामना मदन-मोहन मालवीय इस गहरी चाल को समझ गये। उन्होने अपने प्रभूत परिश्रम से सस्कृत विद्या के प्रधान केन्द्र काशी नगरी मे संस्कृत विश्व विद्यालय की स्थापना करदी और सन्तोष का सास लिया कि मेरा लगाया हुआ यह पौधा यदि फलीभूत हो गया, तो कम से कम अपनी भारतीय सस्कृति विनष्ट होने से बच जायगी और वह विपथ गामी रिपुओ से परित्राण पाकर यथा समय अपना रङ्ग भी दिखाए विना न चूकेगी। उस समय महामना श्री मालवीय जी की इस गम्भीर अनुभूति की चेतावनी को, वहुत कम पुरुष समझ पाये थे। हिन्दू विश्वविद्यालय मे जव सस्कृत की प्रथमा मध्यमा, शास्त्री और आचार्य परीक्षाओ का प्रवन्ध हुआ, तव विद्यार्थी प्रलोभन देने पर भी उस ओर आकर्षित नही हुए थे और कहा करते थे कि सरकार हमारी परीक्षाये क्या लेगी!

परीक्षाएं तो हमारे गुरु जन ही ले सकते है। उनकी वात भी ठीक थी उस समय काशी में एक-एक अपने विषय का ऐसा अश्रुत पूर्व विद्वान् विद्यमान था, जिस के वलबूते पर भारत वर्ष गौरवान्वित हुआ-हुआ अन्य देशो में भी अपने अस्तित्व को स्थिर किये हुए था। इस प्रसङ्ग में हम श्री रायखाल न्यायरत्न तर्कवाचस्पति का नाम न भूलेगे, जो सुयोग्य विद्यार्थी श्री मुक्तिराम के न्यायदर्शन विपय मे गुरुवर्य श्री शङ्कर भट्टाचार्य के गुरुराज थे। उनकी पावन स्मृति से हम सवके मनो मन्दिर पवित्र हो जायेगे। तर्क शिरोमणि की समस्त विद्वन्मण्डल पर गहरी छाप थी। वे न्याय के अतिरिक्त दूसरा ग्रन्थ पढना तो दूर रहा, उनका नाम लेने में भी अपनी हीनता समझते थे। उन्होंने श्री शङ्कर भट्टाचार्य को न्याय वारह वार पढाया। जव प्रथम वार पाठ समाप्त हुआ तव गुरुदेव ने पुछा—"न्याय समझ मे आया या नही ?" शिष्य ने मृत स्वर मे कहा, "हाँ, गुरुजी ! समझ तो गया हूँ।" गुरुवर्य वोले—"अभी तुम्हे कुछ नही आया।" दूसरी वार पढाया, तीसरी वार पढाया। फिर पूछने पर शिष्य ने कहा—"गुरुजी ! वीच-वीच मे कुछ शकाएँ होती है।" तव प्रसन्न मुद्रा मे श्री रायखाल वोले—"वेटा अव कुछ-कुछ समझने लगे हो।" इस प्रकार पढाते पढाते जव वाहरवी वार पाठ समाप्त हुआ तो शिष्य शङ्कर भट्टाचार्य स्वय वोल उठे—"गुरुदेव ! यह तो सारा अशुद्ध है। रचयिता ने वहुत ही अशुद्ध ग्रन्थ लिख डाला। जिधर से भी देखो कोई सिद्धान्त ठीक ही नहीं वैठता।" तव रायखाल न्याय रत्न ने शिष्य की पीठ थपथपाते हुए कहा—"वेटा अव न्यायशास्त्र मे पारङ्गत हुए हो। अव तुम्हारी वुद्धि तर्क-वितर्क करते हुए इतनी प्रखर हो चुकी है कि जिस वात को उलटा सीधा जैसा भी सिद्ध करना चाहो, कर सकते हो। शिष्य गद् गद् हो हो उठा और गुरु-चरणो मे मस्तक नमा, अति विनय भाव से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा—"गुरुदेव ! कुछ सेवा ?" रायखाल वोले—'वेटा ! सेवा नही कर सकोगे।" शिष्य ने आत्म-समर्पण की भावना से निवेदन किया—"गुरुदेव ! आदेश दीजिए-यह शिष्य सव कुछ करने को समुद्यत है।" तव रायखाल ने कहा—"अच्छा जल ले आओ" जल ले आने पर पुन कहा—"अञ्जलि वनाओ।" शिष्य ने अञ्जलि वनाली। गुरु ने उसमे जल डाला और कहा—"वोल", न्यायातिरिक्तं ग्रन्थ न स्प्रक्ष्यामि, न श्रोष्यामि अध्ययनाध्यापन तु तावत् तिष्ठतु सान्यासिकम्।" शिष्य ने सारा वाक्य दुहरा दिया कि न्याय मे

भिन्न ग्रन्थ न स्पर्श करूँगा, न सुनूँगा, पढ़ना पढाना तो दूर रहा।" शिष्य ने इस व्रत का पालन आयुपर्यन्त किया।

श्री रायखाल न्यायरत्न बहुत वृद्ध हो चुके थे। श्री शङ्कर भट्टाचार्य को उनकी विद्या विरासत मे मिली थी। जब श्री भट्टाचार्य जी मुक्तिराम जी को न्याय पढ़ाते थे, तो शिष्य की विलक्षण बुद्धि को देख कर मन ही मन अति प्रसन्न होते थे। गुरु-शिष्य मे अतिशय अनुराग हो गया। मुक्तिराम जी शिष्यानुरूप सेवा से कभी नही चूकते थे। कभी-कभी श्री भट्टाचार्य श्री मुक्तिराम को अपने गुरुवर रायखाल जी के चरणो मे भी ले जाया करते थे और कहा करते थे—"गुरुदेव! मुक्तिराम न्याय के अतिरिक्त और भी ग्रन्थ पढ़ता है।" गुरु की ओर से उत्तर मिला—"मूर्ख है, समझ नही, पढ़ पढ़ाकर भी मूर्ख ही रह जायेगा।"

श्री शङ्कर भट्टाचार्य के अन्य शिष्यो ने अपने गुरु से एक दिन परिवाद रूप मे निवेदन किया "भगवन्! आपके शिष्य मुक्तिराम जिन्हे आप अति योग्य समझते है। मन्दिर मे शिवार्चन आदि कुछ भी नही करते। भट्टाचार्य को विश्वास न आया और बोले, "यह कभी हो नही सकता कि इतना गुरु-भक्त शिवार्चन भी न करे।" दूसरे दिन भट्टाचार्य ने महाराज से पूछा? "क्यों मुक्तिराम तुम पूजा पाठ कुछ भी नही करते?" शिष्य ने उत्तर दिया—"गुरुजी! मन्दिर मे बहुत हल्ला गुल्ला होता है। मैं प्रतिदिन अपने मनोमन्दिर मे ही पूजा पाठ कर लिया करता हूँ।" "क्या भजन करना जानते हो!" गुरु के ऐसा पूछने पर शिष्य ने कह दिया—"हा, गुरुदेव!" इस उत्तर से श्री भट्टाचार्य अति हर्षित हुए और इस विषय में पुन: कभी चर्चा नही हुई। उन दिनो सिद्धि प्राप्त करने के लिये श्री ब्रह्मचारी जी दुर्गा स्तोत्र आदि का पाठ भी किया करते थे।

महर्षि गोतम प्रणीत न्याय दर्शन, जिस पर वात्स्यायन मुनि का भाष्य है, पढ़ने की उन दिनो प्रणाली न थी। नव्य-नैयायिक इस प्राचीन न्याय को कोई महत्त्व नही देते थे। श्री मुक्तिराम ने इस न्याय दर्शन को श्री भट्टाचार्य से पढ़ना चाहा। पहले तो उन्होने अस्वीकार कर दिया किन्तु, पुन: पुन आग्रह करने पर इसका भी पाठ आरम्भ कर दिया। इसमे पढ़ाने की रुचि न होने पर कह दिया करते थे कि हमें पता नही लगता क्या लिखा है? परन्तु जब भी कभी किसी पङ्क्ति को समझाते, तो उस समय एक-एक पदांश को स्पष्टतया ऐसा झलका

दिया करते थे, मानो सम्मुख साक्षात् ऋषि वात्स्यायन ही विराजमान है।

अलौकिक बौद्धिक परिचय

प्रतिभाशाली ब्रह्मचारी जी ने श्री शङ्कर भट्टाचार्य से महर्षि गोतम प्रणीत न्याय दर्शन का प्रथम अध्याय ही पढा था, शेप अध्यायो को नव्य न्याय पर विशेप अधिकार रखने वाली अपनी मेधावी बुद्धि द्वारा ज्ञान गत कर रहे थे कि विचार करते-करते एक दिन निग्रह स्थान मे वात्स्यायन भाष्य के पाठ की सङ्गति नही लगी। श्री भट्टाचार्य से भी वह पाठ दिखा कर समाधान कराना चाहा, परन्तु उन्हे भी कुछ सूझ न पडी। महाराज मे यह एक विशेष गुण था कि जब तक कोई अश समझ मे न आए, तब तक वे पाठ मे आगे नही बढते थे। ऋषि-प्रणीत ग्रन्थो मे श्रद्धा इतनी थी कि उन्हे समझ मे न आने पर एका-एक अशुद्ध निर्णीत न करते थे। अत. बार-बार पीछे से सम्बन्ध लगाते हुए उस स्थल को समझने का प्रयत्न करने लगे। बुद्धि पर बल बहुत पडा, एक प्रकार से अपने आप मे खोये गये से हो गये। प्रबल प्रयत्न के पश्चात् परिणाम यह निकला कि इस स्थल पर कुछ पाठ छूट गया है अत· डेढ पक्ति भाष्य की भाषा से मिलती सी वहाँ और लिख दी और आगे पीछे की सब सङ्गति ठीक करली। एक वर्ष पश्चात् जब न्याय दर्शन का नया प्रकाशन आरम्भ हुआ, तो बाबू भगवान् दास जी के निज पुस्तकालय से हस्तलिखित पुस्तक मगायी गयी, जिसके आधार पर नवीन प्रकाशन का सशोधन किया गया। सशोधन करते-करते जब उस स्थल पर आये, तो वहाँ पाठ छूटा हुआ पाया गया और वह अक्षरश. वही था, जो इस प्रतिभाशाली विद्यार्थी ने अपनी ओर से वहाँ बढा लिया था। इस अघटित पूर्व घटना मे श्री मुक्तिराम की बुद्धि की विलक्षणता का सिक्का विद्वन्मण्डल मे बैठ गया और वे सभी महाराज को स्नेह से निहारने लगे।

विद्वत्समूह के लिये श्री मुक्तिराम जी की यह घटना यद्यपि आश्चर्यपूर्ण थी, पर इस निस्पृह ब्रह्मचारी पर इसका कोई प्रभाव न हुआ। ऐसे अवसरो पर स्व-ख्याति को प्रसारित करने के निमित्त अन्य जन यथोचित प्रसङ्गो पर उसका बखान करते नही अघाते, पर मुक्तिराम थे, जो मुख से चर्चा करना तो दूर, इतरजनो से इसके श्रवण मे भी सकुचाते थे। हाँ इतना फल अवश्य हुआ कि जो विनय

पूर्वत विद्यमान था वह विनय हंस उनके हृदयमानसरोवर में पूर्वापेक्षा अधिक कल्लोल करने लगा। यह जितेन्द्रियता की पराकाष्ठा है। कवि ने ऐसे स्थल पर क्या ही सुन्दर कहा है—

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणम्,
गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते।
गुणप्रकर्षेण जनोऽनुरज्यते,
गुणानुराग-प्रभवा हि सम्पदः॥

दण्ड प्रचालन में निपुण

नागरिको के विश्राम करने के लिए काशी नगरी मे उद्यान स्थल थे। पूर्णिमा के दिन सायाह्न मे वहाँ मेला भी भरता था। भिन्न-भिन्न विद्यापीठो के छात्र भी ऐसे मनोरम स्थान मे अपनी विद्या को प्रखर बनाने के लिए विद्या-गोष्ठी का आयोजन करने लगे। नव्य-न्याय पर शास्त्रार्थ होने वाले सभा मण्डप मे श्री मुक्तिराम जी ने भी जाना प्रारम्भ कर दिया। वे नव्य-न्याय के निष्णात छात्रो मे अग्रणी थे। शास्त्रार्थ सस्कृत भाषा मे किये जाने की परिपाटी चली आ रही थी, अत. विद्यार्थी प्रवर श्री मुक्तिराम भी नव्य-न्याय की न्याय मुक्तावली के समान अवच्छेदकावच्छिन्न समन्वित भाषा ही बोलने लगे। इससे उनका न्याय-विषय प्रखरतर होता चला गया। एक दिन पराजित छात्रो ने ब्रह्मचारी मुक्तिराम को पीटने का सङ्कल्प कर लिया। एकान्त में उन्हे एकाकी देख अनेक लठैत छात्र उन पर टूट पडे। सयोगवश उनके हाथ में उनका मोटा सोटा न था। उन्होने लपक कर एक की लाठी छीन ली और लाठी प्रहार का वह पद चालन किया कि सब हतोत्साह होकर वहाँ से चलते बने। पराजित छात्रो को तब पता लगा कि यहाँ किसी प्रकार भी दाल गलने वाली नही है।

अध्यापन कार्य

परोपकारपरायण प० श्री मुक्तिराम जी अपने पठन के साथ-साथ पाठन का कार्य भी किया करते थे। पण्डित जी की सुविधा के लिये मन्त्री तेजपाल ने उसी अपने क्षेत्र मे एक पाठशाला का प्रबन्ध कर दिया जो कुछ ही दिनो मे अच्छी चमक उठी। उनमे कुछ ऐसे छात्र भी थे, जो महाराज की कीर्ति से अपने कान पवित्र कर चुके थे। एक छात्र बोला—"पण्डित जी ! हमे भी कुछ ऐसा उपाय बताइये, जिससे

हममे भी कभी आपकी भाँति बुद्धि का चमत्कार प्रकट हो। महाराज ने कहा—"यह तो जब होना होता है स्वय ही हो जाता है, मैं तो केवल अपने आप को प्रत्येक स्थिति मे प्रसन्न रखने की चेष्टा करता हूँ। छात्र इतने से मानने वाला न था, वह कुछ न कुछ उनके अन्त-स्थल से निकालना चाहता था, अत निवेदन किया कि मन को प्रसन्न रखने के उपाय ही बता दीजिये, इस पर महाराज ने सबको सावधान करते हुए कहा—"देखो, चित्त की प्रसन्नता एक ऐसा अनुपम वस्तु है, जिससे गुरुगत विद्या प्रसन्न विद्यार्थी के चित्त मे स्वत ही चली जाती है, क्योकि प्रसन्न चित्त व्यक्ति ही पाठ के समय एकाग्र रह सकता है और एकाग्रता विद्या-प्राप्ति का प्रमुख साधन है। इसलिए इस एकाग्रता को सम्पादन करने के लिए मन की स्वच्छता के उपायों का अन्वेषण करना ही होगा। जब भी किसी से सम्भाषण करो, अपने वचनो को अति प्रिय बनाकर बोलो, जो भी कार्य करो, करने से पूर्व यह अवश्य देख लो कि इससे मेरी भलाई के साथ दूसरो की हानि तो नही हो रही है। यत्न यही हो कि कुछ न कुछ दूसरो की भलाई अवश्य हो। यद्यपि व्यक्ति के अपने अन्तरङ्ग कार्यो मे परहित की स्पष्टतया झलक नही आयेगी, किन्तु अपने सुधार मे भी दूसरे का सुधार अन्तर्हित होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, ऐसे ही जैसे शरीर का एक अङ्ग, यदि शरीर का कोई भाग विकारयुक्त है तो पीड़ा सारा ही शरीर अनुभव करता है। हाथ-पग आदि स्वस्थ अवयव भी अपना काम बन्द करके विकारी अङ्ग को ठीक करने मे उस समय प्रमुखता देते है, इसी प्रकार समाज मे व्यक्ति यदि अपने आपको सुधार ले तो उससे दूसरे को पीड़ा नही होती और समाज निर्भय होकर अपना कार्य करता रहता है। वह दूसरो के कार्यो मे बाधक नही होता। इस प्रकार अपना सुधार करना भी परोपकार मे सम्मिलित हो जाता है और जो कोई इससे आगे बढना चाहे, तो सुधरा हुआ मानव ही दूसरो का सुधार कर सकता है। तनिक विचार कर तो देखो—गला-सडा अङ्ग शेष शरीर की क्या परिचर्या करेगा, वह तो स्वयं ही कृपाकाक्षी है। हाँ, तो जब मनुष्य प्रिय वचन बोलता है, तब सबसे पहले उस प्रिय वचन से उसी के हृदय मे प्रसन्नता होती है। दूसरो को तो वे अच्छे लगते ही हैं। अत आपके समीप वह वार्तालाप करने दुबारा भी आयेगा। दूसरे की निन्दा तो कभी करनी ही नही चाहिए, इससे अपना हृदय सबसे पहले कलुषित होता है। इसके पश्चात् सुनने वाले का और जिसकी निन्दा की जा रही है, परोक्ष मे

उसके सुधरने की कोई आशा नही। दूसरो का उपकार करके सदा भुलाते रहो। उसमें प्रत्युपकार की भावनाओ को मन में स्थान न लेने दो। और यदि कोई किसी अवसर पर हमारे कार्य मे सहायक बने तो कार्य-समाप्ति पर साधुवाद के रूप में उससे कहो कि आपका उपकार मुझ में ही समाप्त हो जाये, यह प्रत्युपकार का रूप धारण न करे। प्रत्युपकार का अर्थान्तर होता है दूसरे पर विपत्ति चाहना। सो प्रभु ऐसा कभी न करे। इसलिए 'प्रत्युपकार' शब्द सज्जनो के कोष मे नही है।

यदि कोई कुलीन नही है तो उसे चाहिये कि वह अपने सद्व्यवहारो द्वारा स्वय को कुलीन बनाने की चेष्टा करे। अपने दोषो को चुन-चुन कर निकाले। जो शक्ति दूसरो को सताने मे मनुष्य लगाता है, उस शक्ति को अपने सुधार मे व्यय करे। यह एक रहस्य की बात है जिसे सदा स्मरण रखना चाहिए कि दूसरो के गुणो का दिग्दर्शन करने से मनुष्य के अपने ही गुणो का प्रकाश होता है और निन्दा करने से अपने दोषो का। गुण वर्णन से चित्त प्रसन्न रहता है और सुधार का पथ विस्तृत हो जाता है।

श्री मुक्तिराम जी की जहा अपनी पाठशाला थी, वहा से स्वय पढने के लिए उन्हे बहुत दूर जाना पड़ता था। वे लगभग चार-चार पाच-पांच मील दूर जाते थे। समय कम होता था, अतः श्री मुक्तिराम जी को बहुत तीव्र गति से चलना पडता था, यह तीव्र गति उनके स्वभाव में आ चुकी थी। वायु हो, गर्मी हो—सर्दी हो और चाहे वर्षा हो, श्री मुक्तिराम कभी भी अध्ययन-पाठशाला से अनुपस्थित नही हुए। अपने विषय के सभी गुरु महानुभाव ऐसे सुशील, योग्य, गुरुभक्त और प्रतिभा सम्पन्न शिष्य को पाकर प्रसन्न होते हुए अपनी विद्या की सफलता अनुभव करते थे। श्री मुक्तिराम जी को श्री स्वामी मनीषानन्द जी से भी दर्शनशास्त्र पढने का अवसर मिला। वे अध्यापन आरम्भ करने से पूर्व छात्रो की परीक्षा लिया करते थे। जो उस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता था, वे उसे ही पढाते। सेवावृत्ति-रहित छात्रो के लिए इनके कपाट सदा अवरुद्ध रहते थे। श्री मुक्तिराम जी तो बहुत ही गुरुभक्त थे, स्वामी मनीषानन्द जी उन से बहुत ही प्रसन्न रहा करते थे। श्री मुक्तिराम जी ने चिन्न स्वामी जी से मीमांसा दर्शन और पण्डितराज सीकर से भी कुछ ग्रन्थो का अध्ययन किया। व्याकरण

का कुछ अध्ययन श्री मुक्तिराम जी ने श्री हरिनारायण जी त्रिवेदी से भी किया था, जो उन दिनो श्री अपारनाथ जी की पाठशाला मे पढाया करते थे।

चरित्र रक्षक मुक्तिराम

श्री पण्डित मुक्तिराम, जहाँ विद्यार्थी मण्डल मे अपनी विद्या के कारण शिरोमणि कहलाये जाते थे, वहाँ उनकी सच्चरित्रता की प्रचण्ड अनुभूति भी कर्णपरम्परा से आवाल वृद्ध मे प्रसार पा रही थी। उनका मोटा सोटा जहाँ उनके ब्रह्मचर्य का प्रतीक था, वहाँ समय पर अवलो का सहाय भी वनता था। जव भी कभी उन्हे कोई सवल पुरुप निर्वल को सताता दृष्टिगोचर होता, तो वे अपने उस दण्ड को निरर्थक नही रहने देते थे। दण्ड-प्रचालन मे श्री मुक्तिराम सिद्धहस्त थे।

आदर्श ब्राह्मण श्री मुक्तिराम जी की इस कार्यपटुता, चरित-चातुरी, अप्रतिभ प्रतिभा और सहृदयता को देखकर आर्यसमाज के तीन छात्र सत्यव्रत,* विष्णुदत्त† और स्वामी सहजानन्द‡ आपकी ओर आकर्पित हुये। ब्रह्मचारी विष्णुदत्त ने श्री पण्डित मुक्तिराम जी से न्यायदर्शन पढा देने के लिए निवेदन किया। यद्यपि श्री महाराज पौराणिक समाज से उद्भूत थे, फिर भी वे आर्यत्व का समदृष्टि गुण लिए हुवे थे, अत उन्होने आर्य समाजी वालको को पढाने मे कभी किन्तु-परन्तु नही किया। विष्णुदत्त जी श्री महाराज से नित्य प्रति अध्ययन करते रहे। महाराज और विष्णुदत्त जी का वय. समान सा था, अतः श्री मुक्तिराम जी विष्णुदत्त जी से मित्रता का व्यवहार ही दर्शाते थे। एक दिन विष्णुदत्त जी ने पण्डित मुक्तिराम जी से कहा—"काशी नगरी जहाँ संस्कृत विद्या का केन्द्र है वहाँ यह उपद्रवियों का भी क्रीडास्थल वनी हुई है।

> "शील प्रधान पुरुपे तद्यस्येह प्रणश्यति।
> न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न वन्धुभिः॥"

---

*पश्चात् स्वर्गीय स्वामी सोमतीर्थ।

†स्वर्गीय स्वामी विशुद्धानन्द। स्वामी आत्मानन्द सहित सभी आजीवन ब्रह्मचारी रहे सभी सन्यासी रहे और सभी योगाभ्यासी थे।

‡गिरारी कृपानेता।

समस्त प्राणिवर्ग से विशेष मनुष्य के भीतर शील ही एक ऐसा गुण है, जो उसे मनुष्यत्व मे स्थिर रखता है। शील के अभाव में मनुष्य का कोई अस्तित्व नही है। ऐसी अवस्था में वन्धु बान्धव और धनादि सब व्यर्थ है। मनुष्य जन्म पाकर जव जीवन ही खोखला हो गया, तो ससार निस्सार है। एक बालक का नाम निर्देश-पूर्वक वे आगे कहने लगे—"जगदीश" नाम का एक गुण्डा उसे तग करता है, रूप रंग मे वह सुथरा भोला भाला है। गुण्डों का यहाँ एक भारी समूह भी है। जगदीश उन्ही में से एक है। फिर भला वह बेचारा अकेला उन सबके चंगुल से कैसे निकल सकता है। हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए।" आर्यसमाज का छात्र होने से ब्रह्मचारी विष्णुदत्त विद्यार्थियों की चारित्रिक चिन्ता वहुत रक्खा करते थे। पर उस वालक को चाण्डल चौकडी मे से निकालना एक-दो का काम न था, अत महाराज से भी यह चर्चा करनी पड़ी। महाराज तो थे ही दूसरी प्रकृति के। उन्होने आगा देखा न पीछा। न अपनी शक्ति अजमाई न गुण्डो की। झटिति अपनी सरल प्रकृति के अनुसार पता लगाकर निहत्थे ही उस गुण्डे को समझाने चल दिये। उनके साथ कोई दूसरा न था। जगदीश को एक-दो बार समझाया, पर वह द्विगुण कठोर चित्त होता चला गया। उसे साधुवाद का जितना दूध पिलाया, वह विष बनता चला गया। उसकी जिह्वा नागिनी का फण बन गई। वह अपनी उपद्रव-वृत्ति को पल भर भी छोड़ने को उद्यत न हुआ। उसकी उद्दण्डता का विष उसके सारे शरीर मे व्याप्त हो गया। क्षमावती पृथ्वी भी उसका बोझ सह रही थी। उसके पैर नहीं लड़खडाये। वह सीधा श्री मुक्तिराम के सम्मुख तनकर खडा हो गया। इतने मे दो-तीन गुण्डे वहाँ और आ गये। लोगो की भीड़ भी वहाँ एकत्रित हो चुकी थी। पर उस 'हो हुल्ले' मे वे कुछ समझ न पाये कि बात क्या है। अवसर पाकर एक गुण्डे ने 'जगदीश' के हाथ मे छुरा पकड़ा दिया और उसने झट मुक्तिराम के माथे मे दे मारा*। लहू की धारा वह चली। सारे वस्त्र लहुलुहान हो गये। रुधिर टपटप पड रहा था। भ्रु वे-मुख और नाक सब लहुलुहान हो गये। खडे हुए उन सब लोगों के दिल हिल गये। इतनी देर मे कुछ और भी गुण्डे आ पहुँचे। बोले—"काम तमाम करो। क्यो देर लगा रहे हो" तब खडी

*जीवन पर्यन्त श्री आत्मानन्द सरस्वती जी के माथे मे उसका चिन्ह बना रहा।

भीड़ ने बीच बचाव किया और श्री मुक्तिराम को उनके स्थान पर ले आये। कुछ दूर तक गुण्डो ने पीछा किया फिर दूसरी गली मे चले गये। सदावर्त मे पहुँचकर चोट का तात्कालिक उपचार किया गया। जनता के लौट जाने पर फिर वही लुगाडे बहुत संख्या मे आ पहुँचे। श्री मुक्तिराम जी के छात्र गुरुपरिचर्या मे लगे हुए थे। एक ने भारी भीड को देखकर सबको सावधान कर दिया। सभी भौंचक्के से देखने लगे। सभी रिक्त हस्त थे। उन्हे समय पर एक उपाय सूझ गया। क्षेत्र का नया मकान बनाने के लिए पक्की ईंटो का चट्टा पड़ा था, उठा-उठा कर गुण्डो पर बरसानी प्रारम्भ कर दी, वे समीप न आ सके। दो-चार जो पहले ही पास आ चुके थे, वे घायल हो गये। उन भागते हुवो पर भी ईंटे बरसाते चले गये। कुछ नगर-निवासियो ने भी इसमे हाथ बटाया। वे विद्यार्थियो को त्वरित गति से ईंटे पकडाते रहे। उनका उधर आने का साहस ही नही हुआ।

शनै. शनैः श्री मुक्तिराम जी की इस घटना का समाचार जहाँ नही पहुँचा था, कर्ण परम्परा से वहाँ भी पहुँच गया। नगर के बहुत से सभ्य जन उपद्रवियो के मुखिया हनुमान् को जानते थे, पहचानते थे। पर उस भीड मे वह उस दिन नही था और न ही उसे इस घटना का पता था। वह बाहर गया हुवा था। आने पर लोगो ने उसे बुलाया और इस घटना का अत्यन्त खेद प्रकट किया। हनुमान् ने महाराज की पर्याप्त ख्याति पहले-से ही सुनी हुई थी अत उसे भी इस घटना से दु ख पहुँचा और उसने उभय पक्ष की निष्पक्ष छान-बीन प्रारम्भ कर दी। उसके सबल गुप्तचरो ने अन्त मे सन्देश दिया कि वस्तुत दोष जगदीश का ही है, पर अब क्या हो सकता है। हनुमान् श्री महाराज के निकट आया, उनका घाव देखा, पट्टी बधी थी, वे विश्राम ले रहे थे। हनुमान् साभिवादन श्री चरणो मे बैठ गया। इस कुकृत्य के लिए क्षमा मागने लगा और निवेदन किया—"महाराज, मैं उस समय यहाँ नही था। मुझे इस घटना का पीछे पता लगा। घटना मे विचित्र समन्वय हुआ है। एक बुराई पर उतारू होकर लड़ रहा है और आप सरीखे दूसरो के हित मे जान दे रहे है। महाराज, आपका पलड़ा भारी है। मुझे आज से अपने चरणो मे स्थान दीजिये। जहाँ तक मुझ से बनेगा, मैं अपना जीवन सङ्कट मे डालकर भी इस चारित्रिक दोष को काशी नगरी से बहिष्कृत करने मे पूर्ण प्रयत्न करूँगा। अब आप किसी प्रकार की चिन्ता न करे। मुझे आप अपना

बायाँ हाथ नही, दाया हाथ समझिएगा।" सचमुच क्या ही ठीक कहा है—

"बलिदान रङ्ग लाता है, बलिदान के पीछे।
रहस्य जो यह जानते, पीछे नही हटते ॥"

महाराज की इस घटना से हनुमान् की काया पलट गयी। जो शक्ति गुण्डा तन्त्र की पोषिका थी, वह अब विरोधिका बन गई। सभ्य समाज में उसकी वाह-वाह का नाद गूंज उठा। यह दृश्य देख, हनुमान् की पूर्व प्रजा ने भी करवट बदली और धीरे-धीरे उधर से खिसक, इधर आ मिली। अब उस पातक समूह मे दो-तीन बच रहे, उनके भी साहस मे कोई तरङ्ग न थी। थोडे ही दिनो मे वातावरण कुछ का कुछ हो गया। महाराज के इस पवित्र कार्य से लोगो के हृदय मे महाराज के प्रति प्रेमानुराग दृढ हो गया। जिस ओर से महाराज अपने पढने के लिए जाते थे, लोग उस मार्ग मे उनकेलिए आँखे बिछाते थे। महाराज की विद्वत्ता, महाराज का आदर्श, महाराज की कीर्ति और महाराज का साहस, लोगो की अन्त-प्रकृति मे सदाचार के अङ्कुर निकाल रहा था। किन्तु महाराज थे, ऐसी सरल प्रकृति के, कि उनमें अहङ्कार के अङ्कुर न पनप पाये।

उपाध्याय को उपाधि

महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मणदत्त शास्त्री दाक्षिणात्य द्राविड पण्डित थे। आपके यहाँ एक व्यास गद्दी थी। जिस पर विराजमान होकर कोई दाक्षिणात्य पण्डित ही प्रवचन कर सकता था। दाक्षिणात्य पण्डित उत्तर प्रदेश वालो को निकृष्ट समझते थे। अत. उत्तर प्रदेश निवासी ब्राह्मणो का पर्याय उस गद्दी पर कभी नही आता था। यह प्रवचन सस्कृत मे होता था और कभी-कभी होता था। दाक्षिणात्यो का सस्कृत पर अधिकार भी अच्छा होता है। वे धारा प्रवाह सस्कृत मे भाव भङ्गियो के सकेतो तक को समझाने की दक्षता रखते थे। यह व्यास गद्दी बहुत समय से सस्कृत-प्रचार-पिठिका चली आ रही थी। पर इतने काल मे दाक्षिणात्यो के अतिरिक्त इसे दूसरो ने शोभा प्रदान न की। श्री लक्ष्मण शास्त्री के एक विद्यार्थी ने श्री शास्त्री जी से निवेदन किया कि मुक्तिराम जी को इस गद्दी से बोलने दिया जाये। वे अच्छी धारा प्रवाह सस्कृत बोलते है। श्री शास्त्री जी ने मुक्तिराम को उत्तर प्रदेश का बतलाकर टालना चाहा किन्तु विद्यार्थी के यह

कहने पर कि आपका विश्वस्त शिष्य होने पर भी उत्तर का रह गया, शास्त्री जी को कुछ गम्भीर होना पड़ा। परिणामतः श्री महामहोपाध्याय जी ने मुक्तिराम को आगामी अधिवेशन मे व्यास पीठ से बोलने की आज्ञा दे दी। मुक्तिराम ने गुरु की इस आज्ञा को शिरोधार्य समझ कर स्वीकार कर लिया। किन्तु मन मे यह सोचते रहे कि चिररक्षित परिपाटी का गुरु जी आज उल्लङ्घन कर रहे है। जहाँ उनका पग आज समदर्शन की ओर बढा है, वहाँ मेरा भी कर्त्तव्य है कि मैं इस गद्दी का मान बनाये रक्खूँ। मुझे सस्कृत मे ऐसा धाराप्रवाह बोलना चाहिए, जिससे आगे के लिए मुझे अवसर मिलता रहे। अधिवेशन-तिथि समय पर आगयी। प्रात से ही अन्य अधिवेशन-अवसरो की भाँति श्री महामहोपाध्याय जी का घर झाड-बुहार कर, तकिये-गद्दे बिछाकर, सजाया जाने लगा। व्यास आसन की ऊँची गद्दी, साज बाज के साथ ऐसे अपने अधिपति की प्रतीक्षा मे थी, जो उसे शोभा प्रदान करे। अन्य अधिवेशनो की भाति श्रोता लोग, जो प्राय. पण्डित ही थे अपना-अपना स्थान लेने लगे। कृष्णपट्ट पर लिखा था—"आज व्यास पीठिका से श्री पण्डित मुक्तिराम जी का गीता प्रवचन होगा।" पण्डित समुदाय मे बहुत-से उन्हे जानते थे और कुछ नही भी, किन्तु सभी के हृदय मुक्तिराम के मुखारविन्द से उनको अन्तर्गुहा के विचार सुनने के लिये उछल रहे थे। वे जब भी किसी की पद-चाप सुनते, तो पीछे को देखते, सभव है, आ गये हैं। अधिवेशन प्रारम्भ होने से ठीक दश मिनट पहिले, स्वागत द्वार पर श्री महामहोपाध्याय के साथ भट्ट शास्त्री, स्नातक, विविध शास्त्र निष्णात तथा आचार्य वर्ग आ उपस्थित हुआ, श्रोतृवर्ग ने भी उनका अनुसरण किया, प्रमुख जनो के हाथ मे पुष्पमालाएँ थी। श्री पण्डित मुक्तिराम जी ने भी दिये गये ठीक समय पर, आमन्त्रण के लिये भेजी गई विशेष व्यक्ति के साथ श्री शास्त्री जी के गृह-द्वार पर पहुँच कर समस्त विद्वन्मण्डल को पहले ही विनीत भाव से प्रणाम किया। श्री महामहोपाध्याय के पाद पद्मो मे शास्त्र रीति से अभिवादन किया और प्रसन्न मुद्रा मे स्वागत कर्त्ताओं से अर्पित की गई पुष्पमालाएँ स्वकण्ठ मे न डलवा कर हाथ मे थाम ली। पश्चात् अवशेष विप्रवर समेत साथ साथ चलकर, श्री महामहोपाध्याय जी के सङ्केत से व्यास पीठ पर आरूढ हो गये। उस समय श्री महाराज की वेश भूषा लाल किनारी धोती, कुरता और उसके ऊपर बिना कालर वाला बादामी रङ्ग का सादा अंगरखा, रेशमी पगड़ी और गले मे दुपट्टा था। पदासीन होते ही महाराज ने पगड़ी उतार कर निकट

रख ली। उस समय ग्रन्थि बन्धन की हुई श्यामल शिखा श्री मुक्तिराम जी को शोभा प्रदान कर रही थी। व्यास पूजा मे महाराज के तिलक लगाया गया। कुङ्कुम में चावल के श्वेत कण ललाट की शोभा बढ़ाने लगे। तत्पश्चात् महाराज की आरती उतारी गयी, वह दृश्य बडा मनोहर था, मानो साक्षात् व्यास ऋषि अपने दर्शनो से दर्शको को आनन्दित कर रहे हो। अल्पकालिक इस पूजा-विधि से दर्शकों के मन, श्रद्धा और अनुराग से आप्लावित होकर, सत्त्व गुण से भर पूर हो गये। अब महाराज ने प्रवचन आरम्भ करने से पूर्व वेद मन्त्रो की मधुर ध्वनि से और चरित्रोत्कर्ष के श्लोक समूह से यत्किञ्चित काल तक श्रोतृ वर्ग को अपने प्रगाढ अनुराग मे आबद्ध किये रक्खा। पुनः ज्यो ही प्रवचन आरम्भ हुआ, तो उनके मुखारविन्द से निकली सस्कृत पदावली के अनुप्रास की सुन्दर माला मे शब्द पुष्प स्वत. ही स्थान पाने लगे। देवी सरस्वती श्री महाराज के कण्ठ का अलङ्कार बनने लगी। जब वे दया का चित्र खीचते तो, दर्शको के हृदय पसीजने लगते। जब वीरता का वर्णन करते तो, बाहे फडकने लगती। और जब उसमें अध्यात्मवाद का समावेश करते तो, प्राचीन सस्कृति के चित्र सम्मुख नाचने लगते। समय-समय पर मन्त्र, श्लोक और सूत्र आकर प्रवचन की शोभा मे चार चाँद लगा देते थे। तन्त्री के तार की न्याईं सारा समय बध गया था। लोग झूम रहे थे। आनन्द विभोर हो रहे थे। विशेषतः महामहोपाध्याय शास्त्री ने शिष्य के इस अनुपम प्रवचन से अति गौरव अनुभव किया। सभा समाप्ति पर साधुवाद देते हुए श्री शास्त्री ने श्री महाराज के लिए "उपाध्याय" इस शब्द का प्रस्ताव रक्खा, सुनते ही विद्वन्मण्डल द्वारा जिसका अनुमोदन कर दिया गया। तब से श्री मुक्तिराम जी "मुक्तिराम उपाध्याय" इम नाम से पुकारे जाने लगे।

श्री मुक्तिराम जी के समीप अति जड बुद्धि मादिया नामक एक ग्रामीण पाकशाला मे था, उसे भोजन पकाना नही आता था, उपाध्याय जी ने उसे पाकशास्त्र मे प्रवीण करने का प्रयत्न किया, वह ज्योतिर्विद्या सीखने की भी अभिरुचि रखता था, अत उपाध्याय जी की प्रेरणा पर वह होराचक्र पढने लगा उसकी बुद्धि बहुत जड थी। वह कुछ पढता था, गुरु जी को ही अर्पित कर देता था। वह अति दुरूह समझ कर होराचक्र को "वोडाचक्र" कहा करता था। एक दिन उसने उपाध्याय जी से कहा—"काशी मे ऐसा पण्डित बताइये जो विद्वता में अनुपम हो" उपाध्याय जी ने कहा महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मण शास्त्री

अद्यतन विद्वन्मण्डल मे अपनी विद्वता मे विख्यात है । सभी विद्वान् उनका समादर करते है । वे प्रतिदिन स्नान करके यही से जाया करते हैं । मै कल उन्हे दिखा दूँगा ।

अगले दिन जब श्री महामहोपाध्याय सम्मुख से जाते दृष्टिगत हुए, तो उपाध्याय जी ने कहा—"मादिया ! देखो वे जा रहे हैं" मादिया उसी क्षण देखकर बोला—"साला यह तो बहुत मोटा है ।" उपाध्याय जी ने भर्त्सना करते हुए उसे कहा—"गाली प्रदान शिष्ट जनो की परम्परा नही है ।" वह बोला—" मैंने गाली प्रदान कहाँ किया है— उसे बहुत स्थूलकाय देख कर कहा—"साला यह तो बहुत मोटा है" उपाध्याय जी ! इसमे गाली कहाँ हुई ।"

उसकी योग्यता देखकर उपाध्याय जी ने उसे और कुछ कहना उचित न समझा ।

आर्यनेताओं का कार्य-क्षेत्र और मुक्तिराम उपाध्याय की प्रतिभा

आर्यसामाजिक क्षेत्र मे महर्षि दयानन्द-प्रणीत ग्रन्थो का अवलोकन, वेदशास्त्रो का परिशीलन, धर्मग्रन्थो का अध्ययन और सत्पुरुषो के आचार का स्वीकरण प्रबल वेग से प्रगति पर था । नूतन गुरुकुलो की स्थापनाए, नवीन आर्यसमाजो की आधार शिलाए, कन्यापुत्री पाठशालाओ के उद्घाटन, आर्यसमाचार पत्रो के प्रकाशन और आर्य अनाथालयो के सञ्चालन अपने-अपने विद्या-ज्योति से आर्येतर जनो को प्रकाश दे रहे थे । सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जो इन अनेक ज्योतिर्दीपो को न बुझने देने के लिए तैल रूप था, वह था वेदविरोधीमतावलम्बियो से शास्त्रार्थ करना । अपने-पराये सब ग्रन्थो का परिशीलन करके आर्ययोद्धा शास्त्रार्थ के अखाडे मे नूतन स्फूर्ति के साथ उतरते थे । आर्य मन्दिरो मे नही सार्वत्रिक विशाल विवृत भूभागो मे, जहाँ पक्षी, विपक्षी और सपक्षी सहस्रो की सख्या मे एकत्र हो सके, वे जयमालाए लेकर पहुँचते थे । उन दिनो विपक्षी निष्णात लेखक भी शास्त्रसमर मे अग्रवर्ती थे, विशेषतः जैन समाजी ।

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने जैनमत की समालोचना करके उनसे कुछ प्रश्न किये । जैनियो ने उत्तर देकर, स्वपदार्थ सम्यक् मत का पोषण और आर्यसमाज के सिद्धान्त का प्रत्याख्यान प्रचारित कर दिया । पण्डित विष्णुदत्त जी को बनारस मे जब यह खण्डन सम्प्राप्त

पुस्तिका हाथ लगी, तो वे झटिति पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय के समीप गए और बोले—क्या इसका उत्तर आप लिख देगे? मेधा ने धनी श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय ने उसे पढ कर देखा, जिसमें स्वामी दर्शनानन्द जी को ओर से प्रतिपादित विषय को सुसङ्गत एव सयौक्तिक पाया और जैन द्वारा दिये गए तर्कों को असङ्गत। श्री उपाध्याय जी ने अपने उस जीवन तक आर्यसमाज का नाम तो अवश्य सुना था, पर उसके मन्तव्यो, ग्रन्थो और नियमो की चरण रेणु भी उनके मस्तक पर न पडी थी। फिर भी उन्होने अपने आत्मिक प्रकाश और तार्किक प्रतिभा के आश्रय से याथातथ्य समीक्षा करके उसे पण्डित विष्णुदत्त जी को दे दिया। उन्होने श्री तुलसीराम जी के मेरठ मुद्रणालय मे प्रकाशित कराके सर्वत्र उसका वितरण करा दिया। इतना हो चुकने पर श्री दर्शनानन्द जी से भी कतिपय आर्यमहानुभावो ने कहा—"आप भी कुछ लिखदे तो उचित रहे, क्योकि जैनियो का परिपत्र आपके ही नाम था।" स्वामी जी ने उनसे कह दिया, "एक काशी के पण्डित द्वारा सुन्दर और युक्तियुक्त समीक्षा की जा चुकी है, अतः अब पुनः पर्यालोचन की अनिवार्यता नही है।"

श्री उपाध्याय जी द्वारा लिखित और मेरठ से प्रकाशित वह लघु पुस्तिका जब जैनियो के गृहो और उपाश्रयो मे पहुँची, तो उन्होने उसे अतीव चाव से यह समझ कर देखा कि हमने आर्य समाज के प्रश्नो के उत्तर यथोचित दे दिये थे, जो उन्हे भी उचित ही प्रतीत हुए होगे। भविष्यत् मे आर्य समाज हम पर कोई आक्षेप नही करेगा। किन्तु जब उन्होने अपने उत्तरों की समीक्षा का अध्ययन किया, तो उनके हृदय को भारी ठेस पहुँची।

और जब वह पुस्तिका आर्य समाज के पण्डितो, सम्पादको, शिक्षणालयो, आर्य मन्दिरो और गुरुकुलो मे पहुँची, तो अति हर्ष के साथ उनकी समालोचना को पढा गया। आर्य जनो मे निज सिद्धान्तो की अकाट्यता पर आस्था तो प्रथम से थी ही और भी अधिक दृढ हो गयी। किन्तु एक बात का आश्चर्य उस समय सभी को हुआ कि जैन पुस्तिका के समालोचक आर्य समाज के सन्यासियो, शास्त्रार्थ महारथियो, विद्वत्पुरुषो, प्रचारको और कार्यकर्त्ताओ की पङ्क्ति मे न कभी देखे गये और न ही सुने गये। उन्हे अति प्रसाद हुआ कि उनकी पीठ पर एक और व्यक्ति विशेष का प्रकाश हो चुका है। इस अभिनव

ज्योतिष्पुञ्ज के भले ही आर्यपुरुषो ने दर्शन न किए हो, पर उन्होने उन्हे काशी मे बैठा आर्य समाज का कोई विशिष्ट मानव मान लिया।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा किये गये प्रतिभा सम्पन्न प्रश्नोत्तरो से मुक्तिराम उपाध्याय के मानस-सर मे उत्तुङ्ग-तरङ्ग उठने लगे और वे विस्मित हुए विचारने लगे कि भारत मे कुछ ऐसी नूतन प्रणाली के मनुष्य भी विराजमान है, जिनके अन्तस्तल से ऐसे बुद्धिगम्य और सप्रमाण वचन निकलते है कि जिनका उत्तर देना सर्व साधारण की पहुँच से बाह्य है। उन्होने अपने मित्र पण्डित विष्णुदत्त जी से कहा कि आप ऐसे ही अन्य ग्रन्थ, जिसमे ग्रन्थकार की प्रतिभा लक्षित होती हो, ला कर दीजिए। श्री मुक्तिराम उपाध्याय के इस वचन पर उन्होने शिवशङ्कर काव्य तीर्थ के लिखे दो पुस्तक 'ओङ्कार निर्णय' और 'त्रिदेव निर्णय' उनकी सेवा मे उपस्थित कर दिये। उपाध्याय जी ने उनका पर्यालोचन किया तथा ऐसे ही और ग्रन्थ मँगाए। श्री विष्णुदत्त जी आर्य समाज के प्रचार की धुन के धनी थे ही, झटिति ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका और सत्यार्थ प्रकाश लाकर प्रदान कर दिए। जिनको पढकर उपाध्याय जी का हृदय गद्गद् हो गया और उन्होने विष्णुदत्त जी को अपना परम मित्र मान लिया।

विद्या-समाप्ति पर पत्रों के उत्तर

इन दिनो श्री मुक्तिराम जी "उपाध्याय" की विद्या भी समाप्त हो चुकी थी। अब वे अध्यापन करने, शङ्काओं का समाधान करने और आमन्त्रित स्थानो मे कथा करने मे अधिक समय देते थे। चार-पांच भोजनालयो का प्रबन्ध तो पूर्ववत् चल ही रहा था। एक दिन उनके मन मे आया अब गृह और मित्रो के समीप मे आगत पत्रो को देखने मे कोई क्षति नही है। यह जीवन १२ वर्ष तक घर से दूर रह कर कुछ और ही ढांचे मे ढल चुका है। अब इस चित्त मे न मोह है, न राग है और न ही द्वेष है। पत्रो को पढ कर देखा तो उनमे वह ही पाया गया, जो ससार मे प्राय होता रहा है। आपने घर पर पुन कुशलता के समाचार भेज दिये और विद्या समाप्ति की सूचना भी लिख दी। जब पिता को मुक्तिराम का पत्र मिला, तो उन्हे विशेष प्रसन्नता न हुई। वे मुक्तिराम से सर्वथा निराश हो चुके थे। बारह वर्ष का समय थोडा नही होता। यह तो एक युग है, जिसमें ससार मे कितने ही परिवर्तन हो चुके होते है। वे उन पत्र को लेकर ग्राम के सेठ [illegible] और [illegible]

के समीप गये और बोले—"देखो यह मुख्त्यार का पत्र आया है। बारह वर्ष मे अब एक पत्र लिखा है, हमारे लिये तो भाई अमन ! मुख्त्यार ऐसा ही हुआ और ऐसा ही न हुआ। उसकी ओर से हम जीवे या मरें उसे कम से कम आना तो चाहिये। अपना मुख दिखाना तो चाहिए। घर की अवस्था देखनी तो चाहिए। ऐसी भी क्या पढाई हुई कि इधर कुछ ध्यान ही नही। भाई अनूप मैं तो अब उसे पत्र लिखता नही, तुम लिखना चाहो तो लिख दो।" अनूप और अमन दोनो भाई थे। उन्होने मुक्तिराम को पत्र लिखा, जो अति हृदय स्पर्शी था। श्री मुक्तिराम उपाध्याय तब अपने घर गये। ग्राम्यजनो का कथन है कि वे कुएँ से ही भागे थे और ग्राम मे प्रविष्ट होने से पूर्व उसी कुएं पर आये। वहाँ लोगो ने उन्हे पहचाना नही। उनकी अवस्था और आकृति में पर्याप्त अन्तर आ चुका था। घर मे प्रवेश करते ही उनकी भाभी गङ्गादेई उनसे अवगुण्ठन कर रही थी कि वे बोले—"मुझे पहचाना नही मै तो वही मुख्त्यार हूँ बनारस से आ रहा हूँ।" इतना सुनते ही वह हर्षातिरेक मे पुलकित हो उठी। एक दूसरे के कुशल क्षेम पूछे। पिता जी के घर आने पर पिता ने कहा—"मुख्त्यार ! क्योकि तुम घर से प्रतिज्ञा करके गए थे कि यावत् विद्या समाप्त न होगी, घर न लोटूँगा ; इस कारण तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता हरनारायण का देहान्त जो तुम्हारे काशी जाने के दो वर्ष पश्चात् ही हो गया था, उसका समाचार केवल दुःख पहुँचाने के लिये तुम्हे नही लिखा था और तुम्हारी माँ, जिसने तुम्हे अति प्यार दुलार के साथ पाला था, वह तो तुम्हारे समक्ष ही परलोक को सिधार गयी थी। इस मध्य खेद जनक घटनाएँ छोड कर दूसरे प्रकार के समाचार तो तुम्हे लिखते रहे थे, पर जब उनका भी तुम्हारी ओर से कोई उत्तर नही मिला, तो सर्वथा निराश हो चुके थे। बेटा ! आनन्द मे रहो, भगवान् तुम्हारी साध पूर्ण करे।"

पिता के इन वचनो से श्री मुक्तिराम उपाध्याय का हृदय द्रवित हो गया। कलेजा कण्ठ को आ लगा। आँखो की कोरे आँसुओ से भर गयी। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। कुछ देर पश्चात् आँसू सूख गये और कुछ काल तक पिता-पुत्र दोनो मौन-मुद्रा मे शान्त बैठे रहे।

मुख्त्यार के बनारस से लौट आने का समाचार घर-घर में पहुँच गया। कुछ आशीर्वाद देने, बहुत से उपालम्भ देने, और छोटे बालक नूतन मूर्ति के दर्शन करने मुख्त्यार के घर आए। वे शान्ति से सब को देखते

रहे और यथोचित सम्मान के साथ वार्तालाप भी करते रहे। बहुत से पूज्य पुरुषो ने अधिगत विद्या के परीक्षा-हेतु मुक्तिराम उपाध्याय से कहा–"मुख्त्यार ! यहाँ कुछ दिन ठहरो और कथा करो। कल दीवाली थी, आज गोवर्धन है। हम कल से ही कथा-वाचन का प्रबन्ध कर देते है। काशी के पण्डितो की कथा का कुछ अलभ्य लाभ हमे भी उपलब्ध हो जायेगा।" मुक्तिराम जी उपाध्याय ने स्वीकार कर लिया और यथा समय कथा आरम्भ कर दी गयी। १५, २० दिन उपाध्याय जी अपने अन्छाड ग्राम में ठहरे और श्रोताओ को मुग्ध करते रहे। ग्रामीण महानुभाव श्री मुक्तिराम जी की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए बोले—"पढाई तो इसी का नाम है। भई ! पढना कोई खेल नही, लोहे के चने चबाना है। वाह भई वाह ! मुख्त्यार ! तूने तो घर को निहाल कर दिया।"

इस प्रकार ग्रामवासियो को श्री मुक्तिराम जी अपनी विद्या से तृप्त करके पुनः काशी जा विराजे।

नि:शुल्क विद्यादान

पण्डित मदनमोहन मालवीय उच्च कोटि के विद्वानों को अपने विद्यालय की विद्या-पीठो पर अधिक से अधिक सम्मान दे कर भी अधिष्ठित करना चाहते थे। उन्हो ने श्री मुक्तिराम जी से निवेदन किया—"आप अधिक नही, तो विश्वविद्यालय की उच्च श्रेणियो को केवल एक-दो घण्टा अपना समय दे दिया करे इसका पारिश्रमिक मै आपको पाँच सौ रुपये मासिक दूँगा।" इस आग्रह को भी श्री उपाध्याय जी ने स्वीकार नही किया और कहा–'मै नि शुल्क पढा हूँ, नि शुल्क ही विद्या-दान करूँगा। मैं आपके यहाँ बिना कुछ लिए भी कार्य कर देता, पर अपनी ही पाठशाला से अवकाश नही मिल पाता, इस कारण विवश हूँ।"

उन दिनों जीवन-निर्वाह के वस्तु इतने मन्दे थे कि साधारण श्रमिक का एक दिन का पारिश्रमिक आठ-दस पैसे के समकक्ष था।

काशी मे पण्डित सत्यव्रत जी, पण्डित विष्णुदत्त जी और स्वामी सहजानन्द जी श्री मुक्तिराम जी के घनिष्ठ मित्र हो चुके थे। सभी एक-दूसरे के कष्ट के साथी थे और थे चरित्र सम्पन्न।

पण्डित विष्णुदत्त जी और स्वामी सहजानन्द जी कुछ दिनों के पश्चात् काशी नगरी का परित्याग करके स्वामी [illegible]

संस्थापित गुरुकुल चोहा-भक्तां रावलपिण्डी चले गए। वहाँ स्वामी सहजानन्द जी अध्यापक और पण्डित विष्णुदत्त जी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता नियुक्त हो गये।

काशी-परित्याग और भावी कार्य-क्रम

कार्य के अतिभार के कारण तथा बनारस के जलवायु के अतिदूषित होने के हेतु श्री उपाध्याय जी का स्वास्थ्य अच्छा न रहता था। उनका जाठराग्नि सर्वथा मन्द पड़ चुका था। जिसके कारण आपको श्वास रोग हो गया। श्वास उखड़ने लगा और वह कुछ ही दिनो मे दमे का रूप धारण कर गया। साथ ही इसके, अर्शरोग भी पुराना पड़ चुका था, उसने भी प्रारम्भ से ही अति पीडित किया हुआ था। विवश हो, उन्होने सेठ भूरामल के सत्र को ही स्वाधिकार मे रख कर, अन्य क्षेत्र क्षेत्र-सञ्चालकों को सौप दिये। फिर भी दिन प्रति दिन दोनों ही रोग गहरी जड़ पकड़ते जा रहे थे और जीवन की आशाएँ धूमिल होने लगी थी। उपचार भी प्रभूत प्रयत्न के साथ किया गया; किन्तु वह कोई अपना प्रभाव न दिखा सका। अन्त में श्री वैद्य अन्नुमल जी ने श्री मुक्तिराम से निवेदन किया कि अब आप बनारस का परित्याग करके कही अन्यत्र, जहाँ का जलवायु स्वास्थ्यप्रद हो, चले जाइये अन्यथा जीवन की यह नौका अकाल मे ही विकराल भवर में फँस जावेगी। श्री मुक्तिराम ने वैद्यराज के इस सत्परामर्श को स्वीकार कर लिया और वे स्वास्थ्यप्रद स्थान के अन्वेषणार्थ प्रयत्नशी‹। हो गये।

श्री मुक्तिराम उपाध्याय को बनारस आने के पश्चात् कही बाहर जाने का अवसर ही न मिला था और न ही वे किसी अन्य ऐसे स्थान को जानते थे, जिस मे उन का स्वास्थ्य, सुधार का मोड़ ले सके। उन की पहुँच तो केवल श्री पण्डित विष्णुदत्त जो तक थी, जो श्री स्वामी दर्शनानन्द जी के द्वारा स्थापित गुरुकुल चोहाभक्तां (रावल पिण्डी) के अधिष्ठाता थे। अतः श्री मुक्तिराम जी ने उन की सेवा में एक पत्र लिखा, जिसमें अपने रोग का वर्णन करते हुए किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान को बता देने का उल्लेख था। आपत् काल में व्यक्ति को मित्र का ही आश्रय होता है और मित्र का परीक्षण भी ऐसे ही अवसर लिया करते है। जो ऐसे अवसरों पर खरा निकले, वही मित्र है अन्यथा व्यर्थ की मित्रता से कोई प्रयोजन नही।

उत्तर में पण्डित विष्णुदत्त जी ने लिख दिया, "आप यहां मेरे समीप गुरुकुल चोहा भक्काँ ही आ जाइये। यहाँ का वातावरण और जलवायु आपको बहुत अनुकूल पडेगा। खाद्य पदार्थ भी यहाँ शुद्ध-अच्छे और सस्ते है। यहाँ एक रुपये का १४ सहस्रधान्य‡ अंगूर बडे सुभीते से प्राप्त हो जाता है। इस "स्थाली पुलाक" न्याय से आप अन्य खाद्य सामग्री का भी अनुमान लगा सकते है। ये बातें मैंने आप को केवल परिचय कराने की दृष्टि से लिखी है। इनके क्रय-विक्रय का आपसे कोई सम्बन्ध नही है, यह स्थान आप का ही है। मुझे अति प्रसन्नता होगी यदि आप के चरण इस भूमि पर पड जाये।" इस सुभाषा-बद्ध, प्रेम-पूर्ण पत्र के वाचन से बनारस का प्रथम से ही दूषित जलवायु और भी अधिक विकारी दीखने लगा। श्री मुक्तिराम जी ने एक दिन निश्चय कर लिया कि अब अध्ययनाध्यापन की क्षति सहन करनी ही पडेगी और बनारस का परित्याग करना ही होगा। पाठशाला के दो मास के अवकाश पर वहाँ चला जाना उचित रहेगा, जिसमे अब थोडे ही दिन शेष रह गए हैं।" अत आप ने वहाँ पहुँचने की सूचना निश्चित दिन सहित श्री विष्णुदत्त जी को दे दी। पत्र प्राप्त होते ही श्री विष्णुदत्त जी बनारस पहुँच गए।

गुरुकुल चोहा भक्काँ में

श्री मुक्तिराम उपाध्याय अपने सखा पण्डित विष्णुदत्त जी के साथ काशी से प्रस्थान कर सयानः* द्वारा मानकक्याला स्थात्रौ¹ पर आए। वहाँ से परिवहन+ मे बैठ, आगे कुछ पदाति चल, गुरुकुल पहुँच गए। गुरुकुल के इतिहास मे सन् १६१६ का वह मई मास विशेष सुषमा लिए था।

गुरुकुल को एकान्त रम्य स्थान मे सञ्चालित देखकर श्री उपाध्याय जी का हृदय अति हर्षित हुआ। विशेषतः वहाँ की भौगोलिक स्थिति ने उन्हे अपनी ओर अतिशय आकृष्ट कर लिया।

गुरुकुल की पूर्व दिशा मे एक लघु नदी थी, जिसमे कहीं-कहीं पुष्कल जल, झील जैसा भरा रहता था। ब्रह्मचारी उसमे आनन्द से तैरते थे। परवर्ती तट पर प्राचीन काल में एक दुर्ग था, जो खण्डहर शेष रह गया

---

‡मिश्री। *रेलवे। ¹स्टेशन। +बस।

था, वहाँ पुरातन समय में वहाँ की राणी की ओर से एक संस्कृत पाठशाला थी। वहाँ के लोगो का कहना था कि पञ्जाबी भाषा मे जो गच्छो, पुत्तर आदि शब्दो का अभी तक व्यवहार चला आ रहा है, यह सब उस पाठशाला की ही देन थी।

नदी के परवर्ती तट पर दान-गली नामक एक घाट भी था, जहाँ से दान-गली को मार्ग जाता था तथा विशाल जेहलम नदी को जाने का मार्ग भी वही से था।
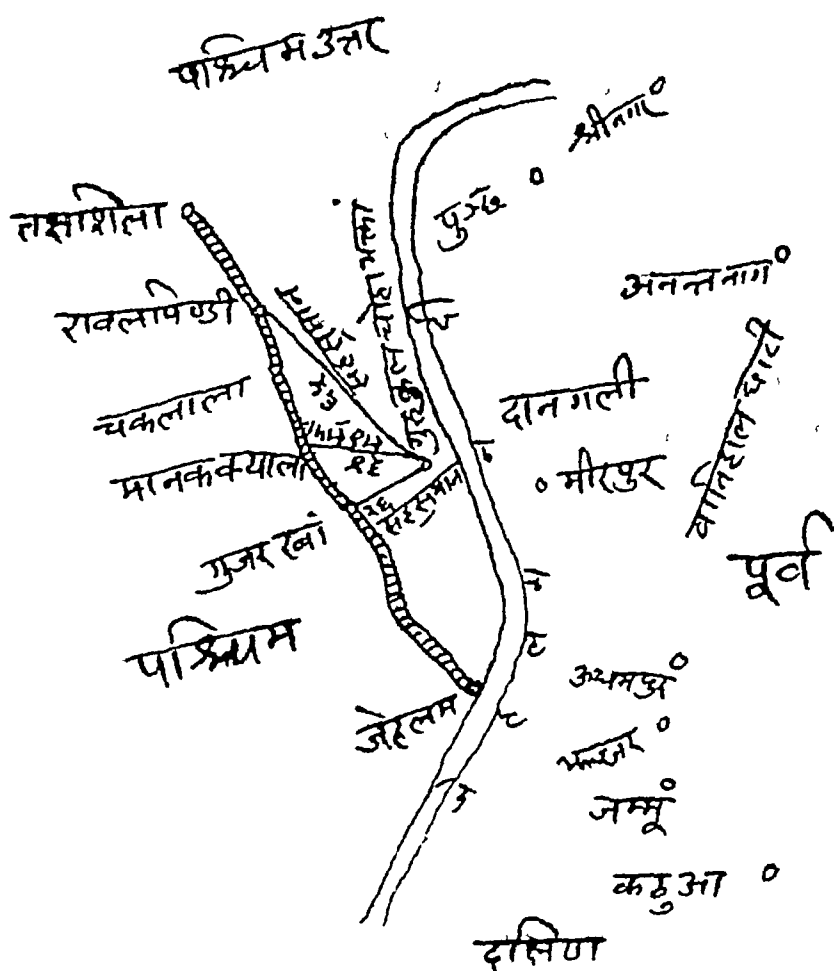
गुरुकुल का भौगोलिक परिचय

पश्चिम दिशा में एक छोटी पर्वतमाला अति रम्य प्रतीत होती थी। जिस की उपत्यका मे पाँच-सात घरो का एक मुसलमानी ग्राम था।

उत्तर दिशा मे हिमालय पर्वत की शृङ्खलाएँ वही से आरम्भ हुई दीख पड़ती थी।

दक्षिण दिशा मे एक थापर नाला था, जिसमे एक स्रोत था, गुरुकुल-वासी तथा ग्रामीण-जन उसके जल का उपयोग करते थे ।

गुरुकुल के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा स्वच्छ जलवायु के कारण थोड़े ही दिनो मे महाराज का स्वास्थ्य पर्याप्त सुधर गया था और दो मास के काल मे तो वे अच्छे हृष्ट-पुष्ट सुघटित शरीर दीखने लगे थे । अपने इस काल मे आपने कुछ-कुछ पढाना भी प्रारम्भ कर दिया था ।

दो मास का अवकाश समाप्त हो जाने पर महाराज ने पण्डित जी से बनारस लौट जाने का आग्रह किया । किन्तु ऐसे धुरन्धर विद्वान्, अध्ययनाध्यापन कराने मे अथक, सदाचारी, सत्यनिष्ठ, न्यायप्रिय, भावुक महात्मा को जाने की स्वीकृति देना अपने पैरो पर स्वय प्रहार करना था । इसलिये अधिष्ठाता श्री विष्णुदत्त जी ने अपने कुछ भी भाव प्रकट न किये और रोने लग गये । इधर महाराज के लिये भी गुरुकुल पोठोहार चोहा भक्ताँ का जलवायु अनुकूल पड चुका था, अतः उन्हो ने भी अपना आग्रह हटा लिया और कलकत्ते मे मन्त्री तेजपाल को पत्र लिख भेजा कि अपने क्षेत्र और पाठशाला का प्रबन्ध किसी अन्य विद्वान् के हाथ मे देकर पण्डित महानुभावो के लिये भोजन की सुविधा प्रदान करते हुए अतुल कीर्ति का सञ्चय कीजिये । मैं अभी वहाँ नही पहुँच सकूँगा । यहाँ का जलवायु मेरे अनुकूल है और बनारस से मैंने अपने स्वास्थ्य की सूचना आपको पहले ही दे दी थी । अनन्य भक्त मन्त्री तेजपाल, महाराज को ऐसे ही छोडने वाले न थे, उन्होंने महाराज को निज हाथो से जाते देख, हरिद्वार मे एक नवीन क्षेत्र खोलने तथा साथ ही एक पाठशाला रख देने का कार्यक्रम बना दिया । दूसरी ओर श्रीमन्महामहोपाध्याय लक्ष्मणदत्त जी अपने सुयोग्य शिष्य को कलकत्ता भेजकर वहाँ अध्यापन कार्य पर नियुक्त होने के लिये बल देने लगे ।

यह कलकत्ते मे दर्शनशास्त्र की पीठिका थी, जिसके अध्यक्ष पद पर श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय को ३००) रुपये मासिक वेतन देने का निश्चय हुआ । श्री महाराज के लिये यह समय विकट परीक्षा का था, क्या निर्णय दे । अन्तत उन्होंने गुरु-आदेश का उल्लङ्घन उचित न समझा और कलकत्ता जाने का विचार ही स्थिर कर लिया । किन्तु गुरुकुल वालो को भी वे देख लेना चाहते थे । अतः पोठोहार मे

प्रस्थान कर हरिद्वार के प्राचीर में स्थित गुरुकुल काङ्गड़ी को श्री मुक्तिराम जी ने शोभा प्रदान की। आपका परिचय प्राप्त कर सस्थान के आचार्य और अध्यापक वर्ग ने यथोचित सम्मान किया। पहले तो गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य अध्यापक मण्डल ने महाराज की पुस्तिका जैनियों के प्रश्नोत्तर के ही दर्शन किये थे और अब साक्षात् उसके लेखक को अपने मध्य विराजमान देख कर वे स्वय को अत्यन्त सौभाग्यशाली समझने लगे।

गुरुकुल काङ्गड़ी के स्थापन के स्थान का चयन देख कर श्री पण्डित मुक्तिराम जी ने सस्थापक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की बुद्धि स्वोपज्ञता की भूरि-भूरि प्रंशसा मे निज अन्तःकरण को हार्दरस से अभिषिक्त कर लिया। गगनस्पर्शी, भारतीय उत्तर दिशा के प्रहरी, पर्वतराज हिमालय की पर्वत मालाओ की उपत्यका में तथा अति पावनी गङ्गा के चरणो मे आचार्य, अधिष्ठाता, अध्यापक वर्ग और वर्णि-वर्ग आनन्द विभोर हो, आर्ष-शैली रूप मेघ-माला की अमृत वर्षिणो वृष्टि से अभिषिक्त होता हुआ जनता जनार्दन के लिये दिव्य सुख का आश्रय वन रहा था।

गुरुकुल काङ्गड़ी के आचार्य एवं अधिष्ठाता सहृदय महानुभावो ने महाराज को उन्ही की सस्था मे स्व-विद्या को सफल बनाने के लिये पर्याप्ति अनुरोध किया। एतदर्थ कलकत्ते मे स्वीकृत ३००) रुपये मासिक यहां ही पारिश्रमिक दे देने का तत्सभा ने भी निर्णय किया। किन्तु महाराज जिस पद्धति मे शिक्षा ग्रहण कर चुके थे, वह उन्हे ऐसी संस्था मे कार्य करने के लिए प्रतिषेध करती थी, जिस मे ब्रह्मचारि-वर्ग से किसी प्रकार का भी व्यय लिया जाता हो। गुरुकुल काङ्गड़ी इसी प्रकार की संस्था थी, जिसमे वालको की शिक्षा-दीक्षा के व्यय का सम्पूर्ण भार उनके अभिभावको से प्राप्त किया जाता था। जहा तक अध्यापको की ओर से शिक्षा प्रदान करने का प्रश्न था, वहा तक तो वह गुरुकुल निःशुल्क था, किन्तु उसमे निर्धनो के छात्र विद्या प्राप्त नही कर सकते थे। वह ही निर्धन छात्र वहा शिक्षण प्रारम्भ कर सकता था, जिसका किसी श्रेष्ठ दानी, मानी की ओर से प्रबन्ध हो गया हो। यह स्थिति श्री पण्डित जी के लिए असह्य थी। उनका मन तो ऐसी सस्था में कार्य करने की प्रेरणा देता था, जहा किसी के लिये भा शिक्षा के द्वार अवरुद्ध न हो। यदि ऐसा होता तो वे वेतन के रूप मे भी

सम्भवतः कार्य करने के लिये समुद्यत हो जाते। अतः वहाँ किसी भी अवस्था में श्री मुक्तिराम ने कार्य करने से प्रतिषेध कर दिया। अब प्रश्न था केवल कलकत्ता जाने का।

इन बीच के दिनो में ईश्वर विश्वासी स्वामी दर्शनानन्द जी के सस्थापित गुरुकुल पोठोहार चोहा भक्ताँ जिसकी स्थापना ८ दिसम्बर १६०७ को हुई थी, के विषय में अधिष्ठाता महोदय तथा मन्त्री गौरीदास जी के पारस्परिक विचारो मे सङ्घर्ष हो गया और वह सङ्घर्ष इतना बढ़ा कि गुरुकुल समाप्ति के दिन निकट आते प्रतीत होने लगे। प्रबन्धक समिति के उपप्रधान श्री खेमराज जी से भी कुछ करते न बना। अन्तत अधिष्ठाता श्री विष्णुदत्त जी ने एतद् विषयक पत्र पण्डित मुक्तिराम जी उपध्याय की सेवा मे गुरुकुल काङ्गडी भेजा, जिस मे लिखा था कि ऐसी स्थिति मे एक बार आप का यहा आना आवश्यक है, कलकत्ता जाने का कार्यक्रम यहा के विवादास्पद विषयों को सुलझाने के उपरान्त ही बनाइये। उस पत्र के आधार पर श्री मुक्तिराम जी को पुन गुरुकुल पोठोहार चोहा भक्ताँ लौटना पड़ा। वहा पहुँच कर उन्हो ने दोनो उच्च अधिकारियो के पारस्परिक वैमनस्य के निवारण की चेष्टा की और उन से निवेदन किया—"यदि आप महानुभावो की विपरीत विचार-शृङ्खला के कारण गुरुकुल को आधार शिला जर्जरीभूत होती है एव गुरुकुल-वृक्ष अपनी प्रथम अवस्था मे ही नीरस हो जाना प्रारम्भ होता है, तो वाञ्छित फल लगने की इस मे कोई आशा नही है। एक तपस्वी का लगाया यह तरुवर, परस्पर के वैमनस्याग्नि मे पड कर भुलस जाये, यह तो कोई अच्छी बात नही है। होना तो यह चाहिये कि इसे अपने सुप्रबन्ध और विद्या-नीर दान से सीच कर जनता हितार्थ फल देने योग्य बनाया जावे, यदि हम ऐसा नही कर सकते तो किसी के द्वारा किये गये परिश्रम को नष्ट कर देने का अधिकार भी तो हमे नही है। अत मै आशा करूगा, कि गुरुकुल सञ्चालन रूप महत्त्वपूर्ण कार्य की छत्र-छाया मे आपके परस्पर विरोधी विचार समाप्त हो जायेंगे और विभेद के कारण विनाश की ओर जाने वाली आप महानुभावो की अमूल्य शक्ति सङ्घटित हो कर पूर्ण उल्लास के साथ गुरुकुल के जीवन मे नूतन उत्साह का सञ्चार करेगी।"

श्री मुक्तिराम जी की इस प्रेरणा से दोनों महानुभाव अपने-अपने विरोधी स्तर से बहुत कुछ अवतीर्ण हो गए थे। किन्तु यह वातावरण

उसी अवस्था में सम्भव था जब कि मुक्तिराम जी भी वही गुरुकुल मे रह कर कार्य करे। अन्यथा वे वहाँ से अपना बिस्तर बोरिया समेटने को सुसज्जित थे। उनके पश्चात् संस्था का कुछ भी बने। वे अब उपाध्याय जी की प्रेरणा से उसकी जड़ खोदने से स्वय को हटा कर उस गुरुकुल-वृक्ष को यथास्थित परित्यक्त कर देना चाहते थे, जिस से कोई दूसरी ही व्यक्ति उसे सीच कर बड़ा कर सके। उन के हाथो उस का सर्व-विनाश न हो।

ऐसो स्थिति में श्री मुक्तिराम जी के लिए स्वय अपने विषय मे विचार करना अनिवार्य हो गया। वे अपने द्वारा दी गई प्रशस्त सम्मति का निरादर भी नहीं कर सकते थे। अत: उन के मन में एक विचार-धारा ने प्रवेश किया कि यदि ये दोनो महानुभाव गुरुकुल का परित्याग करके यहाँ से प्रस्थान कर जाते है तो इसे संभालने वाला यहाँ और है कौन ? गुरुकुल के सहयोगी कार्यकर्ता श्री भक्त शिवदर्शन जी, लाला रामदास जी, लाला लक्ष्मीदास जी, लाला खेमराज साहनी और लाला गौरीदास जी सर्राफ आदि भी तो एक दूसरे के आश्रय पर ही इस गुरुकुल के सञ्चालको की शृङ्खला मे आबद्ध है। बीच में से कड़ी के टूट जाने पर तो वह अति कठिनाई से जुड पाती है और यह भी सम्भव है कि जुडने ही न पावे और बना बनाया यह सारा खेल ही बिगड़ जावे। उस अवस्था मे इन निर्धनो के बालकों का क्या बनेगा, जो बहुत दूर-दूर से विद्या-ग्रहण करने की आशा में यहाँ आये हुए हैं। ये आजीवन विद्या के विना ही रह जावेंगे। इनके कोमल हृदयो पर पडा हुआ यह विद्या-हीनता का प्रभाव इनके आत्मा को अहर्निश मसोसता रहेगा। यदि मैं भी इनकी अवस्था में होता, तो मैं आज विद्याहीन ही रह जाता और आज मेरे लिए कितनी क्षति होती। शिक्षा-ग्रहण के अवरोध में न जाने कितने होनहार बालक, जो निर्धनतावश अन्य विद्यालयो में अपना प्रबन्ध नही कर सकते, उन सभी पर यह तुषारापात हो जाता है। होनहार विद्यार्थी सुख और दु ख सभी परिस्थितियो मे रहते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का यत्न किया करते है, उनके लिए यह रहा-सहा आश्रय भी समाप्त हो जायेगा। अत: ऐसी परिस्थिति में यह ही उचित है कि जैसे मैं ने नि.शुल्क रूप मे विद्या का सञ्चय यथा-तथा किया है, वह वास्तव मे नि.शुल्क छात्रो पर, विना कुछ वेतन रूप मे ग्रहण किये ही चरितार्थ हो सकता है। इस कार्य के लिए मुझे स्वय को समर्पित कर देना चाहिये। यदि मैं

अपना कुछ उत्सर्ग नही कर सकता तो दूसरो के लिए बहुमूल्य जीवन-उत्सर्ग कराने की प्रेरणा देने का भी तो मेरा अधिकार नही है। इन प्रशस्त विचारो के सम्मेलन मे श्री उपाध्याय जी ने अधिष्ठाता श्री विष्णुदत्त जी और मन्त्री श्री गौरीदास जी को, अपने ठहर जाने का वचन दे दिया और तीन सौ रुपये की दर्शन शास्त्र की कलकत्ते वाली पीठिका का सर्वथा विचार निर्मूल कर दिया। कलकत्ता न जाने के अपने इस दृढ सङ्कल्प को पत्र द्वारा, काशी निवासी गुरुवर्य श्री महामहोपाध्याय लक्ष्मणदत्त जी शास्त्री की सेवा मे अवगत करा दिया।

गुरुकुल काङ्गडी से पुन दर्शन आदि गम्भीर विषय पढ़ाने के लिए श्री महाराज के समीप पत्र आने लगे। परन्तु महाराज ने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि नि शुल्क गुरुकुल मे जहा अनाथ दरिद्र बालको का भरण-पोषण तथा विद्या-दान का प्रबन्ध है, वहाँ पर ही मेरी विद्या सफलीभूत होगी। आज से मेरा जीवन गुरुकुल पोठोहार चोहा-भक्तां के लिये समर्पित है।

गुरुकुल में अध्यापक

इस प्रकार सङ्घटन के दूत श्री पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय गुरुकुल चोहा-भक्तां की अध्यापक पीठिका पर आसीन हुए और सम्पूर्ण कार्य पूर्ववत् सुचारु रूपेण चलना प्रारम्भ हो गया। अध्यापन कार्य मे सहयोगी जिला गोण्डा निवासी श्री पण्डित हरिनाथ जी भी थे। अधिष्ठाता विष्णुदत्त जी प्राय बाहर के कार्यों मे ही व्यापृत रहते थे। गुरुकुल प्रबन्धकारिणी के सदस्य श्री भक्त शिवदर्शन जी जो चोहाभक्तां ग्राम मे भूमिहार थे, वे वैदिक धर्म मे दृढ अनुरागी थे। गुरुकुल मे आने वाले अभ्यागतो का मार्ग उनके ग्राम से था। मानकयाला से कल्लर खालसा तक तांगे से, आगे १५ [illegible] पदाति चलने मे रात्री हो जाती थी, अभ्यागत रात्री-पर्यन्त भक्त शिवदर्शन जी के यहाँ ही आतिथ्य ग्रहण करते थे। भक्त जी का समस्त परिवार ही आतिथेयत्व से परिपूर्ण था। भक्त जी के सुपुत्र श्री [illegible] जी गुरुकुल चोहा-भक्तां के स्नातक थे और वे उस प्रान्त मे अत्युत्तम उपदेशक प्रमाणित हुए। उनकी पत्नी भागवन्ती जी गुरुकुल-अभ्यागतो की सेवा शुश्रूषा करके वैदिक धर्म के अनुकूल [illegible] रही थी।

यज्ञदत्त जी के सतीर्थ्य श्री सोम दत्त जी भी उपदेशक मण्डल में चमक रहे थे। ये सभी महानुभाव पण्डित मुक्तिराम जी में विशेष श्रद्धालु हो गये। मन्त्री गौरीदास जी का सहयोग तो बहुत ही प्रशसनीय था, गुरुकुल में जितने द्रव्य की न्यूनता पड़ती थी, उसकी पूर्ति वे अपने समीप से कर देते थे। अहो ! अपने इस परम औदार्य से उन्होंने अपने को कैसा अमर बना लिया।

श्री पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय शीघ्र ही कार्यकर्ताओ और ब्रह्मचारी समुदाय मे, साधुता के रग से रंगे हुए प्रकाश में आने लगे। उनकी भव्य-आकृति, मधुर वार्तालाप, सयत-जीवन, परोपकारमय-प्रवृत्ति, उदात्त-गुणावली, मितभाषिता और समता का शान्त स्वभाव गुरुकुल-वासियो के जीवन मे नूतन स्फूर्ति का सञ्चार करने लगा। समीपवर्ती ग्रामीण जनता भी शनैः शनै. श्री महाराज के गुणों से परिचित होने लगी। वे ग्रामीणो की कष्ट भरी बाते अति सहानुभूति से श्रवण किया करते थे। यथा साध्य सहायता पहुँचाने में भी न चूकते थे। महाराज के जीवन मे आत्मत्व का गुण ओत-प्रोत था। उनका त्याग अति स्तुत्य था, जिसके प्रभाव मे आकर समीपवर्ती जन नत-मस्तक हो जाते थे। बिहार निवासी श्री स्वामी सहजानन्द जी गुरुकुल में बहुत ही कुशाग्र बुद्धि के अध्यापक थे। वे नव्य-न्याय मे श्री मुक्तिराम जी के काशी से ही साथी थे। महाराज उनकी विद्वत्ता की प्रशसा यदा कदा छात्रो के सम्मुख भी किया करते थे। पण्डित सत्यव्रत भविष्यत् के स्वामी सोमतीर्थ जी भी महाराज के काशी के अनन्य मित्रों मे से एक थे। किसी समय उन्होने आरक्षी-विभाग मे कार्य किया था, व्याकरण काशिका मे वे अच्छे निष्णात माने जाते थे। उनको विशेष रुचि योगाभ्यास मे थी; अत. गुरुकुल मे भी श्री उपाध्याय जी के साथ डेढ वर्ष ही सहवास रहा, पश्चात् वे गुरुकुल छोड़कर चले गए।

आर्ष ग्रन्थों में विरोधाभास

पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय, अध्यापन-कार्य के साथ-साथ वेदो के स्वाध्याय मे तल्लीन हो गए। उन्होने तब तक महर्षि दयानन्द के सब ग्रन्थ आद्यन्त नही देखे थे, किन्तु विद्यार्थियों की शङ्काओ का उत्तर वे यथोचित दे दिया करते थे। कभी-कभी ऐसे अवसर भी उपस्थित होते थे, जहाँ महर्षि के ग्रन्थों मे लोगो को विरोध प्रतीत

होता था, उस समय श्री पण्डित मुक्तिराम जी महर्षि के ग्रन्थ का वह स्थल, जो लोगों की दृष्टि में संदिग्ध होता, देखते तो उन्हे कोई विरोध प्रतीत न होता था। वस्तुतः बात ऐसी होती थी कि ग्रन्थानुशीली जन पद-वाक्य योजना ठीक प्रकार से नही लगा पाता था, केवल यही एक विरोध का कारण था।

रावलपिण्डी नगर में यदा-कदा आने-जाने के कारण तत्स्थानीय जनता भी श्री उपाध्याय जी के निकट सम्पर्क मे आने लगी और शनैः-शनैः महाराज के गुणो का प्रसार रावलपिण्डी नगर को भी अतिक्रान्त करके सीमान्त तक विकास पाने लगा।

स्रोत वैरी नाग

इसी वर्ष पर्वत यात्रा का कार्यक्रम बनाया गया। ब्रह्मचारियो मे ब्रह्मचारी विद्याधर, ईश्वरचन्द्र, अबोहर वासी भूदेव, विश्वदेव, सन्त मङ्गलदेव, चन्द्रकान्त और श्रुतबन्धु प्रमुख थे। अध्यापको मे पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय तथा अधिष्ठाता श्री विष्णुदत्त जी भी साथ हुए। रावलपिण्डी से एपटाबाद होकर जेहलम के उद्गम "स्रोत वैरी नाग" पर पहुँचना था। उसकी चौड़ाई केवल तीन मान (मीटर) और गहराई अत्यधिक थी। निर्मल जल होने से ८ मान गहरी तली भी स्पष्ट दीख पड़ती थी। इस वैरी नाग पर पहुँचने से पूर्व झील वल्लर की नौका यात्रा मे एक अप्रिय घटना घट गयी। बारामूला से श्रीनगर की ओर नौका मे जाते हुए रात्री मे नौका को ठहरा कर सब यात्री निद्रा लीन हो गए। प्रातः स्नान करके चन्द्रकान्त अपना वस्त्र निचोड़ रहा था कि वह झील मे गिर पडा। झील का जल अगाध था। बहुत समय तक उसका कुछ भी पता न लग सका। पश्चात् कोई वस्तु ऊपर आता प्रतीत हुआ। निकट आ जाने पर वह श्वेत वस्त्र-सा प्रतीत हुआ। झटिति एक दूसरे विद्यार्थी ने कूदकर उसे पकड़ लिया, वह चन्द्रकान्त का कुर्ता था और चन्द्रकान्त भी उसी के साथ ऊपर उठा आ रहा था। शीघ्रता से उसे ऊपर खीच लिया गया, वह सर्वथा निःसञ्ज्ञ हो गया था, पानी पी चुका था। चिकित्सा की प्रथम सहायता से उसका पानी निकाल दिया गया और उसका श्वास चल पड़ा।

उसकी चेतना से सब यात्री म्लान मुखों से प्रसन्न मुद्रा मे हो उठे तथा प्रभु को सतत धन्यवाद दिया, जिसने चन्द्रकान्त का पुनः पर्यन्त [illegible]

यात्रियों का सङ्गी बनाया। फिर वे अपनी नौका ले कर गन्तव्य पथ की ओर बढ गये। जेहलम नदी का उद्गम स्रोत औत्सुक्य दृष्टि से उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। अतिथियो के पहुँचने पर उसने अपने कलरव गान से उन का सुन्दर स्वागत किया। वहाँ कुछ विश्राम-करके रम्य स्थलो का पर्यटन करते हुए वे सब गुरुकुल लौट आए।

—:o:—

आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

आचार्य प्रकाश

अधिष्ठातृ महोदय श्री प० विष्णुदत्त जी से गुरुकुल-समिति का सङ्घर्ष रहता ही था। एक दिन साथ गुरुकुल-समिति के एक सदस्य श्री रामदास जी अपने ग्राम चोहाभक्ताँ से सिद्ध रसोई लेकर गुरुकुल आए। यद्यपि वहाँ भोजन पहले पक चुका था तथापि सहसा उसका निरादर भी नही कर सकते थे। अधिष्ठाता जी कठोर प्रकृति को व्यक्ति थे। उन्होंने श्री रामदास जी से भी साथ ही भोजन करने के लिए कहा। रामदास जी ने गुरुकुल मे पकाया गया भोजन ले लिया, किन्तु स्वयं का लाया, स्वीकार करने से निषेध कर दिया। अधिष्ठाता जी ने स्पष्ट कह दिया—"जब तक ये स्वय के लाये गए भोजन मे से भी स्वीकार नही करेंगे, कोई इस भोजन को ग्रहण नही करेगा।" तब रामदास जी बोले—"पण्डित जी ! यह मृतक का भोजन है, मैं उसे ग्रहण नही कर सकता।" इस पर अधिष्ठाता जी ने प्रबल भर्त्सना करते हुए उन्हे कहा—"स्मरण रक्खो ! आगे कभी ऐसी चेष्टा की, और यहाँ गुरुकुल मे आए, तो हाथ पैर तोड दिए जायेंगे। क्या गुरुकुल के ब्रह्मचारियो को अनाथ और निकृष्ट समझ लिया है, जिस भोजन को आप नही कर सकते; गुरुकुल वासी कैसे कर सकते है ? आप को यह दुश्चेष्टा करते हुए लज्जा नही आई ?" इन वाक्यो से श्री रामदास जी का मुख मण्डल एक पदे निष्कान्त हो गया। वे गुरुकुल से चले गए और ग्राम मे पहुँचकर जब इन घटना की सूचना ग्रामवासियो को दी, तो वे सब अधिष्ठाता श्री विष्णुदत्त जी के विरुद्ध हो गए। प्रबन्धक-समिति का विरोध श्री विष्णुदत्त जी के साथ और भी अधिक कड़ा हो गया। विरोध यहाँ तक बढ़ा कि श्री अधिष्ठाता जी गुरुकुल को एक ऐसा खाना पानी करने लगे, जो उन्हें [illegible] के लिए

भी निवास की अनुमति न देता था। श्री अधिष्ठाता जी ने अपने परम मित्र तथा सहयोगी पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय से कहा— "इस गुरुकुल को जितना शीघ्र हो सके, परित्यक्त कर देना श्रेयस्कर है। जिन व्यक्तियो का यहाँ आर्थिक सहयोग उपलब्ध होता है, पेशावर, नौशहरा, रावलपिण्डी, जेहलम आदि के वे नागरिक अतिशय कठिनाई से यहाँ पहुँच पाते है। चलिये, यहाँ से कही अन्यत्र चलकर एक अभिनव सस्था का निर्माण करेगे। प्रबन्ध-समिति भी स्मरण करेगी कि एक ब्राह्मण का निरादर करने का परिपाक कितना कष्टप्रद होता है।" श्री पं० मुक्तिराम जी ने अधिष्ठाता जी को समझाया—"यह हमारे लिये उचित नही कि एक तपस्वी, कर्मठ, भावनावान् वैदिक विद्वान् स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के सस्थापित गुरुकुल को ऐसी चोट पहुँचाई जावे।" किन्तु अधिष्ठाता जी किसी प्रकार भी प्रसन्न न हो सके और उन्होने श्री मुक्तिराम उपाध्याय पर गुरुकुल-परित्याग के लिये सम्पूर्ण बल लगा दिया। परिणाम स्वरूप दोनो वहाँ से निकल चले और रावलपिण्डी समाज में आ पहुँचे। पश्चात् गुरुकुल की अव्यवस्था को देखकर शिवानन्द और शत्रुघ्न दो बडे ब्रह्मचारी भी समाज मे आगये। पूज्यपाद गुरुवरो से साक्षात् होने पर वे हर्षातिरेक में स्वस्थ प्रकृति में शीघ्र लौट आए। श्री उपाध्याय जी ने अधिष्ठाता जी से कहा—"विद्याधर ब्रह्मचारी को भी यहाँ ले आना चाहिये, वह सुयोग्य, विचक्षण, आज्ञाकारी बालक है। उसके आयु का अभी तेरहवाँ ही वर्ष है। वहाँ उसका जीवन सर्वथा नष्ट हो जायेगा। शिवानन्द और शत्रुघ्न ने गुरुकुल पहुँच कर विद्याधर को वहाँ से ले आना स्वीकार कर लिया। सायकाल होते ही दोनों गुरुकुल पहुँच गए। कोई उन्हे वहाँ देख न पाये, अतः वे अपना अवस्थान गुरुकुल भूमि से कुछ दूर बनाए हुए थे। सब ब्रह्मचारी भोजन के लिए पाकशाला में चले गये थे, विद्याधर पीछे रह गया था। शिवानन्द एकाकी ही, जो अपने सिर को वस्त्र आदि से लपेटे हुए था, और परिवेश से सर्वथा अपरिचित हो चुका था, उसके निकट जाकर सहसा तार स्वर से बोला—"कौन है ? रख दे यही पात्र, कहा जा रहा है, चल उलटा।" विद्याधर उससे भयभीत हो गया और लौट आया। स्थान पर आकर शिवानन्द ने उससे फिर कहा—"क्या तुम्हारे समीप कोई पुस्तक नही है ? उठा; चल यहाँ से; क्यो खड़ा है ?" विद्याधर ने संत्रस्त होकर यन्त्र की भाति आदेश का पालन किया और अपना वस्तुजात लेकर उसका अग्रवर्ती हो गया। जब शत्रुघ्न के अन्तर्हित

स्थान पर दोनों पहुँचे, तव शिवानन्द ने विद्याधर से कहा—"मुझे पहचानता है, मै कौन हूँ ?" "नही" शिवानन्द वोला—"मैं शिवानन्द हूँ और वह शत्रुघ्न। चलो, अधिष्ठाता जी और उपाध्याय जी के समीप। हम तुझे लेने ही आए थे।" वालक विद्याधर खिल उठा, उसका मन गुरुकुल मे लग नही रहा था; गुरुकुल-भूमि से वह कभी वाहर नही गया था, जो वहाँ से निकल कर कही अपने गुरु प्रवरो की अन्वेपणा करता। शिवानन्द और शत्रुघ्न की सरक्षता मे वह अंधेरे मे चार कोस नङ्गे पैरो ऊँचे-नीचे कटीले विषम स्थानो को पार करके एक ग्राम मे पहुँचा। प्रात काल गुजरखाँ स्थात्र* पर संयान† पकडना था, अत. ग्राम से कुछ भुने हुये चने क्रीत करके खा-पीकर रात्रि मे ही तीनो चल पड़े। अव मार्ग कुछ उत्तम आ गया था। चलते-चलते परिश्रान्ति-वश जब निद्रा ने आ घेरा, तव मार्ग में वही सो गए। थकान होते हुए भी उत्तरदातृत्व के कारण शिवानन्द और शत्रुघ्न कुछ सजग थे। उन्हे सयान† का श्रीकार‡ सुनाई दिया। विद्याधर को उठाया और फिर दौडना प्रारम्भ कर दिया। दौड़ते गए, दौडते गए, वहुत देर दौडते रहने पर भी स्थात्र* आकर ही न दिया। अन्तत. दौडते ही रहे जव तक स्थात्र* पर न पहुँच गए। वहाँ जाकर देखा, तो रात्रि के वारह वजे थे और सयान† आने मे चार घन्टे का विलम्व था। श्रीकार‡ से भ्रान्त हुए अपने को समझ पुनः तीनो निद्रालीन हो गए और सयान आने पर उस पर आरूढ हो, यथा-तथा रावलपिण्डी स्थात्र* पर जा उतरे। वहाँ से गुरुचरण-शरण मे तीनो आ पहुँचे।

शिवानन्द को वही से उसके घर भेज दिया गया। शत्रुघ्न और विद्याधर को लेकर पण्डित विष्णुदत्त जी नौशेहरा पहुँचे। तव तक प० मुक्तिराम जी उपाध्याय वही समाज मे विराजमान रहे। शत्रुघ्न को उसके घर नौशेहरा छोड दिया। नगर समाज मे लोकनाथ तर्क वाचस्पति महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाव से चार आसे हुई। सम्पूर्ण कथा-श्रवण के पश्चात् उपदेशक महोदय ने विष्णुदत्त जी से कहा—"इस वालक को मुझे दे दीजिये। मैं इसे उपदेशक वना दूँगा। श्री विष्णुदत्त जी ने जव वालक से पूछा तो उसने उनके साथ रहने से निषेध कर दिया। पश्चात् वालक विद्याधर और प० विष्णुदत्त जी रावलपिण्डी लौट आए और प० मुक्तिराम जी ने उन्हे परामर्श दिया कि

---

*स्टेशन †रेलगाड़ी ‡सीटी

बालक को इसके घर पहुँचा दिया जाये उसके पश्चात् हम अपना कार्यक्रम बनाएँगे। तथा कथित वचन का पालन हो गया। इतना करने के उपरान्त श्री पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय ने अपने मित्र विष्णुदत्त जी से कहा कि यही उत्तम है—हम गुरुकुल चले। स्वामी दर्शनानन्द के गुरुकुल उद्यान को इस प्रकार उजाडना शोभनीय नहीं है। किन्तु विष्णुदत्त जी को यह कथन अङ्गीकार न हुआ और वे जेहलम चले आए। श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय गुरुकुल चोहा भक्ताँ मे चले गए। वहाँ जाकर देखते है कि छोटे बालक भी इतस्तत हो चुके है। अब अभिनव पद्धति से ही गुरुकुल का अभिनवीकरण करना होगा।

गुरुकुल प्रबन्धक समिति को जैसे ही प० मुक्तिराम जी के पहुँचने का समाचार मिला, वे शीघ्र उनके चरणो मे पहुँचे और निवेदन करने लगे—"पण्डित जी! आप गुरुकुल को दोबारा चालू कर दीजिए, हम आपको पूर्ण सहयोग देगे। इस समय गुरुकुल के जितने भवन है, ये सब त्रुटि-पुर्ण है। उन्हें हटाकर अच्छे भवनो का निर्माण करेगे।"

श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय के सौजन्य से, प्रबन्धक समिति, समीपवर्ती और दूरवर्ती नागरिक भली-भाति प्रसन्न थे। लोगो ने अपने बालक प्रविष्ट करने आरम्भ कर दिये तथा सख्या २५ पहुँच गयी। भवन भी बनने प्रारम्भ हो गए। प्राचीन गुरुकुल के ब्रह्मचारियो को भी उनके घरो से बुला लिया गया और कार्य सुचारु रूपेण चल पडा। प्रबन्धक समिति, जिसमे लाला खेमराज साहनी, शिवदर्शन जी चोहा-भक्ता, गौरीदास जी रावलपिण्डी और सरदारीलाल जी कुञ्जा प्रमुख थे, ने गुरुकुल को सम्पूर्ण रूपेण श्री मुक्तिराम जी को सभलवा दिया तथा उन्हे गुरुकुल का मुख्य-अधिष्ठाता तथा आचार्य नियुक्त कर दिया। सब सुधार-असुधार अब उन पर ही आ पडा।

आचार्य श्री पण्डित मुक्तिराम जी ने अपने शिष्य ब्रह्मचारी दमानन्द भविष्यत् के स्वामी वेदानन्द तीर्थ और विश्वदेव जी को बनारस से बुला लिया। स्वामी दर्शनानन्द जी के सस्थापित अन्य चार गुरुकुलो मे भी श्री आचार्य मुक्तिराम जी की ख्याति पहुँच चुकी थी। गुरुकुल ज्वालापुर ने अपने वार्षिक महोत्सव पर श्री आचार्य मुक्तिराम जी को आमन्त्रित किया। गुरुकुल ज्वालापुर के स्नातक श्री उदयवीर जी अध्यापको मे माने हुए अध्यापक थे। वे आचार्य

मुक्तिराम जी उपाध्याय के भाषण में उनके सुलझे हुए विचारों से बहुत प्रभावित हुए। वैसे भी पण्डित मुक्तिराम जी का हृष्ट-पुष्ट सुदृढ शरीर, अथवा दिव्य देह आकर्षण का विषय था। श्री उदयवीर जी, प्रौढ विद्वानो से वार्तालाप करने मे अच्छे रसिक थे। उन्होंने आचार्य मुक्तिराम जी से भी दर्शन, उपनिषद् और व्याकरण विषय पर पर्याप्त वार्तालाप किया। श्री उदयवीर जी की विचारशैली से आचार्य मुक्तिराम जी बहुत प्रसन्न हुए और श्री उदयवीर जी भी उनकी ओर आकृष्ट हो गए। दोनो के वयः में केवल १०,१२ वर्ष का ही अन्तर था। आचार्य मुक्तिराम जी उदयवीर जी से बडे थे, अतः श्री उदयवीर जी ने आचार्य मुक्तिराम जी को ज्येष्ठ भ्राता के रूप में देखा और उनका अति सम्मान किया।

पितृ-ऋण से उन्मुक्त

श्री उपाध्याय जी ने गुरुकुल चोहाभक्ता में स्थायी रूप से अपनी स्थिति की सूचना अपने घर सन् १९१७ मे ही भेज दी थी। गुरुकुल का प्रेषालय (डाकखाना) उस समय भी चोहाभक्ता खालसा था। एक समय उन के पिता पण्डित दीनदयालु जी ने अपनी रुग्णावस्था की सूचना जब महाराज को दी, तो वे व्याकुल हो उठे और उस से भी अधिक महाराज को इस बात का खेद हुआ कि मेरे होते हुए भी पूज्य पिता जी पर ऋण है, जो कि पुत्र के ऊपर एक कलङ्क ही है। बाल्यावस्था मे किन अनेक कठिनाईयो के प्रतिरोध मे माता-पिता सहृदय बच्चो का भरण-पोषण करते है, यह उनका अपने बच्चो पर बड़ा भारी ऋण है। विशेषत. मेरे लिए तो और भी अधिक उत्तरदायित्व है कि उन्होंने मेरे अध्ययन मे कभी भी प्रतिबन्ध उपस्थित नही किया। उस समय उनके यही विचार थे कि उनका पुत्र पढ लिख कर घर की स्थिति मे कुछ सुधार करेगा और मेरी विचारसरणी भी कुछ ऐसी ही थी। यदि मैं उनका बहुत अभिलाष पूर्ण नही कर सका, फिर भी इतना तो मेरे लिए अनिवार्य हो ही जाता है कि मैं उनके ऋण को चुकाकर उन्हें ऋण से उन्मुक्त कर दूँ। इससे उन्हे बहुत सन्तुष्टि उपलब्ध होगी।

इन विचारों के प्रकाश मे श्री पण्डित जी महाराज अपने मस्तिष्क के सन्तुलन को स्थिर न रख सके और वे गुरुकुल के मन्त्री श्री गोरीदास जी से यह कहने के लिए विवश हो गए कि उनके पिता जी पर

पाँच सौ रुपये का ऋण है। यद्यपि उन दिनों गुरुकुल पर १८००० रुपये ऋण था; किन्तु पिता जी के ऋण की अवस्था भी उनके लिए असह्य थी। अत. उन्हो ने आगे कहा कि ऐसी अवस्था में जब कि वे ऋण चुकाने में भली-भाँति समर्थ है, पिता जी पर ऋण नहीं देख सकते; चाहे अव उन्हें कही वैतनिक कार्य भी क्यों न करना पड़े। श्री सरदारीलाल जी को जब महाराज के पिता जी पर ऋण की बात अवगत हुई, तो वे वहुत लज्जित हुए और बोले, "महाराज, मैं ऋण का समस्त राशि अभी दिए देता हूँ। केवल इस थोड़े-से राशि के लिए आप वेतन पर कार्य करे, यह तो हमारे लिए ही अति लज्जास्पद है। आपकी तो महाराज जितनी सेवा की जाये, कम है। आपने पहले इस बात का सङ्केत नही किया अन्यथा यह समस्या तो कभी की सुलझ गई होती। आपने इस विषय को अभी तक अपने भीतर ही रख कर वड़ा कष्ट पाया होगा। महाराज, हम पापी है, जो आपकी स्वयं भी कोई सार-संभार नही कर सके।" इस प्रकार एक वार मे ही सब ऋण चुक गया। यतः उपाध्याय जी ही गुरुकुल के प्रमुख रूपेण कर्ता धर्ता थे; अतः समिति से परामर्श करके ६०) रु० मासिक उनके घर पर भविष्यत् में भी भेजने का मन्त्री महोदय ने सङ्कल्प कर लिया।

वैवाहिक चर्चा

श्री उपाध्याय जी के गुणागार कान्तिमान् काय और सुनहरी मूँछो से सुशोभित मुखाकृति से आकृष्ट होकर रावलपिण्डी निवासी एक सम्भ्रान्त पुरुष, अपनी कन्या का पाणिग्रहण-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उनसे निवेदन करने लगे। किन्तु श्री पण्डित जी महाराज ने ऐसा करने से स्पष्ट निषेध कर दिया। उनसे सर्वथा निराश हो, वे उनके पूज्य पिता जी के घर अन्छाड़ ग्राम पहुँचे और उनसे विवाह-सम्वन्ध ले लेने के लिए आग्रह करने लगे। श्री पण्डित दीनदयालु जी ने उनसे निवेदन किया कि उनके सुपुत्र पण्डित मुक्तिराम जी अब बालक नहीं हैं। अपने भले-बुरे को वे अब अच्छी प्रकार समझते हैं। यदि वे न्यून वय. के होते, तो वे भी इसमे उन्हे कुछ परामर्श दे सकते थे; किन्तु एक अच्छे गम्भीर विद्वान् के विषय मे वे कोई सम्मति स्थिर नही कर सकते। यह विषय उन्ही पर छोड़ देना उचित है। आप स्वयं ही उनको परामर्श दीजिए, पुनः उन्हे जो जचे, कीजिए। इससे पूर्व पण्डित दीनदयालु जी भी अपने पुत्र को विवाह के लिए प्रेरित कर चुके थे; किन्तु असफलता के दर्शन होने पर वे

शान्त हो गए थे। उन्हें वार-वार पुत्र की ओर से यही उत्तर मिलता था—"अभी नही, अभी नही, अभी कुछ और प्रतीक्षा करो।"

वह पुरुष पुन. वहाँ से लौटकर श्री चरणो में आ उपस्थित हुआ और उसने सानुनय अपना निवेदन प्रकट किया। महाराज वोले—"भाई! आप इन वातो को नही समझते। विवाह-सम्वन्ध किसी के वल देने से सम्वन्ध नही रखता। उसका सम्वन्ध स्वय के अपने विचारो से होता है। जो माता-पिता वालक के अल्पवय. मे जव कि उसे कुछ पता ही नही होता, यह सम्वन्ध ले लेते है, वे सर्वथा मनोविज्ञान से शून्य हैं और इसकी प्रतिक्रिया अन्त मे उन्हे भुगतनी पडती है। जव वालक यौवन अवस्था मे पहुँच जाये, माता-पिता को चाहिए कि वे इस विषय को अपने पुत्र पर ही निर्णय के लिए छोड दे। उस समय जो युवक मनोविज्ञान के अन्तस्तल तक पहुँच गया है और इस मन की उधेड-बुन को एव इसके विनाश और निर्माण के प्रकार को भलीभाति जान गया है, वह इस पचडे में कभी नही पडेगा। यदि उसके भीतर विवाह सम्वन्धिनी कोई वासनाएँ भी हो, तो वह पूर्वसञ्चित वासनाओ को समाप्त करने की ही चेष्टा करेगा न कि उन्हे और अधिक वढाने की। विवाह करने से इस सम्वन्ध की वासनाएँ वढती ही है, कम नही होती। प्रत्येक किया हुआ कर्म तत्सम्वन्धिनी वासनाओं को ही जन्म देता है, उनका क्षय नही करता। उनके क्षय करने का उपाय यही है कि मन को उस कर्म मे पुन व्यापृत न करे। ऐसा करने से कालान्तर मे वे वासनाएँ सर्वथा क्षीण हो जायेगी और भविष्यत् मे इस प्रकार के मधु विष वृक्ष को जन्म नही दे सकेगी, जो मनुष्य को जन्म-जन्मान्तरो के चक्कर मे डालकर परिणाम में दु.ख देने वाले मीठे-मीठे फल प्रदान करता रहता है।

विवाह करना कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु नही है। इसीलिए हमारे ऋषियो ने इस तत्त्व को पहचान कर गार्हस्थ्य जीवन को ऐसा मगन वना दिया है कि यदि वह उसके अनुकूल आचरण नही करता है तो पापी है। इसका तात्पर्य यह नही कि मर्यादा मे चलने वाला सर्वथा निष्पाप है। वह अपेक्षा कृत वहुत उत्कृष्ट है किन्तु मन जव तक अच्छी बुरी सभी वासनाओ से सर्वथा निर्मुक्त होकर आत्मा का पीछा नही छोड देता, तव तक वह अधर्म-पाप अथवा अशुद्धि ही गिना जाता है। सर्वथा शुद्ध निर्मल रूप आत्मा का, स्वय अपना आप है। इसके

अतिरिक्त उसकी जो भी चेष्टाएँ हैं, वे सब अशुद्धि में ही गिनी जाती है। वे कापुरुष है, जो इस रहस्य को समझ कर भी, संसार में अनेक प्रचलित प्रथाओं को मान्यता देते है, ये मान्यताएँ अपेक्षा-कृत ही सत्करणीय हैं। ससार की इस ऊलजलूल प्रक्रिया के रहस्यवेत्ता के लिए इनका कोई मूल्य नही है। यह रहस्यवाद, तत्ववेत्ता के अपने लिए ही उचित है, दूसरो के लिए गार्हस्थ्य धर्म से आदर्श जीवन व्यतीत करना ही श्रेयस्कर है। अतः इस विषय मे बल देने के लिए आपको पुनः यत्न न करना चाहिए।

श्री मुक्तिराम जी की इन बातो से वह लज्जित हो गया और पाद-स्पर्श कर अपने किये की क्षमा मांगने लगा।

एक समय महाराज नगर में यज्ञ करा रहे थे और यज्ञ के पश्चात् कथा भी किया करते थे। महाराज की ओजस्विनी वाणी से निकले हुए शब्द जनता को मोहित करते चले जाते थे। ब्रह्मचर्य से प्रदीप्त मुखमण्डल भी आकर्षण का विशेष केन्द्र था। उनकी आँखों से कोई आँख नही मिला पाता था। कथा के पश्चात् एक दिन जब श्रोतृगण चले गए तो एक देवी, महाराज को अकेला देखकर उलटे पग लौट आई और उन से अपने जीवन का सम्बन्ध जोडने की प्रार्थना करने लगी। महाराज ने इस पर अपनी असहमति प्रकट की। जब पुन.-पुन. निवेदन करने पर भी महाराज सहमत न हुए तो उस देवी ने क्रोध में आकर महाराज पर चाकू का वार कर दिया और तत्काल भाग गई।

श्री मुक्तिराम जी साहित्य के छात्रों को श्लोक-रचना का अभ्यास भी कराया करते थे और उनकी अशुद्धियाँ ठीक कर उसे अच्छा रूप दे दिया करते थे।

छात्रों में ईश्वरचन्द्र जी विलक्षणमति सम्पन्न थे। गुरुकुल में प्रविष्ट होने से पूर्व वे घर पर भी बहुत अच्छा संस्कृत मे सम्भाषण किया करते थे। व्याकरण में उनका ज्ञान पर्याप्त था। उनके पिता जी के साथ आचार्य मुक्तिराम जी के उदात्त सम्बन्ध थे। वे यदा-कदा उनके घर को भी अपनी उपस्थिति से पवित्र कर देते थे। एक बार वे बोले—"इस बालक को आगे मैं पढ़ाऊँगा।" इतना सुनते ही निष्ठावान् पिता ने पुत्र को आचार्य प्रवर के सरक्षण में दे दिया। उन्होंने उसे वैशेषिक और न्याय दर्शन कुछ काल तक स्वयं पढ़ाया

पश्चात् विशेष योग्यता-सम्पादनार्थ श्री मुक्तिराम उपाध्याय ने श्री ईश्वरचन्द्र को काशी भेज दिया।

गुणग्राही मुक्तिराम

रावलपिण्डी आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर नगर में सयात्रा निकल रही थी। आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय भी सम्मिलित थे। एक व्यक्ति ने उनकी कौशेय वेष भूषा को देखकर कहा—"देखो, आर्य-समाज के पण्डित भी कैसे चटक-मटक के वस्त्र पहनते हैं।" जब आचार्य जी को इस आलोचना का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने उसी समय एक आपण से खद्दर के वस्त्र ले लिए और शोभा-यात्रा के आर्य-समाज-मन्दिर में पहुँचते ही सबसे प्रथम उन्होंने जो कार्य किया, वह था—कौशेय वस्त्रों का उतार देना और उनके स्थान पर स्वच्छ साधारण वस्त्रों से शरीर को ढक लेना। सभी के समक्ष उनकी इस गुणग्राहिता पर आर्य पुरुष मुग्ध हो गए।

पितृ-परिचर्या

श्री पण्डित मुक्तिराम जी के पिता दीनदयालु जी गुरुकुल में सुशोभित हुए। आचार्य जी ने पिता जी के आगमन पर अति सम्मान के साथ उनकी प्रभूत परिचर्या की, क्योंकि वे पिता जी में बाल्यकाल से ही श्रद्धा सजोये हुए थे और उनकी प्रत्येक प्रकार की चेष्टा एवं उदारवृत्ति से परिचित थे। पिता ने भी अपने को गौरवशाली समझते हुए पुत्र की अनेक विध प्रशंसा की—"बेटा ! तुमने अपना जन्म तो सफल किया ही, साथ में मेरा भी परित्राण कर दिया है। शास्त्रों में वे ही माता-पिता धन्य माने गए हैं, जिन्होंने ऐसी सन्तति को जन्म दिया, जो संसार में विरक्त हो और अपने इसी मनुष्य जीवन में मोक्ष को प्राप्त हो जावें। उस कार्य की प्रशंसा होती ही है, जिसे बहुत कम व्यक्तिया कर पाती है, जिसे सब करती हो, वह महत्त्व की वस्तु नहीं रह जाता। यही कारण है कि शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य-पालन को सबसे श्रेष्ठ माना है, क्योंकि प्राय. सभी लोग इसमें अनुत्तीर्ण हैं। जो लोग इसमें फिसल गए, वे अपनी निर्बलता पर आवरण डालकर स्वयं को श्रेष्ठ बनाकर एक अच्छे व्यक्ति को भी अपनी ओर आकर्षित करने का यत्न करते हैं। अत क्या श्रेष्ठ है और क्या नहीं ? इसका निर्णय आप्त पुरुष या शास्त्र ही कर सकते हैं, सामान्य नहीं ! इसीलिए

उन्नति करने वाले लोग शास्त्रों के अनुष्ठान को नही छोड़ते, चाहे ससार उन्हे कुछ भी कहे। बेटा ! तुम धन्य हो, अपना जीवन सफल करो और हमारा नाम संसार मे प्रसिद्ध करो। संसार का कीड़ा बनकर रहने से क्या लाभ ?"

श्री पण्डित दीनदयालु जी कुछ दिन तक अपने पुत्र के समीप निवास करके और उनके भावी जीवन से सन्तुष्ट होकर अपने ग्राम अञ्छाड़ को चले आए।

गङ्गादेई का मिलन और उपदेश

इसके पश्चात् पण्डित दीनदयालु जी की पुत्रवधू श्रीमती गङ्गादेई भी अपने देवर से मिलने गुरुकुल आई। अपने देवर की सब पिछली बचपन की बाते उसके स्मृति पटल पर आ-आकर चमकने लगी। वे तेरह वर्ष के वयः में जब उनके घर आई थी, तो उनके देवर मुख्त्यार का वयः उस समय छः वर्ष था। दोनो के वयः मे केवल सात वर्ष का ही अन्तर था। अनेक अवसरो पर गङ्गादेई ने मुख्त्यार की सार-सभार अपने हाथो से की थी। जब उसने अपने देवर को बनारस मे पढ़कर आने के पश्चात् इस रूप मे जनता की सेवा करते देखा, तो उसे बहुत सन्तोष हुआ। वे देवर से कहने लगी—"तुम्हारे पिता तो परोपकारपरायण थे ही, तुमने उनसे भी आगे बढकर अपना कर्त्तव्य निश्चित किया है, यह अच्छी ही वार्ता है। ससार के भूले-भटके लोगो को, उनके कल्याण के लिए अपने जीवन की आहुति देकर यदि ब्राह्मण ही मार्ग नही दिखायेगे, तो उनकी जीवन-नौका का खेवनहार संसार मे और कौन है? ब्राह्मणो का ब्राह्मणत्व भी तो इसी मे निहित है क्योकि वे भगवान् के अतिनिकट होते है। इस कारण उन्हे भी प्रभु की भाँति ही स्वार्थरहित होकर कार्य करना चाहिए। इस प्रकार से वे जगदीश के और भी अधिक निकट होते चले जाते हैं और अन्त में ईश्वर मे ही लीन हो जाते है। मैंने ऐसी बाते कथाओ मे सुनी हैं। उनसे मुझे अति प्रसन्नता होती है। जगन्नियन्ता से यही विनय है कि ब्राह्मणो का यह परोपकारमय निधि युग-युग पर्यन्त संभलता रहे।" इस प्रकार देवर से आश्वस्त होकर वे पुन अञ्छाड़ चली गईं।

झगड़े का निपटारा

गुरुकुल के निकट "नम्म" और दूसरा "मीरगाला" नामक एक

वड़ा मुसलमानी ग्राम था। वहाँ के वासी धनाढ्य थे। नम्म ग्राम के वासी दो पीढी से ही मुसलमान वने थे। वे अपने घरो को वहुत ही शुद्ध तथा निर्मल रखते थे। विवाह जैसे अवसरो पर वे मौलवी और पुरोहित दोनो को ही संस्कार के लिए वुलाते थे। पण्डित मुक्तिराम जी का इन दोनो ग्रामो पर अच्छा प्रभाव था। किसी कारणवश इन दोनो ग्रामो के ग्रामीणो मे पारस्परिक तनाव उत्पन्न हो गया। वह वढते-वढते सङ्घर्ष का रूप धारण कर गया। दोनो ओर से पत्थरो की वर्षा होने लगी। पारस्परिक आवेशपूर्ण समराङ्गण से उठी चीत्कार ध्वनि जव गुरुकुल तक पहुँची, तो उपाध्याय जी ने ब्रह्मचारियो से कहा—"ब्रह्मचारियो ! दौड़ो, दौडो, देखो, वह क्या हो रहा है, लोग लड रहे हैं, भाग कर उन्हे छुडाओ।"

गुरुकुल के ब्रह्मचारियो मे ब्रह्मचारी विश्वदेव और सन्त मङ्गलदेव अच्छे हृष्ट-पुष्ट और वलवान् थे। वे सहसा दौडकर उनके समीप पहुँचे सन्त मङ्गलदेव को पेट मे एक पत्थर लगा। थोडी देर मे दूसरे ब्रह्मचारी भी पहुँच गए और उनका वीच-वचाव करते रहे, पर सफलता न मिली। स्थिति को विकट जानकर ज्यो ही वहाँ श्री आचार्य मुक्तिराम जी पहुँचे, दोनो पक्ष वालो ने पत्थर फेंकना वन्द कर दिया। उपाध्याय जी ने उनसे कहा—"तुम परस्पर भाई-भाई होते हुए भी लडते हो, यह तो वहुत वुरी वात है। तुम्हे लज्जा आनी चाहिए।" पण्डित जी के इन शव्दो से वे पानी-पानी हो गए और अपने किए पर पश्चात्ताप प्रकट करने लगे। उस समय नम्म के ग्रामीणो ने महाराज से निवेदन किया "—इस दूसरे पक्ष को समझा दीजिए यह मे थाने न जावे।"

महाराज के समझाने पर वे भी सन्तुष्ट हो गए।

दोनो पक्षो को छुडाने के लिए ब्रह्मचारी, तथा पण्डित मुक्तिराम जी निहत्थे ही जा पहुँचे थे। यद्यपि उन दिनो वे ब्रह्मचारियो को स्वय लाठी चलाना भी सिखाते थे, तथापि उनका यह प्रशिक्षण निर्वलो की रक्षार्थ था, आक्रमणार्थ नही।

अपूर्व वक्ता

जनता के प्रिय मुक्तिराम उपाध्याय गुरुकुल के लिए अंशदान एकत्रित करने के निमित्त पर्यटन करते हुए [illegible] पहुँचे। उन्हो

व्याख्यान का प्रबन्ध करना आर्यजनो को कुछ कठिन प्रतीत हुआ, क्योकि वहाँ उसी समय एक कन्या गुरुकुल के लिए रुपया एकत्रित किया जा चुका था। आचार्य मुक्तिराम जी धन की अपेक्षा ज्ञान-प्रसारण को अधिक महत्त्व देते थे। इस कारण उन्होने अंशदान का विचार परित्यक्त कर, व्याख्यान का ही कार्य-क्रम बनाया। इसके अनुसार प्रबन्ध हो जाने पर व्याख्यान-मञ्च पर आरूढ़ होकर आचार्य श्रेष्ठ ने ज्यो ही क्रमशः दो मन्त्रों का उच्चारण किया, तो उनके मधुर कण्ठ से निकले कलरव ने उपस्थित भद्र पुरुषो को विमोहित कर लिया। लोग झूम उठे। वहाँ कतिपय पौराणिक पुरुष भी सभा की शोभा बढा रहे थे। आर्य समाज की ओर से आयोजित उस व्याख्यान की वे भी विपुल प्रशसा कर रहे थे। व्याख्यान का उपक्रम स्पष्ट सूचना दे रहा था कि ऐसे मर्मस्पर्शी शब्द किसी महापुरुष की वाणी के अतिरिक्त नही निकल सकते। पण्डित जी के अपूर्व भाषण से जनता ने अपने मन को पवित्र करके आगे के लिए कुटेवो से बचे रहने का प्रण कर लिया। कन्या गुरुकुल के निमित्त पहले अशदान एकत्र किए जाने पर भी आचार्य मुक्तिराम के व्याख्यान से प्रभावित उपस्थित भद्रपुरुषो को यह रुचिकर प्रतीत नही हुआ कि एक अद्वितीय व्याख्याता दक्षिणा प्राप्त किए बिना यहाँ से रिक्त हस्त चला जावे। अतः उन्होने उल्लासपूर्ण प्रयास से शीघ्र ही आठ सौ रुपए इकट्ठे कर लिए और उपाध्याय जी के चरणो मे यह तुच्छ उपहार समर्पित करते हुए निवेदन किया "—भगवन्! कभी-कभी हम अकिञ्चनो के यहाँ भी पधार कर आज की न्याईं उपकृत करते रहिएगा। आपका यहाँ यह प्रथम आगमन ही हमारे जीवनो मे नवीन स्फूर्ति करता प्रतीत हो रहा है।"

पुनः दृढ़व्रती के सम्पर्क में

श्री पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय सन् १६१६ मे दूसरी वार पर्वत यात्रा के लिए जब समुद्यत हुए, तो स्वामी विशुद्धानन्द (पण्डित-विष्णुदत्त) जी भी वहाँ आ विराजमान हुए। वे भी साथ चल पडे। सब यात्रियो ने अपना प्रथम डेरा आर्य समाज एपटाबाद में लगाया। दोनो महानुभावो के वहाँ व्याख्यान हुए। भोजन का प्रबन्ध आर्य समाज के प्रधान श्री चूड़मल जी ने किया। स्वामी विशुद्धानन्द जी को विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ कि चूड़मल जी तो माँसभक्षी है; अत. उन्होने पण्डित आचार्य मुक्तिराम जी से कहा कि इनके यहाँ तो भोजन नही करेंगे। आचार्य जी ने भी इस प्रशस्त सम्मति का आदर किया और

दोनो प्रतिष्ठित महात्माओ ने चूडमल जी पर भोजन न करने का कारण स्पष्ट कर दिया। यह सुन कर चूडमल जी असमञ्जस मे पड़ गए और उन्होने विचार के लिए कुछ समय मांगा। घर मे परामर्श करके लौटने के पश्चात् चूडमल जी बोले "—करुणानिधान! मेरे भोजन को स्वीकार कीजिए आज से मैंने मांस-भक्षण छोड दिया है। विद्याधर प्रभृति छात्र इस घटना से अति प्रभावित हुए कि सद्विचारो की दृढता अन्त मे जीवन-परिवर्तन की एक कला है। सब यात्रियो ने आनन्दपूर्वक भोजन किया और आचार्य मुक्तिराम अपने यात्रा दल के सहित सात दिन तक एपटाबाद मे ही विराजमान रहे। प्रतिदिन दिए गए उपदेश आर्यसभासदो को सदाचार के क्षेत्र में उत्साहित करने लगे।

पश्चात् यात्रीगण काश्मीर की ओर बढ गया। जहाँ-जहाँ भी पर्वत यात्री अपना डेरा डालते थे, पण्डित मुक्तिराम अपने उपदेशो द्वारा नागरिको को आत्मिक भोजन प्रदान करके ही उनसे शारीरिक भोजन स्वीकार करते थे।

यात्रा के पर्वतीय प्रदेश मे चढते-चढते वे एक दिन काश्मीर जा पहुँचे। वहाँ पर भी वैदिक प्रचार का क्रम आचार्य मुक्तिराम जी ने चालू रखा। कुछ दिनों तक काश्मीर के रम्य स्थलो का अवलोकन करके यात्री दल लौट चला। लौटते समय अनेक स्थानो पर मार्ग ढलाऊ था। नवयौवन से पूर्ण आचार्य मुक्तिराम जी के हृदय सरोवर मे एक तरङ्ग उत्पन्न हुआ कि ढलाऊ मार्ग पर दौडने के परीक्षण करने का अवसर इससे उत्तम और क्या मिल सकता है। अपने तरङ्ग को भङ्ग न करते हुए वे घडी मे समय देखकर दौड पड़े। छात्रो ने भी उनका अनुकरण किया। श्री मुक्तिराम जी की बहुत तीव्र गति थी, वे छात्रो से बहुत आगे निकल गए। आधा घण्टा दौडकर जब उन्होने विश्राम लिया, तो ज्ञात हुआ कि उनकी दौड १६ सहस्रमान (किलो-मीटर) हो चुकी है। अपने दल को साथ मिलाकर उत्साही और पुन स्थान-स्थान पर डेरा लगा कर प्रचार करते हुए रावलपिण्डी की ओर बढ चले। जब रावलपिण्डी नगर समाज मे आए तो वहाँ गङ्गाराम* नामक एक युवक उत्तरप्रदेश के एलम ग्राम से आकर प्रतीक्षा करता

---

*गङ्गाराम जी इस समय संन्यास की दीक्षा लेकर स्वामी दर्शनानन्द जी हो गए और गुरुकुल झज्जर मे अध्यापन-कार्य कर रहे हैं।

हुआ मिला। उसे विद्याध्ययन की उत्कण्ठा थी। जब उसने आचार्य मुक्तिराम के आधा घण्टे मे १६ सहस्रमान दौड का समाचार सुना, तो वह उन मे और भी अधिक श्रद्धावान् हो गया और उनके साथ ही गुरुकुल चला गया तथा शिवराज-विजय पढ़ने लगा।

एक दिन गङ्गाराम ने देखा कि उच्च कक्षा के छात्र श्राद्ध पर अपनी शङ्काओं का निवारण आचार्य जो से करा रहे हैं—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वास्तानग्न आवह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ अथर्व १८.२.३४
ये अग्निदग्धा ये अनग्नि दग्धा मध्ये दिव. स्वधया मादयन्ते।
त्व तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥३५॥

इनमें सनातनधर्मी मृतक श्राद्ध का वर्णन करते हैं और कहते है कि चार प्रकार के पितर है जैसे १—जो पृथ्वी मे गाडे गये हैं। २—जो शत्रुओ से मारे गये है। ३—जो अग्नि मे जलाए गये हैं। ४—जो पृथ्वी पर वैसे ही छोड़ दिये गये है। मरण के पश्चात् इस प्रकार के पितरो का श्राद्ध करो।

आचार्य मुक्तिराम ने विद्यार्थियो की शङ्काओ का निवारण करके सबकी जानकारी के लिये उपर्युक्त मन्त्रो की सुन्दर व्याख्या आर्य समाज रावल पिण्डी मे जाकर भी की।

एक दिन आचार्य मुक्तिराम छात्रो से बोले—"यदि मैं दर्शनशास्त्रो के अध्यापनार्थ कलकत्ता चला जाता, तो मेरी विद्या वहा अच्छी सुरक्षित रहती। यहॉ अनेक झमेले है, जिनमे विद्योपयोगी अधिक काल अतिक्रान्त हो जाता है।"

सेवा का उच्च आदर्श

रावलपिण्डी के समीपवर्ती प्रदेश संवत् १६७५ मे इनफ्लुएन्जा रोग से पीड़ित हो गए। जनता इस सङ्क्रामक रोग से तग आ गई थी। इस सङ्कटापन्न स्थिति मे मनुष्यो को विकराल काल से परित्राण देने के हेतु गुरुकुल के ब्रह्मचारियो ने अपने आचार्य श्री मुक्तिराम जी के साथ बहुत योग दिया। कोई ऐसा स्थान न बचा था, जहाँ इस रोग ने अपना रङ्ग न चढाया हो। झोपड़ियो तक के निर्धन परिवारो को भी वह अपने सङ्क्रमण मे लपेटे हुए था। श्री उपाध्याय जी उन दिनो

रात-दिन एक करके रोगियो की संभाल अति सतर्क होकर कर रहे थे। औषधोपचार द्वारा भी उनका पूर्ण सहयोग था। उन्होने मुसलमानो में उस समय इतनी सहृदयता दिखाई कि वे उनकी उलटिया तक अपने हाथ पर ओट लेते थे। यह अनूठा अनुराग मुसलमान भाई जब एक हिन्दू ब्राह्मण मे, जो कि श्वेत वेश भूषा मे अद्वितीय विद्वान् भी था देखते थे तो उनके हृदय से स्वतः ही साधुवाद के शब्द निकल पडते थे। पण्डित जी के प्रति उनके हृदय मे हिन्दुओ की अपेक्षा भी अधिक मान था। वे प्रतिक्षण उनके लिये सब कुछ करने को तत्पर रहा करते थे। पण्डित जी की कोई भी व्यक्ति उनके समीप पहुँच जाये, उसे भी वे अति सम्मान से बैठाते थे। अपने यहाँ से सीधा देकर किसी हिन्दू परिवार मे उसके भोजन का प्रबन्ध करा देते थे।

चित्त की निर्मलता

विक्रम सवत् १९७५ मे श्री मुक्तिराम जी के पिता दीनदयालु जी अतिसार रोग मे ग्रस्त हो गए। इस घटना का उल्लेख स्वय उन्होंने अपने बनाए। 'मनोविज्ञान तथा शिवसङ्कल्प' पुस्तक मे निम्न शब्दो मे किया है—

"मेरे पिता अपने घर जिला मेरठ मे रोग शय्या पर पडे थे और मैं उन दिनो चोहा भक्ता गुरुकुल मे कार्य करता था। मुझे घर गये चार पाँच वर्ष हो गये थे। उन दिनो मेरे मन मे बार-बार यह भाव रह-रह कर उठने लगा कि पिता जी से मिलना चाहिए। विशेष बात यह है कि उन दिनो घर जाने की कोई भावना ही मन मे जागरित नही हुई थी। चार पांच दिन के पश्चात् तो मुझे इस भावना ने विवश ही कर दिया और मैं घर चला गया, वहाँ जाकर पता चला कि जिस दिन मेरे चित्त मे ये भाव उठने लगे थे, उसी दिन से पिता जी ने मुझे स्मरण करना प्रारम्भ किया था।

मैं नीचे बैठ जाऊँगा

श्री पण्डित मुक्तिराम आचार्य की विद्वत्ख्याति का श्रवण कर एक साधु विद्याध्ययन करने उनके चरणो मे उपस्थित हुआ। एक दिन सन्ध्या लेने के उपरान्त वह बोला—"आचार्य जी मै नही पढ़ना" आचार्य जी ने पूछा—"क्यो, क्या मेरे पढाने मे कोई कमी है ? अथवा समझ मे नही आता ?" उसने उत्तर दिया—"ऐसी तो कोई बात नही है, केवल

इतनी ही है कि आप ब्रह्मचारी है, मैं साधु। मुझे इस रूप मे पढने में झिझक होती है"। इतना सुनकर आचार्य जी ने उसका आसन अपने समान ऊँचा करा दिया और पढाने लगे। तीसरे दिन उसने इसे भी रुचिकर न समझा और निवेदन किया—"आचार्य जी मेरा मन इससे भी सन्तुष्टि नही पा सका"। आचार्य मुक्तिराम जी ने उससे कहा "अच्छा कल मे ऐसा करेगे कि उच्च आसन एक ही लगवाएँगे, आप तो उस पर बैठ जाना, मैं नीचे बैठ जाऊँगा और पढ़ा दूँगा। जब आप कुछ ज्ञान-सम्पादन के लिए आए ही हैं, तो उसके लिए कोई उपाय कर लेना मनुष्योचित ही है" आचार्य जी की यह अध्यापन-प्रक्रिया भी उसे अभीष्ट न हुई और वह वहाँ से चला ही गया।

विद्रोह

सन् १६२१ मे हिन्दू मुसलमानों के बीच परस्पर वैमनस्य के कारण मुसलमानों की ओर से हिन्दुओ पर आक्रमण होने प्रारम्भ हो गए। इस विद्रोह का प्रारम्भ कोहाट से हुआ। और बढते-बढते इतने व्यापक रूप धारण कर गया कि रावलपिण्डी नगर भी उसकी लपेट मे आगया। उस समय सब ओर हिन्दुओ मे गहरा आतङ्क व्याप्त था। यह आग नगरो तक ही सीमित न रही। फैलते-फैलते गावो को भी उसने अपने लपेट मे ले लिया। नगरो की अपेक्षा, ग्रामो मे सरक्षण के साधन नगण्य थे, अत. हिन्दू ग्रामीणजन मुसलमानो के इस उपद्रव-अग्नि मे अधिक झुलस गए। यद्यपि गुरुकुल चोहाभक्ताँ भी ग्रामीण क्षेत्र मे ही था, किन्तु उसके समीपवर्ती क्षेत्रो में श्री मुक्तिराम जी का प्रभाव बहुत अधिक था, अतः वह थोड़ा-सा क्षेत्र उस लपेट मे आने से बच गया और गुरुकुल तो सर्वथा सुरक्षित था ही। मुसलमान लोग श्री पण्डित जी को अपना पीर (धर्मगुरु) समझते थे। कठिनाईयो मे उनसे परामर्श लेते थे। दो-दो, तीन-तीन घण्टे महाराज की सन्निधि में बैठे रहते थे।

मुसलमानों पर प्रभाव

जो भी उपदेशक महानुभाव गुरुकुल मे पहुँचते थे, पण्डित जी महाराज उनके उपदेश कराने का प्रबन्ध ग्रामीण जनता मे भी कराते थे। उस मे हिन्दू मुसलमान सब ही श्रोता रूप मे सम्मिलित होते थे। कही-कही अकेले मुसलमानों के ग्रामो में भी यह प्रचार-प्रसङ्ग चलता

था। वहा के मुसलमान, हिन्दू उपदेशक पण्डितो के लिए स्वच्छ बर्तन विस्तर पृथक रखा करते थे। जिनका उपयोग समय पर ही किया जाता था। मुसलमानो का गुरुकुल के साथ बहुत अच्छा व्यवहार था। वे उत्सव के दिनो मे स्वय चारपाइया पर्याप्त सख्या म डाल जाते थे, दूध लाते थे और रात्रि को पहरा भी दिया करते थे।

जून १९२१ मे श्री महाराज ने अग्रेजी मे ब्रह्मचारियों की योग्यता कराने के लिए श्री प० जीवाराम जी शर्मा पटियाला निवासी को अध्यापक पद पर नियुक्त किया। वे वहा मार्च सन् २२ तक बहुत तत्परता से कार्य करते रहे। उन्होने महाराज के जीवन को अति सूक्ष्मता और निकट सम्पर्क से देखा। जिसका कुछ विवरण निम्न है।

अकाल के दिन

महाराज को प्राय: बडी कठिनाईयो का साम्मुख्य करना पड जाता था। उन दिनो देश मे अकाल पड़ गया। आस्ट्रेलिया की कनक भी तीन सेर की प्राप्त होती थी। तूडी का भाव दस सेर का हो गया, जो आठ गुणा मंहगा था। गुरुकुल मे दस बारह गौवें भी थी और समस्त ब्रह्मचारियो की शिक्षा दीक्षा, रहन-सहन, खान, पान, औषध और उपचार आदि का समस्त भार गुरुकुल पर ही था। ऐसी अवस्था मे सस्था को संभाले रखना श्री पण्डित जी का ही धैर्य था। उनके तप-त्याग के प्रभाव से लोगो के हृदय द्रवित रहते थे। उस अवसर पर महाराज की प्रेरणा पाकर गुजरां (जिला गुजरात) के निवासी महाशय सरदारीलाल जी उनके भक्त-समुदाय मे से पर्याप्त धन निर्वाह योग्य एकत्रित कर लाते थे। रावलपिण्डी निवासी श्री गौरीशङ्कर जी सेठी (सर्राफ) तो गुरुकुल के आभ्यन्तरीण सहायक रहे ही हैं। उन्होंने गुरुकुल को बहुत दान दिया। श्री गौरीशङ्कर पर उनके गुरु श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का तो प्रभाव था ही, श्री महाराज भी उन्हे ऐसे ही विचित्र महापुरुष मिल गए। भारत मे पडे अकाल से धनी मानी जनो को छोड़कर शेष जनता उदर की जाठराग्नि को प्रशान्त करने के लिए रात-दिन एक कर रही थी, बहुत से प्राणी तो इतने सङ्कटापन्न स्थिति मे आ चुके थे कि अपने बाल-बच्चो का पेट अति कठिनता से एक समय ही भर पाते थे और किन्हीं को दो मुट्ठी चनो के दर्शन भी दुर्लभ हो गए थे। देश की ऐसी दीन-हीन, करुणापूर्ण दशा को देखकर महाराज ने दुःखी

हृदय हिमगिरिशृङ्ग से एक करुणा काव्य गङ्गा वह चली—

यां भारतीय धरणीं बहुधान्ययुक्ताँ,
सर्वोपि काञ्चनमयी मनुते स्म लोकः।
तत्राद्य मुष्टिचणकानपि नाप्नुवन्तो,
दारिद्रचपीडितजनाः शतशो म्रियन्ते ॥

श्री जीवाराम जी का अग्रिम वक्तव्य है कि श्री पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय ने अपनी वैद्यक की पैतृक सम्पत्ति की रक्षा दीन-दुःखियों मे निर्द्रव्य औषध-वितरण करके की। वे औषधो का निर्माण स्वयं करते थे। तथा इसके लिए रात्रि को जलने वाली भट्टियो का निरीक्षण भी उनके अपने ही क्षेत्र का विषय था। महाराज कहा करते थे कि आयुर्वेद की ओषधियाँ सस्ती और लाभप्रद हैं। पाँच रुपये में हम पचास अथवा सैकड़ों रोगियों के लिए औषध-निर्माण कर लेते हैं।

उन दिनो महाराज के नित्य कर्मों की दिनचर्या इस भाँति थी कि वे अध्यापन कार्य से विद्यालय समाप्ति पर अवकाश पाकर बालको को श्री जीवाराम जी के सरक्षण मे रखकर उन्हे कुछ आवश्यक निर्देश कर देते थे और आप स्वयं आवश्यक कृत्यों से निवृत्त होकर गुफा में चले जाते थे। प्रात.काल ही उससे निकलते थे। एक समय भोजन पाते थे। आवश्यक वार्तालाप करते एव यदा कदा बहुत कम हंसते दृष्टिगोचर होते थे। उनकी उन दिनो की तितिक्षा दर्शनीय थी।

प० जीवाराम जी, स्वयं को बहुत धिक्कारते थे कि एक ओर तो श्री महाराज ऐसी विशिष्ट विभूति हैं, जिन्होने तप-त्याग, तितिक्षा, समानता और ब्रह्मचर्य का कठोर संरक्षण किया हुआ है और दूसरी ओर मेरे जैसा गृहस्थ, जिसके समक्ष संयम नाम का कोई वस्तु नही है। दो पुत्रों के पिता श्री जीवाराम जो ने एक दिन दृढ प्रतिज्ञा की कि अब से मैं आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा, इस कठोर व्रत से शेप गुण स्वय आने प्रारम्भ हो जायेगे। वे तो सभी इसी विशिष्ट व्रत की पूर्ति मे सहायक है।

सन् १९२१ के पिछले दिनो में श्री पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय का भतीजा राजाराम, आर्यसमाज रावलपिण्डी से होता हुआ, गुरुकुल के आचार्य अपने चाचा जी के चरणो मे पहुँचा। श्री मुक्तिराम जी ने उसे अपने यहाँ गुरुकुल मे ही रख लिया और उसे स्वय पढाने लगे। पश्चात् उसका नाम परिवर्तन करके रामचन्द्र रख दिया।

पिता जी का स्वर्गमन

इसी वर्ष आचार्य मुक्तिराम जी के पिता श्री प० दीनदयालु जी का देहान्त हो गया। उस समय आचार्य-प्रवर ने कहा "पिता जी के मृत्यु के साथ-साथ पुत्र के प्रति ऋण भी समाप्त हो गया। मातृ-ऋण तो पहले समाप्त हो ही चुका था।

पिता जी के देहावसान पर आचार्य पं० मुक्तिराम जी घर नही गए। वे पिता जी की थोड़ी बहुत समय-समय पर जो आर्थिक सहायता करते रहते थे, अब उससे सर्वथा निर्मुक्त हो गए। पुन. एक पैसा भी गुरुकुल से स्वीकार नही किया। उन्हे दक्षिणा आदि में जो भी द्रव्य प्राप्त होता था। वह सब गुरुकुल को ही देने लगे।

आर्य-मन्दिर पेशावर छावनी का वार्षिकोत्सव था। आचार्य प० मुक्तिराम जी भी उसमे निमन्त्रित थे। साधु आश्रम पुलकाली नदी अलीगढ़ से आए महोपदेशक श्री जगदीशचन्द्र जी शास्त्री 'ईश्वर के अस्तित्व' पर भाषण देने खडे हुए। वे इस विषय पर न्यायकुसुमाञ्जलि की प्रथम युक्ति 'कार्यत्व' की सङ्क्षिप्त व्याख्या करके दूसरी युक्ति आयोजन का उपक्रम ही कर पाये थे कि उनके उदर मे भयानक पीडा होने लगी। उनकी दशा देख कर श्री प० मुक्तिराम जी उपाध्याय वेदि पर चुपके से पहुँचे और उनको विश्राम का सङ्केत करके उन्होंने उनके भाषण को चालू कर दिया। बहुत से श्रोताओ को तो इस परिवर्तन का आभास भी न मिल सका और श्री जगदीशचन्द्र जी शास्त्री को यह देख कर अतिशय आश्चर्य हुआ कि 'आयोजनत्व' हेतु को जिस स्थान पर उन्होंने छोड़ा था, ठीक वही से उसे आगे चालू कर दिया है, वे भीतर विश्राम करते हुए श्री उपाध्याय जी का भाषण सुन रहे थे। जो बाते उन्होने कहनी थी, वे तो उपाध्याय जी ने कह ही दी, इसके अतिरिक्त उनकी कल्पना से दूर की बाते भी वे उत्कट और अद्भुत युक्ति पूर्वक कहते चले गए। इस प्रकार श्री शास्त्री जी के भाषण को अवसर-कुशल श्री उपाध्याय जी ने चार चाँद लगा दिए।

शुद्धि और हमारे भाइयों की प्रतिक्रिया

जिला मीरपुर आर्य समाज अपने धर्मोद्धार प्रचारोत्थान में बहुत विकसित हो रहा था। उस समाज के अधिकारी अपने वार्षिकोत्सव पर सर्व मान्य आर्य नेताओं को अतिश्रद्धा से आहूत किया करते थे। उन

नेताओ मे विशेष उल्लेखनीय थे—श्री स्वामी अनुभवानन्द जी 'शान्त', स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज, प० मुक्तिराम जी उपाध्याय, स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ और स्वामी विशुद्धानन्द जी। इन आर्य नेताओं का प्रभाव जनता के हृदयो पर गहरा पड़ता था। ये आर्य नेता उस क्षेत्र मे लोह पुरुष माने जाते थे। स्वामी सत्यानन्द जी (आचार्य रामदेव जी) ने उपर्युक्त वार्ता का निरूपण करते हुए आगे वर्णन किया कि उस क्षेत्र के वसिष्ठ ब्राह्मण अपने धर्म को छोडकर विधर्मी किसी समय बन चुके थे। उनमें से किसी को एक समय मृत गाय उठाने वाला कोई न मिला, तो उसने स्वय उठाकर फेंक दी। कुछ ने इस घटना का अनुमोदन किया, तो किसी ने विरोध। परस्पर के सङ्घर्ष में उन आर्य-नेताओ ने मार्ग प्रदर्शन किया। इस आर्य समाज के प्रचार से उन्होने अपनी भारतीय आर्य सस्कृति को पहचाना और अपनी त्रुटियाँ स्वीकार करते हुए पुन. शुद्धि द्वारा हिन्दू धर्म में प्रवेश लेने के लिये आर्य नेताओ से अनुरोध किया। कार्य रूप मे इन भाइयो के शुद्ध होने का जितना दु:ख विधर्मियो को हुआ, उससे कही अधिक हमारे हिन्दू भाइयो को हुआ। उन्होने अपने इन बिछुडे भाइयो के साथ वह व्यवहार किया जिसकी कभी कल्पना भी नही की जा सकती थी।

आर्य नेता इन शुद्ध होने वाले स्वजाति बन्धुओं को जहाँ यज्ञोपवीत पहराते थे, वहाँ धर्म के ठेकेदार वेद-शास्त्रो से विमुख दूसरे वरिष्ठ कहाने वाले हिन्दू भाई उन शुद्ध होने वालों से यह कहते थे कि आर्यसमाजी यज्ञोपवीत पहराना क्या जाने, हम ऐसा यज्ञोपवीत पहना देते है, जो मरणपर्यन्त विनष्ट न हो, अतः वे स्वधर्म में पुन. दीक्षित उन भाइयो को प्रसह्य पकडकर अग्नि मे दराती लाल करके उससे यज्ञोपवीत की भाँति उनके शरीर पर गहरी रेखा बना देते थे।"

उनकी इस घृणित चेष्टा से आदर्श आर्य नेता अनुत्साहित नही हुए। उन्होने राजौरी और भिम्भर आदि के ५६ सहस्रमान क्षेत्र पर भारतीय सस्कृति का नाद गुञ्जा दिया। इस कार्य के लिये पदाति यात्रा करके आगे बढ़ना पडता था। अनेक वार भूख-प्यास के कष्ट भी झेलने पडे। इस प्रकार सविस्तृत क्षेत्र का वातावरण अनुकूल बनाकर गुरुकुल से उच्च कक्षा के विद्यार्थियो को भी बुला लिया और दो मास तक वही टिके रह कर बारह सहस्र वसिष्ठो की शुद्धि कर डाली।

इस कार्यक्रम का, नेताओ के उच्च आदर्श का, उनके त्याग और तपस्या का मीरपुर मे विपुल प्रभाव पडा। महाशय ठाकुरदास जी जो आढत का कार्य करते थे, खड्डियो का कार्य भी करते थे, ब्रह्मचारियो के साथ आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी को देख कर उनकी ओर आकृष्ट हुए। आर्यसमाज मन्दिर मे जब आचार्य मुक्तिराम जी के उपदेश होते, तो उनकी मधुरता से पूरित ओजस्विनी वाणी मनुष्यो को गद्-गद् कर देती थी। महाशय ठाकुरदास आदि प्रमुख व्यक्तियो ने गुरुकुल के ब्रह्मचारियो से भी आशा की कि ऐसे उच्च नेतृत्व मे यह भारत की सन्तति भारत से अन्याय मिटाने मे अपना योग पूर्णरूप से देगी। महाशय जी ने गुरुकुल को आर्थिक सहायता देना आरम्भ कर दिया और पृथक् से ब्रह्मचारियो को अपने यहाँ बनाये गये वस्त्र भी प्रदान करने लगे। गुरुकुल प्रबन्धक समिति ने महाशय ठाकुर दास जी की इस सहृदयता को देखकर उन्हे अपनी समिति का सदस्य निर्वाचित कर लिया। इसके अतिरिक्त मीरपुर के अन्य आर्य पुरुषो मे इतना भक्ति उद्रेक उमड पडा कि वे ब्रह्मचारियो को भोजन कराने मे स्पर्धा करने लगे। जब किसी यजमान का देर से समय आने की वार्ता होती, तो परस्पर मे कलह भी होने लगता था।

श्री उपाध्याय जी को बाहर के कार्य भी बहुत रहते थे, अत विद्यार्थियो के अध्ययन मे यदा-कदा अवरोध हो जाता था। ऐसा न होने पाये अत उन्होने अपने परिचित श्री जगदीशचन्द्रजी शास्त्री को अलीगढ मे विशेष निमन्त्रित किया। उन्होने तीन मास के अपने निवास अवधि मे ब्रह्मचारियो को न्याय वात्स्यायन भाष्य का अध्ययन तथा शास्त्रार्थ कला के शिक्षण मे सहयोग देते हुए देखा कि गुरुकुल मे विराजमान श्री अनुभवानन्द जी शान्त अपनी अद्भुत तर्क-शैली तथा अलौकिक विद्वत्ता से ब्रह्मचारियो को सुयोग्य बनाने मे लगे है। उन्हे यह देख कर और भी विस्मय हुआ कि दर्शनो के महान् पारगामी श्री आचार्य मुक्तिराम जी विद्वानो का आदर करते हुए अनुभवानन्द जी जैसे अलौकिक पण्डितो को महीनो गुरुकुल मे रोके रखते है।

उपदेशक विद्यालय की स्थापना

[illegible]हु मुसलिम प्रान्त मे पिछडी जाति के उत्थान एवं मानव जाति मे वैदिक सर्वोत्कृष्ट उत्कर्ष के हेतु एक उपदेशक विद्यालय की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय की प्रेरणा से

रावलपिण्डी वासी कृपाराम ब्रदर्स ने रावलपिण्डी के लुण्डा बाजार में आर्य समाज मन्दिर बनवाया था। उसी के भवनो में उपदेशक विद्यालय की स्थापना का विचार सुदृढ कर लिया गया और नेतृत्रयी श्री आचार्य मुक्तिराम जी, स्वामी विशुद्धानन्द जी और स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ ने एकमत होकर कार्य करना आरम्भ कर दिया। उस समय श्री आचार्य जी ने गुरुकुल का भार अपने शिष्य श्री विश्वदेव जी को सौप दिया। गुरुकुल के योग्य छात्र उपदेशक विद्यालय में प्रविष्ट किये गए। विद्यालय मे उपदेशक सरणी को देख कर और नेताओ के सुलझे हुए विचारो से अनुप्राणित होकर एक युवक रामदेव जो उसी नगर में जीविकोपार्जन करते थे तथा प्रतिदिन आर्य समाज मन्दिर की मल्ल-भूमि में व्यायाम किया करते थे, अपना जीवन वैदिक सरणी मे ढालने का स्वप्न देखने लगे। उन्होने गुरुकुल चोहाभक्ताँ में भी पहले जाकर आचार्य मुक्तिराम जी के मुखारविन्द से भारत की सर्वोत्तम वैदिक सस्कृति को सुना था और अपने ग्राम सवार के निकट आर्य समाज मीरपुर में स्वामी सर्वदानन्द जी तथा अनुभवानन्द जी शान्त के भाषणों को युक्ति-युक्त पाया था। अत. उन्होने आर्यसमाज की विचारधारा से आकृष्ट होकर आर-ऐस रिटर्न स्टोर्स शाखा की अध्यक्षता से त्याग पत्र दे दिया था, यह पद सेना-विभाग का था, जबकि पश्चिमोत्तर सीमा पर अफगानी सेना को लेकर काबुल वासी जनरल नादरखाँ ने टलबुलन्द पर आक्रमण किया हुआ था। इस प्रकार शनै.-शनै आर्य नेताओ की निकटता के लाभ का प्रयत्न युवक रामदेव जी ने चालू रक्खा। उपदेशक विद्यालय के अतिरिक्त एक प्रौढ शिक्षणालय भी स्थापित किया गया। जिसमे मुख्यतः लाला वजीरचन्द्र अधिवक्ता प्रधान, बाबू व्रजभूषण जी मन्त्री आर्य समाज रावलपिण्डी भी सम्मिलित होते थे। उस पाठशाला मे सत्यार्थप्रकाश का पाठ प्रथम समुल्लास से ही आरम्भ किया हुआ था।

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब लाहौर के मन्त्री महाशय कृष्ण जी का स्वामी दर्शनानन्द जी से पर्याप्त विरोध रहा था, अत वे उनके स्थापित गुरुकुलों की उन्नति के सहिष्णु न थे। गुरुकुल सिकन्दराबाद, गुरुकुल बदायुँ, गुरुकुल ज्वालापुर, गुरुकुल बिरालसी, और गुरुकुल चोहाभक्ताँ, श्री महाशय कृष्ण जी की कुदृष्टि के केन्द्र थे। आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय स्वामी दर्शनानन्द-पद्धति के पोषक थे। उपदेशक विद्यालय की स्थापना होना तथा उसका प्रगति करना,

स्वामी दर्शनानन्द जी के ही यश का विस्तार था, अत महाशय कृष्ण जी द्वारा आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय को अपनी ओर आकर्षित करने के प्रयत्न प्रारम्भ हो गए। उन्होने पहले स्वामी सत्यानन्द जी (श्री मद्दयानन्द प्रकाश के लेखक) से आचार्य मुक्तिराम जी की प्रशसा एव लेख समाचार पत्रो में लिखवाये, जिसमे कहा गया कि पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय आधुनिक जगत् मे आर्य समाज के मूर्धन्य विद्वान्, छहो शास्त्रो के पारगामी एवं सुलझे हुए पण्डित है। उनकी सहन-शीलता निरभिमानता, सादा रहन-सहन और तप-त्याग का जनता पर विशेष प्रभाव पडता है। उनके चरणो मे रहकर गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक भी विचाराचार की शिक्षा ग्रहण करने मे अपना सौभाग्य समझते हैं और कोई कोई वहा पहुँचकर लाभ भी उठाते है। आर्य जगत् के अनेक विद्वान् भी अपनी गुत्थिया उनसे सुलझाते रहते हैं……

उपदेशक विद्यालय १॥ वर्ष तक रावलपिण्डी आर्यमन्दिर में अच्छे उत्साह पूर्ण वातावरण मे चलता रहा। अब उसे नगर से बाहर विवृत स्थान की अपेक्षा थी, अत. उसे सैदपुर मण्डलरथ्या पर श्री भगवान्-दास की कोठी मे ले गए। पण्डित बुद्धदेवजी मीरपुरी भी उन दिनो विद्यालय मे व्याकरण पढाते थे, उपर्युक्त रामदेव जी ने भी दृढ निश्चय कर लिया कि जीवन को कल्याणमय बनाने के लिए अन्तत गृह का परित्याग करना ही पडेगा और वे घर से मुँह मोडकर उपदेशक विद्यालय मे प्रविष्ट हो गए। विद्यालय मे भावी उपदेशकों की सख्या वृद्धि पर ही थी। मुख्य रूपेण श्री विद्याधर, श्री श्रुतबन्धु, श्री भूदेव, श्री ईश्वरचन्द्र कुक्षा, श्री ब्रह्मदत्त और श्री बलभद्र गुरुकुल चोहाभक्तां के ही छात्र थे। दो छात्र वहाँ और भी होनहार थे, एक थे सत्यदेव जी, जो पीछे सांख्य तीर्थ, वेदतीर्थ, आदि पदवियो से विभूषित होकर आर्य समाज के उत्तम वक्ता बने। दूसरे श्री नरदेव जी शास्त्री थे प्रकाण्ड पण्डित आर्य धर्म के पारदर्शी ओजस्वी विद्वान् थे, ये पश्चात् उपदेशक विद्यालय लाहौर के अधिष्ठाता भी रहे। स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ ने इन दोनो छात्रो पर सहस्रो रुपया व्यय किया था।

दूसरी ओर महाशय कृष्ण जी रावलपिण्डी के इस उपदेशक विद्यालय की प्रगति के मूल पर तुषारापात करने मे अपना अमूल्य समय अतिवाहित कर रहे थे। उन्होने देखा कि आचार्य पण्डित

मुक्तिराम जी का झुकाव उपदेशक विद्यालय की ओर बहुत है, अतः उन्हे हम अपने लाहौर के विद्यालय का आचार्य पद दे दें, तो तीर सीधा लक्ष्य को बीध देगा। इस निर्धारण मे महाशय कृष्ण जी ने अब स्वामी सत्यानन्द जी महाराज को ही आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी के समीप भेजा। स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ भी उस समय लाहौर थे, वे भी साथ आए। दोनो ने निवेदन किया-"पण्डित जी, हम भिक्षा की झोली लेकर आपके द्वार पर आए हैं। हम साधु है। हमे भिक्षा दीजिए।" आचार्य मुक्तिराम जी ने कहा "मेरे समीप जो है, वह सब कुछ आप महानुभाव भी रखते है, अतः पहले बताइये कि आप क्या चाहते हैं?" उन्हे उद्दिष्ट भिक्षा मिल जाने की सरलता से आशा न थी; अतः नाटकीय रीति से उन्होने अपनी चादर फैला दी और कहा —"अब इसे पूर्ण करना ही होगा।" आचार्य जी ने आग्रह पूर्वक उनका अभीष्ट अभिलाष पूछा, तब वे बोले —"उपदेशक विद्यालय लाहौर के लिए धन-सञ्चय किया जा चुका है। विद्यालय प्रथम चरण मे ही पर्याप्त प्रगति पर है, विद्यार्थियो मे बहुत से होनहार वैदिक लग्न के युवक है, अपना उपदेशक विद्यालय भी वही ले चलिये और उस विद्यालय के आचार्य पद को अलङ्कृत कीजिए। आर्य जगत् के लिए आपका नेतृत्व विशेष वाञ्छनीय है। आपको विचार-धारा का सब समादर करते है, सभा मन्त्री महाशय श्री कृष्ण जी आपको अपने मध्य देखना चाहते हैं और चाहते है कि आप को अध्यापकत्व के गुरु भार के अतिरिक्त किसी अन्य झमेले से सम्बन्धित न रक्खा जाये। आर्य जगत् के गम्भीर विद्वान् का सदुपयोग ही आर्य जगत् का उन्नायक है, अत. आप वहां का आचार्य पद स्वीकार कीजिए, हम भी आपके पूर्ण सहयोगी रहेगे।"

श्री आचार्य मुक्तिराम जी कच्चे धागे न थे। उनकी ऊहापोह बुद्धि क्षण भर मे सब वृत्त का विश्लेषण कर लेती थी, अत वे बोले, कि "मैं यही पर ठीक हूँ। गुरुकुल चोहाभक्ताँ की देख-भाल भी करनी होती है। स्वामी दर्शनानन्द जी के आरोपित गुरुकुल उद्यान को हरा भरा करते रहना हम सभी का कर्त्तव्य है। एक वीतराग निस्पृह संन्यासी की सस्था विनष्ट नही होने देनी चाहिए। बहुमुसलिम प्रदेश मे हिन्दुओ की रक्षार्थ इसकी अति आवश्यकता है।"

भोजन का समय हुआ और सब विश्राम करने लगे। आचार्य मुक्तिराम जी न्याय दर्शन हाथ में लेकर चुपके से खिसक गए और

समीपवर्तिनी लई नदी के तट पर जा पहुँचे। सम्पूर्ण दिन वही नदी का लाहा लूटते रहे। पीछे उनकी पर्याप्त अन्वेषणा और प्रतीक्षा होती रही। जब सूर्यास्त पर वे स्वयं ही नदी से लौटे, तो फिर वही चर्चा चल पड़ी। स्वा० सत्यानन्द जी द्वारा बहुत आग्रह किए जाने पर आचार्य मुक्तिराम जी ने उपदेशक विद्यालय लाहौर के लिए केवल तीन मास देने स्वीकार किए। पश्चात् उन महानुभावों के लाहौर चले जाने पर श्री आचार्य जी ने पण्डित जीवाराम जी से कहा—"सभा के वर्तमान अधिकारी ठीक नही हैं, अत मैं वहाँ जाना नही चाहता। श्री दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय लाहौर की अन्तःस्थिति का परिचय मुझे नरसिंहदेव देता रहा है। मेरे लिए यह अपना गुरुकुल ही ठीक है।"

स्वीकार किए गए तीन मास भी आचार्य मुक्तिराम, गुरुकुलीय कार्य की अधिकता के कारण उन्हे न दे सके। उनके अपने इस उपदेशक विद्यालय मे शिल्पकला को भी स्थान दिया गया था। चमड़े के बटुवे और वस्त्र के जूते शिल्पकला के मुख्य अङ्ग थे। वस्त्र बुनने का कार्य भी सिखाया जाता था।

उनके द्वारा अपने उपदेशक विद्यालय को चलते हुए जब गेंदपुर रथ्या पर ६ मास हो गये, तो आचार्य प्रवर ने उच्च भावी उपदेशकों को विभिन्न विषयो मे ऊहापोह-पारगामी बना देने के लिए बनारस भेज दिया, जिनके नाम विद्याधर, श्रुत बन्धु, भूदेव, ईश्वरचन्द्र गुप्ता ब्रह्मदत्त और बलभद्र थे। आचार्य मुक्तिराम जी ने वाराणसीवासी स्व शिष्य बलदेव और बलभद्र को भी लिखा कि बनारस मे इन सबका प्रबन्ध कर दीजिए।

पश्चात् इस विद्यालय को समाप्त कर दिया और आचार्य मुक्तिराम जी गुरुकुल चोहाभक्तां मे आ विराजे।

महाराज के समीप बनारस से प्राप्त उनकी शिक्षा के जितने भी प्रमाण-पत्र थे, वे सब रद्दी की भांति पड़े रहते थे। उनको उनकी स्मरण भी चिन्ता न थी। उन्हे वे किसी को दिखाते भी न थे। पण्डित जी की इस अवहेलना का प्रभाव वहां के सहायक वर्ग पर गहरा अङ्कित हो गया। आचार्य जी के, मान तथा मोह त्याग की वे अन्तर्हृदय से प्रशंसा किया करते थे।

एक दिन श्री रामदेव जी ने आचार्यवर से पूछा—पण्डित जी! आप सन्यास की दीक्षा क्यों नहीं ले लेते? पण्डित मुक्तिराम जी ने

उत्तर में कहा—"मै इसी अवस्था मे स्वयं को सँभाले रहूँ, यही पर्याप्त है। मै सन्यास के योग्य नहीं।"

गुरुकुलों का पर्यटन

आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी ने स्वमी दर्शनानन्द जो द्वारा स्थापित सब गुरुकुलो का पर्यटन किया और गुरुकुलो के आचार्यों को बताया कि अन्य सस्थाओ द्वारा स्वामी दर्शनानन्द जी के गुरुकुलो का प्रबलतम विरोध किया जा रहा है; अतः पाचो गुरुकुलो को एक सङ्घटित योजना से अपने कार्य का सञ्चालन करना चाहिए। किसी एक गुरुकुल को विद्या का सर्वोच्च स्थान प्रदान करके शेष गुरुकुल उसके अधीन कर देने चाहिएँ। शेष चार निर्धारित विशिष्ट विषयो के अध्यापन की ही पीठिकाएँ हो। इस प्रकार कर देने से गुरुकुलो के व्यय मे भारी कमी हो जाने की सम्भावना है। जब सब गुरुकुल अपने यहाँ सभी विषयों मे पारङ्गत बना देने की चेष्टा करते हैं, तो जहाँ व्यय अधिक हो जाता है, वहाँ गुरुकुल अपने प्रयत्न में सफल भी नही होते। मुझे अपने गुरुकुल को दूसरे के अधीन करने मे कोई आपत्ति नही है; किन्तु इस ओर हमे अवश्य चेष्टावान् होना चाहिए।

श्री आचार्य मुक्तिराम जी के इस परामर्श को सब मान तो लेते थे; किन्तु उस योजना मे अपने आपको कोई अन्त तक भी न बाध सका।

एक देवी का जीवनोद्धार

पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय जहाँ बालको को विद्या सुशिक्षा का अभ्यास कराते थे, वहाँ प्रौढ जन भी उनकी आखो से ओझल न थे। वे जिस प्रकार बालको के आचार-विचार का विशेष ध्यान रखते थे, उसी प्रकार बडों का भी। यह बात निम्न घटना से स्पष्ट हो जाती है।

कुछ व्यक्तियो के आग्रह पर महाराज ने धार्मिक शिक्षा के लिये एक प्रौढ पाठशाला की पुन. स्थापना की, जिसमें आप रात्रि को जाकर पढाया करते थे। उसमे दीवानचन्द नामक एक युवक भी आते थे। उनका विवाह हुए कई वर्ष व्यतीत हो चुके थे; परन्तु कोई सन्तान उत्पन्न नही हुआ था। विवाह के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति होते न देख उसके माता-पिता ने उसके दूसरे विवाह का विचार किया और शनै. शनैः, पुत्र को भी अपना विचारानुगामी बना लिया।

एक दिन उसने अपनी पत्नी के सम्मुख अपने दूसरे विवाह का प्रस्ताव रख उसकी अनुमति जाननी चाही। सरलहृदया हरदेवी जी (उसकी पत्नी) ने कहा—"यह ठीक है कि मुझसे आपका उद्देश्य पूरा न हो सका और आप दूसरा विवाह कर रहे है, परन्तु इस विषय मे अपने गुरु जी से पूछ ले। यदि उन्होने आज्ञा दे दी, तो आप अपना दूसरा विवाह कर ले। मैं भी सेविका की भाति आपके चरणो मे पडी रहूँगी तथा सेवा करके भुक्तावशिष्ट भोजन से अपना निर्वाह करती रहूँगी। परन्तु आप अपने गुरु से पूछे अवश्य।

उस देवी ने कहने को तो यह कह दिया, परन्तु उस के अन्तराल मे भीषण द्वन्द्व मचा हुआ था। घर की कलह, पति की अवेक्षा, सास ससुर का तिरस्कार तथा लोगो की दृष्टि मे हीन एव वन्ध्या के प्रति जो भाव होते है, उनकी कल्पना करके वह काप गई। अब यह भरा-पूरा घर उसके लिए क्या आकर्षण का वस्तु रह जायेगा ? मन मे सोचती-क्या किसी प्रकार इनके गुरु इन्हे इस कार्य के लिए निषेध नही कर देगे ? परन्तु दूसरे ही क्षण विचार आता क्या पडी है उन्हे वर्जन करने की, मै कौन उनकी पुत्री लगती हूँ, जो उनके हृदय मे मेरी पीडा हो और वे ही क्या, यदि कोई मेरे ही माता-पिता से इसकी स्वीकृति लेना चाहे, तो क्या वे भी निषेध कर सकते हैं ? कदापि नही। हे प्रभो ! अब मेरा क्या होगा दीनबन्धो ! भक्तवत्सल ! अब इस विशाल विश्व मे मेरे केवल आप ही हो, अन्य कोई नही। जो ससुर बेटी कह कर पुकारते थे, जो सास सेवा से प्रसन्न हो कर आशीष देती न अघाती थी तथा जिन्हें मैं जीवन-सर्वस्व कहती थी, आज वे सभी पराये हो गए है कितना स्वार्थी है जगत। इन सबको मै प्रिया नही थी, उन्हे अपना तो स्वार्थ प्रिय था। आज सायकाल यदि इनके गुरु जी ने भी आज्ञा दे दी तो···देवी यह कल्पना कर सिहर उठी। देखे क्या होता है। परमात्मा करे वह निषेध कर दे। परन्तु पूर्वोक्त भावो ने इस सुखद कल्पना को दबा लिया और देवी पुन. विषाद-सागर मे गोते लगाने लगी।

साय समय युवक भोजन करके पुस्तक लेकर पढने लगा तब देवी के हृदय मे धडकन पैदा हो गई। वह सोचती, अब जीवन उनके गुरु जी के हाथ मे है यदि वे चाहे तो मुझे इस घर की साम्राज्ञी बना सकते है और यदि चाहे, तो एक दासी तथा [illegible]। आज उसने दिन भर भोजन न लिया और न पानी [illegible] मे [illegible]।

आज उसे भगवान् का भी वार-वार स्मरण आता था। सच्चा भक्त होता भी दु:खी जन ही है।

रात्रि को उसके पति पढ़ कर पधारे। उनकी प्रसन्न मुद्रा देख कर देवी का हृदय धक् से रह गया। इन सब की इच्छा पूर्ण हुई, तभी तो ये इतने प्रसन्न है। आखो मे आँसू भर कर पूछा, "क्या कहा आपके गुरु जी ने ?" उस समय देवी ठीक वैसे ही थी, जैसे कोई अति रुग्ण होने के कारण स्वय न्यायालय में न जा पाया हो किन्तु आज न्यायालय से उसे फाँसी दण्ड अथवा मुक्ति मिलनी थी और अब समाचार दाता उसके समक्ष खड़ा हो जो उसी समाचार को सुनाएगा।

युवक ने गम्भीर होकर कहा, गुरु जी की आज्ञा है कि मैं दूसरा विवाह न करूँ। उन्होने कहा है कि उससे आपके परिवार की शान्ति समाप्त हो जायेगी। तुम्हारी पूर्व विवाहिता पत्नी दु.खी रहेगी। क्या तुम्हे उसकी सुख सुविधा का ध्यान नही है। सन्तति दूसरा विवाह करने से नही मिलती, तप से मिलती है। अब आप दोनों प्रतिदिन उभय काल गायत्री मन्त्र का जप, औषध-सेवन तथा दो वर्ष के लगभग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो और दूसरे विवाह का विचार मन से निकाल दो तथा दृढ़ता पूर्वक अपना मत अपने माता-पिता से निवेदित कर दो। ध्यान रक्खो, जैसे धुरों के मध्य घोड़ा फँस जाता है, वैसे ही दो स्त्रयो के बीच पुरुष की दुर्गति होती है।

देवी के नेत्रों में विषाद के आँसू हर्ष के आँसू बन गये। अपने उद्धारक के प्रति मन मे वह श्रद्धा उत्पन्न हुई कि उन्हे अपना धर्म पिता समझने लगी। एक दिन उन्हे भोजन के लिये बुलाया तथा चिरकाल से चले आ रहे घूँघट को भी हटा दिया और कहा—"ये तो मेरे पिता हैं, पिता से क्या पर्दा।" दोनो गुरु की आज्ञानुसार औषध सेवन आदि करने लगे। पुत्रोत्पादक औषध भी स्वय पण्डित जी महाराज ने ही बनाकर दिया।*

---

*ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज मेरठ नगर के भूतपूर्व मन्त्री श्री इन्द्रराज जी तथा उनके दोनो भाई वलदेवराज जी और रणवीर जी उसी तपस्या के फल हैं। आज भी वह परिवार उस आदर्श आचार्य के गुण गाता नही थकता।

लाल कुर्ती आर्य समाज की स्थापना

सम्वत् १९८० मे श्री पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय ने रावलपिण्डी नगर मे लालकुर्ती आर्य समाज की स्थापना की। प्रधान मन्त्री का चुनाव उसी समय कर दिया गया और सदस्यो की सख्या भी पर्याप्त हो गई। उस अवसर पर अन्य विद्वन्मण्डल की चहल पहल मे एक उत्सव रचाया, जिसका नेतृत्व श्री उपाध्याय जी ने स्वय किया। जनता में अपने इस नूतन कार्य से वडी स्फूर्ति उत्पन्न हुई और श्री महाराज के सरक्षण मे वह इस समाज की उन्नति को अत्यधिक सुरक्षित समझने लगी। महाराज के प्रति लोगो की वड़ी उत्कृष्ट भावनाएं विद्यमान थीं वे कोई भी कार्य महाराज से विना पूछे नही करते थे।

आचार्य मुक्तिराम जी के वडे भ्राता जी उनको विवाह के लिये विवश करने लगे, तो उत्तर में उन्होने कह दिया कि मेरे समीप ये वीरा (ब्रह्मचारी) वच्चे हैं। इनके लिये भी दान माँगना पडता है। वेतन पर मैं काम कर नही सकता; क्योकि ब्राह्मण का धर्म विद्या-विक्रय करना नही है। रुपया लेना वा कमाना वैश्यो का काम है। मैं ब्राह्मणत्व को छोड़ कर वैश्य वृत्ति को क्यो अङ्गीकार करूँ ?

मई १९२४ से सितम्बर १९२४ तक आर्य मासिक पत्र मे पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय की दार्शनिक लेखमाला चलती रही।

अत्युत्तम चिकित्सक

सम्वत् १९८१ मे श्री प० मुक्तिराम जी का वडा भाई हरदेवा वहुत रुग्ण हो गया, उस समय इस रुग्णता की सूचना उन्हें भी दी गई। वे सूचनानुसार तो घर नही जा पाए, किन्तु माघ कृष्णा अष्टमी सवत् १९८१ के दिन उनके दिवङ्गत होने की सूचना जब पुन प्राप्त हुई, तो अपने भतीजे रामचन्द्र को साथ लेकर अपने घर चले गए। मृतक की अन्तिम प्रथा के समाप्त हो जाने पर वे पुन. गुरुकुल लौट आए और राजाराम को घर ही छोड दिया।

पुन अग्रिम वर्ष आषाढ मे राजाराम बहुत अधिक रुग्ण हो गया और उसके जीवन की कोई आशा शेष न रही थी। अवस्था इतनी शोचनीय हो चली थी कि मुंह से बोल नही निकलता था, जिह्वा पर छाले पड गए थे। कुछ खाना तो अलग रहा, पानी भी गले से नीचे

उतरना कठिन हो गया था। बहुत से डाक्टर वैद्य उसके औषधोपचार से निराश हो गए थे और उन्होने चिकित्सा करने से उत्तर दे दिया था। पण्डित मुक्तिराम अपने भतीजे को जीवित अवस्था में देख सके इस दृष्टि से घर वालो ने दूरलेख दे कर श्री महाराज को घर बुलाया। निरन्तर चार मास तक श्री महाराज ने राजाराम की चिकित्सा की, तब वह स्वस्थ हो पाया।

आसन्नमरण को पुनर्जीवन प्रदान हो जाने से लोगो की श्रद्धा महाराज पर बहुत बढ गई, क्योकि वे सभी उसके जीवन से निराश हो गये थे। ऐसे अवसर पर राजाराम को स्वस्थ होते देख कर सब लोगो ने श्री महाराज को भगवान् का रूप ही समझा।

उस समय श्री करतार सिह जी ने अपना साहस बटोर कर कहा "महाराज! जब आप काशी से १४ वर्ष पश्चात् घर आए थे, तो आपने हम सबकी भारी उपस्थिति मे बड़ी सुन्दर कथा की थी। उस से यह आभास होता था कि आप आर्य समाजी हैं। परन्तु तत्कालीन सङ्गृहीत धन को मन्दिर मे दिये जाने पर हम बडी द्विविधा मे पड गए थे। हमारा साहस उस समय इस सम्बन्ध मे कुछ भी पूछने का न हो सका था, कि इतने प्रकाण्ड पण्डित से क्या पूछे। आपके लौट जाने पर हम असमञ्जस में ही पडे रहे और अब भी वही स्थिति है, पर ऐसी द्विविधा जनक अवस्था कब तक रक्खे। अब कुछ पूछने का साहस हो रहा है। हमारी शङ्का यह है कि आप पहले से ही आर्य समाजी है वा पश्चात् बने है ? पश्चात् बने है तो कब ?" मुक्तिराम जी ने करतारसिह जी से कहा—

"आप का प्रश्न बडे महत्त्व का है। यह प्रश्न आज तक किसी ने नही किया। वस्तुत. मेरे ऐसे विचार जन्म से ही है।"

"फिर आपने शिवालय के लिए क्यो सहायता दी ? यदि आपको कुछ करना ही था, तो आर्य समाज का कोई वस्तु बनवाते।"

महाराज बोले—"भाई! ये तो सनातन धर्मी भी नही है। मैं चाहता हूँ—ये पहले सनातनी ही बन जावे, पुन आर्य समाजी बनना तो इनका बड़ा सरल है।"

अपने भतीजे राजाराम को स्वस्थ करने के पश्चात् श्री महाराज धर से प्रस्थान कर, कार्तिक दीपावली के पश्चात् पुन गुरुकुल आ विराजे।

श्री महाशय खेमराज जी साहनी ने बताया कि बहुत समय से गुरुकुल कांगडी का पत्र व्यवहार प० मुक्तिराम जी उपाध्याय के साथ चल रहा था कि वे गुरुकुल कागडी को भी अपना अमूल्य समय देवें जिस से यहाँ के विद्यार्थी भी दर्शनशास्त्रो के विषय मे आप से लाभ उठा सके। निरन्तर पत्रोत्तर के अनन्तर श्री उपाध्याय जी ने एक वर्ष देना स्वीकार कर लिया था। किन्तु चोहाभक्ताँ की स्थिति इस योग्य न थी कि उन्हे कागडी के लिए अवकाश मिलता। अत. विवश होकर वे कागडी को समय नही दे सके।

आचार्य पं० मुक्तिराम जी उपाध्याय सन् १६२५ मे मथुरा शताब्दी पर पहुँचे और वहा से निवृत्त हो कर उनके द्वारा गुरुकुल चोहाभक्तां की प्रबन्ध समिति का आवश्यक अधिवेशन बुलाया गया। पेशावर रावलपिण्डी और जेहलम निवासी सदस्यो को दूरलेख भेजकर निमन्त्रण दिया। गुरुकुल की आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। कुछ सदस्यो का विचार था—गुरुकुल तोड़ देना चाहिए, किन्तु कुछ इसके विरुद्ध भी थे। अन्त मे अधिवेशन के अध्यक्ष श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय ने सदस्यो से कहा, कि गुरुकुल तो तोडेगे नही और न ही टूटने देंगे ब्राह्मणो के बालक कभी भूखे नही मरते। उनके इस कथन से समस्त सदस्यो मे उल्लास का तरङ्ग उठ चला और मन्त्री गौरीदास ने जो ७०००) रुपया ऋण रूप में गुरुकुल को दिया था वह उन्होने छोड दिया।

यह गौरी दास जी का अनुदान सदा स्मरण रहेगा, जब कि उनकी दुकान में घाटा पड चुका था और दूकान भी छोड चले थे।

इसके पश्चात् आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय ने गुरुकुल के निमित्त भ्रमण करना आरम्भ कर दिया।

श्री राय बहादुर बिशनदास जी गुरुकुल के सहयोगी थे, जब उनका देहावसान हुआ, तो उनकी सम्पत्ति गुरुकुल को ही प्राप्त हो गयी।

ऊँचा व्यक्तित्व

इन दिनों श्री उपाध्याय बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे। दूर-दूर से उन्हें निमन्त्रण प्राप्त होने लगे। लोगों मे इतनी श्रद्धा थी कि जब बाहर से लौट कर गुरुकुल आते थे, तो मार्ग में आपणिक अपने-अपने आपणों से उतर कर श्री उपाध्याय जी के चरणों मे गिर पड़ते थे। वे बहुत निषेध करते थे, किन्तु श्रद्धालु भक्त कहां मानने वाले थे, केवल हिन्दू ही ऐसे न थे मुसलिम जनता भी इसी प्रकार आदर करती थी। इस

'परिवहन कल्लर खालसा खडा होता था, तब वहाँ के सिक्ख भी इसी प्रकार सम्मान करते थे। कल्लर और चोहाभक्तॉ के मध्य एक 'किलोवा' ग्राम था। वहा सिक्खो की एक गद्दी थी, जिसका नाम था—'पिप्याना साहब'। उसके महन्त श्री उपाध्याय जी पर बहुत ही लट्टू थे। श्री महन्त जी गुरुकुल के उत्सव पर भी पधारते थे।

हाथ में ही यश है

एक दिन प्रात आचार्य मुक्तिराम जी ब्रह्मचारियो को पाठ दे रहे थे। एक व्यक्ति ऐसे रोगी को लेकर आयी, जिसकी चिकित्सा गण्यमान्य चिकित्सको से कराई जा चुकी थी। पण्डित विद्याधर जो स्नातक बताते है कि हमारे आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी ने उन्हे देखा और देखकर चिरकाल तक चुप बैठे रहे। पश्चात् उन्होने पीपल के भस्म से सात पुड़िया उसे बनाकर दी। वह चली गयी। हमने आचार्य जी से पूछा कि आप रोगी को देखने के पश्चात् चुप क्यो बैठे रहे थे ? तब उन्होने उत्तर दिया "कोई औषध उपस्थित न था। तब ध्यान आया कि पीपल का भस्म रक्खा हुआ है। औषध के अभाव में उसे ही दे दिया। पीपल का भस्म भी एक अत्युत्तम औषध है।

तीन दिन पश्चात् वह पुरुष उसी समय पुन जब दूर से आता दृष्टिगत हुआ, तो आचार्य जी उसे दख कर विस्मित हो गए कि स्यात् वह रोगी परलोकवासी हो गया है, इसीलिए यह आ रहा है। जब वह श्री आचार्य जो के चरणो मे आकर बैठ गया, तब आचार्य जी ने उससे पूछा —"रोगी कंसा है ?" उसने उत्तर दिया—"आधा स्वस्थ हो चुका, चार पुडिया अभी शेष है, औषध ने झटिति अपना प्रभाव दिखा दिया था। औषध तो क्या, वह तो आपके हाथ मे ही यश है ? आप कुछ भी उठाकर दं दे, वही पर्याप्त है ?" आचार्य भिषक् ने उससे कहा—"भगवान् उसे ठीक स्वस्थ करेंगे, शेष औषध भी इसी प्रकार दे दे।"

पश्चात् वह व्यक्ति आश्वस्त होकर चली गयी।

आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय विवाह सस्कारो के कराने से प्राय. वचते रहते थे, किन्तु ससार मे अपवाद भी होते ही हैं। जिन व्यक्तियो मे कुछ वैशिष्ट्य के दर्शन होते है वे ही अपवाद कोटि में समाविष्ट होते है। 'श्री चिरञ्जीतराय साहनी' जी भी इसी

प्रकार के व्यक्ति विशेष थे, जिनका सम्बन्ध १९१७ से ही पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय से हो गया था। यद्यपि वे आर्य-समाज मे पण्डित विष्णुदत्त भावी स्वामी विशुद्धानन्द जी से दीक्षित हुए थे, तथापि उन्होने जीवन-निर्माण की कला आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी से ही प्राप्त की। पण्डित जी ने देखा कि मेरी शिक्षाएं युवक चिरञ्जीव-राय पर अपना प्रभाव छोडती जा रही है। यह ही कारण है कि इनके वाग्दान के अवसर पर इन्हे प्रसह्य सुरा पिलाए जाने के प्रयत्न करने पर भी ये न पीने मे अपने को समर्थ बना सके। एक बार नूरपुर मे लगने वाले मुसलमानो के मेले पर मित्र मण्डली इन्हे बलात् रात को ११ बजे उठा कर ले गई, जहाँ कि समस्त भारत की वेश्याये आई हुई थी। मास, मदिरा और व्यभिचार का सर्वत्र बोल बाला था। प्रभु की अनुकम्पा और दिए गए सदुपदेशो मे दृढ आस्था होने के कारण ये वहाँ से भी अछूते निकल आए। अत इनके विवाह-संस्कार कराने के निवेदन को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

१५ फरवरी १९२५ को आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी ने अपने वरद हस्त से आचार की शिक्षा से दीक्षित चिरञ्जीतराय साहनी का पाणिग्रहण सस्कार कराया। साथ मे विवाह की विशद व्याख्या कर, अन्त मे यह भी कहा—कि तुम आर्य कुमार सभा के मन्त्री भी हो, तुम्हारी किसी भी त्रुटि से आर्य समाज के माथे पर कलङ्क का टीका लग सकता है, अतः सोचते रहने की क्षण क्षण मे आवश्यकता है। जितना तुम्हारा जीवन ऊंचा होगा, स्मरण रखो, उतना ही आर्य समाज ऊँचा बनेगा। आर्य समाज ईंट पत्थर के भवनो का नाम नही है। वह वैदिक आचार-विचार मे रगी हुई व्यक्तियो का सर्व-प्रबलतम सङ्गठन है। इस वार्ता को आँखो से कदाचित् तिरोहित नही होने देना। इसी मे तुम युवको का जीवन सफल है।

हमें ज्ञात नहीं था

सन् १९२६ मे पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय का प्रभाव आर्य सामाजिक क्षेत्र को पार करके पौराणिक समाज मे भी व्याप्त हो चुका था। श्री महाशय खेमराज जी साहनी के ज्येष्ठ भ्राता लछमन-दास जी साहनी की पुत्री का विवाह था। लछमणदास जी कट्टर पौराणिक थे किन्तु वे सस्कार वैदिक रीति से पण्डित मुक्तिराम जी द्वारा कराना अभीष्ट समझते थे। उनके सगे सम्बन्धियो ने ऐसा करने

का बहुत निषेध किया, किन्तु लक्ष्मणदास जी ने कहा, —"मैं पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय से सस्कार इस कारण करा रहा हूँ, कि जो गुण प्राचीन ऋषि मुनियो मे थे, वे सब इनमे विद्यमान हैं। इस युग में ऐसे उच्च महात्मा के होते हुए किसी दूसरे से सस्कार कराऊँ, यह मुझे उत्तम प्रतीत नही होता।" इस प्रकार सबके विरोध करने पर भी सस्कार वैदिक रीति से प्रारम्भ कर दिया गया। उपाध्याय जी ने सस्कार मे विवाह विषय पर जब प्रकाश डाला तब उस पर विरोधी समाज भी लट्टू हो गया और सस्कार के अन्त मे सबने उपाध्याय जी के चरण पकड़ लिए तथा कहा—"हमे ज्ञात नही था कि ऐसे गिरे युग मे भी कोई ऐसा महापुरुष हा सकता है।"

पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय जीवन्मुक्त की भांति थे—

आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी आर्य समाज लुण्डा बाजार मे ठहरे हुए थे। गुरुकुल मे अध्यापन का सब भार पण्डित विद्याधर जी स्नातक के हाथ मे था। गुरुकुल मे भोजन-सामग्री समाप्त हो गई। वर्षा के दिन थे। स्नातक जी श्री आचार्य जी के समीप पहुँचे। सब वृत्तान्त निवेदन किया। वर्षा प्रारम्भ हो गई, अतः श्री स्नातक जी गुरुकुल को लौट न सके। आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी ने श्री रामलाल साहनी के घर से भोजन के दो थाल समाज के सेवक द्वारा मगाए। लाला रामलाल जी साहनी का नियम था कि कोई भी व्यक्ति किसी समय भी आर्य समाज मन्दिर मे आये, उसका भोजन उनके ही गृह से पहुँचाया जाये। १०-१२ व्यक्तियो का भोजन अतिरिक्त उनके घर बना रहता था। चाहे रात के बारह बजे हो।

भोजन के दो थाल सेवक ले आया। उनमे चार-पाच प्रकार की दाल और शाक थे। आचार्य जी के साथ स्नातक जी ने भोजन आरम्भ कर दिया। जब भोजन कर चुके तब स्नातक जी ने कहा, "आचार्य जी एक शाक मे नमक था ही नही।" इन्द्रियजित् श्री आचार्य जी ने कहा, "मुझे तो पता ही न लगा।" फिर पूछा—"क्या-क्या दाल शाक थे?" उत्तर मे बोले—"सबका ध्यान नही" तब श्री स्नातक जी ने निर्धारण किया "आचार्य जो का जीवन् जीवन्-मुक्त की भाति चल रहा है। इनका मन किसी और ही तत्त्व मे रमण करता रहता है। इस समय भी वह भोजन पदार्थो मे नही था। अत. किसी भी रस का आस्वादन न कर सके, जिसकी स्मृति रहती।

पार्वती यात्रा

बारमी के दिनों में श्री महाराज प्रायः ब्रह्मचारियों को पहाड़ी यात्रा पर ले जाया करते थे। उन्हें पहाड़ी प्रान्त बहुत रुचता था उनकी वृत्ति वहाँ पूर्वापेक्षया अधिक शान्ति का अनुभव किया करती थी। इस वार उनका कार्यक्रम विद्यार्थियों को साथ लेकर जम्मू राज्य में जाने का था। अतः कई बड़े विद्यार्थियों के साथ वे पर्वतीय प्रान्तों में पहुँच गए। एक समय ऐसे भयङ्कर जङ्गल में पहुँचे कि किधर से भी मार्ग दृष्टिगोचर न होता था। देखने पर कोई मनुष्य भी न दीखता था। तिस पर भूख अपना प्रचण्ड रूप धारण कर चुकी थी। पीने के लिए पानी का आश्रय बड़ी कठिनाई से प्राप्त करके थोड़ी देर पश्चात् उन्हें एक व्यक्ति मिली, जिससे अपनी क्षुधा गाथा कह सुनाई। उसने निकट के एक ग्राम का मार्ग बतलाया और क्षुधा-निवृत्ति के लिए ग्राम में एक व्यक्ति का नाम भी बता दिया। जब सब गुरुकुल वासी ग्राम में उस व्यक्ति के द्वार पर पहुँचे और उसे आह्वान किया, तो वह घर से निकली और सभी को श्वेत वस्त्रों को देखकर भयभीत हो गयी। प्रायः पर्वतीय ग्रामीणजन इतने उज्ज्वल वस्त्र नहीं रखते। जितने गुरुकुल वासियों के थे और न ही कदाचित् उन लोगों की ऐसी व्यक्तियों से भेंट होती है। अपने द्वार पर अकस्मात् ऐसी विचित्र व्यक्तियों को देखकर वह पुरुष घर में ऐसा छुपा कि बहुत देर तक उसकी प्रतीक्षा ही करते रहे। जब यात्रियों ने उच्च ध्वनि से कहा कि हम लोग भूखे हैं कुछ भोजन हो तो लाओ, तब आश्वस्त होकर वह बाहर निकला और कहने लगा—"मेरे समीप तो चार रोटियां हैं। मैं इतना शक्त नहीं हूँ कि इस अवसर पर आप महानुभाओं की सेवा कर सकूँ। आर्द्रचित्त होकर पण्डित जी ने कहा—"आप रोटियों के दाम ले लो, बोलो, क्या लोगे ?" उसने कहा—"एक रोटी का एक रुपया लूँगा।" महाराज ने चार रुपए देकर उससे चारों रोटियां क्रीत कर लीं। वे मक्का की बड़ी रोटियाँ थीं। उस पर्वतीय यात्रा में ६ व्यक्तियाँ थीं, जिन्होंने उन चार रोटियों से अपनी भूख मिटाई। क्षुधा अति प्रबल थी; अतः उन रोटियों में वह आनन्द आया जो हलवे में भी क्या आता।

महाराज यात्रा में इतनी तीव्र गति से चलते थे, कि विद्यार्थियों को पीछे छोड़ देते थे, पुनः खड़े होकर उन्हें साथ लेना पड़ता था।

कोटला-पुन्छ होते हुए वे बूढा अमरनाथ जा पहुँचे। वह स्थान अतीव रम्य था। दो ओर पर्वत और मध्य मे प्रवाहित एक नाला अपनी पृथक छटा दिखा रहा था। इस मनोरम दृश्य से सम्पूर्ण परिश्रान्ति आनन्द मे परिवर्तित हो गयी। वहाँ शब्द मात्र से ही वर्षा होने लगती थी, यह एक विचित्र वार्ता अनुभव में आई। वहा प्रतिदिन आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी ने उपदेश करना आरम्भ कर दिया, जिसमे वहाँ के पण्डे पुजारी भी बैठते। वे पण्डित जी के उपदेश से अति प्रसन्न हुए। सब यात्रियो का भोजन-व्यय उन्होने ही वहन कर लिया। महाराज वहाँ प्रतिदिन समाधि लीन भी रहने लगे, अतः उन्हे वहाँ जो आनन्द आया वह और कही जाने की प्रेरणा न दे सका।

वहाँ प्राय. यात्री पत्थर के तवे पर रोटी पकाया करते थे, वह तवा बहुत छोटा था जिस पर पकाई गई रोटी एक स्थान से कच्ची रह जाया करती थी। प्रतिदिन और प्रति रोटी ऐसा ही होता था और वह भी उसी निश्चित स्थान पर। शेष रोटी भली भाति पच जाती थी। इससे उपाध्याय जी को अतिशय आश्चर्य हुआ। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक किसी विचित्र घटना के अन्तस्थल मे पहुँच कर जब तक समाधान दृष्टिगोचर नही होता, तब तक निरन्तर अन्वेषण करता रहता है, ठीक इसी प्रकार एक निश्चित स्थल पर रोटी का परिपाक न होने के कारण का अन्वेषण किया गया और वह पत्थर का तवा तोड़ दिया गया। तोडने पर प्रतीत हुआ कि उक्त स्थल पर एक कीडा विराजमान है, जो अग्नि की आच पार नही होने देता। वह कीडा जीवित निकला। पत्थर मे कही भी छिद्र नही था, जहाँ से उसने प्रवेश किया हो। अनुमान यह ही लगाया गया कि पत्थर का निर्माण काल ही इस जीव के जीवन का आरम्भ है। यह निरन्तर वर्षों से विद्यमान बिना खाये पीए कैसे जीवित है ? अग्नि की सतत उष्णता मे भी इसका अन्त नही हुआ। यह भगवान् की सृष्टि मे एक आश्चर्यमयी घटना है, जो कर्म फल देने के साथ-साथ ईश्वर द्वारा दिए गए सरक्षण को भी पुष्ट करती है।

जङ्गल मे एक साथी नेअद्भुत दृश्य देखा—एक रीछ किसी वृक्ष से एक मोटा-सा डण्डा तोड़ कर लाया और उससे एक बछडे को पीटने लगा। रीछ ने बछड़े को इतनी चोट लगाई कि वह अधमरा हो गया और भूमि पर गिर पड़ा तथा मर गया। पुन वह रस्सी के रूप मे एक लम्बी सुदृढ लता लाया, जिससे बछडे को बड़ी सूक्ष्-

वृक्ष से बांधा और उसमें डण्डा डालकर अपने कन्धे पर रख उठा ले चला। मार्ग चढ़ाई का था। वह उसे लेकर धीरे-धीरे चढ़ रहा था। थोड़ी देर में वह उसके बोझ से परिश्रान्त हो गया और अपने सहारे रख कर विश्राम लेने लगा। तत्पश्चात् वह पुनः उसे उठाकर चला और उसने परिश्रान्ति पर पूर्ववत् ही विश्राम किया। दो-तीन वार तो उसने इस प्रकार विश्राम ले-लेकर उसे आगे ले जाने की चेष्टा की; किन्तु वह अब अधिक-अधिक थकता जा रहा था और इतना थक गया था कि अब उसे नीचे रख कर सँभाल न सका। बछड़ा नीचे लुढ़क गया। सम्भवतः रीछ ने यह समझा कि अभी तक यह जीवित है और स्वयं कुछ चेष्टा कर के नीचे लुढ़क गया है। रीछ पुनः उसके निकट गया और बड़े प्रबल आघातों से डण्डे से पीटने लगा। अकस्मात् एक व्याध उधर आ निकला, उसने अपनी गोली का लक्ष्य उसे बना कर बछड़े को पीटने से बचा दिया। जब निकट जाकर देखा, तो रीछ और बछड़ा दोनों ही प्राण छोड़ चुके थे।

रीछ की एक दूसरी घटना और देखने में आई। जम्मू राज्य में इधर से उधर माल ले जाने वाले थोरी कहलाते हैं। वे एक मन्दिर से कुछ दूरी पर चादर तान कर सो गए। जङ्गल में सोते समय उनका नियम है कि एक पुरुष बारी बारी से पहरा देता रहे, जिससे कोई हिंसक जन्तु आघात न पहुँचा सके। थोड़ी देर में वहां अचानक एक रीछ आ निकला। रीछ के बारे में प्रसिद्ध है कि वह मृत शरीर पर अपना आक्रमण नहीं करता; अतः वह जागता हुआ पुरुष, जो पहले से भी लेटा हुआ ही था, नितान्त शान्त होकर पड़ा रहा। रीछ सबको सोया हुआ देख कर, चुपके से वहाँ से चला गया। थोड़ी देर में वह एक डण्डा लाया और सबको उस डण्डे से माप कर चला गया। वह डण्डा छोटा था, सब पर पूरा नहीं आया। सभी लोग सट कर एक पङ्क्ति में सोए हुए थे।

पहरेदार ने सोचा "अवश्य यह कुछ न कुछ उपद्रव करेगा, क्योंकि पहले देख कर चुप चाप चला गया, दूसरी वार डण्डा लाया, उससे सबको मापा। सब पर डण्डा पूरा न उतरने से पुनः उल्टा चला गया। अबकी अवश्य कोई बड़ा डण्डा लायेगा और मारेगा" इस आशङ्का से पहरेदार थोरी ने झटिति सबको जगा कर रीछ की यथाघटित करतूत बता दी।

वे अपनी-अपनी चादरें उसी प्रकार तानकर, मानो इनके नीचे

मनुष्य सो रहे है, कुछ दूर पर एक झाडी की आड़ मे छिप कर वैठ गये और रीछ के आगमन तथा उसके द्वारा किये जाने वाली चेष्टा की प्रतीक्षा करने लगे।

यत्किञ्चित् काल के पश्चात् वह एक दूसरा डण्डा लाया। धीरे से उन सब मनुष्यों को मापा। इस बार डण्डा सबके ऊपर ठीक आया। अत एक ही वार में सव को मार डालने के विश्वास मे उस ने उस डण्डे से एक दम सव पर आघात किया और भाग गया। उसके भागने की चेष्टा से यह अनुमान हुआ कि उसे आशङ्का थी कि सम्भव है कोई इन व्यक्तियों मे से जीवित रह गयी हो और पश्चात् मुझे ही यमलोक में पहुँचा दे।

रीछ की इस आद्यन्त चेष्टा से यह अनुमान होता है, श्री मुक्तिराम जी ने विद्यार्थियो को वताया—"सभी प्राणी उभय योनि हैं अर्थात् कर्म योनि भी और भोग योनि भी। इन की सभी क्रियाएँ बोध पूर्वक हैं, यह इन का स्वाभाविक ज्ञान है और इसकी इयत्ता सीमित है क्योंकि इन्हे इस ज्ञान को वढ़ाने के साधन उपलब्ध नही हैं। अपने परिमित स्वाभाविक ज्ञान के अनुसार जितना ये कर्म करते है, उस का भोग इन्हे मिलेगा और वह परिमित होगा। किन्तु जिन कर्मो के आधार पर उन्हे यह शरीर प्राप्त हुआ है, वह भोग इस नूतन अर्जित कर्म भोग से पृथक होगा। मनुष्य विभिन्न निमित्तों के द्वारा अपने स्वाभाविक ज्ञान की जितनी वृद्धि कर लेता है, उस ज्ञान के आधार पर जितना कर्म-समुदाय सञ्चित करेगा, उस सबकी वासनाओं के आधार पर उसे उतना ही यथोचित भोग मिलेगा। मनुष्यो की भाँति इन सब प्राणियो मे सुख-दु ख की परख है।" महाराज ने निर्देश किया—"इन्हे अपने भक्ष्य और अभक्ष्य का पूर्ण ज्ञान है। अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ-समूह में से प्रत्येक प्राणी अपने योग्य आहार का ग्रहण करता है, अयोग्य का नही, किन्तु मानव इस परीक्षण में निर्बल है, उसे भक्ष्याभक्ष्य का शिक्षण देना पड़ता है।"

महाराज ने आगे वताया कि सुख और दु.ख भी सभी शरीरो में समान है, जो आनन्द एक पशु को घास-भक्षण मे आता है, वही आनन्द मनुष्य को एक रोटी मे आता है एवं भूख न लगने पर सर्वोत्तम पदार्थो में भी नही आता।

कर्म फल भोग समाप्त हो जाने पर मानवेतर प्राणियों की मुक्ति

होने के विषय में पूछे जाने पर महाराज ने उत्तर में कहा—"मुक्ति एक प्रयत्न साध्य विषय है। उस प्रयत्न के लिए विशेष प्रकार के ज्ञान की अपेक्षा है। वह ज्ञान मनुष्य से भिन्न और प्राणियों में सम्भव नहीं; अतः भोगों की समाप्ति हो जाने पर भी उस योनि में मुक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। दूसरी बात यह है कि पुण्य-पाप के समान होते ही मनुष्य जन्म मिल जाता है। अतः मनुष्येतर किसी भिन्न योनि में समस्त भोग समाप्त हो चुके, यह कैसे माना जा सकता है? ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में ही ऐसे मन्त्र उपलब्ध होते हैं, जो बताते हैं कि मनुष्य ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है।"

१५ दिन बूढ़ा अमर नाथ निवास करके वहाँ से चल पड़े। इस पर्वतीय-प्रदेश यात्रा में आर्य सिद्धान्तों के प्रचार की भी एक योजना थी; किन्तु सरलता से योजना का कार्यान्वित होना बड़ा कठिन था। इस जम्मू राज्य में जितने भी आर्योपदेशक पधारे, उन्हें अपने जीवन से हाथ धोने की आशङ्का प्रतिक्षण बनी रहती थी। रामचन्द्र खजानची नामक एक बहुत अच्छे उपदेशक इसी राज्य में वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए यहाँ के नगरवासियों द्वारा मार दिए गए थे। मारे जाने के भय से आप्त पुरुष कभी भी अपनी उत्कृष्ट भावनाओं का परित्याग नहीं करते। वे घातक जनों को अज्ञानी समझ कर, उन पर दया करके अपने उपदेशों द्वारा उनके अबोध को दूर करने की चेष्टा में अहर्निश लगे रहते हैं; अतः श्री मुक्तिराम जी जैसे आत्मदर्शी के लिए तो बिना प्रचार के, प्रतिनिवृत्त हो आना असम्भव ही था।

"सर्प भी मर जाये और लाठी भो न टूटे" इस लोकोक्ति का अनुसरण करते हुए श्री महाराज ने प्रचार करने की यह योजना बनाई कि सभी व्यक्तियाँ पृथक-पृथक हो जावें, सङ्घटित रूप से एक साथ रहना सन्देह को उत्पन्न करता है। स्वयं को कोई भी "आर्य समाजी" इस विशेषण से उद्घोषित न करे। किसी का खण्डन भी न किया जावे। जो कुछ भी कहना है, वह मण्डनात्मक ही हो। सत् की उपलब्धि से असत् का निवारण वे स्वयं समझ जाएँगे।

इस योजना के अनुसार सब अपने-अपने प्रचार-क्षेत्र में चले गए। आदर्श आचार्य ने भी अपना क्षेत्र चुन लिया। जिधर अधिक भय था, वह क्षेत्र अपने लिये ले लिया। वहाँ जाकर आप ने कथा

आरम्भ कर दी। व्यक्तियों द्वारा यह पूछने पर कि आप कौन हैं? महाराज ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण!" वे बोले महाराज! यहाँ आर्य समाजियो ने बहुत उत्पात मचाया हुआ है।" मुक्तिराम जी ने जिज्ञासा की दृष्टि से पूछा, "सुनाइये तो, वे क्या करते है?" उनकी ओर से उत्तर आया—"भगवन्! वे यहाँ आकर अछूतो को शुद्ध करते है। भला कही अछूत भी शुद्ध हो सकते है। ऐसी बाते तो हमने पहले कभी न सुनी थी और ये शुद्ध हो जाने की डीग भर कर पुन: हमारे साथ रहन-सहन, खना-पान का व्यवहार भी निभाना चाहते हे। जिन्हे आज तक अस्पृश्यता के कारण अपने से दूर रक्खा, उन्हे अब स्पृश्यता का अधिकार कैसे दे, जो इस योग्यता के अधिकारी ही नही है?"

महाराज ने उन्हे समझाते हुए कहा—"भोले भाइयो! तनिक यह तो सोचो, इस राज्य मे हिन्दू कहलाने वाले लोग कितनी सङ्ख्या मे हैं। मुसलमानो की अपेक्षा आप लोगो की सङ्ख्या नगण्य है। ऐसी अवस्था में हिन्दू कहलाने वाले अपने इन अस्पृश्य भाइयो को आप लोग गले नहीं लगाओगे, तो ये विवश होकर मुसलमान बन जावेगे। तब आप लोगो की सङ्ख्या घटेगी और उनकी बढ़ेगी। यतः ये सब आपके समक्ष अपना हिन्दू धर्म छोड़कर मुसलमान होगे, अत. ये आप लोगो के कट्टर शत्रु बनेंगे। क्योकि इन्हे आपकी ओर से कोई सुविधा उपलब्ध नही हुई हैं और मुसलमान इन्हे पुनः मुसलमान बनाकर प्रत्येक सुविधा देने की चेष्टा करेंगे इस प्रकार आपका पलड़ा बहुत हल्का रहेगा। आजकल के युग में सङ्ख्या का अधिक होना बहुत महत्त्व रखता है। राजनीतिक क्षेत्र में अधिक सङ्ख्या वाले लोग आगे बढ जाते है। यदि ये मुसलमान न भी बने, तो ईसाई बन जायेगे, तब भी ये आपके शत्रु ही बनेंगे। इन्हे तो जिधर सुविधा दीखेगी उधर ही चल देगे। इसलिये यह तो आपका ही कर्त्तव्य है कि इन्हे सँभाल कर रक्खा जावे। और जो महानुभाव बाहर से आकर आपकी सहायता करना चाहते है, उन लोगों के लिये आप महानुभावो का कर्त्तव्य हो जाता है कि आप उन्हे देवता की तरह पूजे, उनका सत्कार करे, जिससे वे उत्साहित होकर आपके यहाँ अधिक से अधिक कार्य कर सके। उनका किया हुआ यह कार्य आपके ही काम आयेगा, वे तो कार्य करके पुनः यहाँ से अपने यहाँ लौट जायेगे।"

"अब बात रही यह कि हम उनके साथ कैसे बैठे?" इसके उत्तर में निवेदन है कि जब वे ईसाई बनकर उच्च पद पर नियुक्त होगे तब

कहाँ बैठोगे ? उस समय तो रामान आसन छोड़कर उससे भी नीचा ग्रहण करना पड़ेगा। उत्तर में वे बोले—"महाराज ! आपकी बात ठीक है। आगे से हम ऐसी अवेक्षा नहीं करेंगे और जहाँ तक बन सकेगा, इसमें हम सक्रिय भाग भी लेंगे।" महाराज बोले, "कैसे विश्वास हो" उत्तर मिला—"करके देख लीजिए।" तब जनता के इन बचनों से महाराज ने वहाँ अनेक व्यक्तियों को शुद्ध करके आर्य संस्कृति से दीक्षित कर दिया।

इस यात्रा में श्री पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय को बिजनौर वासी एक योगी के दर्शन भी हुए, जिन्होंने अपने स्थान पर लेटे-लेटे ही श्री उपाध्याय जी को किङ्गजार्ज के घोड़े से गिरने की वार्ता तीन दिन पूर्व बता दी। श्री मुक्तिराम जी उनके समीप कई दिन ठहरे। योगेप्सु श्री आचार्य मुक्तिराम ने उन्हें पूर्ण सिद्ध समझ कर कहा—"भगवन् ! कोई ऐसा उपाय बतलाइये, जो नेती, धोती आदि यौगिक क्रियाओं से पीछा छुड़ा दे। तब योगिवर्य ने श्री उपाध्याय जी को एक भस्त्रा-प्रणायाम सिखाया, जिसमें नाड़ियों का शोधन शीघ्र होता था, तथा जिन अङ्गों में विकार हो, उस विकार को वहाँ प्राण की ठोकर मार-मार कर हटा देता था। इस रामकरण दास योगी का श्री उपाध्याय जी ने बहुत आभार प्रकट किया।

पर्वत यात्रा से लौटते हुए स्वामी शान्तानन्द जी ने अनुरोध किया "मेरे स्थान संहसा से होकर गुरुकुल जाइये।" पण्डित जी ने उनके अनुरोध को स्वीकार कर लिया और पुन्छ कोटली होकर संहसा पहुँचे, दो दिन वहाँ ठहरे। पश्चात् ब्रह्मचारियों सहित आचार्य मुक्तिराम जी जब रावलपिण्डी आए, तो महाशय खेमराज जी साहनी के अतिथि बने। उस समय उनके साथ ४, ५ संन्यासी भी थे। साहनी जी ने अपने भृत्य 'प्राण' से पूछा कि २५ व्यक्तियों का भोजन बना सकोगे ? सब सज्जन पण्डित जी के साथ आये हैं। भृत्य को जब यह ज्ञात हुआ कि पण्डित मुक्तिराम जी पधारे हैं, तो वह हर्षातिरेक से बोला—"भोजन तो पका ही दूँगा यह तो साधारण सी बात है; पर पहले बड़े पण्डित जी के चरण स्पर्श तो कर आऊँ, ऐसे महात्माओं के दर्शन से ही जन्म सफल होता है। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आज उनकी कुछ सेवा कर सकूँगा।" प्राण अतिभावना पूर्ण मुद्रा में श्री मुक्तिराम जी का अभिवादन करके अतिश्रद्धा से भोजन बनाने में

संलग्न हो गया। भोजनोपरान्त विश्राम करके उपाध्याय जी अपने दल के साथ गुरुकुल चले गये।

पण्डित मुक्तिराम जी इन समस्त दोषों से मुक्त हैं—

श्री सत्यप्रकाश जी "वैदिक यति" सन् १६३० मे पण्डित श्री मुक्तिराम उपाध्याय के चरणो मे गुरुकुल पधारे। उन्होंने स्वप्रणीत अपने ग्रन्थ का सशोधन कराने के लिए श्री उपाध्याय जी से निवेदन किया। उपाध्याय जी ने अत्यन्त सहानुभूति से उनके ग्रन्थ को देखना आरम्भ किया। भावी गुरुकुल जेहलम के आचार्य श्री रामदेव जी भी आचार्य प्रवर श्री मुक्तिराम के चरणो मे वही विराजमान थे। श्री रामदेव जी ने स्वामी सत्यप्रकाश जी "वैदिक यति" से पूछा—"यति जी ! आप सम्पूर्ण काशी छाँट आये हो। कलकत्ता घूम कर आये हो, दिल्ली और लाहोर जैसे विशाल नगरो का निरीक्षण करते हुए यहाँ पधारे हो। मै आप से यह पूछना चाहता हूँ कि क्या इन इतने विद्या केन्द्रों मे आप को ऐसा विद्वान् नही मिला, जो आपके ग्रन्थ का परीक्षण कर देता ?" यह सुनकर स्वामी सत्यप्रकाश ने गम्भीर रहस्य अभिव्यक्त करते हुए कहा—"विद्वान् तो संसार मे बहुत है, परन्तु पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय जैसा कोई नही। प्राय: पण्डित लोग स्वार्थी, अपमान करने वाले, त्रुटि न होने पर भी त्रुटि निकालने वाले, दूसरे की लघुता ही सिद्ध करने वाले, अहङ्कार से जकडे हुये, सत्य को असत्य तथा असत्य को सत्य सिद्ध करने वाले, सहृदयता और सौहार्द्य से पृथक्, प्रेम से अतिशय दूर, काले अक्षरों मे निष्णात, पर आत्मीयता से वञ्चित हैं। पण्डित मुक्तिराम जी इन समस्त दोषों से मुक्त है। ये कोई त्रुटि निकालते भी हैं, वो उसे हित और प्रेम से समझाते है। इनका वचन हृदय में शीतलता ला देता है। इसलिये ये पुण्य पुरुष है और मै यहाँ आया हूँ।"

उपद्रव

इस मुस्लिम बहुल प्रदेश मे हिन्दुओ की सङ्ख्या आटे में नमक जैसी भी नही थी। फिर भी वहाॅं के मुसलमानो की गृध्र दृष्टि उन पर निरन्तर विद्यमान रहती थी। सवत् १६८८ के इस वर्ष जम्मू और काश्मीर राज्य मे मुस्लिम कान्फ्रेस के प्रधान शेख अब्दुल्ला ने व्यापक उपद्रव करवा दिए। पुन्छ और मीरपुर प्रदेश संरक्षण के लिए पुकार उठे।

राजनीति में भावी पाकिस्तान को प्रश्रय देने वाले ब्रिटिश शासक ऐसे अवसर पर कैसे संरक्षक बन सकते थे..........

उन उपद्रवों की आशङ्का जब रावलपिण्डी की ओर भी दिखाई देने लगी, तब पण्डित रामप्रसाद विस्मिल और चन्द्रशेखर आज़ाद के क्रान्तिकारी दलों में किसी समय कार्य करने वाले श्री जगदीशचन्द्र जी शास्त्री को, जो क्वेटा बलोचिस्तान में उन दिनों सम और आयुर्वेदिक चिकित्सा के साथ-साथ सामाजिक कार्य भी कर रहे थे, शीतकालिक दो मास के लिए श्री आचार्य मुक्तिराम जी ने अपने गुरुकुल में बुलाया। जब शास्त्री जी का आचार्य प्रवर से साक्षात् हुआ तो उन्होंने पूछा "आप इकट्ठी दो प्रणलिकाओं का अनुज्ञा पत्र क्यों लेकर आए हैं ?" आचार्यवर्य ने कहा—"हम जङ्गल में रहते हैं और चहुँ ओर उपद्रवी यवनों की बस्ती है। कुछ दिनों से मुस्लिम लीगी मौलवी इधर घूम रहे हैं, वे मुस्लिम जनता को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़का रहे हैं। यही कारण है कि हमें आत्मरक्षा पर ध्यान देना आवश्यक हो गया है और आपको यहां बुलाया गया है। आप प्रतिदिन सायङ्काल के समय पश्चिम दिशा की घाटी में आग्नेय अस्त्रों के चलाने की शिक्षा दीजिए।" शास्त्री जी के स्वीकार कर लेने पर सबसे प्रथम श्री उपाध्याय जी ने ही प्रणलिका द्वारा लक्ष्य भेदन का अभ्यास प्रारम्भ किया और उन्होंने चौथे ही दिन दस में से नौ लक्ष्य बींध दिये। पश्चात् ब्रह्मचारियों को भी इस कार्य-क्रम में सम्मिलित किया गया। पारस्परिक वार्तालाप में शास्त्री जी को ज्ञान हुआ कि श्री उपाध्याय जी क्रान्तिकारी विचारधारा के महान् समर्थक हैं और सरदार भगतसिंह के साथी श्री सुखदेव को क्रान्तिमार्ग का प्रदर्शन कराने वाले हैं। शास्त्री जी गुरुकुल वासियों को शिक्षा देने के पश्चात् क्वेटा लौट गए। पश्चात् कुछ ही दिनों में दानगली के मार्ग से होकर बहुत से हिन्दू गुरुकुल चोहाभक्ताँ में अपनी दुःख भरी घटनायें, एवं यवनों के अत्याचार सुनाते हुये रावलपिण्डी नगर में आने लगे। उपद्रवी भी मारकाट करते हुवे पीछे से बढते हुवे निरन्तर चले आ रहे थे और वे इस प्रकार रावलपिण्डी नगर तक पहुँच गये। वह चिनगारी बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ी कि वहाँ हिन्दुओं का ठहरना कठिन हो गया। हिन्दू-मुसलिम उपद्रव इससे पहले भी हुये थे; पर उनका इतना व्यापक भयङ्कर रूप नहीं था, जो इस वर्ष देखने को मिला। गुरुकुल के समीपवर्ती क्षेत्र, महाराज के प्रभाव से पहले

उपद्रवो मे अछूते थे, किन्तु इन उपद्रवो से वहाँ की भी बचने की कोई आशा लक्षित न होती थी। इसमे विशेष कारण यह था कि आक्रान्ता लोग दूसरे प्रान्तो के थे, जो अपने आवेश मे किसी की न सुनते थे।

दगो के इन दिनो में दो मुसलान सूबेदारो की माताओ ने अपने पुत्रों से कहा, कि श्री पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय आचार्य गुरुकुल चोहाभक्ताँ को आग्रहपूर्वक हमारी ओर से जाकर निवेदन कर दो, कि महाराज, इन दिनो मे हमारे घर आकर आनन्द पूर्वक रहे। माताओं के इस आग्रह को जब उन्होने पण्डित जी से कहा, तो उन्होने उत्तर मे कहा—"माता जो से जाकर कह देना, --ऐसे समय में मुझे जो उन्होने स्मरण किया है, इसके लिए उन्हे धन्यवाद है। मै ईश्वर को मानता हूँ। मुझे अपने लिए किसी प्रकार का भय नही और न ही चिन्ता है। मेरे साथ यहाँ और बहुत सी व्यक्तियाँ है, वे सब यहाँ मेरे आश्रय पर ही है, अत. उनका ध्यान रखना मेरे लिए आवश्यक है। इस प्रकार उनके इस आग्रह को उन्होने सधन्यवाद लौटा दिया।

ब्रिटिश शासक भारत के क्रान्तिकारी दल को पकडने में अपना बुद्धि कौशल प्रदर्शित कर रहे थे। स्वतन्त्र भारत के पुजारी सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की फासी की देश मे बहुत चर्चा थी। क्रान्तिकारी दल के सदस्य श्री जगदीगचन्द्र जी शास्त्री अपने सरक्षण के निमित्त अज्ञात वास करने गुरुकुल चोहाभक्ताँ पहुँचे। समय सायङ्काल का था। आचार्य प्रवर अग्निहोत्र तथा सन्ध्या से निवृत्त होकर ज्यो ही यज्ञवेदि से उतरे कि उनकी दृष्टि जगदीशचन्द्र शास्त्री पर पडी। वे एकपदे उनके निकट गये और शास्त्री जी से गम्भीर होकर बोले—"चार दिन हुए गुरुकुल की झड़ती (तलाशी) हुई है। जेहलम पार करके आरक्षी ने दो ग्रामो मे अनेक लोगो का प्रग्रहण किया है। पता लगा है कि हमारे गुरुकुल पर ब्रिटिश आरक्षी का कडा और गुप्त पहरा लगने वाला है, अत. आप इसी समय (रात के आठ बजे) अमुक स्थान पर चले जावे और स्वयं को गुप्त रखकर भिक्षा वृत्ति से दिन काट ले। एक मास के पश्चात् मुझे रात के समय अमुक स्थान पर मिलना।" शास्त्री जी ने आचार्य मुक्तिराम का आदेश शिखामणि समझा और चलते हुए एक सौ रुपए देते हुए कहा—"ये रुपए मेरे परिवार तक पहुँचवाने का कष्ट कीजियेगा।" शास्त्री जी चले गए।

श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय बहुत गम्भीर पुरुष थे। वे रुपये

पहुँचाने जैसे कार्यों में दूसरे का साहाय्य नहीं ले सकते थे। उन दिनों शास्त्री जी के घर पर आरक्षी का कड़ा पहरा भी था। वहां बाहर से कोई उनके बच्चों को देखने तथा उनकी पत्नी को ढारस बंधाने एवं सहायता करने का साहस नहीं कर सकता था। महान् आश्चर्य का विषय है कि उपाध्याय जी स्वयं उनके परिवार को सान्त्वना देने और आर्थिक सहयोग करने जंडियाला गुरु पहुँचे।

इन्हीं दिनों जेहलम में लाला लालचन्द्र जी, अपना कूप, उद्यान और कुछ कमरे पण्डित मुक्तिराम जी को गुरुकुल के कार्यार्थ दान देने की इच्छा व्यक्त कर रहे थे। महाराज ने उनकी इस दान-भावना का आदर करते हुए उनके इस दान को स्वीकार कर लिया, और वहाँ एक नवीन गुरुकुल की स्थापना कर दी। दंगों का प्रभाव उधर नहीं था, अतः गुरुकुल चोहाभक्ताँ की छोटी कक्षाएँ वहां भेज दी गईं। जेहलम गुरुकुल की स्थापना का शुभ दिवस २५ मार्च १९३२ था। श्री पण्डित मुक्तिराम जी गुरुकुल चोहाभक्तां के आचार्य तो थे ही, गुरुकुल जेहलम के कुलपति भी निर्वाचित हुए। श्री रामदेव जी ने गुरुकुल जेहलम का आचार्य पद स्वीकार किया। उसके सञ्चालन का सम्पूर्ण भार आचार्य रामदेव जी पर ही था। वे पण्डित मुक्तिराम जी से सम्बन्ध बनाये रखते थे और वार्षिक उत्सवों में विशेषरूपेण श्री उपाध्याय जी को निमन्त्रित करते थे।

सन् १९३२ के इन दंगों में यवनों ने आर्य संन्यासियों को भी अपनी पहुँच से बाहर नहीं रहने दिया। श्री स्वामी शान्तानन्द जी भूतपूर्व श्री सन्त मङ्गलदेव जी, जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द जी से संन्यास दीक्षा ग्रहण की थी, और जिनके पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय भी योगाभ्यास विषय में निकट सम्पर्की थे, सहसा ग्राम के निकट अपनी कुटिया बना कर योगाभ्यास कर रहे थे। यह स्थान तहसील कोटली से २० सहस्र-मान दूर जिला मीरपुर में था, उसे भी यवनों ने जला डाला। वह स्थान बहुत रम्य पर्वतीय प्रान्त था। तीन कुटियायें भी बन चुकी थीं और अधिक बनाने की भी योजनायें थीं। वहां पत्थरों के नीचे ऐसी गुफायें थीं, जहाँ यवनों की बरसात के दिनों में सहस्रों भेड़ें इकठ्ठी रहा करती थीं। कुटिया के समक्ष चीड़ के विशाल वृक्ष थे। स्वामी शान्तानन्द जी ने भटक-भटक कर अनेक योगियों से योग सीखा था, और वे उस एकान्त स्थान में साधना में लीन थे। छह महीने का वर्ष में मौन भी रखते थे। नियत समय पर वहां मेला भी लगता था। श्री पण्डित

मुक्तिराम जी उपाध्याय भी वहाँ जाया करते थे। स्वामी शान्तानन्द जी को अहिंसा सिद्ध थी। वे पहले प्रणलिका चलाने मे बहुत कुशल थे। आकाशविहारी चिडिया को उड़ते-उड़ते मार देते थे। इस कर्म से घृणा हो जाने पर योग पद्धति में पड़कर वे इतने अहिंसक बने और इतने अहिंसा मे प्रतिष्ठित हुये कि चिड़ियाये उनके सिर, कन्धे और गोद में आकर बैठ जाया करती थी, वे उन्हे उसी अवस्था मे दाना खिलाते थे, और फिर जाने के लिए कह देते थे।

अहिंसा की साधना में वे बर्र (ततैय्या वा भिर्ड) के छत्तो मे अपना हाथ दे देते थे, पुनरपि कोई बर्र उनको न काटती थी।

स्वामी शान्तानन्द जी का दगो के दिनो मे कुटिया के जल जाने से सब आनन्द किरकिरा हो गया। श्री तुलाराम जी नम्बरदार ने उनके लिये ये कुटियाँ बनवाई थी।*

दगा समाप्ति पर वे पुन. अपना स्थान सभालने गये, किन्तु वहाँ फिर उनका मन नही लगा और श्री प० मुक्तिराम जी उपाध्याय के यहाँ गुरुकुल चोहाभक्ताँ आ विराजे और वही एक गुफा मे रहने लगे।

समान व्यवहार

सब ब्रह्मचारियो का रहन-सहन, खान-पान आदर्श आचार्य श्री प० मुक्तिराम जी समान रखने की चेष्टा किया करते थे। भीमसेन जी के पिता जी ने उनकी सेवा मे निवेदन किया—"मेरा पुत्र तो घी खाये बिना नही रह सकता।" आचार्य प्रवर ने प्रत्युत्तर मे कहा—"हमारे यहाँ भेद रखकर अकेले खाने का नियम नही है।" उनसे यह पूछे जाने पर कि यदि सबको मिले, तब तो खा सकता है? आचार्य वर्य के मुखारविन्द से उत्तर आया "हाँ, तब हो सकता है।" यह सत्परामर्श लेकर भीमसेन के पिता जी ने ५० रुपये मासिक से सब विद्यार्थियो के लिये घी का प्रबन्ध कर दिया और सब के साथ-साथ भीमसेन को भी समान घी मिलने लगा।

विद्यार्थियो के आचार्य प० मुक्तिराम जी भी सभो के साथ बैठ कर समान भोजन किया करते थे। वे अपने भोजन मे किञ्चिन्मात्र भी

---

*श्री तुलाराम को अब कटुवा मण्डल मे भूमी दी गई है।

भिन्नता नहीं होने देते थे। इस प्रकार ब्रह्मचारियों की समता की माला में उन्होंने स्वयं को भी पिरो रक्खा था।

करुणा निधान आचार्य मुक्तिराम

श्री पं० मुक्तिराम जी उपाध्याय अपार दया से अभिषिक्त थे। डेरा इस्माइल खाँ के निवासी श्री विश्वनाथ जी शास्त्री बताया करते थे कि श्री पण्डित जी से एक भक्त ने नये जूते ले लेने की प्रार्थना की जो उन्होंने स्वीकार करली। वह उन्हें आपणिक के यहाँ ले गया और उसने पण्डित जी के लिये पादरक्षिका दिला दी। उसने उस का मूल्य ढाई रुपया मागाँ, किन्तु उस भक्त ने न्यून मूल्य देकर श्री पं०मुक्तिराम जी को वे पादत्राण पहना दिये। दयालु पं० मुक्तिराम जी को यह बात खटक रही थी कि इस आपणिक को न्यून मूल्य मिला है और इसने कुछ भी लाभ नहीं उठाया। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह हमें उपानत् देकर प्रसन्न दिखाई नहीं दिया। थोड़ी दूर आकर करुणा प्रेरित श्री मुक्तिराम जी ने उक्त भक्त से कहा "उसको पूरा मूल्य ही दे दो वह दुःखी जान पड़ता है।" उसकी सन्तुष्टि के लिये पूरे ढाई रुपये जब उक्त महानुभाव ने उस आपणिक को दे दिये, तब पर-दुःखानुभवी श्री उपाध्याय जी ने सुख का अनुभव किया।

भोजन की अवेक्षा

श्री पं० मुक्तिराम जी को जब कभी गुरुकुल से बाहर किसी कार्यार्थ जाना पड़ता था तो रूखा सूखा जैसा भी मिल गया वे खा लिया करते थे। अनेक बार वे प्रभात वेला में वासी रोटियाँ ही खाकर चल देते थे। श्री पं० जीवाराम जी पटियाला निवासी ने गुरुकुल में दस मास तक निवास करते हुये उनके इस अत्यन्त सरल स्वभाव को अपने हृदय में अङ्कित किया एवं अपने सुपुत्र ब्रह्मदत्त और देवदत्त को उन्हीं के चरणों में शिक्षण के लिये अर्पित कर दिया।

रावलपिण्डी में कालेज विभाग और गुरुकुल विभाग की आर्य समाजों को एक सूत्र में ग्रथित करने के लिए श्री पण्डित जी ने प्रभूत प्रयत्न किया। फलस्वरूप कुछ मतभेद होते हुए भी दोनों समाज एक हो गए और उनके सम्मिलित सत्सङ्ग भी होने लगे।

आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी साधको की प्रगति का भी अवलोकन करते थे, कृपाराम ब्रदर्स के श्री रामलाल साहनी शनै-शनैः ५ मिनट से लेकर एक घण्टे तक उपासना के लिए बैठने लग गए, जिसमे उन्हें कुछ-कुछ शान्ति भी प्राप्त होने लगी। महाराज उन्हे "ओ३म्" जप करने पर अधिक बल देते थे।

लाला रामलाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती धनदेवी जी भी इस ओर प्रवृत्त होने का प्रयत्न करने लगी। इस प्रकार पति-पत्नी के एक समान विचार हो जाने से घर मे शान्ति का प्रसार दिखाई देने लगा।

सन्ध्या के तीन अङ्ग—

आचार्य मुक्तिराम जी ने महर्षि दयानन्द और ऋषि समुदाय के मन्तव्यो मे रहकर 'सन्ध्या के तीन अङ्ग' नामक एक लघ्वाकृति पुस्तिका का निर्माण आश्विन सवत् १९९० अक्टूबर सन् १९३३ मे किया, जिसके पृष्ठो की सख्या १२८ थी। उसमे प्राणायाम-अघमर्षण और मनसा परिक्रमा के मन्त्रो की आध्यात्मिक विस्तृत व्याख्या की। पुस्तिका मनसा-परिक्रमा के मन्त्रो की व्याख्या करके समाप्त करदी गयी। सन्ध्या से आत्मा और मन दोनो का ही सम्बन्ध है, किन्तु आचार्य प्रवर ने प्रासङ्गिक रूप से आत्मा का विवेचन करके विस्तार से मनोनिग्रह के उपायो का, एव मन की परिवर्तित होती जाती अवस्थाओ का विश्लेषण किया। मन के अपने कारण मे लीन हो जाने के पश्चात् अवशिष्ट रहे अकेले आत्मा का आश्रय क्या होगा, इस उपस्थान के विषय को उन्होने अपनी लेखनी का अङ्ग नही बनाया। इसकी उस समय उन्होने आवश्यकता भी नही समझी थी, क्योकि अध्यात्म दृष्टि से उन मन्त्रो के अथ स्पष्ट ही थे।

इस सन्ध्या के तीन अङ्ग, का प्रकाशन कृपाराम ब्रदर्स रावलपिण्डी ने अपने व्यय से किया था।

साधारण वेष में छिपा हीरा

'सन्ध्या के तीन अङ्ग' पुस्तक को लिखने से पूर्व आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी ने कितना इस पर मौलिक विवेचन कर लिया था यह नीचे की पङ्क्तियो से स्पष्ट है—

प्रभु आश्रित आर्य सन्यासी महात्मा टेकचन्द जी को आर्य स्वराज्य सभा पञ्जाब (लाहौर) ने सन् १९३३ के अप्रैल वैशाखी से तीन मास

के लिए कथा करने अवैतनिक रूप से आमन्त्रित किया। सभाधिकारी कथा की अब तक समुचित व्यवस्था न कर सके थे; अतः महात्मा जी वहां निकम्मे बने केवल समय अतिवाहित कर रहे थे। ऐसी अवस्था में उनका मन उचाट हो गया। रविवार उन्हें एक ऐसा दिन अवश्य मिल जाता था, जिस दिन वे आर्य समाज बच्छोवाली में पहुँचकर सत्सङ्ग का लाभ उठा समय का सदुपयोग कर लेते थे। एक रविवार के लिए उन्होंने समाचार पत्र में पढ़ा कि आर्य समाज अनारकली में प्रिन्सिपल साईंदास जी एम० ए० का व्याख्यान होगा। गुणग्राही विवेकशील श्री महात्मा टेकचन्द जी, जहाँ से भी कुछ मिलने की आशा होती थी, लेने की चेष्टा करते थे। प्रिन्सिपल महोदय से अभी तक उनका साक्षात्कार न हुआ था; अतः दर्शनों के अभिलाषी भी थे। महात्मा जी के गुरुदेव, ब्रह्मसमाज मन्दिर में विराजमान थे, वे उनके दर्शन करके निकटवर्ती अनारकली समाज में पहुँच गए। प्रिन्सिपल महोदय का भाषण सुनने के लिये समाज मन्दिर के विशाल भवन में श्रोतृजन बिखरे-बिखरे बैठे थे। कतिपय सज्जन बाहर भी उपस्थित थे।महात्माजी व्याख्यान भवन मेंपीछे-पीछे जा बैठे। मध्य में अतिशय अवकाश था। भजन आदि हो चुकने के पश्चात् कार्यकर्ता मन्त्री ने घोषणा की कि आज श्री प्रिन्सिपल महोदय रुग्ण हैं, वह नहीं आ सके। उनके स्थान पर सङ्केत करके कहा कि पण्डित जी का उपदेश होगा।

जब वे विद्वान् उठे तो उनका अधोवस्त्र एक छोटी धोती, गले में साधारण-सी बण्डी और सिर पर टोपी थी।

उस समय महात्मा टेकचन्द जी के मन में आया—"यह साधारण वेश में हैं, क्या इन्हें समय बिताने के लिये उपदेश-वेदी पर बैठा दिया गया है?" कुछ ही क्षणों में भाषण-वेदी से उस अपरिचित व्यक्ति द्वारा भाषण के आरम्भ करने का धीमा स्वर उन्हें सुनाई दिया। पश्चात् अवधानता से दिये कानों में जब पूरे शब्द सुनाई देने लगे, तब पता चला कि ये मनसा परिक्रमा मन्त्रों की व्याख्या करने लगे हैं। महात्मा जी इससे पूर्व एक वर्ष के अदर्शन-मौन में सुलतानपुर नगर में साधनारत रहते हुए इन्हीं मन्त्रों की आध्यात्मिक स्पष्ट व्याख्या को अवगत करने का प्रयास कर चुके थे, पर वे उनकी पहुँच से बाहर ही रहे। हां 'योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः, के मनन का उन्हें साक्षात् फल प्राप्त अवश्य हुआ था) अतः वे अपने इच्छित दुरूह मन्त्रों की व्याख्या सुनने के लिये तुरन्त आगे बढ़कर मध्य में रिक्त स्थान पर जा

बैठे, जिससे शब्द भी भली प्रकार सुनाई दे और दर्शन भी ऐसे महान् आत्मा के करते रहे। व्याख्यान में एक-एक मन्त्र के आध्यात्मिक रहस्य को खुलते देख महात्मा जी गद्-गद् हो उठे और पुनः-पुनः नत मस्तक होकर मन ही मन उस अद्वितीय विभूति को नमस्कार करते रहे। उनकी प्रसन्नता की इयत्ता न थी—जिन मन्त्रो को वे एक वर्ष के मौन व्रत मे सोचते-विचारते रहे और कुछ समझ न पाये थे, इस अदृष्टपूर्व महात्मा ने आज एक घण्टे के भीतर ही उनकी आँखे खोल दी। व्याख्यान-समाप्ति के पश्चात् उन्होने पूछा—"ये कौन महात्मा हैं, जो इस वानप्रस्थ जैसे साधारण वेश में अपने गहन ज्ञान राशि को छिपाये हुए हैं ?" एक व्यक्ति के मुख मे उत्तर मिला—"गुरुकुल पोठोहार के आचार्य श्री पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय।" यह सुनते ही महात्मा टेकचन्द जी ने समीप पहुँचकर श्री उपाध्याय जी के चरणो मे नमस्कार किया और कहा—"भगवन् ! आपका नाम और प्रसिद्धि तो पहले ही सुनी थी, पर आज तो सभी रूपो में आपके दर्शन करके कृतार्थ हो गया हूँ।"

उसी दिन सायङ्काल आचार्य मुक्तिराम जी का व्याख्यान आर्य-समाज गवालमण्डी मे होना था, अत. प्रभु आश्रित महात्मा टेकचन्द जी वहाँ भी पहुँच गए। अघमर्षण मन्त्रो की व्याख्या सुन कर वे और भी अधिक श्री उपाध्याय जी के गुणगरिमा मे अनुरक्त हो गए। व्याख्यान-समाप्ति पर रात्रि के समय जब वे ब्रह्म-समाज मन्दिर में अवस्थित अपने पूज्य गुरुदेव जी के चरण शरण में गये तो उन्होने पूछा—"क्या प्रिन्सिपल महोदय के दर्शन कर आये ?" महात्मा जी ने उत्तर में कहा—"नही महाराज ! आज तो मैंने वह अनुपम ज्ञानराशि प्राप्त किया है, कि यदि मुझे यहां इसी प्रकार आर्य स्वराज्य सभा द्वारा आयोजित कथा के प्रबन्ध के अभाव मे निकम्मा बैठे रहना पडे, तो मुझे यत्किञ्चित भी घाटा नही है।" गुरुवर ने पूछा—"क्यों ? तुम तो उचाट हो गये थे और कह रहे थे कि मेरा समय व्यर्थ जा रहा है।" महात्मा जी ने प्रतिवचन में कहा, "महाराज, आज मै उन मन्त्रो की व्याख्या और ऐसा उत्तम रहस्य सुन पाया हूँ, जो मुझे जीवन में कभी भी अवगत न होता।" गुरुराज पूछ बैठे, "कौन थे वे ?" शिष्य ने प्रकर्ष हर्ष मे उत्तर दिया—"पूज्य पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय ! गुरुकुल पोठोहार चोहाभक्ताँ के आचार्य ! !" इतना सुनते ही वे उछल पड़े और कहा—"वे तो बड़े विद्वान् दर्शनाचार्य हैं। त्यागी,

तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ हैं। तुम्हारे भाग्य उदय हुए थे; मेरे समीप आने का तुम्हें फल प्राप्त हो गया।"

बहुमुखी जीवन

आचार्य ण्डित मुक्तिराम जी का जीवन चहुँ ओर अग्रसर था। वे कृपाराम ब्रदर्स परिवार के कुल पुरोहित भी थे। समय-समय आवश्यकतानुसार वे बालकों, देवियों तथा पुरुषों को धर्म भावना से भावित करते रहते थे। कुल पुरोहित जी ने देवियों से कहा—"घर का सम्पूर्ण कार्य देवियों को स्वयं अपने हाथों से करना चाहिये। अतिसमृद्ध एवं प्रतिष्ठित कुल होते हुये भी देवियों ने गुरुप्रवर के आदेश को अङ्गीकार किया और सब कार्य स्वयं करने आरम्भ कर दिये। उन्हीं के सम्पर्क का प्रभाव था कि इसी परिवार के लाला रामलाल जी, सीताराम जी और मोतीराम जी तीनों भ्राता प्रेम-सूत्र में आवद्ध हुये एक दूसरे के सहयोगी वनकर अपना सुखमय जीवन बिता रहे थे।

इसी वर्ष श्री मोतीराम जी स्वर्गमन कर गये। आमन्त्रित किये जाने पर श्री उपाध्याय जी गुरुकुल से, दु:ख सन्तप्त परिवार को सान्त्वना देने के लिये उनके घर पहुँचे। पतिवियुक्ता सुशीला को धैर्य बंधाते हुए कुलगुरु ने कहा, "देवि, जीवन में एक दिन यह भी देखना पड़ता है। मानव-जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है? यह समझ लेने से मनुष्य बहुत से कष्टों को तिरोहित करता चलता है। मानवीय जीवन की समस्याओं का समाधान मौलिक रूप में संस्कृत साहित्य से अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता। आप थोड़ा संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दीजिए।" इस प्रकार शान्तिप्रदायिनी वाणी से सान्त्वना प्रदान करके कुलपुरोहित श्री मुक्तिराम उपाध्याय गुरुकुल चले आये और उन्हों ने अपने शिष्य श्री सत्यदेव जी को वहां संस्कृत पढ़ाने के लिए भेजना आरम्भ कर दिया। सुशीलादेवी उस ग्रीष्म ऋतु में अपने व्यापारिक केन्द्र कोहमरी के शीतल प्रदेश में गयी हुई थीं। मध्य-मध्य में जाकर श्री उपाध्याय जी भी उनकी गतिविधि का परिज्ञान करते रहते थे। यह क्रम निरन्तर छः मास तक चला। उन्हों ने सुशीला को इस योग्य वना दिया कि वे अध्ययन के अतिरिक्त अपना अधिक काल प्रभु-भजन में भी व्यतीत करने लगीं। द्वितीय विवाह का प्रोत्साहन श्री उपाध्याय जी स्त्री-पुरुषों में से किसी को भी नहीं देते थे।

विवाह पर आशीर्वाद

श्री विश्वदेव जी ने अपने गुरु श्री मुक्तिराम जी को बन्नू मे आमन्त्रित किया और निवेदन किया कि श्री पूर्णचन्द्र जी विद्यालङ्कार के इस विवाह अवसर पर वर-वधू को अपना आशीर्वाद देकर कृतार्थ कीजिए।

आचार्य मुक्तिराम जी ने वधू को, जिसका नाम दयावती था, सम्बोधित करते हुये कहा—

दये ! लोग कहते हैं—यह शुभ घड़ी है।
घड़ी शुभ तो है-कष्ट दायक बडी है॥
हटाना ही पड़ता है, दीपक यह घर का।
हुआ आज यह धन धनी के हवाले॥
धनी अब संभाले वा ईश्वर सँभाले॥*

महाविद्यालय आयोग के सदस्य

सम्वत् १९९१ मे विश्वविद्यालय कांगड़ी महाविद्यालय आयोग के आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी सदस्य थे। आयोग द्वारा उस समय महाविद्यालय सम्बन्धी अनेक विषयो पर विचार विनिमय हुआ। उस अवसर पर श्री मुक्तिराम उपाध्याय जी ने अपने मौलिक विचार इस रूप मे प्रकट किये कि मेरा विचार है—आर्य समाज को अपने प्रचार कार्य के लिए जैसे उपदेशको की आवश्यकता है, वैसे आर्य सस्थाओं से मिल नही रहे। अत. महाविद्यालय के दो विभाग किये जावे—एक विभाग मे प्रचारक प्रस्तुत किये जावे, जो कि आवश्यक विभिन्न धर्म-संस्थाओ के सिद्धान्तो और ग्रन्थो के बहुज्ञ होते हुए अपने पक्ष के गम्भीर विद्वान् हो। इस विभाग को नि.शुल्क रखने का प्रयत्न किया जावे। दान का धन इसी विभाग पर व्यय किया जावे। दूसरे विभाग

---

*श्री पूर्णचन्द जी विद्यालङ्कार को भी श्री मुक्तिराम जी ने अन्त:स्पर्शी अत्युत्तम शब्दो मे सन् १९३४ मे होने वाले इस पाणिग्रहण सस्कार पर आशीर्वचन कहे थे, जो प्रयत्न करने पर भी हमे नही मिल सके। दयावती को दिये गए हृदयद्रावक आशीष् की भी ये कुछ ही कड़िया उपलब्ध हो सकी हैं। शेष वे भी नही मिली। श्रीजनमेजय जी विद्यालङ्कार इन कड़ियो को गुन-गुनाते रहते हैं, उन्ही की कृपा से ये हमे मिली हैं।

को शिल्पादि योजनाओं द्वारा लौकिक दृष्टि से चलाया जावे और उस विभाग का सम्पूर्ण व्यय छात्रों से लिया जावे। यह सामान्य मतभेद है। परन्तु वर्तमान प्रतिवेदन वर्तमान व्यवस्था में ही कुछ संशोधन करने के लिए प्रस्तुत किया गया है अतः, इसके जिन विभागों से मैं सहमत नहीं हूँ, उन्हें भी बता देना चाहता हूँ।

विद्यालय व्याकरण—ग

यह ठीक है कि व्याकरण पर इतना बल देने की आवश्यकता नहीं कि ब्रह्मचारी उसी के शङ्का समाधान में जीवन भर लगा रहे परन्तु, मूल व्याकरण की अवेक्षा भी उसे किसी वैदिक तत्त्व के स्वतन्त्र निर्णय में प्रगल्भ न होने देगी। वह दूसरों के किए शब्दार्थ के आधार पर अपनी भित्ती खड़ी करेगा। स्वतन्त्र अर्थ करने का उस में सामर्थ्य न होगा। यह तथ्य अप्रकट नहीं है कि गुरुकुल के स्नातकों का व्याकरण वर्तमान व्यवस्था में भी निर्बल रहता है। साहित्य और व्याकरण का एक पत्र हो जाने पर व्याकरण और भी निर्बल हो जावेगा। अतः मेरी सम्मति है कि व्याकरण का स्वतन्त्र पत्र रहे।

(घ) ऋषिदयानन्द ने वेदाङ्ग प्रकाश उन बड़ी अवस्था वाले साधारण लोगों के लिये लिखा है, जो यथाक्रम विद्यालयों में नहीं पढ सकते। उन्हें प्रकरणानुसार बोध कराने के लिए उनका यह उपक्रम था। व्याकरण में मर्मज्ञ बनने वाले गुरुकुल के छात्रों के लिए पाठविधि की व्यवस्था उन्हों ने सत्यार्थप्रकाश में अष्टाध्यायी क्रम से लिखी है। अष्टाध्यायी समझने की योग्यता सम्पादन करने के लिए कुछ आवश्यक साहित्य और व्याकरण के नियम ब्रह्मचारी को पढ़ा देना चाहिए परन्तु, मुख्यतया व्याकरण का अध्ययन अष्टाध्यायी क्रम से ही होना चाहिए। इस क्रम द्वारा पढ़ाने से थोड़ा परिश्रम करना पड़ता है और स्मरण अधिक रहता है।

महाविद्यालय

बाहर के विद्यार्थियों का आचार-व्यवहार बहुधा गिरा हुआ होता है। ऐसे विद्यार्थियों के प्रविष्ट हो जाने से आर्थिक दृष्टि से तो लाभ अवश्य है, परन्तु ब्रह्मचारियों के आचार पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। परिपक्व अवस्था में वाचस्पति कक्षा के ब्रह्मचारियों पर ऐसा प्रभाव पड़ने की आशङ्का नहीं की जा सकती। महाविद्यालय के आरम्भ में अभिनवोदित

काल के ब्रह्मचारियों की अधोगामिनी प्रवृत्तियों के नियन्त्रण की विशेष आवश्यकता है। बाहर के विद्यार्थियो की थोड़ी विपरीत भावनाएँ भी इसी काल मे उन के लिए विषोपम सिद्ध होगी। अत. मेरे विचार मे महाविद्यालय के आरम्भ मे बाहर के विद्यार्थियो का लेना ठीक न होगा।

रहन-सहन

"उपानच्छत्रधारण वर्जय" जूते और छाते का धारण न करो, इत्यादि कर्म शृङ्खला का उपदेश विद्यार्थियो के तपोमय तथा सादे जीवन के निर्माणार्थ ही है। अत: संस्कार विधि मे लिखे गये ये तथ्य, इसी प्रकार के अन्य उपदेश ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य कर्म तथा धर्म है। गुरुकुल मे इन नियमों की अवक्षा न होनी चाहिए।

यदि ··तो मेरा मस्तक आर्य समाज के विद्वानों के समक्ष सदा झुकता रहेगा

सन् १९३४ में श्री चिरञ्जीव लाल गुप्त* सीमान्त प्रान्त मे आर्य-समाज रिसालपुर (पेशावर मण्डल) के प्रधान थे। श्री पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय, रिसालपुर में पधारे। सीमान्त प्रान्त मे श्री उपाध्याय जी की पर्याप्त साधु-चर्चा रहा करती थी। रिसालपुर मे वैदिक प्रचार करने के पश्चात् श्री पण्डितराज ने प्रधान श्री चिरञ्जीव लाल गुप्त को सेवा करने का अवसर प्रदान किया। श्री उपाध्याय जी ने रात्रि को केवल दुग्ध-पान किया। दिसम्बर का शैत्याधिक्य था; अतः गुप्त जी ने पलङ्ग पर गदेला बिछा कर तुलाई रख दी। महाराज ने उन्हे सानन्द कहा–"इन सब की कोई आवश्यकता नही है, उठा लो।" केवल पतली-सी गरम चादर नीचे और ऊपर रख ली। गुप्त जी ने समझा कि तुलाई नही लेना चाहते, अतः कम्बल रख दिया, परन्तु तपस्विराज ने उसे भी स्वीकार नही किया। पश्चात् उन से कहा कि मुझे प्रात: शीघ्र उठने का स्वभाव है। श्री गुप्त जी [प्रा]त. ४ बजे उठा करते थे, उस दिन ३॥ बजे उठ गए। पण्डित जी [ने] जब अपना दण्ड कमण्डलु उठाया तो गुप्त जी भी साथ जानें को समुद्यत हुए, किन्तु उपाध्याय जी ने साथ चलने की अनुमति न दी। [म]हाराज के चले जाने पर श्री लाला काशीराम जी ने अपने पुत्र से

*वर्तमान मे श्री चिरञ्जीव लाल गुप्त, 'आर्य भवन' अम्वाला छावनी।

पूछा—"पण्डित जी कहां हैं ?" गुप्त जी ने निवेदन किया—"बाहर चले गए हैं।" इस पर पिता ने उन्हें बहुत भर्त्सना की और कहा कि एकाकी उन्हें क्यों जाने दिया ? वे दोनों डेड़ घण्टे तक महाराज की प्रतीक्षा करते रहे; पर वे न आए। गुप्त जी ने स्नानार्थ उष्णजल करा रक्खा था। इतने में उपाध्याय जी आए। गुप्त जी ने कहा—"महाराज, बहुत देर लगा दी।" इस पर उन्हों ने कोई उत्तर न दिया। फिर प्रार्थना की गयी कि गरम जल उपस्थित है, स्नान कर लीजिए, तो महाराज ने उन्हें अपना गीला अंगोछा दिखाया और कहा, "मैं कलपानी नदी में स्नान कर आया हूँ।" गुप्त जी को अतिशय आश्चर्य हुआ और बोले—"महाराज ! उसका जल तो बहुत शीतल है। वह कङ्करीली पत्थरीली छोटी सी नदी है, जो सम्परित्यक्त और उद्ध्वस्त स्थल से होकर प्रवाहित होती है। महाराज ने उपदेश रूप में उत्तर दिया—"यदि हम ही तप का जीवन व्यतीत नहीं करेंगे, तो गृहस्थों को उपदेश नहीं कर सकते।" इससे गुप्त जी और विशेषत: उन के पिता जी पर अतिशय प्रभाव पड़ा; क्योंकि लाला काशीराम जी आर्य विद्वानों के कट्टर विरोधी थे। महाराज के जीवन को देख कर उन के मुख से निकला—"यदि आर्य समाज में ऐसे तपस्वी विद्वान् हैं, तो मेरा मस्तक आर्य समाज के विद्वानों के समक्ष सदा झुकता रहेगा।" उस के पश्चात् जब कभी श्री पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय वहाँ पधारे, श्री लाला काशीराम जी ने अतिश्रद्धा और उत्कृष्ट भावना से उन की सेवा की। इन घटनाओं से श्री गुप्त जी भी प्रभूत प्रभावित हुए।

सिंह कुछ नहीं कहेगा

गुरुकुल पोठोहार चोहाभक्ताँ की प्रबन्ध-समिति ने आचार्य मुक्तिराम जी को उन के योगाभ्यास में विशेष सुविधा पहुँचाने के लिये हज़ारा के अन्तर्गत नथिया गली के निकट डूँगा गली में एक आश्रम बनवा दिया था। गुरुकुल के सभा मन्त्री श्री चिरञ्जीत राय साहनी वहाँ जाते रहते थे। उन्हों ने अनेक बार श्री आचार्य जी को ब्रह्म-समाधि में लीन देखा। जब भी कभी गुरुकुल के कर्मों से श्री आचार्य जी को अवकाश उपलब्ध होता था, वे डूँगा गली पहुँच जाते थे।

इन्हीं दिनों श्री विद्याधर जी स्नातक एक वैद्य को साथ लेकर श्री पण्डित जी के दर्शनार्थ डूँगा गली आश्रम पर गए। श्री वैद्य जी ने पर्वत से कुछ ओषधियाँ उखाड़नी थीं। पण्डित मुक्तिराम जी भी साथ चल

दिए। ओषधि उखाड़ते समय वैद्य जी को एक सिंह दीख पड़ा। उन्हो ने योगिवर मुक्तिराम से कहा—"आचार्य जी, सिंह है; अब क्या करे ?" स्नातक जी भी सुन कर देखते ही सन्त्रस्त हो गए। अहिंसा प्रतिष्ठ श्री मुक्तिराम जी ने कहा—"भयभीत मत होओ, अपना कार्य करते रहो, यह कुछ नही कहेगा।" सचमुच वह सभी कुछ देखता हुआ अपने मार्ग से चला गया।

भगवद्गीता-भाष्यम्

आचार्य मुक्तिराम जी इसी सुरम्य एकान्त पर्वत स्थान पर गीता का भाष्य कर रहे थे। इस गीता भाष्य पर अनेक लेखकों ने लेखनी उठाई, जिस से निम्न बाते स्पष्ट होती हैं—

१—एक विद्वान् के पश्चात् दूसरे विद्वान् द्वारा भाष्य का किया जाना पहले भाष्य मे कमी का द्योतक है।

२—जितने भी भाष्य है, वे सब वेदानुमोदित नही है।

३—सभी टीकाकार श्री कृष्ण और अर्जुन सवाद के अन्तस्तल तक नहीं पहुँच सके हैं।

अथवा

१—गीता का शुद्ध रूप जो कृष्ण और अर्जुन का सवाद था, वह नही रहा है और उस मे ऐसे विषयो का भी समावेश कालान्तर मे किया जाता रहा है, जो वास्तविक सवाद से बहुत दूर चला गया है।

२—समाविष्ट विषय को भी यथोचित सम्मान देने के लिए प्रत्येक टीकाकार ने प्रयास किया है; अत सब गुड गोबर एक हो गया है।

३—सभी भाष्यकर्ता भिन्नमतावलम्बी होने से उस की सङ्गति अपने पक्ष मे लगाते रहे हैं।

४—यथार्थता एक ही वस्तु है, इसे समझने का किसी ने कष्ट नही किया।

दार्शनिक प्रतिभा के आलोक में आचार्य श्री मुक्तिराम जी ने जब सम्पूर्ण गीता को तर्क कषवटी पर कसा, तो उन्हे सन्तोष न हुआ और गीता के श्लोको मे सन्देह होने लगा कि वर्तमान गीता में अवश्य कुछ मिलावट है, जिस ने योगिराज कृष्ण तथा तीक्ष्ण बुद्धि अर्जुन के संवाद

को बिखेर दिया है; अतः उन्हों ने इस के परीक्षण के लिए गीता के स्रोत महाभारत का गम्भीर विवेचन किया और अनेक स्थल दोष-दूषित होते हुए भी केवल 'सृष्टि रचना' के विषय को ही अपनी लेखनी का प्रतिपाद्य विषय निर्धारित किया, जिस का निरूपण उन के गीता भाष्य में स्पष्ट है। इस प्रकार महाभारत में पर्याप्त प्रक्षेप देखकर उन्होंने गीता में भी प्रक्षेप होने का निर्णय किया और गीता के पूर्वापर विरोधी श्लोकों को तर्क पर चढ़ा कर असङ्गत श्लोकों का बहिष्कार कर दिया।

जब यह भाष्य विक्रम सवत् १९६२ में रावलपिण्डी निवासी श्री लाला हरिराम जी साहनी के सुपुत्र श्री लाला रामलाल जी तथा सीताराम जी के व्यय से प्रकाशित होकर जनता के समक्ष उपस्थित हुआ, तो सनातन नामधारी हमारे बन्धुओं के बीच खलबली मच गई और वे पण्डित मुक्तिराम जी के प्राण लेने तक को उतारू हो गए। उस समय सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा के महोपदेशक श्री यदु-कुल भूषण शास्त्रार्थ महारथी ने उद्घोषित किया—"ऐ सनातनियो! यह हमारे लिए बहुत लज्जा की बात है कि गीता के अङ्ग-भङ्ग करने वाला मनुष्य हमारे देखते हुए जीवित है।" आचार्य श्री मुक्तिराम जी ने भी समाचार पत्रों में निकलवा दिया कि जैसा उन्हें सूझा है, लिख दिया है; यदि यह नहीं रुचता है, तो इसका प्रतिवाद कर दो।

वे अपने 'भगवद्गीता—भाष्यम्' का एक पुस्तक लेकर यदुकुल भूषण जी के यहाँ भी पहुँच गए और कहा—"प्राण लेने की धमकियाँ देना ब्राह्मणों का काम नहीं है। ब्राह्मणों का तो काम है—लेखनी का उत्तर लेखनी से देना। गीता से प्रक्षेप रूप कूड़ा करकट निकालने के लिए मैंने जिन तर्कों और प्रमाणों का आश्रय लिया है, आप उन का प्रत्याख्यान कर दीजिए।" पर उन तिलों में तेल नहीं था। यह सुनते ही उन के मन में साँप लेट गया और उपाध्याय जी चले आए।

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री वैद्य विद्याधर जी से भी पं० मुक्तिराम जी का अत्यधिक सम्पर्क था। दोनों अध्यात्मोन्नति पर घण्टों वार्तालाप करते रहते थे। बिजनौर वासी योगी रामकरण दास के दर्शन श्री वैद्य विद्याधर जी ने भी किए और उन्हों ने वैद्य जी के पिता जी के सम्बन्ध में अपना पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध था ऐसा बताया।

पातञ्जल योगाश्रम

आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी का झुकाव ब्रह्मोपासना की ओर बहुत अधिक था, अब वे योगाभ्यास में अति विशेष प्रगति कर लेना चाहते थे; अतः गुरुकुल भवनों से १ सहस्रमान (किलोमीटर) दूर थापर नाले के ऊपर तीन कुटियाएँ बनाई गईं। वे इतनी ऊँची थी कि जिनमें भली प्रकार खडा हुआ जा सके। एक मे श्री आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय, दूसरी मे स्वामी शान्तानन्द जी, तीसरी मे पं० विद्याधर जी स्नातक नियत समय पर योगाभ्यास मे रत रहने लगे। भागवन्ती देवी जी भी वही गुरुवर्य मुक्तिराम जी के निर्देशानुसार अभ्यास किया करती थी।

तीन कुटियो के नाम 'निर्वाण कुटीर' 'मुक्तकुटीर' और 'शान्तकुटीर' थे। स्वामी शान्तानन्द जी का सम्बन्ध महाराजा नेपाल से था, उन्हो ने ही ये कुटियाएँ बनवाई थी। चारों ओर लगे हुये सहस्रो केलो के वृक्ष कुटियाओ को रम्य बना रहे थे। वहाँ पहुँचते ही चित्त प्रसन्न हो जाता था। साथ में गुरुकुल की गो-शाला थी। स्वामी शान्तानन्द जी ने तो एक मात्र अपना ध्येय योगाभ्यास करना ही बना रक्खा था। इस कारण वे शीतकाल में अस्सी-अस्सी प्राणायाम पर्वतीय योगी के निर्दिष्ट विधि से एकवारगी कर लेते थे। द्वितीय समय में भी उन के प्राणायामों की सङ्ख्या इतनी ही रहती थी। उन दिनो उन के भोजन मे दो सौ पचास धान्य (ग्राम) तक घृत और छोटा-सा रोटी का टुकड़ा होता था। यही कारण था कि उन के शरीर मे मल अधिक नही बन पाता था।

इस प्राणायाम के कारण उन की आँखा का ज्योति बहुत बढ गया था। उन का देह पर्याप्त स्फूर्तिमान्, लघु तथा नीरोग हो चुका था। यष्टिसदृश काय होते हुए भी उस मे शक्ति का सञ्चय कही अधिक था।

श्री मुमुक्षु मुक्तिराम जी ने अपने शिष्य विद्याधर जी से कहा कि एक ही कार्य होगा—अभ्यास वा संस्था का सञ्चालन। अब उत्तम यह ही है कि गुरुकुल का कार्य किसी अन्य को दे दिया जावे। इस प्रकार परस्पर परामर्श करके उन्हो ने आचार्य रामदेव जी को पत्र लिखा कि गुरुकुल जेहलम को किसी योग्य व्यक्ति के अधिकार में देकर आप यहाँ आ जाइए और इस सस्था को सँभाल लीजिये। श्री रामदेव जी के आ जाने और कार्य सँभाल लेने पर ब्रह्माभिलाषी श्री मुक्तिराम जी

प्रातः ३ से ६ बजे तक तथा सायं ४ से ६ बजे तक अभ्यासलीन रहने लगे। श्री विद्याधर जी का भी यही क्रम था। दोनों गुरु-शिष्य विद्यार्थियों को केवल नाममात्र ही पढ़ाते थे। अपने अनुकूल इस प्रकार से वातावरण बना लेने पर भी कठिनता उपस्थित यह हुई कि श्री आचार्य रामदेव जी का जनता में परिचय न होने के कारण, वे कभी पण्डित मुक्तिराम जी को पूछते और कभी श्री विद्याधर जी स्नातक को। अवरोध किये जाने पर भी वे गुफा पहुँच ही जाते थे। इस विघ्न बाधा से परित्राण पाने के लिए वे आचार्य रामदेव जी को गुरुकुल पूर्णरूपेण सँभलवा कर वहाँ से कहीं गुप्त स्थान में जाने की योजना बना ही रहे थे कि श्री रामदेव जी बोले—"आप लोगों की यहाँ प्रवृत्ति है। अब भी सब लोग आप को ही पूछते हैं। मेरे निकट कोई नहीं ठहरता। मुझे आप लोगों ने व्यर्थ में ही बुला लिया है।" योग-निष्ठ श्री मुक्तिराम ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—"आप अभी नए आए हैं, हम पुराने हैं; इस कारण लोग हमें पूछते हैं, आपकी कठिनता को हम शीघ्र ही सुलझा देना चाहते हैं। आप निश्चिन्त होकर कार्य करते रहिए।" योगाभिलाषी मुक्तिराम जी विद्याधर जी को लेकर कहीं जायें, इससे पूर्व ही आचार्य रामदेव जी स्वयं अन्य मनस्क होकर गुरुकुल जेहलम चले आए और अभ्यास में पुनः अन्तराय उपस्थित हो गया। फिर भी उन्हों ने योगाभ्यास द्वारा अनेक सूक्ष्म तत्त्वों का अव-लोकन करते हुए यह निर्धारण कर लिया कि बाह्य सुख से पृथक भी एक अलौकिक दिव्य सुख है, जो दिन-रात एक योगी को जीवन्-मुक्ति की दशा में स्थिर रखने में समर्थ है। उन्हें उस समय यह दृढ़ विश्वास हो गया कि इस दशा को वे अपने इसी जीवन में भली प्रकार अमिट रूप में प्राप्त कर सकेंगे। इसकी चर्चा उन्होंने श्री जीवाराम जी आदि भक्तों से की थी।

सूक्ष्म तत्त्वों के साथ-साथ उन्हें यह भी स्पष्ट भान हो गया कि जो महानुभाव अपनी योग प्रक्रिया में अनेक वर्ष व्यतीत कर देने पर भी कृत कार्य नहीं होते, उन में कहीं-न कहीं निर्बलताएँ अवश्य हैं, जिन का दिग्दर्शन आदर्श उपासक मुक्तिराम जी ने 'सन्तवाणी' शीर्षक वाली कविता में किया है, जो निम्न है—

सन्त-बाणी

ईश-मिलन की चाह में, छोड़ दियो घर बार।
तजी न मन की वासना, घर कहाँ सिरजनहार॥

पढ्यो वेद छह् शास्त्र भी, बैठ्यो आसन मार।
श्रद्धा माता के बिना, मिले न जगदाधार॥
जो दारा-सुत-धाम-धन, तन सब देहि भुलाय।
ईश-प्रेम वह मन्त्र है, ताते प्रभु मिल जाय॥
सब प्राणी निज मीत सम, जाहि निहारे मीत।
ताके मन मे जानियो, प्रभु की गाढ़ी प्रीत॥
चन्दन डोडी पीटकर, नाहि बुलावत जाय।
सद्गुण का महिमा बड़ा, सांपहुँ लिपटे आय॥
स्वर्ण-रजत–पाषाण मे जो व्यापक नादान।
वे ही तुझ में व्यापते, क्यो ढूँढे पाषाण॥
प्राणवाही धनुष बनाय कै, चढे आत्मा बाण।
हो प्रविष्ट तू प्रभु मे, सावधान ढिग आन॥
जाको मन निर्मल भयो, मिट्यो वासना-जाल।
सावधान वह आत्मा, जानो भयो निहाल॥
दो लकड़ी की रगड़ ते, विकशे ज्योति, महान्।
ज्यो तन नाम निघर्ष ते, ज्योति, जगावे ध्यान।

इन्ही दिनो आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय ने बियालीस दिन का उपवास भी किया। इस उपवास मे अधिक से अधिक काल उन्हो ने अपनी गुफा मे ही व्यतीत किया।

आर्य समाज चोहाभक्ताँ ने इन उपवास के दिनो मे उन से व्याख्यान के लिए निवेदन किया, तो उपाध्याय जी सायङ्काल अश्व पर आरूढ होकर व्याख्यान के समय से पाँच मिनट पूर्व वहाँ पहुँचे और उन्हो नें समय पर व्याख्यान आरम्भ कर दिया। एक घण्टे मे चार-पाँच मिनट शेष थे कि उन्हे शरीर मे कुछ कष्ट-सा प्रतीत हुआ और बोले—"मैं अधिक नही बोल सकता, क्योकि मैं व्रती हूँ।" पश्चात् उन्होने आधा घण्टा विश्राम किया और गुरुकुल लौट गए।

श्री मुक्तिराम जी ने यह समझ लिया था कि बिना योग-साधना के न अपना कल्याण है और न दूसरों का। अतः वे बाल्यकाल से ही गुरुकुलीय अपने विद्यार्थियो को योग-साधना का स्वभावी बनाने के लिए उन्हे ४ बजे उठा देते थे। आधा घण्टे मे शौच और दन्तधावन से निवृत्त हो जाने पर उन्हे वे एक घण्टे के लिए ध्यान में बैठा देते थे। इसके उपरान्त व्यायाम, स्नान तथा सन्ध्या-हवन हुआ करता था।

पातञ्जल-योग में निर्दिष्ट प्राणायामों की योगी मुक्तिराम जी द्वारा विशेष व्याख्याएँ

"तस्मिन्त्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः=प्राणायामः।"

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास अर्थात् प्राण का अन्दर लेना और प्रश्वास अर्थात् प्राण का बाहर निकालना, इन दोनों की गति का विच्छेद अर्थात् निरोध सुगमता से हो जाता है और इसे ही प्राणायाम कहते हैं।

"बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।"

(बाह्य) श्वास को बाहर निकाल कर रोकना।

(आभ्यन्तर) श्वास को अन्दर लेकर रोकना।

(स्तम्भवृत्ति) जिस अवस्था में है, उसी अवस्था में रोक देना, यह तीन प्रकार का प्राणायाम है। 'देशकालसंख्याभिः परिदृष्टः' ये तीनों ही देश, काल और संख्या के विचार से देखे जाने चाहिएँ।

देश

तीनों ही प्राणायामों में श्वास के स्थान की परीक्षा करनी पड़ती है। वह स्थान अन्दर और बाहर दो प्रकार का है। जब श्वास को बाहर निकाल देते हैं तो, उस का प्रभाव बाहर के वायु-मण्डल पर पड़ता है। यह प्रभाव कितनी दूर तक पड़ा, यह ही बाहर के स्थान की परीक्षा है। जब श्वास को बाहर निकाल देते हैं तो, उस कमी को पूरा करने के लिए नाड़ी मण्डल में ठहरा हुआ प्राण फेफड़ों की ओर चलना प्रारम्भ हो जाता है। इस के चलने से नाड़ियों में चीटियों के चलने जैसा अनुभव होता है। यह अनुभव कितनी दूर तक हुआ? यह ही आभ्यन्तर देश का दर्शन है।

काल

तीनों प्राणायामों में काल का निरीक्षण मिनटों के आधार पर किया जाता है। बाह्य और आभ्यन्तर प्राणायाम में यह भी देखना चाहिए कि श्वास के अन्दर लेने में कितना समय लगा और निकालने में कितना? निकालने और लेने में जितना समय अधिक लगेगा, उतना अच्छा है। इसी प्रकार तीनों ही प्राणायामों में (कुम्भक)

श्वास को रोके रहने में भी जितना अधिक समय लगे, उतना अच्छा है। परन्तु इस अभ्यास को धीरे-धीरे बढाना चाहिए, नही तो हानि हो सकती है।

सङ्ख्या

जितने श्वास हम साधारणतया लिया करते हैं, हमारा एक कुम्भक उन कितने श्वासो का हुआ, इस प्रकार से तीनो प्राणायामों का निरीक्षण किया जाता है।

दीर्घ सूक्ष्मः

इन तीनों ही प्राणायामो मे प्राण की दीर्घता और सूक्ष्मता को भी देखना पडता है। हमे ऐसा अभ्यास हो जाना चाहिए कि श्वास लेते और निकालते समय अधिक से अधिक सूक्ष्म करके अर्थात् धीरे-धीरे लिया और निकाला जावे। इस प्रकार वह दीर्घ भी हो जावेगा और सूक्ष्म भी। कुम्भक के दीर्घ करने मे भी यही अभ्यास सहायक है।

आभ्यन्तर

आभ्यन्तर प्राणायाम मे भी श्वास को लेते समय बाहर के और श्वास भरने के पश्चात् भीतर के स्थान पर पडते हुए वायु के प्रभाव को इसी प्रकार देखना पडता है।

स्तम्भवृत्ति

स्तम्भवृत्ति मे केवल अन्दर के देश का दर्शन करना होता है। क्योकि उस में न तो प्राण को बाहर निकाला जाता है और न अन्दर लिया जाता है। एकदम रोक देने से यदि फेफडे मे उस समय वायु थोड़ा था, तो नाड़ियो मे प्रविष्ट हुए सूक्ष्म प्राण की गति फेफडे की ओर हो जाती है और यदि अधिक था तो उसी वायु मे से कुछ नाड़ियो की ओर जाना आरम्भ कर देता है। इस प्राण का प्रभाव ही अन्दर की नाड़ियो पर पड़ता हुआ देखना पडता है।

"बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः"

बाहर और अन्दर के दोनो स्थानो के ऊपर की दृष्टि से देखे हुए विषय को छोड़ कर आगे की भूमिकाओ में प्रवेश करना चौथा प्राणायाम है।

इस प्राणायाम में भूमिकाएँ अर्थात् अवस्थाएँ बदलनी पड़ती हैं। अवस्थाओं का ही नाम भूमिका है। भूमिका को बदलने के लिए पहली भूमिका को छोड़ कर दूसरी भूमिका में जाना पड़ता है। पहली भूमिका के छोड़ने का नाम ही आक्षेप है। पहले तीनों प्राणायामों में देश, काल और सङ्ख्या से जिस विषय का अनुभव कर लिया है, उसे छोड़कर उस से आगे की दूसरी और फिर तीसरी भूमिका में प्रवेश करने के लिए अभ्यास करना इस प्राणायाम का लक्ष्य है। इस प्राणायाम में और पहले तीन प्राणायामों में भी विषय अर्थात् प्राणायाम के प्रभाव का दर्शन करने के लिए मन के योग की भी आवश्यकता पड़ती है और इस चौथे प्राणायाम में तो एक भूमिका को छोड़कर दूसरी भूमिका में जाने के लिए मन के योग की बहुत ही आवश्यकता है। अवस्था के पकाने और बदलने में जितना अधिक मानसिक प्रभाव से काम लिया जावेगा, उतनी ही शीघ्र सफलता होगी।

यहाँ अभ्यासी को यह ध्यान रखना चाहिए कि पहली भूमिका के पक जाने पर और आगे बढ़ने की पूरी शक्ति और साहस पाने पर ही उसे आगे बढ़ाना चाहिए, अन्यथा हानि की सम्भावना है।"

इसी वर्ष आचार्य मुक्तिराम जी अनुसन्धाता श्री भगवद्दत्त जी के स्थान लाहौर माडल टाउन में पधारे। परस्पर शास्त्र चर्चा आरम्भ हो गई। देश की गिरती दशा भी उन की चर्चा का विषय था। उस सौहार्द-समन्वित वार्तालाप में श्री भगवद्दत्त जी ने उन के ज्ञान को बहुत व्यापक पाया। तब अनुसन्धाता वरेण्य ने पूछा—"आप देश-हित का इतना ध्यान रखते हैं, उस के मार्ग में जो मतमतान्तरों की बाधाएँ हैं, उन को अपसारित करने के लिए कोई काम होना चाहिए, इस में आपका क्या वक्तव्य है ?" पण्डित मुक्तिराम जी ने उत्तर दिया—"विना योग-साधना के यह सम्भव नहीं।" "फिर वह योग-साधना कौन करेगा ?" इस पर मुक्तिराम जी ने कहा—"हमारे आश्रम में रहने वाले ब्रह्मचारी व्यासदेव जी को योग में बहुत रुचि है, उन से हम पर्याप्त आशाएँ रखते हैं।" इस प्रकार वार्तालाप करते हुए अल्पकाल ही हुआ था कि आर्य जगत् के महाविद्वान् गुरुकुल ज्वालापुर के स्नातक श्री उदयवीर जी वहाँ अकस्मात् आ पहुँचे। बहुत देर तक देखते रहने पर भी वे यह न समझ सके कि श्री भगवद्दत्त जी के साथ कौन वार्ता कर रहा है। अवसर पा कर श्री उदयवीर जी ने श्री भगवद्दत्त जी से पूछा—"ये कौन हैं ?" उन्हों ने कहा—"आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी"

यह सुन कर श्री उदयवीर जी अति विस्मित हुए और झटिति आचार्य मुक्तिराम जी के निकट आ कर बोले,—"मैं तो आप को पहचान ही न सका था। १२, १३ वर्ष पूर्व तो आप का बहुत दिव्य शरीर था, जिस की किसी से उपमा नहीं दी जा सकती थी और अब आप वृद्ध-समान दीख पड़ते हैं।" उन्हों ने कहा—"मैं कुछ समय से योग-साधना में सलग्न हूँ। उस से यह शरीर अति कृश हो गया है। उदयवीर जी! शरीर तो ऐसे ही उतार चढ़ाव पर चलते रहते है। वास्तव मे आत्मा की ओर ही मनुष्य का ध्यान होना चाहिए, जो वह स्वयं अपने आप है।"

अद्भुत् चिकित्सक

सन् १९३५ मे श्री चिरञ्जीत राय साहनी की गर्दन किसी प्रकार टेढी हो गई। उन्हो ने आङ्गलचिकित्सको से पर्याप्त चिकित्सा कराई किन्तु कोई लाभ न हुआ। अन्तत निराश हो वे मरण-वेला की प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें अपने बचने की कोई आशा प्रतीत न होती थी। उन्हो ने ऐसे विकट समय में अपने श्रद्धेय गुरु (पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय) को बुलाया और घर पर हवन करा देने की प्रार्थना की।

यज्ञवेदी पर महाराज बैठ गये और साहनी जी की पत्नी बैठ गईं। यज्ञ के अन्त मे साहनी जी ने गीता की कथा करने के लिए महाराज से विनति की। महाराज ने वह भी कर दी। वे पलग पर लेटे-लेटे यज्ञ और कथा से स्वय को परिपूत कर रहे थे। दूसरे दिन भी यही क्रम रहा। जब तीसरा दिन आया तो महाराज ने कहा—"यह क्या हो रहा है? यज्ञ करने का क्या निमित्त है? कब तक ऐसा चलेगा? कुछ पता भी तो लगे।" साहनी जी ने तथ्य प्रकट किया और कहा—"अब मैं मरूँगा, मेरे बचने की कोई आशा नही है।" आचार्य मुक्तिराम जी—"ऐसे क्यो अधीर होते हो, तकिया उठाओ और इधर आओ। इस अलमारी के समीप खडे हो जाओ।" खडे हो जाने पर "तकिया नीचे रख दो। दर्पण मे अपना मुख देखो।"

श्री साहनी जी ने यथानिर्दिष्ट मार्ग का पालन किया।

मुक्तिराम जी—"तकिये को 'नमस्ते' करो।"

साहनी जी—"यह तो जड वस्तु है इसे 'नमस्ते' कैसे करूँ? यह तो आर्य-समाज के सिद्धान्तो के विरुद्ध है।"

मुक्तिराम जी—"बस, ननु-नच मत करो। जैसे कहूँ, वैसे करो। अब तुम्हारो चिकित्सा हो रही है।"

साहनी जी—"तकिये को हाथ जोड़ लेते हैं।"

मुक्तिराम जी—"ऐसे नहीं। माथा लगाओ।"

साहनी जी ने ज्यों ही तकिये पर माथा रक्खा। श्री मुक्तिराम जी ने एक दम उन के पैर पकड़ कर ऊपर उठा दिये। सिर तकिये पर और पैर श्री मुक्तिराम जी के हाथों में।

साहनी जी—"पण्डित जी! यह क्या। आप महापुरुष हैं, मेरे पैर आपके.........हाथों.........हाथों में लगने से मुझे पाप लगेगा। मेरे पैर छोड़ दीजिये।"

मुक्तिराम जी—"बस, किन्तु-परन्तु मत करो, चिकित्सा हो रही है। शान्त रहो।"

साहनी जी शान्त हो गये। कुछ देर तक यह नाटक होता रहा। इस प्रकार प्रतिदिन श्री उपाध्याय जी यही शीर्षासन स्वयं कराने लगे। पन्द्रह बीस दिन में उन की गर्दन सर्वथा ठीक हो गई और कोई औषध नहीं दिया।

इस घटना का प्रभाव साहनी जी पर यह हुआ कि पण्डित मुक्तिराम जी के दूर रहते हुए तो वे रुग्णता में चिकित्सकों से औषध लेते थे, गुरुदेव के सम्मुख आते ही उसे छोड़ उन्हीं से औषध ग्रहण करने लगते थे।

पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय की यशः विश्रुति सुन कर एक दिन मियांपुर के प्रसिद्ध वैद्य श्री तोताराम जी भी दर्शनार्थ आए और पारस्परिक वार्तालाप से वे श्री उपाध्याय जी के भक्त बन गए। वे ईश्वर विश्वासी थे, अतः योगाभ्यासी श्री शान्तानन्द जी के सम्पर्क में पहले से ही गए हुए थे; किन्तु श्री उपाध्याय जी के दर्शनों से उन्हें आत्मिक भावनाओं में और भी अधिक बल प्राप्त हुआ।

आर्य विद्वानों के सम्मान कर्ता

श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी आर्योपदेशक, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर, ने षड्दर्शन समन्वयार्थ एक निबन्ध लिखने में अपना पग आगे बढ़ाया जिस की प्रशंसा में आचार्य मुक्तिराम 'उपाध्याय' ने लिखा,

"श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी का "षड्दर्शन समन्वय" नामक बृहत् निबन्ध मैंने उन्ही के श्री मुख से सुना। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए आर्य समाज के क्षेत्र में यह प्रथम ही प्रयत्न है। पण्डित जी महाराज ने अपने इस निबन्ध मे विवादास्पद सभी विषयों पर प्रकाश डाला है। दर्शनो के विवादास्पद स्थलो के समन्वयार्थ आप ने जो कल्पनाएँ की है और सूत्रार्थ किए हैं, वे सर्वथा नवीन हैं। विशेष रूप से ब्रह्मसूत्रो के ऊपर से मायावाद के आवरण को दूर करने में तो आप सर्वथा सफल हुए है और यह आप के गम्भीर स्वाध्याय का परिणाम है। मुझे यह लिखने मे कोई सङ्कोच नही है कि आप के इस निवन्ध ने समन्वय का मार्ग खोल दिया है। आप ने प्रमाणवाद, प्रकृतिवाद, जीववाद, ईश्वरवाद आदि विषयो को प्रत्येक दार्शनिक की परिभाषा मे अक्षण्ण रखते हुए समन्वित किया है। आप का यह समन्वय आर्य स-ाज के सिद्धान्त को दृष्टिकोण मे रखते हुए सम्पादित हुआ है। ऐसे सुन्दर निबन्ध के लिए मैं आप को वार-वार साधुवाद देता हूँ। इस निबन्ध का प्रकाशन जहाँ सिद्धान्त की दृष्टि से आर्य समाज के लिए हितकर होगा, वहाँ विद्वानो का इस विषय के परिशीलन मे सहायक भी होगा।"

इन दिनो आचार्य मुक्तिराम जी का निवास कोहमरी मे श्री लाला रामलाल जी साहनी की कोठी में था। जब यह सम्मति महात्मा हसराज जी को दिखाई गई, तो उन्हो ने प० बुद्धदेव जी मीरपुरी से कहा—"पडित मुक्तिराम जी की सम्मति के पश्चात् अव किसी भी विद्वान् के समीप जाने की आवश्यकता नही रही, क्योकि वे ही आधुनिक आर्य जगत् मे महाविद्वान् है।"

उस समय के आर्य ससार मे श्री प० मुक्तिराम जी-उपाध्याय का विद्वन्मण्डल के मध्य कितना उच्च आसन था कि अच्छी सूझ-बूझ के पुरुष भी उन को छोड़ कर आगे चलने मे अपने को अपूर्ण समझते थे। इसी कारण श्री बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार भी अपना शतपथ का भाष्य लेकर आचार्य मुक्तिराम जी के चरणो मे पहुँचे। आचार्य श्रेष्ठ ने उसे भली-भाँति पढकर कहा—"इस मे कोई सन्देह नही कि आप का भाष्य शतपथ अरण्य में एक नवीन पथ बनाने का उपक्रम है। आप का निर्दिष्ट किया हुआ यह पथ यद्यपि नवीन नही, परन्तु वर्तमान वैदिक साहित्य के क्षेत्र मे इस का आविर्भाव नि सन्देह सर्वथा नवीन है। आप ने इस आविष्कार मे एक विशिष्टता और भी की है और वह

यह कि अपने सहकार्य अन्य प्राचीन विशेषज्ञों के ही साधनों का प्रयोग कर साध्य में सर्वथा नवीनता को जन्म दे दिया है। मध्यकालीन साम्प्रदायिकों से आविष्कृत जिन विषय-कण्टकों के भय से वैदिक यात्री शतपथ की यात्रा से कतराया करते थे, आशा है, आप की पथ शोधन प्रक्रिया उन सब का उन्मूलन कर शतपथ में एक सुगम्य महापथ बनेगी। मैं आप के इस अत्यन्त आवश्यक कार्य की समाप्ति के लिये मङ्गल-कामना करता हूँ।''

उस समय के गम्भीर मान्य लेखक जहाँ साहित्य-सर्जन के क्षेत्र में उतरे हुए थे, वहाँ आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी के हृदय में भी यह भाव उत्पन्न हुआ कि वे भी इस साहित्य-क्षेत्र में जनता की कुछ सेवा करें; अतः उन्हों ने महात्मा हंसराज जी से कहा—''आप इस गुरुकुल का प्रबन्ध सँभाल लें, तो मुझे कुछ अवकाश उपलब्ध हो जावे। उस स्थिति में, मैं कुछ लिखने का कार्य करना चाहता हूँ।'' महात्मा हंसराज जी ने उत्तर में कहा—''मैं गुरुकुल के प्रबन्ध को तो सँभाल नहीं सकता। अपने स्थान पर आप एक प्रबन्धक रख लीजिए। सौ रुपए मासिक वेतन हम उसे देते रहेंगे। इस के अतिरिक्त आप द्वारा लिखित पुस्तकों के प्रकाशन का सम्पूर्ण व्यय भी हम दे देंगे।''

इस आश्वासन के पश्चात् आचार्य मुक्तिराम जी ने प्रबन्धक के अन्वेषण का यत्न किया; किन्तु अनुकूल प्रबन्धक की अनुपलब्धि से वे निराश ही रहे और लेखन का कार्य खटाई में ही पड़ा रहा।

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की अर्ध शताब्दी

आर्य वीर आचार्य मुक्तिराम जी को सभा अधिकारियों ने विशेष रूप से लाहौर में आमन्त्रित किया। सन् १९३६ के १३ अप्रैल को विशाल मण्डप में जो उन का भाषण हुआ, उसे फंफूड़ा (मेरठ) निवासी श्री सोमाहुति भार्गव अपनी टिप्पणी में अङ्कित करते जा रहे थे। उन्हों ने 'शन्नो मित्रः शं वरुणः' मन्त्र से ईश-प्रार्थना करते हुए विशाल-जन समूह को सम्बोधित करते हुए कहा—''आर्य जाति को अपनी विचार-परम्परा प्रदान करने वाले भद्र पुरुषो! मैं इस अवसर पर आप सब के सम्मुख शिवसङ्कल्प-मन्त्रों का अर्थ कहने को उपस्थित हुआ हूँ। आप प्रतिदिन सन्ध्या करते हैं और सन्ध्या पर बैठते ही अनेक महानुभावों के मन में वे ही दृश्य आने लगते हैं, जिन में आप अब तक

के जीवन मे व्यापृत रहे है। भेद केवल इतना ही हुआ कि जब तक आप सन्ध्या मे न बैठे थे, यदि ये विचार उस समय होते, तो आप उन विचारो के अनुरूप उन सस्कारो को अपनी कार्य-प्रणाली से मूर्त्त रूप दे सकते थे और अब जब कि आप सन्ध्या के पवित्र आसन पर आसीन हैं, आत्मा वैसा करने को साक्षी नही होता। परन्तु मैं यहाँ यह भी कह दूँ कि इस का नाम सन्ध्या करना भी तो नही है। जिस महत्त्वपूर्ण कार्य का सम्पादन करने के लिए आप सन्ध्या के आसन को अलङ्कृत करने चले थे, उस मे चिरकाल से पालित कार्य-सस्कार अन्तःकरण से निकल-निकल कर विघ्नकारी बन रहे है और आप का समय नष्ट कर रहे हैं, तो क्या समय का सदुपयोग करने के लिए आप सन्ध्या को छोड़ कर किसी कार्य मे संलग्न हो जावे। नही, ऐसा करना अपने मानव-जीवन को गहन अज्ञानान्धकार मे पहुँचाना है, ऐसा करने से वह स्रोत बन्द हो जावेगा, जिस से यह मानव जीवन विकास मे आया है। हाँ, यह भी ध्यान रहे—यह जीवन तब तक विकसित नही होता, जब तक इसकी पीठ के पीछे उत्तम सस्कार के वायु का प्रबल धक्का न हो। वह कैसे सम्भव है, इस का उपाय यह ही है कि सन्ध्या मे बैठने पर जो भी विचार उत्पन्न हो, हम उसे हटाते चलें। इस प्रतिबन्ध को हटाने का नाम ही उपासना है। तो रुकावट हुई—अन्तःकरण मे पड़े सस्कार। ये ही मल-विक्षेप वा आवरण भी कहे जाते हैं। किन्तु अन्तः-करण का यह वास्तविक स्वरूप नही है। वास्तविक स्वरूप तो इसे हम तब कहेगे, जब इस मे से मल विक्षेप वा आवरण रूप सभी सस्कार निकल जावेगे और यह सब दोषो से रहित होकर समुज्ज्वल हुआ अपने रूप मे चमकेगा। इसी लिए वेदमन्त्र मे इसे 'ज्योतिषा ज्योति.' कहा गया है। यह सब प्रकाशको का भी प्रकाशक है। पाचो ज्ञानेन्द्रियाँ विषयो का प्रकाशक है, यह उन सब का भी प्रकाशक है। यह स्वय अपने आप मे चमकता हुआ एक तत्त्व है। यह एक ऐसा अद्भुत उपकरण हमे मिला है, जो इन्द्रियो को प्रेरणा दिए बिना भी समस्त सासारिक विषयो का अकेला ही ग्राहक है। समस्त इन्द्रियाँ भी मिल-कर वह कार्य नही कर सकती, जितना यह एकाकी ही करने मे समर्थ है। वैज्ञानिक महानुभाव जिन सूक्ष्म तत्त्वो को भौतिक साधनो के द्वारा नही देख पाते, योगी-जन उन्हे मन से देख लेते है। ऐसा करने मे वे तब ही समर्थ होते हैं, जब कि मल विक्षेप वा आवरण हटाकर स्वच्छ दर्पण की भाँति उसे उज्ज्वल चमकदार बना देते हैं। आप योगियो की बात छोड़कर तनिक अपने ऊपर ही आइये, जब कि

हमारा अन्तःकरण अभी स्वच्छ पदार्थ की भांति मंजा हुआ नहीं है। आप रात में सो जाते हैं। आप ने आंखें मीचीं हुई हैं, बाजार बन्द है, सब अपने घरों में शय्याशायी हैं। आप को अपने परिवार, सम्बन्धियों का पता नहीं है और बारह बजे की उस नींद में उस सकल वाह्य जगत् को देखते हैं, जो उस समय चेष्टा नहीं कर रहा; उसे ही हम स्वप्न कहा करते हैं। अब आप बताइये, ये सब वस्तु आप को कैसे दीख रहे हैं। केवल इतना ही नहीं अपितु आप एक दूसरे की बात भी सुन रहे हैं। किसी फूल को सूंघ भी रहे हैं। खाने का प्रसङ्ग है, तो खा भी रहे हैं और उस में स्वाद भी लेते हैं। यह सब क्या है ? इससे मानना ही पड़ेगा कि प्रतिदिन के व्यवहार से जो संस्कार आप के चित्त पर अङ्कित हो गए हैं, वे ही ये सब दृश्य उपस्थित करते हैं। यह मन के ऊपर बाह्य चित्रों का चित्रण एक और भी वैशिष्ट्य लिए हुए है-वह यह कि एक चित्रकार, पटल पर जो चित्र खींचता है, जब तक उसे मिटा न लेवे, उसी पटल पर दूसरा चित्र नहीं खींच सकता। यदि उसी अवस्था में खींचे तो प्रथम चित्र बिगड़ जावेगा और खिचने वाला दूसरा चित्र भी ठीक नहीं खिचेगा; किन्तु मन के विषय में हम ऐसा नहीं कह सकते। वहाँ तो चित्र के ऊपर चित्र खिचते चले जा रहे हैं और हैं भी सारे स्पष्ट तथा पूर्ण, अधूरा कोई नहीं पर भीतर उन चित्रों को तो देखो जिन में इतनी विचित्रता है कि विना किसी के बिगाड़े सभी विद्यमान हैं। तो क्या मन के इन चित्रों को मिटाने के लिए, जिस से ये हमें नींद वा सन्ध्या में तङ्ग न करें, काम करना बन्द करके हम किसी कन्दरा में जा कर बैठ जावें। नहीं, मैं ऐसी घातक सम्मति कभी न दूंगा। कन्दरा में तो उसे बैठने का अधिकार है वा वही बैठ सकता है, जिस ने सांसारिक संस्कारों को समाप्त कर लिया हो। और उस के मन में भगवान् का संस्कार प्रबल बन गया हो। तब आप यह तर्क उपस्थित करेंगे कि यदि घर में लाहौर के सब चित्र हों, तो दीखेंगे ही, यदि आंखें बन्द न हों। इसी प्रकार सांसारिक कार्य करेंगे, तो मन पर उस के संस्कार रूप चित्र खिचेंगे ही। अतः मन को व्यापृत न करें और इसे हिलने डुलने न दें, तो न कार्य होगा और न मन पर उस के संस्कार पड़ेंगे। इस के उत्तर में मेरा निवेदन है कि हमारा यह एक ऐसा काम हुआ जैसे प्रबल वेग से चलते यन्त्र को सहसा हाथ से पकड़ कर रोकना, इस में हम अपना हाथ तुड़वा लेंगे और यन्त्र चलता रहेगा, रुकेगा नहीं। इसी प्रकार कार्य बन्द करके कन्दरा में बैठ जाने से मन रुकेगा नहीं और लाभ के स्थान में हानि ही उठावेंगे

तब इस के लिए सब से उत्तम साधन उत्तम कर्म करना ही है। यदि हम यज्ञीय कर्म-क्षेत्र के भीतर कार्य करें तो काम बन जावेगा। यह केवल मेरा निजी मन्तव्य ही नहीं है, मैं वेद के आधार पर समझाने की चेष्टा आप महानुभावो को कर रहा हूँ। जैसा कि शिव सङ्कल्प मन्त्रों मे दूसरा मन्त्र है—

'येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

इस मन्त्र में मन को अपूर्व यजमान कहा है और इसीलिए मन के लिए अगला शब्द है—'यक्ष'। जो कार्य करने की अद्भुत शक्ति रक्खेगा वह यक्ष=पूजनीय होगा ही, जिन महानुभावों ने मन के इस विवेचन को समझा है और उस से काम लिया है, वे मन्त्र की परिभाषा में कर्मठ, मनीषी और धीर कहे गए है। उत्तम कार्य न करके आगे बढने का तो कोई भी आदेश न देगा। तब ही तो गीता में कहा है—

'सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

भगवान् ने यज्ञीय कर्मों के साथ इस सृष्टि की उत्पत्ति की है। हम सम्पूर्ण सृष्टि पर दृष्टि डालकर देखे, तो प्रतीत होगा कि उस के रचने मे भगवान् का कोई भी स्वार्थ नही था। यदि इस सृष्टि का कोई प्रयोजन है, तो वह है—मनुष्यों के लिए कर्मों के अनुसार भोग की व्यवस्था करना। अतः यह ही बन्ध और मोक्ष में साधन है। महर्षि पतञ्जलि के शब्दों में भी जाति, आयु और भोग के लिए ही सृष्टि को उत्पन्न किया है। यह सब मनुष्यो के कर्मों का परिणाम है। संसार मे वृक्षों के एक-एक पत्ते का भेद भी मनुष्यों के कर्मों से बनाया गया है। जब बात ऐसी है, तो हमें इस सांसारिक बन्धन से छुटकारा पाने के लिए यज्ञीय कर्म के समर्पण होना ही पडेगा।

हवन के 'अयन्त इध्म आत्मा" मन्त्र मे कहा है कि हे जातवेद! यह आत्मा तेरा है, सब कुछ तेरा है। अतः यह कहना उचित ही होगा कि व्यक्तित्व का सम्पादन वा अर्पण करना आज तक हम नही सीखे। मान लीजिए, सभा मे एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है। इस पर विचार करने के दो पहलू है। आप का यज्ञीय कर्म आप को यहां

भी उस के उत्तम पक्ष की प्रेरणा दे रहा है। तब आप अपने आत्मा का हनन न करके पक्षपात रहित हो कर अपना विचार प्रस्तुत कर दीजिए, क्योंकि आप ने समझा है कि सभा मे रक्खा गया प्रस्ताव किसी प्रेरणा से प्रेरित हो कर ही प्रस्तुत किया गया है; अतः वह विश्व का हुआ, मेरा न रहा। यदि वह गिरता है, तो सभा का गिरता है, पारित होता है, तो भी उसी का होता है। आप निर्लेप रहे। आप का जो कर्त्तव्य था, वह आप ने कर दिया।

यदि हम अपने व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहते हैं, तो हमे समाज पर अपने को अर्पण करना पडेगा और उस का प्रथम उपाय है—यज्ञीय कर्म। इस मन को ऐसा काम देना आरम्भ करे कि वह अपना न रहे। व्यक्ति का न रहे। समाज का बन जावे।

यज्ञीय कर्म क्षेत्र में उतरते हुए पुरुष चन्दन वृक्ष के समान है जिस से सर्प लिपटे रहते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब भी कोई मानव चन्दन के समान मानवीय उज्ज्वल भावनाओं का सुगन्ध विश्वमञ्च पर खड़ा हो कर वितरण करना आरम्भ करता है तब ही दुष्प्रवृत्ति के सर्प लोग उस के चारो ओर एकत्रित हो कर सज्जनों को उस तक नही पहुँचने देते और भिन्न-भिन्न प्रकार के बखेड़े उत्पन्न कर उस की उत्तम भावनाओ को रोकते है। पर क्या सर्पों के भय से चन्दन अपनी शीतलता हर लेता है? उन्हे अपने से पृथक करता है? 'नही'। वे भी उस का सुगन्ध ग्रहण करते हैं। अतः उस यज्ञीय कर्म के पुजारी को अपने यजमान मन से यथायोग्य काम लेना आरम्भ करना चाहिए। जब यह उत्तमोत्तम कार्य कर सकता है, तो इसे दूसरे कर्म देकर अयोग्य क्यों बनाया जावे। इस के सदुपयोग से आप के हृदय में प्रज्ञा उत्पन्न होती है। इसे ही प्रज्ञान कहते हैं। यह शिवसङ्कल्प मन्त्रो मे तीसरे मन्त्र का विषय है। इस प्रज्ञान से हम तब ही कार्य ले सकते हैं जब कि उस से पूर्व मनस्तत्त्व को बन्द कर दें और मन को कार्य से उपरत कर देने का उपाय मैंने यज्ञीय कर्म बता दिया है। आप यह कह सकते है—एक ओर तो कार्य करने का निर्देश और दूसरी ओर मन को बन्द करने का उपदेश, यह परस्पर विरोधिनी वार्ता कैसे चलेगी? इस के उत्तर मे हम केवल एक ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और वह है—सत्य। आप सत्य बोलकर शान्त हो जावेंगे किन्तु मृषावादी अपने संरक्षण के निमित्त मन और वाणी का

व्यापार करता ही रहेगा। इस प्रकार सब अच्छे-बुरे कर्मो मे आप अपनी बुद्धि से विस्तार कर लेवे।

हाँ, तो जब अन्त.करण प्रज्ञान बनता है, तब ही वह प्रचेता होता है और यह मन के रुक जाने पर ही सम्भव है। 'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' इसी को कहते है। यदि आप चाहे, तो सम्पूर्ण योगदर्शन इन्ही छह मन्त्रों मे से लिख सकते हैं। संस्कृत मे एक उक्ति आती है—'न बुध्यते इत्यपि बुद्धिसाध्यम्', नही जाना यह भी बुद्धि पर ही निर्भर करता है। इस अवस्था पर पहुँच कर आप यह स्पष्ट घोष कर सकेंगे कि अब तक के सम्पूर्ण वय. मे जाना तो यह जाना कि कुछ नहीं जाना आज तक के जीवन मे बहुत धन का व्यय करके अति परिश्रम के साथ सब कुछ जाना, पर आतमा न जाना, जो कि वह स्वयं है, तो कुछ न जाना। यह भी तो बुद्धि से ही पता लगेगा। जब इतनी सूक्ष्म बुद्धि हो जावेगी, तो हम अमर ज्योतिः हो जावेंगे। कहने में नही, व्यवहार में, देखने मे, साक्षात् करने मे। अब हम भीतर के क्षेत्र में पहुँच चुके। इस क्षेत्र मे पहुँचने के लिए ही बाहर की दौड धूप अनिवार्य थी।

तीसरे मन्त्र की व्याख्या के पश्चात् चतुर्थ मन्त्र है—

येनेदं भूतं भुवन भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि अब कार्य करने की आवश्यकता न रही। मन मे इस समय भूत, वर्तमान और भविष्यत् जगत् को उस के गुण-दोष विवेचन से परिग्रहण कर लिया है, यथार्थ रूप में समझ लिया है। अब तो सात होताओ का यज्ञ करना ही शेष रह गया है। वे सात होता हैं-पाँच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और आत्मा। अब से पूर्व ये सातों ऋषि यज्ञीय कर्म द्वारा विश्व के उपकार मे लगे हुये थे, और अब केवल सबसे बड़े यजमान अन्त करण के साथ इन का सम्बन्ध जोड़ना है; सम्बन्ध जुडते ही चारो वेदो का ज्ञान उसे दीख पडेगा। महर्षि स्वामी दयानन्द इसी पथ के पथिक थे। योगाभ्यास-जनित बुद्धि से उत्पन्न चारो वेदो का ज्ञान उन के अन्त.करण मे झलकता था, इस बात की पुष्टि उन्हो ने गुरुवर विरजानन्द के चरणो मे आ कर की और उन्हे यह बात सूझी कि अन्तःकरण मे इतना बल है। यह ही बात वेद के शब्दो मे उन्होंने

लिखी देखी कि—

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्त सर्वमोतं प्रजाना तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

आगे चलिए आत्मिक उन्नति के भाव जब मनुष्य मे घर कर जाते हैं, तब वह आर्तों के नाद को भी सुनता है और उन्हे ससार के दल-दल से उभारने के लिए उन के कर्त्तव्य-रीति-नीति बताता है। उन्हें उस अवस्था मे देख कर उसे अन्तर्वेदना होती है। इसलिए यह ही कहना सङ्गत होगा कि जिस ने अपने आप को पढा, उस ने सब कुछ पढ़ लिया। अब वह वास्तव मे नेता बन जाता है। अब वह छठे मन्त्र के अनुसार सुषारथि हुआ। साथ ही वह 'नेनीयते' भी बन जाता है। अर्थात् सब मनुष्यो को भली-भाँति अपने पीछे चलाने का अत्यर्थ सामर्थ्य रखता है। अपने इस आचरण से वह दूसरो को भी इसी प्रकार का नेता बना हुआ देखना चाहता है, क्योकि उस ने अभ्युदय और नि:श्रेयस को ही धर्म समझा हुआ है, जो कि वास्तव मे धर्म है। वैशेषिक सूत्र है—"यतो अभ्युदयनि.श्रेयससिद्धि. स धर्मः।" अतः सब से पवित्र उपासना इन छ मन्त्रो मे ही निर्दिष्ट है।"

स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने इन शिवसङ्कल्प मन्त्रों पर जो कवित्व का प्रणयन किया उसे भी यहा उल्लेख कर देना अप्रासङ्गिक न होगा।

१ यह ज्योतिषो का ज्योति तव चेरा,
बन जावे शिवसङ्कल्प नाथ मन मेरा।
जो जागति मे, अति दूर-दूर उड़ जाता,
और सुषुप्ति मे भी नही ठहरने पाता।
विद्वान् यज्ञ मे जिस से कर्म कमाता,
मति धीर ज्ञान का जिस से ज्योतिः जगाता।
वह अद्भुत यक्ष हृदय मे जिस का डेरा,
बन जावे शिवसङ्कल्प नाथ मन मेरा।

२ प्रज्ञान कभी धृति कभी चित्त बन जावे,
फिर कभी हृदय मे अमर ज्योतिः चमकावे।
जिस के बिन कोई कर्म न करने पावे,
त्रैकालिकरूपो को गहि अमर कहावे।

जिस ने ले ऋत्विक् सात यज्ञ के टेरा,
बन जावे शिवसङ्कल्प नाथ मन मेरा।

३ जिस में वेदों के सारे ज्ञान भरे हैं,
रथ-नाभि में जैसे सब अरे जड़े हैं।
संसार-हृदय पर जो कर रहा बसेरा,
बन जावे शिवसङ्कल्प नाथ मन मेरा।

४ ज्यों कुशल सारथि-घोड़ों को गति देता,
ऐसे ही यह मन है जन-जन का नेता।
यह अजर-अमर हृदय में जिस का डेरा,
बन जावे शिवसङ्कल्प नाथ मन मेरा।

विद्वत्ता के प्रतीक मुक्तिराम

उद्भट दार्शनिक विद्वान् श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय की चरण शरण मे दूर-दूर से आर्य विद्वान् अपनी शङ्काओ का समाधान कराने के लिए बहुधा जाते रहते थे। उन के जीवन मे उन दिनो ऐसे भी अवसर उपस्थित हुए हैं, जब कि परस्पर विरोधी भावो के मनीषी पुरुष उन के सम्पर्क मे पहुँच कर उन की प्रेरणा से एक निष्ठ हो गए हैं। ऐसे महात्मा भी श्री सेवा मे पधारे है, जिन्हो ने उन के एक-दो वाक्यो से ही अपने आप को कृतार्थ समझ लिया है।

एक वा अनेक विषयो पर विद्वानों में परस्पर वैमत्य यदि कभी हो भी गया और उन में से किसी ने श्री पण्डित मुक्तिराम का नाम लेकर उन के मन्तव्य को दर्शा दिया, तो दूसरे को श्री उपाध्याय जी के स्वीकृत मत पर विचार करना आवश्यक हो जाता था। वह एकपदे उन के पक्ष को अवेक्षा नही कर सकता था।

इतना ही नही—वरन् गीता का भाष्य प्रकाशित होने पर यद्यपि पौराणिक जगत् में पर्याप्त आन्दोलन हुआ था, पुनरपि अनेक पौराणिक संस्थाएँ उन की चमत्कारिणी प्रतिभा से प्रभावित हो कर उन्हे अपनी संस्थाओं को गौरव प्रदान वरने के लिए आमन्त्रित करती रहती थी।

अनेक आर्य जनो के हृदय में यह विचार गहरे बैठे हुए थे कि योगी मुक्तिराम के मुखारविन्द से निःसृत वाक्यावली अन्तःकरण की सत्त्व

गुण सम्पन्न गहन गुहा को स्पर्श करके बाहर आती है; अतः उन का प्रत्येक वाक्य विशेष महत्त्व रखता है।

उन की प्राय: किसी ने आलोचना नही की। यदि किसी ने कर भी दी, तो वे प्रसाद मुद्रा मे केवल इतना कह दिया करते थे कि ठीक है—"अपनी समझ के अनुसार सब को अपने भावो की अभिव्यक्ति करने का अधिकार है और मुझे उस पर विचार करने का अवसर मिल जाता है। इस से मेरा तो कुछ नही बिगड़ता।"

बनारस से विद्यार्थी आत्मानन्द जी त्रिपाठी ने अपनी शङ्काओं का निराकरण कराने के लिए प० मुक्तिराम जी को पत्र लिखा। श्री उपाध्याय जी ने यथोचित समाधान लिख भेजे। प्राय श्री आत्मानन्द जी त्रिपाठी श्री आचार्य मुक्तिराम जी से समाधान कराते ही रहते थे। एक बार शङ्काओं का वारण करते हुए श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय ने लिखा—"विद्यार्थी काल मे अनेक शङ्काएँ मुझे भी हुआ करती थी। इस प्रकार सब शङ्काओ का उच्छेद कभी नही हो सकता, किन्तु यह सर्वथा नि:सन्देह है कि योग-साधक के सम्पूर्ण संशय स्वय ही साधना से उच्छिन्न हो जाते हैं और वह सशय-रहित हो कर दिव्यज्ञान की उपलब्धि करता है।"

शास्त्रार्थ तत्त्वज्ञ

एक बार आचार्य मुक्तिराम जी ने 'ईश्वर है वा नहीं ?' इस विषय पर गुरुकुल के छात्रो को अभ्यास कराने के लिए शास्त्रार्थ रक्खा। वे स्वय सभा के सभाध्यक्ष थे। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। आर्य ग्रन्थो का अनुशीलन करने से ब्रह्मचारियो में ईश्वर अस्तित्व के भाव गहरे थे, परिणाम यह हुआ कि आस्तिकवाद ने नास्तिकवाद पर अधिकार कर लिया। अन्त मे आचार्य मुक्तिराम उपाध्याय ने नास्तिक मत के छात्रों का पक्ष ले कर ईश्वर के अस्तित्व को तर्क से उडा दिया और ईश्वर नही है, इसे तर्क से सिद्ध कर दिया तथा अन्त मे यह घोषणा की कि आगामी अधिवेशन मे भी यही विषय रहेगा। मेरे दिए गए तर्कों को ध्यान मे रख कर उन के परिहार के लिए अन्य तर्कों की अन्वेषणा करना और ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करना, जो कि वस्तुत. सिद्धान्त पक्ष है, जिसे वेद तथा आज तक का ऋषि समुदाय स्वीकार करता चला आ रहा है। आप लोगो को शास्त्रार्थ मे कुशल बनाने के

लिए ही मैं ने नास्तिक पक्ष लिया है; क्योकि कार्य-क्षेत्र मे आप के सम्मुख ऐसे अवसर पग-पग पर मुँह खोले पङ्क्ति बद्ध मिलेगे।

लोक-सेवा ही उपासना की कसौटी

पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय के पुराने एवं ज्येष्ठ मित्र १३ भाषाओ के विद्वान् श्री स्वामी अनुभवानन्द जी 'शान्त' गुरुकुल में पधारे। उपाध्याय जी ने उन का यथाशक्ति रहन-सहन का प्रबन्ध कर यथोचित सम्मान किया।

श्री आचार्य मुक्तिराम प्राय: रावलपिण्डी आते रहते थे। वहाँ उन्हे दानी महानुभाव ब्रह्मचारियो के लिए मिष्टान्न और फल प्रभृति सामग्री भेट किया करते थे। वर्षा ऋतु मे कल्लर खालसा तक ही नगर से सर्वयान+ आता था। अन्य ऋतुओ में चोहाभक्ताँ ग्राम तक, जो कल्लर खालसा से १६ सहस्रमान* आगे था। गुरुकुल इस से भी ५ सहस्रमान* दूर रह जाता था। २१ सहस्रमान तक श्री उपाध्याय जी सामग्री की टोकरी अपने कन्धे पर रख कर ही ले आते थे। एक प्रकाण्ड पण्डित को इस प्रकार भार वहन करते देख कर स्वामी अनुभवानन्द जी 'शान्त' ने कहा—"आप विद्वान् हो कर भी क्या पाण्डियो (झल्ली वालो) का काम करते रहते हो। लोगो के बच्चों को पालते रहते हो। प्रभु-चिन्तन मे न्यून समय देते हो। यह आपके लिए उचित नही।"

योगिराज श्री उपाध्याय जी ऐसी बातो का कोई उत्तर नहीं दिया करते थे। वे समझते थे कि वस्तुत आत्मसाक्षात् और ब्रह्म-दर्शन की कषवटी यह ही है कि उत्तरोत्तर पर-हित कार्यो मे भगवान् के समान ही प्रवृत्त रहे। महर्षि दयानन्द और योगिराज कृष्ण इसी शैली के धनी थे।

एक समय का वर्णन है कि उपाध्याय जी ने छात्रो के लिए नगर से कम्बल क्रीत किये। अकस्मात् ऐसा अवसर उपस्थित हुआ कि उन्हे न तो जाते समय ही सर्वयान+ मिला और न आते हुए ही। दोनो ओर के १३१ सहस्रमान* के इस मार्ग को उन्होने भार सहित पदाति ही एक दिन में पूरा कर लिया। उन के इस गमन सामर्थ्य को देख कर सब आश्चर्य चकित रह गए।

+बस *किलोमीटर

सामाजिक-संवेदन

आचार्य मुक्तिराम जी लाहौर मे थे। वहाँ उन्हे चोहाभक्तों से दूरलेख† मिला, जिस मे लिखा था—"भक्त शिवदर्शन जी मरणासन्न हैं, शीघ्र पधारिये।" आचार्य जी वहाँ से उसी समय सयान‡ द्वारा चल पडे। मध्याह्न से कुछ पूर्व पहुँच कर उन्हो ने भक्त शिवदर्शन को छटपटाते देखा और कहा "इन के सङ्कट से बाहर आने की कोई आशा नही है।" पण्डित मुक्तिराम जी को यह परिज्ञान हो गया कि इन्हे किसी ने विष दिया है, किन्तु उन्हो ने इस वार्ता को किसी पर प्रकट नही किया, क्योकि इस से उत्तरोत्तर क्लेश बढने की सम्भावना थी। उसी दिन भक्त जी सायङ्काल तक प्राण छोड चले। उन की दाह-क्रिया आचार्य मुक्तिराम जी ने अपने हाथो से सम्पन्न की। उन के वियोग से उन्हे गुरुकुल के अनन्य सहयोगी से वञ्चित होना पडा। इस के अतिरिक्त उन की विधवा पत्नी की सार-सभार भी उन्ही पर आ पड़ी; अतः उन्हो ने चलाचल सम्पत्ति का वसीयतनामा भागवन्ती विधवा के नाम ही करा दिया। भागवन्ती की छोटी बहन सीता भी वही थी। दोनो बहनो की देख-रेख वे सब प्रकार से करने लगे।

अश्वारोहण

श्री मुक्तिराम उपाध्याय अश्वारोहण मे भी अच्छे निष्णात थे। दूर ग्रामो के पुरुष उन के लिए सवारी का प्रबन्ध कर लाते थे और वे उस पर आरूढ होकर रोगियो को देखने जाते थे। रात्रि मे भी उन्हे इस कार्य के लिए अनेक बार जाते देखा गया। वे औषध का कोई मूल्य न लेते थे। मुसलमान उन्हे एक पहुँचा हुआ महात्मा समझते थे कि ये जो भी औषध देते है, उसी से लाभ हो जाता है।

मधुर जल की खोज

गुरुकुल के परम सहयोगी लाला खेमचन्द जी ने बताया कि वहाँ एक कुआँ झील मे था, जो खारी था। उस मे जल इतना न्यून था, जो २--३ घण्टे चलने पर ही समाप्त हो जाता था। सिंचाई के लिए पानी की बहुत कमी पडती थी। आचार्य मुक्तिराम जी ने कहा—"कुआँ यहाँ ऊची भूमि मे खोदो, जल अत्युत्तम, मधुर, पर्याप्त

---

†तार ‡रेलगाडी

और पाचक निकलेगा।" उन के कहे अनुसार करने पर जल वैसा ही निकला। ऐसा होने पर मुसलमानो की और भी अधिक यह दृढ़ आस्था हो गई कि ईश्वर के बिना मिले ऐसी घटनाएँ नही हो सकती। पण्डित जी की ही शक्ति है, जो सातवे आकाश से जल उतार लाये अन्यथा ऐसी पहाड़ी पर जल कहाँ। सात-आठ मुसलमान सायं समय में जहाँ बैठे हुए यह वार्ता कर रहे थे, वहाँ एक हिन्दू महानुभाव भी उपस्थित थे। वे यह सुन कर मुस्करा दिए, किन्तु उपाध्याय श्री मुक्तिराम जी मे मुसलमानो की ऐसी श्रद्धा देख कर वे गद् गद् हो गए।

निरभिमानता

आदर्श आचार्य श्री पण्डित मुक्तिराम जी में अहङ्कार की मात्रा देखने को भी न थी। वे गुरुकुल के भवन-निर्माण-काल में अपने हाथो से पत्थर तोड-तोड कर रोड़ियां बनाते थे और ब्रह्मचारिगण उठा उठा कर उन्हे यथास्थान पहुँचाते थे। अहङ्कार की समाप्ति पर एक मान्या व्यक्ति ही ऐसा करने में समर्थ होती है।

शिल्प-विद्या को प्रोत्साहन देने के लिए आचार्य प० मुक्तिराम जी ने श्री मोदप्रकाश जी को शिल्प-शिक्षणार्थ 'कमालिया' भेजा। जाते समय उन्हो ने आचार्य-श्रेष्ठ से कहा—"१३, १४ सहस्रधान्य (किलो) दूध देने वाली यह अमृतसरो गौ यदि बछिया देवे, तो उसे मैं ले लूँगा।" मोदप्रकाश जी के कमालिया चले जाने पर श्री आचार्य मुक्तिराम जी ने वह गौ उन के घर भेज दी, जिस की सूचना उन के पिता जी ने मोदप्रकाश जी को कमालिया पहुँचा दी। उलटे गुरुकुल लौट आने पर मोदप्रकाश जी ने आचार्य प्रवर से पूछा—'आप ने गौ क्यों भेज दी है?' उन्हों ने उत्तर दिया—"क्योकि उस ने बछिया नही देनी थी, तुम्हे तो गौ अच्छी लगी थी न।"

आश्चर्य है कि मोदप्रकाश जी के घर उस गौ ने बछड़ा दिया और दुवारा सूई ही नही। चार-पाँच वर्ष पश्चात् उन्होने उसे गोशाला भेज दिया।

मोदप्रकाश जी चक-ब्राह्मणाँ के निवासी थे, जब वे घर गए, तो उनके लघु भ्राता मुक्तिराम को ज्वर हुआ-हुआ था। उस ने कहा—"मुझे पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय को दिखादो, मैं नीरोग

हो जाऊँगा।" आचार्य मुक्तिराम जी उस समय कोहमरी जाने-वाले थे। सूचना पाकर वे चकब्राह्मणाँ गये। उन्हो ने मुक्तिराम की नाडी देखी और कहा—"रोग का औषध मेरे स्थान से ले आओ। मुझे अब कोहमरी जाने का अवकाश नही है, कल ही जा सकूँगा।"

एक ८५ वर्ष की वृद्धा को उस के दायें बाहु में निरन्तर बहुत समय से भारी कष्ट था, उस ने भी मोदप्रकाश से कहा—"अपने आचार्य जी के मुझे भी दर्शन करा दो।" इस पर आचार्य मुक्तिराम ने वृद्धा का बाहु देखा और कुछ औषध बता कर चले गए। रोगी मुक्तिराम के लिए गुरुकुल से अभी औषध नही आया था। सायकाल हो गया। उस का ज्वर अति श्रद्धा और विश्वास के कारण स्वय उतर चुका था। वृद्धा ने भी कहा—"तुम्हारे आचार्य जी पण्डित हैं वा भगवान्? मेरे बाहु की पीडा भी सर्वथा हट चुकी है।"

संस्कृत कवि

दूर-दूर तक आचार्य मुक्तिराम के वैदुष्य का समाचार व्याप्त था। कहाँ गुरुकुल चोहाभक्ताँ और कहाँ कन्या गुरुकुल बडौदा। कन्या गुरुकुल बडौदा के आचार्य महाकवि मुनि मेधाव्रत ने 'दयानन्द दिग्विजय महाकाव्य' की रचना की। उसे पण्डित मुक्तिराम जी के समीप भेजा। उन्हो ने इस महाकाव्य को देख कर अति प्रसन्नता व्यक्त की और कहा, "इस के विषय मे मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह नीचे के तीन पद्यो मे है। मैं इच्छा करूँगा कि यह काव्य गुरुकुलो की पाठ्य प्रणाली का अङ्ग हो। यदि आप यह यत्न कर सकें कि एक दो सर्ग अलङ्कारो के क्रमिक उदाहरण रूप मे हो, तो बड़ा लाभ हो।

"कविवर ! कृतिरतिरुचिरा, रुचिलान सुचिर चकार भवत ।
शमनरसपरा सुतरामाहरतितमा मनः कवेर्भणिति ॥१॥
यदन्तिमेऽपि जीवन, प्रसादमाततान तत् ।
प्रसन्नवर्णमालया सुवर्णित कवे ! हितम् ॥२॥
मेधामलङ्कृतिसमुज्ज्वलपद्यवृन्दे,
आचार्यतामपि चमत्कृतकल्पनासु ।

सद्वृत्तवर्णन इति व्रतमङ्कयन् भो,
सत्काव्यपङ्क्तिषु लिलेख निजाभिधानम् ॥३॥

सम्मति रूप में प्रणयन किए गए इन श्लोकों से श्री उपाध्याय जी की कवित्व-गति, विद्या एव प्रतिभा स्पष्ट लक्षित होती है। वे सस्कृत साहित्य मे अश्लील अलङ्कारो से खिन्न थे। उन्हों ने जहाँ इस के लिये कविवर मेधाव्रताचार्य को प्रेरणा दी, वहाँ वे स्वय भी अश्लीलता-रहित एक अलङ्कार-ग्रन्थ की रचना के निमित्त चेष्टावान् थे; पर उन्हें गुरुकुल के कार्यो से ही समय शेष न रहता था। जव भी उन्हे यत्किञ्चित् काल मिलता, वे अलङ्कारो के सूत्र बनाते, लक्षण करते और पश्चात् उसे भाष्य से समन्वित करके सुन्दर रूप दिया करते थे। इस प्रकार वीस पृष्ठ लिख पाये थे कि आगे उतना भी समय उपलब्ध न हो सका और वह कार्य वही समा हो गया।

मुसलमान ने भी मांस भक्षरण छोड़ दिया

रावलपिण्डी में भक्ष्याभक्ष्य पर विचार हुआ। शास्त्रार्थ में एक पक्ष मुसलमानो का था और दूसरा निरामिषी आर्यो का। आर्यो की ओर से पुन. शास्त्रार्थो के जन्मदाता शास्त्रार्थ महारथि श्री शान्ति प्रकाश जी थे और अध्यक्ष थे—आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी। मुसलमान मौलवी की आस्था श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय में अतीव थी। शास्त्रार्थ के अनन्तर जब श्री उपाध्याय जी ने भोजन पदार्थो में मास को अमेध्य एव मनुष्यों का अनाहार घोषित किया, तो शास्त्रार्थी मौलवी महोदय ने उसी क्षण मांस सेवन न करने की प्रतिज्ञा की और अपना भक्ष्य निरामिष वना लिया।

गुरुकुल चोहाभक्ताँ के अन्यत्र परिवर्तन करने के विचार

गुरुकुल चोहाभक्ताँ को अन्यत्र ले जाना आवश्यक समझा गया, जिस मे निम्न कारण थे—

१—परम श्रद्धालु भक्त शिवदर्शन जी आचार्य मुक्तिराम के सहयोगियो मे प्रमुख थे। उन के देहावसान से गुरुकुल उन के सहयोग से वञ्चित हो गया।

२ गुरुकुल जेहलम की स्थापना आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी के ही कर कमलों से हुई थी। उस समय यह निर्णय किया गया था कि वह गुरुकुल, चोहाभक्तां गुरुकुल की शाखा रहेगा, किन्तु कुछ समय पश्चात् गुरुकुल जेहलम की प्रवन्ध समिति ने उसे स्वतन्त्र कर लिया, क्योंकि उसे गुरुकुल चोहाभक्तां से कोई सहायता उपलब्ध न थी। अतः प्रवन्धकारिणी ने यह निर्णय किया कि आगे से हम अपने गुरुकुल मे ही उच्च शिक्षा का भी प्रवन्ध करेगे और अपने छात्र गुरुकुल चोहाभक्तां नही भेजेगे। हमारा गुरुकुल यहाँ अत्युत्तम स्थान पर स्थित है। यातायात की भी कोई कठिनाई नही है।

३—गुरुकुल चोहाभक्तां रावलपिण्डी नगर से ६५ सहस्रमान था। वहाँ आवागमन के साधन कष्टसाध्य थे। गुरुकुल को अधिक सहायता नगर से ही उपलब्ध होती थी। नागरिक जनता के लिए अपने प्रिय गुरुकुल को देखने जाने तथा उत्सव आदि कार्य-क्रमो मे सम्मिलित होने के लिए पर्याप्त कठिनाई उठानी पडती थी।

४—अपने बालकों को गुरुकुल मे प्रवेश कराने के इच्छुक अभि-भावक प्रायः गमनागमन के कष्टदायक मार्ग से अपनी इच्छा की पूर्ति मे निराश हो जाते थे, क्योकि वह गुरुकुल सर्वयान* स्थाम× से भी ५ सहस्रमान+ दूर रह जाता था। वहाँ तक पहुँचने के लिए सवारी का कोई प्रबन्ध न था। वर्षा ऋतु मे सर्वयान*, १६ सहस्र-मान+ और भी इधर कल्लर खालसा मे ही रुक जाता था।

इन कारणो से गुरुकुल चोहाभक्तां को वहाँ से हटाने का निर्णय कर लिया गया और दूसरे स्थान पर उसे नवीन रूप देने के लिए रावलपिण्डी नगर से १३ सहस्रमान+ दूर काशमीर को जाने वाले मरी-मार्ग पर रावल ग्राम से द्वितीय पक्ष मे चालीस कनाल भूमि ले ली गई। यह स्थान डाकू-चौर-लुटेरो से भरपूर था। विशाल बरसाती नाले यहाँ से होकर बहते थे। ग्रीष्म और शीत ऋतु में चोर-डाकू इन्ही नालो मे छुप जाते थे। उन्हो ने अन्तर्लीन होने के लिए नालो मे गुफाए खोद रखी थी। जङ्गली वृक्ष भी वहाँ पर्याप्त

*बस। ×स्टाप। +किलोमीटर।

थे। उसी स्थान पर गुरुकुल के भवनों का निर्माण करने के लिये ईंटें डालना आरम्भ कर दिया गया। बहुत-सी अन्य सामग्री भी एकत्रित की जा चुकी थी।

इतने में हैदराबाद राज्य में सत्याग्रह करने की घोषणा कर दी गयी, अतः भवन-निर्माण का कार्य-सत्याग्रह के कार्य की अपेक्षा गौण समझ-कर स्थगित कर दिया गया और अपनी पूर्ण शक्ति अवसरप्रेक्षी आचार्य मुक्तिराम जी ने उसी ओर परिवर्तित कर दी।

* *

आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

धर्माग्रह प्रकाश

हैदराबाद सत्याग्रह

बहुत समय से दक्षिण हैदराबाद-आकाश में हैदराबाद नवाब मेघ मण्डल से हिन्दुजनता पर अत्याचारो की ओलावृष्टि होती आ रही थी। इन अत्याचारो से वहाँ की जनता कराह उठी थी। वे अत्याचार यदि गिनाये जाये, तो प्रतीत होगा कि समय-समय पर प्रबल शक्तियाँ निर्बलों पर अपना आधिपत्य जमाने के लिये क्या करती रही है। वहाँ—

१—धार्मिक कृत्यो और उत्सवो के करने की पूर्ण स्वतन्त्रता नही थी।

२—धार्मिक प्रचार, उपदेश, कथा तथा प्रवचन करने, व्याख्यान देने, भजन करने, नगर कीर्तन तथा शोभायात्रा निकालने, आर्य मन्दिरों का निर्माण करने, यज्ञ शाला और हवन कुण्डो के बनाने, ओ३म् ध्वजा फहराने, नये समाजो की स्थापना करने और वैदिक धर्म तथा वैदिक सस्कृति सम्बन्धी पुस्तको एवं पत्रो के प्रकाशन की स्वतन्त्रता नही थी।

३—हिन्दुओ को मुसलमान बनाने मे राज्य और राज्य कर्मचारी भाग लेते थे। कारागारो मे हिन्दू अभियुक्तो तथा पाठशालाओ मे बच्चो को मुसलमान बनाया जाता था और अनाथ हिन्दू बालक मुसलमानो को सौप दिये जाते थे।

४—राज्य का धर्म-विभाग हिन्दुओ और आर्यो की धार्मिक बातो तथा मन्दिरो पर अपना प्रभुत्व रखता था।

५—हिन्दुओ और आर्यो के समाचार पत्रो एव साहित्य का सरक्षण नही था।

६—अन्य प्रदेशो से उपदेशक महानुभाव उस राज्य में नही जा सकते थे।

७—आरक्षी तथा राज्य के दूसरे कर्मचारी हिन्दुओ और आर्यों को अवेक्षित कर मुसलमानों का पक्ष लेते थे।

८—आर्य हिन्दु बालको के लिये प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षणालयो तथा वाचनालयो की स्थापना का निषेध था।

९—मल्ल कला (कुश्ती) के अखाड़े निषिद्ध कर दिये गये थे।

१०—मस्जिदो के समक्ष से आर्य हिन्दू वर-यात्राये बाजे-गाजे के साथ नही निकल सकती थी।

११—हिन्दू मन्दिरो को तोड कर मस्जिद बनाया जा रहा था। ये इतने कारण थे कि आर्य समाज और हिन्दु महासभा से रहा न गया। पाप का घडा छलक उठा, वह देखा न गया। ऐसी अवस्था में जब कि शस्त्रास्त्र की शक्ति न हो, राजाओ से प्रजा कैसे निपट सकती है? उन के समीप सत्य पर आग्रह किये रहने के अतिरिक्त और क्या उपाय हो सकते है? जिन बातो पर प्रतिबन्ध होता है, जनता उस समय अपने प्राणो की बलि चढा कर भी उन प्रतिबन्धो को तोड़ती है और सत्य पर अटल हो जाती है। प्रतिबन्धक उन्हे सब प्रकार से कष्ट पहुँचाते है। जब वे अपनी गति विधि से उपरत नही होते, तो और भी अधिक प्राणदण्ड तक देने के अवसर आ उपस्थित होते है। यह बलिदान हैदराबाद में पहले स्थानीय व्यक्तियों को ही करना पड़ा। किन्तु जनता एक सामाजिक अङ्ग है। आज एक पर अत्याचार है, तो कल दूसरे पर भी सम्भव है। अत यह आवश्यक हो जाता है कि ऐसे अवसरो पर दूर प्रदेशस्थ महानुभाव भी इस अत्याचार का विरोध करने मे अपनी पूर्ण शक्ति से सहयोग दे।

इस आधार पर हैदराबाद मे हिन्दुओ पर हुये अत्याचारो की किलकारी भारतवर्ष के जिस कोने मे पहुँची, वही से जनता, उस अत्याचार से निपटने के लिये चल पड़ी। जब इस ने उत्तर पश्चिम मे स्थित रावलपिण्डी नगर की जनता के कर्णकुह्वरो को प्रस्फुटित किया तो उन्हे रात्रि मे भी सौमनस्य न दीख पडता था। जब रात और दिन दोनो ही अत्याचाराग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं मे अतिवाहित हों, तो कौन सहृदय शान्ति से समय यापन कर सकता है। इस अत्याचाराग्नि

की लपटो को देख कर श्री आचार्य प० मुक्तिराम जी उपाध्याय से रहा न गया। यद्यपि उस समय गुरुकुल के भवनो का निर्माण करना अत्यावश्यक था, किन्तु उस कार्य को पीठ पीछे कर आप सत्याग्रह क्षेत्र मे उतर आये।

गुरुकुल के हितैषियो ने निवेदन किया—"पण्डित जी ! आप के सत्याग्रह मे जाने से गुरुकुल को हानि होगी।" तब पण्डित मुक्तिराम जी ने व्याख्यान के समय उत्तेजनापूर्ण शब्दो मे कहा—'आग लगा दो इन गुरुकुलो को, फूँक दो इन आर्य समाजो को, जो जाति, देश तथा धर्म पर सङ्कट आने पर अपना सहयोग न दे सके। इन का निर्माण ऐसे समय पर कार्य करने के लिए ही तो हुआ था। आप लोग गुरुकुल को आधार शिला रखना आदि छोटी-छोटी बातो मे उलझ रहे हैं, जिन का ऐसे समय मे कोई मूल्य नही। कुछ सज्जन मुझे कह रहे है कि यदि जाना ही है, तो एकशास्ता* बन कर जाइये। कृपाराम ब्रादर्स के लाला रामलाल जी कहते है कि अभी तो हम चले जायेगे, आप पीछे जाइये। इस के उत्तर मे मेरा निवेदन है कि ऐसे धर्म कार्यो मे आगा पीछा नही देखा जाता। आप अपना कार्य कीजिये, मुझे मेरा काम करने दीजिये। ब्राह्मण को एकशास्ता बन कर जाना शोभा नही देता। प्रतिष्ठा के चक्र मे एक ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व समाप्त हो जाता है। ब्राह्मण देश की आपत्ति देखता है, उस आपत्ति से देश को बचा लेना ही उस समय उस का ब्राह्मणत्व है। प्रतिष्ठा के चक्रो मे देरी लगते-लगते देश कही से कही खिसक जाता है। इस समय तो एक क्षण का भी बहुत मूल्य है। अतः मैं सत्याग्रह मे जाने से नही रुक सकता। यह एक ऐसा समय उपस्थित हुआ है, जिस के लिये गुरुकुलो, आङ्गल महाविद्यालयो की एक-एक ईंट बेच कर भी सत्याग्रह के लिये धन एकत्रित किया जाये, तो करना चाहिये। जो वस्तु हमें आपत्ति मे काम नही दे सकता, उस की हमे आवश्यकता ही क्या है ?"

आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय के इन शब्दो पर सब ने अशदान† देना आरम्भ कर दिया। जिस समय यह रुपया एकत्रित हो रहा था, श्री लाला खेमराज जी साहनी का पौत्र भी उपस्थित था। वह प्राथमिक-कक्षा मे प्रथम आया था और पारितोषिक मे उस ने तीन पहिये वाली चक्रिका‡ लेना स्वीकार किया था, जिस का मूल्य पचास रुपया था। उस ने तत्काल कहा—"मुझे त्रिचक्रिका की आवश्यकता

*डिक्टेटर। †चन्दा। ‡साइकिल

नही है । मै अपने पचास रुपये भी सत्याग्रह-निधि में देता हूँ" । बालक के इस उत्साह को देखकर जन समूह ने उसे अपने कन्धे पर उठा लिया । अंश-दाताओं ने अपने-अपने अंशदान द्विगुण लिखा दिये और पाँच सौ रुपया प्रति सप्ताह सत्याग्रह निधि में भेजते रहने का वचन दिया । पाँच सहस्र रुपया उसी समय सद्योरोक* एकत्रित हो गया था । ब्रह्मचारी सेवाराम जी तथा अन्य वेदप्रकाश, मोदप्रकाश आदि विद्यार्थियो को लेकर सत्याग्रह-प्रस्थान के समय जब श्री उपाध्याय जी की संयात्रा * निकाली गई, तब सात अंग्रेजी वाद्य बज रहे थे । लोग सयात्रा को सदर से ले जाना चाहते थे । उपाध्याय जी प्रतिष्ठा समारोह के पक्ष मे न थे, अत उधर से निषेध करने लगे, तो लोग रथ्या● पर लेट गये और सयात्रा दूसरे मार्ग से आगे न बढने दी । विवश हो उपाध्याय जी ने उनका आग्रह भी स्वीकार कर लिया और सँयात्रा द्वितीय मार्ग मे घुमाकर सदर मार्ग से ले जाई गयी । जब सयात्रा संयान ‡ स्थात्र † पर पहुँची, तो उसका अगला सिरा स्थात्र पर था और पिछला आर्य मन्दिर गुरुकुल विभाग पर । उस भीड मे प्रस्थान के समय प्रतिष्ठित महानुभाव भी महाराज के चरण न छू सके ।

रावलपिण्डी नगर मे श्री आचार्य मुक्तिराम जी ने एक मास पर्यन्त व्याख्यान करते हुये जनता को हैदराबाद मे किये जा रहे अत्याचारो से अवगत कराया । उस समय के निकले हुये शब्द पाषाण हृदयो को भी पिघला देते थे । बडे-बडे प्रतिष्ठित पुरुष, जो श्री पण्डित जी मे विशेष अनुरक्त थे, अपना अंशदान पहले अर्पण करके घर-घर का द्वार खटखटाने लगे । लाला रामलाल जी ने इस कार्य में पुष्कल सहयोग दिया ।

गुरुकुल के बीस ब्रह्मचारियो को लेकर आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय सयान-स्थात्र पर उपस्थित थे । श्री उपाध्याय जी को जनता एक सन्त समझती थी, अत· बोल रही थी—"ओ३म् दे झण्डे थल्ले धूनी रमादा जाई । भिक्षा मिले न मिले अलख जगादा जाई ।" वैदिक धर्म के जय-जयकार और विजय के समाघोषो से स्थात्र का वातावरण गूँज रहा था । सत्याग्रही वीर अपने दलाधिकारी श्री उपाध्याय जी के साथ पुष्पमालाओ से अलङ्कृत हुये जन-समूह में पृथक् ही शोभा पा रहे थे । समय पर संयान ने स्थात्र को छोड़ दिया और समाघोष कुछ क्षण तक मञ्च पर गूँजते रहे । सयान मार्ग पर

*रोकड़ा । *जलूस । ● गली । ‡ रेल गाड़ी । † रेलवे स्टेशन ।

आने वाले जेहलम स्थात्र पर कोटली का सत्याग्रही-दल भी इसी दल में आ मिला। इस सोत्साहित समारोह के साथ गुजरात, जलालपुर-जटाँ, डस्का आदि स्थानो पर उन सत्याग्रही वीरो का भी भव्य स्वागत होता चला गया। जितने काल सयान मञ्च पर स्थित रहता था, दलाधिकारी श्री उपाध्याय जी अपने भाषण मे बधाई देने वालों को सत्याग्रह आन्दोलन में तीव्रता लाने की प्रेरणा देते रहते थे।

स्वागत समारोह में जनता ने सत्याग्रही दल को अपने प्रदेश के ऐसे फल भी भेट किये, जो सत्याग्रही सदस्य श्री सोमाहुति भार्गव आदि व्यक्तियो ने कभी देखे भी न थे। पुष्पवृष्टि और सुमन-मालाओ से सयान-कोष्ठ अपनी विचित्र ही छटा दिखा रहा था। इस प्रकार एक-एक स्थात्र पार करता हुआ संयान जब लाहौर पहुँचा, तो 'प्रताप' समाचार पत्र के अधिपति महाशय कृष्ण भी स्वागत पङ्क्ति मे मुख्य रूप से आगे आये। वे अति विनम्र भाव से श्री उपाध्याय जी के चरणों मे गिर पड़े और सविनय निवेदन करने लगे "पण्डित जी! एकशास्ता बनकर जाइये, इन थोडी व्यक्तियो के साथ आपका जाना शोभा नहीं देता।" आचार्य प्रवर ने उस समय प्रत्युत्तर में कहा कि यह कार्य गृहस्थ जनो का है। उन्हे अपनी मानमर्यादा की रक्षा के हेतु ऐसे पग उठाने आवश्यक होते हैं। मुझ जैसी व्यक्ति के लिये यह शोभा की बात नही है। मैं इस प्रकार की यश-कामना से बचा रहना चाहता हूँ। अत मैं तो अब इसी प्रकार जाऊँगा। सहारनपुर पहुँचने पर स्थानीय सत्याग्रही गण भी इसी दल में आ मिला। सकल सत्याग्रही सङ्ख्या मे पचास हो गये।

जब मुक्तिराम जी अपने गण के साथ दिल्ली पहुँचे, तो वहाँ भी आप का भव्य स्वागत हुआ। वे ऐसे स्वागतो मे आस्था न रखते थे, अत. उन्हो ने एक भारी भीड़ मे स्वागत कर्ताओ को ललकारते हुए और फटकारते हुए कहा कि तुम स्वागत ही करते रहोगे वा सत्याग्रह में जाने का कभी नाम भी लोगे। सयान चलता गया, चलता गया··· एक दिन शोलापुर स्थात्र पर जा लगा, जहाँ हैदराबाद राज्य में सत्याग्रह करने के लिये आर्यसमाज ने अपना शिविर लगाया हुआ था। श्री आचार्य मुक्तिराम जी के साथ उनके शिष्य अति उत्साही थे, उन्हो ने अपने आचार्य द्वारा निर्माण किये गए भजन को तारस्वर मे गाना आरम्भ किया—

दयानन्द की यह पताका रगीली। सजी ओम् के नाम वाली छबीली।

प्रभा भानु की यह जिधर को बढ़ेगी। निशा पाप की उस दिशा से उड़ेगी।
खिलेगी उषा पुण्य की फिर फबोली। दयानन्द की यह पताका रंगीली।
जहाँ पेड़ अन्याय का जन्म लेगा। विषैले कटीले फलो से फलेगा।
वहाँ यह कुल्हाड़ी बनेगी नुकीली। दयानन्द की यह पताका रंगीली।
सुनो रङ्ग इस का बिगड़ने न देंगे। इसे रक्त से वीर लाखो रंगेंगे।
प्रथा यह पुरानी चलेगी सजीली। दयानन्द की यह पताका रंगीली।

(२)

हम दयानन्द के सैनिक हैं, जगती मे धूम मचा देंगे।
यदि पर्वत आये मारग में, ठोकर से उसे गिरा देंगे।
हम पुत्र हैं भारत माता के, माता पै सङ्कट आया है।
हम उस के बन्धन काटेंगे, और अपना सीस कटा देंगे।
जगती में अन्धेरा फैला है, पापों ने डेरा डाला है।
प्रकाश वेद के अनुपम से, हम उस को दूर भगा देंगे।
हम दयानन्द के सैनिक है, जगती में धूम मचा दगे॥

लोकैषणा से बहुत दूर रहने वाले श्री उपाध्याय जी बिना पूर्व सूचना के ही शिविर कार्यालय मे अकस्मात् पहुँच गये। श्री नन्दलाल जी वैदिक धर्मप्रचारक नूतन सत्याग्रहियों और दलाधिकारियो का स्वागत किया करते थे। इस के लिये विशेष सभा का आयोजन किया जाता था, जिस में सत्याग्रहियो और गणाधिकारियो के विशिष्ट गुणों पर प्रकाश डाला जाता था, तथा इन गतिविधियो से भारत के समाचार पत्रो द्वारा जनता को अवगत कराया जाता था। जब महाराज के स्वागत का विषय उपस्थित हुआ, तो उन्हो ने स्वागत कराने का निषेध कर दिया।

शोलापुर मे आर्यशिविर के अध्यक्ष श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी पर बहुत उत्तरदायित्व था। उन के समक्ष कई ऐसे कार्य थे, जिन के लिये कुशल महानुभावों की आवश्यकता थी। प० मुक्तिराम जी उपाध्याय पूर्वत स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के परिचय मे आये हुए थे। अतः उन्हो ने आचार्य मुक्तिराम जी को राज्य-कारागारो के निरीक्षाटन पर नियुक्त कर दिया। महाराज ने सहर्ष स्वीकृति दी और अपने सत्याग्रही शूरवीरो को अन्यो के साथ सत्याग्रह करने के लिए उद्यत किया। शिष्यो को अपने से पहले जाते देख, श्री उपाध्याय जी की आँखों में आँसू आ गए और कहा, अच्छा तुम चलो मैं भी शीघ्र आ रहा हूँ।

राज्य-निरीक्षाटन

राज्य के भीतर कलम्ब नगर मे पहुँचकर श्री आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय ने आरक्षि-अधीक्षक से भेंट की। उस भेंट मे उपाध्याय जी के साथ स्वामी शान्तानन्द जी भारद्वाज तथा एक व्यक्ति और थी। वहाँ निम्न प्रकार वार्ता आरम्भ हुई—

मुक्तिराम—हमने सुना है कि हैदराबाद राज्य मे आजकल अनेक प्रतिवन्ध लगाये हुए हैं, क्या यह सत्य है?

आरक्षि-अधीक्षक—यहाँ किसी प्रकार का भी प्रतिवन्ध नही है।

मुक्तिराम—क्या हम राज्य मे पर्यटन कर, भीतरी वृत्तान्त जान सकते है?

आरक्षि-अधीक्षक—अति प्रसन्नता से देख सकते है। इस में मैं आप को सहयोग दूंगा। मै आप के साथ अपना एक आरक्षी किये देता हूँ, जिस से आप को किसी प्रकार का कष्ट न हो, और जानकारी भली-भाँति हो सके।

आचार्य मुक्तिराम जी ने सर्वप्रथम आर्यसमाज मन्दिर मे जाना उचित समझा, अत: उस आरक्षी व्यक्ति के साथ आर्यसमाज मन्दिर में पहुँच गये। वह व्यक्ति तो पहुँचा कर लौट आयी, किन्तु आरक्षि-अधीक्षक स्वय चुपचाप वहाँ जा विराजे। जिस समय श्री पं० मुक्तिराम जी समाज मन्दिर मे पहुँचे, तो वहाँ दो-चार नवयुवको के अतिरिक्त कोई न था। उन वयस्को से महाराज ने कहा "हम यहाँ व्याख्यान करना चाहते हैं। वहुत शीघ्र इस का प्रवन्ध करा दो"। युवक चतुर थे। उन्हो ने मुहल्ले के कुछ और युवको को ले कर पृथक्-पृथक् कार्य पर भेज दिया। दस पन्द्रह मिनट मे ही वहाँ पर्याप्त सङ्ख्या में नर-नारी एकत्रित हो गए। महर्षि दयानन्द और वैदिक जयकारो के मध्य "ओ३म्" पताका लहराई गई।

आचार्य मुक्तिराम जी का व्याख्यान वहाँ निरन्तर डेढ घण्टे तक हुआ। उन्हो ने व्याख्यान का उपक्रम (प्रारम्भ) और उपसंहार ऐसी सुन्दर रीति से किया कि वहाँ प्रचार भी हो गया और ढग से राज्य की निन्दा भी हो गई। किसी को बुरा भी अनुभव न हुआ। इस प्रकार वहाँ आप के तीन व्याख्यान हुए। तत्पश्चात् गुप्तचर विभाग की एक व्यक्ति ने आ कर पूछा—"अब आप यहाँ से कब चले जाओगे?"

मुक्तिराम जी—"हमे यहाँ तीन व्याख्यान करने थे, सो कर चुके। अत: कल चले जायेंगे।"

जो गुप्तचर बातो में से वक्ता का अभिप्राय न निकाल सके, वह गुप्तचर ही क्या हुआ । उस ने श्री मुक्तिराम जी के प्रयुक्त वाक्य मे से "यहां" इस शब्द को ताड़ लिया और समझ लिया कि अब ये दूसरे समाजों में जा कर व्याख्यान करेगे । अतः वह वहा से शीघ्र खिसक आया और अधिकारी वर्ग को आगे सूचना भेज दी कि अमुक नाम की तीन व्यक्तियाँ आ रही है, उन्हे व्याख्यान देने की आज्ञा न दी जाये।

आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय आर्यसमाज से एक व्यक्ति को साथ लेकर अपनी दो व्यक्तियो के साथ दूसरे मन्दिर में जा सुशोभित हुये । वहां जा कर देखा तो अधिकारी गण पहले से ही विराजमान था उन्हो ने पारस्परिक वार्ता के आदान-प्रदान में पण्डित जी से ससत्कार निवेदन किया कि यहाँ राज्य में किसी प्रकार का भी प्रतिबन्ध नही है। रही मन्दिरों की वार्ता, यदि कोई अपने मन्दिरो को न सुधारे और राज्य को दोषी ठहराने के लिए उलटा उसी पर दोषारोपण करे, तो यह कहाँ तक सङ्गत है ? उपाध्याय जी ने उत्तर में कहा—'ठीक है, हम भी राज्य में पर्यटन करके अपना समाधान कर लेगे और जनता को व्याख्यान के द्वारा उस के कर्त्तव्य भी समझाते चलेंगे । अधिकारी बोला—"सत्याग्रह के समय मे व्याख्यान करने पर तो प्रतिबन्ध लगा हुआ है । इस के अतिरिक्त आप जो चाहें कर सकते है।

उपाध्याय जी—हम अभी जो पीछे व्याख्यान करके आ रहे हैं।

अधिकारी—महाराज ! वे बड़े आदमी है, वे जैसा चाहे कर सकते हैं। हमारे समीप उनका व्याख्यान न किये जाने का आदेश आया हुआ है।

उपाध्याय जी—हमारे लिए भी सभा का आदेश है कि राज्य में जाकर व्याख्यान किया जाये। अतः हम भी व्याख्यान तो अवश्य करेगे।

अधिकारी—भगवन् ! आप का देश कौन-सा है ?

उपाध्याय जी—मेरी जन्मभूमि मेरठ प्रान्त है ।

अधिकारी—भगवन् ! मेरा जन्म भी उसी प्रान्त का है, अतः हम दोनों समान देशीय हुये। अन्तर केवल इतना है कि आप ने हिन्दू-परिवार में जन्म लिया है और मैंने मुसलमान परिवार में। मैं राज्य सेवा पर हूँ। मुझे अपना कर्त्तव्य निभाना आवश्यक है। मैं नही चाहता कि मेरे द्वारा मेरे देश का वासी पकड़ा जाये । इस से मेरे हृदय को आघात पहुँचेगा और मैं रात-दिन उसी में सिसकता रहूँगा । भगवन् ! सब

का अपना-अपना हृदय होता है। अतः करुणा निधान ! आप मुझ पर कृपा कीजिये। मैं केवल इतनी ही विनती करता हूँ कि आज व्याख्यान न करे, कल कर ले।

उपाध्याय जी—इसमे आपका कोई दोष नही है, आप पराधीन है। आपको जैसी आज्ञा मिली है, आप उस के अनुसार अपना कर्त्तव्य निभाये और हमे जैसा आदेश है, हम उस का पालन करेगे।

अधिकारी—दयालो ! मैं ने जो कहना था, कह दिया, वह यथार्थ ही है। यदि आप कल तक ठहर जायेगे, तो मेरे सुख से दिन कटते रहेगे अन्यथा एक स्वप्रान्तीय को प्रगृहीत करके मै स्वयं को बहुत दोषी समझूँगा।

उपाध्याय जी को दया आगई। उन्हो ने आश्वासन दिया कि हम कल तक ठहर जाते है।

दूसरे दिन वृत्त-निरीक्षक● आ गया। उस ने उपाध्याय जी से कहा—महाराज ! व्याख्यान तो आप नही कर सकेगे। क्योकि आज-कल इस पर प्रतिबन्ध है।

चतुर आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी ने अपना विषय दूसरे शब्दों मे इस प्रकार से उपस्थित किया—"निरीक्षक महोदय ! यदि आप के यहाँ व्याख्यान होने पर प्रतिबन्ध है और उस के अनुसार आप व्याख्यान की स्वीकृति नही दे सकते, एव व्याख्यान करने पर किसी व्याख्याता को प्रगृहीत करने में आप बाधित हैं, तो हम ऐसी बात नही करते। मैं समझता हूँ—उपदेश देने पर आप के यहाँ प्रतिबन्ध नही होगा। अत. हम उपदेश दे लेगे, व्याख्यान नही करेगे। कहिए, अब तो आप को कोई आपत्ति नही ?" निरीक्षक महोदय के मुख से उत्तर आया—जी नही, आप उपदेश दे सकते है। हमारे राज्य मे उपदेश पर कोई प्रतिबन्ध नही है।

आचार्य श्रेष्ठ ने उसी समय कुछ व्यक्तियो को बुला कर एक वेद-मन्त्र के आधार पर मनुष्यो के कर्त्तव्य समझाते हुए एव अपनी सस्कृति, आचार-व्यवहार तथा सभ्यता पर समुचित प्रकाश डालते हुये, उन के सरक्षण निमित्त लोगो को प्रतिक्षण सन्नद्ध रहने की प्रेरणा की और कहा कि इन के बिना मनुष्य, मनुष्य नही रहता, पशु बन जाता है। इस मनुष्य देह को प्राप्त कर के यदि मनुष्योचित कर्त्तव्यो की अवहेलना की जाये, तो इस से यह अधिक उत्तम है कि जीवन की यह लीला ही सवरण कर ली जाए।

● सर्किल इन्स्पेक्टर।

वृत्त-निरीक्षक उपाध्याय जी की बाते सुन रहा था। वे उसे भी भली प्रतीत हो रही थी। उस में उसे राज्य की कही भी निन्दा सुनने को न मिली। किन्तु वह व्याख्यान और उपदेश में भेद नही कर पाया। सोचने लगा, "व्याख्यान भी इसी प्रकार किया जाता है, सम्भव है मुझे प्रवञ्चित किया गया हो, परन्तु व्यक्ति बहुत सभ्या है। आकृति मनोमोहिका है। वाणी बहुत रसीली है। जो शब्द इन्हो ने कहे है, वे सामान्य है, किसी भी धर्म के लिये वे उपयुक्त है। मेरा भी इन से कल्याण हो जायेगा। कुछ भी हो, इन्होने उपदेश की स्वीकृति मागी थी, अत. मुझ पर कोई दोष नही आता। यदि मुझ से अधिकारी ने पूछा तो मैं कह दूँगा कि इन्हों ने उपदेश दिया है, व्याख्यान नही किया। व्याख्यान पर प्रतिबन्ध है, उपदेश पर नही। पूछने पर मैं यह भेद स्पष्ट रूप से बता दूँगा, जैसा कि समझ पाया हूँ कि—व्याख्यान खडे होकर जनता की अपार भीड़ में बहुत उच्च स्वर से किया जाता है और उपदेश बैठकर थोड़ी व्यक्तियो में भी दिया जा सकता है। जिस में केवल मनुष्य के जीवन उत्थान की चर्चा की जाती है। वृत्त निरीक्षक ने महाराज का पूरा उपदेश सुना और महाराज से अभिमान पूर्वक कहा कि समस्त राज्य मे सत्याग्रह हो रहा है, परन्तु मैंने अपने क्षेत्र में अभी तक सत्याग्रह नही होने दिया और न ही होने दूँगा। उपाध्याय जी ने उसी समय उसे प्रत्युत्तर मे कहा—"मैं प्रचार करते हुए यहाँ ही सत्याग्रह करूँगा।"

इस प्रकार पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय कलम्ब नगर मे प्रचार कर, वहाँ के नागरिको की हल चल तथा साहसिक प्रवृत्तियो का अवलोकन कर, गुलवर्गा नगर मे जा सुशोभित हुए। वहाँ के नागरिको से जब स्थानीय समाज के गतिविधि का परिचय प्राप्त किया तो उपाध्याय जी को बहुत हर्ष हुआ। वह समाज उन्हे अति जागर्ति में अपना कार्य करता प्रतीत हुआ। लोगो ने बताया कि यह समाज जब एक समय अपना उत्सव मना रहा था और व्याख्यान हो रहा था, तो कुछ यवनो ने जनता पर धावा बोल दिया। ईंट पत्थरो की वर्षा होने लगी। उसी समय श्रोताओ मे से पन्द्रह-बीस नवयुवक उठे और आक्रमणकारियो पर टूट पडे। परिणाम स्वरूप गुण्डे भाग खडे हुए। नवयुवक भी उन के पीछे-पीछे उन्हे ठोकते-पीटते चले। यहाँ तक कि उन्हे (यवनों को) अपने घरो मे घुस कर तथा द्वार बन्द कर के अपना पिण्ड छुडाना पड़ा। नवयुवक आर्यवीर बाहर से कुण्डा लगा कर लौट आये और उत्सव शान्तिपूर्वक मनाया जाता रहा। महाराज को यहाँ बना

बनाया व्याख्यान का क्षेत्र सुसज्जित मिला। सङ्केत मात्र से वहाँ सैंकडो श्रोता जन एकत्रित हो गये। वेदी पर ज्यो ही महाराज जी खड़े हुये उन का करतल ध्वनि से हार्दिक अभिनन्दन हुआ। महाराज ने जो कुछ कहना सुनना था, वह प्रभावशाली शब्दो मे कह सुनाया। लोगो का उत्साह बढाया और उन के कार्यो की भूरि-भूरि प्रशसा की। वहाँ की जनता बहुत ही प्रसन्न होती थी, जब वह अपने मध्य मे किसी भिन्न प्रान्त की व्यक्ति को व्याख्यान करते देखती थी, विशेषत. ऐसे अवसर पर जब कि वे सङ्कट मे हो और विशेषत ऐसो व्यक्ति से, जो बहुत दूर की हो। श्री पण्डित जी के उस सारगर्भित व्याख्यान का लोगो पर उत्साह-वर्धक प्रभाव पड़ा।

कारागारों का निरीक्षाटन

इस के पश्चात् महाराज की आकाङ्क्षा राज्य के कारागारो का परिभ्रमण करने की हुई। वे कलम्ब नगर से चल कर सीधे हैदराबाद पहुँचे। कारापाल से कारागार के निरीक्षणार्थ अनुमति प्राप्त की। कारागार मे वे सत्याग्रहियों से मिले और उन के दु ख-सुख का विवरण जान कर उसे स्वबुद्धिगत किया। उन की आवश्यकताओ को ध्यान मे रख कर यह देखा कि कौन-सी सामग्री कारा मे सत्याग्रहियो के निकट पहुँचाई जा सकती है। उन्हो ने कारा मे वस्तु पहुँचाने का एक उपाय सोचा। इसके लिए वहाँ के छोटे कर्मचारियो से मिले। उन से पूछने पर पता चला कि उन का वेतन बहुत ही न्यून है। अत. महाराज ने निश्चय किया कि यदि दो-चार रुपये इन को दे दिये जाया करे, तो हमारे सत्याग्रहियो के लिए आवश्यक सामग्री सुविधा पूर्वक कारागार मे पहुँचाई जा सकती है। परस्पर वार्तालाप के समय कारागार के कर्मचारियो ने इस वार्ता को स्वीकार कर लिया।

तत्पश्चात् श्री उपाध्याय जी उस्मानाबाद कारागार मे गये। वहाँ सत्याग्रहियो से ज्ञात हुआ कि यहाँ के कारागार कर्मचारी क्रूर है। कारागार चिकित्सक भी इन की प्रवञ्चना में आकर रोगी सत्याग्रहियो का उपचार समुचित रूप से नही करता, वह रोगियो को बहुत कष्ट पहुँचाता है।

ऐसी दशा मे अनेक सत्याग्रही यहाँ से क्षमा मांग कर जाने के लिये विवश हो रहे हैं। कारापाल भी सत्याग्रहियो को बहुत कष्ट देता है। उपाध्याय जी ने भीतर ही भीतर ऐसा खेल खेला कि सत्याग्रहियों ने अवसर पाकर कारा-चिकित्सक को पर्याप्त पीटा। इतना पीटा कि

वह हाथ जोड़ने लगा, और आगे से उस के व्यवहार में परिवर्तन हो गया। उपाध्याय जी के कारागार के निरीक्षणार्थ आने के दिनो में काराधिकारियो ने जब ऐसा परिवर्तन देखा, तो उन्हो ने आप को पुनः निरीक्षण की अनुमति न दी।

कारागार-निरीक्षाटन से शोलापुर शिविर में पधार कर निरीक्षण मे आये हुए सब वृत्तो का विवरण आचार्य मुक्तिराम जी ने स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को सुना दिया और स्वय सत्याग्रह करने के लिये समुद्यत हो गये।

दलाधिकारी बनने का निषेध

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने प्रवल यत्न किया कि *पण्डित मुक्तिराम जी न्यून से न्यून ५०० व्यक्तियो का एक दल लेकर* तथा दलाधिकारी बन कर सत्याग्रह करे।

श्री उपाध्याय जी ने इस योजना का यह कह कर निषेध कर दिया कि यह शोभा गृहस्थो के अनुरूप है; मेरे लिए नही। मैं अपने लिए यह उपयुक्त समझता हूँ कि राज्य में प्रवेश कर प्रचार करूँ और ऐसा करते हुए राज्याधिकारी जब चाहे मुझे अभियुक्त बना कर कारागृह मे डाल दे। अत. आपने अपने साथ सत्याग्रह करने के लिए निम्न तीन महानुभाव चुने—१ मदन मोहन लाल जी मुक्तावल अधिवक्ता, २—श्री लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित होश्यारपुर, ३—श्री पण्डित नन्दलाल जी वैदिक धर्म प्रचारक।

सत्याग्रह करने का स्थान श्री पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय ने कलम्ब ही निश्चित किया। कलम्ब के विषय मे यह प्रसिद्ध था कि जो सत्याग्रही यहाँ से सत्याग्रह करने की चेष्टा करते है, उन्हे बहुत कष्ट उठाने पड़ते है। इतना होने पर भी वे अपने कार्य मे सफल नही होते; क्योकि सीमा पर ही लठैत आरक्षी खडे रहते है। जो भी उस मार्ग से सत्याग्रह करने के लिए प्रवेश करता है, उसे लाठियो से मार मार कर वे धराशायी वना देते हैं। अभी तक इधर से कोई सत्याग्रह नही कर सका था। श्री उपाध्याय जी ने अपने कुशल सहयोगियो से परामर्श लेकर एक योजना बनाई और उस के अनुसार वे सव कलम्ब से १३ सहस्रमान इधर ही एक भारतीय ग्राम मे पहुँचे। वहाँ ग्राम वासियो को एकत्रित कर के उन्हे कलम्ब की स्थिति का परिज्ञान कराया और कहा—'हमे किसी भी मूल्य पर कलम्ब तक पहुँचने के लिए वैलगाडी दे दो। गाड़ीवान हमे वहाँ तक पहुँचा कर लौट आवे।
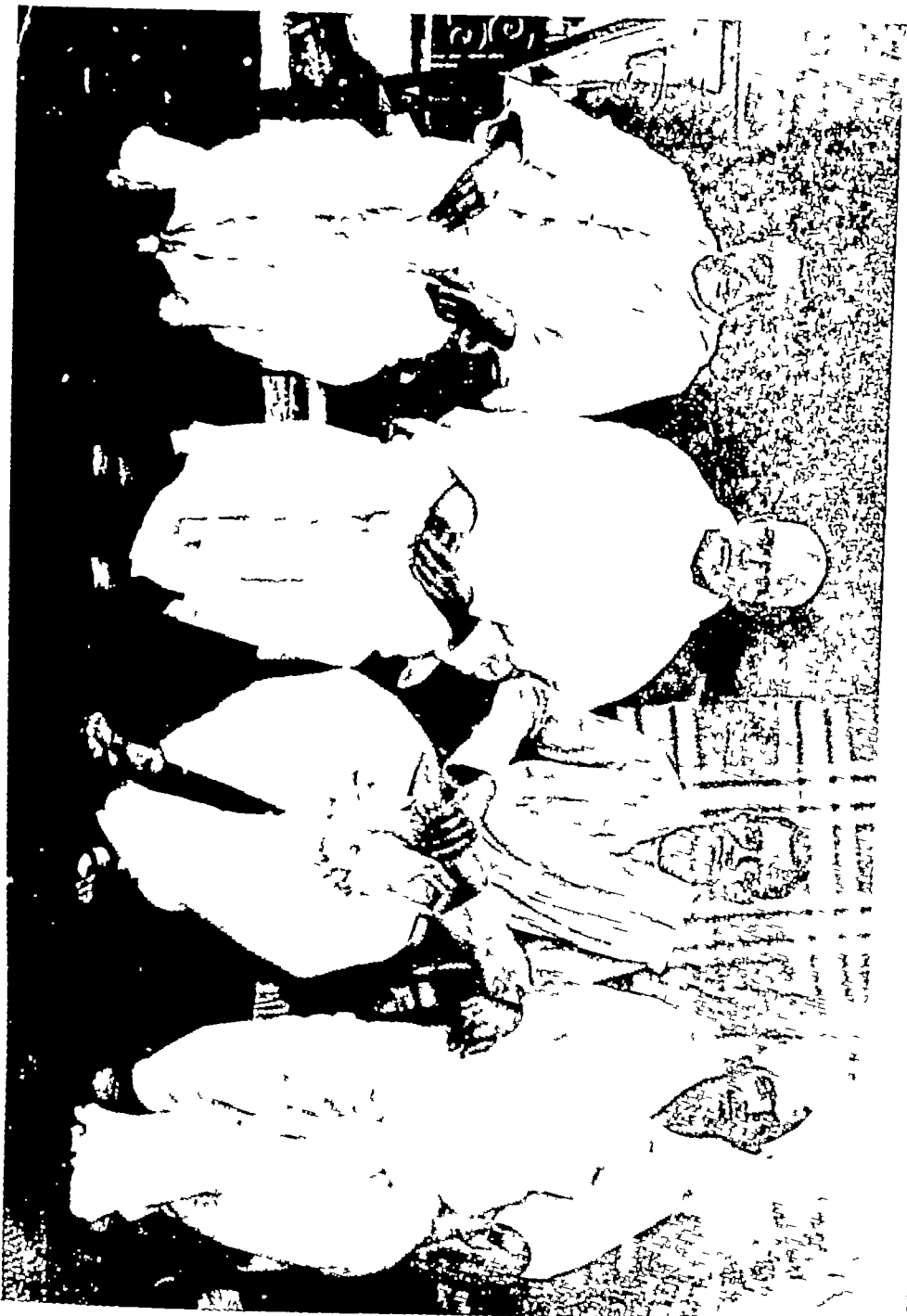
हैदराबाद सत्याग्रही दल

वायें से दाये :— १. श्री मदनमोहन लाल जी मुक्तावल अधिवक्ता २ श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय आचार्य गुरुकुल चोहा भक्ता, रावलपिण्डी ३. श्री लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित, होशियारपुर ४ श्री नन्द लाल जी वैदिक धर्म प्रचारक ।

ग्रामवासी कलम्ब की स्थिति से पूर्वतः ही परिचित थे, अत ऐसा करने के लिये कोई भी गाडीवान समुद्यत न हुआ। पारस्परिक विचार विमर्श के अनन्तर एक गाडीवान ने कहा—'यदि आप चाहे, तो नदी पुल से दो सहस्रमान इधर आप को गाडी से ले जा कर छोड़ दूंगा और चार रुपये लूंगा।' यतः कलम्ब मे जाकर अवश्य ही सत्याग्रह करने का निश्चय था, अतः उन्होने गाडीवान की यह वार्ता स्वीकार कर ली और रात्रि के दस बजे गाडी पर आरूढ हो कर चार बजे प्रात· नियत स्थान पर जा पहुँचे। गाडीवान अपना भाटक (भाडा) लेकर लौट आया। प्रत्याशी सत्याग्रहियों ने अपने-अपने शिरों पर बडे-बडे पग्गड़ बाँध लिये, जिस से रजाकारो के आक्रमण से शिर की रक्षा कर सके।

नदी पर पहरा था; अत पुल के मार्ग की आशा छोड़कर पुल से एक सहस्रमान की दूरी पर पहुँच कर नदी को पार करने का निश्चय किया। पहने हुए वस्त्रो को शिर पर बाँध कर पानी मे उतर पडे। सकल सत्याग्रही तैरना जानते थे। पानी गले से ऊपर कही न था। अति सुगमता से सब पार हो गये। शौच, दातुन, स्नान और सन्ध्या-वन्दन से निवृत्त होकर अन्धेरे मे ही कलम्ब की ओर चल पडे। नगर मे प्रवेश करते ही विपणि* आरम्भ हो जाता है और वही एक ओर स्थानक† है। वृत्तनिरीक्षक# का आवास भी वहाँ निकट था। श्री उपाध्याय जी ने श्री नन्दलाल जी धर्म प्रचारक से कहा—"ध्वजा जेब में रख लो, स्थानक आते ही अपनी छडी में डाल लेना और समाघोष‡ लगाना आरम्भ कर देना। फिर मैं भी व्याख्यान करने लग जाऊगा"। सत्याग्रहियो ने व्याख्यान कर के स्वय को प्रगृहीत कराने का सब से उत्तम स्थान, उस वृत्तनिरीक्षक# का ही घर निश्चित किया। जिस ने कलम्ब के आर्य समाज मन्दिर मे श्री उपाध्याय जी से कहा था कि उस ने अभी तक स्वक्षेत्र में सत्याग्रह नही होने दिया। जनता अभी विस्तर से उठी भी न थी कि सत्याग्रही वृत्तनिरीक्षक के घर के नीचे जा खड़े हुये, वैदिक समाघोषो के पश्चात् श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय ने उसी समय उच्च स्वर से व्याख्यान करना आरम्भ कर दिया। निकटवर्ती प्रसुप्तजन, उच्च घोष को सुन कर उठ खडे हुये और प्रातःकालीन उस विचित्र लीला को देख कर आश्चर्य चकित हो गये। वृत्त-निरीक्षक की भी आखे खुली। उस ने आरक्षी को नीचे देखने के लिए भेजा कि प्रात· ही प्रात यह क्या होने लगा है? आरक्षी ने व्याख्यान

*बाजार। †थाना। ‡नारा। #सर्किल इन्सपैक्टर।

किये जाने की सूचना ऊपर जा कर दी। निरीक्षक महोदय भी स्वयं छत पर खडे हो कर यह दृश्य देख रहे थे। श्री उपाध्याय जी को उन्हो ने स्वर से ही पहिचान लिया और आरक्षी को आदेश दिया कि उन्हें ऊपर बुला लाओ। आरक्षी व्यक्ति ने आ कर श्री प० मुक्तिराम जी से निवेदन किया कि अपना व्याख्यान समाप्त कर के कृपया निरीक्षक जी को दर्शन दीजिये। वे आप मे मिलना चाहते है। महाराज ने इसके प्रत्युत्तर में कहा –"अब मिलने का समय नही रहा, अब तो उन्हे स्वयं ही आ कर मिलना होगा।" ऊपर यही सूचना पहुँच गई। वृत्तनिरीक्षक महोदय स्वय नीचे आये और आदर पूर्वक बोले—"धृष्टता क्षमा कीजिये, क्या मैं आप का प्रग्रहण कर सकता हूँ" ? महाराज ने उत्तर में कहा– "अवश्य, मैं स्वयं को अभी से प्रगृहीत समझता हूँ, और अपने इस व्याख्यान-कार्य को इसी क्षण यही समाप्त कर देता हूँ"। निरीक्षक महोदय ऊपर चले गये और श्री उपाध्याय जी को तीनो साथियों सहित आरक्षी† के सरक्षण में स्थानक की ओर भिजवा दिया। वहाँ पहुँच कर उस आरक्षी ने उन्हें निग्रह-गृह* मे निगृहीत कर दिया। वृत्त-निरीक्षक● प्रात.कालीन आवश्यक कृत्यो से शीघ्र निवृत्त होकर जब स्थानक में पहुँचे, तो पण्डित मुक्तिराम जी को साथियों सहित निग्रह-गृह* मे निगृहीत किया देख कर आरक्षी† पर बहुत क्रुद्ध हुये और उसे बहुत धमकाया, तथा उन्हे तत्क्षण बाहर निकालने का आदेश दिया। विरामदे मे आसन्दियाँ× बिछी हुई थी, उन पर बैठ जाने की उस ने महाराज से विनती की। इस शिष्टाचार के अनन्तर निरीक्षक महोदय बोले—"भगवन्! कहिये, आप की क्या सेवा की जाये ?"श्री उपाध्याय जी के साथ वैदिक धर्म प्रचारक पण्डित नन्दलाल जी विनोदप्रिया व्यक्ति थी। उन के मुख से तुरन्त उत्तर आया, "आप के यहाँ आम्र बहुत होते हैं, अत दूध और आम्र मँगवा दीजिये"। निरीक्षक महोदय ने एक व्यक्ति को दूध और आम्र लाने का आदेश दे दिया। शीघ्र ही एक टोकरी आम्र और पर्याप्त दुग्ध आ गया। जी भर तृप्ति के पश्चात् भी पर्याप्त सामग्री बच रही।

दण्डाधिकारी के समक्ष श्री उपाध्याय जी को अभियुक्त के रूप में उपस्थित किया गया। न्याशाधीश ने महाराज से प्रश्न किया—"आप क्या कर रहे थे, जो आप को अभियुक्त बनाया गया ?"। महाराज बोले—"मैं वृत्तनिरीक्षक महोदय के आवास के नीचे प्रात समय में

†सिपाही *हवालात ●सर्किल इन्स्पैक्टर ×कुर्सियाँ।

जनता के कल्याणार्थ व्याख्यान कर रहा था। आप न्यायाधीश है। निर्णय आप के हाथ में है। अब आप ही बतलाइये, क्या जनता के कल्याणार्थ कुछ कहना अपराध है ?"। इस से पूर्व कि न्यायाधीश कुछ कहे, आरक्षी पुरुष बोला—"ये व्यर्थ ही घूम रहे थे, इन्हे व्यर्थ-सञ्चरण के अभियोग मे निगृहीत किया है"। न्यायाधीश ने इस पर कुछ टीका टिप्पणी करने के लिए महाराज की ओर निहार कर कहा, "कहिये, आप को इस मे क्या वक्तव्य है ? अब किस की वार्ता उचित निर्णीत की जावे ?" महाराज बोले—"किया तो हम ने व्याख्यान ही है किन्तु आप अपनी व्यक्ति पर ही विश्वास करेगे, अत जो आप को उचित प्रतीत हो देख लीजिये"। न्यायाधीश ने पुन पूछा—"अच्छा वहाँ कितने श्रोता जन उपस्थित थे, जिन्हे आप व्याख्यान सुना रहे थे"? महाराज ने प्रतिवचन में कहा—"निकटवर्ती स्थान मे बहुत से मानव सो रहे थे, ज्यो ही हम ने बोलना आरम्भ किया, तत्क्षण सब उठ बैठे और चौकन्ने होकर सुनने लगे। निरीक्षक महोदय और ये आरक्षीजन भी सुनने लगे। यतः इस राज्य में व्याख्यान किये जाने पर प्रतिबन्ध है, अत. हमे निगृहीत कर लिया है। किन्तु यह समझ मे नही आता कि हित की वार्ता कहने पर भी क्यो रोका जाता है ?"। न्यायाधीश ने कहा—"हित के वचन कहना तो दोष नही है, किन्तु आप यह तो बतलाये कि जब व्यक्तियाँ सो कर भी नही उठी, वह व्याख्यान करने का समय कौन-सा है ?" महाराज की ओर से उत्तर आया—"प्रात समय सोने का नही होता। शीघ्र उठकर, नित्य कार्यो से निवृत्त होकर ईश्वर-आराधना का होता है। जब और जिस स्थान पर त्रुटि हो, उसी समय और वही उस का निराकरण होना चाहिये। वचन तभी अपना प्रभाव दिखलाते हैं।" "प्रभाव तो दिखलाया नही, अन्यथा आप को प्रगृहीत क्यो किया जाता ? अत यही उचित जान पडता है कि आप लोग व्यर्थ घूम रहे थे, और रात्रि भर ऐसे ही घूमते फिरना व्यर्थ-भ्रमण को ही प्रमाणित करता है। आप लोगो का यहाँ घर-बार कुछ नही है, अपने आवास को छोडकर असमय मे इधर उधर घूमना व्यर्थ सञ्चरण के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ?" दण्डाधिकारी के इस वक्तव्य पर महाराज ने कहा—"इन बातो मे कुछ नही रक्खा। आपको ध्यान होना चाहिए कि पढ़े लिखे लोग कभी सञ्चरण जीवी नही होते। अन्त मे आप ने अपने पुरुष की वार्ता को ही महत्त्व देना है। इसलिये आप की जो इच्छा हो लिख लीजिये।" यह सुन कर

दण्डाधिकारी चुप हो गया और उस ने निर्णय दिया कि ये चारों पुरुष व्यर्थ घूम रहे थे, जो कि एक अवैधानिक कर्म है, अतः दो-दो वर्ष के अवधि पर्यन्त इन्हे कारा [जेल] में रखा जावे। न्यायाधीश के इस आदेश पर सब को उस्मानाबाद की कारा में पहुँचा दिया गया।

प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के मन्त्री श्री महाशय कृष्ण जी ने समाचार पत्रो मे राज्य कर्मचारी के साथ आपका एक चित्र बनाया। आप के हाथ में कैंची देकर और उस की जेब पकडवा कर यह घोषित किया कि हैदराबाद राज्य अपने दुष्कृत्यो से स्वयं नष्ट होना चाहता है। वह आर्यसमाज के प्रकाण्ड पण्डितो को व्यर्थसञ्चरण में प्रगृहीत करता है।

उस्मानाबाद कारागार मे प्रतिदिन प्रातः साय सन्ध्या, अग्निहोत्र के पश्चात् उपनिषदों की परस्पर चर्चा होती रही। कुछ दिनों के पश्चात् महाराज जी को औरङ्गाबाद भेज दिया गया और श्री लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित को गुलबर्गा भेजा गया।

औरङ्गाबाद के कारागार मे पहुँचने पर एक नवीन वातावरण देखने को मिला। छोटे-छोटे बालक जो अभी १६ वर्ष के भी नही हुये थे, राज्य के अत्याचारो का उन्मूलन करने के लिये कारागृह की यातनाये सह रहे थे। वृद्ध पुरुष वहाँ थे, जो इस ससार को छोडने से पूर्व राज्य मे अन्याय के स्थान पर न्याय का आसन देखना चाहते थे और चाहते थे कि हम भारत वर्ष मे ही पुनः जन्म प्राप्त कर के धर्म भावनाओ से ओत-प्रोत, भारतीय सस्कृति से सम्पुष्ट, सभ्यव्यवहार से परिपूर्ण नागरिको का आदर्श आर्य जीवन देख सके। वहाँ ऐसे पुरुष भी अनायास मिल गये, जो बहुत दिनो से परस्पर नही मिले थे। एक दूसरे का कुशल-क्षेम जान कर वृद्धजन बच्चो से पुत्रवत्, बच्चे उन से पितृवत् और नवयुवक परस्पर मे स्नेहलसित व्यवहार करते थे। प्रातः साय नित्य प्रति सन्ध्या, हवन और प्रवचन होता था। इस आध्यात्मिक भोजन के पश्चात् ही सत्याग्रही शारीरिक भोजन पाते थे। कारागार मे यह उनका दृढ व्रत था।

पूर्व परिचितो में महाराज जी को वहाँ आर्य महाविद्यालय गुरुकुल किरठल (मेरठ) के कुलपति श्री जगदेवसिंह जी शास्त्री 'सिद्धान्ती',● श्री ब्रह्मचारी भगवान् देव जी*, स्वामी सदानन्द जी, श्री ब्रह्मचारी हरिशरण जी और सतीशचन्द्र जी 'पाठक' आदि व्यक्तियाँ मिली।

● वर्तमान ससत्सदस्य। * वर्तमान आचार्य गुरुकुल झज्जर।

इनमे कुछ के स्वास्थ्य बहुत गिरे हुये थे। इसका मुख्य कारण कारागार का निकृष्ट भोजन था। महाराज जी ने वहाँ श्री ब्रह्मचारी भगवान्देव जी के स्वास्थ्य को अधिक गिरी हुई अवस्था मे पाया। कुछ दिन तो पण्डित जी अपनी प्रकृति के अनुरूप चुप रहे, किन्तु यौवन काल में स्वास्थ्य की ऐसी हीन अवस्था ने उन्हे पूछने के लिये विवश कर दिया। महाराज ने एक दिन पूछ ही लिया–"ब्रह्मचारी जी ! आप का स्वास्थ्य इतना निर्बल क्यो हैं ? माना कि कारागार का भोजन ठीक नहीं है, किन्तु वह इतना दुष्प्रभाव नही दिखा सकता, जितना आप के स्वास्थ्य से झलक रहा है।" महाराज के इन वचनो से ब्रह्मचारी जी को एक अन्तर्वेदना-सी हुई और उन का हृदय भर आया। महाराज जी ने पुन ढाढस बधाते हुए कहा—"अपने हित चिन्तकों के समक्ष बालको को अपनी व्यथाये कहने मे सङ्कोच नहीं करना चाहिये। वय मे बडे लोग जीवन की अनेक कठिनाइयों मे से होकर आया करते है, वे अपने अनुभव के आधार पर क्लेश का कोई न कोई समाधान खोज निकालते हैं। अत. सिसक-सिसक कर जीवन व्यतीत करना नवयुवको के लिये ठीक नही होता।"

शारीरिक अन्तः प्रक्रिया के ज्ञाता

इस आश्वासन से श्री ब्रह्मचारी भगवान् देव जी को उन्हे अपना कष्ट सुनाने की कुछ प्रेरणा मिली। ब्रह्मचारी जी ने कहा "महाराज जी ! मुझे लगभग अढाई वर्ष से एक रोग है, जिसे नले उतरना कहते हैं। इस के बहुत से उपचार भी किये, किन्तु कोई लाभ नही पहुँचा।" "इस रोग का प्रारम्भ कैसे हुआ ?" महाराज जी के यह पूछने पर ब्रह्मचारी जी बोले–"इस की एक लम्बी कहानी है। फिर भी मैं सङ्क्षेप से आप के समक्ष रखता हूँ। सिन्धु (दिल्ली) शेरसा (रोहतक) इन दोनो ग्रामो की सीमा पर एक पाठशाला है, मैं वहाँ रहा करता था। ग्राम झिंझोली निवासी शिक्षक धर्मसिह जी हमारे निरीक्षक थे। मैंने महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पढा था। चित्त में पूर्वजन्म के कुछ सस्कार होगे, जो महर्षि जी का जीवन अपना प्रभाव डाल गया। कितना ही कठिन कार्य हो, मैं उसे कुछ नही समझता था। एक दिन की वार्ता है कि फावडे(कस्सी)से मिट्टी खोद रहा था, उसे लगभग १०-१२ मान (मीटर) दूर डालना भी था। मैने यह उचित समझा कि किसी पात्र मे भर-भर कर डालने की अपेक्षा खोद कर फावडे से ही क्यो न फेंक दिया जाये। इस से दोहरा परिश्रम भी बच जायेगा। जब काम ही करना है तो

ब्रह्मचारियों की भाँति करे। मैं ने वैसा ही किया—मैं फावड़े से मिट्टी खोदता और उसे पूरे झटके से दूर फेंक देता। शरीर में शक्ति थी, साहस था, उमङ्ग थी, थकने का नाम नही लेता था। यदि कभी थक भी जाता तो साहस से लगा रहता था। ऐसा कठोर कार्य करने के पश्चात् भी दण्ड बैठक लगाता और मुद्गर चलाता। परिणाम यह हुआ कि पेट में पीड़ा रहने लगी। तब भी मैं ने कोई ध्यान नही दिया, अपितु यह समझ कर कि व्यायाम से ठीक हो जायेगा, इसी प्रकार कार्य किया तथा अधिक व्यायाम किया। तीसरे दिन भी ऐसा ही किया। इस से रोग घटा नही, बढ़ता ही गया। मै घर से विद्रोही हो चुका था। माता जी भी अप्रसन्न थी। खाने को घी दुग्ध आदि पौष्टिक पदार्थ नही मिलता था। पहिले घर पर पर्याप्त खाता पीता था। आधा सेर घी और पाँच सेर दूध पी जाता था। किसी प्रकार की कोई कमी न थी। खान-पान के अभाव मे ही उदर (पेट) इतना कठोर हो गया कि पत्थर बन गया। तब श्री स्वामी ईशानन्द जी (भूतपूर्व श्री महाशय रतीराम जी आर्य सिघोली निवासी) ने एक तेलन माई से मेरे नले मलवाये। उस ने कहा कि यदि एक दो दिन और नही सँभाला जाता तो कार्य नियन्त्रण से बाहर हो जाता। क्योकि पेट की आँते परस्पर उलझ सी गई है। उस के मर्दन से कुछ आराम हुआ। पेट कोमल भी हो गया। परन्तु मुझे तो व्यायाम मे प्रचुर अनुराग था। थोड़ा-सा स्वास्थ्य सुधरते ही पुनः व्यायाम आरम्भ कर दिया। इच्छा यह थी कि महर्षि दयानन्द जैसा हृष्ट-पुष्ट ब्रह्मचर्य से परिपूर्ण सुन्दर दिव्य शरीर बनाऊँ। अतः पूर्व की भाँति दण्ड बैठक लगाना और मोगरी घुमाना आरम्भ कर दिया। इस से रोग फिर उसी कष्टदायक अवस्था पर पहुँच गया। ऐसी दुःखित एव कष्टप्रद, शोचनीय दशा का जब माता जी को पता लगा, तो उन्हो ने मेरे लिये दूध भेजना आरम्भ कर दिया। परन्तु इस बार वह दूध घी भी अपना कुछ प्रभाव न दिखला सका। आसन किये, वे भी व्यर्थ रहे। अनेक वैद्यों ने चिकित्सा के लिये भरसक प्रयत्न किया, परन्तु कोई भी औषध सफल सिद्ध न हुवा। मैं इन दिनो श्री दयानन्द वेदविद्यालय निगमबोध घाट दिल्ली मे रहा करता था। अवस्था इतनी चिन्ताजनक हो गई कि शाक भी नही पचता था।

गुरुकुल चित्तौड़गढ के आचार्य श्री व्रतानन्द जी दिल्ली पधारे। वे मुझे पहले से ही जानते थे, जबकि मैं नरेला में अपने घर पर रहता

था। वहाँ मैने अच्छी लगन वाले सुयोग्य नवयुवको का एक सङ्घटन किया हुआ था। इससे उनके मन मे मेरे प्रति कुछ अच्छी आस्था बैठ गई। वे कहने लगे—"आप मेरे गुरुकुल मे चलें। मै आप जैसा विद्यार्थी जिसमे महर्षि दयानन्द-प्रदर्शित कार्य करने की लगन हो, चाहता हूँ। जितना भी दूध-घी और औषध का व्यय होगा, सब दूँगा। कोई चिन्ता की बात नही।" जब वे मुझे गुरुकुल चित्तौडगढ तक पहुँचने का मार्ग-व्यय देने लगे, तो मैंने अस्वीकार कर दिया, पर वे माने नही और कहने लगे—"रखिये, रखिये, ब्रह्मचारी जी! कोई बात हो तो पीछे लौटाया जा सकता है।" उनके ऐसा कहने पर मैने ले लिया। साथ मे मैंने उनसे यह भी निवेदन किया कि मैं अकेला नही आ सकता। मेरे साथ अनेक ब्रह्मचारी हैं। उन्होने उनका भी प्रवेश और मार्ग-व्यय देना स्वीकार कर लिया। पश्चात् वे अपने कार्य पर चले गये और मै अपने घर चला गया। नरेला के जलवायु से रोग कुछ ठीक रहा। आहार घर पर कुछ अच्छा था। एक मास पश्चात् मै अपने एक साथी सहित चित्तौडगढ गुरुकुल मे जा पहुँचा। मेरे वहाँ पहुँचने पर श्री दयानन्द वेदविद्यालय (दिल्ली) के तीन विद्यार्थी अपना विद्यालय छोडने के लिए छटपटाने लगे। वे सब बडी लगन के थे। वे भी वही आ गये। श्री स्वामी व्रतानन्द जी ने हम सभी का अच्छा प्रबन्ध किया। वहाँ मै व्यायाम पर्याप्त करता था और प्राणायाम भी बहुत करता था, किन्तु रोग मे विशेष लाभ नही हुआ। फिर मैं घर पर नरेला आ गया। सत्याग्रह आरम्भ होने पर मैंने सोचा कि चाहे कैसी भी शरीर की अवस्था हो, अपने कर्त्तव्य से पीछे नही हटना चाहिए। अत मैं सत्याग्रह करके अब यहाँ आ गया हूँ। अब इस समय जो मेरा स्वास्थ्य है, घर पर इससे कुछ ही अच्छा था। किन्तु यहाँ ज्वार की कच्ची रोटियाँ खाने से फिर वही चिन्तनीय दशा हो चली है। मुँह मे पानी आता है, मरोड होती हैं, पेट भारी रहता है, भूख नही लगती, वायु ऊर्ध्व हो गया है। अब पूर्ण निश्चय हो गया है कि यहाँ से बचकर लौट जाना कठिन है। अब महाराज! आपके शरण हूँ, जो आदेश हो करूँ।

श्री आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय ने यह व्यथा-गाथा बहुत ध्यान से सुनी और खेद प्रकट करते हुये आश्वासन दिया कि सब ठीक हो जायेगा। पुन. एकान्त में वे गये और भस्त्रा प्राणायाम समझाया कि—"पहले पद्मासन वा सिद्धासन से सीधे बैठ जाये। पृष्ठ, ग्रीवा और शिर एक सीध मे रहे। शरीर का समस्त भार नितम्बो पर हो।

शरीर ढीला रहे, किसी अङ्ग पर अकडाव न हो। बायां हाथ जंघा के ऊपर जङ्घा की जड़ में,हथेली जङ्घा की ओर,तथा हथेली का पृष्ठ भाग ऊपर की ओर ऐसे रखिए कि अङ्गुलियाँ घुटनेकी ओर रहे, दाहिने हाथ का अङ्गूठा और मध्य की अङ्गुलि खडी रखकर शेष तीन अङ्गुलियाँ दो एक ओर की और दूसरी अङ्गूठे के समीप की मुट्ठी भीचने की भाँति हथेली से चिपकाले अब "इसी प्रकार रखे हुये इस हाथ का अङ्गूठा नासिका के दाहिने नथुने पर और खड़ी हुई मध्यमा अंङ्गुलि भ्रकुटी पर रखे। इस प्रकार कर लेने से नासिका का दाया छिद्र बंद है और बाया खुला है। अब मूलबन्ध लगा कर पेट को भीतर की ओर धक्का देकर श्वास वाहर निकालिये और भरिये। यह क्रिया धौंकनी की न्याईं वेग से बलपूर्वक शीघ्र-शीघ्र करनी है। अनुमान से ८-१० वार करके (श्वास फेंकना और भरना) मूलवन्ध को ऊपर को खीचते हुये और पेट का पेडू-नाभि सब भाग भीतर को पीठ से मिलाने का यत्न करते हुये, भीतर का सारा श्वास बाहर फैंक देना है। अव जङ्घा पर पहिले से यथाविधि रखा हुआ बायाँ हाथ कोहनी पर से सीधा कर दे, जिससे वह शरीर से सट जावे और शरीर सीधा हो जावे। दाया हाथ नासिका और माथे पर ज्यों का त्यों बना रहे। जो श्वास बाहर फेका गया था—मूलबन्ध और उड्डियान बन्ध (भीतर को पेट किया हुआ) लगी-लगी अवस्था मे बाहर ही यथा शक्ति रोके रक्खा जाये। जव न रुके, तो बाहर को ही फिर धक्का दिया जाये। अब यह आरम्भ में अधिक नही रुकेगा (अभ्यास होने पर तो चार-पाँच वार तक बाहर रोका जा सकता है, धक्का देकर)। इस क्रिया से शीघ्र ही नाड़ीगत प्राण अपना स्थान छोड़कर धीरे-धीरे चलना आरम्भ होता है, जो चीटी चलने के समान शरीर मे प्रतीत होता है। अत बाहर को धक्का लगा कर शनै.-शनै भीतर ले ले और चार-पाँच श्वास स्वाभाविक रीति से आने दे। वायाँ हाथ उसी प्रकार रक्खे हुए कोहनी पर से थोडा मोड़ ले, आराम से रक्खा रहने दे। चार-पाँच श्वास स्वाभाविक रीति से आने के पश्चात् नासिका के उसी बाये नथुने से श्वास को ऊपर खीचते हुये और फिर वाहर निकालते हुए वही धौंकनी की प्रक्रिया ८-१० वार करे। पश्चात् श्वास को फेफडो मे भली भाँति भर ले और वाये हाथ की कोहनी सीधी कर दे, जिससे शरीर सीधा वना रहे। श्वास भीतर रोके रक्खा जाये। जब न रुके तो और भर ले, रोक ले (वाह्य क्रिया की भाँति यह आभ्यन्तर रोकने भरने की क्रिया भी, चार-पाँच वार, अभ्यास होने पर की जा सकती

है। इसमे भी नाडोगत प्राण अपना स्थान छोडकर चलेगा और चीटियो की चाल के समान प्रतीत होगा)। न रुकने पर झट से दाये हाथ की अंगुलि, जो भ्रकुटी पर अब तक निरन्तर जमी रही, वहाँ से हटा, उस से बायाँ स्वर बन्द कर और दाहिने स्वर पर से अब तक जमा हुआ अङ्गूठा हटा, भ्रकुटी पर रख, मूलबन्ध लगा, भीतर के श्वास को बाहर निकाल दे। पश्चात् चार-पाँच श्वास पूर्ववत् स्वाभाविक रीति से ले। (दाहिना हाथ उसी स्थिति मे बना रहे और बाया हाथ भी निर्दिष्ट स्थल पर प्राणायामो के अवधि पर्यन्त रक्खा रहेगा) यह बाये नथुने से आधा प्राणायाम समाप्त हुआ। अब दाये नथुने से बाहर-भीतर दोनो प्रकार का शेष आधा प्राणायाम पहले बताये गये विधि से करे। दायीं ओर के इस विधि के समाप्त होते-होते जब श्वास भीतर न रुक सके, तो अङ्गूठे से दायाँ नथुना रोक करके, बाये स्वर से अन्तर्गत वायु (मूल-बन्ध लगाते हुये) बाहर निकाल दें। अब हाथ उसी स्थिति मे आ गया जो स्थिति प्राणायाम आरम्भ करने से पूर्व दाये हाथ की बनाई थी। यह एक पूरा प्राणायाम हो गया। ऐसे जितने प्राणायाम करने की इच्छा हो, यथाशक्ति करे। किन्तु आप यहाँ कारागार मे केवल तीन ही प्राणायाम करना। कारण कि यहाँ घी-दूध का अभाव है।"

यह प्राणायाम की क्रिया महाराज जी ने स्वयं करके दिखाई और एक दिन अपने सम्मुख बैठा कर करवाई। आगे बीच-बीच में पूछते रहते थे। उस समय यह भी कहा कि—"ध्यान में बैठने से पूर्व और उठते समय पीछे इस प्राणायाम को कर लेने से वायु-विकार नही रहते, इससे रक्त का शोधन होता है। ध्यान के समय तथा अन्य अवस्था मे चलते फिरते भी प्राण वही धक्का लगाता है, जहाँ शरीर मे विकार होता है। वह ठोकर मार-मार कर उस विकार को शरीर से निकालते हुए आगे बढ़ता है। जब ये लक्षण प्रतीत होने लगे तो, समझना चाहिये कि प्राण का सञ्चार प्रारम्भ हो गया है, जो अभ्यास की गति का प्रथम चरण है। इससे अभ्यासी ऊर्ध्वरेता बनता है। देह लघु, स्फूर्तिमान् और शोणित हो जाता है। उसके शरीर से अत्यन्त उत्कट सुगन्ध भी दूसरे व्यक्तियो को आता है। भोजन के छह सात घण्टे पश्चात् एव शौच से निवृत्त होकर यह प्राणायाम करना चाहिए। अन्य प्राणायामो का भी यही नियम है। श्रीब्रह्मचारी भगवान्देवजी का उदरस्थ असाध्यरोग तो वही कारागार मे रहते-रहते थोडे ही दिनो मे ठीक हो गया था, तथा कारागार से बाहर आने पर, व्यवस्थित रूप से घृतादि सेवन पूर्वक उक्त प्राणायाम

निरन्तर करते रहने से वे ही सब लक्षण प्रकट हुये, जो महाराज जी ने बताये थे।

महाराज की ये घटनायें बहुत पूर्व ही पूर्ण योगी हो जाने का निश्चय कराती हैं।

धर्म प्रचार—

शनैः शनैः पुराने सत्याग्रहियो ने महाराज को कारागार के सभी वृत्तान्तो से अवगत करा दिया। वहाँ का कारापाल मुसलमान होते हुये भी बहुत सुशील और सभ्य था। वह सत्याग्रहियो को दूध की लस्सी बनाकर भी पिलाया करता था। पुराने सत्याग्रहियो ने विशेषतः परिचितजनो ने सन्ध्या हवन के पश्चात् महाराज से प्रतिदिन के लिए प्रवचन कर देने की प्रार्थना की। महाराज ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया,उनके प्रवचनों मे कोई ऐसी बात न होती थी, जिससे किसी के हृदय पर चोट पहुँचे। अपनी वाक्पटुता से विषय का ऐसा प्रतिपादन करते थे कि सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। लोगों को अपने दुर्वर्तन (बुराईयाँ) स्वयं अनुभव होने लगे और उनके निवारणार्थ वे प्रयत्न भी करने लगे। कारापाल को जब पण्डित जी के सौजन्य का पता चल गया, तो उसने उनके लिये पर्याप्त सुविधाएँ देनी चाही, किन्तु आप तो एक साम्यवाद के साचे मे पले थे, अतः ऐसा करने से निषेध कर दिया, और वे ही ज्वार की रोटियाँ खाते रहे, जो सब के लिये बनती थी। २३२ धान्य (ग्राम) की दो रोटियाँ प्रत्येक समय प्रत्येक सत्याग्रही के लिये कारागार की ओर से दिये जाने का नियम था। उसी से उन का स्वास्थ्य भी ठीक रहता था। उनकी कारागार मे दिनचर्या ऐसी थी कि वे प्रतिदिन प्रातः दो बजे उठ बैठते और आवश्यक कृत्य से निवृत्त हो कर तत्क्षण समाधिस्थ हो जाते थे। तीन घण्टे पर्यन्त समाधिस्थ रहते और फिर सब के जागरित होने पर सब के साथ सम्मिलित हो जाते थे। इस प्रकार वे नितान्त शान्त वातावरण में अपना अभ्यास कर लिया करते थे और जन साधारण उसे जान भी न पाता था। साय काल अभ्यास मे बैठने का निरन्तर क्रम वहाँ नही चल पाता था।

परोपकारी सत्पुरुषो के लिये ससार मे सर्वत्र ही प्रचार कार्य का क्षेत्र विद्यमान है। श्री आचार्य जी जहाँ कारागार मे आने से पूर्व राज्य के अत्याचारो के उन्मूलन मे संलग्न थे, वहाँ अब कारागार मे आये हुए अपने सत्याग्राही बन्धुओं के दोष-निवारण मे भी अहर्निश

तत्पर रहते थे। महाराज का अभिलाष था कि प्रत्येक सत्याग्रही में सत्य पर आग्रह और जीवन में सौजन्य का प्रसार हो। वहाँ अनेक सत्याग्रहियो मे धूमवर्ती पीने का दुर्व्यसन भी था। ऐसे व्यसन सत्याग्रह के जीवन मे अति आघात पहुँचाने वाले होते है। अपनी इस दुष्प्रकृति के कारण वे कारा के कर्मचारियो द्वारा फैंके हुये, धूम-वर्ती के उच्छिष्ट भागो को उठा कर, पीने के लिये भी विवश हो जाते हैं। इसी न्यूनता के कारण ही अनेक सत्याग्रही क्षमा-याच्ञा करके कारा से बाहर चले जाते हैं, जो सत्याग्रह के लिये एक प्रबल धक्का सिद्ध होता है। अत उपाध्याय जी ने इन दुर्व्यसनों को छोड़ने की प्रेरणा दी। अनेक सत्याग्रहियो ने श्री पण्डित जो महाराज के आदेश से इस दुर्व्यसन को वही उसी क्षण छोड़ देने का प्रण लिया।

वहाँ एक मोहनलाल नामक घातक सिंधी पहलवान था। उसका व्यवहार सत्याग्रहियो के साथ अच्छा न था। भगवान् की उस पर कृपा हुई। वह प्रतिदिन दिये गये महाराज के उपदेशो से सन्मार्ग पर चलने लगा और अतिविनम्र देव पुरुष बन गया। इसके अतिरिक्त वहाँ सोमदेव, दीनानाथ आदि और भी निकृष्ट प्रकृति के पुरुष थे। उन पर भी महाराज जी का अच्छा प्रभाव पड़ा।

यष्टि-प्रहार

जिस कारा में आचार्य मुक्तिराम जी रह रहे थे, उसका नाम औरङ्गाबाद केन्द्र-कारागार× था। उस कारा के बाहर लगती हुई एक पथिक-शाला+ थी। केन्द्र-कारागार में स्थान न रहने से प्रतिदिन आने वाले सत्याग्रहियो को उसी पथिक-शाला मे ठहराया जाता था। उसकी चारदीवारो मे सत्याग्रही पूरी स्वतन्त्रता से घूमते थे, क्योंकि उसमें ऐसी कोठरियाँ नही थी, जिनमें किवाड़ लगे हो। उन सत्याग्रहियो का भोजन केन्द्र-कारागार से ही बन कर जाता था। जब श्री महाशय कृष्ण जी का एक विशाल दल (जत्था) उस पथिक-शाला मे पहुँचा, तो उसका भोजन भी केन्द्र-कारागार से ही जाना था। सवा दो सौ के लगभग सत्याग्रही पथिक-शाला मे पहले से ही विद्यमान थे और महाशय जी के सैनिक-समूह के प्रवेश पाते ही पथिक-शाला

× सैण्ट्रल जेल। +सराय-धर्मशाला।

में एक सहस्र से भी अधिक सत्याग्रही हो गये। सत्याग्रहियो के इतनी अधिक सङ्ख्या में एकत्रित होने से वहाँ बहुत ही उल्लास-पूर्ण वातावरण बन गया। अब उस पथिक-शाला में और सत्याग्रहियों के प्रवेशार्थ स्थान न था। लगभग इतने ही सत्याग्रही केन्द्र-कारागार में भी थे।

आचार्य श्री पं० मुक्तिराम जी ने अपने सत्याग्रहियो से विचार विनिमय करके, इस आशङ्का से कि श्री महाशय जी के सत्याग्रही वीर न जाने कब से क्षुधा-पीड़ित हो, एव अभ्यागत सत्याग्रहियो के प्रति कर्त्तव्य की दृष्टि से भी, अपनी कारा के लिये पका समस्त भोजन पथिक-शाला में भिजवा दिया। कारा के सत्याग्रहियो के लिये दोबारा भोजन बनना आरम्भ हो गया। एक सहस्र सत्याग्रहियो के भोजन बनने मे देर लगनी ही थी। कुछ उच्छृङ्खल व्यक्तियो ने वहाँ राज्य के कुप्रबन्ध सम्बन्धी समाघोष× लगाने प्रारम्भ कर दिये। जब सत्याग्रही नियन्त्रण से बाहर हो गये, तो कारापाल+ ने दण्ड प्रहार के लिये भय की घण्टी बजवा दी, जो निरन्तर आधा घण्टे तक बजती रही। यह ८ जून १९३९ की रात्रि का समय था। भय की घण्टी का नाद तारस्वर से पथिक-शाला मे भी सुनाई दे रहा था। उससे सब ने यह अनुमान लगा लिया कि केन्द्र-कारागार मे यष्टि-प्रहार÷ होने वाला है। केन्द्र-कारागार के सत्याग्रही भी उस आतङ्क से आतङ्कित हो चले। समाघोष लगाना सरल है, किन्तु समय आने पर उस का प्रतिरोध करना कठिन है। सब सत्याग्रही कारा कक्षों* में बन्द किये हुये थे और बाहर से ताले लगे थे। थोड़ी ही देर मे सङ्गीनो से सुसज्जित आरक्षिदल" आ पहुँचा। उस समय कारापाल भी परिवर्तित कर दिया गया, किन्तु वह था वही। किस कक्ष के सत्याग्रही उद्दण्ड है, यह पुराने कारापाल को ही अवगत था। अतः दोनों कारापाल उस कक्ष मे आये, जहाँ दण्ड-प्रहार करना था। आरक्षि-दल को पङ्क्ति-बद्ध खड़ा कर दिया गया। ताला खोल कर एक-एक सत्याग्रही को निकाला और वह एक-एक आरक्षी की लाठियाँ और सङ्गीनों की मार खाता हुआ अन्त में अर्धमृत और सञ्ज्ञाहीन होता चला गया। आरक्षी उस समय यह नही देखते थे कि चोट कहाँ लग रही है। कई एक के शिर फूट गये। बहुतो के हाथ टूट गये। दूसरो की टाङ्गें जाती रही और अन्यों की कमर टूट गई। सर्वत्र रक्त की

×नारे। +जेलर। ÷लाठी चार्ज। *जेल वार्डो मे। "पुलिसदल।

धारायें वह चली। लोग चिल्ला रहे थे, रो रहे थे, तडप रहे थे, निस्सञ्ज्ञ पडे थे। कोई सुनने वाला न था।

जब दण्ड प्रहार हो रहा था श्री आचार्य पं० मुक्तिराम जी के कक्ष के सत्याग्रही भी थर-थर काप रहे थे और सोच रहे थे कि उसके पश्चात् इसी कक्ष का क्रम आयेगा, क्योकि वही कक्ष उसके साथ लगता था। उस कक्ष मे ताला नही लगा था। अत महाराज ने सब सत्याग्रहियो से वाहर आ जाने के लिये कहा। सब से आगे वे स्वय बैंठ गये। पश्चात् दूसरी पङ्क्ति मे ब्रह्मचारी भगवान् देव जी और श्री जगदेवसिह जी सिद्धान्ती और उनके पीछे शेष सत्याग्रही बैठ गये। पण्डित मुक्तिराम जी ने सव से गायत्री-जप करने को कहा। सभी जप में रत हो गये। थोडी देर मे आरक्षि-दल उनकी ओर लपका। अभिनव और पुरातन दोनो कारापाल भी साथ थे। उनको देखते ही उपाध्याय जी के साथ सब सत्याग्रही खडे हो गये। महाराज जी सहसा आगे बढे। पुराने कारापाल ने आरक्षियो से कहा—"ठहरो! ठहरो!! यह सभ्य पुरुषो का कक्ष है।" उपाध्याय जी ने आगे बढ कर कारापाल का स्वागत किया। पीछे ही पीछे श्री सिद्धान्ती जी और श्री भगवान्देव जी भी पहुँच गये। प्रसन्न मुख से शिष्टाचार निभाया और वार्तालाप आरम्भ कर दिया। अन्य सत्याग्रहियो ने अपना गायत्री-जप उसी प्रकार से आरम्भ रखा और वह कक्ष, दण्ड प्रहार से मुक्त रहा।

इस काण्ड के पश्चात् पुराना सभ्य कारापाल दूसरे कारागार मे परिवर्तित कर दिया गया। उसके स्थान पर एक क्रूर प्रकृति वाला कारापाल नियुक्त हुआ। अब वहाँ सत्याग्रहियो के साथ अति कठोर व्यवहार अपनाया जाने लगा। दण्ड-प्रहार के पश्चात् दो दिन तक सत्याग्रहियो के कक्ष के ताले नही खोले गये। खाने को भोजन नही दिया गया। यष्टि-प्रहार के दो दिन पूर्व से कुछ सत्याग्रही अनशन पर भी थे। भोजन मे काच मिलाने के फलस्वरूप सत्याग्रहियो की ओर से यह अनशन किया गया था। अत्याचार पर अत्याचार देखने को मिले। जहा परस्पर मे रगड़ होती है, वहाँ अग्नि जन्म लेता है। अग्नि का स्वभाव सर्वविदित है। घायल सत्याग्रहियो को पानी तक नही दिया गया। दण्ड-प्रहार वाले और श्री उपाध्याय जी के कक्ष के मध्य मे एक खिडकी थी। उसमे सीकचे लगे थे। कुछ सीकचे उसमे से निकल सकते थे। रात्रि के समय उस मार्ग से घायल-कक्ष मे श्री प०-

मुक्तिराम जी पहुँच जाते और उनकी सुध लेते, सेवा शुश्रूषा करते। अपने कक्ष के रोगियो से बचा दूध और खिचड़ी ले जाकर उन्हें खिलाते, सन्तोष दिलाते और धैर्य बन्धाते थे।

सामयिक अत्याचारो की बढ़ती हुई प्रगति को देख कर कारागार मे अनशन हुआ ही था, जिसे महाराज ने पारस्परिक विचार विनिमय से तुड़वा दिया। इस कार्य के लिये आपने कुछ ऐसी विशेष व्यक्तियो को ही सम्मति दी, जिन पर वे अपना अधिकार समझते थे। जितने उत्पाती सत्याग्रही कारापाल को दिखाई दिये, उन सभी को दूसरी कारा में भेज दिया गया। शेष रहे सत्याग्रहियों के साथ भी कठोर व्यवहार वर्ता जाने लगा। श्री पण्डित मुक्तिराम जी इन्हे किसी प्रकार की सहायता न पहुँचा सके एतदर्थ इन के साथ लगभग १०० सत्याग्रही जो शिष्ट-पङ्क्ति मे समझे गये, हैदराबाद के विभिन्न कारागारो मे १० जून १६३६ को भेज दिये गये और श्री उपाध्याय जी को हैदराबाद के केन्द्रीय कारागार मे भेज दिया गया। वहाँ उन्हे विशिष्ट कक्ष क्रमाङ्क २ मे रक्खा।

कारागार का यह नियम था कि अपने घर के वस्त्र उतार दो और कारागार के वस्त्र पहन लो। वस्त्र-परिवर्तन काल मे सत्याग्रहियो की झड़ती ली जाती थी। किसी कारागार मे नियम बहुत कठोर होते थे। वे सत्याग्रहियो से पुस्तक भी लेकर रख लेते थे और लङ्गोट तो प्राय. सभी के खुलवा लेते थे। इस झडतो मे श्री पण्डित मुक्तिराम जी का उपनेत्र भी चला गया। जिस के अभाव में उन्हे पढते समय बहुत कष्ट उठाना पडता था।

वहाँ दाल-शाक में मिर्चें अत्यधिक डाली जाती थी। श्री उपाध्याय जी मिर्चो का प्रभाव हटाने के लिये दाल, शाक को भली भाँति धो लेते थे।

वहाँ के सभी कारागारो मे सभी सत्याग्रहियो को गेरू से रङ्ग कर वस्त्र दिये गये। यदि शीघ्रता मे ऐसी व्यवस्था न हो सकी, तो वस्त्र के साथ रङ्गने के लिये गेरू दे दिया जाता था। अत सभी सत्याग्रही साधु-वेष मे ही दिखाई देते थे। साधु और असाधु की वेष-भूषा मे बाह्य भेदक चिह्न न रहा। केवल पूर्व परिचय के आधार पर ही वे एक दूसरे का सम्मान किया करते थे।

यहाँ हैदराबाद की कारा में भी महाराज प्रवचन करने लगे। आपने यहाँ सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास की व्याख्या आरम्भ

की। यहाँ के जन साधारण की दृष्टि से इस समुल्लास की व्याख्या के लिये चयन बहुत महत्त्व रखता था। काराओं मे भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के सत्याग्रही थे और ऐसे भी थे जो बोध के अभाव मे रूढिवाद की नदी मे ही अब तक अपनी नौका को खेते आ रहे थे। प्रथम समुल्लास में वर्णित ईश्वर के नामो की महाराज ने अपने विचित्र विश्लेषण और तर्क के आधार पर ऐसी मधुर-सरस वाणी मे क्रमशः व्याख्या की कि सत्याग्रही सर्वथा गम्भीर होकर सुनते न अघाते थे। प्रतिदिन के इस क्रम में सत्याग्रहियो को भगवान् के नामो की विशिष्ट व्याख्या में बडे अनमोल वचन सुनने को मिलते थे। यद्यपि सामान्य दृष्टि से यह समुल्लास कठिन प्रतीत होता है, परन्तु जब एक गम्भीर विद्वान् अत्यन्त सरल भाषा में कठिन विषय को समझाने के लिये अपनी विशिष्ट कला का प्रदर्शन करता है, तो कठिन विषय भी सुगम बन जाता है। वहाँ प्रवचन के अनन्तर शङ्का-समाधान का अवसर भी उन्हे दे दिया जाता था। ऐसे ही स्थल हुआ करते हैं, जहाँ किसी विद्वान् की विद्वत्ता स्पष्ट लक्षित होती है।

* * *

कारावास के जीवन में भार तनिक भी न्यून न हुआ

कारागार मे सत्याग्रहियो को अतिनिकृष्ट भोजन-पदार्थ दिया जाता था। विशेषत. ज्वार का प्रयोग होता था। कथन मात्र के लिए सप्ताह मे एक दिन गेहूँ की रोटियाँ और एक दिन चावल थे। जिस दिन गेहूँ की रोटियाँ होती थी, उन्हे देख कर कोई यह कल्पना नही कर सकता था कि गेहूँ की भी ऐसी निकृष्ट रोटियाँ हो सकती हैं, जिसका टुकड़ा भी अतिशय कठिनाई से टूटता हो। चावल के दिन सत्याग्रही और भी अधिक व्यथित हो जाते थे। चावल के एक कवल मे लगभग ५० कङ्कर होते थे, जो श्वेत रङ्ग के थे। वे चावलो में आँखों से दिखाई नही देते थे। जिससे उन्हे कोई पहिले ही न निकाल ले। मुख मे कवल रख कर ही अति कठिनाई से उन्हे निकालना पडता था। शेष पाँच दिन ज्वार की रोटियाँ मिलती थी, जो सर्वथा कच्ची रहती थी। बहुत से सत्याग्रही आमवात से आक्रान्त हो गये। गीले आटे की २३२ धान्य (ग्राम) की दो-दो रोटियाँ प्रत्येक सत्याग्रही को मिलती थी। दाल-शाक की भी ऐसी ही व्यवस्था थी। कभी-कभी पटषण, जिसकी रस्सियाँ बनाई जाती हैं, उस के पत्तो का भी शाक बना देते

थे। भोजन की इस अपर्याप्त और निकृष्ट अवस्था से सब के स्वास्थ्य गिर गये। पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय केवल १॥ (डेढ़) रोटी खाते थे। आश्चर्य है कि उन का स्वास्थ्य तनिक भी न्यून न हुआ। कारावास मे सब सत्याग्रहियो का शरीर-भार लिया जाता था।

वृक्षों में जीव विषयक शास्त्रार्थ

"वृक्षों मे जीव है अथवा नही"—इस विषय पर श्री पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय की अध्यक्षता मे शास्त्रार्थ कराने का निश्चय किया गया। एक पक्ष ने "वृक्षो मे जीव है"—यह मत स्थापन करने की प्रतिज्ञा की। जिस मे प्रमुख श्रीयुत जगदेवसिंह जी "सिद्धान्ती" थे। द्वितीय पक्ष ने "वृक्षो में जीव नहीं है"—यह मत स्थापन करने की प्रतिज्ञा की। सब ने अपने-अपने पुष्ट प्रमाणो एव तर्क प्रहारों से विरोधी पक्ष का छेदन किया। जब एक पक्ष दूसरे पक्ष का खण्डन कर, स्वपक्ष की स्थापना करता था, तो श्रोतृगण उसे न्याय्य समझने लगते थे और जब दूसरा दल प्रथम दल की अपने पक्ष मे दी गई युक्तियो तथा प्रमाणो का प्रत्याख्यान करते हुए स्वपक्ष की स्थापना करता था, तो सभासद् इसे ही ठीक समझने लगते थे। पर्याप्त समय तक एक का दूसरे पर प्रहार और अपने पक्ष का सरक्षण चलता रहा। यदा-कदा यह भी प्रतीत होने लगता था कि अमुक पक्ष के जीतने के अधिक लक्षण प्रतीत होते हैं, किन्तु अन्तिम निर्णय के लिए सब श्री महाराज जी की न्याय-व्यवस्था की प्रतीक्षा मे आतुर (व्याकुल) थे। निर्णय देने के लिये जब आप ने उपस्थित श्रोतृजन समुदाय को सम्बोधित किया तो उन के वक्तव्य को सुनने के लिये उपस्थिति उसी समय शान्त नीरव एव ध्यानाकृष्ट-सी बन गई और वह आगे-आगे खिसकती हुई अधिक निकट होने लगी। उपाध्याय जी ने कहा—"इस प्रकार की सभाओ का आयोजन, जिस मे परस्पर दो विरोधी पक्ष उपस्थित किये जावें, यही कारागार मे ही नही, अपितु कारागार से बाहर जाकर भी करना चाहिये। अपनी बुद्धि को प्रखर बनाने के लिये स्वमन्तव्य मत से दूसरा मत भी पारस्परिक शास्त्रार्थ मे ले लेना चाहिये। ऐसे शास्त्रार्थों मे जो निर्णय होता है, उस मे जय-पराजय का प्रश्न ही नही उठता। यह सभा भी इसी प्रकार की सभा समझनी चाहिये। इस मे कोई भी पक्ष अपने को जयी एव पराजयी न समझे।

वृक्षो मे जीव है वा नही, इसका अन्तिम निर्णय आपने अध्यक्ष के हाथो में सौंपा है। ऐसी अवस्था में अध्यक्ष का अपना कोई निर्णय

नही होता। वह अपना निर्णय दोनो पक्षो के बलवान् तर्क एव पुष्ट प्रमाणो के आधार पर देता है। आप सब ने चुन कर जिन-जिन प्रतिनिधियो को अपना-अपना पक्ष ग्रहण करके इस सभा मे एक निर्णय के लिये उपस्थित किया है, वे दोनो ही पक्ष एक दूसरे को अभिभूत न कर सके। किसी ने भी दूसरे पक्ष को स्वीकार नही किया।"

इतना कह चुकने के अनन्तर श्री उपाध्याय जी सभा-भङ्ग करने वाले ही थे कि पार्षदो की ओर से शब्द सुनाई देने लगे, "अब आप स्वतन्त्र रूप से अपना मन्तव्य प्रकट कर दीजिए।" उनके इस आग्रह पर पण्डित मुक्तिराम जी ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा, कि "आज के वैज्ञानिक युग मे बुद्धि जीवी मनुष्यो से यह बात तिरोहित नही कि वृक्ष भी हमारी भाँति ही भूख-प्यास, औष्ण्य-शीत, लज्जा, उत्तेजना, प्रसन्नता एव म्लानता अनुभव करते है। रुग्ण होने पर औषधोपचार से वे नीरोग भी हो जाते है। इन सब का विश्लेषण महात्मा जगदीश चन्द्र वसु ने तद्विषयक यन्त्रो का आविष्कार कर के कर दिया है। वेद मन्त्र भी उन की तथ्यता को प्रमाणित करते है। अथर्ववेद १ ३२ १ मे घोषित किया है कि इन मे प्राणन शक्ति है और जहाँ प्राणो की चेष्टा है, वही जीव है। अथर्ववेद के ६-४४-१ मे भी आता है, "अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्ना." यहाँ 'स्वप्न' शब्द स्पष्ट रूप मे चेतनता का द्योतक है। किन्तु यह चेतनता इनकी वर्तमान मे नही है। 'ऊर्ध्व' अगले जन्म मे होवेगी। महर्षि दयानन्द भी 'वृक्षो मे जीव है' इसी सिद्धान्त के पोषक है। उन्हो ने ऋग्वेद प्रथम मण्डल २३ सूक्त के २१ और २४ वे मन्त्र मे दर्शा दिया है कि वृक्ष आदि बिना प्राणो के शरीर धारण नही कर सकते। उन्हे अपना जीवन धारण करने के लिए वे सब वस्तु अपेक्षित है, जो एक मनुष्य के लिए आवश्यक है। वेद के अद्वितीय व्याख्याता ऋषि दयानन्द ने इन्ही मन्त्रो से यह भी स्पष्ट किया है कि वृक्षो मे भी मानस अग्नि विद्यमान है, जो इन्हे इन शरीरो के पश्चात् दूसरे शरीरो मे पाप और पुण्य के फल दु:ख और सुख का भोग कराता है। यह मानस अग्नि एक शरीर से दूसरे शरीर मे साथ-साथ जाता है। कुछ महानुभाव 'वृक्षो में जीव' इस कारण नही स्वीकार करते कि उन्हे हिंसा दोष से दूषित होने का भय है। पर उनका यह भय निराधार है। सब प्राणियो के शरीरो की रचना एक-सी नही होती। भगवान् ने इन्हे ऐसा ही बनाया है कि ये समुचित रूप से काटते-छाँटते रहने पर ही अपने जीवन को विकसित कर पाते है। इनके शरीरो का सौष्ठव इनकी काँट-छाँट पर ही निर्भर है।"

काराओ मे जब सत्याग्रहियो की सङ्ख्या बहुत अधिक हो गई और रहने के लिये स्थान कम पड़ने लगा, तो कारापाल अनेक मिषो से सत्याग्रहियो को निकालने लग गये। सब से पूर्व रोगी रहने वाले, निर्बल-काय एव वृद्धो को कारा-मुक्त किया जाने लगा। पर इतने मात्र से काम चलने वाला न था। जितने सत्याग्रही मुक्त किये जाते थे, उन से कही अधिक प्रवेश पा जाते थे। सत्याग्रहियों की सङ्ख्या सब काराओ मे अठारह सहस्र तक पहुँच चुकी थी। राज्य पर दैनिक व्यय-भार बहुत अधिक था। अतः मुक्त किये जाने वालो की पङ्क्ति में वे लोग भी आने लगे, जिन के शरीर पुष्ट तो थे, पर कुछ सुडौल नहीं थे, किसी की पीठ उभरी हुई, तो किसी की छाती। ऐसे सत्याग्रहियों के लिये भी काराओ में स्थान न रहा और ऐसी व्यक्तियों के लिये भी न रहा जिन के बाल श्वेत होने प्रारम्भ हो गये थे। वे भी वृद्ध-पङ्क्ति में सङ्ख्यात कर लिये गये। उनका दो वर्ष का दण्ड दो महीने में पूरा समझ लिया गया। श्री मुक्तिराम जी पर ही यही विधान लागू हुआ और उन्हें भी वहाँ से छोड़ दिया गया, कारागृह से मुक्त होकर राज्य की सीमा पर वर्तमान एक स्नातक की प्रेरणा से श्री उपाध्याय जी नागपुर मे होने वाली सत्याग्रही-गोष्ठी मे जा सम्मिलित हुए। इसके अनन्तर सत्याग्रह स्थगित कर दिया, क्योकि सत्याग्रह के कारणो पर से प्रतिबन्ध हटा लिया गया था।

आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

न्यास प्रकाश

कारागार मे सत्याग्रहियो को गेरुवे वस्त्र पहराये जाते थे। कारा-गार से मुक्ति होने की सम्भावना मे ही श्री मुक्तिराम जी ने विचार कर लिया था कि अब बाहर जाकर श्वेत वस्त्र क्या धारण करने है ? अभी तक तो गैरिक वस्त्रो से अपने को बचाये रखा था। पर जब कारा में इन से नही बच सके तो इन वस्त्रो में अन्तर्हित चतुर्थ आश्रम की मर्यादा को स्वीकार कर लेना ही अब उचित है। इससे पूर्व काशी-जीवन के सहृदय मित्रो एव अनेक आर्य महानुभावो के बहुत वार कहने पर भी आप अस्वीकार करते रहते थे।

इस सन्यास की दीक्षा के लिए उस समय आप की दृष्टि वीतराग, सदाचार के धनी, श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज पर पडी और उन की सेवा मे उपस्थित हो कर अपना विनीत निवेदन प्रकट कर दिया। स्वामी जी महाराज को उन दिनों कुछ कार्य विशेष था, अतः उन्हो ने एक वर्ष ठहर जाने के लिए विशिष्ट आग्रह किया। महाराज ने तथास्तु कह कर चरण स्पर्श किये और चले आये।

पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय में मुसलमानों की विशेष श्रद्धा

ब्रह्मचारी भगवान्देव जी पानीपत की ओर जाने के लिये स्वामी शिवानन्द जी के साथ नरेला सयान-स्थात्र* से एक कोष्ठ+ मे चढे। वह सयान-कोष्ठ यात्रियो से पूर्णत. भरा हुआ था। उसमे बहुत से यात्री खड़े-खडे यात्रा कर रहे थे। अत. उन दोनो को भी खडा ही होना पड़ा। दूसरे कोष्ठ मे सेना चल रही थी। सन् १९३९ के युद्ध के दिन

*रेलवे स्टेशन। +रेल का डिब्बा।

थे। उस कोष्ठ में प्राय: मुसलमान थे। श्री भगवान् देव जी के समक्ष बैठे हुये मुसलमानो ने, उन्हे गुरुकुल जैसी साधारण वेश भूषा में देख कर कहा—"क्या आप गुरुकुल मे रहते हैं?" "आप गुरुकुल को कैसे जानते हैं?" यह पूछे जाने पर वे बोले—"हमारे यहाँ भी चोहाभक्ताँ में एक गुरुकुल है।" ब्रह्मचारी भगवान् देव जी ने पूछा—"आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी का?" इतना सुनना था कि वे अपना स्थान छोड़-कर खडे हो गये और अति सम्मान पूर्वक दोनों को बैठने का स्थान दे दिया। फिर वे भी अपने दूसरे मुसलमान भाईयो में स्थान पा कर बैठ गये। ब्रह्मचारी भगवान्देव जी ने उस समय उन मुसलमानो से जो बातें की, उन से श्री महाराज के प्रति उन की विशेष भक्ति अभिव्यक्त होती थी। वे महाराज को, अपना धर्मगुरु, देवदूत* समझते थे।

आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय में मुसलमानों की भी इतनी भक्ति देखकर ब्रह्मचारी भगवान्देव जी को अतीव आश्चर्य हुआ कि जिस व्यक्ति का मुस्लिम जाति में भी इतना प्रभाव है, सचमुच उस महापुरुष का जीवन कितना आदर्श होगा। उस समय से ब्रह्मचारी जी की श्रद्धा श्री महाराज में और भी अधिक हो गई और अपने जीवन को उन्नत करने के लिए आदर्श पुरुष श्री महाराज को ही लक्ष्य करते रहे।

अगस्त १६३६ में हैदराबाद सत्याग्रह में विजय लाभ करने के उप-रान्त गुरुकुल भवनो की आधारशिला का न्यास किया गया। इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर लाला रामलाल, सीताराम और नरेन्द्रनाथ-मोहन, महाशय खेमराज जी आदि गुरुकुल प्रबन्धक सदस्यो ने मनुष्यों के गुरुकुल तक गमनागमन के लिए परिवहण द्वारा नि शुल्क यात्रा का प्रबन्ध कर दिया। इस से सहस्रों की सङ्ख्या मे व्यक्तियाँ पहुँच गयी और उन सब की उपस्थिति मे शिलान्यास का कार्य सम्पन्न हो गया। स्थान के औचित्य का निरीक्षण करके जन-समूह गद्-गद् हो गया। पेशावर और रावलपिण्डी निवासियों ने मुक्त हस्त से अंशदान प्रदान किया। इस के अतिरिक्त निवास कक्षो के बचन दिये जाने प्रारम्भ हो गये। आङ्गल महाविद्यालय विभागीय व्यक्तियों ने गुरुकुल-विभागीयों की अपेक्षा भवन निर्माण मे अधिक अर्थ (धन) प्रदान किया। धन

*पीर, पैगम्बर।

इतना एकत्रित हो गया कि निर्माण कार्य को श्रमिक (भृत्य) अधिक बढाकर निर्बाध रूप से चालू कर दिया गया। इन्ही दिनो श्री महाशय कृष्ण जी भी वहाँ पधारे। उन्हे निर्माण-कार्य की इतनी तीव्र गति देख कर अतिशय आश्चर्य हुआ। भवन निर्माण में अपनी ओर से चार सौ रुपये देते हुये श्री महाशय जी ने कहा—"पण्डित मुक्तिराम जी जैसे तपस्वी पुरुषो से ही ऐसे कार्य इस रूप में सम्भव है।"

गुरुकुल-भवनो का रेखा चित्र ऐपटाबाद निवासी रायबहादुर श्री लालचन्द जी सेवा-निवृत्त अभियन्ता ने प्रस्तुत किया था। उस के आधार पर भवनो का ऐसा निर्माण हुआ कि, जो आपात-स्थिति उपस्थित होने पर दुर्ग का काम भी दे सके। कुछ कक्ष भू-गृह रून मे भी निर्माण किये गये। चारो कोनो पर प्रणलिका से गोली-विसर्जन-गृह भी बनाने की योजना विचाराधीन रख ली गई।

इस प्रान्त मे प्रायः हिन्दू मुस्लिम झगडे होते ही रहते थे और भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व तक मुसलमानो की ओर से किसी समय भी उत्पात होने की सम्भावना वहाँ विद्यमान रहती ही थी। गुरुकुल भवनो के इस निर्माण का कार्य श्री लाला शान्तिस्वरूप जी चण्डहोक ने अपने हाथो मे लिया। उन की कार्य-प्रणालो और कुशलता से आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी अतीव प्रसन्न हये। वे दृढ आर्य थे। भ्रमणार्थ जाते समय यवनो ने शान्तिस्वरूप जी से पूछा—"आप यहाँ गुरुकुल क्यो बना रहे है?" लाला जी ने उत्तर दिया—"हम यहा आर्य उत्पन्न करेंगे।" "आर्य कौन होते हैं?" यह पूछने पर उन्होने कहा–"जो ईश्वर के अतिरिक्त किसी को नही पूजते और किसी से नही डरते।" उनके वहाँ से चले आने पर यवन यह कहते सुनाई दिये—"ठीक है, हैदराबाद मे आर्यों ने सत्याग्रह करके यह प्रमाणित कर दिया है कि वे किसी से नही डरते।" ऐसे उत्साही धर्मनिष्ठ शान्तिस्वरूप जी जब गुरुकुल से चलने लगे तो आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी का जी भर आया।

इस प्रकार जब कुछ कक्ष बन कर गुरुकुल का कार्य सञ्चालन योग्य हो गये, तो पुरातन चोहाभक्ताँ गुरुकुल को समाप्त कर दिया गया और वहाँ की श्रेणिया नव-निर्मित गुरुकुल की शोभा बढ़ाने लगी।

लोकैषणा से शून्य

गुरुकुल प्रबन्धक-समिति ने यागशाला के चहुँ ओर अमृतसर के

'दुर्याना' मन्दिर के समान एक सरोवर (तालाब) के निर्माण की योजना बनाई। उसका नाम रामकुण्ड, हनुमानकुण्ड की भाति श्री मुक्तिराम जो के नाम पर 'मुक्ति-कुण्ड' रखने का परामर्श दिया गया। पण्डित मुक्तिराम जी ने सरोवर की योजना तो स्वीकार की, किन्तु 'मुक्ति-कुण्ड' नाम न रुचा। अत. वह योजना मनुष्यो के हृदय मे ही सिसकती रही। क्रियान्वित न हुई।

योगनिष्ठ श्री प० मुक्तिराम जी के चरणों में आचार्य मेधाव्रत जी का आगमन

ई० सन् १६४० के मार्च मास में कविरत्न श्री पं० मेधाव्रत जी आचार्य आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा, योगी विशुद्धानन्द जी महाराज की खोज मे अपने पुण्यारण्य आश्रम नान्दूर, तालुका येवला, मण्डल नासिक से दिल्ली होते हुये अमृतसर और लाहौर गये। लाहौर वैदिक आश्रम मे ठहरे। वहाँ श्री पं० ऋषिराम जी वैदिक धर्म प्रचारक से भेट हुई और आचार्य श्री विश्वबन्धु जी शास्त्री साहित्य-अधिस्नातक से परिचय हुआ। दोनो ने श्री विशुद्धानन्द जी से योग सीखने मे उत्साहित नही किया। पश्चात् वे श्री प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु आचार्य 'विरजानन्द, ब्रह्मचर्याश्रम' से रावी नदी के तट पर मिले। दोनो ही महर्षि के परम भक्त परस्पर परिचय पाकर एक दूसरे से गले मिले। परस्पर वार्तालाप में जिज्ञासु जी ने भी श्री विशुद्धानन्द जी से योग सीखने में अरुचि दर्शाई और कहा, "योग मे निष्णात प० मुक्तिराम जी से ही यौगिक प्रशिक्षण लेने की मैं आपको अनुमति देता हूँ।" अत. निश्चितमति होकर कविरत्न जी लाहौर से सीधे विशेष संयान* द्वारा रावलपिण्डी जा पहुँचे। लुण्डा विपणिस्थ+ आर्य समाज मन्दिर मे रात के १२॥ बजे वे पहुँचे। सब द्वार अवरुद्ध थे, अतः उन्होने बाहर से ही उपाध्याय जी का नाम लेकर दो-चार वार पुकारा। उपाध्याय जी नीचे आये और द्वार खोला। श्री प० मेधाव्रत जी को देखकर वे अति प्रसन्न हुये। श्री पं० मेधाव्रत जी ने उनके चरणो में अपने उपस्थित होने का प्रयोजन कह सुनाया। पूज्य उपाध्याय जी ने उनके सोने का प्रबन्ध कर दिया और उनसे कहा—"मैं १२ बजे ही अमुक कार्य करके सोया था अत.

---

*रेलगाडी। +बाजार के।

आपको अनेक वार पुकारने का कष्ट हुआ। अच्छा ! अब आप शयन करें। प्रातः यहाँ से १३ सहस्रमान× की दूरी पर 'रावल' ग्राम के निकट गुरुकुल मे चलेगे।

प्रातः पूज्यपाद आचार्य श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय कविरत्न जी को काश्मीर महापथ से रावल गुरुकुल ले गये। गुरुकुल के चारो ओर के रमणीय सृष्टि सौन्दर्य को निहार कर श्री कविरत्न जी का हृदय आनन्द विभोर हो गया। उन्होने श्री आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय से नियमपूर्वक प्रात. साय योग-साधना सीखना प्रारम्भ कर दिया। आचार्य जी, कवि जी को जो-जो क्रिया = योगानुष्ठान बतलाते गए उस-उस को कवि जी तत्परता से ग्रहण करते गए। प्राणायामपूर्वक बाह्य-आभ्यन्तर कुम्भक, मूलबन्ध; उड्डीयान बन्ध तथा जालन्धर बन्ध, आसनसिद्धि, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की सिद्धि पर्यन्त कविरत्न जी जा पहुँचे। कवि जी गुरुदेव की बताई हुई क्रिया के अनुभव उन्हे बतलाने लगे। तब गुरुदेव ने कहा कि पण्डित जी 'गोप्यं गोप्य नितान्तं गोप्यं' अर्थात् योग-अनुभूतियाँ सर्वथा गुप्त रखनी चाहिये। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास से वे दो घण्टे समाधि-योग का रस अनुभव करने लगे। श्लोक एवं कविताएँ प्रभु-भक्ति रस से सनी स्वत. ही हृदय से प्रकट होने लगती और कवि जी रोमाञ्चित होकर घण्टो मौन धारण किए रहते।

गुरुकुल का उत्सव उपस्थित हुआ। योगनिष्ठ गुरुदेव श्री पण्डित मुक्तिराम जी के आदेश से उत्सव पर कविरत्न जी ने प्रवचन किया। उत्सव पर आये हुए अनेक गण्य, मान्य आर्यपुरुष कवि जी के योगोल्लसित शान्त शील को देखकर एव वार्तालाप सुनकर प्रसन्न हुये। उनको लौटते समय 'रावलपिण्डी' मे अपने घर पर आने का आग्रह-पूर्वक निमन्त्रण दिया। कवि जी ने स्वीकार किया।

वार्षिक महोत्सव समाप्त होने पर कविरत्न जी योगिवर ब्रह्मनिष्ठ श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय से, स्वदेश जाने की स्वीकृति माँगने गये। तब पूज्य आचार्य जी ने कवि जी से कहा—"पण्डित जी ! आप इस गुरुकुल के आचार्य बन कर यहाँ रहो। हमारे अध्यापक अभी अल्प-वयस्क हैं। आपका अनुभव इनको उत्साहित करता रहेगा। मैं संन्यास

× किलो मीटर।

दीक्षा लेकर इस गुरुकुल को उन्नत करने मे सदा अपना सहयोग देता रहूँगा और आपकी योगसाधना मे भी सहायता करता रहूँगा।"

श्री कविरत्न मेधाव्रत जी ने अति नम्र होकर निवेदन किया—"पूज्य गुरुदेव ! मैं दक्षिण में नासिक मण्डलान्तर्गत येवला-नगर की समीपवर्तिनी अगस्त्य गिरिमाला की उपत्यका मे अपना 'योगाश्रम' वना कर इस साधना को बढाता रहूँगा। अभी मुझे 'दयानन्द दिग्विजय' का उत्तरार्द्ध भी रचना है। कुछ मास दक्षिण मे वेद प्रचार भी करता रहूँगा। अतः इस गुरुकुल के आचार्य पद को स्वीकार करने के लिये इस शिष्य को आप विवश न कीजिये।"

यह सुनकर गुरुदेव श्री मुक्तिराम जी ने शिष्य श्री मेधाव्रत जी से कहा—"पण्डित जी ! जिस आचार्य पद को सन्यासी भी नही छोड सकते, उसको आप त्याग रहे हो, यह देख मेरा अन्तःकरण अतीव प्रसन्न हुआ। आप जाइये, दक्षिण मे अपना योगाश्रम वनाकर योग-साधना अष्ट मास करके चार मास वैदिक धर्म प्रसार करते रहिये। ईश्वर आपको इस शुभ कार्य मे सहायता दे और आप अपना अभीष्ट लक्ष्य सिद्ध कीजिये। आपका कल्याण हो।"

पूज्य गुरुदेव योगीन्द्र श्री प० मुक्तिराम उपाध्याय से स्नेह भरी विदाई लेकर आचार्य श्री प० मेधाव्रत जी जेहलम गुरुकुल, अमृतसर, हरिद्वार काङ्गडी गुरुकुल होते हुए दिल्ली के मार्ग से नासिक येवला चले गये। वहाँ अपने सङ्कल्प के अनुसार अगस्त्य गिरि की उपत्यका मे 'दिव्यकुञ्ज योगाश्रम' वनाकर अपने अनुज श्री प० सत्यव्रत जी तीर्थ के साथ गुरुदेव द्वारा निर्दिष्ट पद्धति से साधना में लग गये।

यौगिक चमत्कार

श्री प०मुक्तिराम जी उपाध्याय गुरुकुल के कार्यार्थ रावलपिण्डी मे पधारे। उस समय उनके पैर मे ऊपर की ओर पञ्जे मे चोट लगी हुई थी। वे इसीलिये पैर मे जूता पहने हुए नही थे। वे श्री सेठ चिरञ्जीतराय साहनी के आपण* पर पधारे। उनको नगे पाव देखकर सेठ जी बोले—गुरुजी ! आप नगे पाव क्यो हैं ? पण्डित जी

*दुकान।

ने पैर की चोट पर उनका मन आकर्षित किया तो उन्होने कहा "चलिये, अभी आपण* से वस्त्रोपानत्+ ले लेते हैं, वह ठीक रहेगा।" साहनी महोदय अपने विश्वस्त कर्मचारी को जो ३० वर्ष से उनके आपण* पर काम कर रहा था और जो सात रुपये वेतन से सत्तर रुपये वेतन तक आ चुका था, उस को विक्रयशाला* सौप कर श्री पण्डित जी के साथ पादत्राण+ क्रय करने आ गये। वस्त्रोपानत्+का मोल तोल हो ही रहा था कि पण्डित मुक्तिराम जी उसी क्षण बोले—"आपकी बहुत हानि हो गई।" साहनी जी ने कहा—'गुरु जी! इसमें मेरी क्या हानि हो गई? कुल दो अढाई रुपये का जूता है,' और फिर मन ही मन विचारने लगे, "मैं लक्षाधीश हूँ। पण्डित जी भी यह बात जानते हैं फिर आज यह क्या पहेली-सी कहने लगे।" पण्डित जी ने साहनी जी के कथन का उत्तर न देकर स्वय कहा—"कोई बात नही, मिल जायेगा।" साहनी जी को समस्या समझ में नही आई। जब वे जूता दिलवा कर अपने आपण* पर आये, तो एक फल-विक्रेता ने जो उनके आपण* के समक्ष फल बेचा करता था और वह भी इसीलिये वहाँ बैठता था कि साहनी जी उससे प्रतिदिन पाँच-सात रुपये के फल क्रय कर लेते थे, उन की विक्रयशाला में प्रवेश कर, वस्तु झाडने वाला झाडन उठा कर उसकी डण्डी से साहनी जी के आपण-कर्मचारी के सिर पर रखी हुई पगड़ी उछाल दी। पगडी के बीच मे लगे तुर्रे के नीचे से दो प्रद्वादशक भ्रमि ‡ गिर पडे। इस दृश्य को देख कर वे अति चकित हुये। आपण भृत्य द्वारा ऐसी चोरी कर लेने की उन्हे आशा भी नही थी। तब श्री मुक्तिराम जी की बात उन्हे ध्यान मे आ गई कि पादत्राण* क्रय करते समय उनका यही सङ्केत था। जब इन्होने महाराज की यह घटना घर पर आकर सुनाई तो सम्पूर्ण ही परिवार उस दिन से महाराज का विशेष भक्त हो गया और उन्हे ऋषि समझने लगा।

इसी प्रकार एक दिन आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय ने, जो आर्य समाज रावलपिण्डी लुण्डा बाजार मे विराजमान थे, अपने शिष्य मोदप्रकाश से कहा—"मोद, जाओ, जौ की बाले ले आओ।" मोदप्रकाश बोला—"आचार्य जी, इस आश्विन मास मे, जब कि जौ बीजे जाते हैं, जौ की बाले मिलना तो असम्भव है। आप कहे, तो आपण से जौ ला सकता हूँ।" इस कथन पर आचार्य जी ने उसकी ओर ऐसा

---

*दुकान। +कपडे का जूता। ‡दो ग्रास स्क्रु पेच=२×१४४।

दृष्टिपात किया कि वह तत्काल उठ कर चल दिया। वह मुख्य द्वार से बाहर निकल कर यह भी न सोच पाया कि किधर जाऊँ, उसके कानों में शब्द आया—"लो जी, जौ की बालें" सम्मुख खड़ी व्यक्ति के हाथ से जौ की बालें लेकर मोदप्रकाश कुछ क्षणो तक वही जडवत् बना रहा। जब उसने आचार्य जी को जाकर बालें दी, तो वे बोले, "तू तो कहता था बाले कहाँ से मिलेगी ? ये कहाँ से लाए हो ?" आचार्य जी के इस वचन पर वह सर्वथा निरुत्तर था ! मौन था !!

गुरुकुल आङ्गल शिल्प विद्यालय की स्थापना

जब गुरुकुल के पर्याप्त भवन बन कर निवास योग्य हो गये, तो महाशय कृष्ण जी आदि के सुझाव से आचार्य श्री पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय ने उनमें ऋषि-प्रदर्शित पाठ्य-प्रणाली के स्थान पर गुरुकुल आङ्गल विद्यालय की स्थापना कर दी। जिसमे शिल्प कला को भी स्थान दिया गया। ऐसा करने में निम्न विचारधाराये मन में स्थान पा रही थीं—

१—रहन-सहन गुरुकुल पद्धति का ही होगा।

२—सब छात्रों को वैदिक सिद्धान्तों का बोध धर्म-शिक्षा के रूप में करा दिया जायेगा।

३—गुरुकुल मे आर्य जगत् से बाहर के सनातनी, सिक्ख, मुसलमान तथा इतर जातियाँ भी वैदिक सिद्धान्तो से परिचित हो जायेगी।

४—गुरुकुल छात्रो की अपेक्षा आङ्गल विद्यालय के छात्र अधिक सङ्ख्या में होने से वैदिक सिद्धान्तों का जनता में अधिक प्रचार होगा।

५—जितना परिश्रम गुरुकुल सञ्चालनार्थ धन-सङ्ग्रह आदि कार्यों में किया जाता है उतना उस पद्धति मे अपेक्षित नही है।

६—अवशिष्ट शक्ति का किसी अन्य रूप से सदुपयोग किया जा सकता है।

७—गुरुकुल आङ्गल-शिल्प विद्यालय में शिल्प कला का प्रबन्ध भी किया जायेगा। इससे विद्यार्थी जीवन की भविष्यत् चिन्ता से भी मुक्त हो जायेंगे।

८—विद्यार्थियो को एक पक्षीय बोध न होकर बहुमुखापेक्षी होगा। जिससे वे सासारिक कृत्यो में भी कुशल सिद्ध होगे।

९—गुरुकुल आङ्गल शिल्प विद्यालय के वातावरण मे रह कर आर्य सिद्धान्तो के दृढ विचारो में रङ्ग जाने से, जब वे सासारिक कार्यों में प्रवृत्त होगे, तो उनके सम्पर्क से अधिकाधिक जनता आर्य सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकेगी।

१०—थोड़ा सस्कृत पढना भी सबके लिए अनिवार्य होगा। इससे दूसरी जातियाँ भी संस्कृत का अध्ययन कर सकेंगी।

ये इतने कारण थे जिन्होंने पूर्व सञ्चालित गुरुकुल के स्थान पर आङ्गल शिल्प विद्यालय खोलने को प्रेरित किया। समय आने पर श्रेणियाँ उपर्युक्त उद्देश्यो को ध्यान मे रख कर चालू कर दी गयी।

गुरुकुल आङ्गल-शिल्प विद्यालय का चालू होना था कि विद्यार्थी टिड्डी दल की भाति प्रविष्ट होने लगे। रावलपिण्डी निवासियो की श्रद्धा आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय में पूर्व से थी ही। उन्होने अपने बच्चो को शिक्षालयो से उठा कर इसी विद्यालय मे प्रविष्ट करा दिया। ऐसा करने मे अभिभावको को निम्न लाभ प्रतीत हुये—

१—घर से दूर रह कर बच्चे अध्ययन मे विशेष रुचि दिखायेंगे।

२—जङ्गल का जलवायु स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद होगा।

४—सदाचारी अध्यापको के मध्य रात दिन रहते हुये उत्तम जीवन का निर्माण होगा।

४—अपनी वैदिक धर्म की शिक्षा से वञ्चित नही रहेगे।

५—उस गुरुकुल आङ्गल शिल्प विद्यालय मे हमारा अपना ममत्व होगा।

६—समय-समय पर अपने बालको से मिलने के लिये जाने पर उस पुण्य भूमि के दर्शनो का लाभ उपलब्ध होगा, वह हमारे लिए एक तीर्थ-समान होगा।

श्री मुक्तिराम जी उपाध्याय की ख्याति पेशावर, कोहाट, बन्नू, जम्मू आदि दूर-दूर तक थी। उनमे से जो इतनी दूर अपने सन्तान भेजने मे समर्थ थे, जैसे-जैसे उन लोगों को श्री पण्डित मुक्तिराम जी की ओर से आङ्गल शिल्प विद्यालय के उद्घाटन के समाचार प्राप्त हुये, वैसे-वैसे वे भी इसी विद्यालय का आश्रय लेने लगे। अधिकाश विद्यार्थी जो दूर के कहला सकते हैं, पेशावर के थे।

यद्यपि मुसलमानो को यह ज्ञात था कि गुरुकुल आङ्गल शिल्प-

विद्यालय में हमारे बालको को सस्कृत तथा आर्य धर्म के सिद्धान्त भी पढाये जायेंगे, तथापि उन्होने अपने बालक इस विद्यालय मे इसी कारण प्रविष्ट कराये कि आचार्य मुक्तिराम जी के सम्पर्क मे हमारे बच्चे मनुष्य तो बन ही जायेंगे। उनकी यह भावना आचार्य मुक्तिराम जी मे प्रगाढानुराग तथा आचार्य जी की निष्पक्षता की परिचायिका है।

कुछ ही दिनो मे वह विद्यालय अपने पूर्ण यौवन के उल्लास में विकसित होने लगा।

अध्यापक-वर्ग मे श्री बालकृष्ण जी का सहयोग स्तुत्य था, वे अपने गुणगरिमा से महाराज के कृपापात्र थे।

आदर्श आचार्य श्री पण्डित मुक्तिराम जी को मानव जीवन के निर्माण की एक तडप थी। वे मनुष्य-जीवन को प्रत्येक दिशा में ऐसा जगमगाता देखना चाहते थे, जो सम्पूर्ण विश्व का कुशल नेतृत्व कर सके। रात्रि की प्रशान्त वेला मे वे सोचने लगे—"यदि इस गुरुकुल आङ्गल शिल्प विद्यालय के वातावरण मे शिक्षण प्राप्त करके भी अन्त मे विद्यार्थी अपने आदर्श पर स्थिर न रहे, गुरुकुल के हितैषी पारस्परिक सौहार्द्य अभिव्यक्त न कर सके, दानी महानुभाव स्वय दान मे प्रवृत न हो, गार्हस्थ्य जीवन मे रहकर सेवा-वृत्ति का उदय न हो और कष्ट आने पर मित्रो मे पारस्परिक सरक्षण की भावना न उपजे, तो यह नूतन परीक्षण केवल प्रवञ्चना मात्र ही है। जिसे इन शब्दों मे अभिव्यक्त कर सकते हैं—

उद्‌बोधन

दिनकर के शुभ कर कमलो को, छूते ही हँस पडे कमल।
यदि यह रहस्य नही पहचाना, तो है सब ज्ञान वृथा तेरा ॥१॥
रजनीकर चमके नभ तल पर, हँस पडी कुमुदिनी भूतल पर,
यह सङ्गम सूत्र नही मन मे, तो है सब ध्यान वृथा तेरा ॥२॥
मधुकर गण देख खड़े दर पर, मधुकोष खुले सब कमलो के।
यदि यह उमङ्ग उल्लास नही, तो है सब दान वृथा तेरा ॥३॥
फल-सम्पत् झोल भरे तरुवर, झुक रहे अतिथिगण चरणो मे।
यदि विकसी नहीं भावना यह, तो है धन-मान वृथा तेरा ॥४॥
कोमल-दल-अञ्जलि मे बन्धकर, अलि मौन रहा बन्दी गृह मे।
यह मीत सुरीत गही न सखे, सखिता गुणगान वृथा तेरा ॥५॥

दुर्घटना से संरक्षण

वैशाखी पर गुरुकुल विद्यालय का दूसरा उत्सव हुआ। उत्सव से आठ दिन पूर्व यज्ञ आरम्भ हो गया। यज्ञ के यजमानो के लिये नियम था कि जो यजमान जिस दिन यजमान का आसन ग्रहण करे, उसे प्रथम रात्रि मे गुरुकुल ही आकर शयन करना चाहिये, जिससे आवश्यक नित्य कर्मो से निवृत्त होकर यज्ञ मे ठीक समय पर सम्मि-लित हो सके। श्री चिरञ्जीतराय साहनी, रात्रि को न पहुँच कर दूसरे दिन प्रातः दो तागे लेकर समस्त परिवार सहित हवन के समय से पूर्व ही पहुँच गये और अपना आसन ग्रहण कर लिया।

यज्ञ की समाप्ति पर घर की ओर प्रत्यावर्तन के समय श्री आचार्य प० मुक्तिराम जी भी उनके साथ तागे मे बैठ लिये। उन्हे गुरुकुल का कुछ काम नगर मे करना था। चलते-चलते मार्ग मे मण्डल रथ्या* पर एक गहरा नाला आया। उस पर मण्डल रथ्या* के दोनों पार्श्वभागो मे सुरक्षा की दृष्टि से लोहे के नलके गाडे हुये थे। पहला तागा तो उस मार्ग से पार हो गया। दूसरा तागा जिस पर श्री प० मुक्तिराम जी, श्री साहनी जी तथा पारिवारिक सदस्य थे, जब वह उस नाले के निकट पहुँचा, तो घोडे ने मोड खाते हुये अकस्मात् अपने अगले दोनो पग उन नलको पर जा टिकाये। तागा खडा हो गया। साहनी जी ने बताया कि इस दृश्य को देखकर हम सब घबरा गये। श्री प० मुक्तिराम जी उसी समय बोले—"घबराओ नही, कुछ नही होगा। तागे से नीचे उतर जावो।" उन्होने हमे नीचे उतारा, पश्चात् वे स्वय उतरे। तागे वाले से कहा—"घोडे को तागे से खोल लो और पकड कर धीरे से आगे ले लो।" महाराज के ऐसा करने पर सब बच गये।

श्री साहनी जी का अपना वक्तव्य है कि उस दिन श्री पण्डित जी ने हमे बचा लिया, अन्यथा दुष्परिणाम भोगना पड़ता।

आकर्षण

श्री प० दीनानाथ जी शर्म्मा विद्यालय मे अध्यापन हेतु गए। आचार्य मुक्तिराम जी उपाध्याय पेशावर गए हुए थे। प्रथम ही वार्ता-लाप मे प्रवन्धक महोदय का व्यवहार उन्हे अखर गया और वे वहाँ

*जिले के अधीन सडक

आचार्य जी की प्रतीक्षा में कुछ दिन ठहरे। निराश हो अन्यत्र जाने को उद्यत ही थे कि आचार्य पं० मुक्तिराम जी आ गए। उनके सौम्य स्वभाव, सभ्य व्यवहार, गम्भीर विचार और मधुमय वार्तालाप से श्री दीनानाथ जी के हृदय पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। उन्होंने एकपदे अपनी बोध-पिपासा को शान्त करने के लिए श्री आचार्य जी के ही चरणों में रहने की धारणा बनाली।

वे कतिपय अन्य जिज्ञासुओं के साथ मिलकर श्री आचार्य जी से दार्शनिक विषयों पर चर्चा करने लगे। उनके रहस्य भरे गूढ़ तात्त्विक विचारों की अमृतमयी आनन्द लहरियों से सब महानुभाव आनन्द विभोर हो उठते और उनके अतृप्त मन अगली भेण्ट के लिए लालायित रहते।

हृदय गद्-गद् हो उठा है

ग्रीष्म ऋतु मे विद्यालय के अवकाश का दिवस था। उच्च कक्षाओ के छात्रो को साथ लेकर श्री दीनानाथ जी के सहयोगी अध्यापक रामकुण्ड की यात्रा के निमित्त विद्यालय से निकल पड़े। उन्हे सायङ्काल तक लौट आने का आदेश मिला। उच्च पर्वत की उपत्यका में अवस्थित रामकुण्ड की दूरी का अनुमान वे न लगा सके, अतः निश्चिन्त होकर चलते रहे। गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर रम्य दृश्यो के देखने मे उछलते कूदते छात्रो ने मध्याह्नोत्तर का बहुत समय अतिवाहित कर दिया था। पर्यटन से श्रान्त तो बहुत थे, पर लौटना भी अनिवार्य था। अब इस यात्रा मे प्रात काल जैसा उल्लास न था। डेढ सहस्रमान यात्रा हुई होगी कि कोमल स्वभाव बालक परिश्रान्ति का परिवाद करने लगे और धीमी गति से चलने के कारण उनका मार्ग बहुत ही न्यून अतिक्रान्त हो पाया था कि सूर्य भगवान् अस्ताचल की ओट में होने लगे। सांप, बिच्छू का भय, बच्चों का अध्यापको पर उत्तरदायित्व। वे सब चिन्ताग्रस्त हो गए। वीरो की गाथाएँ सुनाकर किसी प्रकार बच्चो को आगे बढा रहे थे। पर अन्त मे ये वीर कहानियाँ भी दो स्थूल काय बालको की सहायता न कर सकी। उनके पग सूज चूके थे। पीडा हो रही थी। वे दोनो रोते हुए आगे पगडण्डी के किनारे धरना मार कर बैठ गए। अध्यापको ने उन्हे कन्धो पर उठाया। शरीर बहुत भारी था। इस कारण चारो अध्यापक भी थोड़ी देर मे टी बोल गए। आगे बढ़ना विकट समस्या

बन उनके समक्ष ताड़का राक्षसी जैसा रूप धारण कर उपस्थित हुई। उधर कृष्णपक्षीय रात्रि के अन्धकार ने भी वृत्रासुर बन चहुँ ओर से उन्हे आ घेरा। उन्हे एक युक्ति सूझी—अपनी नवीन पञ्च मानी (मीटर) धोतियो को शरीर से उतारा और दाये बाएँ लाठियाँ डाल किसी प्रकार उन धोतियो से सुदृढ दो डोलियाँ बनाई। भारी भरकम दोनों बालको को उन मे बिठा अट्टाहास करते हुए कन्धो पर कहार की भाँति उठाकर चल पड़े।

एक ओर चारो अध्यापक अन्य विद्यार्थियो के साथ दोनो बोझल विद्यार्थियों के भार का कष्ट उठाते हुए अपने गन्तव्य की ओर तीव्रता से बढ रहे थे, दूसरी ओर प्रतीक्षा में आसीन विद्यालय के प्रबन्धक क्रोधावेश में लाल पीले हो, अध्यापको को कोस रहे थे।

कर्तव्य परायण कर्मवीर आचार्य मुक्तिराम जी तत्काल एक सेवक को साथ ले रामकुण्ड की ओर निकल पडे। १॥ सहस्रमान यात्रा शेष थी कि वे सब पं० मुक्तिराम जी को आगे से आता देख, अत्यन्त भयत्रस्त हो गए कि आज कुशलता नही, झिडकियाँ सुननी पडेगी और विद्यार्थियो के समक्ष ही अपमानित भी होना पडेगा। वे घबरा कर पसीना-पसीना हो गए, यहाँ तक कि पसीना बह निकला। परन्तु उनका भय व्यर्थ निकला, जबकि उस महान् आत्मा आचार्य मुक्तिराम जी ने पहले से ही परिस्थितियो की गम्भीरता की परख कर हँसमुखी मुद्रा मे कहना आरम्भ किया—"धन्य ! धन्य !! मैं अपने अध्यापकों से इसी प्रकार की आशा रखता हूँ। दिन भर के थके मादे होने पर भी इस अन्धेरी रात मे उबड़ खाबड मार्ग पर इन बालकों को कन्धों पर लादे चलते हुए आपको देखकर हर्ष से मेरा हृदय गद् गद् हो उठा है।" यह कह कर उनके निषेध करने पर भी सहसा अगले अध्यापक के कन्धे पर से लाठियो के अगले सिरे प्रसह्य उठाकर झटिति अपने कन्धे पर रख चलने लगे। उनका अनुकरण करते हुए सेवक ने पिछले अध्यापक को हटा डोली के पिछले सिरे को उठा लिया। वार-वार प्रार्थना करने पर भी उस डोली मे उन्होने अध्यापको को नही लगने दिया। विवश हो, वे दूसरी डोली को वारी वारी कन्धा देते हुए चलने लगे। विद्यालय मे पहुँचते ही डोली को उतार, पाचक को उनके खाने पीने की शीघ्र व्यवस्था करने का आदेश दे, आचार्य मुक्तिराम जी सीधे प्रबन्धक महोदय की कोठी मे गए और उन्हे कहा

कि वे इस विषय मे अध्यापको एव विद्यार्थियो को कुछ भी न कहें। आचार्य जी के इस अनोखे व्यवहार और कर्मठ जीवन का अध्याकपो के हृदयो पर अमिट प्रभाव पडा।

वीर सेनानी आचार्य मुक्तिराम

वर्षा ऋतु की समाप्ति पर शरद् ऋतु का शुभागमन था। चहुँ ओर खेतो मे ऊँची ऊँची बरसाती शस्य श्यामला वनस्पति और घनी घास खडी थी। रात्रि का समय था। विद्यार्थी शयन कर चुके थे। श्री प० विद्याधर जी ने श्री दीनानाथ जी शर्मा के कान मे चुपके से कहा—"सभी अध्यापको को आचार्य जी ने अविलम्ब अपने कक्ष मे बुलाया है। आप भी पहुँचिए।"

प्रवन्धक सहित सकल अध्यापको के पहुँच जाने पर आचार्य प० मुक्तिराम जी ने कहा—"विश्वस्त सूत्र से बोध हुआ है कि कुछ गुण्डे लोगो ने गुरुकुल को लूटने के लिए इसी रात डाका डालने की योजना वनाई है।"

गुरुकुल मे दो-तोन द्वादशक (दर्जन) लाठिया, दो-तीन कृपाण तथा एक प्रणलिका (वन्दूक) थी। बच्चो को लाठी, कृपाण, प्रणलिका सिखाने वाले राष्ट्रिय स्वय सेवक सङ्घ से सम्बन्धित, एक महाराष्ट्रिय अध्यापक थे। वह दीखने मे अति निर्वल एव क्षीणकाय प्रतीत होते थे, पर कर्तव्य निष्ठा, अदम्य उत्साह और निर्भीकता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। प० मुक्तिराम जी ने उस अध्यापक से परामर्श करके कुछ ही क्षणो मे एक अभेद्य व्यूह रचना का मान चित्र बनाया। पाक-शाला से मिर्चें, भण्डार से मिट्टी का तैल, बोरिया और टाट के टुकडे मगाए। उनके प्रयोग का विधि सब अध्यापको को समझाया। सम्पूर्ण सज्जा चुपके-चुपके की गई, जिससे बच्चो की निद्रा मे विघात न हो। कुछ वडे छात्र जगा लिए गए। नि श्रेणि लगा ईंटो के टुकड़े पत्थरो के ढेर छतो पर एकत्रित कर लिए गए। आक्रमण के समय सुरक्षा के निमित्त क्या कर्त्तव्य होगा, इसका विधि और अन्धकार मयी निशा मे अपने पराये का कैसे विवेक होगा, यह सब साङ्केतिक शब्द और चिह्न से निश्चित कर लिया गया। श्री दीनानाथ जी के साथ एक और अध्यापक को छत पर चढ कर नि श्रेणि खीच लेने का आदेश दिया। दो अध्यापकों को विद्यालय के विशाल आङ्गन मे पहरा देने की आज्ञा दी। इतना कर चुकने के पश्चात् आचार्य

मुक्तिराम जी ने गम्भीर वाणी मे कहा—"इस प्रदेश के मुसलमान लोग भी मेरा पर्याप्त सम्मान करते है। मै विद्यालय से कुछ दूर जाकर मार्ग मे ही गुण्डो से भेंट कर उन्हे वारण करने की चेष्टा करूँगा।" अध्यापको द्वारा रोके जाने पर भी वे अपने निश्चय पर अटल रहे और उनके देखते-ही देखते वे वीर सेनानी अमावस्या की उस भयानक अन्धेरी रात मे उनकी आखो से ओझल हो गए। आत्मिक बल मानव को कितना निर्भीक बना देता है, इसका जाज्वल्यमान दृष्टान्त आज वे अध्यापक प्रत्यक्ष देख रहे थे।

वर्षा काल के अवसान पर अक्टूबर मास आरम्भ होते ही गुरुकुल वासियो मे ज्वर फैल गया। रोगियो की परिचर्या का भारी कार्य श्री दीनानाथ प्रभृति अध्यापको पर आ गया। वे निद्रा लेने के लिए तरस रहे थे। ऐसी विकट स्थिति मे विश्राम कहाँ? फिर भी पं० मुक्तिराम जी उन अध्यापको को थोड़ा-बहुत विश्राम पहुँचाने के लिए रात्रि पर्यन्त जागते रहते थे। और कहते—'मैंने तपस्या द्वारा अपना शरीर श्रम साध्य बना लिया है। इस कारण निरन्तर जागते रहने का मुझ पर दुष्परिणाम नही पड पाएगा, किन्तु तुम्हारे शरीर इस प्रकार की कठोर साधना के लिए उपयुक्त सामर्थ्य नही रखते। तुम्हारे लिए कुछ-न कुछ विश्राम कर लेना अनिवार्य है।"

एक सातवी श्रेणी के विद्यार्थी की स्थिति रात्रि के १० बजे नितान्त चिन्ताजनक हो उठी। सम्भवत वह साङ्घातिक सन्निपात था। उसके मुख पर नीलिमा का साम्राज्य छा गया। एक 'सम चिकित्सा पद्धति*' के उपचारक सन्यासी ने शीघ्रातिशीघ्र नगर से किसी आङ्गल चिकित्सक को बुला लाने की सम्मति दी और कहा कि जीवन बचाना तो अति कठिन हो चुका है तथापि एक विशेष औषध के प्रयोग द्वारा निराशा को आशा मे परिवर्तित करने की मैं चेष्टा अवश्य करूँगा। अध्यापको ने देखा कि उस समय उस वीतराग आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी की आखो से मौन आसुओ की कुछ बूँदे ढलक पड़ी।

नगर मे चिकित्सक को बुला लाने के लिए विद्यालय मे घोडा-गाडी द्विचक्रिका+ आदि किसी भी यान का प्रबन्ध न था। दो अध्यापक नगर जाने को उद्यत हुए, परन्तु आचार्य मुक्तिराम जी ने उन्हे रोक दिया और कहा—"तुम अनेक दिनो के परिश्रम से पहले ही चूर-चूर

*होम्योपैथी। +साइकल

हो चुके हो ! आज दिन भर का काम भी तुम्हारे लिए अल्प न था। इस समय गुरुकुल में अधिकाधिक व्यक्तियो की उपस्थिति अति आवश्यक है। ऐसी स्थिति मे दो व्यक्तियो का एक साथ चले जाना ठीक न होगा। यह भी सम्भव है, आप जाये भी और आपके कथन पर कोई चिकित्सक आने के लिए उद्यत न हो। हो भी जाये, तो किसी शीघ्र-गामी यान का प्रबन्ध करना आपके लिए कठिन पड़ेगा। अतः मैं स्वय जाकर किसी श्रेष्ठी के वहित्र* मे चिकित्सक को बिठलाकर अभी ले आता हूँ और यह कहते-कहते वे अकेले आधी रात के समय पदाति× ही नगर की ओर चल दिए।

पश्चात् सब अध्यापको ने अन्तर्हृदय से बच्चे के स्वास्थ्य की प्रभु से प्रार्थना की और परिणाम भी प्रत्यक्ष देखा। ईश्वर मे आस्था दृढ़ हो गयी। बच्चा कुछ स्वस्थ दीख पडा। मान्य सन्यासी ने भी विश्वास पूर्वक कह दिया—"अब रोगी बच गया।"

अहिंसा का प्रत्यक्ष फल

दिसम्बर के प्रथम सप्ताह के दिन थे। गुरुकुल के समीप ही एक गहरे बरसाती नाले मे, झाडियो के घने झुरमुट मे, एक कड़ी चट्टान मे बनी एक छोटी सी गुहा मे, एक अति वृद्ध महात्मा आकर ठहरे। पं० मुक्तिराम जी प्राय उनके समीप जाते रहते थे। श्री दीनानाथ अध्यापक से मुक्तिराम उपाध्याय जी ने कहा—"ये महात्मा नेपाल राजाधिराज के आध्यात्मिक गुरु है। योग दर्शन के सूत्र 'अहिंसा-प्रतिष्ठायां वैरत्याग.' की सत्यता का साक्षात्कार करना चाहते हो, तो हमारे साथ महात्मा जी के निकट चलो।" श्री दीनानाथ जी ने देखा कि उनके प्रेम भरे आह्वान पर जङ्गली सरीसृप, पशु-पक्षी प्रभृति आकर उनसे प्रेम पूर्वक खिलवाड करते और अपने नैसर्गिक वैर को भी उनके समक्ष भूल ही जाते थे। वे महात्मा उन्हे कोई मायावी, मदारी वा ढौंगी भी न दीखे और न ही वे वैसे थे।

किस धर्म प्रचारक को ले आए हो

दौलतराम नामक एक युवक को सभी आङ्गल चिकित्सकों ने राजयक्ष्मा से पीडित निर्धारित कर दिया। उसके अनेक उपचार भी

---

*कार ×पैदल।

किए, पर सब व्यर्थ जा रहे थे। अन्तत किसी के कहने सुनने पर दौलतराम के ज्येष्ठ भ्राता शीतल प्रसाद श्री प० मुक्तिराम जी को बुला ले गए। रोगी को देख कर आचार्य मुक्तिराम जी ने कहा—"इसे तो आन्त्र ज्वर था और वह अब बिगड़ चुका है।" अनुपम भिषक् श्री मुक्तिराम जी ने औषध की तीन पुडियाएँ दी और उनके देने का विधि तथा पथ्य बता कर वे चले गए। पश्चात् रोगी के पूर्व आङ्गल-चिकित्सक श्री ईश्वरदास ने कहा—"किस धर्म प्रचारक को बुला लाये हो? यह चिकित्सा करना क्या जाने?" इस अपने बहनोई के भी वचनो को अवेक्षित करते हुए शीतल प्रसाद ने प० मुक्तिराम जी द्वारा प्रदान की गयी प्रथम दो पुड़ियाएँ रोगी को दी। दो पुडियाओं द्वारा पूर्व से आता हुआ अतिसार समाप्त हो गया और तीसरी पुडिया से आन्तरिक मल बाहर आ निकला। इस प्रकार रोगी को आरोग्य पूर्ण होता देख कर सकल जन विस्मित हो उठे। आङ्गल चिकित्सक श्री मोतीराम के समक्ष जब इस घटना का विवरण वर्णित किया गया, तो वे बोले—"पं० मुक्तिराम जी को साधारण पुरुष मत समझो। उनके समीप केवल औषध ही नही है, ईश्वर से प्रार्थना भी है। भगवान् उनकी सुनता है हम तो केवल औषध ही रखते है।"

श्री प० जीवाराम जी को श्री पं० मुक्तिराम जी उपाध्याय एक दिन रावलपिण्डी आर्य मन्दिर मे मिल गये। तब उन्हो ने उनसे निवेदन किया "जब मैं गुरुकुल चोहा भक्ताँ मे अग्रेजी पढाता था, उस समय आपके अनुपम जीवन से प्रेरणा पाकर मैंने दो पुत्रो के होते हुये भविष्यत् मे आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत ले लिया था। एक वार मुझे मेरे जीवन साथी ने मेरे इस व्रत से विचलित करना चाहा किन्तु मैंने उसे स्पष्ट कह दिया कि मैं पण्डित जी महाराज के विचार-पूर्ण जीवन से प्रभावित होकर मुनिव्रत को अपना चुका हूँ। इस कठोर व्रत मे मैं सफल रहा, इसकी मुझे बड़ी प्रसन्नता है। सफलता होने पर मैं आज आपके समक्ष निवेदन करने का साहस कर सका हूँ। भगवन्! आपके मौन उपदेश का प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ा, यह आपकी बडी कृपा है।"

जो बातें समान जातीया व्यक्तियो मे उपलब्ध नही होती, वे ही यदि किन्ही विशेष व्यक्तियो में उपलब्ध हो, तो जनता के लिये वे ही आदर्श बन जाती हैं, तथा वह व्यक्ति भी आदर्श मानी जाती है। एक वार पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय लाहौर के आर्य समाज उत्सव

पर पधारे। वे अपने कंधे पर ट्रंक और विस्तर उठाये ला रहे थे। श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द जी महाराज ने जब पण्डित मुक्तिराम जी को इस अवस्था मे देखा, तो उनके हृदय मे प० जी के प्रति श्रद्धा का अङ्कुर फूट आया। एक अपने युग का अद्वितीय विद्वान् जब बोझ तक उठाने का कार्य स्वय कर लेता है और दूसरे नही कर पाते, तो यह मानने के लिये हृदय मे अवकाश नही रहता कि उन्होने मान, अपमान और अहङ्कार का मर्दन नही कर दिया है।

प्रभु आश्रित महात्मा टेकचन्द जी का सम्मिलन

महात्मा प्रभु आश्रित श्री टेकचन्द जी लिखते है—"५-८-१९४१ मे मैं काशमीर गया, तो रावलपिण्डी ठहरा। गुरुकुल रावल जाकर पूज्य पण्डित मुक्तिराम जी आचार्य के दर्शन किये, फिर श्रीनगर चला गया। (इससे सम्बन्धित विषय सम्मुख पृष्ठ पर पढिए।)

२३ जनवरी सन् १९४२ को श्री प० मुक्तिराम जी लाहौर मे श्री लाला रामलाल जी साहनी के सुपुत्र बलदेव जी साहनी के विवाह मे समक्ष रक्खे हवन कुण्ड पर पाणिग्रहण सस्कार कराते हुये चित्र मे दीख रहे है। पण्डित जी इस परिवार के कुलपुरोहित थे।

मै प्रतिवर्ष दो मास अदर्शन मौन ग्रीष्म-ऋतु मे पर्वतीय प्रदेश मे किया करता था। उसके लिए ४ जुलाई सन् १९४२ को गुरुकुल पहुँचा और मैंने १९४२ के लिए महाराज जी से परामर्श किया, तो आज्ञा की कि नथिया गली सब स्थानो से उत्तम स्थान है। मैंने कहा—"मेरी जानकारी वहाँ नही है" वे बोले "मैं प्रबन्ध कर दूँगा साथ चलूँगा।" यद्यपि ग्रीष्म-ऋतु मे मै रावल गुरुकुल उपस्थित हुआ, तथापि वे बोले, 'कल चलेगे।' दूसरे दिन कहा कि मैं मार्ग मे कुछ काम करता आऊँगा, कोहमरी इकट्ठे होगे समाज मन्दिर मे। हम समाज मन्दिर जा पहुँचे। वहाँ रात्रि को पूछा, तो उन्होने कहा—'अभी आये नही। ला० कृपाराम साहनी की कोठी पर आवेगे।' प्रात. हम वहाँ गये तो सेवक ने कहा कि महाराज घोडा गली गये हैं। दोपहर को आवेगे। हम पुन: दोपहर को गये, महाराज आये बैठे थे। भोजन का समय था पटल# बिछे थे। आसन्दियों‡ पर बैठ गये। सेवक सबका भोजन शीघ्र ले आये। हमने कहा—हम खाकर आये हैं। महाराज ने भोजन किया और नथिया गली हमारे साथ चले। वहाँ हिन्दू-आश्रम में स्थान ले दिया और वहाँ के प्रहरी को समझा दिया कि जिस वस्तु की महात्मा जी को आवश्यकता हो, लाकर दे दिया करो। दो कोष्ठ थे पृथक्-पृथक्। एक में मेरे लिये दुग्ध, जल लकड़ी आदि रख जाते थे, एक मे मैं रहता था। दो मास का भोजन मेरा साथ बना हुआ था। केवल दुग्ध और समिधाये हवन के लिये आवश्यक होती थी। वहाँ के मुख्याधीक्षक अभियन्ता* के मुख्य लिपिक † बखशी धनीराम जी महाराज के भक्त थे, उनके अधीन सब काम मेरे लगा आये। मैंने पूछा,—"महाराज ! मेरे व्रत खोलने के दिन पूर्णमासी पर आप कृपा करेगे ?" पण्डित जी ने कहा—"पहिले तो मैं आऊँगा, यदि मैं न आ सका, तो किसी व्यक्ति को भेजूँगा।" २६-८-४२ को व्रत समाप्त हुआ और महाराज जी स्वयं न आ सके, स्वा० अमृतानन्द जी को भेज दिया। मैं प्रत्यावर्तन पर महाराज जी के चरणो में उपस्थित हुआ। और १० रु० भेण्ट किये झट रसीद काट दी। मैने कहा—"भगवन् ! यह तो आपकी भेंट किये थे।" कहा—"मै तो अपने लिए कुछ नही रखता। सब गुरुकुल का है। मैं भी गुरुकुल के अर्पण हूँ।" मैं रावलपिण्डी लौट आया। वहाँ मेरे प्रेमी श्री खुशबखतराय सयान रक्षी# थे, जो दैनिक हवन-सन्ध्या, जप करने वाले और धर्मात्मा सज्जन थे

#मेज। ‡कुर्सी। *चीफ सुपरिण्टेण्डेण्ट इञ्जीनियर। †क्लर्क। #रेलवे गार्ड।

और श्री एम० बी० गोस्वामी 'एवरैंडी कम्पनी' मे काम करते थे, वे भी नित्य कर्मी थे। उन्होने समाज मन्दिर में यज्ञ कराने का प्रस्ताव रखा और पुरोहित समाज की सहायता से समाज मन्दिर में यजुर्वेद का यज्ञ २९-८-४२ को आरम्भ हुआ। इससे प्रथम दिन पूज्य पण्डित मुक्तिराम जी के समीप मै और रावलपिण्डी के साथियो ने गुरुकुल रावल पहुँच कर प्रार्थना की कि यज्ञ में ब्रह्मा पद को स्वीकार करे। वे बोले कि मैं उपस्थित होता रहूँगा। वेद पाठ भी करूँगा; परन्तु गुरुकुल में आने जाने से यह पद स्वीकार नही कर सकता।

अग्नि होत्र प्रारम्भ हुआ। प्रथम दिवस यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र की व्याख्या की। भक्ति भाव से भक्त के रूप में—कि भक्त प्रभु से कहता है—"इषे त्वा" इषे का अर्थ है इच्छा, सुख, अन्न, आदि। तो भक्त कहता है–'हे प्रभो ! मेरी इच्छा तू ही है, मेरा सुख भी तू ही है, मेरा अन्न, धन, ज्ञान भी तू ही है। "ऊर्जे त्वा" मेरा बल, पराक्रम भी तू ही है, परन्तु भगवन् ! मेरे इन्द्रिय वायु के समान चञ्चल है। मैं कैसे करूँ ? तो वेद उत्तर देता है भक्त को, तू सविता देव का आश्रय ले, जो तुझे श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ मे लगा दे जो हिंसा-रहित कर्म है। यज्ञ कर्म ही ऐसा कर्म है जिसको श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है। सबसे श्रेष्ठतम प्रभु है जिसका कर्म भी श्रेष्ठतम है। उस कर्म को यज्ञ कहते है। आगे भी बड़ी सुन्दर व्याख्या थी; परन्तु मुझे शब्दशः स्मरण नही। इतने शब्द पूरे-पूरे स्मरण थे।

अग्निहोत्र के पश्चात् महाराज गुरुकुल देखने ब्रह्मचारियो की देख-रेख के लिये चले गये और वहाँ जाकर उनको ज्वर हो गया। पहले दिन जब पुष्प मालाये यजमान तथा व्रतियो को पहनाने लगे और सर्व प्रथम महाराज के गले डालने लगे, तो उन्होने उसे नीचे रख लिया। जब चन्दन का लेप सबको लगाने लगे और महाराज के निकट आये, तो कहा कि मैं नही लगाता मैं विरक्त हूँ, गृहस्थों को लगाइये।

मुझे पत्र भेजा कि मैं ज्वर के कारण साय के हवन मे न आ सकूंगा, परन्तु दूसरे दिन ज्वर होते हुए भी उसमें पधारे। 'रश्मिना सत्याय सत्य जिन्व धर्मेण धर्म जिन्व' इस मन्त्र की व्याख्या की कि हम सत्य को सत्य के लिये और धर्म को धर्म के लिये प्राप्त करे—आत्मा की रक्षा के लिए। कोई स्वार्थ यशो भावना के भाव से नही करें। मुझे इतने ही शब्द ठीक रूप से स्मरण हैं, जो महाराज के मुखारविन्द

से निकले स्मरण रहे है। शेष व्याख्या पूरे शब्दो में स्मरण नहीं रही। अन्त का दिन, पूर्णाहुति का आया।

२ सितम्बर से एक दिन पूर्व मैंने जनता से कहा कि कल पूर्णाहुति होगी, आहुति वे ही दे सकेंगे, जो तम्बाकू, सिगरेट, मद्य, मांस आदि का सेवन न करते हो। पूर्णाहुति के लाभ बताकर कहा कि याग तीर्थ है। "जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि"—तीर्थ स्थान पर लोग जाकर कुछ-न कुछ त्यागकर आते थे। तब तो वह लोग जो वस्तु उन्हे नहीं भाता था उसे त्याग कर आते थे। जैसे—शलजम, गाजर, कद्दू, करेला आदि, परन्तु वास्तविक त्याग है बुराई का। जिसके त्याग से मानसिक आत्मिक सुख मिले। जो अब वेदि पर आकर प्रतिज्ञा त्याग की करे उसे जनता से बधाई और प्रभुदेव तथा विद्वानो से आशीर्वाद प्राप्त होगा, वह भी आहुति दे सकेगा।

पतलून, पाजामा के स्थान पर अपनी आर्यसभ्यता का ध्यान रखते हुये, धोती बाँध कर स्वच्छ पवित्र वस्त्र पहन कर आहुति देवे। महाराज बड़े प्रसन्न हुये और इस शैली की प्रशसा की। फिर मै ने कहा—कल ऋषि-भोज भी होगा। सब सज्जन आये हुये मिलकर भोजन करे। कोई पत्तल प्याली न होगी। हाथो पर रोटी और दाल ऊपर मिलेगी। सब धनी निर्धन एक समान यज्ञ के भोज में भूमि पर बैठकर भोजन करेंगे और भोजन माताये गायत्री जप करती हुई प्रभु प्रार्थना में बनायेगी। जो खाने वाले के हृदय को परिवर्तित करने वाला प्रसाद होगा। मन्त्री जी बोले, "भोज तो असम्भव है, रावलपिण्डी नगर है, निर्धन लोग टूट पडेंगे, कहाँ से खिलायेगे ?"

मुझे तनिक प्रतिश्याय-सा हो गया। मैं बाहर नासिकाशुद्धि के लिये गया, तो मन्त्री जी भोज के लिए लोगो से पुनरावेदन करने लगे। मेरे कान मे शब्द पड़े, तो मैं भाग आया और कहा कि यज्ञ तो विष्णु का स्वरूप है "यज्ञो वै विष्णुः"। यज्ञ के लिये भिक्षा-याच्ञा करनी याजको का काम नही। याजक याचक नही होता। जहाँ विष्णु है, लक्ष्मी उसके चरणो मे खिंची चली आती है। सनातन-धर्म के मन्दिरो मे विष्णु की मूर्ति काल्पनिक बनाकर रखते हैं। वहाँ भी लोगों के चढावे समाते नही और जहाँ आर्य समाज में सत्यता का प्रचार हो वहाँ आर्य समाजियो को मागने के बिना उपाय नही रहता, कारण—आर्यसमाजियो को अपने ऋषि गुरु की भाति प्रभु मे विश्वास नहीं,

है, वरना जहाँ काम सच्चा और अच्छा हो, सांसारिक हित का हो, अपना कोई स्वार्थ न हो, वहाँ प्रभु कैसे प्रेरणा न करेंगे ? आर्यसमाजियों मे विश्वास-न्यूनता के कारण अशदान मागने पड़ते हैं। पुनरावेदन न करे। आप निश्चिन्त हो जाये। जिसका भण्डार है, वह स्वयं सामर्थ्यवान् है। यज्ञ का देवता इन्द्र है और इन्द्र ही समस्त संसार का राजा, स्वामी और पालक है। महाराज जी यह सुन कर अति प्रसन्न हुए और बोले पुनरावेदन मत करो। किसी से न मांगो यज्ञ कराने वाले प्रभु-आश्रित को प्रभु पर विश्वास है, ऐसे विश्वासी आर्य होने चाहियें। मैं बहुत प्रसन्न हो रहा हूँ। बस, फिर क्या था, साय तक आटा, दाल, घृत, लकड़ी, मसाले के ढेर लग गये।

३३वे और अन्य कई अध्यायों में नीचे टिप्पणी में दिये हुये मन्त्रों के प्रतीक आए, तो मैं ने पूछा, "महाराज ! ये प्रतीक किस लिये है ?" तो वे बोले "विशेष यज्ञो के लिये है। ऐसे यज्ञो मे भी इनके प्रत्यायन मन्त्रो से आहुतियाँ दिलवानी चाहिये।"

दूसरे प्रात पूर्णाहुति हुई। बहुत से लोगो ने तम्बाकू, सिगरेट, मद्य, मास का त्याग किया। तब भी महाराज बडे प्रसन्न हुये। कहा—ठोस काम यही है। आर्यसमाज का वेदप्रचार यथार्थ रूप में यही है। वहाँ के व्रतियो से दक्षिणा रूप मे नित्य हवन और जप सन्ध्या की प्रतिज्ञा ली गई। तब भी प्रसन्न हुये।

* * * *

सन् १९४२ में श्री प० मुक्तिराम जी शान्ता क्रुज बम्बई के ज्यूह मार्ग पर कोने की एक कोठी में विराजमान हुए। श्री दर्शनानन्द-दर्शन के भावी लेखक श्री पण्डित श्रीराम शर्मा श्री महाराज से वहाँ दो-तीन वार मिले और दर्शनानन्द जी के जीवन की घटनाये श्रीमुख से सुनी।

महाशय खेमराज जी साहनी के लघु भ्राता देवी दत्तामल जी सनातन धर्म सभा के प्रधान थे। उन्होने अपने सुपुत्र का करपीडन सस्कार रावलपिण्डी मे श्री प० मुक्तिराम जी से ही सम्पन्न कराया। वरयात्रा चोहाभक्तां से रावलपिण्डी गयी थी। अतः वे श्री उपाध्याय जी के जीवन से वहुत परिचित थे। अन्य संस्कार भी वैदिक-रीति से ही उपाध्याय जी से कराते थे। यह श्रद्धातिरेक उनका केवल उपाध्याय जी मे ही था। सनातन धर्म के कट्टर समर्थक होते हुये आर्य सामाजिक अन्य सस्थाओं में उनकी आस्था न थी।

आर्य भाषा के लिए चेतावनी

पञ्जाब के आर्य जन भी अपनी भाषा को पीठ पीछे कर अपने सभी व्यवहारो मे उर्दू भाषा को प्रश्रय दे रहे थे। उन्हे अपनी भाषा का गौरव बताते हुए महाराज ने कहा, "हमे अपने निज के काम मे मातृभाषा का व्यवहार करने के लिए कोई नही रोकता, परन्तु वार-वार प्रयत्न करने पर भी वे पराधीनता की बेड़ियाँ आज भी हमारे हाथो को जकड़े हुए है।

रावलपिण्डी जैसे बड़े नगर में हिन्दुओं की ओर से निकलने वाले उर्दू के कई समाचार पत्रो के होते हुए भी हिन्दी का एक भी समाचार पत्र नही है।

बालको को आरम्भ मे मातृ भाषा की घूँटी पिलाने के लिये हिन्दी का एक प्राथमिक तक का भी विद्यालय नही है।

लोगो के हाथ में हिन्दी का ऊँचा साहित्य देने के लिए रावलपिण्डी के मुहल्ले मे हिन्दी की रात्रि पाठशालाये नही हैं।

अपनी मातृभापा के लिये हिन्दू जनता की भावनाये इतनी निर्बल पड़ गई हैं कि उनके हृदय मे अपनी मातृभाषा को सीखने की उत्कण्ठा ही नही होती।

आज की वितन्तूपयोग* की नीति, हमारे अनेक वार चिल्लाने पर भी प्रशासन की अवेक्षा, हमारी इन निर्बलताओ का ही परिणाम है। हमारी इन तथा इस प्रकार की और अनेक निर्बलताओ के कारण ही भारत के राजनीतिक क्षेत्रो से हमारी मातृभाषा का गला घोटने वाली कई प्रकार की नयी-नयी बोलियाँ आये दिन बोली जा रही है। विज्ञान की कसौटी पर कसी हुई हिन्दी वर्णमाला का स्थान कभी रोमन जैसी भद्दी वर्णमाला को दे देने की सम्मति प्रकट की जा रही है। कभी सारे ससार की भाषाओ की जननी देव-वाणी के शब्दो के सुनहरी भूषण को उतार कर मातृ भाषा को विदेशीय फारसी भाषा के ऊट-पटाँग गहने पहना देने का सन्देश दिया जा रहा है। कभी तीन भाग हिन्दू जनता पर एक भाग मुस्लिम जनता की अपनी मानी हुई भाषा के पढाने का बन्धन लगाया जा रहा है। इस प्रकार हमारी मातृभाषा

---

*रेडियो।

पर अनेक प्रकार के सङ्कट आ रहे है। इन सबके उत्तरदाता हम हैं अन्य कोई नहीं। भविष्यत् मे आने वाली नयी पीढ़ियाँ हमें कोसेंगी। हम उनके लिए कोई अच्छा वस्तु छोड़ कर नही जा रहे हैं।

इस जाति के दुर्भाग्य हैं कि जहाँ ससार की दूसरी जातियाँ बेड़ियों को ही नही, बेड़ी पहनाने वालो को भी निकाल फेंकने की धुन में हैं, वहाँ यह जाति किसी पहनाने वाले के न होनें पर भी बेड़ी से अपने हाथों को इस विज्ञान के युग मे भी जकड़े बैठी है। मेरा सङ्केत उस उर्दू भाषा की बेड़ियों की ओर है, जिसका आज कोई भी राज्यस्वामी नही हैं। इस प्रसङ्ग में मै अपने देशवासियो से भी कुछ निवेदन करना चाहता हूँ, और वह यह है कि कोई भी राष्ट्र एकता के धागे मे बिना बंधे जीवित नही रह सकता। उसे एकता के सूत्र मे बाँधने के जहाँ और साधन हैं, उनके साथ ही सारे देश की एक राष्ट्रभाषा का होना भी एक साधन है। सारे देश की राष्ट्र भाषा वह ही हो सकती है, जिसको बोलनें वाले और समझने वाले देश मे अधिक हों।

इस प्रकार मैंने सङ्क्षेप से अपनी मातृ भाषा के प्रचार के आगे न बढ़ने और अपनी कुछ निर्बलताओ का वर्णन कर दिया है। मैं समझता हूँ कि मेरे इस कथन से आपके समक्ष उन समस्याओ का चित्र आ गया होगा, जिनको कि कार्य रूप में परिणत करने के लिए आप सब महानुभाव यहाँ पधारे हुये है। एक प्रकार मेरा यह कथन सन्देशों की भूमिका है। अपने इस भाषण को समाप्त करने से पूर्व मैं अपनें रावलपिण्डी और रावलपिण्डी ही नही, सारे भारत वासी हिन्दू भाइयों से यह कहना चाहता हूँ कि यदि हम जीना चाहते है, तो हमे अपनी मातृभाषा के प्रचार के लिये अपने तन-मन-धन को लगाकर पूरे बल से आगे बढना होगा।

हमें एक बालक से लेकर बूढ़े तक के लिए हिन्दी भाषा का पढाना अनिवार्य करना होगा।

हमें अपने सकल विद्यालयों और महाविद्यालयो में से उर्दू को निकालकर उसका स्थान हिन्दी को देना होगा। यदि मुसलमान भाई हिन्दी का एक अक्षर भी न पढा कर अपने शिक्षालयों को चला सकते हैं तो, क्या कारण है, हम न चला सकें।

हमें अपने सम्पूर्ण काम काजों मे मातृ-भाषा हिन्दी को ही स्थान देना होगा।

हमें स्थान-स्थान पर मातृ-भाषा के प्रचारार्थ रात्रि पाठशालायें खोलनी पड़ेगी।

हमें यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि हम अपनी मातृभाषा मे निकलने वाले समाचार पत्रो को पढ़ेंगे और उर्दू का एक भी समाचार पत्र न पढ़ेंगे।

हमारे सब हिन्दू समाचार पत्रो के स्वामियों को एक ही युग में अपने सब समाचार पत्र मातृभाषा हिन्दी में ही निकालने आरम्भ करने होगे।

हमें सारे ही प्रशासकीय काम काजो मे पूरा बल लगाकर उर्दू की भाँति हिन्दी को भी स्थान दिलाना होगा और इनके अतिरिक्त और भी ऐसे उपाय सोचने होगे, जिन्हे अपनाकर अपनी मातृभाषा का पूजन सच्चे अर्थों मे भली-भाँति कर सकें। मेरे इन विचारो को आप हृदय के गहरे विचारो से सोचिये कि—

जाके वर्ण-गण को विज्ञान मान भान करे,
शब्दरत्न को भण्डार जाहुको विशाल है॥
विविध प्रचार को अपार कोष सोइ रहियो,
कौन है संसार ज्ञान जो न माँ के भाल है॥
ऐसी निज भारती विसार गयो औरन की,
फूल हार जान गह्यो विष जयमाल है॥
देश निज वेश भूल केश पर हाथ दिये,
शेष रहियो लेश नाहु द्वार खड्यो काल है॥
होय पराधीन धन-हीन, बल-हीन भये,
हिल ना सके हैं जिमि मीन जल-हीन हो॥
नाव मझदार पतवार मन सोय गयो,
भागी कर्णधार मतिहार हिय-हीन हो॥
मान अरु आन गये ज्ञान गये ध्यान गये,
मधुर मिलान गये प्रेम अति दीन हो॥
मातु विसराय सब हाथ लुटवाय दियो,
शेषहु न जाय मति चेत हिय-हीन हो॥

आर्य भाषा हितैषी श्री महाराज ने आगे कहा—"क्रान्ति के दूत कवि लोगो! हिन्दी भाषा के उत्थान करने मे जहाँ प्रत्येक हिन्दी प्रेमी का कर्त्तव्य है, वहाँ एक कवि भी अपनी लेखनी के चमत्कार,

मनुष्यो की भावनाओ को उज्ज्वल बनाने मे दिखा सकता है। कवि की गहन गुहा मे हिन्दी के उत्थान के लिये वह कोष भरा पड़ा है, जो मृत शरीरो मे भी प्राण डाल सकता है। जब भी देश पर सङ्कट आया है, कवि की लेखनी उसी ओर अपना मोड़ खा गई है। इतिहास इस बात का साक्ष्य दे रहा है कि कवि की ओजपूर्ण शब्दावली से वीरो के भीतर जीवन का वह सञ्चार हुआ है, जिसने देखते ही देखते शत्रु को देश से बाहर कर दिया है। क्या ऐ कवे, तू अपनी मान मर्यादा भूल गया है, उठ, खडा हो, भारत में हिन्दी को उसका स्थान दिलाने के लिए कुछ तो अपने अभिमान का ध्यान रख।

* * * *

कवे !

कवे ! कुछ भी तो कर अभिमान ॥

जिसको तू देता है मनसे, उसका कर कल्याण।
तेरा देना क्या देना है, जो हरता है प्राण ॥
तेरी मीठी बाते सुनकर, मधुमय सुन्दर गान।
भूल गये तन–मन सुध सारे, टिक-टिक तेरा ध्यान ॥
वीर रुद्र, शृङ्गार, करुण, बीभत्स रसों की खान।
उपमा, रूपक, शब्द अर्थ, भूषण का करता दान ॥
जिसे जगा दे, जिसे सुला दे, तुझमें शक्ति समान।
भाषा का अभिमान बना तू घर-घर तेरा मान ॥
तू भावों से भरा कोष है, तेरा उच्च स्थान।
इतना उच्च, न गिर तू नीचे, मेरा कहना मान ॥
आर्य गिरा की रखले लज्जा, कर इसका उत्थान।

रामसरण की जीवन रक्षा

सन् १९४२ के क्रान्तिकारी भारत के सपूतों मे विहार के एक रामसरण नामक युवक ने भी अपना योगदान दिया था। वह भागकर रावलपिण्डी आ गया और बहुत रुग्ण हो गया। लुण्डा बाजार आर्य समाज के मन्त्री ने उसे जानपद राजकीय चिकित्सालय

मे प्रविष्ट करा दिया। उसे अस्थि-क्षय हो चुका था। क्षय का कारण था—क्रान्ति के दिनो में कार्य करते हुये उसके टखने मे गोली का लगना, जिससे वह इस दशा मे जीवन के दिन गिन रहा था। गोली लगने की वार्ता चिकित्सालय के शल्य चिकित्सक से अन्तर्हित रखनी थी। चिकित्सक ने उसकी चिकित्सा के सम्बन्ध मे कहा—"इसका पैर कटेगा। इसके अतिरिक्त कोई चिकित्सा नही हो सकती।" महाशय देवीदास जी को इस बात से खेद हुआ कि पैर कट जाने से युवक का सम्पूर्ण जीवन नष्ट हो जायेगा। महाशय जी की श्रद्धा आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी मे बहुत थी। उन्होने सोचा कि पण्डित जी ही इस युवक की जीवनरक्षा कर सकते हैं। उन्ही के चरणो मे हमारी पहुँच है। श्री महाशय देवीदास जी यद्यपि महाविद्यालय कालिज समाज से सम्बन्ध रखते थे, किन्तु पण्डित मुक्तिराम जी के सत्सङ्ग से गुरुकुल समाज मे आ कर सन्ध्या-हवन किया करते थे। उनके हृदय से भेद-भाव की नीति समाप्त हो चुकी थी। अग्निहोत्र के समय देखा कि पण्डित जी तो यही विराजमान है। वे उनके चरणो मे गये और बोले—"आपकी अनुकम्पा से युवक का जीवन सुधर सकता है। उसका पैर काटने की अवस्था आ चुकी है। वह इस प्रकार से रोगी हुआ था।" देवीदास जी ने आगे कहा—"एक नत्थूनाई उसकी चिकित्सा कर देगा, मैं उसे चिकित्सालय ले जाकर युवक को दिखा देता हूँ। आप केवल चिकित्सालय से उसे निकलवा दीजिये।" आचार्य जी तो सर्वदा दया से अभिपिक्त थे ही—बोले—"ठीक है, पहले उसे नाई को दिखा दो।" नत्थू नापित देवीदास जी के साथ गया और देखकर कहने लगा—"यह सर्वथा ठीक हो जायेगा। साधारण बात है।" आचार्य जी इस समाचार को सुनते ही जानपद शल्य चिकित्सक के निकट गये और बोले—"आप इसे अवकाश दे दीजिये, हम इसकी चिकित्सा बिना पैर काटे ही कर लेंगे।" चिकित्सक महोदय आर्य-विचारो के थे, वे आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी से प्रभावित हुये और एकपदे चिकित्सालय से युवक को अवकाश दे दिया। महाशय देवी-दास जी पण्डित मुक्तिराम जी के इस प्रभाव को देखकर चकित रह गये और तभी से उनके हृदय मे भविष्यत् के लिये और भी प्रगाढ़ श्रद्धा ने स्थान पा लिया।

युवक को बाहर लाकर अब यह समस्या खड़ी हो गई कि अस्थि क्षय के रोगी को कहाँ रखा जाये। लुण्डा बाजार के अधिकारी वर्ग से

वार्तालाप करने में तो देर की सम्भावना थी। वहाँ एक हरयाणे का मनुष्य उसी समाज के व्यय से अध्ययन करता था। वह झटिति एक चारपाई लाया और समाज के एक आपण में उसे लिटा दिया। वह भी आचार्य मुक्तिराम जी का भक्त था। वह वहीं डण्डा लेकर बैठ गया और बोला—"जो इसे निकालेगा, उसका सिर फोड़ दूँगा। महर्षि दयानन्द भी अतिशय दयावान् थे, ये समाज उन्हीं के नाम से चल रहे हैं, युवक की रक्षा करना महर्षि दयानन्द का ही कार्य है। जैसे मैं महर्षि दयानन्द के विरुद्ध छोटी-सी बात सुनकर भी इस डण्डे का उपयोग करता हूँ। उनके कार्य के विरुद्ध आचरण करने वाले पर यह अपने प्रहार से कैसे बचा रह सकता है? डण्डा ऐसे ही स्थान पर काम न आया, तो कब आयेगा?"

नत्थू नापित ने उस रामसरण की चिकित्सा आरम्भ कर दी, उसे लाभ प्रारम्भ हो गया। पहले ही दिन उसे नींद आ गई, जबकि चिकित्सालय में रात्रि भर करवटे लेता रहता था। वह कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गया।

द्विमुख जीवन

श्री उपाध्याय जी का जीवन योगाभ्यास की तपश्चर्या मे संन्यास की वेदि पर आने के लिये समुज्ज्वल हो चुका था। इस स्तर पर आने के लिये मनुष्यों को अनेक संस्कारो के झञ्झावातों से प्रबल टक्कर लेकर आगे ही आगे पग रखना पड़ता है। उनके जीवन में लोगों के द्विमुख-जीवन के दृश्य भी पुनः-पुनः उपस्थित हुये हैं। जिनका चित्र महाराज ने निम्न शब्दों मे चित्रित किया है—

उथल पुथल है, हर्ष शोक है, राग-द्वेष है जीवन मे।
कभी मान अपमान भावना वीतरागता है क्षण मे॥
लोलुपता का नृत्य कभी है, कभी भरा सन्तोष अपार।
कभी देश के हित मर जाना, कभी स्वार्थ का अधम विचार।
दया दीन पर कभी दिखाये, मृदुता का निज रूप अनूप।
कभी क्रूरता वैभव मद की, प्रकटाती निज विषम स्वरूप॥
भक्ति भाव से भरा हृदय यह, कभी ईश-गुण गाता है।
नास्तिकता के कभी तरङ्गो मे पड़कर वह जाता है॥

उद्यमी महानुभावो के ये जीवन तरङ्ग उन्हे सांसारिक जीवन में,

पारस्परिक व्यवहारो मे देखने को मिले थे। अतः कुछ क्षणों के लिये जीवन में वैभव की भावनाओ के प्रकट हो जाने पर वे उसे वैराग्य की दृढ भूमि में पहुँचा हुआ नही मानते थे, और स्वय इससे शिक्षा ग्रहण करते हुये वैराग्य की उच्च भूमि मे आसन बिछाने के अधिकारी बन गये थे। योगाभ्यास-जनित बुद्धि के आलोक मे उन्हे इस द्विमुख जीवन के दर्शन नही हुये। बाल्यकाल से प्रस्फुटित वैराग्य के अड्कुर त्याग और तपस्या की सामग्री से ब्रह्मोपासना के आश्रय मे दृढ से दृढतर होते चले गये थे। उनके अन्त:करण में राग-द्वेष और मोह का आवरण तो शैशवकाल से ही न था। पक्ष-पात की भावना से भी वे ऊपर उठे हुए थे। जीवन मे परोपकार की भावनाये हिलोरे ले रही थी। यथार्थ बोध का अभ्युदय अपने पूर्ण यौवन पर चमक रहा था। इस यथार्थ ज्ञान द्वारा मोह आदि आवरण से आवृत जन समूह को सन्मार्ग के दर्शन कराने के लिये महाराज का हृदय उछल रहा था। वे निष्पक्ष होकर सत्य भाषण से अपने शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि को पवित्र करते हुये परमैश्वर्य का प्रचार करते जा रहे थे। अविद्या आदि क्लेश-दायक, सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा के विद्यालोक में महाराज की ऐहलौकिक सब कामनाये निर्मूल हो चुकी थी। वे अब मुक्ति धाम का अभिलाष करते हुये परमात्मा के आनन्द मे लीन हो जाना चाहते थे। उनकी मुखश्री से यदा-कदा यह प्रभुस्तवन निकलता रहता था—

प्रभु, तव परम पावन धाम।

तुम सुने जाते महेश्वर, तुम सुखद अभिराम।
तुम निरञ्जन मोक्षप्रद प्रभु, तुम व्यथित विश्राम ॥ १ ॥
अजर अमर अपार तुम ही ओम् उत्तम नाम।
अभय नित्य अनादि अनुपम, अकथ तव गुणग्राम ॥२॥
तुम अकाय अव्रण अस्नायु, कवि तथा आनन्द धाम।
प्रभु स्वयम्भू विभु मनीषी, अनाकृति निष्काम ॥३॥
भू र्भुवः स्वः धीर आत्मा, महः जनः शुचि काम।
यम वरुण अग्नीन्द्र नेता, पाप प्रति उपराम ॥४॥

जीवनोपयोगी इन वैराग्य-तरङ्गों के दिनों मे एक दानी-मानी प्रतिष्ठित पुरुष महाराज के चरणो मे आकर कहने लगे—"मैं अपना

विवाह दुबारा करना चाहता हूँ, उसमे आपको अवश्य सम्मिलित होना पड़ेगा।" वैदिक विद्वान् श्री उपाध्याय जी ने प्रत्युत्तर में कहा—"आपके हित की दृष्टि से मैं आपको यह परामर्श देना चाहूँगा कि दूसरे विवाह से आपका जीवन नीरस होता चला जायेगा। यद्यपि यह ठीक है कि परिवार को सँभालने के लिये आप दूसरा सम्बन्ध लेना चाहते है, तथापि उस सम्बन्ध मे आपको जो कठिनाइयाँ उपस्थित हो जावेगी, उनके निराकरण की अपेक्षा यह उत्तम है कि आप तपस्यापूर्ण जीवन बिताकर परिवार के सरक्षण के लिये कुछ दूसरे उपाय सोचे।"

कुछ दिन व्यतीत जाने पर प्रतीत हुआ कि वह विवाह अवश्य होगा और उसमे महाराज का सम्मिलित होना भी अनिवार्य ही है।

* *

आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

संन्यास प्रकाश

संन्यास दीक्षा का उपक्रम

ऋषि पं० मुक्तिराम जी उपाध्याय की दीक्षा के दिन भी निकट ही आते जा रहे थे। अतः उन्होने यही निश्चय किया कि "यदि इस विवाह से पूर्व संन्यास की दीक्षा का कार्य सम्पन्न हो जाये, तो वेद-विरुद्ध उस द्वितीय विवाह मे सम्मिलित होने से भी त्राण मिल जायेगा क्योकि संन्यासी को विवाह सस्कार करवाने का अधिकार नही रहता।"

मन मे ऐसा विचार कर उस योगी महात्मा ने सन्यास दीक्षा के दिवस की घोषणा कर दी। वैशाखी का वह दिन पजाब निवासियो के लिये बडे महत्त्व का है। इसे वे एक महत्त्वपूर्ण पर्व की भाति मनाते हैं और इसी दिन से पञ्जाबी वर्ष प्रारम्भ होता है।

श्री उपाध्याय जी की इस दीक्षा से सम्बन्धित उन के मनोनीत गुरु श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज इस ससार से चल बसे थे। जब उपाध्याय जी स्वामी जी से मिले थे तब वे रोगशय्या पर थे, और उन्होने महाराज से कहा था—"आप निर्धारित समय पर सन्यास की दीक्षा स्वय ले लीजियेगा एवं अपना स्व विचारित नाम 'आत्मानन्द' रख कर इस सब विधि को मुझ से ही ग्रहण किया हुआ समझियेगा। मैं इस समय ऐसी अवस्था मे हूं कि स्वास्थ्य-लाभ करना कठिन प्रतीत हो रहा है। मैं चतुर्थ आश्रम की इस सन्यास दीक्षा के लिये सर्वरक्षक दयालु प्रभु से प्रार्थना करते हुये आपको अपना शुभ आशीर्वाद देता हूं "कि आप अपने शेष आयु मे भी आदर्श संन्यासी बने रहे। आपके लिये आदर्श बने रहना कोई कठिन कार्य नही है। आप तो इन

श्वेत वस्त्रो में भी पहले से ही सन्यास जैसे नियमो के पालन में अति सतर्क रहे हैं।" गुरुदेव श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का यह शुभ आशीष् श्री उपाध्याय जी के अन्तःकरण मे अङ्कित था।

सन्यास की दीक्षा का दिवस वैशाखी पर्व निकट आता गया। महाराज ने भी संन्यास आश्रम के विशेष नियमों का गम्भीर अवलोकन आरम्भ कर दिया। नूतन शुद्ध खद्दर के वस्त्र गेरू से रंगाकर रख दिये।

सस्कार विधि में प्रतिपादित अनुष्ठान तीन दिन पूर्व से प्रारम्भ कर दिया। आकृति चिर मौन मुद्रा में लीन हो गई और गायत्री का जप प्रारम्भ हो गया।

सन् १६४३ की वैशाखी के इस दिन प्रात.काल से ही नगर-वासी स्व-स्व मित्र मण्डल के साथ गुरुकुल की पवित्र भूमी मे एकत्रित होने प्रारम्भ हो गये। वैशाखी के इस पुण्य पर्व को उन्हे गुरुकुल की देव-भूमि मे मनाने का सुन्दर अवसर उपलब्ध हो गया, और वह भी एक ऐसे रूप में जब कि उनके चिरपरिचित देव श्री पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय अपनी जीवन-नौका को सन्यास आश्रम के द्वारा आज से आर्यजन-सागर मे उतारने जा रहे हैं। अपने इस पूज्य देव को अपनी अपनी श्रद्धा के पुष्प समर्पित करने के लिये लाहौर तक का आर्यजन अहमहमिकया पहुँचने का प्रयत्न कर रहा था।

गुरुकुल का उत्सव भी इसी पावन अवसर पर होना निश्चत था वेदि पर यज्ञकुण्ड के चारो ओर वेद-मन्त्रपाठी और कार्यकर्त्ता अपने-अपने आसन पर आसीन हो गये। महाराज भी स्व-स्थान की शोभा बढ़ा रहे थे। प्रतिष्ठित महानुभावों के आसन मन्त्र-पाठियों के पीछे थे। उनके पीछे और जन-समूह विराजमान था। सब की दृष्टि उस दिन श्री महाराज पर पड़ रही थी। इज्या का आरम्भ हुआ और यज्ञ-स्थान मन्त्र-ध्वनि से गूंज उठा। शेष मानव आबाल वृद्ध, मन्त्रमुग्ध हुये चित्रलिखित-से मौन मुद्रा का आश्रय लिये हुये थे और हवन की प्रत्येक क्रिया को बड़ी सावधानी से निहार रहे थे। इस विधि, निर्विघ्न-प्रशान्त वातावरण में प० मुक्तिराम, संन्यासी की दीक्षा ग्रहण करके 'आत्मानन्द सरस्वती' बन गये। अन्त मे वस्त्र परिवर्तन का जब समय उपस्थित हुआ तो महाराज की दृष्टि श्री

स्वामी अमृतानन्द जी पर पड़ी। मन मे भाव आया कि स्वामी अमृतानन्द जी, जो इस उत्तम अवसर पर यज्ञवेदि पर उपस्थित हैं, गुरुदेव वीतराग श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के शिष्य हैं। इस रूप मे यदि मै इन गेरुवे वस्त्रो पर इनका हाथ स्पर्श करवाकर इन्हे धारण कर लेता हूँ तो कोई क्षति नही। इस मे एक सन्यासी के मान की रक्षा भी निहित है। अतः महाराज ने स्वामी अमृतानन्द जी से कहा--"स्वामी जी! ये नूतन गेरुवे वस्त्र मुझे आप अपने हाथो से दे दीजिये। स्वामी अमृतानन्द जी ने महाराज को वस्त्र पकड़ा दिये और उन्होने उन अग्नि समान गेरुवे वस्त्रों से स्वय को आवृत कर लिया। वे वस्त्र इस भावना के प्रतीक थे कि आगे से सासारिक भावनाएँ भी उनसे परिपूत होकर ही उनके मनमें स्थान पा सकेगी और पवित्र भावनाओ का स्वामी जी में वह पुञ्ज एकत्रित हो जायेगा, जो निरन्तर दूसरो को प्रदान करते रहने पर भी क्षय को प्राप्त न हो सकेगा।

इसके अनन्तर स्वामी आत्मानन्द सरस्वती नें भिक्षा-याञ्चा की वह प्रथा भी पारित की, जिस से खाद्य सामग्री की सारी समस्याये एक साधु की जीवन पर्यन्त सुलझ जाती है। जो अन्त.करण के कोने में स्थान पाये हुए सूक्ष्म अभिमान को भी बाहर निकाल कर फेक देती है।

तत्पश्चात् श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने अपने गुरुदेव श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का हृदय से स्मरण करते हुए प्रतिज्ञा की कि 'यह आप का 'आत्मानन्द' शिष्य आपके दिये आशीर्वचन को इस शरीर का अभी से अङ्ग बना रहा है। आपका दिया गया आशीर्वाद और मेरा शरीर एक रूप हो गये हैं, अतः इस देह के रहते-रहते आदर्श सन्यास से निम्न स्तर पर नही आऊँगा। इस भीषरण प्रण के साथ उन्होने अपने पूज्य गुरुदेव के परलोक-गत आत्मा को मौन श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। तदनन्तर जनता को सम्बोधित करते हुये स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने सब जनों को इस कार्य-क्रम में सम्मिलित होने पर धन्यवाद दिया।

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती का एक एक क्षण महर्षि दयानन्द-निदिष्ट कार्य के प्रचार में बीत रहा था। वे महर्षि की जीवन झाकियो मे प्रगाढ अनुरक्त थे और उनके आदर्श जीवन की छाया में स्वजीवन को भी आदर्श के साँचे में ढालने के लिये प्रयत्नशील थे।

महर्षि दयानन्द की स्तुति में निम्न कवित्त-चरणो का आश्रय लेकर वे स्वजीवन को पवित्र करते जा रहे थे।

जल जल रे दीपक ! जल रे !
निज जीवन से तुझे रचाया, सद्भावो का तैल बनाया।
बत्ती बना शरीर मनोहर, वेद-बोध का अग्नि जलाया॥
अब भी क्या है कमी बतादे, इतना फिर क्यो विलम्ब लगाया।

ऋषि आत्मानन्द सरस्वती दूरदर्शी पुरुष थे। जब उन्होने गुरुकुल भवनों के निर्माण का कार्य आरम्भ किया, उसके साथ ही कुछ भूमि में उद्यान लगाना भी आरम्भ कर दिया था। उन्होने अनेक बार इस बात की चर्चा की कि "मै जिस संस्था में जाता हूँ, फलवान् वृक्ष पहले लगाता हूँ। वे धीरे धीरे बढ़ कर चार पाँच वर्ष में फल देने लग जाते हैं। मैंने अपने लगाये वृक्षों के फल गुरुकुल चोहाभक्ताँ मे भी खा लिये हैं। फलवान् वृक्ष, लगाना एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य है, जिसे बहुत कम लोग समझते हैं। इसमें परिश्रम कम और लाभ अधिक है। एक वार के लगाये वर्षों काम देते हैं। सात्त्विक भोजन है। इनके पालन और संरक्षण मे हाथ पैर का परिश्रम हो जाता है, स्वास्थ्य ठीक रहता है। एक ही प्रकार के फलेग्रहि वृक्ष लगाकर, फल आने पर उसमे से कुछ खाकर, कुछ बेचकर, इच्छा हो तो दूसरी जाति के फल भी क्रय किये जा सकते है। भूमि पर्याप्त हो तो अनेक जाति के फल वाले वृक्ष लगाये जा सकते हैं।

पर्वत प्रदेशों का लाभ

गुरुकुल आङ्गल विद्यालय की स्थापना ऐसे स्थान पर थी, जहा से हिमालय की श्रेणियाँ दृष्टि गत होती थी। १० सहस्रमान दूरी पर एक पर्वत खण्ड ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वह १॥ सहस्रमान ही हो। शीत ऋतु मे उस पर हिमपात भी हो जाया करता था। मरी पर्वत गुरुकुल से ४६ सहस्रमान था। वहाँ ग्रीष्मकाल में भी ठण्ड रहती थी। पुन्छ और काश्मीर को मरी पर्वत से होकर ही मार्ग जाता था।

सन्यास आश्रम के जीवन की ओर निरन्तर अभिगमन करने वाले, एकान्तप्रिय स्वामी जी महाराज को पर्वत, वनोपवन, पर्वतीय निर्झर और नदी नाले अतिरम्य प्रतीत हुआ करते थे। वे गुरुकुल के निकट रहते हुये उनसे पूर्ण लाभ की चेष्टा मे रहते थे। अवकाश उपलब्ध हो

जाने पर उनका आश्रय पर्वतमालाये ही हुआ करती थी। वर्षाकाल मे वे आठ युवक विद्यार्थियो, स्वामी अमृतानन्द जी और ब्रह्मचारी सेवाराम जी को लेकर पुन्छ काश्मीर की यात्रा पर पधारे। सराय-अलियाबाद में दो मास तक ठहरे, विद्यार्थियो की पढ़ाई चालू रही। यह स्थान पुन्छ से २० सहस्रमान और उड़ी से ४० सहस्रमान है। पश्चात् स्वामी जी महाराज अपने सहयात्रियों के साथ गुरुकुल लौट आये।

गुरुकुल आङ्गल विद्यालय के कुछ बडे विद्यार्थी बहुत ही उत्पाती थे। आचार्य श्री स्वामी जी महाराज को इससे अत्यधिक उद्वेग हुआ और वे गुरुकुल का परित्याग करके कुछ समय के लिये "राजोरी" पर्वत के एकान्त रम्य स्थान पर चले गये। वहां उनके साथी स्वामी शान्तानन्द जी योगाभ्यास किया करते थे। योगविद्या मे वे पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे। वे एक बार संयान मे यात्रा कर रहे थे। परस्पर मे यात्रियों के संवाद मे उन्होने यात्रियो से कहा—"मेरे इस सीधे किये हुए हाथ को कोई झुकाये तो सही।" उनके इस वचन पर सब अपनी शक्ति दिखाकर रह गये, पर उस वृद्ध संन्यासी का हाथ न झुका सके। वे अतिशय गतिशील एवं बलवान् भी थे।

सङ्घ शाखा में व्याख्यान

रावलपिण्डी नगर मे राष्ट्रिय स्वय सेवक सङ्घ की तीन शाखायें थी। वर्ष मे वे तीनो एक रूप मे परिणत होकर अपना कार्यक्रम इकट्ठा ही किया करती थी। राष्ट्रिय स्वयं सेवक सङ्घ के स्थानीय नेता ने अपने नवयुवको मे शक्ति का अपार सञ्चार कराने के लिए भारतीय सस्कृति के पुजारी स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के चरणो मे उपस्थित हो, अति विनीत विनति की, "देव ! राष्ट्रनायक !! चरित्रोन्नायक !!! आपको यह ज्ञात ही है कि आज देश को कैसे युवको की आवश्यकता है, हमारा यह प्रयत्न है कि हम अपने प्रिय देश को 'राष्ट्रिय स्वय सेवक सङ्घ' सस्था से वैसे ही युवक प्रदान कर सकें। भगवन् ! इसमे आपका सहयोग अपेक्षित है। अतः हमारा यह उत्कट अभिलाष है कि हम आपका उपदेश अपनी शाखा में कराये। हमारी यह प्रार्थना देवाधि-देव ! स्वीकार कीजिये।"

महाराज की स्वीकृति लेकर वे उनके पादपद्मो मे नतमस्तक हो, चले गये।

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती स्वागतकारियों के साथ नियत समय पर राष्ट्रिय स्वयं सेवक सङ्घ की व्याख्यान वेदि पर जा सुशोभित हुये। उन्होने अपना व्याख्यान आरम्भ करने से पूर्व वेद-मन्त्रो से प्रभु-स्तवन किया, पश्चात् नवयुवको को सम्बोधित करते हुये कहा—

ऐ मेरे प्रिय वीरो ! यह भारत माता आपकी ओर करुण नेत्रों से निहार रही है, उसे विश्वास है कि मुझे स्वतन्त्र कराने वाले, कहीं बाहर से नही, मेरी ही कुक्षि से उत्पन्न होगे। वह यह जानती है कि इस देश के अन्न से पला हुआ बच्चा-बच्चा इस देश की स्वतन्त्रता मे अपना रक्त बहायेगा। यह आप जानते हैं कि इस देश ने सदा वीरों पर भरोसा किया है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि चढती युवावस्था के नवयुवक इसकी बलिवेदि पर हंसते-हंसते झूल गये हैं। यह हम मानते है कि आदि सृष्टि से लेकर अब तक इस देश ने अनेक शत्रुओं के कई वार झटके झेले हैं। यह ही कारण है कि यह देश अपनी संस्कृति को अब तक अक्षुण्ण बनाये चला आ रहा है। मुझे विश्वास है कि वह संस्कृति अब आप वीरो के हाथो में सुरक्षित है। जब आपने राष्ट्रसेवा का व्रत ले लिया है, तो आपका कर्त्तव्य हो जाता है कि स्वयं अपने आचार की दृढ़शिला स्थापित करके आपकी ये भुजाये निर्बल की रक्षा-हेतु अन्यायी सबल के भी विनाश में अपना कौशल दिखाये। युग बीत जाते है किन्तु देश की रक्षा पर मर मिटने वाले वीरो की चमकती धारणाये निरन्तर चमक—चमक कर आगे आने वाली नव-सन्तति को अपनी वीरता का सन्देश सुनाती हैं। ऐ मेरे देश के नवयुवको ! यदि देश में आप जैसे वीर उत्पन्न न होंगे, तो निर्बलो को लोग खसोट खायेगे। यह देश अब आपके कर्त्तव्य की प्रतीक्षा में है। आपके नेता समय पर आपको यदि अग्नि में भी कूदने को कहे, तो आपके लिये वह सबसे सौभाग्य की बात होगी। ऐसे अवसरों पर अनुशासन वह वस्तु होता है, जिसमें बधकर अपना कोई विचार नही रह जाता। जिस जाति ने यह गुण सीखा है, वह कभी दूसरो के अधीन नही रह सकती।"

आपको यह समझ लेना चाहिये कि आप देश की रक्षा के लिये एक सैनिक रूप में सङ्घटित है, अतः आपको सैनिक कर्त्तव्यो का पालन बड़ी तत्परता से करना होगा। इसके लिये सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य अपने आचार की नीव को सुदृढ बनाना है। यजुर्वेद के सतरहवें अध्याय में सेना में भरती होने के लिये ब्रह्मचारियों का वर्णन आता

है। उस मे २४ वर्ष तक, ३६ वर्ष तक, ४८ वर्ष तक निरन्तर ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले ब्रह्मचारियों का विधान है। इन के लिये वहाँ वसु, रुद्र और आदित्य नाम आये है। देश की वास्तविक रक्षा वे ही कर सकते हैं, जिन्हे घर—बार की कोई चिन्ता न हो। अतः आपने अब स्वय अपने कर्त्तव्य को समझना है कि आप इस लक्षित जीवन मे कहाँ तक सफल हो सकेगे। मै आपको यह भी चेतावनी देता हूँ कि इस के लिये आपको बड़ा घोर परिश्रम करना पडेगा। आपमें इतनी शक्ति हो, कि रात—दिन, महीनो नही, वर्षो तक शत्रु से भूझते रहे। यह कार्य सरल नही है, पर यह भी ध्यान रहे—कि कठिन कार्य करते भी आप जैसे वीर ही है। भगवान् ने मनुष्य के भीतर ब्रह्मचर्य की वह शक्ति निहित की है, यदि उसे निरन्तर सँभाल कर रखा जाये तो वह ससार में शत्रु के लिये प्रलयङ्कारी दृश्य उपस्थित कर सकती है। इसके लिये आपको नित्य प्रति इतना व्यायाम करना चाहिये कि पसीना चू पड़े और किस लिये आप यह सब कुछ कर रहे हैं, वह लक्ष्य सदा समक्ष रहे। बिना लक्ष्य के साधनो मे त्रुटियाँ आ जाती हैं। आप अपनी दिशा में ठीक जा रहे हैं, इसकी परीक्षा लोगों के हाथ मे है। जब वे आपको किसी न्यायशील, धार्मिक और निर्बल की रक्षा करते देखेंगे, तो स्वयं उनके मुख से आपके लिये प्रशसा के शब्द निकल पड़ेगे।

मैं देख रहा हूँ कि आप लोगो के बीच में बहुत से आर्य युवक भी हैं। यह देश जैसा औरों का है, आर्यो का उससे कही अधिक है। यहाँ यह कहना चाहिये कि इस देश का जो भी प्राणी अन्न खा रहा है, उसका शरीर इस देश की रक्षा में काम आना चाहिये। उसके इस देह से कुछ-न कुछ राष्ट्र का भला होना चाहिये। राष्ट्र भक्ति वा देशभक्ति इसी का नाम है। हमसे पहले बीतने वालो ने अपना कर्त्तव्य निभाया है। हम उनके द्वारा सुरक्षित अधिकार को इससे आगे और कितना बढाते हैं, यह अब देखने की बात है।

आदर्श राष्ट्रिय नेता श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने इन सार-गर्भित ओजस्वी एव वीरता भरे शब्दो मे राष्ट्रिय स्वय सेवक सङ्घ को अपने अन्त.करण के भावो से रंगने की चेष्टा की। जिस समय महाराज का भाषण हो रहा था, नवयुवको की भुजाये स्पन्दन कर रही थी। वे ऐसे समय की प्रतीक्षा में थे कि कब नेताओ का सन्देश उन्हे प्राप्त

हो और वे अत्याचार की बढती बाढ को रोकने में लाखो नही, करोड़ों के मस्तक छिन्न-भिन्न करके शान्त हों।

स्वामी जी ने आर्यवीरो को सम्बोधित करते हुए कहा—"प्रत्येक धर्मावलम्बियो की अपनी-अपनी मर्यादाये हैं। आर्य समाज का यह मन्तव्य है कि वह चेतन के समक्ष ही नतमस्तक होता है। अतः वे ध्वज-अभिवादन के समय पङ्क्ति से बाहर हो जाया करे एवं अन्य सभी कार्यो में अपनी चतुरता-वीरता तथा दक्षता का सुपरिचय दें। भगवान् को ही अपना इष्ट एवं उपास्य देव समझ "ओ३म्" की पताका अपने अभिमुख समझे*।"

इसी वर्ष जून में २२ दिन तक आर्यवीर दल का भी शिविर लगा। इसमें स्वामी जी के प्रायः व्याख्यान होते रहे। ओम्प्रकाश जी पुरुषार्थी आर्यवीर दल के नियामक थे। महाराज के भाषण के समय वे देख रहे थे कि स्वामी जी बाहर से तो शान्त प्रतीत होते हैं, किन्तु आर्यवीर दल में भाषणों से बोध होता है कि ये क्षात्र धर्म से भी परिपूर्ण हैं और क्षात्रधर्म का वास्तविक स्वरूप नवयुवकों के समक्ष उपस्थित कर रहें हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी महाराज मे राष्ट्रोत्थान की अतिशय तड़प है।

आचार्य भगवान्देव जी का संन्यासिराज के चरणों में गमन

महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर के आचार्य श्री ब्रह्मचारी भगवान्देव जी स्वामी जी महाराज के दर्शन करने के लिए उनके यहाँ पहुँचे। श्री स्वामी जी महाराज उन्हे आर्य समाज मन्दिर मे ही मिल गये। स्वामी जी ने कहा—"मुझे अभी दो दिन तक अवकाश नही है, मैं बाहर जा रहा हूँ, आप तब तक गुरुकुल मे ही जाकर ठहरिये।" आचार्य भगवान्देव जी ने कहा—"ठीक है, स्वामी जी! तब तक दो-तीन दिन मैं भी तक्षशिला आदि स्थान देख आता हूं।" दोनों आचार्य इस पारस्परिक वार्ता के पश्चात् अपने-अपने गन्तव्य स्थान की ओर प्रस्थान कर गये। जब आचार्य भगवान्देव रावलपिण्डी से

*इन अन्तिम पङ्क्तियो को सुनकर राष्ट्रिय स्वय सेवक सङ्घ के स्थानीय नेता लगभग २॥ वर्ष तक श्री उपाध्याय जी से वैमनस्य निभाते रहे। महाराज को अपने सिद्धान्तो में दृढ देखकर पश्चात् रावलपिण्डी नगर की तीनो शाखायें इकट्ठी ही गुरुकुल मे आकर वर्ष मे ३ दिन अपने शिविर लगाने लगी।

सर्वयान (बस) में आरूढ होकर चोहाखालसा स्वामी जी का पुराना गुरुकुल देखने के लिए उतरे, तो उन्हे एक मुसलमान मिला । उस से गुरुकुल का मार्ग पूछा। वह विपुल श्रद्धा और भक्ति से उन्हे अपने ग्राम चोहाभक्ताँ ले गया। ग्राम के मुसलमानो ने उन्हे वही ठहराना चाहा, साय हो चुकी थी, किन्तु उन्हे तो गुरुकुल जाने की तड़प थी; अतः गुरुकुल का मार्ग पूछा। वहाँ से गुरुकुल ५ सहस्रमान था। उन्होने मार्ग दर्शाने के लिये एक बालक को भेजा। वह बहुत दूर तक आकर मार्ग दिखा गया। जब आगे आ कर आचार्य भगवान्देव जी मार्ग से भटक गये, तो उन्होने एक ऊँट वाले से मार्ग पूछा, वह भी मुसलमान था। वह अति प्रेम और श्रद्धा से आचार्य भगवान्देव को उस पुरानी गुरुकुल-भूमि मे ले गया। वे रात के दस बजे वहाँ पहुँचे। मार्ग मे और भी बहुत-से मुसलमान मिले। सबने अति खेद के साथ कहा कि स्वामी जी गुरुकुल यहाँ से हटाकर रावलपिण्डी से १३ सहस्रमान दूर मरी मार्ग पर रावल मे ले गये हैं। हमने बहुत निषेध किया था। इसमे हमारा अपना ही स्वार्थ था। स्वामी जी महाराज प्रत्येक कठिनाई मे काम आते थे। वे मनुष्य नही हैं, हम तो उन्हे अपना धर्मगुरु (पैगम्बर) मानते हैं। उनके हृदय से हिन्दू मुसलमान का भेद समाप्त हो चुका है। धनी, निर्धन सभी के लिये समान है। वे सबका समान आदर करते हैं। उनका जीवन उनके अपने लिये नही रह गया है, वह समस्त संसार का बन चुका है। पर-हित में अपने खाने-पीने और शरीर का कोई ध्यान नही है।" उन्होने आचार्य भगवान्देव जी से आगे कहा—"आप कुछ दिन यही ठहरिये, हम आपके भोजन आच्छादन का प्रबन्ध हिन्दु-परिवार मे कर देगे।" मुसलमान लोगो में भी स्वामी जी के प्रति इन गहरी भावनाओ से आचार्य भगवान्देव जी मन ही मन स्वामी जी के जीवन की प्रशसा करने लगे—भारत भूमि मे जन्म हो तो ऐसे आत्मा का हो, जो विरोधिनी मानव जाति मे भी प्रेम का सञ्चार करदे, जिससे यह आर्यावर्त देश पुन. उच्च शिखर पर पहुँच जावे।

स्वामा आत्मानन्द सरस्वती अपने विशेष कार्यों से निवृत्त होकर दो दिन पश्चात् गुरुकुल पहुँचे, तो आचार्य भगवान्देव जी भी अपना परिभ्रमण कर श्री चरणो मे उपस्थित हुये। महाराज को आचार्य भगवान्देव जी से इसलिये विशेष अनुरक्ति थी कि अनेक विघ्न-बाधाओ को सहते हुये गुरुकुल झज्जर मे आर्ष पाठ विधि के ही

प्रचालन का व्रत लिया हुआ है। सभी गुरुकुल आर्षपाठ विधि के व्रत के साथ ही प्रारम्भ हुये थे; किन्तु संसार की टक्करों में टिक न सके।

प्रत्येक दर्शन पर विद्वद्राट् स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी का इतना प्रबल आधिपत्य था कि पढे लिखे महानुभाव भी दर्शन दोबारा पढ़ने की उनसे इच्छा किया करते थे।

आचार्य भगवान्‌देव जी ने अवसर का लाभ उठाते हुये श्री स्वामी जी से योगदर्शन पढ़ने की इच्छा प्रकट की, जिसे उन्होने सहर्ष स्वीकार कर लिया और कहा—"अब दर्शन पढने वाली व्यक्तियाँ ही नही रहीं कैसा काल आ गया है।"

योग दर्शन का पाठ प्रारम्भ कर दिया गया और श्री स्वामी अमृतानन्द जी जिस कक्ष मे ठहर हुये थे, उसी मे आचार्य भगवान्‌देव जी के ठहरने का भी प्रबन्ध कर दिया।

स्वामी अमृतानन्द जी अष्टाध्यायी का भाष्य लिख रहे थे और स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती से शोधित करा लेते थे, अशुद्धियाँ बहुत निकला करती थी।

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने सन्यास की दीक्षा के अवसर पर जो, स्वामी अमृतानन्द जी के हाथ स्पर्श कराके गेरुवे वस्त्र धारण कर लिये थे, उससे स्वामी अमृतानन्द जी श्री आत्मानन्द जी सरस्वती को अपना शिष्य समझने लग गये और स्वयं को गुरु। इस अपने गुरु के थोथे अधिकार से वे महाराज के साथ ठीक व्यवहार नही करते थे। जिससे महाराज को आन्तरिक कष्ट होता था। महाराज की प्रकृति अत्यन्त सरल, कोमल थी। वे अपने साथ बुरा व्यवहार करने वाली व्यक्ति को भी कुछ न कहते थे, क्योकि उन्होंने अपने सन्यास के आदर्श को स्थिर रखना था। इसके विपरीत स्वामी अमृतानन्द जी बड़े क्रोधी पुरुष थे। उन्होने सर्वत्र यह ही घोषणा की कि स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने मुझसे ही सन्यास की दीक्षा ली है। मैं उनका गुरु हूँ। जिन लोगो को वास्तविक तथ्यो का पता नही था, वे स्वामी अमृतानन्द जी के झासे मे आ जाते थे और उनका अच्छा सत्कार करते थे। धीरे-धीरे जनता मे इसका प्रतिवाद स्वयं लोगो की ओर से ही होने लगा। स्वामी आत्मानन्द जी महाराज से भी वास्तविक तथ्यो का पता लगाया गया, तो उन्होने कह दिया कि—"स्वामी

अमृतानन्द जी की बाते मिथ्या है। मैंने स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज से ही सन्यास की दीक्षा ली है। समय पर उपस्थित एक सन्यासी का मान करने के लिये मैंने उनके हाथ अपने गेरुवे वस्त्रो पर लगवा लिये थे। इतने मात्र से ही कोई गुरु शिष्य नही हो जाता। शिष्य अपना गुरु, अधिकारी देखकर स्वय चुना करता है।"

आचार्य भगवान्देव जी, महाराज की छत्रच्छाया मे एक मास तक रहे। योगदर्शन पढते हुये, साथ-साथ योगाभ्यास भी करते थे और योगाभ्यास के विषय मे प्रष्टव्य बातें पूछ—पूछकर अपना समाधान भी करते रहते थे।

आङ्गल विद्यालय को चलते हुये ढाई वर्ष हो गये थे। विद्यार्थी प्रतिवर्ष पूर्व सङ्ख्या से अधिक ही हो जाते थे। स्थान की कमी अनुभव की जा रही थी। उसे पूरा करने के लिये चेष्टा भी हो रही थी; किन्तु सब बातो के ठीक होते हुये भी पेशावरी बडे विद्यार्थियों के आङ्गल विद्यालय मे प्रविष्ट होने से वे दोष आ गये, जो प्रायः स्कूलो मे हो जाते हैं और जिन्हे सहन नहीं किया जा सकता। कुछ विद्यार्थी चोरी-छुपके मास भी खाते रहते थे। अतः स्वामी जी इन घटनाओ से बहुत दुःखित हो गये और उनके निराकरण के विभिन्न उपाय सोचते रहे। कभी-कभी विद्यालय को समाप्त करने के भाव भी मन मे स्थान पा लेते थे।

एक दिन आचार्य भगवान्देव जी ने कहा—"स्वामी जी! यह आङ्गल विद्यालय का अड्ङ्गा क्यो खड़ा कर लिया है?" महाराज ने उत्तर मे कहा—"जिन लाभो को दृष्टिगत रखकर इसका प्रारम्भ किया था, वे लाभ उपलब्ध होने तो दूर रहे, हानियाँ और शिर चढने लगी। अब इस वर्ष इसे तोड़ देंगे।"

वीर सावरकर का स्वागत

स्वम्भवत. श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती का अपने लिये कोई कर्त्तव्य शेष नही था, पर योगिराज श्री कृष्ण द्वारा निर्दिष्ट गीता के आधार पर कि महापुरुषो को कर्म करते रहना चाहिये, जिससे सांसारिक साधारण जन कार्य में लगे रहे, वे कार्यरत रहा करते थे। आर्य मर्यादाओ के पालन का ध्यान दिलाने के लिये वे स्वय समय पर ऐसे कर्म भी करते थे, जिनके लिये सन्यासी की दृष्टि से माँग न हो।

वीर सावरकर का परिधान श्वेत था, तो भी स्वामी जी ने विचारा, "वीर सावरकर ने अपने राष्ट्र के लिये वह कर्त्तव्य निभाया है, जिसका स्मरण करते ही मानव नतमस्तक हो जाता है।" वीरसावरकर कोहमरी से पधार रहे थे। स्वामी जी को जब इसको सूचना मिली, तो वे गुरुकुल आङ्गल विद्यालय के सब विद्यार्थियों को लेकर मण्डल रथ्या पर आ गये। रथ्या के दोनों ओर विद्यार्थियों को पङ्क्तिबद्ध खड़ा कर दिया और स्वयं वीर सावरकर के वहित्र को हाथ के सङ्केत से, उनका स्वागत करने के लिये रोक लिया। वीर सावरकर के जय-जय ध्वनि से आकाश गूँज उठा। महाराज ने वीर शिरोमणि सावरकर को पुष्पमाला पहना कर अपनी श्रद्धा समर्पित की तथा चरण स्पर्श किये और कुछ देर वार्तालाप के पश्चात् उनके समय का ध्यान रखते हुये मार्ग छोड़ दिया।

जैनियों के १११ प्रश्नों का उत्तर

सन् १९४३ में अम्बाला नगर के जैनी महानुभावो ने भू-मण्डल के समस्त आर्य जगत् से १११ प्रश्नों के उत्तर मागे थे। उनकी दृष्टि मे वे प्रश्न ऐसे थे कि आर्य समाज से उनका उत्तर न बन सकेगा। इन प्रश्नो में आर्य समाज पर अनेक आक्षेप किये गये थे। सन् १९१२ में श्री स्वामी दर्शनानन्द जी से भी जैन समाज ने कुछ प्रश्न किये थे जिनका उत्तर काशी से इन्ही भूतपूर्व पण्डित मुक्तिराम जी ने दिया था। अतः अब भी स्वामी जी से सहन न हो सका। आर्य समाज का कोई दूसरा विद्वान् इनका उत्तर दे, उसकी उन्होने प्रतीक्षा ही नही की। वे भी देते रहेगे। अतः स्वामी जी ने अपनी स्वोपज्ञ-चमत्कारिणी प्रतिभा से पृष्ट प्रश्नो के एक-एक अंश को लेकर तर्क से उनके प्रश्नों का समाधान कर दिया और स्वपक्ष की अतर्क्य स्थापना कर दी।

आर्य जगत् मे भी इन उत्तरो का बड़ा महत्त्व था, भविष्यत् में ये मार्ग प्रदर्शन करेंगे, अतः आर्य प्रतिनिधि सभा लाहौर (पञ्जाब) ने उन्हे पुस्तक रूप मे प्रकाशित कर दिया। जैन समाजो को उन उत्तरो से बड़ा सन्तोष हुआ तथा महाराज की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हो गया। जब कभी भी उनकी ओर से पत्र-पत्रिका वा पुस्तिका प्रकाशित होती थी, उसकी एक प्रति श्री महाराज की सेवा मे वे अवश्य प्रेषित करते थे।

अस्पृश्यों का उत्थान

स्वामी जी महाराज को उनके जीवन में एक ऐसे भावनावान् परोपकारप्रिय महाशय देवीदास जी ब्रह्मचारी रावलपिण्डी मे मिले जो उनके किसी भी आदेश के पालन करने मे यत्किञ्चित् भी विलम्ब न करते थे। उन्होने श्री देवीदास जी को प्रेरित किया कि चर्मकारो के बालक शिक्षादृष्टि से बहुत पिछडे हुये हैं। आप उनमें जाकर उन्हे शिक्षित कीजिये। देवीदास जी ने आदेश का तुरन्त पालन किया और अस्पृश्य बालको की शिक्षा-दीक्षा मे तत्पर हो गये।

सिक्ख-भाई आर्य समाज की इस प्रगति से असहिष्णु होकर कुछ चर्मकार-बालको को बहका कर ले गये और पन्द्रह रुपये मासिक प्रत्येक बालक को देने का वचन दिया तथा उनके माता-पिता को भी गुरुद्वारे मे आश्रय देने का प्रलोभन दिया।

जब इस विचित्र घटना की सूचना श्री ब्रह्मचारी देवीदास जी ने स्वामी आत्मानन्द जी को दी, तब उन्होंने जैन समाज, हिन्दू समाज, आर्य समाज तथा चर्मकारों के मुखिया को बुलाकर चर्मकारो की आवश्यकताओ और कठिनाइयो को सुना। हर्ष का विषय है कि अस्पृश्य लोगो की प्रत्येक आवश्यकता को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व जैन, सनातन, तथा आर्य समाज ने अपने कन्धे पर ले लिया।

चौधरी रामकृष्ण ठेकेदार ने चर्मकारो के निर्धन परिवारों को अपनी धर्मशाला मे निवास देने का प्रबन्ध कर दिया। इस प्रकार सब प्रबन्ध हो जाने पर सिक्खो की सरक्षता मे गये हुये बालक आहूत कर लिये गये और उनकी शिक्षा श्री देवीदास जी के अध्यापकत्व मे पुनः सुचारुरूपेण प्रचलित कर दी गई।

गुरुकुल आङ्गल विद्यालय का तोड़ना

आङ्गल विद्यालय के वातावरण से खिन्न होकर यतिवर्य आत्मानन्द बम्बई चले गए। विद्यालय की सूचनाएँ फिर भी वहाँ पहुँचती ही रही। बीस दिन हो पाये थे कि उन्होने दृढ सङ्कल्प कर लिया, अब इसे एकपदे तोड देना ही श्रेयान् है। वे सीधे बम्बई से विद्यालय आए। विद्यालय के अवकाश पर विद्यार्थी घर गए और स्वामी जी ने सबको पत्र लिखा दिए कि इस वर्ष से विद्यालय समाप्त कर दिया गया है।

कही अपना प्रबन्ध कर ले। पश्चात् उसके स्थान पर गुरुकुल पद्धति मे ही लघु बालको को शिक्षण देना प्रारम्भ किया।

दयानन्द भिक्षुमण्डल की स्थापना

बाल्य कालमे बालकोकी भावनाएँ विकास को प्राप्त हुई-हुई नही होती, यौवनवयः में उनका जीवन-संसार की किस दिशा मे मोड लेगा, यह धारणा पूर्वत सर्वथा अनिर्धारित होती है। इस कारण महर्षि दयानन्द के वैदिक उद्देश्य को पूर्ण करना इस पद्धति से असम्भावित ही था। तब यतिराड्-आत्मानन्द के चित्त में इस धारणा ने अपना स्थान बनाया कि जैसे बौद्ध भिक्षुओ ने अपना सब कुछ बुद्ध-धर्म के लिए समर्पण किया, ठीक उसी प्रकार यावत् दयानन्द भिक्षुओ का निर्माण न किया जावेगा, तावत् वैदिक धर्म का प्रचार होना कठिन है। अतः इस कार्य के निमित्त 'श्री दयानन्द भिक्षु मण्डल' इस नाम के सस्थान का स्थापन किया जाना आवश्यक है। उस मे प्रविष्ट भिक्षुओं के भोजनादि का सम्पूर्ण व्यय भार संस्था वहन करे; घर से उनका कोई सम्बन्ध न हो।

सन्यासिप्रवर आत्मानन्द के जीवन और वाणी में आर्य जनों को विश्वास था। आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के महोदय श्री चिरञ्जीव लाल जी आगे आए और उन्होने दस भिक्षुओ का व्यय सतरह रुपये प्रति भिक्षु एक सौ सत्तर रुपये प्रतिमास देने का अपनी ओर से वचन दे दिया। अहो ! इस पुण्य कार्य मे उस पुण्यशाली ने प्रशंसनीय योग देकर अपने नाम को अमर बना लिया।

१ जुलाई १९४५ को स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी ने 'श्री दयानन्द भिक्षुमण्डल' की स्थापना कर दी। सबसे पूर्व भिक्षुमण्डल मे उस दिन श्री स्वामी जी के शिष्य दर्शनभास्कर श्री पण्डित विद्याधर जी और ब्रह्मचारी रामधारी जी प्रविष्ट होने के लिये दीक्षित हुये। उसी समय 'श्री दयानन्द भिक्षुमण्डल' के उद्देश्य तथा नियमो का निर्माण किया गया, जो निम्न हैं।

१—इस मण्डल का नाम "श्री दयानन्द-भिक्षु-मण्डल" होगा।

२—इस मण्डल का उद्देश्य वेद प्रचार तथा विरक्त आर्य ब्रह्मचारियो, वानप्रस्थो और सन्यासियों के पठन-पाठन के लिये तथा उन के सुख-दुःख मे आश्रय पाने के लिये आश्रमो की व्यवस्था करना होगा।

३—उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस मण्डल में निम्न प्रकार के भिक्षु प्रविष्ट किये जावेंगे —

(क) जो इक्कीस वर्ष से अधिक हो, फिर चाहे वे ब्रह्मचारी वानप्रस्थ अथवा सन्यासी हो।

(ख) जो व्यायाम, योगाभ्यास तथा वेद-वेदाङ्गो के अध्ययन से, अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति करते हुए, अपनी उस उन्नति को दूसरो की उन्नति का साधन समझते हो।

(ग) जो वेद प्रचार को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य मानते हों, प्रचार के क्षेत्र मे भयङ्कर कष्ट आने पर भी अपने उद्देश्य मे अटल रहने का निश्चय कर चुके हो और जिन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य का, तथा भिक्षा मात्र पर अथवा अपने स्थिर आय पर निर्वाह कर, जीवन यात्रा करने का निश्चय किया हो।

(घ) जो किसी व्यक्ति अथवा समाज से किसी प्रकार के मान अथवा सत्कार की कामना न करते हुए कर्त्तव्य-भावना से कर्म करनें तथा तपस्वी-जीवन बिताने के अभिलाषी हों।

४—भिक्षुओ की आवश्यकता-पूर्ति के लिये, विभिन्न स्थानों पर ऐसे आश्रमो की स्थापना की जावेगी, जहाँ भिक्षुओ के भोजन, आच्छादन, आत्म-चिन्तन तथा पठन-पाठन का सब प्रबन्ध होगा।

५—आश्रम मे निवास करने वाले भिक्षु को प्रबन्ध-कारिणी सभा के निर्माण किये नियमो का पालन करना होगा तथा कार्य-क्रम के अनुसार चलना होगा।

६—आश्रम का पाठ-विधि 'श्री दयानन्द-उपदेशक-विद्यालय लाहौर' के पाठ-विधि के अनुसार होगा। अनार्ष-ग्रन्थ नही पढाये जावेंगे, तथा विशेष आत्म-चिन्तन का भी प्रबन्ध होगा और ग्राम-प्रचार के सुभीते के लिये आयुर्वेद के शिक्षण की भी व्यवस्था की जावेगी।

७—व्यावहारिक रूप मे वेद-प्रचार के अभ्यास के लिये, वर्ष मे दो मास के लिये अध्ययन-काल मे भी विभिन्न स्थानो मे प्रचार के लिये, भिक्षु जाया करेंगे।

८—अपने आश्रम के साथ भिक्षु का आजीवन सम्बन्ध होगा, वह किसी भी प्रकार के कष्ट के समय अथवा स्वाध्याय के लिये नि सङ्कोच अपने आश्रम मे आकर ठहर जाया करेगा।

९—प्रचार के लिये कुछ ग्रामों तथा नगरो में मण्डल के केन्द्र स्थापित किये जावेगे, शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भिक्षुओं को विभिन्न मण्डलो मे प्रचार करने के लिये नियत किया जाया करेगा। भिक्षुओं की इच्छाओ के अनुसार उन्हे किन्ही और केन्द्रों में भी परिवर्तित किया जा सकेगा।

१०-किसी केन्द्र में नियुक्त हो जाने के उपरान्त वहाँ के प्रचार का कार्य-क्रम बनाने तथा प्रचार का प्रकार निश्चित करने में भिक्षु स्वतन्त्र होंगे।

११-भिक्षुओ के लिये यह आवश्यक न होगा कि वे स्थान-स्थान पर घूम कर ही वेद-प्रचार करे। वे अपने मण्डल के एक-एक ग्राम में भी जितनी देर तक चाहेगे, ठहर सकेंगे। केवल मात्र कुछ मन्त्र याद करा देने अथवा व्याख्यान दे देने पर ही उन के कार्य की समाप्ति न समझी जावेगी, यह देखा जावेगा कि उन्होने अपने मण्डल के ग्रामो में लोगो के धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक जीवन को कितना उन्नत किया है - और अपने आचार-व्यवहार से उन पर कैसा प्रभाव डाला है।

१२-प्रचार-कार्य मे नियुक्त हुए भिक्षु को, आश्रम की भांति ही अपने नित्य-कार्य, आचार-व्यवहार, आत्म-चिन्तन, स्वाध्याय तथा प्रचार आदि सब कार्य-क्रम को व्यवस्था मे रखना होगा। प्रत्येक प्रकार का ग्राम-सुधार भिक्षु के कार्य-क्रम का लक्ष्य होगा। जो भिक्षु आश्रम मे अध्ययन द्वारा, लेख-द्वारा अथवा (अन्वेषण की योग्यता रखते हुए) अन्वेषण-द्वारा कार्य करना चाहेगे, वे प्रधान आश्रम मे स्थिर रह कर कार्य कर सकेंगे।

१३-नियम-भङ्ग करने वाले भिक्षु को तत्काल भिक्षु-मण्डल से पृथक् कर दिया जावेगा।

१४-भिक्षु-मण्डल की प्रबन्ध-कर्त्री सभा के सभासद् भिक्षु-मण्डल में प्रविष्ट हुए भिक्षुओ मे से ही चुने जाया करेंगे।

१५-इस भिक्षुमण्डल का एक सहायक मण्डल होगा। जो सज्जन सहायक बनना चाहेगे, वे शारीरिक, मानसिक अथवा आर्थिक-किसी प्रकार की भी-सहायता दे कर सहायक बन सकेंगे। मण्डल की कार्य-वाही का वृत्तान्त उन्हे मिलता रहेगा, और वे समय-समय पर अपनी सम्मति भेजते रहेंगे।

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती द्वारा प्रणीत संस्कृत भाषा मे एक सुन्दर गुरुकुल-गीतिका श्री वेदप्रकाश शास्त्री, कला-अधिस्नातक से उपलब्ध हुई, जो इस प्रकार है—

वन्दे कुलमेदिनि गुणशालिनि, दुर्गुण—सङ्कटहारिणि ।
शीत-वात-चल तरुकचभारे, विमलस्रोतस्सुरुचिर-हारे ।
गिरिवर कुण्डलधारिणि ॥१॥वन्दे..............
अङ्कागत-जनभृङ्गममन्दम्, दत्त्वा ज्ञान-कुमुद-मकरन्दम् ।
मानस-मति-मलनाशिनि ॥२॥ वन्दे.........
पतिताचार-समाज विचित्रम्, वेदो मा विदधीत पवित्रम् ।
कुपिते भृशमिति भाषिणि ॥३॥ वन्दे.........
कायिक-मानस-बलरहितानाम्, आत्मिक-बलचिन्ता-सहितानाम् ।
बल-साधन-सञ्चारिणि ॥४॥ वन्दे.........
श्रुति-परिशीलनचञ्चु-कुलीना, आदिमाश्रमव्रततल्लीना. ।
तेषामुन्नतिकारिणि ॥५॥ वन्दे.........
ऋषि-ऋण-मोचन बलयुतवीरा , वयमपि येन भवेम सुधीरा
भावय समये भाविनि ॥६॥..........
वन्दे कुलमेदिनि गुणशालिनि ! दुर्गुण-सङ्कट हारिणि ॥

श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार का वानप्रस्थ

श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार आर्य जगत् के मान्य नेता है। वानप्रस्थाश्रम मे दीक्षित होने से पूर्व श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती से विशेष परिचय नही था। जब कभी भी आर्य समाज लाहौर का उत्सव होता था, तो श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार को भी अत्यन्त प्रतिष्ठित व्याख्याताओ की पङ्क्ति मे रखकर आमन्त्रित किया जाता था और श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती रावलपिण्डी के क्षेत्र मे अत्यन्त ख्याति प्राप्त महापुरुष थे ही, अत. उन्हे भी बड़ी श्रद्धा से उत्सवो में आमन्त्रित किया जाता था । श्री पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार, अपनी वानप्रस्थ-दीक्षा के निकट आते जा रहे थे। उनके लिये यह एक समस्या थी कि किससे इस आश्रम की दीक्षा ग्रहण की जाये। प्रत्येक मानव अपने से योग्य व्यक्ति को ही गुरु रूप में वरण करता है। इसके लिये उन्होने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि का निक्षेप आर्य समाजो के भिन्न-भिन्न

स्थानो पर होने वाले उत्सवों पर पधारने वाले योग्य संन्यासियो पर किया था। किन्तु जब वे लाहौर उत्सवपर आते थे, तो उपदेशक-मण्डल मे एक सीधी सादी ऐसी व्यक्ति को देखते थे, जिसके भीतर वेदविद्या के प्रति अगाध श्रद्धा थी, जिसका व्यवहार सबके साथ अत्याकर्षक था। जिसकी वाणी से निरन्तर अमृतवर्षा होती थी, जो दीखने में साधारण लगती हुई भी, व्याख्यान वेदी पर आकर अपना चमत्कार दिखाती थी। जिसके एक-एक शब्द सुनने के लिये श्रोतागण निरन्तर स्तब्ध चित्रलिखित-से रहते थे। जो जनता को प्रतिवार स्वात्मनिःसृत अभिनव वस्तु भेट करती थी, उसके सम्बन्ध में श्री पण्डित ईश्वरचन्द्र जी भी यदा-कदा पण्डित बुद्धदेव जी से प्रशंसा किया करते थे। प० बुद्धदेव जी आश्चर्य चकित थे कि श्री ईश्वरचन्द्र जी जैसा दार्शनिक, गम्भीर विद्वान् भी अपने गुरु की जब इतनी प्रशंसा करता है, तो अवश्य कोई-न कोई विशेष आत्मा इस सीधे सादे शरीर में छिपा है। जिसमें बाह्याडम्बर का कोई चिह्न नही। अभिमान की कोई झलक नही। इस ऐसी गुणनिधान व्यक्ति से ही मुझे भी वानप्रस्थ की दीक्षा लेनी योग्य है। अतः उन्होने अपनी इस दीक्षा के लिये श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के सान्निध्य में आकर एक दिन उनसे निवेदन किया "मुझे वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा से दीक्षित करके अपना शिष्य स्वीकार कीजिये। मै आपको अपना गुरु बना आपसे कुछ सीखने और आदेश पाने का अवसर प्राप्त कर सकूँगा। ऋषिराज! मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिये।" पश्चात् परस्पर के परामर्श से स्वामी जी द्वारा दीक्षित होने का काल-निर्णय कर लिया गया और निश्चित तिथि पर लाहौर नगर मे श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार ने श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती से वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा ग्रहण कर ली। जब पण्डित बुद्धदेव जी इस तीसरे आश्रम मे दीक्षित हुये, तो उनकी अवस्था ५१ वर्ष थी। । दीक्षा का स्थान, लाहौर मे उनके अपने श्वसुर पण्डित वासुदेव शर्मा की कोठी था। वहाँ इस शुभ अवसर पर प्रख्यात विद्वन्मण्डल उपस्थित था, जिसे एक अगस्त १९४५ का यह दिवस चिर स्मरणीय है।

भिक्षु मण्डल के अध्यापक

अगस्त के अन्त तक कई भिक्षु गुरुकुल मे पहुँच गये। जिनमें अर्ध-शिक्षित, स्नातक, शास्त्री, वानप्रस्थ और सन्यासी सभी प्रकार के

विद्यार्थी थे। श्री स्वामी जी ने सबकी भिन्न-भिन्न योग्यता के आधार पर सबके भिन्न-भिन्न अध्यापन की व्यवस्था की।

'योगदर्शन' का पाठ प्राय. सब भिक्षुओ के लिये निर्धारित किया गया। 'न्याय दर्शन' योग्यता के आधार पर ही केवल एक भिक्षु का प्रारम्भ में आरम्भ हुआ। 'वेदान्त दर्शन' की भामती टीका और 'मूल निरुक्त' पर अर्थ को विशेष महत्त्व दिया। 'मुद्राराक्षस' आदि साहित्य के ग्रन्थ भी आरम्भ कराये गये। वैशेषिक दर्शन से पूर्व 'न्याय मुक्तावली' भी प्रारम्भ कर दी गई। व्याकरण के पाठ दूसरे योग्य भिक्षुओ को दे दिये गये।

'योगदर्शन' के अध्यापन मे एक-एक शब्द को विस्तारपूर्वक समझाने की रीति स्वामी जी की निराली थी। व्याख्या का आधार व्यास भाष्य था। स्वामी जी महाराज, प्रायः इस प्रकार से बोलते थे, जिससे यह स्पष्ट झलक आती थी कि व्याख्यातव्य विषय उन्हे समाधि में अनुभूत हो चुका है, किन्तु वे अपने रहस्य को प्रकट नही होने देते थे। उस समय उनके शब्द होते थे कि योगी लोग इस तत्त्व को इस प्रकार का बताते हैं। स्वय करके देखने पर ही इसका दृढ़ विश्वास होता है।

'न्याय दर्शन' के वात्स्यायन भाष्य मे वे बिना पुस्तक के ही विद्यार्थी द्वारा पढ़े जाने वाले वाक्यो से, आगे-आगे बोलते चले जाते थे। उसकी एक-एक पङ्क्ति को बिना समझाये आगे न बढते थे। न्याय दर्शन पर वात्स्यायन भाष्य पढने की परिपाटी पहले बहुत ही कम थी। इस पर स्वामी आत्मानन्द सरस्वती का अपना परिश्रम था। सनातनी गुरु महानुभावो के लिये यह ग्रन्थ हेय पक्ष मे था। स्वामी जी ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे बताया "नव्य न्याय के सब ग्रन्थ पढने के पश्चात् जब मैंने इस ग्रन्थ का अवलोकन प्रारम्भ किया, तो उस समय इतना तन्मय रहता था कि मेरे अभिमुख उस समय केवल इसी का लक्ष्य रहता था। आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर आसन पर बैठ जाता और फिर उठने का नाम नही लेता था। भोजन भी मैं विद्यार्थियो से अपने आसन पर ही मंगा लेता था। बनारस का वह समय मुझे भूलेगा नही। तीन महीने मैंने इसी प्रकार बिताये और सारे ग्रन्थ की सङ्गति स्वयमेव लगाई। गुरु महाराज से बहुत ही कम सहायता इस ग्रन्थ में मिली।"

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने अपने परम पवित्र कर-कमलों से सितम्बर मास मे करयाला जिला जेहलम निवासी एक श्रद्धालु भक्त लालचन्द को सन्यास की दीक्षा देकर पवित्र किया और वे सदा आनन्द में रहे, इस आशीर्वचन से उन्हे 'नित्यानन्द' नाम से विभूषित कर दिया। स्वामी नित्यानन्द जी की दिव्य आत्मानन्द से दीक्षा लेने की चिरकाल से आकाङ्क्षा थी।

अध्ययन-अध्यापन के साथ आत्मचिन्तन

श्री स्वामी जी पठन-पाठन की अपेक्षा अध्यात्म चिन्तन पर विशेष बल देते थे। उनकी दृष्टि में अध्यात्म चिन्तन के बिना केवल विद्योपार्जन कर लेना महत्त्व का वस्तु नही था । वह विद्या न इन्हे ही सुखकारी होगी और न ही उससे किसी दूसरे को लाभ पहुँचने की सम्भावना है। वह केवल सीतावाद्य* बनकर रह जाती है। अतः जहाँ विद्या का उच्च अध्ययन किया जाये, वहाँ विद्वानो के जीवन अध्यात्म भावनाओं से भी रङ्गे हुये होने चाहिये।

इस बात को ध्यान में रखकर सायंकाल अग्निहोत्र-सन्ध्या के पश्चात् भोजनान्त में एक घण्टे का मौन रहता था। इस मौन-काल में एक छोटा विद्यार्थी भी गुरुकुल-सीमा में वार्तालाप नही कर सकता था बालकों के लिये यह चिरमौन ही पर्याप्त साधना थी । दूसरे भिक्षु वा आत्मचिन्तन-प्रिय आश्रमी उस समय अपनी साधना में रत रहते थे। जो ऐसा करते थे, वे साय भोजन नही लेते थे। स्वामी जी भी समाधि-लीन होकर, उस अध्यात्म क्षेत्र को आगे बढाते रहते थे।

भिक्षुओ को इस विषय मे नित्य नवीन विचारधारा प्राप्त होती रहे, तदर्थ श्री स्वामी जी ने शीत-ऋतु के नवम्बर मास में उपनिषदो का पाठ भी प्रात. समय में सामूहिक रूप से आरम्भ कर दिया। वे उपनिषदो को मूल पर ही पढ़ाते थे एव कठिनस्थलों की भी ऐसी विश्लेषणात्मक व्याख्या करते थे, जो रुचिकर लगने के साथ उस क्षेत्र में आगे बढने की प्रेरणा देती थी।

भिक्षु महानुभाव आदर्श आचार्य श्री देव आत्मानन्द जी महाराज की इस मनोहर शैली एव गूढ रहस्य के स्पष्टीकरण से प्रभावित

*ग्रामोफोन।

होकर यह कहते देखे गये कि ऐसे विलक्षण अर्थ, जो शब्दो पर ही समन्वित हो जाते हैं, स्वामी जी किस प्रकार करते हैं ? उसी समय पङ्क्ति में आसीन श्री हरिशरण भिक्षु अत्यन्त मन्द स्वर में यह सङ्केत करते पाये गये कि देखो स्वामी जी की खोपड़ी कैसी चमक रही है। यही पर स्वामी जी बुद्धि का स्थान बतलाया करते हैं।

गुरुकुल के विद्यार्थियो में प्रायः यह साधारण चर्चा थी कि स्वामी जी दूसरो के मन की बातें जानते है। लघु बालकों का अपने आचार्य प्रियदर्शी श्री स्वामी जी में इतना गाढ अनुराग था कि जब कभी स्वामी जी रावलपिण्डी नगर मे चले जाते थे और साय आने का समय होता था, तो विद्यार्थी छतो पर आरूढ होकर उनके आने की प्रतीक्षा किया करते थे एव आ जाने पर अत्यन्त प्रसन्नता से खिल उठते थे।

अनूठा प्रेम

एक समय का वृत्तान्त है कि स्वामी जी महाराज के लघुपटल (चौकी) पर अध्यापन कक्ष में कुछ केले के फल रखे हुये थे। उनमे से एक केला किसी बालक ने उठा लिया। स्वामी जी ने इसकी चर्चा भिक्षुओ से की और कहा—"छोटे बालक, जो यहाँ पढने और आचार विचार की शिक्षा लेने आये हुये हैं, वे गुरुकुल भूमि को अपना ही घर समझते हैं, जैसे बच्चे घरो पर भूख लगने वा किसी विशेष वस्तु में रुचि हो जाने पर स्वय उठाकर खा लेते हैं, वे उसी भावना का ही यहाँ पालन कर रहे हैं।

पुनः छोटे बालको को समझाया कि जिसे किसी वस्तु विशेष की इच्छा हो, वह पूछकर उस वस्तु को ग्रहण कर लिया करे। पूछकर ग्रहण करने मे कोई दोष नही है। एव जो भी तुम्हे कष्ट हो आ कर बता दिया करो।

देव आत्मानन्द इतने सीधे एव सरल प्रकृति सम्पन्न पुरुष थे कि अपने छोटे से कार्य के लिये भी सम्मुख उपस्थित भिक्षुओ को कुछ नही कहते थे। उदाहरणार्थ—वे पाठ कराते हुये मध्य मे उठकर चल देते और जब सुराही पर जाकर हाथ लगाते, तब पता चलता कि जल पीना चाहते हैं। भिक्षु उस समय दौडते, पर फिर क्या बनता है, तब तक तो वे पान कर चुकते थे। भिक्षु महाशय पश्चात्ताप करते हुये कहते—"स्वामी जी ! सुराही के निकट तो हम आपसे अधिक थे; इस

दृष्टि से और हमारे उपस्थित रहते हुये आपका स्वय पानी लेना, हमारे लिये ही शोभा की बात नही है।" योगी आत्मानन्द, मुस्करा कर कह देते—"कोई बुरा कर्म तो नही किया। स्वय लेने में भी कोई बात नही, मै कभी अकेला रहूँगा, तो वहाँ देने वाला मुझे कौन होगा। अतः स्वभाव बना रहना आवश्यक है।"

ईशोपनिषत् की विशिष्ट व्याख्यायें

कुछ दिन पश्चात् स्वामी जी ने ईशोपनिषत् का पाठ भी आरम्भ कर दिया। यह यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय है। केवल अन्त के मन्त्रों मे थोड़ा-सा पाठ भेद है। इस ईशोपनिषत् के मन्त्रों को उन्होंने चार विभागो में विभक्त किया—(१) व्यक्तिवाद (२) समाजवाद (३) निष्क्रान्तिवाद (४) उत्क्रान्तिवाद। दूसरे शब्दो में क्रमशः (१) ब्रह्मचर्य आश्रम (२) गृहस्थाश्रम (३) वानप्रस्थ आश्रम (४) सन्यास आश्रम।

प्रथम मन्त्र से पाचवे मन्त्र तक व्यक्तिवाद का प्रकरण है। इनमे मानव की उन्नति के साधनो का निर्देश है, जिन्हे ब्रह्मचर्य-आश्रम मे ही अपने जीवन का अङ्ग बनाया जा सकता है।

स्वामी जी ने आगे बताया—"छठा और सातवाँ मन्त्र समाजवाद का प्रतिपादक है। गृहस्थाश्रम में जब कि व्यक्ति एक समाज में रहता है, उसे इन दो मन्त्रो के आधार पर अपना जीवन बिताना चाहिये और यह तभी सम्भव है जब कि उपरि निर्दिष्ट ब्रह्मचर्य आश्रम का परिपालन उत्तम रीति से कर लिया जावे।

आठवे मन्त्र से चौदहवे मन्त्र तक 'निष्क्रान्तिवाद' की पुष्टि होती है। गृहस्थ आश्रम से निकल कर, वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होकर व्यक्ति ने जो साधना करनी है, वा जिस विधि से करनी है, उस सबका क्या-क्या परिणाम होता है, यह इन सात मन्त्रो का प्रतिपाद्य विषय है।

शेष मन्त्र उत्क्रान्तिवाद के हैं, जिनकी योग्यता एक संन्यासी में ही है, इतर मे नही।

स्वामी जी की मन्त्रार्थ-शैली के अनुसार व्यक्तिवाद विषय में जो "कुर्वन्नेवेह कर्माणि' मन्त्र आया है उसमे उन्होंने 'एव' इस पद को विशेष महत्त्व दिया है। यहाँ 'एव' पद यह बतला रहा है कि कर्म

करता हुआ ही जीने की इच्छा करे। उस कर्म का क्या परिणाम होगा? यह सोचने का अवसर ही नही देना है। तब किये गये कर्म स्वतः निष्काम बन जायेंगे और उनके संस्कार अन्तःकरण पर नहीं पडेंगे, जो कि मनुष्यों के जन्म-जन्मान्तरो के कारण बनते है।

इस प्रकार ईशोपनिषत् में आये हुये प्रत्येक मन्त्र की पदों के आधार पर सुन्दर व्याख्या करते थे। जिन्हे सुनने की विद्यार्थी की पुनः पुनः इच्छा होती थी, सुनने वालो मे रायबहादुर श्री लालचन्द जी सेवा-निवृत्त अभियन्ता एपटाबाद निवासी भी थे, जो गुरुकुल भूमि में ही अपनी कोठी बनाकर रह रहे थे। गुरुकुल के समस्त भवन उन्ही की देख-रेख मे बने थे। वे वहाँ रोगियो की बिना मूल्य चिकित्सा भी किया करते थे। महाराज की सुन्दर वर्णन शैली से प्रसन्न होकर श्री रायबहादुर जी ने पञ्जाबी भाषा में निवेदन किया—"स्वामी जी! हिक् वारी होर दस देयो, बड़ी दया होसी।" स्वामी जी ने दोबारा पढा दिया। उनकी शैली का यह अद्भुत गुण था कि वे कठिन से कठिन विषय को भी सरल बना दिया करते थे। श्री रायबहादुर लालचन्द जी कहा करते थे कि मैंने महर्षि दयानन्द से पीछे महाराज जैसा महा-पुरुष नही देखा, जो पूर्ण विद्वान् हो और प्रभु भक्त भी। उन्होने महाराज को पुनः-पुनः प्रेरणा की कि ईशोपनिषत् ही नहीं, सारी उपनिषदो का अर्थ आप जनता के समक्ष पुस्तक रूप में अवश्य उपस्थित कीजिये, बहुत कल्याण होगा।

भगवान् आत्मानन्द ने 'ईशोपनिषत्' इस प्रथम उपनिषत् पर भाष्य लिखना आरम्भ कर भी दिया था; किन्तु कार्य बाहुल्य से उसमे प्रगति न हो सकी, जिसके मुख्य कारण निम्न थे।

१—सारे ही उच्च विषयो के पाठ वे स्वयं ही कराते थे एव सब भिक्षु स्वामी जी से ही पढ़ना चाहते थे।

२—गुरुकुल का समस्त प्रबन्ध उनकी ही देख-रेख में था।

३—समाजो के उत्सवों पर भी जाना होता था।

४—विद्रोह की आशङ्का से अपनी रक्षा के साधन जुटाना तथा नागरिको को भी इस सम्बन्ध मे चेतावनी देते रहना, स्वामी जी आवश्यक समझते थे।

५—गुरुकुल मे सत्परामर्श के लिये आई हुई व्यक्तियों एवं अतिथि महानुभावो से वार्तालाप करना।

६—स्थान-स्थान से आये पत्रो के उत्तर देना, एवं समय-समय पर मांगने पर पत्रिकाओ को लेख भेजना।

७—'सन्ध्या के तीन अङ्ग' नामक पुस्तक में उल्लिखित भविष्यत् में प्रकाशित होने वाली 'आर्य जगत्' इस नाम की पुस्तक के स्थान में 'मनोविज्ञान तथा शिवसङ्कल्प' इस नाम से विषय का सङ्कलन करके उसे शीघ्र प्रकाशित कराने का विचार रखना।

८—दो-अढाई घण्टे प्रातः और लगभग इतना ही समय सायं योग समाधि में बैठना।

९—रुधिर-निपीड (Blood Presser) के झटके भी झेलना।

१०—सब के सो जाने पर रावलपिण्डी से कभी-कभी व्यक्तियों का आना और उन्हे वहित्रयान द्वारा नगर ले जाकर, दो बजे रात के ही प्रत्यावर्तित कर जाना।

ऐसे अनेक कारण थे जिनसे उपनिपद्-भाष्य लिखने में सुविधा न हो सकी।

श्री पं० विद्याधर जी 'स्नातक' स्वामी जी के पुराने शिष्यों में से हैं। वे प्रायः अधिक काल तक उनके साथ निरन्तर रहे भी हैं। एक समय वे कहने लगे कि मैंने महाराज को अनेक अवसरो पर ऐसी कठिन समस्याओं मे उलझते देखा कि जिन्हे जिस भी पहलू से विचारा, उन द्वारा अधिकाधिक गहरी विकट परिस्थिति में ही घिर जाने की आशङ्का दृष्टिगोचर हुई। किन्तु महाराज की बुद्धि मे ऐसी विलक्षणता थी कि वे कुछ अभिनव विचित्र उपायों से उन्हें सुलझा लिया करते थे।

अक्टूबर सन् १९४५ में स्वामी जी का स्वास्थ्य कुछ अधिक विकृत होना प्रारम्भ हो गया। जब उनसे पूछा गया कि आपको यह किस प्रकार का रोग है, तो उन्होंने उत्तर मे कहा—"मुझे रुधिर-निपीड का रोग हैदराबाद सत्याग्रह में लग गया था। उन दिनों मुझे एक दिन मे अनेक व्याख्यान विभिन्न स्थानों पर देने पड़े थे। कार्याधिक्य ही इस रोग का कारण बन गया और अब यह ठीक होने मे नही आता। यदि कभी कुछ स्वास्थ्य के लक्षण दृष्टिगत होते भी हैं, तो स्वामी अमृतानन्द जी के झगड़े के निर्णय मे व्यस्तता पुनः स्वास्थ्य को उसी अवस्था में पहुँचा देती है।"

श्री स्वामी अमृतानन्द जी का झगड़ा कुछ विचित्र प्रकार का था,

जो स्वामी सर्वदानन्द जी से सम्बन्धित था। अजमेर में स्वामी अमृतानन्द जी से ऐसी घटना घट गयी थी, जिससे वीतराग संन्यासी को इतना क्लेश हुआ कि वे ऐसे रुग्ण हुए, खाट पकड़ने के पश्चात् पुनः उठ ही न सके और उसी दु:ख में उन्होने इस ससार से इहलीला सवरण करली थी।

इस रोग से आर्य समाज के उत्सवो को वड़ा धक्का पहुँचा। उन्हे यह घोषणा करनी पडी कि मेरा स्वास्थ्य अभी व्याख्यान करने की अनुमति नही दे रहा है। ईश्वर ने चाहा तो थोड़ा भी स्वास्थ्य लाभ होने पर सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा। इस घोषणा के अनन्तर भी अनेक आर्य समाजों से महाराज के समीप निमन्त्रण आते रहे।

एक प्रसङ्ग मे स्वामी जी ने कहा—"योग के मार्ग मे योगाभ्यासी के समक्ष ध्यान मे यदा-कदा ऐसे आत्मा भी आ खड़े होते हैं, जो उसे उस मार्ग से विचलित करना चाहते है और उदात्त आत्मा भी आ कर योगाभ्यासी को अग्रिम मार्ग का दिग्दर्शन कराके अपनी उदारता का परिचय दे जाते है। प्रथम निकृष्ट आत्मा की प्रवञ्चना में आ कर स्वगृहीत मार्ग का परित्याग कदापि नही करना चाहिये।"

श्री स्वामी ओङ्कारतीर्थ आदि भिक्षु महाराज के समक्ष उपस्थित थे। उपनिषदों मे आये विषय का विवेचन करते हुए एक दिन स्वामी जी ने कहा कि यदि प्राचीन लोग उन विषयों का सङ्ग्रह नही करते तो आज उससे जनता कैसे लाभान्वित होती—अतः आर्य समाज को एक ऐसा पग उठाना चाहिये, जिससे आर्य समाज की विशिष्ट विभूतियों के यत्र-तत्र होने वाले व्याख्यानो का सङ्ग्रह हो सके। सबसे सुगम मार्ग उनके लिये यह है कि एक आशुलिपिक* हो, जो साथ साथ इस काम को करता जाये। विभूति के जीवनान्त में जो आर्यजनों की ओर से उस सम्बन्ध मे दौड़ धूप की जाती है, उसमे द्रव्य-व्यय बहुत हो जाता है और सारी जानकारी प्राप्त भी नही हो पाती। व्याख्यानो और उपदेशो के उस गम्भीर निधि का तो पता लगता ही नही, जिसके कारण विभूतियो का प्रकाश जनता को होता है। ऐसे विशिष्ट उपदेशकों का अलभ्य लाभ आगे आने वाली सन्तति को नही मिलता। यदि यह निधि उनको मिल जाये, तो वे उसके आधार पर उस से भी आगे बढ सकते हैं। सबसे विशिष्ट विभूति वह समझनी

*स्टैनो ग्राफर।

चाहिये, जिसके उपदेशों में विभिन्न स्थानों से बोलते हुये भी निरालापन दीखे और नई-नई बातें प्रकाश मे आवे। कही भी भाषण में पिष्ट-पेषण न हो। यह उनके अन्तरात्मा की वाणी होती है। जो समाधि द्वारा वा स्वच्छ अन्तःकरण से ही प्राप्त होती है और वेदानुकूल होती है। ऐसी व्यक्तियाँ किसी भी समाज से सहसा प्रकाश में आ सकती हैं। उनको आर्य समाज अपनी ओर लाने का प्रयास करे।

* * *

आचार्य पद के परित्याग का विशेष अभिलाष

न्यायदर्शन पढ़ाते समय एक दिन उद्‌भट विद्वान् उस विरक्त महापुरुष ने वेदानन्द वेदवागीश से कहा—"मैं आपको जैन, बौद्ध, और नव्य सव दर्शन पढा दूँगा। आप इस गुरुकुल को सँभाल लें। इसके आचार्य पद के लिये मुझे कोई व्यक्ति दिखाई नही दे रही। इसके लिये मैंने पहले आचार्य मेधाव्रत जो और स्वामी ब्रह्ममुनि जी (प्रियरत्न-आर्ष) से भी कहा था, किन्तु कुछ बात बनी नही। वेदानन्द ने महाराज को उत्तर दिया—"स्वामी जो ! मेरी रुचि इस ओर नही है। मैं चाहता हूँ कि मुझे आप अध्यात्म क्षेत्र में कुछ सिखा दें और उसी मे आगे बढ़ा दे।" महाराज ने प्रत्युत्तर मे कहा—"यदि ऐसा है तो किसी विद्वान् का नाम बताइये, जो गुरुकुल के दोनों विभागो को सँभाल सके। मैं इस समय सन्यासी हूँ। सन्यासी को आचार्य रहने का अधिकार नही है। यदि कोई संन्यासी आचार्य पद पर आसीन रहता है तो, उसके संन्यास धर्म में शिथिलता हो जानी अनिवार्य है और यदि वह संन्यास के आदर्श को सम्मुख रखकर चलता है, तो वह आचार्य रहते हुये ब्रह्मचारियो का निर्माण नही कर सकता। बहुधा ऐसे अवसर उपस्थित हो जाते है, जबकि आचार्य को ब्रह्मचारी के हित के लिये दण्ड देना अनिवार्य हो जाता है; किन्तु संन्यास के कर्त्तव्य पालन में इसकी अनुमति नही है। जव मैं श्वेत वस्त्रो मे था, तो मेरी चेष्टा यही रहती थी कि विद्यार्थी का दोष उसे अनेक प्रकार से समझाकर निकाला जाये, जब इतने पर भी वह नही मानता था तो दण्ड देना आवश्यक हो जाता है। अतः अब यह आवश्यक हो गया है कि इस संस्था को कोई योग्य, अनुभवी और कर्मठ विद्वान् सँभाल ले।"

वेदानन्द वेदवागीश ने निवेदन किया—"स्वामी जी! मैं तो अभी गुरुकुल चित्तौड गढ़ से स्नातक वन कर आया ही हूँ। मेरा अभी आर्य

जगत् के विद्वानो से परिचय नही है। गुरुदेव श्री पण्डित शङ्करदेव जी को ही केवल मैं जानता हूँ, उनसे मैंने व्याकरण महाभाष्य पढा है। वे ऋषि दयानन्द के अनुयायी है। दर्शन मैंने पौराणिक पण्डितो से पढे हैं, वे वात्स्यायन भाष्य ठीक लगा नही पाये थे"। स्वामी जी ने उत्सुकता से कहा—"पण्डित शङ्करदेव जी को मैं भी बनारस से ही जानता हूँ। ठीक है उनको अभी पत्र लिख देता हूँ।"

स्वामी जी महाराज ने यह पत्र लिखा—

गुरुकुल पोठोहार रावल
(रावलपिण्डी)
२-१-४६

विद्वद्वर्य श्री पण्डित जी, सादर नमस्ते।

निवेदन है कि मैं चिरकाल से जबसे आपने गुरुकुल चित्तौड़गढ छोडा है आपकी परिस्थिति से अपरिचित रहा। आपके लाहौर में दर्शन हुये थे और मैं वहाँ आपसे वार्तालाप करना चाहता था, परन्तु अमृतानन्द जी के उस समय के झमेले मे कुछ न कर सका। अब मुझे आपके शिष्य ब्रह्मचारी वेदानन्द जी से जो कि आजकल यहाँ दर्शन पढ़ रहे हैं, आपका परिचय मिला। यह भी पता उनसे लगा कि आप इस समय कहाँ क्या कर रहे है। अस्तु

पण्डित जी, मैं आज एक प्रार्थना की झोली लेकर इस पत्र के द्वारा आपके द्वार पर खड़ा हूँ। मैंने समझा है कि वैदिक धर्म का प्रचार बौद्ध भिक्षुओ के समान दयानन्द भिक्षु ही कर सकेंगे। इसका और कोई उपाय नही। मैंने गुरुकुल के सब झमेलो को हटाकर भिक्षु-मण्डल को ही सुरक्षित कर आर्य समाज के क्षेत्र मे उपस्थित करने की धारणा से इस मण्डल का आयोजन किया है। ११ भिक्षु इसमे प्रविष्ट भी हो गये है। भिक्षु मण्डल के बनाये हुये नियम भी साथ भेज रहा हूँ। इस मण्डल का आचार्य बनाने के लिये आर्य जगत् में मेरी दृष्टि आप पर ही पडती है। मेरी प्रार्थना है कि आप अपने विद्यार्थियों सहित इस कार्यक्रम को सँभाल लेने की कृपा करे। मैं आपकी विद्या और आपके सद्गुणो से चिरकाल से परिचित हूँ।

अत. इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सँभालने की योग्यता आपके अतिरिक्त और किसी विद्वान् मे मुझे दिखाई पड़ती नही। आपको इस

के लिये धन और अन्न सङ्ग्रह की कोई चिन्ता न करनी पडेगी और इस मण्डल की शिक्षा-दीक्षा सम्बन्धी सभी कार्यो मे आप स्वतन्त्र होगे।

आशा है द्वार पर आये संन्यासी की झोली की ओर आपका हाथ बढ़ेगा।

—आत्मानन्द सरस्वती

इस पत्र के आधार पर २० दिन पश्चात् श्री पण्डित शङ्करदेव जी गुरुकुल पधारे थे। महाराज वही थे। उन्होने दो दिन तक गुरुकुल को अच्छी प्रकार देखा और अपनी अन्तिम सम्मति प्रकट की। "इस भिक्षु मण्डल मे प्रविष्ट वानप्रस्थ और सन्यासी भी है। वानप्रस्थ और सन्यासियो की प्राय: विद्यार्थी-रूप भावना समाप्त हो जाती है। वे किसी का कहना भी नही मानते। कोई सन्यासी तो उन्हे अपने नियन्त्रण में रख सकता है, श्वेतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी नही। अत. मैं यहाँ अपनी सेवायें देने के लिये असमर्थ हूँ।"

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती वेदो के विद्वान् दर्शनो के उद्भट व्याख्याता, उपनिषदो के पारगामी, साहित्य क मर्मज्ञ, प्रभु के अनन्य भक्त, एवं महर्षि दयानन्द के कार्यपूरक थे। यह सब कुछ होते हुये भी श्री पण्डित शङ्करदेव जी को लिखे गये उपर्युक्त पत्र मे उनके हृदय से कैसी विचारसरणी एव विनीत भाव की अभिव्यक्ति हो रही है। अहङ्कार नाम मात्र को भी नही है। ठीक ही कहा है—

कलश पूर्ण छलके नही, घोषण ऊना करे,
गर्व करे न ज्ञानी जन, अज्ञानी दम्भ करे।
गरजे बहुत बरसे नही, ओछे मे अहङ्कार,
बजे घना थोथा चना, कह गये ज्ञानी सार॥

* * *

भिक्षु मण्डल में दीक्षा

श्री स्वामी जी ने ७ जनवरी १९४६ के प्रात. हरिशरण, कर्मदेव, अवतारसिंह, आशानन्द, वेदानन्द वेदवागीश को भिक्षु मण्डल की दीक्षा से दीक्षित किया। पश्चात् नाम परिवर्तन के लिये महाराज ने सबको आदेश दिया कि अपनी-अपनी भावना के अनुसार स्वय अपने

नाम का चयन करो। अतः क्रमशः प्रत्येक ने अपने नाम का चयन इस प्रकार किया—

१—हरिशरण=सत्यभिक्षु ४—आशानन्द=आनन्दभिक्षु *
२—कर्मदेव=कर्मभिक्षु ५—वेदानन्द=आत्मभिक्ष ‡
३—अवतारसिंह=विज्ञानभिक्षु

श्री आनन्दभिक्षु जी ने आत्मभिक्षु से कहा—"हम दोनो ने स्वामी जी के नाम को आधा-आधा विभाजित कर लिया है।"

श्री स्वामी जी ने ब्रह्मचारी सोमदेव और वानप्रस्थी बद्रीदत्त को भिक्षु मण्डल की दीक्षा के साथ-साथ सन्यास की दीक्षा से भी विभूषित किया और उनके नामकरण की व्यवस्था क्रमश. योगानन्द और विचारानन्द दी। स्वामी योगानन्द जी बहुत होनहार युवक थे।

अग्निहोत्र के द्वारा इस कार्य प्रणाली के अनन्तर आचार्य प्रवर श्री आत्मानन्द ने इन अभिनव नामधारी भिक्षुओं को ब्रह्मर्षि दयानन्द का सच्चा अनुयायी बनाने के लिये निम्न उपदेश दिया—

"आज आपने भिक्ष मण्डल की दीक्षा लेकर अपने कर्त्तव्य को प्रथम स्तर से ऊँचा उठाया है। वेद मन्त्रो के साथ सर्वनियन्ता भगवान् को साक्षी बनाकर अनृत से सत्य की ओर पग रखने का व्रत स्वीकार किया है। महर्षि दयानन्द ने भी असत्य का परित्याग करके सत्य को ग्रहण का आदेश मनुष्य मात्र के लिये आर्य समाज के नियमो मे निहित किया है। ससार के दूषित वायुमण्डल में अपने आचार-विचार एवं सत्य-प्रचार के स्तम्भ को खडा रखना सरल कार्य नही है किन्तु यह भी ध्यान रहे कि कठिन से कठिन कार्य किया भी मनुष्य ही करते हैं। अपने नाम को सार्थक करना प्रत्येक मनुष्य के जीवन का उद्देश्य होता है। आपके दृढव्रतो को देखकर सब सज्जनो का आप लोगो को आशीर्वाद प्राप्त है। भगवान् आप सबको अपने उद्देश्य में सफल करे।"

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने गुरुकुल की स्थापना के साथ ही जो फलवान् वृक्षो का उद्यान लगाया था, चार वर्ष पश्चात् अब उस उद्यान के वृक्ष अपने फलो से गुरुकुलवासियो को परितृप्त करने लगे

---

* आर्य ससार के कर्मठ विख्यात उदात्त नेता। ‡ इस ग्रन्थ के लेखक।

थे। मालटे और सन्तरों के वृक्ष फल देते थे। बादाम का वृक्ष फल देने योग्य नही हुआ था। ऋतु के कुछ फल बेचकर उस द्रव्य से केले आदि दूसरे फल क्रय कर लिये जाते थे। महाराज को रामप्रताप माली बहुत अच्छा मिला हुआ था। शीत-ऋतु में स्वयं स्वामी जी उद्यान में ही जाकर बैठ जाते थे, रखवाली को दृष्टिगत रखते हुये एव एकान्त सुरम्य स्थान का आनन्द लेने के लिये ही उनका यह उपक्रम था। वे उस समय भिक्षुओं को वही बैठकर पढ़ाया करते थे और कहा करते थे कि इस बगीचे के लगाने में भी मैंने फावड़े से मिट्टी खोद-खोदकर बहुत परिश्रम किया है। यहाँ की मिट्टी समतल न थी। उसे समतल बनाने मे दूसरों के साथ मैं भी लग जाता था। यहाँ भी स्वयं आरोपित किये गये वृक्षों के फल मैंने खा लिये है। उस समय स्वामी जी की शरीरावस्था का सड़सठवाँ वर्ष चल रहा था।

श्री भगवान्‌देव जी को पत्र

यतिवर्य ने १२-१-४६ को लिखा—"ब्रह्मचारी सोमदेव जी ने चतुर्थ आश्रम मे प्रवेश कर लिया है। उन्होंने अपना नाम 'योगानन्द' नियत किया है। इनकी प्रबल इच्छा और इनके अधिकार को देख कर उन्हे यह दीक्षा दे दी गई। आप [भगवान्‌देव जी] को बधाई। मैं विद्या की अपेक्षा सदाचार को अधिक महत्त्व देता हूँ।"

स्वामी जी महाराज अपना निजी व्यय गुरुकुल पर नही डालना चाहते थे। उनकी यह चेष्टा रहती थी कि गुरुकुल के व्यय खाते में 'स्वामी आत्मानन्द' नाम न लिखा जावे। वे अपने शरीर को भी कष्ट में डालकर, उसके निमित्त गुरुकुल से भी कुछ व्यय न करते हुये एक अनुपम आदर्श पग उठा रहे थे। वे अपनो निजी आवश्यकता के लिए किसी से कुछ कहते भी नही थे। जो भक्तजन महाराज की इन भावनाओं को भांप लेता था वह, श्रद्धावश उन्हे वस्त्र आदि दे दिया करता था, किन्तु भक्त को क्या पता लगे कि वे अपना कुर्ता सिलाने के लिये भी गुरुकुल-व्यय से सङ्कोच करते हैं। महाराज के समीप अपना कोई धन-कोष नही होता था, जिससे सिलाई आदि के पैसे चुका दें। और न ही यह प्रकट करते थे कि मैं अपनी ऐसी भावना रखता हूँ।

आत्मभिक्षु श्री स्वामी जी के वस्त्र-प्रक्षालन, नित्य नूतन दन्त-धावन का प्रदान, स्थान-परिमार्जन एवं उन्हे रुग्ण अवस्था में भोजन

परिवेषण से निकट सम्पर्क में आ गये थे। उनसे स्वामी जी कुछ खुल गये और बोले—"मेरा कुर्ता कौन सीयेगा।" आत्मभिक्षु ने उत्तर में कहा—"गुरुकुल में इतने वस्त्र सिये जाते हैं, स्वामी जी ! आपका कुर्ता भी सी दिया जायेगा।" इसके उत्तर मे महाराज ने कुछ नहीं कहा—और बोले—"गाती लगाने का अभ्यास कर लेते है।" स्वामी जी ने कुर्ते के अभाव मे गाती लगाना आरम्भ कर दिया। १५ दिन तक यह ही क्रम रहा किन्तु उसमे मसि लेखनी आदि रखने की और आवश्यक वस्तु सँभालने की सुविधा न रही। फिर कुर्ता ही सिलाना पड़ा।

एक दिन कहने लगे, "वस्त्र तो है, चादर सीनी है।" आत्मभिक्षु ने रात भर में सरसों के दीपक के प्रकाश में हाथ से चादर सीकर प्रातः ही उन्हे प्रदान कर दी। शीत के दिन थे, उन्हे चादर की तत्काल आवश्यकता थी।

विद्यार्थी जन और भिक्षु महानुभाव प्रेरणा के बिना सामूहिक परिमार्जन का कार्य करते ही न थे और स्वामी जी उन्हे कुछ न कह, क्रियात्मक उपदेश करना अच्छा समझते थे। जब प्राङ्गण मे बहुत कूड़ा करकट हो जाता था, तो वे स्वय एक ही बड़ा झाड़ू कही से लाकर प्राङ्गण-परिमार्जन करना आरम्भ कर देते थे। विद्यार्थी उस समय पढते हुये होते थे। महाराज को प्राङ्गण-परिमार्जन की चेष्टा मे प्रवृत्त देखकर लज्जावनत हुये भिक्षु उस समय स्वामी जी से झाड़ू छीनते, किन्तु वे यह कहकर देना अस्वीकार कर देते थे कि "आप लोग अपनो ले आओ, इससे तो मैं ही करूँगा।"

भिक्षु-मण्डल के सदस्य तो भिन्न-भिन्न प्रान्तो के थे, अतः वे परस्पर आर्य भाषा हिन्दी में वार्तालाप किया करते थे, किन्तु गुरुकुल मे प्रविष्ट छोटे ब्रह्मचारी प्राय. पञ्जाब के ही थे, वे पञ्जाबी भाषा मे ही वार्तालाप करने के अभ्यस्त थे। स्वामी जी महाराज पुन.-पुनः स्मरण कराते कि हिन्दी मे वार्तालाप किया करो। वे कुछ देर वैसा करते किन्तु जब हिन्दी बोलने मे कठिनाई आती, तो पुन. अपनी पञ्जाबी भाषा पर ही आ जाते। पूछने पर वालको ने बताया कि जब हिन्दी के शब्द नही आते, तो हम पञ्जावी का आश्रय ले लेते है और फिर पञ्जाबी ही मुख से निकलती रहती है। इस प्रकार उन्हें शनै.-शनै. हिन्दी का अभ्यास कराया जाता था।

श्री स्वामी जी उन्हें धोती पहरने का अभ्यास भी कराते थे। उन्हे धोती बाँधना सिखाते थे। नेकर और पायजामा पहनना ही उन्हे आता था।

वर्षेष्टि

यतिवर्य आत्मानन्द सरस्वती से यह पूछे जाने पर कि वृष्टिनिमित्त याग के विषय मे आपकी क्या धारणा है? उत्तर में उन्होने कहा, "इसके लिये एक 'कारीरी याग' होता है। इस यज्ञ की एक विशिष्ट पद्धति है, उसके कुछ हस्त-लिखित पृष्ठ तो मेरे समीप हैं। इसके लिये मैंने बनारस श्री आत्मानन्द जी त्रिपाठी को लिखा था, किन्तु वहाँ पर भी पूरी पद्धति उपलब्ध नही हुई। इस हवन मे विशेष सामग्री का विधान है तथा समिधाये 'करीर' (कैर) की डाली जाती हैं। यतः इस याग में 'करीर' की समिधाओं का प्राधान्य है। अतः उसी के नाम से इस का नाम कारीरीयाग पड़ गया है। यह पद्धति प्राचीन-काल में पूर्णतः प्रचलित थी। उसके अभाव मे जब तक वह पद्धति उपलब्ध नही होती, तब तक के लिये अथर्ववेद में से मैंने एक मन्त्र का चयन किया है और देखा गया है कि उससे वृष्टि हो जाती है।

लुण्डा बाजार रावलपिण्डी आर्यसमाज में वृष्टिविषयक यज्ञ किया जा रहा है। सब भिक्षु उसमे जाकर सम्मिलित हो जाओ। कल पूर्णाहुति है।" अर्थ सहित महाराज का वह मन्त्र निम्न है—

ओ३म् "समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वती.,
समभ्राणि वातजूतानि यन्तु।
मह ऋषभस्य नदतो नभस्वतो,
वाश्रा आपः पृथिवी तर्पयन्तु॥ अथर्व० ४.१५.१॥

अर्थः—हे प्रभो! आपकी दया से बादलों से छाई हुई दिशाये भली प्रकार से उदय हो, पवन से चलाये हुये और जल से भरे हुये बादल छा जावे। बड़े गमनशील गर्जते हुये तथा आकाश मे छाये हुये बादल धड़ धड़ाती जल की धारायें गिरावे, जिनसे पृथ्वी तृप्त हो और प्राणि-मात्र का कल्याण हो"।

पुष्कल सामग्री, प्रचुर घृत और करीर की समिधाओं से रात्रि को छोड कर सात दिन तक निरन्तर उपर्युक्त मन्त्र से हवन करने पर

वृष्टि हो जाती है, यह परीक्षण भिन्न-भिन्न स्थानो पर लोगो ने कर लिया है।

औषध निर्माण तथा शास्त्रार्थ शिक्षण

पारदर्शी स्वामी आत्मानन्द सरस्वती का अन्तर्लोक प्रतिक्षण प्राणि-हित की भावनाओ से हिलोरे लेता रहता था। उनके समीप दूर-दूर से रोग-पीडित जन भी आते रहते थे। उनके लिये महाराज स्वय ही औषध-निर्माण करते रहते थे। जब भी थोडा अवकाश मिलता, खरल रगड़ने लगते। कई वार औषध निकालते, उसे सुखाते, टिकिया बनाते और अग्नि मे फूंकते रहते थे। अनेक वार वे पारे की कजली बनाते देखे गये।

'लोढी' का त्यौहार पञ्जाब में विशेष मनाया जाता है। यह होली से कुछ दिन पहले आता है। होली की भाँति ही एक बडे लम्बे चौड गढ़े में बडे बड़े लक्कड रख कर उन पर घृत सामग्री की आहुतियाँ दी जाती है। स्वामी जी इस पर्व को गुरुकुल मे भी मनाते थे। एक वार उन्होने इस यज्ञ मे लकड़ी चयन करने से पूर्व गर्त मे लोह भस्म बनाने के लिये लोह-चूर्ण हण्डी मे सम्पुट करके रख दिया। इन सब प्रकारो से बनाए गए औषध, भस्म रोगियो के उपचारार्थ स्वामी जी बिना मूल्य ही दिया करते थे। औषध के उन्होने कभी किसी से पैसे नही लिये। यदि कोई विशेष रूप से अपने लिये औषध बनवाना चाहता था, और उसमे मोती आदि डलवाना चाहता था, तो सब सामग्री उस विशेष व्यक्ति से ही मगा लेते थे और स्वयं बनाकर उसे दे दिया करते थे।

'लोढी' याग के अनन्तर महाराज इस याग की उपादेयता पर पर भी प्रकाश डालते थे।

भिक्षुओ की बोधवृद्धि एवं शास्त्रार्थ की रीति का शिक्षण देने के लिये, स्वामी आत्मानन्द सरस्वती समय-समय पर भिक्षुओ के दो पक्ष बनाते थे। एक दिन उन्होने वर्ण व्यवस्था जन्म से है वा कर्म से यह विषय उभय पक्ष को निर्णय के लिये दिया। सभा की अध्यक्षता श्री महाराज ने स्वयं की।

एक घण्टे तक वाद-प्रतिवाद के मध्य निखरता हुआ यह विषय 'वर्ण व्यवस्था गुण कर्म से है' इसके प्रबल पुष्ट प्रमाणो और तर्कों में

सन्निविष्ट हो गया। पुनः निर्णय देने के लिये महाराज से निवेदन किया गया। महाराज ने अपने अध्यक्षीय भाषण में उसका कुछ निर्णय न देते हुये, अपने तर्क वितर्कों से यह सिद्ध किया कि वर्ण-व्यवस्था जन्म से है, गुण कर्म से नही है। उनके अकाट्य तर्कों को देख कर भिक्षु लोग, स्वामी जी से यथार्थता को याञ्चा करने लगे। महाराज ने कहा—"हम तार्किक हैं किसी भी विषय को जिधर चाहे मोड़ सकते है। आप लोगों को भी ऐसा अभ्यास करना चाहिये। अब यह तो सब आप लोगों के अभ्यास कराने के लिये है। पक्ष वैदिक ही लेना चाहिये एवं अपने प्रमाणो और तर्कों से स्थापना भी उसी की करनी चाहिये, किन्तु जब तक इस न्याय के विषय में प्रगल्भ (चतुर) नही बनोगे, तब तक प्रतिपक्षी द्वारा उठाये गये तर्कों का निराकरण नही कर सकोगे। प्रतिपक्षी आपको कहीं भी निग्रहस्थान में लाकर पराजित कर सकता है। 'वर्णव्यवस्था जन्म से है' इसमें मैंने जो तर्क उपस्थित किये है, उनके खण्डन का उपाय अब आगामी सभा के लिये आप सब लोग सोच रखें, आप सब एक ओर रहेगे और मैं अकेला दूसरी ओर।"

आयुः--प्रवर्द्धन

श्री विचारानन्द भिक्षु ने ब्रह्मर्षि आत्मानन्द से पूछाः—"स्वामी जी, क्या आयु बढाया भी जा सकता है ?" महाराज ने उत्तर दिया—"हाँ बढ़ाया भी जा सकता है।" "इसमे कोई प्रमाण भी है वा ऐसे ही साहस वढाने के लिये कह दिया जाता है।" यह पूछने पर उत्तर मिला—"प्रमाण भी है, देखो, 'यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः स देवेषु कृणुते दीर्घमायु' (यजु० ३१-५१)। 'अस्वप्नेन कृणुत-दीर्घमायुः' ऐसे और भी प्रमाण वेदों मे खोजे जा सकते है।" "इनका अर्थ क्या हुआ ?" इस पर स्वामी जी ने उत्तर में कहा—"जो मनुष्य ब्रह्मचर्य रूप हिरण्य को धारण करता है, वह मनुष्यों में और देवताओ में अपना आयु दीर्घ कर लेता है।" विना स्वप्न की नीद लेकर तुम सब अपने आयु को लम्बा करो।" भिक्षु महोदय ने पुन; पूछाः—"सति मूले तद्-विपाको जात्यायुर्भोगाः। (योग दर्शन साधन पाद सूत्र १३) इस सूत्र की सङ्गति कैसे लगेगी ? जिसमें लिखा है—कर्म सस्कार रूप मूल के रहते हुए उसका परिणाम तीन रूपों में होता है—१ जन्म धारण करना, २ आयु प्राप्त करना, ३—भोग ग्रहण करना। जव कोई एक

जन्म निश्चित हो गया, तो आयु भी निश्चित ही मानना पडेगा और भोग भी।" इसका स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जब प्राणी का जन्म होता है, तो उसके साथ ही उसका आयु और भोग भी निश्चित ही होकर आते हैं। इसका सम्बन्ध केवल इतने से ही हुआ कि जिस आधार पर उसे जन्म, आयु और भोग मिला है, यदि उस जन्म को पाकर वह न कोई पाप करे और न ही पुण्य करे, तो उसका आयु और भोग उतना ही रहेगा, जितना निश्चित हो गया है। किन्तु यदि कोई मनुष्य कदाचार, अहित कर भोजन और असयम में प्रवृत्त होता है, तो उसकी यह जीवन भित्ति निश्चित समय से पूर्व ही गिर जायेगी। ठीक, इसके विपरीत, यदि कोई सदाचार, नियमित हितप्रद भोजन, प्राणायाम और ब्रह्मचर्य सरक्षण जैसे उत्तम उपायो का अपने जीवन मे अनुष्ठान करता रहता है, तो उसका आयु उस पूर्व निश्चित आयु से बढ भी जायेगा। "किन्तु स्वामी जी !" भिक्षु महोदय ने पूछा "तच्चक्षुर्देवहित पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरतु, पश्येम शरद. शतम्, जीवेम शरद. शतम्०" इस मन्त्र मे तो सौ वर्ष का आयु माना है, जो एक प्रकार से निश्चित कर दिया गया है।" स्वामी जी ने कहा 'अधूरा मन्त्र क्यो पढ़ते हो, पूरा पढो।' भिक्षु जी आगे उच्चारण करते है "शृणुयाम शरद. शत प्रब्रवाम शरदः शतमदीना. स्याम शरद शत भूयश्च शरदः शतात्"। स्वामी जी ने कहा—"यहाँ तो "भूयश्च शरदः शतात्" यह भी लिखा है कि सौ वर्ष से अधिक भी हे प्रभो ! हम अपना जीवन बितावे। ऐसी चाल लोग शास्त्रार्थों मे हराने के लिये चलते हैं, अपने तात्पर्य की बात कहकर शेष को हडप कर जाते है। यह दाँव तुम मुझ पर ही चला रहे थे"। 'नही स्वामी जी,' भिक्षु जी ने सहमती हुई सङ्कुचित भाषा मे कहा:—'मेरा ऐसा प्रयोजन नही था, मुझे अगले खण्ड का कोई ध्यान ही न था। यदि मुझसे कोई अपराध हो गया है तो क्षमा कीजिये।' स्वामी जी बोले—"यह तो मैंने हास्य मे मनोरञ्जन के लिए कह दिया है, जिससे प्रकृत विषय दुरूह न हो जावे। किन्तु साथ साथ यह भी बता देता हूँ कि दूसरे के पराजय के लिये शास्त्रार्थी छल, जाति और निग्रह स्थानो का प्रयोग करते रहते है, अत. शास्त्रार्थ में अतिशय सावधान रहने की आवश्यकता है। महर्षि दयानन्द के सम्मुख ऐसे अवसर बहुत वार उपस्थित हुए, जब कि उन द्वारा प्रयुक्त छल, जाति और निग्रह स्थानो से उन्होने स्वय को बचाये रक्खा। वे स्वयं अपने संन्यासी के कर्त्तव्यों को ध्यान मे रखते हुये छल, जाति का प्रयोग नही करते थे। अपने विषय का प्रतिपादन तर्क शक्ति और

प्रामाणिक ग्रन्थो के आधार पर करते चलते थे। उनको ग्रन्थ इतने कण्ठस्थ थे कि वे झटिति विपक्षी को पकड़ लेते थे और समय पर विपक्षी की चाल को, जनता मे दिखाने के लिए अपने साथ प्रमाण भूत सारे ही ग्रन्थ समीप रखते थे। अतः वे सदा विजयी होते रहे और आर्य समाज एवं वैदिक धर्म की विजय पताका लहराती रही।"

भिक्षु जी ने निवेदन किया, "महाराज! जब आयु बढ़ाया जा सकता है, तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस जन्म मे किये गये कर्मों का फल इस जन्म मे भी मिल जाता है। फिर तो वह जो भी कर्म करे उसका फल साथ ही साथ भुगतता रहे तो उत्तम है, पर ऐसा देखने में नही आता। एक चोरी करता है, उसका परिणाम धन आदि प्राप्ति तो उसे हो जाती है, उसी समय दण्ड नही मिलता और इसीलिये उसका सुधार भी नही हो पाता। कृपया इस व्यवस्था को स्पष्ट कीजिये।"

स्वामी जी के मुख से उत्तर आया कि यह कर्म भोग की व्यवस्था अति गहन है, पुनरपि इसके उत्तर के लिये हमें सांसारिक कार्यों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। बहुत कुछ समाधान हमारा उनसे हो जायेगा। उदाहरणार्थ—एक कृषक गन्ना बोता है, बोते ही उसे काट नही लेता, जब बोई हुई खेती पक चुकती है, तब ९-१० महीने पश्चात् उसे काटता है। उससे पूर्व उस कर्म का भोग उसे सुन्दर रूप में नही मिलता। कार्तिक में गेहूँ बोये जाते हैं और चैत्र मे काटे जाते हैं, यह सस्य (फसल) गन्ने से कम समय में अपना परिणाम दिखाता है। आम बोया हुआ तीन वर्ष मे और यदि उपरोपित (कलमी) नही है, देशीय है, तो ५-६ वर्ष में अपने फल अपने स्वामी को भेंट करता है। वर्षा ऋतु की खेती २-३ मास में ही पक जाती है। पपीते का वृक्ष आरोपण के पश्चात् एक वर्ष में फल देने लगता है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के कृषि कर्मों के फल विभिन्न समय में प्राप्त होते हैं। ऐसी व्यवस्था भगवान् ने की हुई है। एक कर्म का भोग चलते हुये, तत्काल किये गये कर्म का भोग प्रायः नही मिलता। हाँ कभी-कभी अनेक कर्मों के फल परिपाक की दृष्टि से इकट्ठे भी हो जाते हैं और वहाँ उनके क्रम का कुछ बोध नही होता। अतः कृषक का काम कर्म करना है और फल उसका यथाक्रम समय पर प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार वह घाटे मे नही रहता। अन्यथा कर्म फल की कोई व्यवस्था ही न बनेगी।

"इसी प्रकार से भिन्न-भिन्न कर्मों के द्वारा अन्तःकरण पर जमे हुये संस्कारो का परिपाक भी निश्चित ही समय लेता है। मनुष्य को भगावान् ने मन दिया है, बुद्धि दी है, फिर भी वह भगवान् की सृष्टि से अनुभव प्राप्त करके अपने को न सुधारे, तो यह उसका अपना ही दोष है। लोग सुख चाहते है, किन्तु पाप प्रयत्नपूर्वक करते हैं। जब कालान्तर में उन्हे दु.ख भोगना पड़ता है, तो रोते हैं। यदि चोरी, उत्कोच (रिश्वत), धोखा-धेही करके अबोधवश उस समय सुख का उपभोग किया है, तो दु:ख भी उसे ही भुगतना पडेगा। सुख और दुःख का जोड़ा है। सुख पहले भुगत लो, तो दु:ख पीछे भुगतना पडेगा और दुःख पहले सह लिया तो सुख पीछे मिल जायेजा। फिर भी इन दोनों प्रक्रियाओ में बहुत अन्तर है। पहले कष्ट उठा कर किये गये सत्कर्म से बुरा कर्माशय सञ्चित नही होता और सुख की लालसा से दूसरे के अधिकारों को अन्याय से छीनने, चोरी आदि दुष्कर्म करने से चित्त मलिन हो जाता है। दुष्कर्म का फल तो अपने समय पर मिल ही जायेगा, किन्तु मलिन मन ज्यों का त्यो बना रहेगा। उसे तो निर्मल बनाने के लिये प्रयत्न करना ही होगा, अब करो वा कभी करो। इसके बिना शान्ति मिलेगी नही।"

इस कर्म व्यवस्था के भुगतान में भी कुछ ऐसी बात है कि जो सबसे निकृष्ट कर्म है, जैसे ब्रह्महत्या—एक ऐसी उत्तम व्यक्ति को किसी नें मार दिया है, जो ब्रह्मलीन है; मारने वाली ऐसी व्यक्ति को उसका फल तुरन्त मिलना प्रारम्भ हो जायेगा। इसके विपरीत जो सबसे उत्तम कर्म है—ब्रह्म की अन्तर्हृदय से सच्ची उपासना, इस कर्म का फल भी उसे साथ-साथ मिलना प्रारम्भ हो जायेगा। ब्रह्म की उपासना के जो साधन सदाचार, सद्व्यवहार, प्राणायाम, व्यायाम, ब्रह्मचर्य संरक्षण आदि हैं, उनका फल भी साथ-साथ ही मिलना प्रारम्भ हो जाता है। इसी के परिणाम स्वरूप शरीर-सौष्ठव के साथ-साथ आयु की वृद्धि होनी प्रारम्भ हो जाती है। जो भोग उसके नियत हैं, वे तो भोगे जाते ही है किन्तु ब्रह्मोपासना रूप सर्वोत्तम कर्म का फल मुक्ति भी उसे साथ ही मिल जाती है। जो कर्म उसके शेष रह गये हैं, जिनका भोग उसे प्राप्त नही हुआ, जो भगवान् के ज्ञान में सञ्चित हैं, मुक्ति का काल समाप्त हो जाने पर उन कर्म-संस्कारो के आधार पर उसे जन्म मिल जायेगा। मुक्ति भी एक भोग अवस्था ही हैं, जो कि उसने अपने कर्मों से प्राप्त की है। यह शाश्वत नियम है कि प्रत्येक भोग अपने

अवधि पर समाप्त हो जाता है, अतः मुक्तिरूप भोग भी समाप्त हो जाता है।

श्री स्वामी जी ने भिक्षु महोदय से पूछा—"क्या अब भी कोई शङ्का है ?" उत्तर आया "जी हाँ, शङ्का यह है कि आयु-परिवर्द्धन के पश्चात् अब यह अकाल मृत्यु हुआ अथवा काल मृत्यु ?" स्वामी जी ने उत्तर में कहा—"मृत्यु तो काल पर ही होता है। भगवान् उसके कर्मों के आधार पर जो-जो समय निश्चित करता चलता है, मृत्यु उसी के अनुसार आगे पीछे सरकता रहता है। हाँ यह बात अवश्य है कि उत्पन्न वस्तु का विनाश अवश्य ही है, शरीर भी उत्पन्न हुये है, भले ही ब्रह्मचर्य सरक्षण आदि अनेक नियमो से शरीर का आयु बढा लिया हो, पर वे विनाश को अवश्य प्राप्त होगे। जब शरीर भोग देने मे सर्वथा असमर्थ रह जायेगा, तब शरीर छूट जायेगा। यदि शरीर छूटने से पूर्व जीवन्मुक्त हो चुका था, तो शरीर पुनः निश्चित अवधि तक नही मिलेगा और यदि ऐसा नही है, तो मनुष्य शरीर ही मिलेगा। फिर उसका अन्त जैसे भी भोग शेष होगे, उन्ही के आधार पर शीघ्र वा देर मे होगा। भोग समाप्त होने पर एक जीवन्मुक्त का शरीर जीर्ण-अवस्था मे ही छूटे, ऐसी व्यवस्था नही रहेगी।

ठीक इसी प्रकार पापी मनुष्य जो अपना आयु लेकर आये हैं और इस जीवन मे भी अपने पूर्वजन्म में सञ्चित बुरे सस्कारों के आधार पर बुरे कर्म करने मे प्रवृत्त हैं, उनका शरीर क्षय को प्राप्त होता ही जाता है, पर औषध आदि दूसरे उपचारो से उसकी रोक-थाम थोड़ी बहुत करते हुये निरन्तर कष्ट में जीवन यापन करते है। वृद्धावस्था मे जब कि उसकी सेवा से गृह-जन तङ्ग आ गये है और वह भी चाहता है कि शरीर छूट जावे, पर छूटेगा कैसे जब इसी गले-सड़े जीर्ण शरीर मे उसे अपने पाप कर्मो का फल भोगना है। अच्छे स्वस्थ शरीर में तो उतना कष्ट नहीं होता। जितना इसमे होता है, यह ही ईश्वर की न्याय प्रियता है, अतः चाहते हुये भी वह नही मरेगा।" किन्तु भिक्षु-महोदय ने पुनः पूछा—"महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद १-६१-६ठे मन्त्र का भाष्य करते हुये लिखा है—"अकाल मृत्युं क्षणभङ्गदेहे न प्राप्नुयाम" इसकी सङ्गति कैसी होगी ?" स्वामी जी ने उत्तर दिया, 'इस विषय का इतना विवेचन कर देने के पश्चात् यह तो सीधी सी बात है कि ऐसे उत्तमोत्तम कार्य करते जावे, जिससे दीर्घायु को उपलब्धि हो और समय से पूर्व न मरे।"

भिक्षु जी ने प्रश्न किया—"फिर स्वामी जी ! उन की क्या व्यवस्था होगी, जो पुण्यशील है और जिनके शरीर का अन्त अतिकष्ट से होता है ?" स्वामी जी ने उत्तर दिया—"ऐसा प्रायः कम होता है। जिन महात्माओ के जीवन मे ऐसा हुआ है, उन्होने पुण्य-अर्जन से अपने सस्कारो को ऐसा बना लिया होता है कि मृत्यु समय का वह कष्ट उन्हे कष्ट प्रतीत नही होता। दूसरो को ऐसा अनुभव होता है कि इन्हे बड़ा कष्ट हो रहा है। वस्तुतः उनका मुख मण्डल प्रसादातिरेक से प्रफुल्लित रहता है और कभी भी उस समय मे उनके मुख से ऐसा शब्द सुनने मे नही आता, जिससे यह प्रतीत हो कि ये कष्ट अनुभव कर रहे है। रही यह बात कि उनको यह शरीर-कष्ट क्यो हुआ ? इसके उत्तर मे मेरा कथन यह है कि पूर्वजन्म मे किये गये कर्मो से भी इसका सम्बन्ध हो सकता है और इस जन्म मे किसी समय की असावधानता से भी शरीर रूपी यन्त्र के विकृत हो जाने पर जहाँ समुचित रूप से वैद्य चिकित्सको की पहुँच न हो, वैसा होना सम्भव है। किन्तु जब महात्मा के मन की साधना ऊँची है, तो वह विकृत शरीर उसकी प्रसन्नता मे कोई बाधा नही डालता। इसका नाम भोग नही है। भोग तो वह वस्तु है, जिससे मनुष्य दुःख वा सुख अनुभव करता है। थोडे रूप मे यदि उसे दु ख अनुभव रूप भोग मिलता भी है, तो वह होना भी चाहिये क्योकि ऐसा नियम है कि शरीर, मन, इन्द्रिय और बुद्धि मे एक-एक से वा सम्मिलित अवयवो से मनुष्य शुभ वा अशुभ कर्म करता है, तो उसे उसी आधार पर एक एक को वा सम्मिलित को कष्ट मिलता है, जिस की अनुभूति आत्मा को होती है। महात्मा जन मन, इन्द्रिय और बुद्धि से निष्पाप होते हैं, अत इन अवयवो पर उसका कोई प्रभाव नही होता। यही कारण है कि वे दूसरो को शरीरावलोकन से अधिक कष्ट मे दिखाई देते हुये भी दु ख की झलक भी मुखमण्डल पर नही आने देते।"

"फिर स्वामी जी" भिक्षु जी बीच मे ही बोल उठे, "शरीर क्यो कष्टमय प्रतीत होता है ?" "सुनो तो सही" स्वामी जी ने कहा—"कैसा भी शरीर धारण करके, उस शरीर का निर्वाह रूप भोग बिना हिंसा के सम्भव नही है। इस कोटी मे साधु-सन्त उत्तम से उत्तम महात्मा और ऋषि मुनि भी आ जाते हैं। वह जो वस्त्र, अन्न-दूध, पानी, घृत आदि का सेवन करता है, प्रत्यक्ष उस मे हिंसा नही प्रतीत होती, पर सूक्ष्मेक्षिका से परिशीलन किया जावे, तो प्रतीत हो जावेगा कि वस्त्र के

निर्माण से पहले ही कपास को ओटते समय बहुत से जीव चरखी मे आ कर मर चुके हैं। यत्न करते हुये भी अन्न बोते समय एव आटा पीसते समय बहुत से जीव समाप्त हो जाते हैं। पानी की भी यही अवस्था है और दूध घी की भी। यह हिंसा जान बूझकर मन, इन्द्रिय, बुद्धि से नही की गई है, पर हुई अवश्य है, वह शरीर के लिये हुई है, अत. उसे शरीर ही भोगेगा और भोगता है। महर्षियो को भी यह कष्ट तो आयेगा ही। यह अपरिहार्य है।

मैं समझता हूँ कि तुम्हारी शङ्काओ का समाधान हो गया होगा, अब कुछ विलम्ब भी हो गया है और आवश्यक कार्य शेष है।" भिक्षु-जी की ओर से उत्तर आया "हाँ स्वामी जी !" अब तो समाधान हो गया, फिर कोई शङ्का हुई तो पूछ लूँगा" "हाँ अवश्य पूछ लेना, जब तक मन में एक भी शङ्का विद्यमान रहती है, जीवनपथ पूर्ण रूप से प्रशस्त नही होता।"

भिक्षु अध्यापकों को निर्देश

गुरुकुल विभाग के छोटे ब्रह्मचारियो की शिक्षा का सञ्चालन-कार्य महाराज ने कुछ दयानन्द भिक्षुओ के हाथ मे दिया हुआ था। भिक्षु तो अभी अपरिपक्व अवस्था के ही थे। केवल पढ़ लिख जाने से पढ़ाने की कार्य-कुशलता नही आ जाती। बालको के अध्यापन में ऐसे सुगम उपाय खोज लेना, जिनसे बालकों को अध्ययन सुगम प्रतीत हो, यह नवयुवक अध्यापकों मे नही होता। वे डण्डे के बल से बालक मे पढाया हुआ पाठ ठूँसना चाहते हैं। जब विद्यार्थी भिन्न-भिन्न अध्यापको के समीप उनका रक्खा गया पाठ्य विषय पढ़ने जाये और सर्वत्र उन पर डण्डे ही बरसते रहे, तो वह स्थान वधशाला से कम प्रतीत नहीं होता, इस बात को दृष्टिगत रखते हुये महाराज ने ७ फरवरी १९४६ को निम्न आदेश पत्र निकाला—

"सब अध्यापक महोदयो तथा भिक्षु जनों को सूचित किया जाता है कि-आज से शारीरिक दण्ड की प्रथा सर्वथा समाप्त की जाती है; क्योकि यह प्रथा सब सभ्यदेशो से हट चुकी है। बालको के सुधार के लिये इसके अतिरिक्त उपायो का प्रयोग कर सकते हैं। उपाय अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार प्रकाश मे लाने चाहिये। बालको की हानियो को उनके समक्ष उपस्थित करते हुये अपनी युक्तियो तथा प्रमाणो द्वारा उनके उज्ज्वल भविष्यत् को उनके समक्ष रखने की चेष्टा करना

अनिवार्य है। अपने आध्यात्मिक-प्रभाव तथा हित दृष्टि को उनके हृदय मे अङ्कुरित कर उन्हे अपनी ओर आकर्षित करना महत्त्वपूर्ण है, जिससे कि वे प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य समझकर माने। देखा गया है कि मारने से बालक बिगडते है सुधरते नही।"

मूर्ति पूजा पर प्रश्नोत्तर

श्री आत्मानन्द सरस्वती विद्यार्थियो की ज्ञान वृद्धि के लिये वाद प्रतियोगिता भी रक्खा करते थे। इस वर्ष आने वाली शिवरात्रि को होने वाली सभा मे, महर्षि दयानन्द की वोध घटना को लक्ष्य करके, वाद प्रतियोगिता के लिये दो योग्य ब्रह्मचारी चुने, जो मूर्ति पूजा के खण्डन-मण्डन विषय को भली भाँति उपस्थित कर सके। महाराज ने उन्हे लिख-लिख कर विषय की पृथक् सज्जा कराई और उसी विषय को पिता-पुत्र के नाम एवं सम्बोधनो से परिवर्तित करके समाचार पत्रो मे दे दिया। स्वामी जी के इस लेख में पाठक महोदय, शङ्का-उत्थापन की सूक्ष्म प्रक्रिया एव उसका निराकरण प्रकार कुछ निराला ही अनुभव करेगे, जो कि विषय की गम्भीरता को लिये हुये है। उन्हे समझकर जीवन मे उतारने की और अपना जन्म सफल करने की दार्शनिक शैली द्वारा अनुपम साधना है।

महर्षि दयानन्द मे दृढ़ अनुराग एव दूसरों को वैसा बनने की प्रेरणा

श्री आत्मानन्द सरस्वती महर्षि दयानन्द के जीवन मे दृढ अनुरक्त थे। उनके जीवन से उन्होने निज जीवन को आदर्श बनाया, उन्होने दूसरों को भी यही आदेश देते हुये कहा—"ससार मे जितने भी महापुरुष हुये हैं, उनके जीवन में यह लहर स्वाभाविक रीति से देखने मे आती है कि जब भी उन्हे जीवनोन्नति के किसी साधन का बोध हुआ, वे तत्क्षण ही उसी ओर झुक गये। शेष सासारिक बातें उनके सम्मुख गौण बनती चली गईं। उन्हे प्रति क्षण यह ध्यान रहा कि यह मनुष्य-जीवन भगवान् का अमूल्य निधि है। हमारा शरीर और सांसारिक साधन जो इस समय हमारे समीप हैं, यह आवश्यक नही कि वे सदा इसी भाँति ही हमारे समीप स्थिर रहेगे, तथा यह भी नही कहा जा सकता कि वे कब तक हमारे समीप है। अत यह

अनिवार्य है कि हम जब भी जिस परिस्थिति मे हैं। उस परिस्थिति में ही हमने अपना मार्ग प्रशस्त करना है।

शिवरात्रि के देवता महर्षि दयानन्द की ओर ही दृष्टिपात कीजिये। जिस क्षण से उनके मन में सच्चे शिव को पा लेने की इच्छा प्रकट हुई तब ही से उन्होने अपना अश्रुत पूर्व कार्य प्रारम्भ कर दिया। वे इस कार्य को गृहस्थ बनने के पश्चात् अन्य कार्यों को साथ-साथ करते हुये भी कर सकते थे। वानप्रस्थ होकर और फिर इसके पश्चात् सन्यास आश्रम मे भी पूरा समय लगाकर इसे पूर्ण कर सकते थे। माता-पिता एव सकल परिवार भी इसी भाँति प्रसन्न रह सकता था। परन्तु नही, अब तो एक क्षण का विलम्ब भी उन्हे एक लम्बा काल प्रतीत होता है। हृदय की अन्तर्भावना आदर्श की ओर उठ चुकी है। अब दृष्टि के समक्ष उसके अतिरिक्त और कुछ नही ठहरता। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये अब उस यात्री को माता-पिता का गहरा प्रेम भी न बाँध सका। निर्जन वन-प्रान्तो मे भयङ्कर दृश्य, हिमाच्छादित नदियाँ, सिंहो की गर्जनाये और हाथियो की चिंघाड़े भी उसके आगे बढते हुये पग को पीछे न हटा सकी। हटाती भी कैसे, इनमे से उन्हे कुछ दीख ही नही रहा था; यदि कुछ दीख रहा था तो वह था—सच्चे शिव को पाना, जो था उनका प्यारा आदर्श। उन्होने अनेक कष्टो के उपस्थित होते हुये भी इस अपने प्यारे आदर्श को आँखो से ओझल नही होने दिया और अन्त मे अपने सच्चे शिव को प्राप्त करके ही अपनी वह सङ्कटा-कीर्ण विकट यात्रा सवरण की।

इसके पश्चात् उन्होने दूसरा पहलू बदला। उनकी अपनी समस्या समाप्त हुई। अब दूसरो की समस्या उनके समक्ष उपस्थित होकर उनके मन को झकझोरने लगी और वह यह कि इस भगवान् की प्रसादी का उपयोग मैं अकेला कैसे करूँ? जहाँ बन्धन से छूटना धर्म है, वहाँ दूसरों को वन्धन से छुडाना भी तो धर्म है। हृदय मे जागरित हुआ यह यश का ज्योतिः विश्व कल्याण के अभिलाषी इस यजमान से आहुति माँगने लगा। ससार मे मनुष्य को सबसे प्यारा अपना आपा है। इस आदर्श के पुजारी ने इसे ही अपनी सबसे उत्तम विभूति समझ सामग्री की थाली मे रख दिया और ससार चकित रह गया—जव अनेक वार उसे हँसते-हँसते विष के प्याले पीते देखा।"

आओ! आओ!! उस महर्षि की स्तुति मे, कुछ थोडे श्रद्धा पुष्प चढा देवे—

महर्षि-स्तवन

विद्या भानु प्रकाशित करके, जिसने तम का नाश किया ।
मूढ प्रजा का मोह मिटा कर, फिर उन्नति विश्वास दिया ॥१॥
जिसने सुख को स्वप्न समझकर, जनता का उपकार किया ।
. गुरु के ऋण को जीवन दे कर, शिर से अन्त उतार दिया ॥२॥
जिसने वेदो के दिन-मणि को, सम्प्रदाय-घन मुक्त किया ।
वेद रत्न को खोद धरा से, अथवा शोभायुक्त किया ॥३॥
जिसने सारी सुप्त प्रजा को, दे उपदेश प्रबुद्ध किया ।
स्वार्थी हठी दुराचारो से, डट कर सन्तत युद्ध किया ॥४॥
जिसने मातृ भूमि की लज्जा, मन मे अपने अनुभव की ।
पराधीनता रोग छुड़ाने की, ओषधि सच्ची जिसने दी ॥५॥
आओ उसके पद-चिह्नो पर—चल कर सुयश बढा देवे ।
[ऋषि] दयानन्द की उप्त बेल को, ऊपर और चढा देवे ॥६॥

गोशालाभिलाष

श्री स्वामी जी महाराज, वेदो का केवल स्वाध्याय ही नही करते थे अपितु उसमे निर्दिष्ट उत्कृष्ट साधनो से अपनी कार्य प्रणाली को रङ्ग देने मे ही उसे चरितार्थ समझा करते थे। भैंस को वे सूअरी (शूकरी) कहा करते थे और गौवो का बहुत सम्मान करते थे। गुरुकुल मे २०-२५ गौवें थी। एक-एक गौ एक-एक ब्रह्मचारी और भिक्षु को सौंप दी। एक स्वय अपने लिये रख ली। सब गौवो तथा उनके बच्चो के नाम निर्धारित कर दिये। अपनी-अपनी गौवो के लिये घास सब खोदते थे, पानी पिलाते थे, स्नान कराते तथा खुरैरा करते थे। दूध सबका भण्डार मे पहुँच जाता था और समान रूप से वितरण होता था। यदि स्वामी जी को कोई अधिक देने की चेष्टा करता तो, वे अपना भाग लेकर शेष छोड दिया करते थे।

अच्छे वश की कुछ गौवे, वे और बढाना चाहते थे। इसके लिये उन्होने गुरुकुल झज्जर (रोहतक) के आचार्य श्री भगवान्देव जी को २५-२-४६ के दिन पत्र लिखा कि हरयाणे से पहिली वा दूसरी बार सूई हुई जो कि नई ही ब्याई (प्रसूता) हो, ऐसी दश सेर तक दूध देने वाली चार गौवे मगवानी हैं, कृपया लिखे कि कितने मूल्य से मिल सकेगी। वहाँ से गौवे और गाडी का प्रबन्ध हो जाने पर यहाँ से एक भिक्षु को भेज दूँगा।

एक मास पश्चात् रावल प्रान्त से ही गौवों का प्रबन्ध हो जाने से हरयाणे से मगाने का निषेध कर दिया।

श्री पण्डित गङ्गाप्रसाद उपाध्याय कला अधिस्नातक ने 'शाङ्कर-भाष्यालोचन' एक ग्रन्थ लिखा। उनकी इच्छा हुई कि यदि कोई उच्च-कोटि का दार्शनिक इसे देख लेता तो अच्छा होता। उन्होंने वहुत सोच विचार के पश्चात् यही निश्चय किया कि इस विषय मे स्वामी आत्मानन्द सरस्वती से ही प्राथना करूँ।

श्री पण्डित गङ्गाप्रसाद जी की प्रार्थना पर महाराज ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। महाराज ने उनके हस्त लिखित पुस्तक को कई महीने लगाकर आद्योपान्त पढा। स्वामी जी ने पुस्तक को पसन्द किया और कई मौलिक संशोधन भी प्रस्तुत किये, जिन्हे श्री गङ्गाप्रसाद जी ने अङ्गीकार किया और इस कृपा के लिये महाराज के प्रति अपना आभार प्रकट किया।

श्री गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय ने महाराज को दर्शनो का एक विशेपज्ञ मान लिया और उनके विचारो मे मौलिकता का सुगन्ध देखा।

जीव का परिमाण

यतिवर्य आत्मानन्द सरस्वती ने 'जीव का परिमाण' इस गम्भीर विषय को समझाने के लिये कहानी का आश्रय लिया। जिसे सुन्दर रूप देने के लिये इस विषय से सम्बन्धित सभी विद्वन्मण्डल और महर्षि समुदाय को व्याख्यान के रङ्गमञ्च पर लाकर उपस्थित किया। इस स्थिति मे वे उनके ऐतिहासिक काल को तिरोहित करते चले गये। महाराज ने कहानी के माध्यम से इस विषय के एक-एक पक्ष की अपनी दार्शनिक वुद्धि के आलोक मे गम्भीर विवेचना की। विषय प्रतिपादन की शैली द्वारा पारस्परिक व्यवहार की वे झाँकियाँ भी प्रस्तुत की हैं, जिन्हे मनुष्य अपने व्यवहार में लाकर सभ्य जनो की पङ्क्ति मे अपने नाम को अङ्कित करना सीख सकते है। महाराज ने यह भी ध्वनित किया है कि विद्यालयो का स्थान कहाँ और क्यों होना चाहिये? उनके लिये साधारण जनों के कर्त्तव्य भी घोषित किये हैं। ऐसे स्थान कितनी भी दूर क्यों न हो, वे जनता की दृष्टि से कदापि ओझल नहीं होने चाहियें और वहाँ सहर्ष पहुँच कर उनसे लाभ उठाना चाहिये।

विद्वज्जन एक स्थान पर स्थिर हो कर ही निज समय का पूर्ण उपयोग करते हुये जनता को अमूल्य निधि भेंट कर सकते है।*

वानरों द्वारा विष-परिज्ञान तथा उसका निराकरण

महाराज ने एक समय कथा-प्रसङ्ग मे सुनाया कि मनुष्यो की अपेक्षा अन्य प्राणियो को स्वाभाविक बोध बहुत अधिक है। खाद्य पदार्थों मे उनका घ्राणेन्द्रिय पुष्कल सहयोग देता है। एक अंग्रेज के पर्यलिन्द (बगला) पर वानर अतिशय उत्पात मचाते थे। वह उनसे बहुत तङ्ग आ गया था। अन्त मे उसने विचारा कि सब वानरो को मार देना ही उचित है। इसके लिये उसने अहिफेन विष-मिश्रित बहुत-सी रोटियाँ बनवाई, और इकट्ठी ही वानरो के लिये डाल दी। कुछ वानर आये और उन्हे सूँघकर चले गये। पश्चात् उनका वानर-राज आया और वह भी चल गया। उसने एरण्ड के पत्ते तोडे और सब वानरो को लेकर पर्यलिन्द पर गया। प्रत्येक रोटी के मध्य मे वे एरण्ड के पत्ते रख दिये और सब रोटी पत्तो समेत उठा लाये। अपने स्थान पर आ कर वे सब रोटी खा गये और सब जीवित रहे।

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती को समाज सुधार की धुन निरन्तर लगी रहती थी। इसके लिये उन्होने २७ मार्च सन् १९४६ को एक 'पञ्च वर्षीय योजना' आर्य प्रतिनिधि सभा के सम्मुख प्रस्तुत की, जिस मे प्रचार के भिन्न-भिन्न साधनो पर प्रकाश डाला गया था।

महाराज को रुधिर-निपीड का प्रभाव कभी-कभी प्रचण्ड रूप से होता था। इसके लिये उन्होने स्वय भी औषध-निर्माण किया हुआ था, किन्तु उस समय वे जो भी औषध ग्रहण करते थे, प्रतिकूल ही पड़ता था। उन दिनो कुछ ही दूर चलने पर उनके हृदय-पिण्ड में वेदना होने लगती थी और कदाचित् रात्रि समय मे विस्तर पर लेटे लेटे ही पीडा चरम सीमा का उल्लङ्घन कर जाती थी। इतना होने पर भी महाराज अपने कष्ट की विशेष प्रतीति दूसरो पर नही होने देते थे। वे अपने नित्य नियम थोड़ा-बहुत समय का अतिक्रमण करके कर लिया करते थे और अध्यापन का कार्य उसी प्रकार करते रहते थे।

वेद-प्रचार की लगन के इतने धनी थे कि इस रुग्णावस्था मे भी उन्होने रावलपिण्डी नगर जाना नही छोड़ा। वे नगर जाते समय

*सम्पूर्ण निबन्ध 'आत्मानन्द ग्रन्थ-माला' मे है।

किसी को बताया नही करते थे। गुरुकुल से बाहर टहलते हुये-से निकलते और मण्डलरथ्या (सडक) पर जाकर आते हुये किसी ताँगे में बैठ जाते वा रावल ग्राम का एक पुरुष जो अपना ताँगा गुरुकुल भूमि में ही खड़ा किया करता था, उसे लेकर उसके समय पर ही चल देते थे ।

श्री देव आत्मानन्द, नगर में एक छत से जीने के सहारे नीचे उतर रहे थे। अकस्मात् उनका पैर फिसल गया और एक क्षण मे ही नीचे आ गिरे। स्वामी शान्तानन्द जी भी छत पर महाराज के साथ ही थे; किन्तु उस घड़ी उनसे भी कुछ करते न बना। पैर के अङ्गूठे में भारी चोट लगी, नख उतर गया और रक्त की अविरल धारा बह चली। तात्कालिक उपचार करके चलने लगे तो चलना कठिन जान पड़ा । उनका साहस अदम्य था। लंगड़ाते हुये गुरुकुल मे पहुँचे। योग से साधा हुआ उनका वह शरीर अनेक कष्टों को भी कुछ नहीं समझता था। वे इन सब कष्टों को 'भोग' है, ऐसा कहकर टाल दिया करते थे ।

श्री स्वामी जी इतना साहस, स्फूर्ति एव शक्ति रखते थे कि कार्य के समय नवयुवकों को प्राय: कह दिया करते—"जब मै तुम्हारी अवस्था मे था, तो उस समय किये गये अपने कार्यो को देखकर मुझे यह कहने के लिये विवश हो जाना पड़ता है कि तुम लोगो का जीवन अकर्मण्य है।"

गुरुकुल के लिये धन सङ्ग्रह करने का उनका विशेष कार्यक्रम यह था कि वे वर्ष भर उसके लिये कोई चेष्टा नही करते थे। उत्सव से २०,२५ दिन पूर्व वे नगर चले जाते। श्री नरेन्द्रनाथ मोहन, श्री लाला-सीताराम जी आदि प्रतिष्ठित व्यक्तियो का एक आयोग बनाते। उसके द्वारा स्वय घूम कर गिनी-चुनी व्यक्तियो के यहाँ से लगभग पाँच सहस्र रुपया एकत्रित कर लिया करते थे। इसके अतिरिक्त कुछ धन राशि उत्सव पर एकत्रित हो जाया करता था। केवल इसी सात-आठ सहस्र मे वर्ष भर का ऊपर का कार्य चला लेते थे।

वार्षिक उत्सव की शैली भी उनकी निराली थी। उसमे व्यय कम होता था। रावलपिण्डी आर्यसमाज के साथ गुरुकुल का उत्सव होता। गुरुकुलोत्सव के लिये कोई विशेष सज्जा नही करते थे। गुरु-कुलवासी सब, नगर-समाज के उत्सव मे सम्मिलित होते थे। वैशाखी

के दिन सभी महानुभाव गुरुकुल मे चले आते । पारिवारिक-जन अपने घरो के ताले लगाकर बाल बच्चो समेत गुरुकुल मे पहुँच जाते। प्रातः ही एक बडा भारी मेला-सा दिखाई पडने लगता था । सबका भोजन ऋषि-लगर मे पकता । एक दो व्याख्यान भोजन से पूर्व होते और एक दो पश्चात् । फिर उत्सव समाप्त हो जाता और सब अपने अपने घर पहुँच जाते ।

सब महानुभाव कोई छोटा हो वा वडा, पठित हो वा अपठित, व्याख्याता हो वा श्रोता, विशाल भू-भाग मे एक साथ बैठकर पत्तलो पर भोजन कर लेते । पश्चात् अपनी अपनी पत्तल उठाकर फेक देते और निश्चिन्त हो जाते ।

गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर वैशाखी की १३ अप्रैल को हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के सञ्चालक श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी पधारे । स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने अपने करकमलो से उन्हे पुष्पमाला पहनाई । इसके प्रत्युत्तर मे स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने जनता को सम्बोधित करते हुये कहा—"स्वामी जी महाराज की यह पुष्पमाला क्या, इनका तो मुझे यह आशीर्वाद है ।"

उन पुराने सन्यासियो मे यह विशेष बात देखने मे आई कि वे सब के सब कर्मठ एव एक दूसरे के पूर्ण सहयोगी और परस्पर का सम्मान करने वाले थे । एक से एक आगे बढकर ऋषि दयानन्द के लगाये गये वैदिक उद्यान को विकसित करने मे अपना भाग चुकाते प्रतीत होते थे । कैसी सुन्दर धारणा थी उनकी ! कैसा सुन्दर प्रेम था उनका !! कैसी निराली सहानुभूति मे पगे थे वे लोग !!! जिनके जीवन की चर्चा से प्राचीन ऋषि-मुनियो के दृश्य उपस्थित हो जाते थे ।

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के चरणारविन्दो मे गुरुकुल झज्जर (रोहतक) के आचार्य श्री भगवान्देव जी भी दक्षिण हैदराबाद और बम्वई आदि स्थानो मे एक मास पर्यन्त प्रचार-कार्य करने के पश्चात् अपनी गति का विवरण देने एव प्रचार प्रणाली के अभिनव सूत्र प्राप्त करनेकी दृष्टि से उत्सव के पावन दिवस पर हो पधारे थे । वहुत-सा उपदेश तो उन्हे श्री महाराज की भव्य आकृति, उत्सव आदि विशेष अवसरो पर अपनाई हुई चेष्टाओ, त्यागपूर्ण जीवन एव कर्मठ मनोवृत्ति से अनायास ही उपलब्ध हो गया और कुछ गुरु-शिष्य की परम्परा से प्रश्नोत्तर रूप मे ।

स्वामी आत्मानन्द ने, जिनमे वैदिक धर्म के प्रचार का भावाग्नि निरन्तर प्रज्वलित रहता था, आचार्य भगवान्देव जी को निम्न सुझाव दिये—

(१) अपने हरयाणा प्रान्त मे स्थान-स्थान पर ऐसे उपदेशक-शिक्षण-केन्द्र स्थापित कीजिये, जहाँ से वैदिक शिक्षा से दीक्षित उपदेशक महानुभाव ग्राम-ग्राम मे जाकर प्रचार कर सके। ग्राम्यजनो को उपदेशको की बडी आवश्यकता है। वे सीधे सादे शुद्ध मनोवृत्ति के लोग होते है। जब उन्हे सुनने को अच्छी बात नहीं मिलती, तो वे बुरे स्वभावो मे अपना जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर देते हैं। आर्यसमाज के भजनोपदेशको ने अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर ग्रामीणो के जीवनो को पर्याप्त सीमा तक ऊँचा किया है, किन्तु उन्हे इससे भी ऊँचे स्तर पर पहुँचाने के लिये वेद-उपदेशको की भी आवश्यकता है। दूर-दूर से उपदेशको का प्रबन्ध करके ग्रामीण-जनो मे वैदिक धर्म का प्रचार कराना बहुत व्यय-साध्य है एव नगर के वायुमण्डल मे रहे हुये उपदेशक, ग्रामो मे जाना कम पसन्द करते है। उनके लिये तो उसी वातावरण में पले हुये उपदेशक लाभप्रद हो सकते है। यदि स्थान-स्थान पर ग्रामों में ऐसे उपदेशक-केन्द्र स्थापित कर दिये जाये, तो हमारे ग्रामो के भजनोपदेशक भी उनसे लाभ उठाकर अपने बोध की और अधिक वृद्धि कर सकते है।

(२) ग्राम मे प्रचार करते हुये उपदेशको को अनेक कठिनाइयाँ भी उपस्थित हो सकती है। उनकी कठिनाइयो का निराकरण करने का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है। इसके लिये प्रमुख उपदेशक समय-समय पर जाकर उनके कार्य का निरीक्षण करे। आवश्यक हो तो उनकी कार्य-प्रणाली मे सुधार भी करे एव उनके मार्ग मे आई हुई कठिनाइयों का समाधान करे।

(३) आप भी अपने गुरुकुल झज्जर का अभ्यन्तरीण प्रबन्ध दूसरी योग्य व्यक्तियो को सौप दे और बाहर रह युवको को अपने अमूल्य सुझावो से निष्ठावान् बनाते रहे। आपका प्रमुख कार्य बाह्य जगत् मे वैदिक धर्म का ही प्रचार रहे। इससे आपको अनेक लाभ होगे।

(क) आपके प्रति गुरुकुल के कर्मचारियो का अन्य गुरुकुलो के कार्यकर्त्ताओ की भांति किसी प्रकार का वैमनस्य नही हो सकेगा।

(ख) गुरुकुल से बाहर रह कर जब आप बाह्य क्षेत्र मे कार्य करेंगे,

तो आपको अपने किये-न किये कार्यो से पछताना न पडेगा। वह कर्म निष्काम कर्म होता चला जायेगा। बाहर रह कर आप जनता का सुधार भी अधिक कर सकेगे।

तत्पश्चात् आचार्य भगवान्‌देव जी ने स्वामी आत्मानन्द सरस्वती से अपने लिये कार्य करने का अवधि पूछा। महाराज ने उत्तर मे कहा—"जबकि आपके हरयाणे प्रान्त मे अपनी जान पर खेलने वाले, कई-कई दिनो तक भूखे-प्यासे रह कर अनन्य लगन से कार्य करने वाले, भारतीय स्वतन्त्रता के पुजारी, काग्रेस के चुनाव मे भी अत्युत्तम कार्य करने वाले भारत-नेता सुभाषचन्द्र बोस की सेना के त्यागी, तपस्वी, सहिष्णु नव युवक सैनिक आये हुये है, तब इस समय अवसर है कि विशेष आन्दोलन करके, उनमे पडे हुये मद्य पीने के बुरे व्यसन को शीघ्र दूर करके अपना अनुयायी बनायी जाये। इस समय कार्य करने का समय है। ससार बहुत गहरे गर्त मे पहुँच चुका है। कम से कम दो वर्ष और अधिक तत्परता से कार्य करना चाहिये। उन्हे शीघ्र अपने प्रभाव मे लाने के लिये आयुर्वेद-चिकित्सा द्वारा शारीरिक रोगो से मुक्त करते चलना भी बहुत आवश्यक है। चिकित्सा के बिना एक सुधारक अपना स्थायी प्रभाव नही डाल सकता।"

वेददर्शन-प्रणयन का अभिलाष

रावलपिण्डी नगर मे होने वाले इस वार्तालाप से पूर्व सायकाल कुछ रात्रि व्यतीत होने पर श्री स्वामी जी का एक पैर अकस्मात् सुन्न हो गया था, किन्तु करुणानिधान भगवान् की दया से उसी समय ठीक हो गया। रुधिर-निपीड़ के कारण इसी प्रकार का कोई अन्य उपद्रव अकस्मात् न उठ खडा हो, इस आशङ्का से स्वामी जी ने लाहौर मे होने वाली 'हीरक जयन्ती' पर जाना स्थगित कर दिया और गुरुकुल मे पधार कर १६ अप्रैल सन् १६४६ को रात के समय यह कह कर कि न जाने यह शरीर कब तक है, 'वेद-दर्शन' लिखना आरम्भ करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु रुधिर-निपीड़ का प्रभाव अब कुछ करने की अनुमति न देता था। किसी भी औषध से रोग मे लाभ न देख, जल-चिकित्सा आरम्भ की। पूर्वापेक्षया इस चिकित्सा से लाभ प्रतीत हुआ। टब मे नाभि-पर्यन्त जल भरवाकर एक घण्टे तक उसमें बैठे रहते थे। प्रात गरम पानी का पतीला खाट के नीचे रखकर खाट पर लेटे हुये कपडा ओढकर वाष्प-स्नान करते थे। निरन्तर १०–१२

दिन यही क्रम रक्खा जिससे आरोग्य प्राप्त हुआ; किन्तु ३ मई की रात्रि को अकस्मात् भयङ्कर कष्ट हो गया। रात भर नीद नही आई, वायु का गोला उदर मे चक्कर खाता हुआ हृदय के स्थान से ऊपर के भाग छाती, कन्धे मस्तिष्क में एव भुजाओ मे भर जाता था। हृदय मे पीडा होनी प्रारम्भ हो गई। समस्त रात्रि अतिकष्ट के साथ बीती। प्रातः वायु-प्रशमन हो जाने पर निद्रा आ पाई।

स्वामी जी जब देर से उठे, तब भिक्षुओ ने देर से उठने का कारण पूछा। उस समय सबको ज्ञान हुआ कि स्वामी जी रात्रि भर बडे कष्ट मे रहे है। स्वामी जी के निकट सोने वाले और बहुत से भिक्षु थे; परन्तु उन्होने किसी को न जगाया और चुप-चाप बाहर से उठकर कमरे मे चले गये। उनके कमरे की ओर जाने मे गुरुकुल-वासी बहुत ध्यान रखते थे कि स्वामी जी समाधिस्थ होगे। उन्हे किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे। किन्तु यह ध्यान रखना उस दिन विपरीत सिद्ध हुआ तीन दिन तक कुछ अवस्था ठीक रही, इसके पश्चात् वायु सायं चार बजे से रात्रि के आठ बजे तक इतना कुपित हुआ कि स्वामी जी को बात चीत करना भी कठिन हो गया। भिक्षु लोग महाराज की इस विचित्र अवस्था से आतुर हो उठे। वे उनकी चारपाई के चारो ओर बैठे रह कर अवाक् किंकर्त्तव्यविमूढ बने रहे। उनकी इस शोचनीय अवस्था पर सबके चित्त खिन्न थे। उनके मन मे भिन्न-भिन्न आशङ्कायें उठने लगी। प्रभु यह सब कष्ट नितान्त शान्त बने हुये सह रहे थे। श्री पण्डित विद्याधर जी का कथन था कि महाराज के साथ रहते हुये मुझे बहुत वर्ष हो गये, किन्तु इतने भयङ्कर कष्ट मे मैंने इनको पहले कभी नही देखा। महाराज मे सहन शक्ति चरम सीमा को पहुँच गई है। स्वामी जी स्वशरीर मे क्षीणता का अनुभव कर रहे थे और साथ ही यह भी कुछ आभास होता था कि सम्भव है, आज हृदय गति रुक जाये, किन्तु थोडे काल के पश्चात् ही कुछ विश्राम प्रतीत होने लगा।

बाहर-से रोगी उस दिन भी नित्यप्रति की भाँति स्वामी जी के समीप आये। उन्होने उन्हे प्रसन्नचित्त से औषध दिया और उनके समक्ष अपनी रुग्णता की कोई चर्चा नही की। महाराज ने उस समय किसी का योग (नुसखा) भी लिखाया।

जल-चिकित्सा से लाभ तो हुआ किन्तु शरीर का अत्यधिक कृश हो जाना उसे सहन न कर सका। निर्बलता की दशा मे जल-चिकित्सा

हितप्रद नही है, यह विश्वास दृढ हो गया। अत उसे पुन आरम्भ न कर त्रिफला का सेवन प्रारम्भ किया, जिससे कुछ आरोग्य के लक्षण प्रतीत हुये। लाहौर मे उनके पुराने मित्र स्वामी अनुभवानन्द जी शान्त रहा करते थे, उनसे हृदय के लिये विशेष औषध मगा लिया।

आर्य समाज मन्दिर की स्थापना

गुरुकुल से ७ सहस्रमान दूरी पर एक ग्राम 'चक ब्राह्मणाँ' था। वहाँ के निवासी स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के अतिनिकट सम्पर्क मे थे। महाराज का उन पर अच्छा प्रभाव था। वे सब आर्य समाज के सिद्धान्त को मानने लग गये थे। वे अपने ग्राम मे वैदिक धर्म का प्रचार निरन्तर उत्तरोत्तर प्रगति पर रहे, इस आशा से एक आर्य-समाज मन्दिर की स्थापना के लिये बहुत दिनो से इच्छुक थे। महाराज से उन्होने अपनी इच्छा प्रकट की और महाराज ने तुरन्त समाज-मन्दिर की स्थापना का आदेश दे दिया। इसकी स्थापना का दिन २६ मई १९४६ नियत हुआ। रविवार का दिन था। भिक्षु मण्डल के सदस्यो के अतिरिक्त गुरुकुल के छोटे विद्यार्थी भी उसमे सम्मिलित हुये। स्वामी आत्मानन्द सरस्वती रुग्ण होते हुये भी अग्निहोत्र आदि सामान्य कार्यवाही के अनन्तर नियत समय पर भक्तजनो के साथ नियत स्थान पर पहुँच गये।

'चकब्राह्मणाँ' निवासी श्री हरवशलाल जी और प्रमोदसिह जी ने आर्य समाज मन्दिर के लिये भूमि प्रदान की। इसी अवसर पर गुरुकुल और कालिज के समाजो ने पाँच-पाँच सौ रुपये प्रदान किये। तीन सौ तरेप्पन रुपये उपस्थित जनता द्वारा भी एकत्रित हो गये। श्री रोनकराम 'चक ब्राह्मणाँ' निवासी ने कन्या पाठशाला की अध्यापिका का व्ययभार अपने ऊपर लिया।

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने इस समाज-स्थापना दिवस पर जनता को अभिमुख करते हुये निम्न शब्द कहे—

"सभी मनुष्यो को यह समझ लेना चाहिये कि महर्षि दयानन्द ने किसी नवीन मत की स्थापना नही की। जिस मार्ग का भगवान् व्यास ने अवलम्बन किया, जिसको भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना अङ्ग बनाया एव भगवान् राम ने जिसे अपने राज्य मे उद्घोषित किया और सब मनुष्यो के कल्याणार्थ ईश्वर ने जिसे आदि सृष्टि मे चार ऋषियो द्वारा

जनता के समक्ष उपस्थित किया, जिसको ब्रह्मा से लेकर जैमिनि ऋषि तक स्वीकार करते चले आये है, उसे ही भगवान् दयानन्द ने वैदिक धर्म से कोसो दूर रहने वाले पथभ्रष्ट आत्माओं के उद्धार के लिये हँसते-हँसते विष के प्याले पीकर जनता के हृदयो मे उतारने का भरसक प्रयत्न किया। वेद आर्यो का प्राण है, वह ईश्वरीय ज्ञान है। उसमे सब विद्याओं का प्रतिपादन है। यदि मनुष्य उसके अनुसार अपने जीवनों को परिवर्तित करे, तो ससार में समस्त जातियाँ एक होकर परस्पर प्रीतिपूर्वक सुखमय जीवन के दिन व्यतीत करती हुई वास्तविक लाभ का सन्देश घर-घर पहुँचाने मे समर्थ हो जाये।"

८ जून सन् १९४६ को स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने श्री पं० बुद्ध देव जी विद्यालङ्कार* को पुन. पत्र लिखा—

विद्वद्वर्य श्री पण्डित बुद्धदेव जी, सादर नमस्ते।

आशा है कुशल से होगे। मैंने आप को पहले भी निवेदन किया था कि संन्यासियो के लिये आचार्य पद किसी सस्था के निर्माण मे एक बाधा है, संस्थाओ के निर्माण के लिये उन्हें अपना सन्यास स्तर नीचा करना पड जाता है, जो उनके लिये शोभा जनक नही है और यदि वे अपना स्तर स्थिर रखते हैं, तो सस्था के प्रबन्ध मे स्खलन आना अनिवार्य है। मैं यह पत्र आपको इस रूप मे नही लिख रहा कि आप अपने आचार्य पद के लिये स्वीकृति भेजे, अपितु इस पत्र द्वारा आदेश दे रहा हूँ कि अब आप अविलम्ब यहाँ पहुँच जावें और सस्था का समस्त प्रबन्ध आचार्य बन कर सँभाल ले।

शुभ चिन्तक
आत्मानन्द सरस्वती।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी वानप्रस्थ इस पत्र की प्राप्ति के अनन्तर श्री गुरुचरणो मे आ उपस्थित हुये और महाराज की सेवा मे अति विनीत भाव से निवेदन किया.— "सेवक श्री चरणो मे उपस्थित है, आप की आज्ञा शिरोधार्य है, किन्तु अभी कुछ ऐसे कार्य अवशिष्ट है,

---

*विक्रम सवत् २०१९ दीपमालिका के शुभ दिवस पर अजमेर मे गुरुकुल चित्तौड गढ के आचार्य स्वामी व्रतानन्द जी से सन्यास आश्रम की दीक्षा ग्रहण की और स्वामी समर्पणानन्द बन गये।

जिन्हे अधूरा छोड कर इधर समय देना ठीक नही रहेगा। मै उन्हे निपटाने का शीघ्र यत्न करूंगा, अतः इसके लिये एक वर्ष का विलम्ब और सहन करना पडेगा। फिर मैं आप को इस सस्था से सर्वथा निश्चिन्त कर दूंगा"।

श्री स्वामी वेदानन्द (दयानन्द तीर्थ) स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के पुराने काशी के समय के ही विद्या-शिष्य थे।

उन्होने और 'प्रताप' के सम्पादक श्री महाशय कृष्ण जी ने, स्वामी आत्मानन्द सरस्वती से अनेक बार आग्रह किया कि चिकित्सा के लिये लाहौर आ जाइये, किन्तु स्वामी जी वहाँ न जा सके, क्योकि उनके समीप सस्था को संभालने के लिये दूसरा महापुरुष नही था।

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती को अपने शरीर की इतनी चिन्ता न थी, जितनी उन्हे भिक्षुओ को शीघ्र से शीघ्र योग्य बनाकर कार्य-क्षेत्र में उतारने की। सब से प्रथम श्री आनन्द भिक्षु जी भिक्षु के रूप मे आर्य जगत् के कार्य क्षेत्र मे अवतीर्ण हुये। इसके पश्चात् महाराज ने श्री ओङ्कार तीर्थ भिक्षु को भी प्रचार कार्य के लिये अनुमति दे दी और वे पञ्जाब में पदाति पर्यटन करके वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे।

सस्कार विमर्श

प्राय यह नित्य का कर्म था कि साय भ्रमण पश्चात् गर्मी के दिनो मे, जब कि अध्ययन मे विशेष रुचि नही हो पाती थी, कुछ भिक्षु श्री स्वामी जी महाराज के सान्निध्य मे आ बैठते थे। उनमे से एक पूछ बैठा—

'अन्त्येष्टि' का क्या अर्थ है ?' इस प्रश्न के उत्तर मे महाराज ने कहा, "अन्त मे होने वाला ऐसा यज्ञ जिससे मृत देह का दाह कर्म किया जावे। उसके पश्चात् उस शरीर के लिए कुछ भी कर्त्तव्य शेष नही रह जाता और यह कर्त्तव्य भी दूसरे सम्बन्धित पुरुषो का है है। जिसका वह शरीर है, उसका कर्त्तव्य तो उस शरीर से निकलते ही समाप्त हो चुका।" "क्या वह सस्कारो मे परिगणित किया जावेगा ?" इस प्रश्न के उत्तर मे श्री स्वामी जी ने कहा, "शरीर सस्कारो के अन्तर्गत सङ्ख्यात होगा, आत्मा से सम्बन्धित अन्तःकरण के सस्कारो में नही। आत्मा से सम्बन्धित सस्कार सन्यास आश्रम तक

ही है और वे यही तक १६ समाप्त हो जाते हैं एवं शरीर-सस्कार गर्भाधान सस्कार को छोड़कर अन्त्येष्टि कर्मविधि तक समाप्त होते हैं, जो इस क्रम से सोलह है। गर्भाधान सस्कार से, विशिष्ट अन्तःकरण समन्वित आत्मा ही गर्भ मे आयेगा। पश्चात् उस आत्मा के सम्पर्क से जो शरीर का निर्माण गर्भ मे होगा, उसका सस्कार पु सवनम् से प्रारम्भ होगा। गर्भाधान सस्कार से माता-पिता के शरीर से सम्बन्धित रज और वीर्य तो सस्कृत होगे, किन्तु बालक का शरीर इसके पश्चात् कहलायेगा। इस प्रकार सस्कारो के आधार पर आत्मा अपने अन्तःकरण के निर्मल हो जाने से स्वय को इतना शुद्ध समझता है कि सोलहवे-संन्यास सस्कार करने के पश्चात् अन्त.करण की शुद्धि अपेक्षित ही नही है। शुद्ध करने को वहाँ कुछ रह ही नही जाता।" "सन्यासी महात्माओं के हृदय भी सर्वथा शुद्ध तो नही होते, स्वामी जी ! वे भी उसकी शुद्धि के लिए प्रयत्न करते देखे जाते है" दूसरे ने पूछा। स्वामी जी ने कहा, "जब तक अशुद्धि विद्यमान है, तब तक सन्यास की दीक्षा नही लेनी चाहिए। उसे जप तप और सयम द्वारा ब्रह्म सम्बन्धी ब्राह्मण शरीर बनाना आवश्यक है। सन्यास मे दीक्षा का अधिकार ब्राह्मण का ही है।" भिक्षु ने पुन पूछा "यदि वह अपने को इस योग्य न बना सका तो मनुष्य जीवन मे चतुर्थ आश्रम उसका शेष रह जावेगा।" स्वामी जी ने उत्तर दिया—"रह जायेगा तो क्या है?" "फिर वैदिक चार आश्रमो की मान्यता नष्ट हो गयी?" स्वामी जी बोले "नष्ट कहाँ हुई ! जो इसके योग्य है, वह चारो से दीक्षित हो जाये। उसके लिए तो वह बनी हुई ही है। एव जो अपने को योग्य न बना सके, वह अन्य आश्रमों मे रहता हुआ योग्यता सम्पादन करें। किन्तु गृहस्थाश्रम से आवश्यकता हो तो वानप्रस्थ आश्रम अवश्य करे। भिक्षु फिर बोले—"पूर्ण वैराग्यवान् ब्रह्मचारी को भी मनुष्य सन्यास की दीक्षा से क्यो रोकते है ?" श्री स्वामी जी ने इसके प्रत्युत्तर मे कहा। "सच्चा सन्यासी तो इसलिए रोकता है कि अभी वह ससार के अनुभवो से हीन है और यदि दूसरो के जीवनो को देखते हुए वह अनुभव प्राप्त करता हुआ एव अपने को सब दोषो से बचाता हुआ निर्मल जीवन दीर्घ वय तक व्यतीत कर चुका है, तो उसे रोकने का किसे साहस है ! उसे तो रोकने के अतिरिक्त प्रेरणा ही दी जावेगी। तथा कोई गृहस्थ संन्यास-दीक्षा से उसे इसलिए रोकता है कि वह उसे अपनी ही तुला पर तोलता है। उसे क्या पता कि संस्कारो के भेद से परिणाम मे भेद होता है।"

एक तीसरे भिक्षु ने प्रश्न किया—"स्वप्न क्यो आते है ?" महाराज समझाने लगे "मनुष्य जैसे-जैसे कर्म करता चलता है, उसके सस्कार उस के चित्त पर अङ्कित होते रहते हैं—इस प्रकार अनेक जन्मों के सस्कारो से चित्त चित्रित है। इस चित्त को तीन अवस्थाओं मे क्रमशः रहना पड़ता है (१) जागरित, (२) स्वप्न और (३) सुषुप्ति। इन तीन अवस्थाओ में से दो अवस्थाएँ स्वप्न की है—प्रथम और दूसरी। प्रथम जागरित अवस्था मे भी मन बहुत दौडता फिरता है और दूसरी स्वप्न अवस्था मे भी। जागरित अवस्था के सङ्कल्पो को दिवा-स्वप्न कहेगे और अर्धसुप्त अवस्था के सङ्कल्पो को रात्रि-स्वप्न। ऐसे ही यदि कोई दिन मे अर्धसुप्तावस्था मे सङ्कल्पो मे पडा हुआ है, तो उसे भी दिवा स्वप्न कहेगे। इस प्रकार ये स्वप्न तीन अवस्थाओ मे हुए—दिन मे जागरित और अर्ध जागरित (अर्ध शयन) अवस्था मे एव रात्रि मे अर्ध-शयन अवस्था मे।" भिक्षु महोदय को इसी के बीच मे शङ्का हो उठी और झट से पूछा "स्वामी जी, जागरित अवस्था मे स्वप्न कैसे हो सकते हैं ?" महाराज ने कहा–"वह मानव जागते हुए भी स्वप्न मे ही है, जिस के विचार बिना लगाम के घोडे के सदृश अनियन्त्रित हैं, उस का मन दिन मे ठीक वैसे ही भागता रहता है, जैसे रात्रि-स्वप्न मे।" भिक्षु ने पूछा "इस का तात्पर्य तो यह हुआ कि मन के अनियन्त्रित होने से स्वप्न आते है, क्यो स्वामी जी ?" "हाँ बात ऐसी ही है।" "तो जब मन नियन्त्रित होगा, तब स्वप्न नही आवेगे ?" "नही ?" "किन्तु कभी-कभी चित्त निरन्तर एक ही वस्तु को देखता रहता है।" "रात्रि को तो वह भी स्वप्न ही कहलायेगा यह अवस्था तब होती है, जब चित्त किसी एक वस्तु मे एकाग्र रहता हुआ शयन की अवस्था मे पहुँच गया हो। उस समय वह चित्त उसी वस्तु मे निरन्तर बना रहेगा, भिन्न-भिन्न रूपो मे परिवर्तित नही होगा।" "और जब जागरित अवस्था मे सर्वथा एक विषय पर एकाग्र होगा उसको क्या कहेगे ?" भिक्षु ने फिर प्रश्न कर दिया। स्वामी जी ने उत्तर दिया "वह भी एक प्रकार से स्वप्न अवस्था ही है" भिक्षु जी तत्क्षण बोले, "फिर स्वप्न-रहित अवस्था कौन-सी है ?" "प्रगाढ निद्रा मे सो जाना अथवा चित्त का निरुद्ध अवस्था द्वारा समाधि मे पहुँच जाना। वस्तुत ये दो ही अवस्थाएँ अस्वप्न अवस्थाएँ है। "अस्वप्नेन कृणुत दीर्घमायु" यह जो वेद मन्त्र का अश है, वह इसी बात को घोषित करता है। प्रगाढ निद्रा से भी आयु बढ़ता है, किन्तु जो

समाधि अवस्था मे भी पहुँच जावे, उसके आयु का क्या ठिकाना।"
"पर, स्वामी जी !" भिक्षु जी ने कहा, "यह तो बडा कठिन है।"
स्वामी जी बोले, "इसलिए आयु भी किसी का नही वढ़ता। जो ऐसा करेंगे उनका वढ जायेगा, इस मे कोई सन्देह नही, यदि मध्य में कर्मफल भोग का बन्धन न आ खडा हो।"

"किन्तु स्वामी जी, रात्रि के समय तो स्वप्न मे आकृतियाँ आ जाती है, पर दिन मे नही।" इसके उत्तर मे महाराज ने कहा—"आकृतियाँ तो दिन हो वा रात हो दोनों समय मे ही समक्ष रहती है। दिन मे जिधर देखते हो, सब आकृतियाँ ही आकृतियाँ हैं और जब इन आँखों से न देख कर मन से किसी वस्तु का विचार करते हो, तो उसकी आकृति साथ-साथ आती रहती है, चाहे वह कितनी ही दूर क्यो न हो।" यह सुनकर भिक्षु जी एक विचित्र भूल भुलैय्या मे फँस गये। वे सद्य सँभल कर फिर बोले—"स्वामी जी ! रात को आकृतियाँ कैसे बनती हैं ?" "स्वामी जी भी योग द्वारा साक्षात् जानकारी के आधार पर उत्तर देने के लिए सुनते ही समुद्यत रहते थे, बोले—"चित्त जब आत्मा के सम्मुख रहता है, तो जड होते हुए भी वह आत्मा के चैतन्य से गतियुक्त हो जाता है। गति मे आ जाने पर उस पर जो संस्कार अङ्कित हुए-हुए होते है, वे संस्कार वस्तु के रूप मे आत्मा के समक्ष रहते हैं और आत्मा उन्हे प्रत्यक्ष देखता है। एव तत्तद् वस्तु के अनुरूप सुखी-दुःखी भयभीत और हर्षित होता है। सो दिन में भी यही अवस्था है, जैसा वस्तु अभिमुख होता है, उसी के अनुसार उस की चेष्टाएँ होती हैं। रात और दिन की दृष्टि से यह विषय समान ही है।" भिक्षु महोदय एक और शङ्का उपस्थित करते हुए बोले—"रात्रि को स्वप्न मे एक साथ अनेक वस्तु कैसे आ जाते हैं ?" स्वामी जी ने इस के प्रतिवचन मे कहा—"मन एक समय में एक ही ज्ञान आत्मा के सम्मुख उपस्थित करता है। उस को गति इतनी तीव्र है कि वह एक क्षण मे अनेक वस्तुओं मे घूम जाता है। उदाहरण के रूप मे—इसे ऐसे समझिए कि सौ कमल पत्रों मे से एक सूई हम निकालते है, वह सूई ऐसे लगती है, जैसे एक क्षण में ही पार हो गई, किन्तु यदि हम उस ओर सूक्ष्मता से देखें, तो हमे बोध होगा कि सूई उन सौ पत्तों मे क्रमशः एक-एक मे से चलती हुई सौवें पत्ते पर पहुँची है। इस प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि 'सौ क्षणो मे सूई सौ पत्तो मे से पार हो पाई और यदि इस क्रिया को किसी यन्त्र द्वारा किया जावे तो, इन सौ पत्तों मे और भी शीघ्रता से

सूई निकल जावेगी। अब अनुमान कीजिए, काल का यह कितना सूक्ष्म भाग हुआ। मन की गति इस से भी तीव्र है। अत उस की गति का अनुमान न लगने से ऐसा प्रतीत होता है कि दिन मे भी जितने वस्तु हम एक साथ देख रहे होते है, वे हम एक क्षण मे ही देखते हैं। वास्तव मे यहाँ भी यही समझना पडेगा कि जितने भी वस्तु दिखाई पड़ रहे है, मन उन मे से प्रत्येक पर क्रमश ही गया हुआ है। अब आप इस की तीव्र गति का अनुमान लगा सकते है। वास्तव मे 'युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्' इस न्याय सूत्र के अनुसार एक समय मे एक ही वस्तु दिखाई देगा, यदि हमारा अवधान ठीक हो। यह परिस्थिति आना कोई असम्भव नही है। परीक्षा देते समय अर्जुन को केवल चिडिया की आँख ही दीखती थी, जब कि दूसरे परीक्षार्थियो को भूमि, आकाश, वृक्ष, टहनियाँ, पत्तियाँ और सम्पूर्ण चिडिया दीख रही थी और लक्ष्य केवल अक्षिभेदन था। अत इस परीक्षा मे अर्जुन ही उत्तीर्ण हुआ। ऐसे ही लक्षण योगी पुरुष के हुआ करते है। इस लिए भगवान् द्रोण ने अपने ज्ञान देने का अधिकारी अर्जुन को ही समझा। वह ही उस उत्कृष्ट बोध को ग्रहण कर के कार्य रूप मे परिणत कर सकता था। अब आप इस उदाहरण से और पहले बताई युक्ति से समझ गए होगे कि मन पृथक्-पृथक् वस्तु को स्वप्न मे उपस्थित करता है; किन्तु प्रतीत एक साथ होता है। वह अन्य आकृतियो के साथ हमारे शरीर की आकृति भी उपस्थित करता है, तब ही तो हम उन वस्तुओ को एक टक ऐसे देखा करते है, मानो दिन मे ही देख रहे हो।" भिक्षुराज ने और शङ्का उपस्थित की कि दिन मे तो हम इन वस्तुओ को आँखों से देखते हैं, रात्रि को किस से देखते हैं? स्वामी जी बोले, "रात्रि मे भी आँखो से देखते है।" "कैसे?" "जब मन किसी वस्तु पर बाहर होता है तो इन्द्रिय बाहर की ओर गमन करता है और जब भीतर होता है, तो भीतर की ओर चल पड़ता है।" "किन्तु मन बाहर वस्तु पर होता है" भिक्षु ने पूछा, 'तो बाहर दिखाई देता है, भीतर किस पर होता है, जो दिखाई देता है? कही नदी दीखती है, कही पर्वत, कही सर्प, कही सिह। भीतर तो इन मे से कुछ भी नहीं होता और न पर्वत, नदी, जङ्गल, सिह आदि वस्तु थोडे स्थान मे समा ही सकते हैं?" स्वामी जी महाराज, जो योग विद्या मे अत्यन्त निष्णात थे बोले—"किसी वस्तु पर होता क्या है, यह एक ऐसा प्राकृतिक पदार्थ है, जो पिच्छल-सा है और उस मे सस्कार ही सस्कार भरे पडे हैं। आत्माभिमुख होते ही वह एक-एक सस्कार के वस्तु रूप मे स्वय बदल जाता

है। वस्तु और उस की तदाकारापत्ति होती है। जो वस्तु बाहर है, उन मे से जिस पर जाता है, उसी रूप मे हो जाता है, उस पर आँखों के भीतर से जाता हुआ प्रकाश जब पड़ता है, तो वह चमक उठता है, आत्मा उसी को देखता है। ठीक इसी प्रकार रात्रि मे पूर्व दृष्ट विषयो के संस्कारों के आधार पर वह तत्सम्बन्धि वस्तुओ मे ढल जाता है और इन्द्रियो का प्रकाश उस पर पड़ते ही बाहर की भाँति, भीतर भी आत्मा उसे यथार्थ देखता है।" "स्वामी जी ! इसे स्पष्ट कीजिए कि वह वस्तु रूप मे परिवर्तित कैसे हो जाता है ?" महाराज बोले, "देखो, हमारे समक्ष एक मोर नाच रहा है। जिस समय हम देख रहे हैं, उस समय मन और वह मोर एकाकार है। पृथक्-पृथक् प्रतीति नही है, यदि एक को पृथक् करोगे, तो द्वितीय लुप्त हो जायेगा। और यदि पीठ पीछे दूर देश के किसी वस्तु मे वह परिणत हो गया है, तो आँख के बिना पीछे का वह वस्तु भी दीखेगा (अनुभव होगा)। आँख खुले रहने पर भी सम्मुख नाचता हुआ मोर नहीं दीखेगा। अतः यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि चक्षु आदि गोलक शीशा मात्र है, जिस में से होकर भीतर से प्रकाश आता है । जब एक योगी अपने इन्द्रियो का परिष्कार कर लेता है, तो व्यापक इन्द्रिय के तत्वो से, जिनसे इन्द्रियों का निर्माण हुआ है, सम्बन्ध हो जाता है, उस समय उस के लिए दूर से दूर वस्तु का पता लगाना भी सहज हो जाता है। आत्मा अपनी शक्ति से सब कुछ देखता रहता है।" "अच्छा स्वामी जी, अब मन की गति, उसका दूर और निकट प्रदेश मे होना सङ्कल्पों के आधार पर तदाकारापन्न होना वा स्वप्न आना विषय तो समझ में आ गया है, अब कृपया यह समझाइये कि जिसे आप ने अस्वप्न अवस्था कहा था, वह समाधि और प्रगाढ सुषुप्ति कैसे सम्भव है ?" स्वामी जी ने समझाया "जहाँ आत्मा का निवास है, वहाँ ही मन का निवास है। जब मन आत्मा के सह स्थान मे हो जाता है तब सोते हुए प्रगाढ शयन और जागते हुए समाधि हो जाता है। यह समाधि, चित्त की निरुद्ध अवस्था का है। क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त और एकाग्र रूप पूर्व अवस्थाओ का नही। यहाँ मन आत्मा के ही अति निकट होने से उस के चैतन्य को ग्रहण नही कर पाता, अत. गति-रहित हो जाता है। दूसरे शब्दो मे यह भी कहा जा सकता है कि आत्मा जब अपना ईक्षण बन्द कर देता है, तब मन गति-रहित हो जाता है।" भिक्षु जी ने पूछा—"मन, आत्मा के सह स्थान मे भी होता है और दूसरे समय मे दूर भी होता है; उस में कोई वेद का प्रमाण भी है वा नही ?" स्वामी जी बोले, "है, देखो।

यजुर्वेद के ३४ वे अध्याय का प्रथम मन्त्र है—यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गम ज्योतिषा ज्योतिरेकं तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु ।। इस मन्त्र मे जाग्रत: शब्द आया है, जिस मे शतृ प्रत्यय है और षष्ठी विभक्ति है । अर्थ होता है—जागते हुए का। यह उस समय का वर्णन है, जब व्यक्ति शयन के पश्चात् उठने को होती है, सब व्यक्तियाँ इसे सूक्ष्म रूप से प्रत्यक्ष कर के देख सकती हैं, जब कि गाढ निद्रा से उठती है, तो उन्हे उन का मन 'दूरम्' आत्मा से दूर 'उत्' ऊर्ध्वम् ऊपर 'ऐति' आता है, ऐसा अनुभव होगा । आगे मन्त्र मे शब्द है 'दैवम्', वह दैव मन है । 'दैव' का अर्थ है—देव मे होने वाला । यहाँ देव से आत्मा ग्रहण किया गया है । अर्थ हो गया—आत्मा के साथ रहने वाला मन। शयन अवस्था से जागते समय उस से दूर को ऊपर की ओर आ जाता है । और वही मन (सुप्तस्य) सोये हुए का (तथैव) जिस प्रकार से वाहर की ओर आया था, ठीक उसी प्रकार से भीतर की ओर (एति) जाता है। इस अवस्था मे वह फिर आत्मा के साथ हो गया।" भिक्षु जी ने फिर पूछा, "ये दोनो किस स्थान मे रहते हैं इस मे वेद का कोई प्रमाण ?" स्वामी जी ने प्रतिवचन मे कहा—"इसी अध्याय का छठा मन्त्र है जिस मे 'हृत्प्रतिष्ठम्' यह शब्द आया है । मन का प्रकरण है अत अर्थ हुआ–हृदय मे रहने वाला मन। और आत्मा के लिए आता है 'हृत्सु क्रतुम्' यजु ४-३१, हृदयो मे आत्मा को स्थापित किया गया है । 'क्रतु' आत्मा का वाचक है 'ओ३म् क्रतो स्मर' यजु० ४०-१५, हे जोव, तू ओ३म् का स्मरण कर। इन प्रमाणों से दोनों का स्थान हृदय स्पष्ट है।" "आप के इन प्रमाणो से तो एक नवीन शङ्का ने और जन्म ले लिया और वह यह कि शरीर मे हृदय वहुत है, क्यों कि 'हृत्सु क्रतुम्' मे बहुवचन का प्रयोग आया है।" स्वामी जी ने उत्तर देते हुए कहा—"हाँ, एक से अधिक ही हैं। मनुष्य का आत्मा साधारण अवस्था मे छाती के हृदय मे रहता है और प्रगाढ सुषुप्ति अथवा पूर्ण योग की अवस्था मे मस्तिष्क के हृदय मे। उपनिषद् वचनो से भी दो हृदय होने का स्पष्ट आभास मिलता है बहुवचन छान्दस है।"

जीवन-चरित लिखा जावे

उन दिनो गुरुकुल के कूप निर्माण मे जब भिक्षु महोदय अपना योग दे रहे थे, तो आत्मभिक्षु थोड़ी विश्रान्ति के लिए वही महाराज के समक्ष एक ओर बैठ जाते थे। गुरुकुल भज्झर के आचार्य श्री भगवान् देव जी आत्मभिक्षु से यह कह आए थे कि स्वामी जी की

जीवन घटनाएँ चुप-चुप एकत्रित कर दो और उन्हें इस बात का आभास न होने पावे। अन्यथा वे बताने मे सङ्कोच करेगे और फिर जीवन घटनाएँ यथार्थ रूप में उपलब्ध न हो सकेगी। तभी से उन्होने यथा सम्भव घटनाओ का सङ्कलन प्रारम्भ कर दिया था और कुएँ पर महाराज के चरणो में उपस्थित हो कर भी बातो-बातो में उन से समस्त परिवार का परिचय, आरम्भ की शिक्षा-दीक्षा से आरम्भ कर बनारस का कार्य काल एव गुरुकुल पोठोहार रावल तक का सब जीवन-वृत्त प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा जान कर रात के दो-दो बजे तक लिख कर लिपिबद्ध कर लिया था। एव अग्रिम घटनाओ के लिए सचेष्ट रहने लगे थे।

वेदों के अध्ययनाध्यापन और उनके प्रचार की स्वोपज्ञता

वेदान्त दर्शन का पाठ कराते हुए स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने एक दिन अपने चिरपालित आन्तरिक अभिलाष को पुन. प्रकट किया और बोले, "वेदो की ओर प्रवृत्ति तब ही हो सकती है, जब कि आरम्भ से ही इस ओर ध्यान दिया जाये। जैसे लौकिक सस्कृत साहित्य को आरम्भ से ही पढाने की चेष्टा की जाती है, ठीक उसी प्रकार से चयन किए हुए कुछ वेद मन्त्र भी ब्रह्मचारियो को आरम्भ से ही पढाने आवश्यक है। जैसे विद्यार्थी लौकिक सस्कृत बोलने का अभ्यास करते है, वैसे उन्हे वैदिक भाषा मे सम्भाषण का अभ्यास भी करना चाहिए। प्राचीन काल में बोल-चाल की भाषा भी वेद भाषा ही थी ऋषि-प्रणीत कुछ ग्रन्थ हमें उसी वैदिक भाषा मे आज भी उपलब्ध हो रहे है। इसीलिए तत्कालीन व्यक्तियों को वेदो के समझने मे सरलता पड़ती थी।

वेद विषय मे प्रवृत्ति को जागरित करने के लिए मेरा यह विचार है; "मैं एक ऐसे दर्शन शास्त्र का निर्माण करू, जिसमे वेदो के आधार पर षड्दर्शनो का समन्वय हो, और उस शास्त्र का नाम 'वेद दर्शन' हो। यह दर्शन इस रूप से निर्माण करना चाहता हूँ, जो विश्वविद्यालयों की परीक्षा मे लग सके।" जो दर्शन हमे आज ऋषि-प्रणीत उपलब्ध हैं यद्यपि वे वेदानुकूल है, तथापि उनसे वेदो के अध्ययन की ओर विशेष प्रवृत्ति नही हो पाती। जैसे वे अपने-अपने विषयो का प्रतिपादन अपने-अपने ढग से करते हैं; वैसे ही 'वेद दर्शन' के सूत्र, वेद मन्त्रों के अश लेते हुए प्रणयन करूँगा और उन

सूत्रो का भाष्य सम्पूर्ण वेद-मन्त्र उपस्थित करते हुए करूँगा। इस से वेदो के प्रतिपाद्य विषय का परिबोध विद्यार्थियो को हो सकेगा और उनकी रुचि वेदो की ओर बढ सकेगी। वेद भगवान् का एक ऐसा निधि है, जिसको जानना मनुष्य के लिए आवश्यक है, उसमे भगवान् ने उतना ही ज्ञान भरा है, जितना मनुष्यो के लिए आवश्यक है। जब ऐसी बात है, तो उसको ओर प्रवृत्ति कराने एव उसे सुगम बनाने के उपाय खोज निकालना हम मनुष्यो का ही कर्त्तव्य रह जाता है।"

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने आत्मभिक्षु से कहा कि आप वेदो से आत्मा, मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार, इन्द्रिय, तन्मात्रा पृथिवी आदि पञ्चभूत-सम्बन्धित-मन्त्रो का चयन एव सङ्कलन आरम्भ कर दो और मैं 'वेददर्शन' के लिए सूत्रों का प्रणयन आरम्भ कर देता हूँ।†

जीवन में अनेक गुरु

श्री आत्मानन्द जी महाराज सन्यासी होते हुए भी अनेक वार ब्रह्मचारियो के साथ यज्ञशाला मे सन्ध्या-हवन के समय बैठा करते थे। एक दिन उन्हो ने हवन-समाप्ति के पश्चात् प्रात काल गुरुकुल विभाग के ब्रह्मचारियो को सम्बोधित करते हुए कहा—"बच्चो! तुम्हारे मे से बहुत से विद्यार्थियो मे बहुत सी बुराईयाँ आ चुकी है। कल ही कुछ विद्यार्थियो के चुराए गये प्रेष-पत्त्रक+ पकडे गये। यद्यपि वे अधिक मूल्य के न हो कर पचास-साठ पैसे के ही थे। तुम समझते होगे यह कोई अधिक चोरी नही है, किन्तु यदि तुमने इस चोरी को नही छोडा, तो कालान्तर, मे यह इतना भयङ्कर रूप धारण कर के तुम्हारे सम्मुख उपस्थित होगी, जिसके कारण तुम्हे कही भी ससार मे ठहरने के लिए स्थान नही मिलेगा। कोई भी सभ्य व्यक्ति तुम्हारा आदर नही करेगी। अत सबसे प्रथम और मुख्य वस्तु कोई है, तो वह है आचार। विद्या का स्थान दूसरी कोटी पर है। यह देखा गया है कि कम पढे

---

†इस 'वेददर्शन' के प्रणयन के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिया गया था। स्वामी जी ने तद्विषयक बाईस सूत्र बनाए भी थे। फिर उन्हे कुछ और दूसरे कार्य लग गए, क्योकि सस्था का सारा उत्तरदायित्व उन्ही पर था। वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर मे वे सूत्र चिर काल तक देखे गए, किन्तु अपने लोगो की असावधानता के कारण ही वे कही विलुप्त हो गए।

+पोस्ट कार्ड।

लिखे मनुष्य आचारवान् होते हुए संसार मे आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं और आचार-हीन बडे से बड़ा विद्वान् भी ठोकरे खाता फिरता है। विद्वत्ता का निखार आचार से ही होता है। आचार बहुत व्यापक शब्द है। वह महापुरुषो महात्माओ और योगिजनो के रहन-सहन, बोल-चाल से सम्बन्ध रखता है। जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन्हो ने किसी भी उत्तम कार्य को, चाहे वह संसार की दृष्टि से कितना भी हेय हो, करने मे हिचक नही की। इसलिए यदि आचार के किसी भी अंश में त्रुटि हो, तो उसे परिश्रम एव पुरुषार्थ से दूर करो। आचार की यदि कोई शिक्षा देने वाले है, तो वे गुरु है। मनुष्यत्व को यदि तुमने कही से सीखना है, तो वह गुरुओं से सीखना है। इस छोटी अवस्था मे जब कि तुम्हे कुछ पता ही नही, तुम्हारी जीवन नौका खेने वाले तुम्हारे गुरुजन ही है। वे ही तुम्हे सभ्य समाज में बैठने के योग्य बनाएँगे, अतः उनकी एक-एक बात का, एक-एक अक्षर का पालन अति विनय और प्रेम से करो, तुम्हारी सुधार की बाते तुम्हारे गुरुजन तुम्हे प्रतिदिन बतलाते हैं। फिर भी तुम्हारे जीवन मे परिवर्तन न होने का मुख्य कारण यही है कि तुम अपने दुर्गु णों पर ध्यान नही देते। यदि तुम सन्ध्या हवन के मन्त्रार्थ पर ध्यान देओ, तो तुम्हारे जीवन नित्य प्रति उन्नति-शील होने लगे। मैंने सुना है, तुम्हे बतलाया गया है कि गुरु एक ही होता है, यह बात सर्वथा असत्य है। प्रारम्भ काल मे एक अक्षर सिखाने वाला भी तुम्हारा गुरु है, उसका भी तुम्हे उतना ही सम्मान करना चाहिए, जितना एक बडे विद्वान् का। आरम्भ के गुरु लोग ही तो तुम्हे बडे विद्वानों के समीप पहुँचने योग्य बनाते है। यदि वे न हो तो तुम सर्वथा मूर्ख रह जाओ। इसी लिए उनका स्थान भी बहुत ऊँचा है। उन को आदर से नमस्कार करो। उनके चरण स्पर्श करो। उनके चरणो मे रह कर विनय भाव से विद्या एव सदाचार का ग्रहण करो। विधिपूर्वक नमस्कार करना आदि तो बाह्य वस्तु है। तुम्हे तो इन सब गुरुओं की, कसे हुए अन्तः करण से सेवा करनी चाहिए। जो तुम्हारे जीवन को उन्नत अवस्था मे पहुँचाने के लिए अहर्निश प्रयत्न करते है। रात्रि मे भी अपनी अपेक्षा करते हुए, तुम्हारे सुधार का ही विचार-विनिमय करते रहते है, उनके सम्मुख तुम्हे अपने आचार के किसी भी अश की त्रुटि के रखने मे यत्किञ्चित् भी सङ्कोच नही करना चाहिए, तभी वे उस त्रुटि के निवारणार्थ तुम्हे साधन बता सकते हैं। अन्यथा उनके उपदेश सब के हित की दृष्टि से सामान्य होते है। जो अध्यापक गुरुकुल से कुछ द्रव्य न लेते हुए तुम्हे उन्नत

बनाने की ही चिन्ता मे रत हैं, उनका तो तुम्हे और भी अधिक ध्यान रखना चाहिए । उनमे अपनी अत्यधिक कृतज्ञता प्रकट करो। उनके इस कार्य को महत्त्व का स्थान दो। यह तुम्हारी अवस्था अधिक मूल्यवती है। इस मे यदि चूकोगे, तो अन्त मे तुम्हे बहुत पछताना पडेगा।"

भिक्षु मण्डल मे दीक्षित करने के लिए प्रथम से संन्यास आश्रम मे दीक्षित महानुभावो को पुन दीक्षा नही दी जाती थी, और वे विना संस्कार के ही दयानन्द भिक्षु समझ लिए जाते थे। ऐसे भिक्षुओ मे से श्री स्वामी सदानन्द जी ने एक दिन महाराज से निवेदन किया—"यह बात गले नही उतरती कि जब ऐसे भी वाक्य मिलते हैं—"न प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोपि प्रवर्तते' बिना प्रयोजन के एक थोड़ी बुद्धि वाली व्यक्ति भी किसी कार्य मे प्रवृत्त नही होती है, तब निष्काम कर्म किस प्रकार से किए जा सकते है ? निष्काम कर्म करने के प्रतिपादक भी बहुत से स्थल ग्रन्थो मे उपलब्ध होते हैं, 'गीता' तो सारी ही निष्काम की प्रेरक है। अत यह मन्तव्य भी मानने योग्य ही है। इस उभयवाद पर प्रकाश डालने की कृपा कीजिए, जिससे एक निश्चय हो सके, और अपने जीवन पथ को प्रशस्त किया जा सके।"

"अधिकारी भेद से ये दोनो ही बाते अपने-अपने क्षेत्र तक सीमित हैं। 'न प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोपि प्रवर्तते" उन लोगो के लिए है, जो रजोगुण मे वर्तमान है, जिन्हे इस चराचर जगत् मे राग है, जिनकी इच्छाएँ अभी शान्त नही हुई है, जिन्होने अभी सत्त्वगुण के दर्शन नही किये है, वे ही प्राय यह कहते देखे जाते है कि निष्काम कर्म कैसे सम्भव हैं ' पढने लिखने से ये बाते सम्बन्ध नही रखती। पठित और अपठित ये दोनो ही इन बातो मे समान है। पठित व्यक्ति भी जब तक अपने भीतर के रागद्वेष आदि को समाप्त नही करेगी, तब तक उससे भी निष्काम कर्म नही बन सकते, एव कोई निष्काम हो भी सकती है वा ये ऐसे ही थोथी बाते हैं, ऐसे संशयच्छेदि-बोध की झलक उन्हे आ भी नही सकती। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने प्रयत्नो से राग से किनारा करे। रजोगुण के निकल जाने से, और तमोगुण के तो इस से भी पहले निकल जाने से दोनो के अभाव अर्थात् बहुत ही कम विद्यमानता मे सत्त्वगुण निखर आता है। सत्त्वगुण के आलोक मे उसे एक ऐसा ज्ञान उपलब्ध होता है, जो मनुष्य को समदर्शी बना देता है, अपने और पराए उसके लिए समान हो जाते है।

यही नही, मानवातिरिक्त अन्य जीव जन्तु भी उसकी दृष्टि मे एक-से होते है, वह किसी से घृणा नही करता। सब पर दया भाव दर्शाता है। किसी को दुत्कारता नही। उसके समीप पठित आ जाए, तो उसके सम्मान मे विशेष उत्सुकता प्रकट नही करता, और अपठित आ जाए तो उससे भी अत्यन्त प्रेम से बोलता है। वह तो सीधा आत्मा-से आत्मा का सम्बन्ध जोडता है, शरीरो से उसे कोई प्रयोजन नही होता।"

"क्या ऐसी स्थिति सम्भव है ?" "सम्भव है तब ही यह कहा जा रहा है।" "इसका कोई सरल उपाय भी है ?" "हाँ, उपाय प्रत्येक समस्या के होते है, इसके लिए यह आवश्यक है, कि व्यक्ति अपने जीवन मे से एक-एक दोष चुन-चुन कर निकाले सब दोषो के निकल जाने पर उसकी प्रवृत्ति वेदानुकूल हो जायेगी। गृहस्थ जीवन मे रहते हुए उसका जीवन उन व्यक्तियो मे आदर्श होगा, जिनके समीप वह अपना आसन जमाए हुए है। अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए उसकी चेष्टा न्याय पर आधारित होगी, वह कष्ट सहने को तत्पर होगा, किन्तु दूसरे के अधिकार को छीनने की चेष्टा कभी न करेगा। निरन्तर ऐसा करते रहने से उसके जीवन मे उसे एक ऐसी विशिष्ट शक्ति का हाथ दिखाई देगा, जो उसके आत्मा से भिन्न है, जो कठिन से कठिन अवसरो मे भी उसके परिवार का भरण-पोपण दुख और सुख से चलते रहने का अनुभव करा देगी। ऐसी ही स्थिति वह दूसरे परिवारो पर भी अनुभव करेगा। वह किसी के सरक्षण मे किसी व्यक्ति विशेष का हाथ है, ऐसा अनुभव नही करेगा, अपितु किसी अन्य शक्ति पर ही अवलम्बित होगा, जो इस ससार के चक्र को अनवरत चला रही है। उस शक्ति को पारदर्शी-तत्त्ववेत्ता महानुभाव ईश्वर कहते है। जब मनुष्य की यहाँ तक स्थिति आ जाती है, तो वह स्व-पर का भेद समाप्त करके समदर्शी हो जाता है। इसी का नाम ज्ञान है, इस से पहले पढे लिखे भी अज्ञानी ही कहलाएँगे। जीवन मे समदर्शी भाव न आने से केवल वे पुस्तकीय ज्ञान के भारवाही ही हैं। इस से अच्छे तो वे मानव होंगे, जो पढ़े लिखे न हो कर भी सदाचार मे वहुत आगे पग रख चुके है। जिनमें शान्ति है, निरभिमान है। समदर्शी भाव है।

"तो फिर पढना लिखना व्यर्थ है ?" "व्यर्थ तो नही, अपने पठित वोध के अनुसार यदि वह अपने जीवन का निर्माण करता चले, तो उसे अपना पथ स्पप्ट प्रशस्त प्रतीत होने लगता है, जोवन की अनुभूतियो से उसके पुस्तकोय वोध में एकता हो जाती है, जव ऐसा हो

जाता है, तो उसे आर्ष ग्रन्थो मे अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है, और उन आर्ष ग्रन्थो के आधार पर वह अपना मार्ग शीघ्र अन्वेषण करने मे समर्थ हो जाता है। उसका जीवन आर्ष पद्धति से अति द्रुत गति से चमकना प्रारम्भ हो जाता है। वह आनन्द विभोर हो जाता है। अन्त. करण मे विशेष दया भाव जागरित हो जाता है। वह दु खी प्राणी को अपनी आँखो देख नही सकता। अत वह कार्य मे स्वय प्रवृत्त न होता हुआ भी बलात् इव प्रवृत्त-सा स्वय को देखता है और उसकी उस प्रवृत्ति से लोगो का कल्याण होता है। इसी का नाम है, बिना प्रयोजन के कर्म मे प्रवृत्ति। दूसरे शब्दो मे उसकी चेष्टा और समस्त क्रिया कलाप का स्वयं के लिए नही होना। निष्पक्ष और एक स्तर पर, सभी के लिए समान होना। इसी का नाम है—निष्काम कर्म।"

"क्या इस निष्काम का उपदेश वेदो मे भी है ?" "हाँ है", "कहाँ है ?" "इसके उत्तर के लिए हमे कर्मकाण्ड के प्रमुख वेद 'यजुर्वेद' की शरण में जाना पडेगा। यत यह ऊँचा वस्तु है, अतः इसके लिए प्रमाण भो हमे यजुर्वेद के चालोसवे अध्याय मे उपलब्ध होता है, जो अन्तिम है। मन्त्र दूसरा है—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।" इस मन्त्र मे जो 'एव' पद है वह निष्काम कर्म की प्रेरणा दे रहा है कि सौ. वर्ष तक कर्म करता हुआ ही जीने की इच्छा करे। फल की ओर तनिक भी न देखे।

भिक्षु मण्डल के उपनियम

अनेक बातो को दृष्टिगत रखते हुए महाराज ने-"भिक्षु मण्डल के उपनियम" निम्न रूप से निर्धारित किए :—

(१) भिक्षु मण्डल के प्रत्येक भिक्षु को परस्पर प्रेम पूर्वक व्यवहार करना होगा।

(२) कोई भिक्षु किसी के समक्ष अथवा परोक्ष मे किसी भिक्षु की निन्दा न कर सकेगा।

(३) कोई भिक्षु किसी भिक्षु पर किसी प्रकार का आक्षेप न कर सकेगा।

(४) प्रत्येक भिक्षु को परस्पर अथवा दूसरों से व्यवहार करने में आप "और जी" आदि आदर सूचक शब्दो का प्रयोग करना चाहिए।

(५) यदि कोई भिक्षु किसी भिक्षु के साथ अनुचित व्यवहार करे तो वह उसे कुछ न कह कर उसकी सूचना अधिकारी को देवे। परन्तु यदि उसके उत्तर मे उस ने भी उस से वैसा ही व्यवहार किया, तो दोनो समान दण्ड के भागी होंगे।

(६) सब भिक्षु परस्पर पाठ विचारने के अतिरिक्त समय मे अपने-अपने स्थानो पर बैठ कर स्वाध्याय करे, व्यर्थ वार्तालाप मे समय नष्ट न करे।

(७) भोजन शाला मे प्रातराश और दोनो समय के भोजन के समय मौन रहना होगा। किसी वस्तु की इच्छा का प्रदर्शन हाथ की चेष्टाओ से किया जा सकता है।

(८) दोनो समय के सन्ध्या और अग्निहोत्र मे ब्रह्मचारी तथा वानप्रस्थ, सब भिक्षुओ को उपस्थित होना होगा। संन्यासी भिक्षु भी उस समय एकान्त मे आत्म चिन्तन कर रहे होगे। उस समय कोई इधर-उधर न फिर रहा होगा।

(९) जिस भिक्षु को किसी कार्य मे नियुक्त किया गया है, उसके कार्य-क्रम और उसकी योजनाओ मे कोई भिक्षु हस्त-क्षेप न करेगा। वह अपनी किसी भी अरुचि की सूचना अधिकारी को दे सकता है।

(१०) सन्ध्या अग्निहोत्र के समय नियुक्ति के अनुसार जो भिक्षु किसी कार्य मे लगे होगे अथवा जिन्होने कार्यवश आज्ञा प्राप्त कर ली होगी वे कुछ आगे—पीछे अन्यत्र भी नित्य नियम कर सकेगे।

(११) अधिक अपनी रुचि के अनुसार और न्यून से न्यून एक घण्टा आश्रम का कोई कार्य नियुक्ति अनुसार प्रत्येक भिक्षु को अवश्य प्रतिदिन करना होगा।

(१२) नियुक्ति के अनुसार कार्य न करने और त्रुटि करने पर भी कोई भिक्षु किसी भिक्षु को सीधा कुछ न कह सकेगा। वह उसकी सूचना अधिकारी को दे सकता है। उसके पश्चात् उसके औचित्य अथवा अनौचित्य की परीक्षा कर उसका प्रवन्ध करना अधिकारी का काम है।

(१३) किसी को गाली देना, असभ्यता का व्यवहार करना अथवा किसी प्रकार का अपशब्द कहना आश्रम की सभ्यता के विरुद्ध समझा जावेगा। नियम भङ्ग करने पर दो वार अन्य दण्ड होगे और

तीसरी वार अनुशासन की व्यवस्था को ठीक रखने के लिए वहिष्कार का दण्ड होगा।"

ब्रह्मचारी के लिए तैल-मर्दन का निषेध

श्री कर्मभिक्षु के यह पूछने पर कि महर्षिदयानन्द ने सस्कार विधि मे ब्रह्मचारियो के लिए तैल मर्दन का निषेध किया है, किन्तु आयुर्वेद के ग्रन्थो मे तैलमर्दन बहुत प्रशस्त बताया गया है, इन दोनों का समन्वय कैसे होगा ? महाराज ने उत्तर मे कहा—"जो वस्तु दूसरों के लिए आवश्यक वा हित प्रद है, वे ब्रह्मचारी के लिए भी हो, यह कोई आवश्यक नही है।" महर्षि दयानन्द प्रत्येक विषय के पारगामी थे, जो कुछ उन्होने ब्रह्मचारियो के लिए उनके पितृमुख से कहलवाया हैं उसमे सर्वथा यथार्थता को लिए हुए उनकी परम हितैषिणी बुद्धि कार्य कर रही थी।

सोलह वर्ष के वय से बालक के शरीर का निर्माण आन्तरिक विचित्र साँचे मे होना आरम्भ होता है। यह वह अवस्था है, जब से शरीर का विशिष्ट अन्तिम धातु, जिसके सरक्षण से बालक ब्रह्मचारी कहलाने का अधिकार रखता है, को अत्यन्त उपयोगी बनाने का कार्य उसके सम्मुख उपस्थित होता है। यह ऐसी अवस्था है कि इस समय यदि बालक को न सँभाला गया, अथवा वह न सँभल सका, तो उसके परिणाम समय से पूर्व ही, शरीर मे किसी-न किसी रोग के प्रस्फुटित होने के रूप मे प्रतीत होने लगेगे। इसका अनुभव बाहर से दूसरो को कुछ समय तक भले ही न हो, पर उस बालक को होना अवश्य प्रारम्भ हो जायेगा।

इस अवस्था से इस अन्तिम धातु की ऐसी गति प्रारम्भ हो जाती है, जो शरीर को नारकीय भी बना सकती है और स्वर्गीय भी। इस धातु का सरक्षण न कर सकना भविष्यत् मे कष्टो के समूह को आमन्त्रित करना है और रक्षा कर लेना दिव्य आनन्द भोगना है। यह रक्षा कठोर तप माँगती है, और वह तप महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मचारियो के लिए निर्दिष्ट कर दिया है, उनमे से प्रत्येक का पालन अनिवार्य हैं।

अब रही बात यह—कि तैल-मर्दन-निषेध से महर्षिदयानन्द, ब्रह्मचर्य सरक्षण को कैसे समन्वित करते हैं ? इसके उत्तर मे योगियो पर यह बात स्पष्ट है कि तैल-मर्दन से नाड़ियो मे चिकनाहट पहुँच जाने पर

प्राणायाम द्वारा प्राण-सञ्चालन मे बाधा उपस्थित होती है। जब तक प्राण का सञ्चालन सुचारु रूप से न हो, ब्रह्मचारी के ऊर्ध्वरेता. बनने मे रुकावट पड़ती है। प्राण ही है, जो उस शक्ति को उठा कर ऊपर मस्तिष्क मे ले जाते है, वह शक्ति वहाँ पहुँच कर ज्ञान का विस्तार करती है। ब्रह्मचारी कितना भी पढ़े, पढता हुआ कभी थकता नहीं। उसके मस्तिष्क मे कभी पीड़ा नही होती। गहन-से गहन विषय को शीघ्र समझ लेता है। साथ ही साथ धारणावती मेधा बुद्धि का निर्माण भी प्रारम्भ हो जाता है। यदि ब्रह्मचारी इस विधि का आश्रय न ले सका, तो १६ वर्ष की अवस्था से २५ वर्ष की अवस्था तक बनने वाला उसके शरीर का आन्तरिक ढाँचा जो उसे २५ वर्ष के वय के पश्चात् ऊर्ध्वरेताः बनने मे अत्यन्त सहायक है, न बन सकेगा। ब्रह्मचर्य-सरक्षण की साधिकाएँ, पूर्व-पूर्व क्रियाएँ उत्तरोत्तर क्रियाओ की साधिकाएँ है और वे अन्त में ब्रह्म की प्राप्ति करा देती हैं। ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य की पराकाष्ठा ही ब्रह्म प्राप्ति है।"

उस समय जब कि दो तीन भिक्षु महाराज के चरणो मे बैठे अपनी शङ्काओं का समाधान करा रहे थे, एक दीखने मे साधारण-सा साधु आया और महाराज को अभिवादन करके शान्त बैठ गया। ग्रीष्म ऋतु मे सूर्यास्त के पश्चात् ६ बजे का समय था। सब भोजन कर चुके थे। महाराज ने उस से भोजन के लिए पूछा। प्रत्युत्तर मे वह महाराज से बोला—"भोजन तो मेरे साथ बँधा है, दो रोटियाँ मोटी-मोटी है, वे पर्याप्त हैं और आवश्यकता नही है।" स्वामी जी ने कहा—"जो आप के समीप हैं, वे देर की हो गई होगी, प्रत्यग्र भोजन उपस्थित है, अत उन्हे न खाएँ।" वह अत्यन्त श्रद्धा से बोला—"आपकी कृपा है, मैं इन्हे ही खा लूँगा, बिगडी नही है।"

वह बहुत देर तक, महाराज द्वारा किए जाते समाधानो को भिक्षुओ के मध्य बैठा सुनता रहा। जब बहुत समय हो गया, तो स्वामी जी से उसने बाहर यज्ञशाला मे सो जाने की अनुमति माँगी। स्वामी जी ने अतिथि सेवक को बुला कर उसके लिए वस्त्र आदि के प्रबन्ध के लिए कहा, तो वह बोला—"महाराज, मुझे और वस्त्र की आवश्यकता नही है। मेरे समीप यह चादर है जो पर्याप्त है।"

जब वह शयन करने चला गया, तो स्वामी जी ने भिक्षुओं से कहा—"यह साधु पहुँचा हुआ है।"

मनकेरा मठाधीश श्री रामनारायण शास्त्री

श्री रामनारायण शास्त्री जो मनकेरा पौराणिक गद्दी के मठाधीश थे, स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की विश्रुति सुनकर श्री चरणो मे उपस्थित हुए और कहा "मैंने आर्यसमाज के पुस्तको का अध्ययन किया था, उनके अध्ययन से ज्ञात हुआ कि मनुष्य जीवन जो इतना दुर्लभ है, उसे हम कितने प्रयत्न के साथ विनष्ट कर रहे हैं और मनुष्योचित कार्य जिन से मनुष्यो का असीम उत्थान सम्भव है, उनकी हम उतनी ही अवहेलना कर रहे है। यदि समय पर सचेत नही हुए तो यह गहरी खाई कभी पाटी नही जा सकेगी। इन प्रशस्त भावनाओ ने मुझे उद्वेलित कर दिया और मैं अपनी गद्दी दूसरो को समर्पण करके चल निकला। किन्तु कहाँ जाना है, और अपना मनुष्योन्नति का कार्य कैसे प्रारम्भ करना है, इस की मुझे विवेकशालिनी बुद्धि न थी। अन्त मे यह निश्चय किया कि बिना गुरु के ईश्वर और ऋषियो का ज्ञान-सम्पादन करना सम्भव नही है, मै गुरु की अन्वेषणा मे निरन्तर लगा हुआ हूँ। इसके लिए मेरे पाँच वर्ष व्यतीत हो गए। इधर-उधर सुन सुना कर अब आप के शरण मे पहुँच पाया हूँ।"

मनकेरा मठाधीश श्री रामनारायण शास्त्री यत सनातनी गद्दी से श्री चरणो मे उपस्थित हुए थे, अत उनका हृदय श्रद्धा भक्ति के उद्रेक से अति तरङ्गित था। वे स्वामी जी की मोहनी मूर्ति निरन्तर निहारते रहते और शान्त भाव से महाराज के चरणो मे बैठे रहते थे। रात्रि के समय जब महाराज को नीद सताने लगती, तब वहाँ से उठते। यह उनका नित्य का क्रम था। वे स्वामी जी को भगवान् के रूप मे देखते थे और वार्तालाप के समय कोई शब्द मुख से ऐसा न निकल जाये, जो उनको अप्रिय प्रतीत हो, इसका वे बहुत ध्यान रखते थे। सनातन मन्दिरो मे भगवान् की मूर्त्ति के सम्मुख उपस्थित हो कर जैसे उनकी स्तुति करते रहना तथा निरन्तर अपनी दृष्टि उसी पर जमाए रखना अभीष्ट होता है, उसी शैली का अनुसरण शास्त्री जी ने महाराज के प्रति किया। वे कहते थे—"वहाँ इतना भय नही था, जितना उन्हे यहाँ श्री चरणो मे आ कर प्रतीत हुआ। उस भगवान् की मूर्त्ति के समक्ष तो यदि बाल बुद्धि वशात् कोई अनुचित बात मुख से निकल भी जाये, तो वह उसका उत्तर नही देती थी; पर यहाँ तो साक्षात् चेतन भगवान् विराजमान हैं, मुख से कुछ निकलने की ही देर है कि उत्तर तत्क्षण

विद्यमान है।" "अतः वे प्राय. महाराज के समक्ष शान्त मुद्रा मे बैठे रहते थे और कहा करते थे, "इनके सम्मुख मुख खोलने का भी साहस नही होता। बहुत-सी बाते पूछने के लिए महाराज के समक्ष उपस्थित होता हूँ, पर वहाँ बैठते ही ऐसा परदा पड़ता है कि सब भूल जाता हूँ।"

कुछ दिन पश्चात् वे स्वामी जी से संन्यास की दीक्षा लेने के लिए आतुर हो उठे। किन्तु महाराज ने इस कार्य मे शीघ्रता न करने का सुझाव दिया। दो मास इसी प्रकार निकल गए। अन्त मे वे दूसरो से निवेदन कराने लगे और उनकी दीक्ष का दिन ४ अगस्त १६४६ निश्चित कर दिया गया। नियत दिन पर प्रात: यज्ञ वेदि के चारो ओर सब भिक्षु उपस्थित थे। मन्त्र-ध्वनि के मध्य मनकेरा मठाधीश श्री राम-नारायण शास्त्री का सस्कार प्रारम्भ हो गया। विधिपूर्वक उन्हे वस्त्र दे दिए गए। जब नाम परिवर्तन का समय उपस्थित हुआ, तो स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने उपस्थित सब सज्जनो से कहा कि बताओ, इनका क्या नाम रख दे? सब ने अपने-अपने सुझाव दिए। अन्त मे महाराज ने उनके सम्मुख आसीन आत्मभिक्षु से अकस्मात् कहा— "क्या रख दे?" आत्मभिक्षु के मुख से उसी क्षरण उत्तर निकला "विज्ञानानन्द" स्वामी जी ने कहा यह तो मैंने सोचा था। शास्त्री जी का वही नाम रख दिया गया। इस क्रिया मे निम्न बातें उल्लेखनीय हैं—

(१)महाराज के पूछने से पूर्व आत्मभिक्षु का इस नाम पर कोई ध्यान नही था।

(२) आत्मभिक्षु ने पूछने से पूर्व तक विचारानन्द, योगानन्द, ध्यानानन्द नाम सोचे थे, जिन्हे अभी प्रकाशित नहीं किया गया था।

(३) आत्मभिक्षु के मुख से अकस्मात् जो ध्वनि निकला, वह था— 'विग्यानानन्द' वे 'ज्ञ' इस अक्षर को 'ग्यें' कभी नही बोलते थे। 'ज्ञ' बोलते थे।

(४) यदि उनका यह नाम पूर्वतः विचारा हुआ होता, तो मुख से ध्वनि निकलता "विज्ञानानन्द।"

(५) स्वामी जी का अभ्यास बनारस में पढे होने के कारण एव पहले सनातन धर्म से सम्बन्ध रखने की दृष्टि से 'ज्ञ' का नही था 'ग्यें' का था।

(६) स्वामी जी ने अपना निर्धारित नाम 'विज्ञानानन्द' आत्मभिक्षु के मुख से 'विग्यांनानन्द' इस ध्वनि से बुलवा दिया। यह एक आश्चर्यजनक घटना हुई।

(७) इस घटना से यह निश्चय हुआ कि एक का ज्ञान दूसरे में सङ्क्रान्त हो सकता है।

(८) आत्मभिक्षु ने महाराज से अनेक वार पहले पूछा था कि ईश्वर के वेदज्ञान का प्रकाश जो चार ऋषियों पर माना जाता है, उसका विधि क्या है ? महाराज ने प्रत्येक वार समझाने की चेष्टा की थी, किन्तु यह वात उनकी समझ मे न बैठ सकी कि निराकार ईश्वर किस प्रकार से शरीरधारी चार महर्षियो को अपना वेद बोध प्रदान करता है और वह सब ईश्वर का ही होता है, ऋषियो की उसमे कोई भी अपनी विचार धारा नही होती।

(९) इस घटना से, उस दिन के पश्चात् आत्मभिक्षु को यह दृढ़ निश्चय हो गया कि ईश्वर तो है ही। वह अपने पूर्णज्ञान को ध्वनि, अक्षर, पद, स्वर और छन्द सहित अविकल रूप मे याथातथ्य देता है। उसमे उन महर्षियो का अपना कुछ भी नही होता। अत. वेद ईश्वर-ज्ञान ही है, ऋषियो का नही।

दो दिन पश्चात् आत्मभिक्षु ने घटित इस घटना का विश्लेषण महाराज से कराया, तो महाराज बोले—"जब कभी अन्त:करण सर्वथा निर्मल सत्त्व प्रधान होता है, ऐसी घटनाएँ हो जाती है।"

श्री स्वामी जी के इस उत्तर से आत्मभिक्षु ने निश्चय कर लिया कि आदि सृष्टि मे जो अग्नि आदि चार महर्षि सबसे योग्य होते है, उनका अन्त करण निरन्तर सत्त्वगुण से प्रकाशित रहता है, उनमें तमोगुण और रजोगुण लेशमात्र भी नही होते। जैसे स्वच्छ दर्पण मे से किरण पार हो जाते हैं, ठीक ऐसे ही स्वच्छ अन्त करण मे ईश्वर का ज्ञान झलकता रहता है। भगवान् से उन महर्षियों का तादात्म्य सम्बन्ध रहता है। भगवान् ज्ञान रूप ही है; अत. वे भी उस ज्ञान में डूबे रहते हैं।

ये सब मेरे हो आश्रित हैं

श्री स्वामी जी की रुग्णावस्था मे यदि कोई भक्त उन से यह कह देता था कि स्वामी जी, थोड़े दिन विश्राम कर लीजिए, स्वास्थ्य सुधरने दीजिए। इस अस्वस्थ अवस्था मे आप का यह अध्यापन-कार्य आप

के जीवन को सङ्कट में डाल देगा, तो वे उन्हे उत्तर में कहते—"ये सब लोग मेरे आश्रय पर आए हुए है, अच्छा है—इनका कुछ बन जाये। यदि यह कार्य करते हुए प्राणो की आशङ्का भी होती है, तो होने दीजिए, हम कोई दुष्कर्म तो कर नही रहे।"

विद्वद्वर्य श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के शिष्य सत्यप्रिय जी 'व्रती' महाराज के चरणो मे लाहौर से यह देखने आए कि इधर-उधर से जाने वाले सभी विद्यार्थी स्वामी आत्मानन्द जी के समीप जाकर कैसे समा जाते हैं? वे कई दिनों तक यह निरीक्षण कर के और अपनी शङ्काओ का समाधान पाकर वहाँ से पीछे लौट आए।

एक दिन लाहौर से एक सज्जन का पत्र आया, जिस में उस ने स्वामी जी से निवेदन किया "मैं ने कई बार आप के उपदेश सुने, जिन से मेरी कई समस्याएँ सुलझ गईं। मेरा कुछ दिनो तक आप के चरणो मे भी रहने का विचार है। अस्तु—यह तो कभी फिर ही हो सकेगा। इस समय तो मैं एक विपदा म पड़ा हुआ हूँ। कृपया कुछ उपदेश देकर मेरे आत्मा को शान्त करे। मेरे सहवासियो की पहले बड़ी ही दयनीय अवस्था थी। मै ने उन्हे दया का पात्र समझते हुए तन-मन-धन से अपनी शक्ति से भी कही अधिक उन्हे सहायता पहुँचाई। अब वे सभी सुख शान्ति से रहने योग्य हो जाने पर मेरे विरोधी बन गए हैं। अब मैं उन्हें बहुत समझाता हूँ, कुछ भी नही सुनते। सभी बातो को अनसुनी कर देते है। ऐसी अवस्था मे मैं क्या करूँ?"

महाराज ने जो अन्तर आत्मा से यथार्थ उत्तर देते थे, उन की समस्या के समाधान मे निम्न उत्तर लिख भेजा—

"घबराओ नही! घबराने की इस में बात ही क्या है। आप ने तो अपने भीतर धधकते हुए अग्नि को शान्त करना चाहा था, जिस के वशीभूत हुए आप इन के इस कार्य मे प्रवृत्त हुए। यदि आप इस कार्य को न कर के चुप-चाप भी बैठे रहते, तो यह भावना उग्र रूप ही धारण करती। इस लिए आप ने अपने रोग की चिकित्सा की है न कि उन के। बस अब उपचार कर के शान्त हो जाओ। यदि इस से और आगे बढोगे, तो दूसरा रोग और उत्पन्न हो जायेगा। फिर आप को उस का भी इसी प्रकार से निराकरण करना पडेगा, जैसे कि अब किया है। इस लिए कुछ इच्छा न रखते हुए अपने भीतर का अग्नि बुझाना चाहिए।"

पतन का द्वार

रविवार के दिन रावलपिण्डी समाज मे व्याख्यान का कार्य-क्रम था, आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब लाहौर से महोपदेशक श्री पण्डित मुनीश्वरदेव जी भी पधारे थे, उन्हो ने बताया कि स्वामी जी व्याख्यान कर रहे थे। उन्हो ने अपने भाषण मे कहा, "जब मैं बनारस से रावलपिण्डी आया था, उस समय आर्य महानुभाव अतिशय स्वाध्यायशील थे। स्वाध्याय करते हुए उन्हे शङ्काएँ होती थी और उन्हें वे अपनी दैनन्दिनी मे अङ्कित कर लेते थे। जब कोई विद्वान् उन के यहाँ आता था, उस से अपनी शङ्काओ का निवारण कर लेते थे। मुझ से भी उन आर्य महानुभावो ने भिन्न-भिन्न समयो मे बहुत से प्रश्न पूछे, किन्तु अब दुःख से कहना पडता है कि आर्यों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति नहीं रही। उस के अभाव मे शङ्काएँ भी नही उठती। फिर निराकरण किन का कराया जाये। परिणाम यह हो गया है कि आर्यसमाजी अपने ही सिद्धान्तो से अपरिचित होते जाते हैं। किसी सस्था के अधःपतन का द्वार इसी प्रकार खुला करता है और वह अधिकाधिक खुलता जा रहा है।"

महाराज के चरणों मे एक उपदश रोग का रोगी आया। उस ने अपने रोग-निवृत्ति के लिये महाराज से निवेदन किया। महाराज ने कहा—"इस रोग के तुम स्वयं उत्तरदायी हो।" उस ने पुन. निवेदन किया—"करुणानिधान ! मैं इस रोग से बहुत दु:खी हूँ, मुझे अब स्वयं अपने आप से ही घृणा है।" महाराज ने कहा–"अच्छा, हम औषध तब देंगे, जब दो बाते स्वीकार करोगे (१) इस रोग के उत्पादक कुकर्म की आवृत्ति पुन नही करोगे (२) बताए गए औषध से लाभ उठा कर उस का विक्रय नही करोगे। हाँ, मूल्य न लेकर दे सकते हो।" रोगी ने दोनो वाचनिकाएँ स्वीकार की और महाराज ने उसे औषध बता कर उपकृत कर दिया।

'मनोविज्ञान तथा शिवसङ्कल्प'

संवत् २००० विक्रमी से यतिवर्य आत्मानन्द सरस्वती ने जैसा थोडा बहुत समय उन्हे मिल पाता था 'मनोविज्ञान तथा शिवसङ्कल्प' नामक पुस्तक का लिखना प्रारम्भ कर दिया। इस पुस्तक के निर्माण मे जहाँ अध्यात्म-तत्त्वो के पिपासुओ का ध्यान रखा गया है; वहाँ विद्यार्थियो को उन के कर्त्तव्य की ओर भी विशेष ध्यान दिलाया गया है। स्कूलो एव गुरुकुलो में इसे पाठ्य पुस्तक बनाया जाये, यह विशेष धारणा भी इस पुस्तक को सुन्दर रूप प्रदान कर सकी है।

श्री आत्मानन्द सरस्वती इस के लेखन म इस प्रकार से चले हैं कि प्रत्येक विषय का निरूपण सभी के लिये उपादेयता का मूल्याङ्कन करता प्रतीत होता है।

स्वामी जी ने इस ग्रन्थ मे प्राण इन्द्रिय-मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार और आत्मा का सूक्ष्म विवेचन किया है। यह सब एक दूसरे का सहकारो वर्ग है। इस में जो कुछ भो प्रतिपादित किया गया है, वह उन के अभ्यास के आधार पर शास्त्रीय प्रमाणो से पुष्ट है। उस के अनुसार आचरण करने से प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन उसी रग मे रगा हुआ देख सकती है। सत्य सर्वत्र त्रिकाल में एक-सा रहता है।

जहाँ कही भी योगी आत्मानन्द सरस्वती ने शास्त्रीय विषय को अभ्यासियो द्वारा पुष्ट किया है, वहाँ वे अपना नाम न लेकर निम्न प्रकार से चले हैं—

"अभ्यासी लोग सुषुम्णा को इन्द्र धनुष् के ढङ्ग की कई रङ्गो मे चमकती हुई देखते है। मन, बुद्धि, ज्ञान-तन्तु आदि सब साधन प्रकाशमान ही है। इन सब मे भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रकाश का अभ्यासियों को प्रत्यक्ष होता है।

यद्यपि प्रकाश का प्रत्यक्ष चक्षु-इन्द्रिय से होता है, और यह इन्द्रिय बहिर्मुख होने से बाहर के प्रकाश को ही देख सकता है। अतः यह प्रश्न हो सकता है कि अभ्यासियो को भी इन अन्दर के प्रकाशमान-तत्त्वो के प्रकाश का प्रत्यक्ष किस साधन से होता है? इस प्रश्न का समाधान हम अनुभवी अभ्यासियो के ही शब्दो में नीचे लिखते हैं।"

इस प्रकार की लेखन शैली, जहां किसी अभ्यासी का नाम निर्दिष्ट नही है, स्वामी जी को ही अभ्यासी कोटि मे सन्निविष्ट करती है।

यह ग्रन्थ सन् १९४६ विक्रम सँव्वत् २००३ मे द्रुत गति से गुरुकुल के अपने मुद्रण-अक्षरो से श्री हीरालाल जी द्वारा सुसज्जित किया जा रहा था। स्वामी जी साथ-साथ प्रति दिन लिख कर देते जाते थे। जब सारा ग्रन्थ इस प्रकार से सुसज्जित हो गया, तो रावलपिण्डी नगर में मुद्रित करने के लिये दे दिया गया, जिसका सम्पूर्ण प्रकाशन व्यय कृपाराम ब्रदर्स के रामलाल साहनी जी ने दिया।

मन की बातें जान लेना

श्री स्वामी जी के जीवन मे अन्यो के मानसिक विचारो को जानने की बाते कभी-कभी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुई थी। भिक्षु

मण्डल के सदस्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी श्री स्वामी जी से न्याय वात्स्यायन भाष्य पढ रहे थे। एक दिन वे यह मन मे धारणा कर के श्री चरणो मे उपस्थित हुए कि वे महाराज से कहेगे कि उन्हे थोड़ा पाठ अच्छी प्रकार समझा कर पढाया करे, जिस से ग्रन्थ सम्यक् रूप से मस्तिष्क गत हो सके। किसी सङ्कोचवश स्वामी ब्रह्मानन्द जी अध्ययन के समय श्री महाराज से उपर्युक्त प्रार्थना न कर सके। किन्तु स्वामी ब्रह्मानन्द जी उस दिन यह अनुभव कर रहे थे कि महाराज उन्हे बिना कहे ही पूर्व दिनो की अपेक्षा कही अधिक शनै शनै. एव भलीभाँति समझाते हुए अत्युत्तम मनोहर शैली से न्याय का पाठ करा रहे हैं। इस आश्चर्यान्वित-घटित-घटना से स्वामी ब्रह्मानन्द जी अतिविस्मित हुए और मन ही मन मुक्त कण्ठ से उन के गुणो की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए सन्ध्या समाप्ति के अनन्तर स्व आवास पर आ विराजे।

इस समय स्वामी आत्मानन्द जैसा योगी नहीं

श्री दयानन्द वैदिक कालिज लाहौर का रामसिंह नामक एक छात्र वैद्य वाचस्पति की अन्तिम श्रेणी में पढ रहा था, तो स्वाध्याय करते हुए, उस के सम्मुख महर्षि चरक के निम्न दो वाक्य आए—"योगो वैद्यगुणाना श्रेष्ठतम" "योगे मोक्षे च तेषा सर्वथा क्षय." योग वैद्य का सर्व श्रेष्ठ गुण है और योग तथा मोक्ष के मार्ग पर चल कर ही दु.खो की अत्यन्त निवृत्ति सम्भव है। इन दोनो वाक्यो से प्रेरित होकर उस ने अपनी भावना आचार्य ऋषिराम जी के समक्ष प्रकट की। उन्हो ने उसे उत्तर मे कहा—"भावना बहुत उत्तम है, उस की पूर्ति अवश्य करनी चाहिए और साथ ही उन्हो ने यह आदेश दिया कि इस समय हमारे देश मे स्वामी आत्मानन्द जी महाराज (पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय) योग विद्या के विशेष ज्ञाता हैं।" 'तत्पश्चात् उस छात्र ने श्री स्वामी जी से पत्र व्यवहार किया। जिस के उत्तर मे स्वामी जी ने उसे स्वलिखित 'मनोविज्ञान तथा शिवसङ्कल्प' पुस्तक भेज दिया और उसे यह भी लिख दिया कि पुस्तक का स्वाध्याय करके अपने अभ्यास का क्रम आरम्भ करो, आवश्यकता पड़ने पर पत्र द्वारा अपनी शङ्काओ का समाधान करा लेना।

भिक्षुओं को अमूल्य उपदेश

श्री आत्मानन्द सरस्वती विलक्षण पुरुष थे। उन्हे प्रति दिन योग समाधि में आत्म प्रकाश प्राप्त होता था, उस से वे सदा निर्भीक रहते

थे। कठिन से कठिन आपत् काल में भी वे अपने कर्त्तव्य पर आरूढ़ रहते हुए अन्य जनों के पथ-प्रदर्शक बने रहते थे। नौवाखली के दंगे के पश्चात् समस्त भारत वर्ष में एक आतङ्क की लहर फैल गई थी। जहाँ मुसलमान कम थे, वहाँ उन्हें हिन्दुओं से आतङ्क था और जहाँ हिन्दू अल्प सङ्ख्या में थे, वहाँ उन्हे मुसलमानों से भय था। रावल गुरुकुल चारों ओर से मुसलमानी बस्ती से ही घिरा था। गुरुकुल की व्यक्तियों को क्षौर कर्म कराने तक के लिये भी उन्हीं का आश्रय लेना पड़ता था। गरमी के दिन थे। गुरुकुल के ब्रह्मचारियो का अवकाश समय आ गया, उन्हे छुट्टी दे दी गई, सब एक मास के लिये अपने-अपने घर चले गये। केवल श्रीमद्दयानन्द भिक्षु-मण्डल के ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी रह गये, जो गिनती में अन्य कर्मचारियो समेत लगभग बीस थे। कर्ण परम्परा से श्री स्वामी जी महाराज के समीप यह बात पहुँच गयी कि भिक्षु मण्डल के कतिपय विद्यार्थी भी इन दिनों अवकाश ग्रहण करना चाहते हैं। तब महाराज ने सब को अपने निकट बुला कर अति गम्भीर मुद्रा मे कहा—"प्रिय भिक्षुओ! मैं आप को एक सन्देश देना चाहता हूँ, वह आप के कर्त्तव्य को प्रशस्त करेगा। यद्यपि इस समय लड़ाई झगड़ा होने की कोई सम्भावना प्रतीत नही होती; क्योकि प्रशासन-अधिकारियों की ओर से पर्याप्त प्रबन्ध दिखाई दे रहा है और यदि वे चाहे कि लड़ाई झगड़ा न हो, तो हो भी नही सकता; फिर भी हमें प्रत्येक समय सुसज्जित रहना चाहिये। मनुष्य के सम्मुख संसार में दो ही दृष्टि बिन्दु है—वह अपनी कालिमा का धब्बा संसार में छोड़ जाये वा कुछ काम करके अपने नाम को उज्ज्वल बना जाये। ऐसे अवसर वार-वार नही आते। इस ससार में जितने भी चमकते सितारे हुए है, उन के सम्मुख कोई-न कोई लक्ष्य अवश्य रहा है। बड़ी से बड़ी विपत्ति के उपस्थित होने पर भी वे अपने लक्ष्य से यत्किञ्चित् भी पीछे नही हटे। आप सब के समक्ष वेद-प्रचार का लक्ष्य है। इस कार्य मे एक नही अनेक प्रतिबन्ध, रुकावटें और विघ्न उपस्थित होंगे किन्तु, उन सब का निराकरण करते हुए आगे बढना एक आर्य का परम कर्त्तव्य है। प्राचीन समय था जब कि मनुष्य, जीवन की समाप्ति किसी समय मान लिया करते थे किन्तु इस समय तो महर्षि दयानन्द की कृपा से वैदिक धर्म के अनुयायी बहुत आगे बढ चुके हैं। वे मुक्ति से लौट कर फिर भी संसार मे लग जाना चाहते है और वह भी ऐसा जो कि एक निष्काम कार्य का जनक हो, अति विपत्ति मे भी जहाँ भय

न हो, जो अन्त मे मोक्ष का पुन कारण बने । ये ही तो अवसर है, जो मनुष्य को निष्काम कर्म सिखाते है । इस मुस्लिम बहुल प्रदेश मे जो गिने चुने हिन्दू है, वे आप ही को तो अपना आधार माने हुए है । ऐसी परिस्थिति मे एक आर्य युवक का, अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाना कात-रता का परिचायक है । इस कार्य मे हमे अपने ऊपर एक और शक्ति का भी हाथ समझना चाहिये, जिस को कि हम अपना सर्वस्व समर्पण कर चुके है । समर्पण कर चुकने वाली व्यक्ति को किन्तु-परन्तु करने का अवकाश नही रहता । नही कह सकते वह अपने इस कार्य को हमारे इन शरीरो से ही करवाना चाहती है अथवा दूसरो से । इस बात को हृदयङ्गम कर लेना, एक आर्य कहलाने वाली व्यक्ति के लिये, जीवन-सुधा की एक रहस्य पूर्ण वार्ता है । महर्षि दयानन्द के सम्मुख एक नहीं अनेक सङ्कट आये, किन्तु वे अपने उद्देश्य से विचलित नही हुए । हिमा-च्छादित अलखनन्दा नदी के विना पार किये भी कार्य चल सकता था कर्ण का कृपाण देख कर अपने मनोनीत उद्देश्य से विचलित हो उस का करारा उत्तर दे सकते थे । दूसरी शैली को अपनाने से उन्हे पचास-पचास रुपये के लिये मारे-मारे फिरने की आवश्यकता न थी; किन्तु वे इस बात को भली-भाँति समझते थे कि सम्भव है मेरा वेद भाष्य संसार में उतना काम न कर सके, जितनी कि मेरी भावना । अत उन्हों ने अपनी भावना को प्रमुख रखते हुए ससार के प्रलोभनो की चिन्ता न की । महात्मा गान्धी ने एक स्वदेशी धागे के कारण ही अपने तथा दूसरो के भविष्यत् को चमका दिया । जब महात्मा गान्धी के मन मे स्वदेशी वस्त्र धारण का उद्देश्य उत्पन्न हुआ, तब साधारण जनता को तो क्या, बडे-बडे बुद्धि जीवियो को भी स्वप्न मे यह आशा न थी कि कालान्तर मे यह छोटी-सी बात नवयुग का सञ्चार करेगी ।

सत्यासत्य और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निश्चय करना एक टेढ़ी समस्या है । बहुत से पुरुष अपनी असूक्ष्मदर्शिता के कारण संसार के भविष्यत् को दीर्घ एव अनिश्चित काल के लिये नारकीय बना जाते हैं । यदि पृथ्वीराज के समय कुछ गौवे कट भी जाती, तो आज गोहत्या का यह भयङ्कर रूप देखना न पड़ता । कुरान के निर्माता यदि सूक्ष्मदर्शिता से काम लेते, तो आज हिन्दू और मुसलमानो के बीच यह स्थिति उत्पन्न न होती ।" (भाद्र शुक्ला षष्ठी सवत २००३ को किया गया उपदेश)

किसी कवि ने सचमुच क्या ही ठीक कहा है—

हिमाद्रितुङ्गश्रृङ्ग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वय प्रभा समुज्ज्वला सरस्वती पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो, न मृत्यु से कभी डरो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, बढे चलो बढे चलो॥

योग-सामर्थ्य

आदर्श सुधारक ब्रह्मनिष्ठ आत्मानन्द सरस्वती का योग-सामर्थ्य बहुत बढा हुआ था। मण्डी भावुद्दीन गुजरात मण्डल के रामलाल नामक एक वैद्य को उदासी साधु ने गायत्री जप का प्रकार बताया। उस से उन्हे जीवन में बहुत सन्तोष हुआ। पर गुरु के दिवङ्गत हो जाने पर उन का योग-मार्ग रुक गया। उन्हो ने दु:खी होकर एक रात अश्रु बहाते हुए परमात्मा से प्रार्थना की "हे प्रभो! मुझे मार्ग दिखलाइये।" इस विधि, निरन्तर प्रार्थना करते-करते उन्हे निद्रा आ गयी और स्वप्न आया कि तुम्हारे गुरु स्वामी आत्मानन्द है। उन से ही तुम्हारा कल्याण होगा। स्वामी जी महाराज का रूपचित्र भी उन के सम्मुख हो आया। यह नाम तथा रूप दोनो ही कभी पहले उनके चित्त में न आये थे। अलक्षित गुरु के दर्शनाभिलाषी श्री वैद्य जी चिन्ता व्यग्र रहने लगे कि दर्शन कहाँ और कैसे हों?

एक दिन वे द्विचक्रिका से नदी-तट पर गये। सन्ध्या काल था। घर लौटने की भी धुन थी। लौटना ही चाहते थे कि नदी पार से सन्ध्या के मन्त्रो का ध्वनि सुनाई दिया। उन्हो ने कर्णपात किया और देखा कि दो महानुभाव सन्ध्या आसन पर आसीन हुए सन्ध्या कर रहे है। सहसा वे वही रुक गये। सन्ध्या-समाप्ति पर वैद्य जी ने ईश्वरोपासकों को अभिवादन किया और बोले "मैं आप महानुभावो से वार्तालाप करना चाहता हूँ।" नदी का पाट चौड़ा था, उस के बीच में स्तम्भ थे, जो नुकीले थे। सन्ध्या प्रेमियो ने वैद्य जी से कहा—"न आप इधर आ सकते हैं और न हम उधर जा सकते हैं।" तब वैद्य जी बोले—"मैं उधर आ सकता हूँ।" वैद्य जी का देह अतिशय स्फूर्तिमान् और लघु था; वे छलाग लगाते हुए उधर पहुँच गये। उन महानुभावो ने उस आकर्षक युवक को अति विस्मित नेत्रो से देखा। उन में एक देवेन्द्र नाथ नाम के भिक्षु थे, दूसरे थे—इन्द्रसेन। इन्द्रसेन ने कहा—"इन देवेन्द्रनाथ भिक्षु को स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने प्रचार के लिए

भेजा हुआ है।" वैद्य जी को स्वामी जी का नाम सुन कर और अधिक जिज्ञासा हुई। तब देवेन्द्रनाथ जी ने आश्वासन देते हुये कहा—"मैं आप को सन्यासी प्रवर श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के दर्शन करा दूँगा।" दर्शनो की प्रतीक्षा मे दुर्भाग्य से देवेन्द्रनाथ जी को गठिया हो गया और वैद्य जी उन की चिकित्सा में लग गये।

विनोद प्रिय ब्रह्मर्षि आत्मानन्द

दीपक पर पतङ्गे अधिक सख्या मे इकट्ठे होने के दिन थे। अत. भोजनान्त मे किञ्चित् भ्रमण कर भिक्षु मण्डल के विद्यार्थी श्री स्वामी जी के निकट आ बैठे, वे प्राङ्गण मे एक बिछी हुई खाट पर विश्राम कर रहे थे। एक उन में अति श्रद्धाभाव से जिनका नाम विज्ञानानन्द था, स्वामी जी का पैर दबाने के लिये अपनी ओर खीचने लगे। श्री स्वामी जी ने पूछा "क्या कर रहे हो ?" उन्हो ने उत्तर मे निवेदन किया "महाराज ! आप का पैर खीच रहा हूँ।" महाराज बोले—"मेरा क्यो खीचते हो, पैर तो तुम्हारे भी हैं ?" "आप का वचन सत्य है, किन्तु मैं आप का पैर दबाना चाहता हूँ।" स्वामी जी ने कहा—"मेरा पैर तो दबा हुआ है इस से अधिक वह नही दबेगा।" "देख तो लेने दीजिए कितना दबा हुआ है।यदि मैं उस से अधिक नही दबा सका, तो छोड दूँगा ?" "छोड़ क्यों दोगे फिर उस से तुम्हारा हाथ दबता रहेगा।" वे हँस पडे। इस के पश्चात् फिर बोले—"स्वामी जी, अच्छा, अपना एक रूपित्र (फोटो) तो दे दीजिए।" श्री स्वामी ने उत्तर दिया—"मेरे समीप नही है।" वे बोले—"आदेश हो तो, मैं खीच लूँ।" "रूपित्र लेकर क्या करोगे ?' "अपने निकट रक्खूँगा।" "किसलिये" "देखा करूँगा" "पर वह तो कृत्रिम ही होगा न ! मुझ, वास्तविक को ही देखते रहा करो। रूपित्र से तो तुम्हारे जीवन मे कृत्रिमता आने लगेगी। तुम अपने ही कल्पनालोक मे घूमा करोगे। मुझे देखते रहोगे, तो तुम्हारी शङ्काओ का समाधान भी करता रहूँगा।"

"अच्छा गुरु जी, जब आप किसी प्रकार वश मे नही आते, तो एक बात बताइये।" "पूछो" "आप इतने बडे कैसे बन गए ?" "कितने बड़े ?" "जितना आपको लोग समझते हैं।" "लोग क्या समझते है ?" "बहुत बडा" "कैसे ?" "यही तो मैं पूछ रहा हूँ।" "इसका उत्तर तो वे ही देगे, जो मुझ को जैसा समझते हैं।"

दूसरे भिक्षु ने चलती वार्ता को मोड़ देते हुए, महाराज से पूछा—
"कतिपय महानुभाव कहते है कि जो भी प्राणी मरता है, उसे ईश्वर ही मारता है। वहाँ तक तो यह बात समझ में आती है, जहाँ तक उसका मरण स्वय होता है, किन्तु जब उसको दूसरो व्यक्ति वा जीव-जन्तु सिह आदि मार देता है, तब भी उसे ईश्वर ने ही मारा है, यह कैसे माना जाये यदि ? उसे भी ईश्वर द्वारा माना जाये, तो उसका फल उस व्यक्ति को क्यो मिलता है, जिसने मारा है ? अब यदि उसे दण्ड न मिले, तो वह बहुतो का विनाश कर देगी। घातिका व्यक्ति की इस वृत्ति को रोकने के लिए ही वैदिक न्याय व्यवस्था में भी ऐसी व्यक्ति को दण्ड देने का विधान है। यह एक ऐसी गुत्थी है, जो सुलझ नही पाती। स्वामी जी ! कृपया इस पर प्रकाश डालिए—"

श्री यतिभूषण ने इसके उत्तर में कहा,—"जो लोग यह कहते हैं कि ईश्वर ने ही मारा है, वे ठीक कहते है। अब रही बात यह कि घातक ने भी एक ऐसा कर्म किया है, जिसका उसे दण्ड मिलना अनिवार्य है। इसके उत्तर मे मेरा कहना यह है कि उसे मारने का अधिकार नही है। अधिकार न होने से दण्ड का भागी है।"

भिक्षु महोदय ने स्वामी जी से फिर पूछा—"मान लीजिए, एक कृषक ने किसो की भूमि दबा ली है, वह भूमिहार के अनेक वार कहने पर भी नही छोड़ता। उसने ग्राम मे अपने बुद्धि कौशल और शारीरिक बल एवं गृह की सम्पन्नता के कारण बहुत से ग्राम्यजनों को भी अपने पक्ष में कर लिया है। भूमिभुक् की दृष्टि मे इसके अतिरिक्त ऐसी अवस्था में और कोई उपाय नही रह जाता कि वह उस भूमि से निराश हो बैठे वा न्यायालय का द्वार खटखटाए। प्रायः पहली बात भूमिभुक् को मँहगी पड़ती हैं, यदि वह कोई पग न उठाए तो ऐसे भी राक्षस होते हैं, जो उसके अधीन एक चप्पा भूमि भी न छोड़े। ऐसी अवस्था मे उसे अभियोग करना ही पड़ेगा। किन्तु न्यायाधीश भी भूमि हड़पने वाले से उत्कोच ले कर उस भूमि का निर्णय भूमि छीनने वाले के ही पक्ष मे कर देता है। ऊपर किए गए पुनरावेदन के भी ऐसे ही मानो, परिणाम निकलते है तो वह भूमिपति अवसर प्राप्त करके अपने शत्रु के जीवन को समाप्त कर देता है। इस अवस्था मे यह किसका मारा हुआ समझा जावेगा ? ईश्वर का वा भूमिभुक् का ? यदि ईश्वर का तो भूमिभुक् को राज्य विधान से मारणदण्ड क्यो मिलता है ? इसमें यदि यह कहा जाये कि भूमिभुक को मारने का अधिकार नही था, तो

यह बात कैसे मानी जाये, जब कि उसने अपना अधिकार (भूमि) लेने के लिए सब प्रयत्न करके देख लिए थे। इन सब घटनाओ को ईश्वर भी निरन्तर अन्त साक्षीरूप से देख रहा था। उसने भी उसकी रक्षा नहीं की। निर्णायक के हृदय मे जब कि वह गलपाश× देने का आदेश दे रहा है, उस अनुचित निर्णय को न देने को प्रेरणा कर देता।"

श्री स्वामी जी ने उत्तर मे कहा—"इस बात को दूसरे रूप मे सोचना पड़ेगा। ईश्वर ने सभी जीवो को प्रत्येक प्रकार का कर्म करने के लिए स्वतन्त्र किया हुआ है, वह अपनी स्वतन्त्रता के आधार पर किसी की अनधिकार्य भूमि भी दबा लेता है। ईश्वर उसके अन्तरात्मा मे ऐसा न करने की प्रेरणा करता भी है, पर उसका हृदय इतना कलुषित है कि उस हृदय मे भगवान् की प्रेरणा पैठ नही पाती। निर्णाता ने उत्कोच+ लेकर जानते बूझते हुए जो गलपाश का निर्णय दिया, वह भी अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहा है। उसे भी ईश्वर-प्रेरणा तो हुई थी कि यह तू निर्दोष व्यक्ति को गलपाश देकर एक जघन्य कर्म कर रहा है, पर उसने भी अपने अन्त.करण को ऐसे कालिमा से काला किया हुआ है कि उसके मानस पटल पर भी भगवान् की प्रेरणा का रंग नही चढ पाता और जो प्रत्यक्ष रूप मे निर्दोष होता हुआ भी इस रूप से गलपाश पर लटका कर मारा गया है, उसके कुछ ऐसे कर्म किसी समय के आकर एकत्रित हो गये, जिनका परिणाम उसको इस रूप मे भुगतना पड़ा। किन्तु यह ठीक है कि वह मारा गया है, ईश्वर की कर्म व्यवस्था के आधार पर ही।"

भिक्षु ने पूछा—"क्या ईश्वर ने ऐसा विधान किया हुआ है, कि गलपाश से ही मरना चाहिए? यतिवर्य बोले—"ईश्वर ऐसा विधान तो नही करता, किन्तु इसे मरते समय कितना कष्ट मिलना चाहिए, उतना, जैसे उसे मिलता है, वह ही होता है। बहुत से मानव, गल सड़ कर अनेक रोगो के पश्चात् अति कष्ट पाते हुए बडी कठिनाई से अपना जीवन समाप्त करते है और शूल* पर चढने वाले को तो थोड़ी देर ही कष्ट भोगना पडता है। यह भले ही कष्ट दायक प्रतीत होता हो, पर वैसा है नही। हाँ उसे जो बहुत दिन पूर्व गलपाश की सूचना दे दी जाती है, उससे उसे जो कष्ट होता है, वह उसकी मानसिक निर्बलता का परिणाम है। उसने भी मन से किसी समय किसी को कष्ट दिया होगा, जो उसे मानसिक कष्ट के रूप मे भोगने को मिला। बहुत से मानव

×फांसी। +रिश्वत। *सूली।

गलपाश का आदेश सुन कर बहुत प्रसन्न हुए हैं, ऐसी व्यक्तियों में उन्ही की गिनती है, जिन्होने दुराचार से टक्कर लेकर आत्मा के आलोक मे अपने अन्त करण को उज्ज्वल बना लिया है। उन्हे अपना प्रशस्त मार्ग दीख रहा होता है। उस प्रसन्नता मे उनका रक्त बढ जाता है, भार बढ जाता है। केवल गलपाश मे जो थोड़ी देर कष्ट हुआ वा नही भी हुआ, सब उनके अपने कर्म का फल था। ऐसे लोग तो वीर कहलाते हैं, पामर नही। कष्ट पामरों को होता है। अत: एक ही गलपाश कर्म से फल व्यवस्था भिन्न-भिन्न है।

भिक्षु ने फिर पूछा—"यह उसका अकाल मृत्यु हुआ वा दूसरा ?" स्वामिराज ने उत्तर दिया, "दूसरा ही हुआ," जिसे काल मृत्यु कहेगे।" स्वामी जी के इस उत्तर पर भिक्षु जी बोले, "जब यह काल मृत्यु ही है, तो न्यायाधीश ने उत्कोच लेकर जो गलपाश की आज्ञा दी, वह उत्कोच लेना ठीक हो गया।" "नही" स्वामी जी ने कहा, "ईश्वर द्वारा इसे बुरा कर्म घोषित किये जाने पर भी, जो अपनी स्वतन्त्रता के बल पर गलपाश का निर्णय देता है, उससे उस न्यायाधीश के अन्त पटल पर ऐसे सस्कारो की तह जम गई, जो न जाने उसे, इस जन्म मे वा किसी अन्य जन्म मे नारकीय यातनाएँ भुगतवावेगी। इन्ही सस्कारो के बल पर तो प्राणी अनेक प्रकार के योनियो मे भ्रमण करता रहता है। यह ही उस न्यायाधीश का पाप हुआ, जिसे अधर्म भी कह सकते है। अब यह ही न्यायाधीश जिसे उत्कोच का आस्वाद आ गया है; यदि मनुष्य जन्म पा जाए, तो अपने इन जघन्य सस्कारो से वह लोभी बन कर अर्थ का ऐसे अनुचित रूप से सङग्रह करेगा, जिससे अत्यन्त कष्ट भोगता हुआ, अन्त मे गलपाश ही पाए।"

भिक्षु महाशय बोले—"फिर तो सस्कार ही जन्म-मरण का कारण हो गए, परमात्मा न हुआ।" महाराज ने उत्तर दिया, "सस्कार जड होने से ऐसा करने मे असमर्थ है, अत फल व्यवस्था भगवान् की ही माननी पडेगी, किन्तु वह होती है उसके कर्माशय के आधार पर ही।"

भिक्षु महोदय चुप रहने वाले न थे। वे यदि सभी शङ्काओ का समाधान यहाँ न कर लेगे, तो यहाँ से जाकर जनता का समाधान कैसे करेंगे अत., फिर बोले "उस भूमिभुक् ने विवश होकर जो भूमि पर अधिकृत व्यक्ति का वध किया है, उसने तो जो कुछ भी किया,

अपने अधिकार की दृष्टि से किया है, जब कि न्यायाधीश ने भी उसकी एक न सुनी।" और अपना अधिकार लेना, दूसरे के अधिकार पर आधिपत्य न जमाना वेद-विहित कर्म है, जिसे कि हम परमात्मा का ही आदेश कहते है। ऐसी अवस्था मे भूमिभुक् ने तो ठीक ही किया है फिर उसे गलपाश का दण्ड क्यो मिला ?" महाराज ने अति गम्भीर मुद्रा मे कहा, "दण्ड दिये जाने का उत्तर तो पहले दिया जा चुका है, यहाँ तो इतना ही विशेष है कि अपना अधिकार लेना एक वैदिक कर्म था। यह ठीक है, सब को अपना अधिकार लेना चाहिए किन्तु, अपना अधिकार लेने के लिए उस ने जो भूमि स्वायत्त करने वाले का वध किया, उस से उसका अन्त· करण पाप से युक्त हो गया, अशुद्ध हो गया, उस पर वध करने के वे सभी सस्कार जम गए, जो प्रारम्भ से लेकर मारने तक, जितने भी उस ने इस योजना काल मे एकत्रित कर लिए। इन सस्कारो का जमना ही अधर्म है, अशुद्धि है, पाप है। ये ही उसके किसी भी जन्म का कारण बनेगे।

भिक्षु जी ने फिर पूछा—"तो इस अशुद्धि, पाप, वा अधर्म लगने के भय से अपना अधिकार लेने के लिए उसे कोई चेष्टा नही करनी चाहिए ?' "क्यो नही करनी चाहिए" स्वामी जी ने उत्तर दिया "यदि कोई चेष्टा नही करेगे, तो जगत् मे अन्याय बढ जायेगा।" भिक्षु महोदय ने निवेदन किया—"फिर तो महाराज यह निष्कर्ष निकला कि अपना अधिकार लेने के लिए कर्म तो करना पडेगा, जब तक कि अधिकार न मिल जावे। उस अधिकार प्राप्ति में अन्त.करण पर सस्कार न जमने पावे, इसका उपाय सोचना पडेगा।" महाराज बोले, "ठीक है, अब उद्दिष्ट पथ पर आ गए हो।" "तो स्वामी जी, वह उपाय बतलाइए, जिससे सस्कार न पडे।" यतिराज ने प्रत्युत्तर मे कहा—"प्रत्येक बुरे कर्म से छुटकारा पा कर उत्तम कर्मों मे प्रवृत्त होना और उसके अनन्तर परार्थ मे प्रवृत्त हो जाना, मनुष्य को सस्कारो से बचा देता है। ऐसे निष्काम कर्म तब ही सम्भव हैं, जब निरन्तर साधना के मार्ग से मन के क्षेत्र से उठकर जब मानव बुद्धि के क्षेत्र मे आकर कर्म करता है। इस बुद्धि क्षेत्र मे पहुँचने पर मनुष्य मे समदर्शिता आ जाती है, जिससे पाप नही लगता, सस्कार सञ्चित नही होते। उस अवस्था मे वह कह सकता है 'नाय हन्ति न हन्यते' न कोई मारता है न कोई मरता है।" "क्या बुद्धि से भी कर्म किया जा सकता है ?" "हाँ" स्वामी जी ने कहा, "गीता मे आया है, "कायेन मनसा बुद्ध्या

केवलैरिन्द्रियैरपि । योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥" शरीर से, मन से, बुद्धि से, और केवल इन्द्रियों से भी योगी लोग सङ्ग छोड़ कर आत्म शुद्धि के लिए कर्म करते है। यह अवस्था बहुत ऊँची है। बुद्धि क्षेत्र में पहुँच कर फल-कामना समाप्त हो जाती है। इसीलिए एक और श्लोक में निर्देश किया है "बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणा फलहेतवः।" फल कामना से बचने के लिए बुद्धि के शरण में पहुँचने की खोज कर। श्लोक मे 'अन्विच्छ' शब्द से यह स्पष्ट है कि वहाँ तक पहुँचने के लिए विशेष उपायों से प्रयत्न करना पड़ेगा।

भिक्षु जी जब पुनः कुछ पूछने को समुद्यत हुए, तो दूसरे भिक्षु ने कहा—"बस भी करोगे वा सारी रात यही बिताओगे। दूसरे दिन के लिए भी कुछ छोड़ना है वा आज ही सब कुछ निर्णय करना है।"

समाधाता स्वामी जी बोले, "तुम निकम्मे हो, एक अपनी शङ्काओ का निवारण करता है, तो तुम से इतना भी नही होता कि चुप-चाप सुन तो सके, कुछ पूछना तो दूर रहा। महर्षि दयानन्द जी को निद्रा तक नही आती थी, जब वे किसी समस्या मे उलझ जाते थे और तुम्हे सोने की पडी है।"

"नही स्वामी जी, सोने की बात नही है, आप अस्वस्थ रहते हैं, आप पर अधिक भार न पडे, विश्राम भी अपेक्षित है, मैंने तो इसीलिए ऐसा कहा है।" "ठीक है, पर इस शरीर से, चाहे यह कैसी भी अवस्था मे हो, जिसका जितना लाभ हो जाये, अच्छा ही है। अच्छा कर्म करते हुए यदि शरीर भी जाता हो तो, इससे उत्तम कर्म और क्या है?" साहस बटोर कर भिक्षु जी ने पुनः पूछ ही डाला, "स्वामी जी, एक दो बाते और है और वे ये कि जो निष्काम कर्म करने तक न पहुँचे, तथा अपने अधिकार को भी न छोड़े, तो उसका कर्माशय सञ्चित ही होता रहेगा।" "हाँ," स्वामी जी बोले,—"होता ही रहेगा और उस आधार पर वह जन्म मरण मे भी आता ही रहेगा। रही भोग की व्यवस्था वह तो अधिकार लेने पर भी कभी मिलती है, कभी नही मिलती। यह तो सब भगवान् के अधीन है। देखो उसने अपना अधिकार ले भी लिया, किन्तु उसका भोग उसके भाग मे न था। इसलिए भोग के लिए अपना अधिकार लेना है—यह सिद्धान्त अनुचित है। हाँ न्याय पर स्थिर रह कर अपना अधिकार लेना है, यह सिद्धान्त वैदिक है। भाग मे है, तो उसका भोग हो जायेगा। नहीं है, तो लाख यत्न करने पर भी, नही होगा। अतः भोग की चिन्ता

से सर्वथा मुक्त होकर ही कर्म करना चाहिए । जो ऐसा करेगा, उसका कर्म क्षेत्र प्रशस्त हो जायगा । एव वैदिक सिद्धान्तावलम्बियो को तो मरने जीने की कोई चिन्ता होनी ही नही चाहिए । जब भी मर कर पुनः उत्पन्न होंगे, फिर भोग मिल जाएँगे । ये भोग तो यही रहते हैं, कही नही जाते ।"

भिक्षु जी ने पुनः विनीतभावेन निवेदन किया—"भगवन् ! वधक, तीन हुए । परमात्मा, मनुष्य और सिंह आदि हिंस्र जन्तु । इन तीनो में से केवल मनुष्य को ही दोष क्यो लगता है ?" महाराज ने उत्तर दिया—"मनुष्य का ही कर्माशय सञ्चित होता है । अत. उसे ही दोष लगता है ।" "उसी का कर्माशय क्यो सञ्चित होता है, जब कि मारने का कर्म तीनो करते हैं ?" स्वामी जी ने उत्तर में कहा—"परमात्मा मन के क्षेत्र से ऊपर उठा हुआ होने से, व्यापक बुद्धि क्षेत्र मे कार्य करता है, और मनुष्य मन क्षेत्र मे जब तक रह कर विचार पूर्वक कर्म करता है, तब तक पुण्य और पाप लगता है, तभी तक उसमे कर्म के संस्कारो का सञ्चय होता है जब भी इस क्षेत्र से ऊँचा उठ कर अपने बुद्धि क्षेत्र मे आकर कार्य करता है । तब उसके भी कर्म अशुक्ल और अकृष्ण हो जाते है । वे सस्कारों को जन्म नही देते, अतः वह योगी होकर मुक्त हो जाता है । इसी प्रकार सिंह आदि जीव मन के स्तर से नीचे रह कर प्राण प्रधान क्षेत्र में कार्य करते हैं, उनका प्रयोजन प्राण यात्रा तक ही सीमित रहता है, अत जीवन धारण के लिए वे किसी को भी चोट पहुँचा देते है, उनमें भी मन तो है, पर वे उससे अधिक नही सोच पाते । न पहले ही सोचते है और न चोट पहुँचाने के पश्चात् । अत., उनमें भी कर्माशय सञ्चित नही होता ।"

शिखा-विधान तथा अवान्तर प्रश्न

शिखा क्यों रखनी चाहिये ? इस के उत्तर मे महाराज ने बतलाया कि जिस स्थान पर शिखा रक्खी जाती है, उस के कुछ ही आगे आत्मा के निवास का स्थान माना गया है, और बुद्धि का स्थान उस आत्मा के स्थान से कुछ आगे है । यह बुद्धि तत्त्व आत्मा के सान्निध्य से चमकता रहता है । बुद्धि ज्ञान का नाम है, बुद्धि (ज्ञान) की वृद्धि करने का स्मरण मानव को नित्य प्रति होता रहे, इसलिये 'सावित्री-मन्त्र' 'तत्स-वितुर्वरेण्य, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्' से सन्ध्या से पूर्व शिखा-बन्धन करते है । दिन भर मे जब भी शिर पर हाथ जाये, तो शिखा ग्रन्थि का स्पर्श होते ही स्मरण आ जाये कि हम ने यह ग्रन्थि

बुद्धि-वृद्धि के लिये लगाई है। अतः ऐसा कोई कार्य न किया जाये, जिससे बुद्धि बढने मे बाधा हो। वे कर्म कौन से हैं इस का निर्देश भी यही सावित्री मन्त्र करता है। इस में लिखा है—'भर्गो देवस्य धीमहि' ईश्वर का जो ज्ञान सब क्लेशों को भस्म करने वाला है, उसे धारण करे, एकाकी मैं ही नही, हम सब करे 'धीमहि' इसीलिये प्रयुक्त है। तब ही ज्ञान की वृद्धि सम्भव है।" क्लेशो को भस्म करने वाला वह ज्ञान कौन-सा है ? यह पूछे जाने पर महाराज ने प्रतिवचन में कहा—"वह ज्ञान वेद है, और वेद के ही अनुसार कार्य करने से ज्ञान-वृद्धि बुद्धि-वृद्धि होती है। इस के लिए वेद पढना चाहिये।" 'क्या वेद पढने से बुद्धि बढ जायेगी ?" इस के उत्तर में बोले—"पढने मात्र से नही, वेद पढ़ कर उस के अनुसार कार्य करने से बढेगी।" बुद्धि बढ़ गई है इस की पहचान कैसे होगी ? महाराज ने उत्तर मे कहा—"ज्ञान की पराकाष्ठा वैराग्य है, जब मनुष्य को ससार मे हो नही, अपितु इस के कारण रूप मे विद्यमान सत्त्व, रज. और तम. तीनो गुणो मे भी वैराग्य हो जाये, राग, द्वेप, मोह को सब वृत्तियाँ क्षीण हो जाये; पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, मनुष्य एव देव सब प्राणि मात्र मे समान भाव उपज आवे तब समझ लेना चाहिये कि वह ज्ञान सम्पन्न है और विरक्त है। ज्ञान सम्पन्न और विरक्त ये दोनो पर्यायवाची शब्द है।" किन्तु महाराज ! जो मानव ज्ञानी विद्वान् कहलाते है, वे विरक्त तो नही देखे जाते ? इस प्रश्न के प्रत्युत्तर मे श्री योगिराज महाराज ने कहा—"सर्वत्र ऐसी बात नही है, और जहाँ ऐसा नही है, वे ज्ञानी अथवा विद्वान् नही है। वे तो केवल शब्दो का अन्तःकरण में अभिलेख मात्र है, पहले पढ पढ कर भर लिया और पीछे निकालते रहे। उस से जीवन पवित्र नही होता है। जीवन मे पवित्रता तो उस के आचरण से ही आयेगी।" "कुछ लोग कहते है—असत्य भाषण से बुद्धि का विकास होता है, क्योंकि सत्य भाषण तो एक बात कह कर उसे विरत कर देता है और असत्य भाषण उसे अधिकाधिक विचारने का अवसर देता है, इस अधिकाधिक विचारने से बुद्धि का विकास होता है, यह कहाँ तक उचित है ?" इस प्रश्न पर महाराज का उत्तर था कि ऐसा बुद्धि का विकास किसी काम का नही। इस विकास से न उसे ही लाभ है और न दूसरे को। इस प्रकार के यत्न से अन्त.करण पर गहरे कालिमा के धब्बे जम जाते हैं, जो कभी हटाने पड़ गए, तो बहुत परिश्रम की अपेक्षा रखेंगे। सर्वहित-कारिणी बुद्धि का विकास तो सत्य भाषण से ही होता है, जिस मे एक

वार कथन से यथार्थता दर्शा दी जाती है, इस में मन और बुद्धि शान्त रहती है। वह आगे चल कर जब चेष्टा-रहित हो जाती है, तो अपार शान्ति का अनुभव होता है। उस समय प्रशान्त निर्मल बुद्धि में ईश्वर का ज्ञान जिसे वेद-ज्ञान कहते है, ऐसे आना प्रारम्भ हो जाता है, जैसे स्वच्छ दर्पण में सूर्य किरण प्रवेश करते हैं अथवा ऐसे समझो जैसे प्रशान्त निर्मल जल मे सूर्य विम्ब स्पष्टतया दीख पड़ता है, वैसे ही सत्त्व गुण प्रधान इस बुद्धि में ज्ञान दीख पड़ता है। यह बुद्धि तत्त्व, प्रकृति का दूसरा परिणाम है, जिसे महत्तत्त्व भी,कहते हैं। ब्रह्मा भी उसी का नाम है, बाह्य जगत् मे ब्रह्मा जो व्यवहार होता है, वस्तुतः चतुर्वेदवेत्ता वह तब ही होता है, जब वह अपने बुद्धितत्त्व में चारो वेदो का ज्ञान झलकता हुआ देखता है। ऐसा पुरुष ही विरक्त होता है। जब तक यहाँ तक का बोध उपलब्ध न हो, तव तक शिखा रखनी चाहिए। वस्तुतः सन्यास की दीक्षा का यह ही काल है। उस समय शिखाच्छेद हो जाता है। वह अपनी विरक्तता मे सब वस्तुओ का संन्यास-पूर्णत्याग कर देता है। इस से पूर्व के तीनो आश्रम अनिवार्यतः उन्नति के है।"

श्री आत्मानन्द सरस्वती वेद प्रचार को ही सब परिस्थितियो मे मुख्य समझते थे। उन्हो ने आचार्य भगवान्देव जी को उन की रजत-जयन्ती से पूर्व जहाँ अन्य परामर्श दिए, वहाँ यह भी लिखा कि आप का वेद प्रचार का कार्य पहले से ही चल रहा है, यह अच्छी ही बात है। हमारा मुख्य उद्देश्य तो वेद प्रचार ही है। धन इकट्ठा हो गया, तब भी अच्छा और न हो सका, तब भी क्षति नही। जयन्ती के पश्चात् आप प्रान्त मे वेद प्रचार के काम को ही हाथ में लें और संस्था के बन्धन मे किसी और को बाँध दें। वेद प्रचार के विषय मे आप के हृदय में जो विचार धारा है, उस के धनी आप को संस्था से न जाने कब मिलेंगे। अत. अपने हाथो से जो कुछ हो सकता है, अभी करे।

एक प्रसङ्ग मे तुर्याश्रमसेवी उस महापुरुष ने कहा—

महर्षि दयानन्द के जीवन में वेद प्रचार कितनी वार दोहराया गया होगा, इस की गणना नही की जा सकती। यह ध्वनि उन की वाणी से नही, उन के एक-एक रोम से निकलता रहता था। उन के जीवन का लक्ष्य ही वेद प्रचार था। इसी लिए उन के कार्य क्रम की सारी घट नाओ का वेद प्रचार से सीधा सम्वन्ध है।

वेद प्रचार की योजना त्रिमुखी है—

(१) जिस में अध्यात्म विद्या, पदार्थ विद्या और प्राणी शास्त्र, इन तीनो ही विषयों पर वेद की भावनाओ को भली-भाँति दर्शाते हुए प्रकाश डाला गया हो। यह सब सामग्री वेद से एक ही स्थान पर क्रमानुसार और सरल एव सरस भाषा में पढने को मिल सके।

यह भाष्य आर्यसमाज के चुने हुए विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किया गया हो और इस पर समाज की सब सभाएँ सहमत हों।

तीनों विषयो से सम्पुष्ट चारों वेद ऐसे अच्छे ढङ्ग से छापे गये हों कि जिन्हे देखने और पढने को मन चाहे और तुरन्त ही कर्म कर लेनें की उत्कट इच्छा मन में जाग उठे।

उन की छपाई सुन्दर हो। स्थान-स्थान पर विषयो को स्पष्ट करने वाले मनोमोहक चित्र हों, बढ़िया सुन्दर आबन्ध (जिल्द) हो और विज्ञापन का सुन्दर प्रबन्ध हो।

(२) क्षेत्र को सुसज्जित करना—वेद प्रचार के इस विभाग को सज्जित करने का काम प्रचारको तथा विद्यालयो का है। प्रचारक वेदों के बतलाये गए तीन विषयो मे से किसी एक विषय के गम्भीर विद्वान् हों। जिन का अपने ही विषय के ढङ्ग का, उस के प्रत्येक विचार का अपने एक-एक रोम से प्रकट करने वाला वास्तविक अनुकरणीय जीवन हो। वे अच्छे डील-डौल वाले सुन्दर नवयुवक हों।

आर्य समाज के विद्यालयो मे चाहे वे गुरुकुल हों, विद्यालय हो अथवा महाविद्यालय हो कि वा कन्या पाठशालाएँ हो. इन सब संस्थाओं के वाल-वालिकाओं के ऊपर वैदिक सभ्यता के रङ्ग को चढाने की चित्ताकर्षक सुन्दर व्यवस्था हो।

वहाँ की भाषा वैदिक हो। शिक्षक वर्ग वैदिक सभ्यता के रङ्ग में रङ्गे हुए हो। आचार और विचार की दृष्टि से वे अपना एक ऊँचा स्थान रखते हो। अपने निरीक्षण मे आये हुए वालक-वालिकाओ को योग्य करने का पूर्ण उत्तरदायित्व अपने कन्धो पर लेने का उत्कट अभिलाष रखते हो। उन के साथ अपने सन्तानो की भाँति प्रेम कर उन्हे शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक तीनो ही दृष्टियो से ऊँचे उठाने के लिए हृदय मे एक विशेष प्रकार की लगन रखते हो।

(३) ×

× (वेद प्रचार को यह तृतीय योजना उपलब्ध नही है)।

आर्य वीर दल को सन्देश

विजय दशमी सवत् २००३ दिन शनिवार को रावलपिण्डी नगर के आर्यवीर दल ने अपनी शाखा का विशेष कार्यक्रम रक्खा। उस समय ओम्प्रकाश पुरुषार्थी, धर्मवीर, रामनाथ सहगल, रामशरण और पिशोरीलाल प्रेम प्रभृति प्रमुख आर्यवीर भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होने सभापति पद को सुशोभित करने के लिए महाराज से प्रार्थना की। अपने सभापति पद से श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने निम्न बातों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया—

"कोई भी व्यक्ति इस आर्यवीर दल को नवीन न समझे। यह उसी समय से चला आ रहा है, जिस समय से महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की थी। इन आर्यवीरो ने उस ओ३म् के झण्डे को हाथ मे लिया है, जो किसी देश विशेष का झण्डा नही, ससार का झण्डा है। जिन वेदानुयायी सभ्यजनो ने भारत के मस्तक को ससार मे ऊँचा किया है, उन्होने इसे ही अपने सम्मुख रखा है। आज भी यह आर्यवीर दल इसी पवित्र झण्डे को अपने हाथ मे लेकर संसार के मनुष्यो को भगवान् की पवित्र वाणी, आर्य सभ्यता, पवित्र भावनाएँ और उत्तम साहित्य देकर समस्त ससार के कष्टो का निवारण करना चाहता है। यह दल सभी सस्थाओं के साथ मिलकर उनके अधिकार को न दबाते हुये कार्यक्षेत्र मे उतरना चाहता है। रणस्थल मे भी यह अपना गौरव रखते हुए किसी पर छापा मारना नही चाहता। संसार मे विघ्न-बाधाओ को हटाकर उनके स्थान मे सुख का प्रसार करके प्राणिमात्र की उन्नति के लिए ही महर्षि ने आर्यो का सङ्गठन किया था, यह बात 'आर्यसमाज' इस शब्द के अर्थ से ही स्पष्ट लक्षित होती है।

यह दल आत्मिक, सामाजिक और मानसिक उन्नति करता हुआ दूसरो मे भी इसी का प्राबल्य देखना चाहता है।

आर्य वीरो! जब आपके जीवन मे साधुता और न्याय प्रियता का सुगन्ध बहने लगेगा, तब व्याख्यान-वेदी से व्याख्यान देने वन्द हो जायेंगे। केवल मस्तिष्क की शक्ति से ही काम न चलेगा। अधर्म को सर्वथा बाहर निकाल फेंक देने के लिए, भारत-जाति को ऊँचा उठाने के लिए, एक-एक आर्यवीर की भुजाएँ सदा फड़कती हो। आपका यह दल जहाँ मनुष्य मात्र को सुखी देखना चाहता है, वहाँ अन्य जन्तुओ की विपत्ति को भी उखाड़ कर उन्हे सुख की नीद सुलाना चाहता है।

हैदराबाद सत्याग्रह मे न केवल आर्य समाज पर विपत्ति थी, अपने सनातनी भाईयो के भी अधिकार अपहरण किये जा रहे थे। इस मानव के अधिकार की सुरक्षा के लिए आर्य समाज ने वहाँ जो बलिदान दिये, वे आज किसी से तिरोहित नही है।

आपका कर्त्तव्य बहुत ऊँचा है। यदि नमाज पढ़ते हुए किसी मुसलमान भाई पर प्रहार करके कोई उसकी नमाज छुड़वाना चाहता है, तो एक आर्यवीर की भुजा आततायी को दूर कर मुस्लिम भाई की रक्षा करेगी। यदि कोई सनातनी भाईयो के मन्दिर तोड़ने का साहस करता है, तो एक आर्यवीर की भुजा उस मन्दिर-भञ्जक को रस चखा कर रहेगी। आर्य वीरो ने सबके अधिकारो की रक्षा करने के लिए इस भारत भूमि पर जन्म ग्रहण किया है, उनका यह शरीर इसी कार्य मे बलिदान होना चाहिए।

इसलिए ऐ मेरे आर्य वीरो से पृथक् रहने वाले भाईयो! ये मेरे आर्य-वीर आपकी सहायता चाहते है। ये ससार मात्र के कल्याण के लिए अपनी भुजाएँ आगे बढाना चाहते है। ससार को इस भेड़िया-हडप वृत्ति से बचा कर आचार के क्षेत्र मे बढा हुआ देखना चाहते है। ये आर्य वीर किसी को भी अपनी शक्ति के बल पर उसके अपने धर्म से हटाना नही चाहते, हाँ उन्हे अपनी वैदिक प्रशस्त सम्मति अवश्य दे देना चाहते हैं और यह अधिकार प्रत्येक को होना ही चाहिए।"

महापुरुषों के कार्य द्वारा लोकसङ्ग्रह

श्री सदानन्द भिक्षु ने श्री महाराज के चरणो मे उपस्थित होकर पूछा—"महाराज, एक व्यक्ति तो ऐसी है, जो प्रतिदिन सन्ध्या और अग्निहोत्र करती है, इस नियम का वह कभी भी अतिक्रमण नही करती; किन्तु आचार-विचार से सर्वथा हीन है, किसी पर उसकी दया भी कभी प्रकाश मे नही आती। दूसरी व्यक्ति ऐसी है कि वह सन्ध्या अग्निहोत्र तो करती नही, परन्तु अपने श्रेष्ठ कर्मो के द्वारा जनता की प्रिय भाजन बनी हुई है। इन दोनो मे कौन उत्तम है?"

महाराज ने उत्तर मे कहा—दोनो प्रकार के मनुष्यो में दूसरी कोटि का मनुष्य अपेक्षाकृत अच्छा है। यदि वह अपने गुणो को अधिक प्रकाश मे लाना चाहता है, तो उसे सन्ध्या हवन तथा ईशाराधन भी अवश्य करना चाहिये। सबसे बड़ी हानि दूसरी व्यक्ति से इस बात की है—यतः मनुष्य उसे अच्छा समझते है, अतः उसका अनुकरण करने

का प्रयत्न करेंगे, यदि वह ईश्वर-वन्दन नही करती, तो दूसरे जन भी देखा देखी नही करेंगे । दूसरे अच्छे कर्मो मे भी लोगों की प्रवृत्ति बहुत कम होती है, फिर सन्ध्याहवन ईश्वरप्रार्थना और स्तुति मे कैसे हो सकती है ? जो व्यक्ति दूसरो की भलाई के साथ-साथ ईशाराधना मे भी तत्पर रहती है, उसका प्रभाव जनता पर विशेष रूप से पडता है ? उससे उसका अदृष्ट भी प्रशस्त होगा । अतः निज की तथा लोक-सङ्ग्रह की दृष्टि से भी प्रतिष्ठित व्यक्तियो को ईश्वर की ओर रुझान रखना चाहिए । ऐसा न करने पर कृतघ्नता दोष लगता है । ये सामाजिक नियम होते है, इन सामाजिक नियमो मे प्रत्येक छोटी-बड़ी व्यक्ति को परतन्त्र रहना चाहिये ।

स्वामी सदानन्द जी ने पुन पूछा—"कोई व्यक्ति पानी मे डूब रही है, वा किसी ऐसे ही अन्य सङ्कट में ग्रस्त हो गयी है, जिसे तत्काल सहायता अपेक्षित है, सन्ध्या हवन करते समय, उसके प्रति क्या कर्त्तव्य होगा ?" महाराज ने प्रतिवचन मे कहा—"उसी समय सब कार्य छोड कर चाहे वे कितने भी उत्तम हो, सङ्कटग्रस्त व्यक्ति का उद्धार करना चाहिये । वे कर्म पीछे भी किए जा सकते हैं । आपद्धर्म इसी का नाम है । एक प्रभु भक्त की भावनाओ मे, आवश्यकता पडने पर अपने नित्य कर्म आगे-पीछे कर लेने मे कोई अन्तर नही पडता ।"

महाराज ने आगे कहा—"जो लोग सन्ध्या नही करते, वे सन्ध्या के रहस्य को नही जानते । हम कहाँ थे ? अब कहाँ हैं ? और अभी कहाँ तक पहुँचना है ? अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किन-किन साधनो की आवश्यकता है और वे साधन कहाँ से उपलब्ध हो सकते हैं ? इन सब बातो का दिग्दर्शन सन्ध्या-मन्त्रो मे कराया गया है । जो व्यक्ति आत्म निरीक्षण न करती हुई, अपने भविष्यत् के जीवन को प्रशस्त नही करती, उसमे जितना बोध पहले से विद्यमान है, वह उसी आधार पर लोक कल्याण करने मे अग्रसर हो सकती है वा अपने ज्ञान को वृद्धि के लिए किसी मनुष्य का आश्रय ले सकती है । परन्तु उसे सोचना चाहिए कि उस मनुष्य का ज्ञान भी तो परिमित है । क्या ही अच्छा हो कि, वह सन्ध्या की यथार्थता को समझ कर नित्य-प्रति बोध के भण्डार, अखिल ब्रह्माण्डेश्वर के सान्निध्य मे पहुँच, उसके ज्ञान से अपने आत्मा को आलोकित कर ले । जब तक मनुष्य धनी नही, दूसरो को धन कहाँ से देगा ? त्रिकालाबाध्य बोध-धन भगवान् के अतिरिक्त और किसी के समीप नही है ।"

सन्ध्या के अर्थो को अवगत कराने के लिए, और उसे हृदय में सरल ढग से पैठाने के लिए कविता रूप में ओ३म् से लेकर सन्ध्या समाप्ति तक एक-एक मन्त्र को स्वामी जी ने भली भाँति खोला है जिसे आत्म तरङ्ग प्रथम मुक्तक में पढ सकते हैं।

दीपावली पर सन्देश

प्रत्युत्पन्नमति आत्मानन्द यतिवर्य ने श्री दयानन्द भिक्षुओं की कार्य-प्रणाली और उनके कार्य को आगे बढाने के लिये १९४६ में दीपावली के अवसर पर विशेष बल दिया:—

"भारत मे स्वराज्य नाम का उच्चारण करने वाले पहले महापुरुष ऋषि दयानन्द थे। व्यवहार के क्षेत्र में आ कर स्वराज्य की आधार-शिला भी वर्तमान युग मे सर्व प्रथम ऋषि दयानन्द ने ही रक्खी। यह बात किसी से छिपी नही है कि पूंजीवाद के विशाल गढ की नीव हिलाने के लिये खादी और स्वदेशी वस्त्र के महान् अस्त्र का आविष्कार प्रथम वार उन्होने ही किया। सङ्गठन की एक मात्र शृङ्खला एवं भारतीय सभ्यता की एक मात्र पालक जननी मातृभाषा, आर्य भाषा का सिहासन, भारत के ऊँचे गगन में पहले वार उन्होने ही बिछाया।

अस्पृश्यता, अनाथ तथा विधवाओ की अवेक्षा, मातृशक्ति की शिक्षा पर कुठाराघात, बालविवाह, वृद्ध विवाह, एक वर्ग को सदा पतन के गड्ढे मे पडे रहने के लिये विवश कर देने वाली जन्म की नाम मात्र वर्ण व्यवस्था, शिक्षा के नाम पर विदेशी सभ्यता का विष पिलाने वाली शिक्षा प्रणाली; और इसी प्रकार की अन्य भी देश को पतन की ओर ले जाने वाली कुप्रथाओं के बहिष्कार करने का आदेश भी सबसे पहले आपने ही दिया। यह बतलाने की आवश्यकता नही कि ये सब कुप्रथाये स्वराज्य के तथा धर्म के मार्ग मे खोदी गईं गहरी खाइयाँ थी। भूमण्डल के प्रत्येक भाग मे धर्म के नाम पर चले हुये मिथ्यावाद, रूढिवाद और पाखण्ड से होने वाली हानियो का उल्लेख कर धर्म के वास्तविक रूप विज्ञान का प्रकाश आज के मानव जगत् को ऋषि दयानन्द की ही देन है। धर्म का यही एक रूप है, जो आज धर्म के नाम पर फैली हुई फूट का सहार कर सारे धार्मिक जगत् को धर्म की एक पवित्र वेदी पर खड़ा कर सकता है और इसी प्रकार स्वराज्य के माग मे वस्तुत: अर्थ के आधार पर खड़ी की गई दीवार को चकना-

चूर करके स्वराज्य के पुजारियो के लिये निष्कण्टक मार्ग बना सकता है।

आर्य समाज ने देश की दशा सुधारने और उस पवित्र आत्मा महर्षि दयानन्द के महत्त्वपूर्ण सन्देशो को भूमण्डल पर फैलाने के लिये ही वेद प्रचार तथा शिक्षा विभाग को जन्म दिया। ये दो विभाग महर्षि की पुण्य स्मृति मे आर्य-समाज की ओर से खडे किये गये दो स्मृतिस्तम्भ हैं। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि हम इन दो विभागो को व्यावहारिक रूप देकर जिससे कि उन्हे महर्षि की पुण्य स्मृति कहने मे सङ्कोच न हो, ऋषि के ऋण से अनृण हो सकते हैं।

हम इस दिशा मे कितने चले, कहाँ-कहाँ मार्ग मे विचलित हुये और अब कहाँ खडे है? इस प्रकार अपने भूत और वर्तमान पर दृष्टि-पात करता हुआ प्रत्येक आर्य यदि आज के दिन को मनाने का यत्न करे, तो हम ऋषि की इन पुण्य स्मृतियो को व्यावहारिक रूप दे सकेंगे।

वेद के प्रचारको तथा आर्य जनता के जीवन मे वैदिक सभ्यता और सदाचार का स्पष्ट दृष्टिगोचर होने वाला चमत्कार, वेद प्रचार का पहला व्यावहारिक रूप है।

हम इस दिशा में चले है अवश्य, परन्तु अनेक स्थानो पर विच-लित भी हुये है और अब एक स्थान पर खडे हुये मार्ग की खोज मे हैं। यह बात प्रत्येक आर्य आत्मनिरीक्षण कर बिना कठिनाई के जान सकता है।

हम आरम्भ मे सब दृष्टियो से अपेक्षाकृत ऊँचे उठे, सदाचार और पारस्परिक प्रेम का स्तर ऊँचा किया, नेता बने, बीच मे कुछ न्यूनताये आईं और अब एक स्थान पर खडे हो सोच रहे है कि वेद प्रचार किस प्रकार हो? हम अपने प्राचीन कार्य-क्रम मे आई हुई न्यूनताओ का इतिहास के पृष्ठो से अध्ययन कर सकते है। हम अपनी पूर्व सफल-ताओ का चित्र अपनी दृष्टि के सम्मुख खीच सकते हैं और निराश न हो, उन न्यूनताओ का सशोधन कर, वेदप्रचार को व्यवहारिक रूप देने मे सफल हो सकते हैं।

हमे यह कहने में सङ्कोच नही कि वेद प्रचार के क्षेत्र मे पहुँचकर हमने जनता के समक्ष बडी ओजस्वी भाषा मे सुन्दर सिद्धान्त रक्खे, परन्तु अपनी विचार पुष्पमाला के पवित्र भूषण को हम अपने कण्ठ

में आचार के रूप में बहुत थोड़ी मात्रा में पहन सके। हम अपने विचारो के सुन्दर रङ्ग से जनता को रङ्गना चाहते थे, परन्तु जनता के कानों तक किसी की बात तब ही पहुँच सकती है, जब उसके प्रत्येक शब्द के पीछे आचार के वायु के वेग का प्रबल धक्का हो। अपनी इस आन्तरिक कमी को पूरा करने के लिये, आज के पवित्र दिन यदि हम अपनी वाणी के मनोहर पुष्प मे आचार का आकर्षक सुगन्ध डालने का सङ्कल्प कर सके, तो जहाँ ऋषि की स्मृति में हमारा यह दिन मनाना सफल होगा, वहाँ हम ऋषि को पुण्य स्मृति वेद को व्यावहारिक रूप दे सकेंगे।

अपने शिक्षा-क्षेत्र में हम कुछ अशों मे सफल हुए है, हमारे कार्य को उतने अश मे देश सफलता की दृष्टि से देख सकता है; परन्तु इस क्षेत्र के भी बहुत से अशो के विषय मे पूर्वोक्त विचार प्रकट करने के लिये विवश होना पड़ता है कि हमने अपने शिक्षित वर्ग पर अपनी सभ्यता का कितना रङ्ग चढाया ? इस प्रश्न का उत्तर हम जनता को सन्तोषजनक नही दे सकते। हम यदि इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर देने के लिये अपनी शिक्षा के भावी कार्यक्रम की सफल रूप-रेखा बना सके, तो इस क्षेत्र को भी अपने उद्देश्य के अनुकूल सुन्दर व्यावहारिक रूप देकर ऋषि का पवित्र स्मृति चिह्न बना सकेंगे।

हमने पहले कहा है कि स्वराज्य का नाम भारत मे सर्व प्रथम ऋषि दयानन्द ने लिया, उसके आधार स्तम्भ अनेक रूढ़िवादो एवं साम्प्रदायिक मतभेदों के बहिष्कार का भी आविष्कार उन्होने ही किया। हम जब तक महर्षि के सङ्केत के अनुसार आगे बढने का यत्न करते रहे, जनता हमारा अनुकरण कर, जितने हम आगे बढे थे, हमारे पीछे चली। परन्तु आज त्याग, तपस्या और कर्मपरायणता के क्षेत्र मे शेष राजनीतिक वर्ग आगे बढा जा रहा है और हम वही खड़े हैं। हमे अब और दौड़ कर आगे बढ़ना पडेगा तथा कार्य क्षेत्र मे जनता के सहयोगी बन, उसे ऋषि का यह सन्देश सुनाना पडेगा कि रूढिवाद और साम्प्रदायिक मत का संहार एव भारतीय सभ्यता का अङ्गीकार ही स्वराज्य प्राप्ति तथा उसके अचल रखने का एक मात्र उपाय है।"

नवाखली में विद्रोह

नवाखली में हिन्दु मुस्लिम दङ्गा हो चुका था, हिन्दू जनता के

रक्तपिपासु यवनो ने हिन्दुओं के साथ रक्त की होली खेली। हिन्दू जनता त्रायध्वम्-त्रायध्वम् पुकार उठी। मुस्लिम लीग से समझौते का पग बढाने वाली कांग्रेस का हृदय करुणा से काप उठा। महात्मा गान्धी ने दीपावली पर मनाई जाने वाली शोभाये सारे भारत के लिये निषिद्ध कर दी। तब स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने हिन्दु परिवारो के साथ हुये अत्याचार के विरोध मे महात्मा गान्धी के आदेश को दुहराते हुये रावलपिण्डी नगर में अनेक सभाये की, उनमे भाषण दिये और कहा—"पूज्य महात्मा गान्धी ने सवत् २००३ की इस दीपावली के दिन भारत को सन्देश भेजा है कि ऐ भरतवासियो ! आज दीपावली की प्रथा मना कर प्रसन्न होने का दिन नही है। आज तुम प्रसन्नता मनाने योग्य नही रहे। आज मर्यादा पुरुषोत्तन राम के विजय का दिवस नही है। विजय-प्रसन्नता उन्ही के साथ विदा हो चुकी है। आज तो तुम पराजय दिवस मनाओ।

भारत की सभ्यता और भारत का इतिहास अब तक यही बताता चला आ रहा है कि तुम निरपराधियो पर अत्याचार मत करो। उदाहरण के रूप मे हम शिवाजी के काल को ही लेते हैं। शिवाजी महाराज के काल मे आर्यकन्याओ पर यवनो ने अत्याचार की सीमा को अतिक्रान्त कर दिया था। इसके फलस्वरुप किसी साहसिक युवक ने राजदरबार की एक यवन कन्या शिवा जी मरहठा के दरबार में लाकर उपस्थित कर दी। यदि उनकी दैत्य-दृष्टि होती, तो यवनो की भाँति उस पर अत्याचार किया जा सकता था, परन्तु उस समय शिवा जी मरहठा को यदि किसी बात का दुःख हुआ, तो वह इस बात का कि प्राचीन आर्य सभ्यता को भुला कर, मेरे राज्य मे एक विजातीय-अबला कन्या, जिसने स्त्री समाज मे किसी प्रकार की हानि नही पहुँचाई, एक क्षत्रिय वीर के द्वारा कैसे लाई गई। यह थी आर्य सभ्यता जिसको भुलाकर राजनीतिक क्षेत्रो मे भी आज अत्याचारा की बोछार हो रही है। जहां निरपराध पर अत्याचार करना पाप है, वहां निरपराधो पर हुये अत्याचारो को सहते चले जाना घोर पाप है।

रात्री के १२ बजे गङ्गा की रेती पर टहलते हुये आर्यसभ्यता के पुजारी महर्षि दयानन्द का हृदय अपने भारत के दुराचारमय समय को देखकर, अनेक अनाथो के भयङ्कर दृश्यो को देखकर और यह देखकर कि भारत अपनी सभ्यता को भूल कर दूसरो से सभ्यता सीखने के लिये नतमस्तक हो रहा है, कांप उठा था।

आर्य जनता ने अपनी चिर-पोषित आर्य मर्यादा का पालन किया और आगे भी करेगी, किन्तु किसी के द्वारा किये गये अत्याचार को सहना उसने नही सीखा। इसलिये पूज्य महात्मा गान्धी आज दीपमाला निषिद्ध कराके देश को सन्देश दे रहे हैं कि तुम वीरो की भाँति मरना सीखो। बहुत सह चुके, अब सहने के दिन नही रहे। अब तो अपने हाथो मे शस्त्र संभालो और शत्रु को दिखा दो कि निरपराधो पर अत्याचार किस प्रकार किये जाते है।

हिसा की बढती हुई बाढ को रोकने के लिये शस्त्रास्त्रो की आवश्यकता है। समझ लो हिसा को सहने वाला, हिसा को बढाने वाला है। जब तक शरीर मे रक्त की एक बून्द भी शेष है, आगे बढते चले जाओ। पग पीछे हटाना कातरता का लक्षण है।

महात्मा गान्धी दुराचारी के दुराचार को मिटाकर दुराचारी को समाप्त करना चाहते है। दिवाली को बन्द कराके उनकी यह हृदय की घोषणा भारत के कोने-कोने मे पहुँच जानी चाहिये।"

इस प्रकार रावलपिण्डी मे स्थान-स्थान पर सभाये करके प्रसुप्त हिन्दु सिहो को महाराज ने जगा दिया, जिससे तत्स्थानीय यवनों के साहस परास्त होने प्रारम्भ हो गये और उस समय होने वाली दुर्घटनाये टल गई।"

घास की तङ्गी के कारण रोहतक की सरस्वती गोशाला को समाप्त करने का समाचार जब महारा पढा तो ३०-११-४७ को पत्र डालकर यह अभिलाष व्यक्त किया कि आचार्य भगवान्‌देव जी वहाँ से पता लगाये, यदि गौवे अच्छी मिल रही है, तो हम यहाँ एक गोशाला खोल दे।

सिन्ध सरकार द्वारा 'सत्यार्थप्रकाश' पर प्रतिबन्ध

सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध को वार्ता भारत वर्ष के समस्त आर्यजनो मे व्याप्त हो गई। यह स्मरणीय और उल्लेखनीय है कि जब-जब भी आर्य समाज पर सङ्कट के बादल छाये है, तब-तब समस्त भारत के आर्य समाजो ने मिलकर उन्हे छिन्न-भिन्न किया है।

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने उस अवसर पर आर्य समाज और यवन मत की तुलना करते हुये आर्य समाज के विषय को अगले शब्दो मे इस प्रकार अभिव्यक्त किया।

(१) लाठी के बल से इसलाम का विस्तार हुआ है, उसकी अपनी प्रशस्तियो से नही ।

(२) युक्तियो एव तर्कों से इसलाम परास्त हो चुका है, यह किसी से तिरोहित नही ।

(३) इसलाम ससार के दूसरे मतमतान्तरो को निमन्त्रण नही दे सकता, क्योकि उसमे अन्यो द्वारा की गई समालोचनाओ को सहन करने की शक्ति नही ।

(४) भारत-रक्षा विधान का दुरुपयोग पाकिस्तान-मनोवृत्ति का प्रथम उदाहरण है ।

(५) आर्य समाज एक प्रतिष्ठित, सङ्घटित और जीवित सस्था है, वह अनुशासन का पालन करना जानती है, अत अपनी प्रधान सभा के सङ्केत के बिना उसका आगे पग नही उठ सकता । हम देख रहे है कि सभा क्या निर्णय करती है । नेता हमे क्या आदेश देते है । आदेश पाते ही आर्य समाज का एक-एक बच्चा सत्यार्थ प्रकाश के लिये जीवनोत्सर्ग को समुद्यत है । सिन्ध राज्य सरकार ने निमन्त्रण तो दिया है, परन्तु हम देखेगे कि आर्य समाज के आते हुये प्रबल शान्ति प्रवाह को वह किस प्रकार रोकेगी ।

सिन्धी सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवे समुल्लास पर प्रतिबन्ध के परिणामस्वरूप, पर्याप्त विचार विमर्श के पश्चात् सत्याग्रह प्रारम्भ कर देने की घोषणा कर दी गई, और निश्चय हुआ कि सर्व प्रथम १—महात्मा नारायण स्वामी जी, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान २—पण्डित धुरेन्द्र शास्त्री प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश, ३—श्री खुशहालचन्द्र जी आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, ४—कुंवर चान्दकरण शारदा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, ५—स्वामी अभेदानन्द जी भूतपूर्व प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार और पण्डित लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित, ये नेता सत्याग्रह करेगे । १४ जनवरी १९४७ को सिन्ध सरकार को सात दिन की चेतावनी दी गई कि २२ ता० को हमे सत्याग्रह करने के लिये बाध्य हो जाना पडेगा । इन बीच के दिनो मे सिन्ध मे ही सत्याग्रह के सम्बन्ध मे भाषण होते रहे और २१ ता० को अवधि समाप्त होने पर आगे भी सत्याग्रहियो के विरुद्ध कोई कार्यवाही नही की गई । तब श्रीनारायण स्वामी जी ने घोषणा कर दी कि हम समझते है कि सत्यार्थ प्रकाश

पर कोई प्रतिबन्ध नही रहा, इससे आगे हमारा कोई कार्यक्रम न होने के कारण हम शीघ्र उलटे चले जायेगे।

सिन्ध सरकार ने किसी भी सत्याग्रही को निगृहीत (कैद) न करना तथा सिन्धी सत्यार्थ प्रकाश की प्रतियों को न छीनना जो उचित समझा था, वह देश की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो को ध्यान मे रखकर दोनो दलो ने बुद्धिमत्ता का परिचय दिया था। २। वर्ष निरन्तर छुट-पुट सङ्घर्ष के पश्चात् आर्य समाज सिन्धी सत्यार्थ प्रकाश के १४ वे समुल्लास के विषय में निश्चिन्त हो गया।

इस प्रकार स्वामी जी महाराज का एक ओर से ध्यान विरत हुआ, तो प्रादेशिक समस्या भिन्न रूप से अपना रङ्ग दिखाने लगी—

पञ्जाब में व्यापक विद्रोह

जनवरी सन् १९४७ के प्रारम्भ में ही रावलपिण्डी के समीप हजारा मण्डल में उपद्रव प्रारम्भ हो गये। शरणार्थियो का गमन-मार्ग गुरुकुल के समक्ष से होकर रावलपिण्डी को था। बहुत से शरणार्थियों ने गुरुकुल के समक्ष काश्मीर महापथ पर विद्यमान एक पथिकशाला मे शरण ली। दो दिन विश्राम लेकर वे 'रावलपिण्डी' चले गये। इस प्रकार विभिन्न मार्गो से दस सहस्र की सङ्ख्या मे शरणार्थियो ने रावलपिण्डी नगर मे शरण ली। लगभग ५०० शरणार्थियो को स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने लुण्डा बाजार के आर्य मन्दिर मे देखा। इसी प्रकार अन्य मन्दिर तथा धर्म स्थान शरणार्थियो से पूरित थे।

स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती एकपदे श्री महाशय देवीदास जी के समीप पहुँचे। वे ट्रङ्क बाजार के कालिज विभाग आर्य-समाज मे पण्डित हरिनन्द जी शास्त्री से कुछ अध्ययन कर रहे थे। स्वामी जी ने कहा—"आपके लिये यह अध्ययन का समय नही है। सेवा करने का समय है। हजारा मण्डल के शरणार्थी आर्यसमाज मे बहुत क्लेश सह रहे है।" महाशय देवीदास जी ने स्वामी जी को अकस्मात् आकर ऐसा कहते देख अपना पुस्तक उलटा करके रख दिया और विनम्र अभिवादन के पश्चात् आदेश शिरोधार्य करके देवीदास जी शरणार्थियो के समीप पहुँचे और उनकी सेवा में प्रवृत्त हो गये। वहाँ भागवन्ती जी और ओम्प्रकाश जी भी सेवा मे प्रवृत्त थे ही।

हजारा मे उपद्रव होने के पश्चात् व्यापक उपद्रवों की आशङ्का

होने लगी। स्वामी जी समाज मन्दिर मे खड़े थे। महाशय देवीदास जी भी उनके साथ थे। कुछ आर्य वीर दल के सदस्य आये। वे स्वामी जी का रूपित्र (फोटो) लेने के इच्छुक थे। स्वामी जी को यह रुचिकर प्रतीत न हुआ। उन्होने देवीदास जी को पृथक् ले जाकर कहा—"इन्हे निषेध कर दो, रूपित्र लेना ठीक नही।" इस वार्तालाप के मध्य मे ही देवीदास जी ने आर्य वीर दल के सदस्यो से सङ्केत कर दिया था और रूपित्र ले भी लिया था। स्वामी जी को भान भी नही हुआ।

प्रतिदिन ५०० से १००० तक व्यक्तियो के भोजन का प्रबन्ध स्वामी जी करने लगे। रावलपिण्डी मे किसी समय भी उपद्रव की आशङ्का देख, स्वामी जी ने कुछ शरणार्थियो को पटियाला भेज दिया, कुछ ब्राह्मणों को रावल ग्राम मे नम्बरदार ईश्वरदास की सहायता से बसाया। फिर सीमान्त प्रदेश से प्रथम श्रेणी के दण्डाधिकारी श्री दीवान रामस्वरूप जी रावलपिण्डी आये। उन्होने स्वामी जी से प्रार्थना की कि इन ब्राह्मणों को पुनः इन्ही के सीमान्त मे भेज दीजिये। वहाँ अब कोई आशङ्का नही है। राज्य ने पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है। श्री दीवान रामस्वरूप के इस आश्वासन पर स्वामी जी ने शरणार्थी ब्राह्मणो से कहा—"आप लोग अब अपने ही प्रदेश मे चले जायें, आपकी भूमि भी आप को लौटा दी जायेगी।" शरणार्थियो को वहाँ पुन उपद्रव हो जाने की आशङ्का थी, अतः जाने से निषेध किया, तब स्वामी जी ने कहा—"यहाँ भी तो विद्रोह हो सकता है।" इस भविष्यद्वाणी पर भी वे अपने प्रदेश मे नही गये।

निज सरक्षण के लिये हिन्दू एक वैतस्तिक* चाकू भी नही रख सकते थे। गुरुकुल मे एक अनुज्ञप्त प्रणलिका+ १५ वर्ष से अवश्य थी। यवनो के विद्रोह की गतियाँ जानने के लिये श्री स्वामी जी के एक शिष्य श्री मेधातिथि थे। वे १० वर्ष तक यवन-समाज मे रहकर, तत्सम्बन्धी मर्यादाओ से परिचित हो चुके थे। कुरान के प्रकाण्ड विद्वान थे। वे अल्पवय मे ही गुरुकुल भक्ताँ से यवन-समाज मे चले गये थे। इन उपद्रवो की आशङ्काओ के दिनो मे वे अपनी यवन-वेषभूषा से विभूषित मोलवियो की भाँति प्रति शुक्रवार को नमाज पढने रावल-पिण्डी नगर मसजिद मे जाते थे और वहाँ का विवरण प्राप्त कर लौट आते थे।

---

* बालिश्त लम्बा। +लाइसैन्स्ड राइफल।

तुर्याश्रम सेवी उस महापुरुष को विद्रोह से संरक्षण की चिन्ता केवल गुरुकुल की ही नही थी। वे प्रतिदिन निकटवर्ती हिन्दू जनता को जागरूक रहने के लिये चेतावनी भी देते रहते थे। एक दिन दयानन्द भिक्षुमण्डल के ब्रह्मचारियो, वानप्रस्थों, और संन्यासियो को आहूत करके स्वामी जी ने कहा—"दुर्गरूप गुरुकुल की चार दीवारी के भीतर चारों ओर कक्ष बनाये गये हैं। पूर्व और दक्षिण दिशा की ओर दोनो प्रवेश द्वारों में लोहे के किवाड हैं। सम्पूर्ण कक्ष इस प्रकार से बनाये गये हैं कि एक कक्ष से दूसरे कक्ष मे जाने के लिये द्वार हैं। सबसे अन्तिम कक्ष† मे, जो दक्षिण मे लोह द्वार के निकट है। निःश्रेणि* लगा कर छत पर जा सकने के लिये भी मार्ग है। दक्षिण दिशा की सब छते लकड़ी की है। उत्तर दिशा मे निर्मित सब कक्षो की छते वज्रचूर्ण‡ की हैं। यदि आक्रान्ताओं द्वारा लकडी की छते जला दी जावे, तो वज्रचूर्ण‡ की छतो पर आकर आक्रान्ताओं पर प्रत्याक्रमण करना होगा। दक्षिण दिशा में लोह द्वार के ऊपर गोलीविसर्जन गृह+ है, जिससे तीन दिशाओ का आक्रमण विफल किया जा सकेगा।"

ऐपटाबाद निवसी सेवा-निवृत्त अभियन्ता— श्री रायबहादुर लालचन्द जी, जो गुरुकुल भूमि मे अपनी कोठी बनाकर निवास करते थे और रावल ग्राम के मुखिया को बुलाकर श्री स्वामी जी ने सङ्केत किया कि विद्रोह-प्रसङ्ग पर आप सभी को बाल-बच्चो समेत गुरुकुल में आ जाना चाहिये अन्यथा रक्षण होना कठिन है। इस उद्‌बोधन के अनन्तर शुक्रवार ५ मार्च के प्रातः, स्वामी जी नागरिक जनो को सूचित करने के लिये रावलपिण्डी चले गये। उसी दिन ज्यो ही सूर्यास्त हुआ, गुरुकुल के समक्ष मरीपथ से होते हुये विद्रोही "पाकिस्तान जिन्दावाद, अल्ला हो अकबर" के समाघोष लगाते हुये नगर की ओर जारहे थे। दूसरी दिशाओ से भी इसी प्रकार विद्रोहियो के मुसलमानी टोले आ-आकर नगर को चहुँ ओर से विशाल योजना के साथ आक्रमण करने के लिए घेर रहे थे। दिगन्त व्यापी समाघोषो से भयभीत होकर समीपवर्ती ग्रामीण जन अपने-अपने घरो का परित्याग करके गुरुकुलके सुरक्षित स्थान मे आ गये और प्रातः होते ही घर लौट गये।

कुछ रात्रि अतिक्रान्त होते ही नगर मे 'पाकिस्तान जिन्दावाद, अल्लाह हो अकबर' के समाघोष प्रतिध्वनित होने लगे। हिन्दुओ की

†कमरा। *सीढी। ‡सीमेंट। +मोर्चा। —रिटायर्ड इञ्जीनियर।

ओर से भी समाघोष सुनाई दे रहे थे। चिरकाल अतिवाहित होने पर स्वामी जी ने कहा—हिन्दूपक्ष निर्बल है। फिर भी साहस और धैर्य वाला पक्ष ही ऐसे अवसरो पर विजयी हुआ करता है।

समाघोषो से वातावरण विद्रोहात्मक हो उठा और विद्रोह की अग्नि-ज्वालाये स्थान-स्थान पर प्रकट हो गयी।

इतने व्यापक रूप मे उपद्रव होने का कारण एक यह भी था कि गत दिवस पाठशालाओ के विद्यार्थियो ने संयात्रा निकाली और रात्रि को सिंह सभा मे बृहद् अधिवेशन हुआ, जिसमे सनातन धर्म, आर्यसमाज, जैनसमाज, और हिन्दूमात्र को आमन्त्रित किया गया था। सिक्ख भी सम्मिलित थे। सिक्खो ने उत्तेजनापूर्ण भाषण दिये और कहा "धर्म-युद्ध आरम्भ हो गया है, सबको एक मत हो कर यवनो की चुनोती स्वीकार करनी चाहिये" ये वृत्तान्त विद्युत्-सञ्चार के समान सर्वत्र विस्तार पा गये और यवनो ने नगर को चहुँ ओर से घेर कर उस पर आक्रमण कर दिया। वीर सेनानी स्वामी जी ने बहुत पहले से ही नगर मे दौड धूप करके हिन्दू समाज को मुसलमानो के आक्रमण का निवारण करने के लिए बद्धपरिकर एव उत्साहित कर दिया था। इसके परिणाम स्वरूप आर्यसमाज के प्रधान नरेन्द्रनाथ मोहन ने ग्वालमण्डी मे हिन्दुओ और सिक्खो पर कोई आच न आने दी। अपनी प्रणलिका और परि-क्राम लेकर वे और उनके सुपुत्र पहरे पर डटे रहे। मरीपथ के स्थान को टिक्का साहब ने और एक सिकलीगर ने सँभाल लिया। दोनो नगर मुहल्लो की रक्षा कुछ मुहल्ले के हिन्दू नवयुवको ने की। तलवाड वाजार सराफा बाजार, सैदपुर मुहल्ला आदि मे हिन्दू नवयुवक टोलियो मे बटे हुए डटे रहे और मुसलमानी मुहल्लो में हिन्दूओ पर किये मुसलमानी प्रहारो का द्विगुणित उत्तर देते रहे। इस प्रकार रावलपिण्डी नगर पर विशाल योजना के साथ किया गया मुसलमानो का प्रबल आक्रमण निष्फल कर दिया गया। इस अपने आक्रमण की अवस्था को देखकर मुसलमानो ने समझ लिया कि रावलपिण्डी नगर पर उनका सफल होना असम्भव है। इस कारण उन्होंने अपना मुख ग्रामो की ओर मोड़ दिया। नगर के मुसलमान भी इस परिणाम को देख कर भयभीत हुए।

कुरङ्ग नदी पर स्नान करते हुये गुरुकुल के अध्यापको को उडती हुई यह सूचना मिली थी कि कल दोपहर पश्चात् २ वजकर २० मिनट पर गुरुकुल पर आक्रमण होगा। इसी आधार पर रविवार के दिन

७ मार्च को ३ घण्टे पूर्व से ही आक्रान्ताओ की प्रतीक्षा की जाने लगी। १ बज कर १५ मिनट पर लाल रग के दो सर्वयानों से, जो चार दशिमान* दूर रुक गये थे, विद्रोही सहसा उतर कर गुरुकुल की ओर भागे। रावलपिण्डी से कोहमरी की ओर लौटते हुये उस आक्रमणकारी टोली मे उपद्रवी राक्षस सात सौ थे। प्रतीत होता है, किसी अन्य साधन से वहाँ-इतनी व्यक्तियाँ एकत्रित हो गयी थीं, जो इकट्ठा आक्रमण करने के लिये मुसलमानी आपणो÷ में छिपी रही। इसी स्थान से रामकुण्ड की ओर दूसरी मण्डलरथ्या+ जाती है।

दयानन्द भिक्षुमण्डल मे प्रविष्ट एक सत्यप्रकाश आर्ययुवक सन्यासी थे। वे छत पर खड़े होकर लाठी घुमाते हुये चिल्लाने लगे—"आ गये, आ गये—चलो चलो।" वे इस प्रकार एक मिनट ही बोल पाये थे कि गोली सीधी उन्ही पर आ लगी। वे घायल हो कर विरामदे की निचली छत पर कूद पड़े और ज्यो ही गुरुकुल से ब्रह्मचारी सेवाराम जी ने गोली चलाई, सभी आक्रान्ता भूमि पर लेट गये। उन सब के हाथो मे कृपाण थे २०० मान (मीटर) दूरी पर लेटे-लेटे ही प्रत्याक्रमण से बचाव कर रहे थे।दोनो पक्षो से निरन्तर गोलियाँ चलने लगी। उनमें से किसी साहसी ने आंखो से बचकर गुरुकुल की खिड़की तक पहुँच जाने मे सफलता प्राप्त कर ली और मार्त-तैल× छिडकर कर आग लगा दी।

इस क्षति-पूर्ति की सम्भावना थी, क्योकि स्वामी जी ने पहले ही गुरुकुल भवनो का गोपलेख (बीमा) कराया हुआ था।

कुछ विद्रोहियो ने दूर-दूर बचकर निकलने में सफलता प्राप्त की और राय बहादुर लालचन्द एवं उनके भृत्य निहाल सिह को, जो इस भावना से गुरुकुल-दुर्ग मे नही आये थे कि आक्रमण गुरुकुल पर होगा, हम बच जायेंगे, जाकर घेर लिया। उन दोनो को कुल्हाडो की गहरी चोटें आई। इसके पश्चात् कोठी मे आग लगा दी गई। रावल ग्राम भी गुरुकुल मे इसी दृष्टि से नही आया कि गुरुकुल पर आक्रमण होने से वे अपने ग्राम मे ही सुरक्षित रह सकेंगे। दो चार परिवार अवश्य आये। शेष एक पर्वतीय टीले पर केवल एक प्रणलिका लिये, बैठे हुये गुरुकुल पर हुये आक्रमण को देखते रहे। दोनो पक्षो से गोलिया निरन्तर दो घण्टे तक चलती रही, गुरुकुल पक्ष के चार पुरुप घायल हुये। उनके कितने हुये यह पता नही लगा, किन्तु दो तो जीवन से वियुक्त कर ही दिये थे।

---

*दो फर्लाङ्ग। ÷दुकानो। +पक्की सड़क। ×पैट्रौल।

अपने दो शवो को भूमिगत करने के लिये वे सभी युद्ध भूमि से एक नूरपुर मुसलमानी ग्राम मे चले गये। सहानुभूति मे रावल ग्राम के नम्बरदार श्री ईश्वर दास जी भी साथ गये। खान-पान और शव-क्रिया से निवृत्ति पाकर जब वे आक्रमणकारी सूर्यास्त के समय पुन गुरुकुल की ओर को लौटे, तो एक, दो गोली चलाते हुये दूर ही दूर रावल की ओर बढे चले। ग्रामीण वहाँ सुरक्षित न थे। उपद्रवियो ने एक-दो को जीवन से पृथक् कर उनसे आत्मसमर्पण करा लिया और उनकी प्रणलिका ले ली। ग्राम लूट लिया और लूटकर सारे ग्राम मे आग लगा दी। रात चाँदनी थी। वे लोग हिन्दू-ग्रामो मे नृशस अत्याचार करते लूटते खसोटते और आग लगाते हुए, आगे बढते रहे। उस रात्री में पाँच ग्रामो मे आग लगी हुई थी। वे धक् धक् जल रहे थे। सूर्योदय के अनन्तर ९ बजे तक आकाश मे इतना धुआँ व्याप्त था कि सूर्य का प्रकाश ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे वह हलकी बदलियो से आच्छन्न हो गया हो।

सेना द्वारा गुरुकुल को सरक्षण मे ले लेने के लिए श्री बालकृष्ण जी एक दूसरे अध्यापक जी को लेकर रात्री को ही छावनी मे चले गये थे किन्तु सेना से आश्वासन न मिलने पर वे गुरुकुल लौट आये।

रघुनाथ और कपिलदेव दो भिक्षु प्रात ३।। बजे आकर बोले — पण्डित जी ! हम जाना चाहते है, आज्ञा दी जाये। पण्डित जी ने कहा–"ऐसी अवस्था मे कोई किसी को सरक्षण नही दे सकता, यह तो अपने ही साहस पर निर्भर है कि प्रत्येक व्यक्ति उपद्रवियो से भूझे। ऐसे अवसरो पर उचित तो यही है कि स्वार्थ भावना को एक ओर रख कर सबके दु ख-सुख मे सम्मिलित हुआ जाये।"

थोडी देर पश्चात् पुन. दोनों आकर कहने लगे–"पण्डित जी हम तो आज्ञा ही चाहते है, हमे जाने दिया जाये।" पण्डित जी बोले–"आप लोग जैसा चाहे करे, आप स्वतन्त्र हैं।" वे दोनो चले गये और चार दशिमान दूर पहुँचने पर मुसलमानो के आपण पर बैठी व्यक्तियो ने उन्हे बहुत पीटा। एक का मुख सर्वथा टेढा हो गया था।

यह अच्छी बात थी कि गुरुकुल विभाग के छोटे ब्रह्मचारियो को, न तो किसी प्रकार की चोट ही पहुँची और न ही उन्होने साहस खोया। वे निरन्तर पानी के अभाव मे मिट्टी खोद-खोदकर लगाई गई

आग को उससे बुझाते रहे। साहस और धैर्य रखने की यह सम्पत्ति पञ्जाबी अपने जन्म से लेकर आये है।

उस उपद्रव में यह प्रत्यक्ष देखने को मिला कि जिसने भी स्वार्थ-भावना से अपने सरक्षण की चेष्टा की, वह बच न सका।

गुरुकुल पर आक्रमण किये जाने का परिज्ञान रावलपिण्डी नगर में ही दिव्य स्वामी आत्मानन्द जी को हो गया। वे लाला तेजभान जी सेठी को साथ लेकर भयानक मार्गों से निकलते हुये सहायक मण्डल निरीक्षक* और मण्डलोपायुक्त‡ के समीप गये। उनसे ब्रह्मचारियो को गुरुकुल से लाने के लिए साहाय्य मागा; परन्तु उन्होने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। वहाँ एक गुप्तचर विभाग-निरीक्षक श्री चुन्नीलाल मलहोत्रा भी काम पर लगे हुये थे। उन्होने कहा कि ये आपको कुछ सहायता न देंगे। जब ये चले जावे, तब आप सायङ्काल को थाने मे आ जावे। मैं आपके साथ आरक्षी+भेज दूँगा। सर्वयान÷आप अपने लेते जाना इस कथन पर स्वामी जी वहाँ से लौट आये और गुरुकुल के प्रधान मन्त्री श्री नरेन्द्रनाथ मोहन से दूरभाष× द्वारा सर्वयानों के लिए वार्तालाप किया। उनके मेल जोल से एक अग्रेज ने आक्रमण का भय होते हुए भी दो सर्वयान÷ दे दिये।

८ मार्च सोमवार को गुरुकुल में छतो पर चारों ओर गोली विसर्जन गृह बना लिये गये थे। परन्तु जब तक प्रणलिका न हो, तब तक क्या ? केवल यही कि एक प्रणलिका से ही समय-समय पर सब स्थान सँभाले जावे, जिससे आक्रान्ताओ को भय हो जावे कि इनके समीप बहुत सी प्रणलिकाएँ है।

नम्बरदार श्री ईश्वरदास जी ने श्री प० विद्याधर जी स्नातक को समाचार दिया कि उपद्रवियो का निर्णय है कि गुरुकुल को प्रस्फोटन द्वारा उडा दिया जावेगा और जिस प्रकार इन्होने हमारी दो व्यक्तियाँ मारी हैं, हम भी इनकी दो मूर्तियाँ लेगे। अत आप शीघ्र सरक्षण का उपाय कर लीजिये।

---

*ए० टी० आई०। ‡डी-सी +पुलिस। ÷बसें। ×फोन।

समय की परिस्थिति को देखकर श्री पं० विद्याधर जी और ब्रह्मचारी सेवाराम जी ने उन्हे सहर्ष अपना जीवन देने के लिए प्रस्तुत कर दिया, जिससे और सभी का सरक्षण हो सके एव यह निश्चय कर दिया गया कि वे दोनो ही यहाँ ठहर जावे; क्योकि घायल व्यक्तियो के समीप भी किसी का रहना आवश्यक ही है। शेष सभी सूर्यास्त के समय थोड़ा अन्धेरा होने पर गुरुकुल से निकल जावे और नगर मे शरण ले ले। गुरुकुल ने डटकर शत्रु का साम्मुख्य किया है, अब उसे कोई कातर नही कह सकता। इस कृत-निश्चय के अनुसार चैत्र कृष्णा प्रतिपदा मे गुरुकुलवासी, स्व-विद्या-मातृभूमि को सदा के लिये परित्याग कर निकल पडे राजपथ से न जाकर, जङ्गल से होकर बच निकलना था। ब्रह्मचारी सेवाराम जी प्रणलिका के साथ थोड़ी दूर तक पहुँचाने के लिये आगे-आगे चल रहे थे। राजपथ को पार करके ज्यो ही एक गेहूँ के खेत में पहुँचे कि दो सर्वयानो का प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। सब वही बैठकर देखने लगे कि सर्वयान यदि गुरुकुल की ओर मुड़ते हैं, तो अवश्य ही इनमें आक्रान्ता होगे। वे गुरुकुल की ओर ही मुड़ गये। गुरुकुल मे पहुँचने के उपरान्त श्री स्वामी आत्मानन्द जी द्रुतगति से उतरे। वही एक फज़ल इल्लाही भृत्य खड़ा था, जो गुरुकुल का गोपाल था। स्वामी जी नें प्रिय गोपाल से कहा—"शीघ्र द्वार खुलवाओ।"
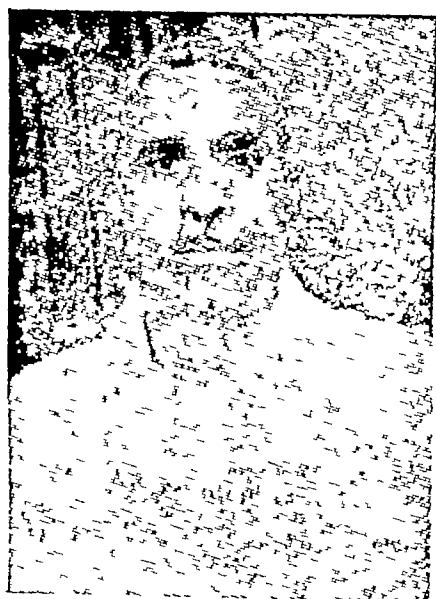
(पण्डित विद्याधर जी स्नातक)

भृत्य—"स्नातक जी! स्वामी जी आये, स्वामी जी आये, द्वार खोलो।" स्नातक जी को विश्वास न आया और ऊपर जाकर भृत्य से पूछा—"क्या बात है?"

भृत्य—स्वामी जी नीचे खड़े हैं, द्वार खोलिये।

स्नातक जी ने महाराज को देखकर झट से नीचे आकर द्वार खोला।

स्वामी जी—सबसे कहो, कि सर्वयानों में बैठ जावे।

स्नातक जी—वे सब चले गये, अब तो यहाँ केवल घायल ही है।

स्वामी जी—कोई नही बच सकता, सब मारे जायेगे, कही से भी बचकर नगर में पहुँचने की आशा नही है। गये हुये कितनी देर हुई है ?

स्नातक जी—केवल पन्द्रह मिनट।

स्वामी जी—तब तो यही कही निकट होगे, शीघ्र देख लो।

स्नातक जी—"अच्छा स्वामी जी, जाता हूँ। देखता हूँ। यदि कही मिले तो।" (सर्वयानो के साथ स्थानक अधिकारी* और छह आरक्षी-∸ व्यक्तियाँ थी)।

आरक्षी—स्वामी जी! ये सब वस्तु यवन लोग लूट ले जायेंगे। घी और शक्कर हमे ही दे दीजिये।

स्वामी जी—"जितने चाहो शक्कर और घी के कनस्तर उठा सकते हो।" आरक्षी दल ने दो कनस्तर घी और दो बोरी मीठा सर्वयानों+ मे रख लिया। (श्री पण्डित विद्याधर जी स्नातक खोजकर तथा पुनः लौटकर)

स्नातक जी—स्वामी जी! वे तो नही मिले।

स्वामी जी—बचना कठिन है, पुनः यत्न करो।

स्नातक जी—अच्छा जी। देखता हूँ। (झटिति लौट जाते है)

गुरुकुलवासियो को गेहूँ के खेत मे बैठाकर ब्रह्मचारी सेवाराम जी यह देखने गुरुकुल की ओर चले थे कि ज्ञान करता हूँ—सर्वयानो+ मे कौन है ? प्रणलिका उनके साथ थी। स्नातक विद्याधर जी और ब्रह्मचारी जी का मार्ग में साक्षत्कार हो गया। परस्पर वार्तालाप के अनन्तर श्री ब्रह्मचारी जी अन्तर्हित व्यक्तियो को बुलाने गये और स्नातक जी ने स्वामी जी को सूचना दी कि सब मिल गये है और आ रहे हैं।

आरक्षी—स्वामी जी! शीघ्रता कीजिये, यह जङ्गल है। यहाँ आक्रमणकारियो की भीड से हम भी टक्कर नही ले सकेंगे।

स्वामी जी—सब गुरुकुलवासी मिल गये हैं। थोडी देर ठहरो।

आरक्षी—वही मार्ग मे महा पथ पर सबको बैठा लेंगे। घायल व्यक्तियाँ सब बैठ ही चुकी है।

---

*थानेदार। ∸पुलिस। +बस।

स्वामी जी—ठीक है, चलो चलो। शीघ्रता करना ठीक है। दोनों सर्वयान* राजपथ पर आ खडे हुये और उधर से सब गुरुकुलवासी लौट आये। आरक्षिदल— को शीघ्रता थी, अत सङ्केत पाकर सब शीघ्र यानारूढ हो गये और सर्वयान* चल पडे। नगर मे गृहे-तिष्ठ×

श्री सेवाराम जी

योगी आत्मानन्द को अपने जीवन में ऐसा कर्मठ पुरुष नहीं मिला। इन्होंने अपनी माता की सेवा करने के लिए विवाह करने से निषेध कर दिया।
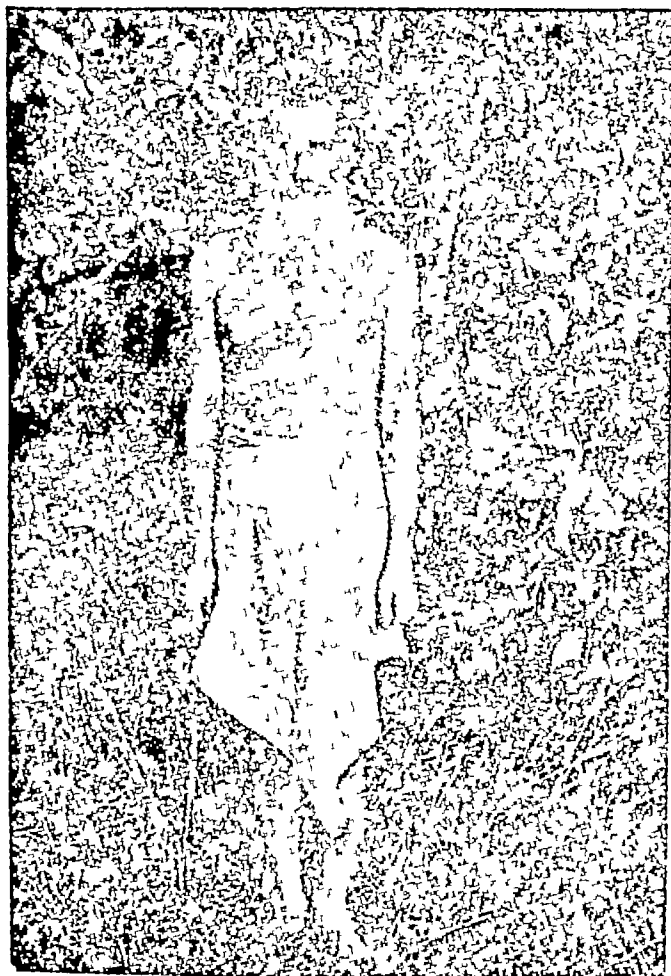
यवनाक्रान्त गुरुकुल को रिक्त कर देने के पश्चात् एकाकी वहाँ रहकर आक्रान्ताओं को सन्त्रस्त करने वाले तथा गो-रक्षा के प्रबल पोषक रहे।

आदेश था। सर्वयानो को अनेक स्थानो पर आगे बढने से रोका गया और मण्डलोपायुक्त+ को दूरभाष‡ करके उन सर्वयानो* को सेना शिविर तथा आरक्षी चौकियो से पार किया गया। मन्दिर मे जहाँ

---

*बस। —सिपाही। ×कर्फ्यू। +डिप्टी कमिश्नर। ‡टेलीफोन।

पांच सौ शरणार्थी पहले ही विद्यमान थे, गुरुकुलवासी भी उतर गये। प्रणलिका आर्य मन्दिर मे भी नही थी। आशा थी कि गुरुकुल से आ जायेगी। अन्वेषण करने पर ज्ञात हुआ कि ब्रह्मचारी सेवाराम जी एकाकी ही गुरुकुल मे छूट गये हैं। प्रणलिका भी उन्ही के साथ है। श्री स्नातक विद्याधर जी ने बताया कि यह एक धोखा हो गया है। हम दोनो ने मुसलमानो को आत्मसमर्पण कर देने का निश्चय किया था, उसका निराकरण शीघ्रतावश कुछ न हो सका। मैंने समझा कि सेवाराम जी बैठ गये है; अत. मैं सर्वयान मे चढ गया और उन्होने समझा होगा कि स्नातक जी गुरुकुल में रह गये है; अतः वे सर्वयान पर नही चढ सके।

श्री स्वामी जी महाराज को इसकी बडी ठेस लगी। दो दिन तक प्रभूत प्रयास करने के पश्चात् आरक्षी दल की सरक्षता मे सर्वयान का प्रबन्ध किया गया था। एक व्यक्ति के लिये अब ऐसा प्रबन्ध नही हो सकता। महाराज बोले—"बडी विचित्र परिस्थिति बन गई है।"

फिर यह पता लगा कि गुरुकुल से दस सहस्रमान दूर पर्वत की उपत्यका (तलहटी) मे एक तीर्थ स्थान है, जो रामकुण्ड के नाम से विख्यात है। वहाँ एक सनातन-धर्मियो की पाठशाला है। उसके अध्यापक छोटे-छोटे ब्रह्मचारियो को वही छोडकर भाग आये है। उन वालको का निकालना बहुत आवश्यक है। अन्यथा वे मार दिये जायेंगे वा मुसलमान बना लिये जायेंगे।

महाराज इन दिनो यद्यपि रुधिर-निपीड से पीडित थे। फिर भी वे अपने कर्त्तव्य मे आगे ही आगे चमकते दिखाई देते थे। उनकी रुग्णता को कौन देखे, सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। आर्य मन्दिर में रहने वाले शरणार्थियो की आंखे भी महाराज की ओर थी कि हमारे रक्षणदाता ये ही हैं। सबकी अपनी अपनी समस्याये थी। नगर के हिन्दुओ को प्रतिक्षण आतङ्क रहता था कि कब आक्रमण हो जाये। अनेक हिन्दू घरो और वडे आपणो पर स्वामी जी ने संरक्षण की दृष्टि से श्री दयानन्द भिक्षुओ को नियुक्त कर दिया था। वे रात को पहरा देते थे।

गुरुकुल विभाग के लघु-ब्रह्मचारियो के माता-पिता को यह पूर्ण विश्वास था कि जितनी रक्षा हमारे वालको की स्वामी जी महाराज

कर सकेंगे, उतनी हम यहाँ नही कर सकते, अत· उन्होने उपद्रवो की आशङ्का के दिनो मे, जो कि छ. मास पूर्व से ही सम्भावित थी, अपने-अपने बालको को घर नही बुलाया था। बालको के आर्य मन्दिर में सुरक्षित पहुँच जाने पर सब अभिभावको को अपने-अपने बालको को ले जाने के लिये श्री स्वामी जी ने दूरलेख दिलवा दिये और वे आठ-दस दिवस के भीतर ही भीतर धीरे-धीरे जैसे जिसको आक्रान्ताओ से बच निकल कर आने का अवसर मिल सका, वा घर आक्रान्त होने से बचने के लिये किसी को सँभलवा कर आसके, आकर अपने बालकों को ले गये।

रामकुण्ड की पाठशाला के विद्यार्थियों को तथा गुरुकुल से ब्रह्मचारी सेवाराम जी को लाने के लिये फिर प्रबन्ध करना पडा। पाँच दिन के अनन्तर एक सर्वयान उन्हे जाकर ले आया।

शरणार्थियो की देख-रेख औषधोपचार, खान-पान वस्त्रादि सभी वस्तुओ के प्रबन्ध की व्यवस्था स्वामी जी महाराज अति लग्नता से कर रहे थे। उनके आवेदन पर घर-घर से वस्त्रादि एकत्रित किये जा रहे थे। छोटे दूध पीते बच्चो के लिये दूध का भी प्रबन्ध किया गया। चिकित्सको की सेवाये भी उपलब्ध की गयी। आक्रान्त शरणार्थी प्रतिदिन वृद्धि पर थे।

श्री दयानन्द भिक्षु भानुदेव ने एकाकी ही नगर से १३ सहस्रमान दूर गुरुकुल पहुँचने का साहस किया और पदाति* जाकर पुन· पदाति ही लौट आया। उसने बताया कि अभी तक गुरुकुल के सब वस्तु सुरक्षित हैं और उन्हे लाया जा सकता है। अत आठ दस भिक्षुओं ने गुरुकुल मे पहुँच कर उपयोगी पुस्तको को बोरियो मे भरा। दो तैल गन्त्रो+ को सवेष्टित† किया। मुद्रणाक्षरो की सामग्री अच्छी प्रकार बाँधी, खाद्य सामग्री सँभाली और दो दिन पश्चात् एक उद्वाही× ले जाकर लगभग पचपन लक्षधान्य● भार उठा लाये।

उपर्युक्त प्रबन्ध के साथ-साथ श्री स्वामी जी भाटक÷ आदि का प्रबन्ध कर शरणार्थियो को भविष्यत् के भारतीय प्रदेश मे भी साथ-साथ सयान‡ द्वारा भेजते जा रहे थे। आगे स्थिति इतनी विकट बनती चली गई कि लोगो को मरक्षण के कोई उपाय न सूझ पडते थे।

---

*पैदल। +तेल से चलने वाले इञ्जन। †पैक्ड (बाँधा)। ×ट्रक। ÷भाडा। ‡रेलगाडी। ●क्विण्टल।

दयानन्द ऐंग्लो वैदिक महाविद्यालय विभाग और गुरुकुल विभाग से अतिरिक्त अनेक नये शिविर स्थापित करने पडे, जिनमे बहुत दूर-दूर के शरणार्थी स्थान पा रहे थे। स्वामी जी ने ऐसे विकट समय में लोगो को आश्वासन देते हुये प्रण किया—"जब तक यहाँ हिन्दू का एक-एक बालक है, उसे भेजने के पश्चात् ही मैं रावलपिण्डी छोड़ूँगा।"

हज़ारा मण्डल के शरणार्थी टोलो को बसाने के लिये स्वामी जी ने प० हरिदेव, प० गुरुदत्त और प० धर्मदेव जी से परामर्श किया। निर्णय हो जाने पर श्री धर्मदेव जी हाथरस वाले के साथ सभी उन शरणार्थियों को भविष्यत् के भारत भू-भाग मे भेज दिया।

स्वामी जी महाराज ने देखा कि हिन्दुओ के प्रत्याक्रामक साहस को देखकर नगर के मुसलमान अपने परिवारो को ग्रामो मे भेजने का विचार करने लगे है, परन्तु मुसलमानो का साहस बढाने वाली घटना शीघ्र ही घट गयी। रावलपिण्डी के सिक्खो ने सयान द्वारा अमृतसर की ओर भागना आरम्भ कर दिया। टाँगे वालो को बड़े-बडे भाडे देकर यह यात्रा अति मात्रा मे होने लगी।

यह बतला देना आवश्यक है कि सिक्खो की इस यात्रा का वातावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ा और मुसलमान शूर हो गये। रावलपिण्डी के टाँगे के कोचवानो ने इस दशा को देख कर लकड़ी के फट्टे बनवाए और घोडो के गले मे लटकाए। उन फट्टो पर ये प्रश्न और उत्तर लिखे हुए थे—"खालसा ! किधर चल्ले हो ?"। "असी तो पटियाले चल्ले है।" इन फट्टो को देखकर हमारे अधिनायक स्वामी आत्मानन्द जी प्रभृति नर शार्दूलो का शिर नीचे झुकने लगा।

स्वामी जी को अनेको वार शरणार्थियो के प्रवन्धार्थ बाजार मे सामग्री खरीदने जाना पडता था। तव कई सज्जनो ने स्वामी जी से निवेदन किया—"महाराज ! आप तो भगवाँ वेश मे होने से दूर से ही पहचान मे आते हैं, ऐसा न हो कि आपके परोपकारी शरीर को अनिष्टकारियों द्वारा कोई हानि पहुँच जावे, अत इस वेश को इस सङ्कट के दिनो में त्याग दीजिये।" स्वामी जी ने उत्तर दिया—"नि सन्देह अनेको व्यक्तियो ने अपने प्राणो के रक्षार्थ अपने वेश परिवर्तन किये हुये हैं किन्तु ऐसा करने से स्पष्ट लक्षित होता है कि उनके जीवन मे अभी सर्व नियन्ता भगवान् पर आस्था नही हो पाई है। मैंने तो अब इसी वेष मे जीना है तथा मरना है और वह भगवान् के अधीन है।"

अत्याचारो को सहते रहना वैदिक धर्म ने नही सिखाया। यवन बहुल प्रदेश मे अल्प सङ्ख्यको पर निरपराध निरन्तर अत्याचार हो रहे थे और वे समाप्त होने मे न आते थे। महर्षि दयानन्द के अनुयायी स्वामी आत्मानन्द ने इसी कारण हिन्दू-बहुल प्रदेश मे आकर अपने एक सन्यासी और ब्राह्मण के परामर्श रूप कर्त्तव्य को पूर्ण किया और क्षत्रियो को इस अत्याचारी प्रवृत्ति से दो-दो हाथ करने की प्रेरणा की। अपने विश्वस्त गुप्तचर मौलवी-वेष-विभूषित श्री मेधातिथि को भी हिन्दू-बहुल प्रदेश मे यवनो की प्रवृत्तियों का परिज्ञान करने का आदेश दिया।

स्वामी जी महाराज इन दिनो बहुत सतर्क थे। मोरी गेट दिल्ली से निकलने वाले अंग्रेजी दैनिक 'न्यूज क्रानिकल' के सहायक सम्पादक गठीना (मेरठ) निवासी श्री रामदेव जी कला-अविस्नातक स्वामी जी का दिल्ली आगमन सुनकर जब उनके दर्शनार्थ आर्य मन्दिर दीवानहाल गये, तो स्वामी जी उनसे अपरिचित होने के कारण कुछ रुक गये और चलता हुआ विषय-वाद स्थगित कर दिया। जब उन्हे आचार्य भगवान् देव जी द्वारा उनका परिचय कराया गया, तब आश्वस्त हुये।

स्वामी जी का यह वैदिक मत था कि हिंसा को सहते चले जाना क्षत्रियो के लिये हिंसा को सर्वधित (बढाना) करना है, अत उसका प्रतीकार करना ही अहिंसा का सर्वोत्तम उपाय-सूत्र है। जो क्षत्रिय अपने देश को रक्षा नही कर सकते, ईश्वर उनका सहायक कभी नही होता। अत्याचार न सहते हुए धर्म पर आरूढ क्षत्रिय ही ईश्वर के कृपाकाङ्क्षी है। आलसी रहकर पिटते हुओ की प्रार्थना वह नही सुनता और न वह उन्हें उत्तम भोग प्रदान करता है, क्यो कि दिये गए अपने भोग की भी वे रक्षा नही कर सकते। अत क्षत्रिय अपनी ही सीमा में रहे, ब्राह्मण का रूप, कातर बनकर अहिंसकत्व को न अपनाये।

इसके अनन्तर स्वामी जी पुन. रावलपिण्डी लौट गये। रावलपिण्डी नगर के चिट्टी हट्टियाँ, वाह एव अन्य स्थान पर जिन शरणार्थी शिवरो मे महाराज प्रवन्ध का कार्य कर रहे थे, उनके सुचारू प्रबन्ध को देखकर एव उन्हे हिन्दू, सिक्खो के सरक्षक समझकर मुसलमानो की अधिकाश सङ्ख्या तिलमिला उठी और उन्होने महाराज को चोट पहुँचाने की दृष्टि से किसी प्रस्फोट-अभियोग मे बन्दी करा दिया।

अभियोग की असिद्धि मे जब महाराज निर्मुक्त हो गये, तो एक दूसरा षड़यन्त्र रचा कि स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने एक यवन बालक का वध कर दिया है। इस अभियोग मे आरक्षी दल ने कांग्रेस के प्रधान श्री योगी रामनाथ और श्री महाराज को बन्दी बना लिया। जब इन्हे स्थानक में ले जा रहे थे, तो एक भारी भीड़ महाराज के पीछे अवाच्य शब्द कहती हुई चल रही थी और वे चतुर्थ आश्रमी दुर्दान्त केसरी भगवान् के सरक्षण-कवच से आवृत्त हुये मदमाती चाल से चल रहे थे। स्वामी जी वहाँ जाकर शान्त बैठ गये। भीड़ उसी प्रकार निरन्तर दो घण्टे तक अपनी भड़ास निकालती रही, किन्तु महाराज थे जो नितान्त शान्त बने अपने मुख पर उसका कुछ भी दुष्प्रभाव नही आने दे रहे थे। सम्भवत. उस समय वे अन्त: प्रभु से सम्पर्क स्थापित किये हुये थे। स्थानक अधिकारी महाराज को इस भव्य मुद्रा मे निरन्तर देख रहे थे। पश्चात् स्थानक-अधिकारी ने उपस्थित भीड़ को शान्त करते हुये कहा—'आप सब यह प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि आप सब लोगो के इतना कहा-सुनी करने पर भी ये सर्वथा मौन है और आप इनकी आकृति भी देख रहे हैं, जो भव्यता के साथ-साथ मनोमोहक भी है, जिस में यत्किञ्चित् भी म्लानता लक्षित नही होती। ये साधारण पुरुष नही है, कोई देव है, पीर है। इनके साथ किया गया कुछ भी दुर्व्यवहार बहुत बडी कठिनाई हमारे जीवन में उपस्थित कर सकता है।' यह कहते-कहते झटिति उसने श्री महाराज के चरण पकड़ लिये और अपराध क्षमा कर देने की याच्ञा की। देखते-देखते समस्त जन समूह ने भी महाराज को घेर लिया और ऐसे विनम्र हो गये मानो, उनका स्वय ही अपराध है, तथा अपने किये गये दुर्व्यवहार के क्षमा कर देने की अभ्यर्थना करने लगे। महाराज छोड़ दिये गये और सुरक्षित उन्हे शिविर मे पहुँचा दिया गया। योगी रामनाथ भी साथ ही लौट आये। जब तक महाराज छूट कर शिविर मे नही लौट आये, तब तक शरणार्थियो के मुख चिन्ता से म्लान बने रहे। जिन मुसलमानो ने महाराज के साथ यह व्यवहार किया था, वे ही आगे-से महाराज के सरक्षक बन गये।

महाराज को शरणार्थी शिविर के लिये सामग्री स्वय ही लाना पडता था। आपण सब मुसलमानो के थे। उन पर जाने का और किसी का साहस भी न था। श्री स्वामी जी ने इसके लिये एक मुसलमान तागे वाले से पगडी बदल की अर्थात् उसे अपना मित्र बनाया। उसने

वचन दिया कि महाराज, मैं मर जाऊँगा पर; आप पर आँच न आने दूँगा। वह श्री महाराज को ताँगे पर बैठाये लिये जा रहा था। मार्ग मे लोग भाले-बरछी लिये खडे थे। वे महाराज की ओर लपके। ताँगे वाले ने उसी क्षण खडे होकर कहा—"मैने महाराज को विश्वास दिलाया है, अतः, पहले मुझे मार लो, उसके पश्चात् ही महाराज पर हाथ उठाना। लोग शान्त हो गये। इसके उपरान्त जब कभी भी महाराज को किसी कार्य के लिये विपणि जाना होता, तो वे उसी ताँगे पर जाते। वह ताँगा वही रहने लगा और शिविर का ही काम करता था। उसे उसका पारिश्रमिक दे दिया जाता था। विपणि* जाते समय बहुत से मुसलमान महाराज के चरण स्पर्श करते थे। जालन्धर नगर के निवासी, जो रावलपिण्डी मे मण्डलोपायुक्त† पद पर नियुक्त थे, मार्ग मे महाराज से भेट होने पर, उनके पाद-स्पर्श करके ही आगे बढते थे। मुसलमान होते हूये भी वे श्री स्वामी जी महाराज में निष्ठावान् थे।

१५ अगस्त को भारत का विभाजन हो जाने के पश्चात् मुसलमानो की वृत्ति मे परिवर्तन आ गया और छुरे वाजी की घटनाएँ तीव्र हो जाने के कारण केन्द्रीय सहायक समिति के सदस्यो ने भी भारत का मार्ग पकडा। काग्रेस के प्रधान योगी रामनाथ और नगर पालिका के प्रधान देवराज जी आनन्द को हमारे मार्गप्रदर्शक उस विवेकी महापुरुष स्वामी आत्मानन्द ने स्वय आग्रह पूर्वक भारत भेजा। उनके भेजने के कारण दो थे—एक तो यह, कि एक-दो घटनाओ के कारण उनके वहाँ सङ्कट मे पड़ जाने की आशङ्का थी। दूसरे रावलपिण्डी के समाचारो को नेताओ तक पहुँचाने का कोई दूसरा साधन प्रतीत नही होता था।

पश्चात् स्वामी जी ने नवीन सहायता समिति का पुनर्घटन किया जिसमे आर्यसमाज के सदस्य मैय्यादास जी, बख्शी रामस्वरूप जी, आर्यसमाज के मन्त्री ला० देवीदयाल जी तथा कोषाध्यक्ष ला० सुरेन्द्रलाल जी, सनातनधर्म सभा के प्रतिनिधि बख्शी भगतराम जी आदि महानुभावो को सम्मिलित किया गया और शरणार्थी शिविरो का कार्य चालू रक्खा गया। लाला मैय्यादास की कृपा से खाद्य सामग्री के बहुत से भाग की पूर्ति होती रही। वे बहुत निर्भीक बने रहे। बहुत

---

*बाजार। †डी. सी।

से सिक्ख भाई आते थे और भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए कहते थे कि सब समाज सहायता स्थल से भाग गए, केवल आर्यसमाज ही अन्त तक डटा हुआ है । पीडित जन आर्यसमाज के यश गाते न थकते थे ।

कुछ दिन पश्चात् छुरे बाजी के और तीव्र हो जाने पर कतिपय लोग और चले गए, अब स्वामी जी के सहयोग मे आर्य समाज की कन्या पाठशाला की अध्यापिका भागवन्ती देवी जी, श्री ओम्प्रकाश जी और आर्य समाज के मन्त्री महोदय ही रह गए। भागवन्ती देवी ने वाह शिविर और रावलपिण्डी नगर पीडितो मे बहुत कार्य किया। ओम्प्रकाश जी एक वीर युवक प्रमाणित हुए, जिन्होने अपना परिवार तो पिता जी के साथ भारत भेज दिया और स्वयं स्वामी जी महाराज के दाये हाथ बने रहे। देव आत्मानन्द ने उन से कहा—"आप परिवार वाले है' जो नित्य कमाते है, उसी से परिवार का निर्वाह होता है। आप भारत चले जावे ।" उन्होने स्वामी जी महाराज को उत्तर दिया—"बच्चो का भोग उनके साथ है, मै आपको अकेले छोडकर भारत कभी नही जा सकता ।"

स्वामी जी के लिए रावलपिण्डी छोड़ना कठिन था, क्योकि वे प्रण कर चुके थे कि वे सब को भेज कर ही भारत जायेगे। अभी तक शिविर शरणार्थियो से भरे पडे थे ।

यतिवर्य श्री आत्मानन्द सरस्वती का व्यावहारिक क्षेत्र बहुत विशाल था, उन्होने नाहन राज्य की महाराणी के नाम एक हस्तक पत्र श्रीमती सीता देवी और भागवन्ती देवी जी को लिख कर दिया कि इन दोनों विधवाओ का प्रबन्ध करने के लिए श्री स्वामी शान्तानन्द जी, मन्त्री महोदय श्री रामगोपाल जी को कह आये थे। वे दोनो विधवाएँ, जो कि सहोदर है, अब आ रही है । इनका प्रबन्ध कराके अनुगृहीत करें।

दूसरा पत्र आर्य समाज मन्दिर नाहन के मन्त्री श्री सत्यपाल जी को लिखा कि चोहाभक्तां की पुत्रवधू औरउनकी बहिन सीता देवी नाहन आ रही है। इन्हे महाराणी जी से मिला दीजिए । जब तक इनका प्रबन्ध न हो, आर्यमन्दिर मे ठहराने का प्रबन्ध करे।

इन्ही दिनो कुछ मुसलमान श्री चरणो मे उपस्थित होकर कहने लगे—"गुरुदेव ! आपके यहाँ एक वाद्ययन्त्र* है, हमे आवश्यकता है, क्या

---

*बैण्ड बाजा ।

आप दे सकेंगे ?" स्वामी जी ने तत्क्षण कहा—"हाँ-हाँ, जैसे हमारे धर्म के कार्य है, वैसे ही आपके भी हैं। ले जाइये और उत्तम रूप से अपना धर्म-कार्य पूरा कीजिये। अब यह आप का ही है। इसका मूल्य भी देने की आवश्यकता नही।" स्वामी जी की इस उदारता से वे पानी-पानी हो गये। जब तक वहाँ शिविर रहा, वे महानुभाव चारो ओर चक्र लगाते रहे और उन्होने देव आत्मानन्द की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध रक्खा।

एक दिन की घटना है कि स्वामी जी शिविर मे भोजन कर रहे थे कि सहकारी जन उनसे निवेदन करने लगे—"स्वामी जी! चूर्ण सर्वथा समाप्त हो गया है। लोग भूख से चिल्ला उठे है। अधिकाश ने तो भोजन कर लिया है, कुछ थोडे ही शेष हैं। यह सुनते ही दयार्द्र देव श्री आत्मानन्द भोजन करते करते आसन से सहसा उठ गये और सीधे मण्डलोपायुक्त के यहाँ पहुँचे। मण्डलोपायुक्त ने निवेदन किया—"करुणानिधान! आप सूचना भेज देते। मैं प्रबन्ध कर देता। आपको कष्ट हुआ, आप पधारिये, मैं अभी प्रबन्ध किये देता हूँ।" महाराज के लौट आने पर उस मण्डलोपायुक्त महोदय ने अस्सी बोरियाँ गेहूँ के चूर्ण की उद्वाही मे भरवाकर शिविर मे भिजवा दी और सबके भोजन करने पर स्वामी जी ने पीछे भोजन किया।

महाशय देवीदास जी को स्वामी जी जो भी आदेश देते थे, वे तुरन्त करते थे। स्वामी जी कहते, "जाओ, उस मुहल्ले मे उपद्रव सुना जाता है, पता लगाओ।" देवीदास जी के मुख से ध्वनि निकलता, "बहुत अच्छा।" वे स्वामी जी के आशीर्वाद और ईश्वर की रक्षा से निडर होकर घूमते थे।

२६ सितम्बर १९४७ के इस विद्रोह मे श्री चिरञ्जीत राय साहनी के लघुभ्राता ओम्प्रकाश का हनन कर दिया गया। पिता के समीप पुत्र का शव उठाने के लिये चार व्यक्तिया भी न थी। शव के लिये आवरण उपलब्ध न होता था। मित्र से मारकीन लिया और सर्वयान से शव को श्मशान मे पहुँचाया। घृत सामग्री की समस्या थी। इसके अतिरिक्त उन्होने गुरुदेव श्री आत्मानन्द सरस्वती से अन्त्येष्टि कर्म कराने का निश्चय किया। उस दिन सात व्यक्तियाँ हनन की गई थी। सभी ओर आतङ्क के कारण स्वामी जी के निकट शरणार्थी शिविर मे पहुँचना अतिशय कठिन था। किसी प्रकार भगवान् आत्मानन्द को

सूचना प्राप्त हो गई। उन्होने श्री लालचन्द जी के आपण, जो आर्य-समाज की सम्पत्ति था, का ताला खोला। वे भारत चले आये थे। स्वामी जी ने उस आपण से घृत और सामग्री निकाली और एक सेवक को साथ लेकर घृत उसे दिया। सामग्री स्वय अपने कन्धे पर रख कर श्मशान की ओर निर्भीकता से चल पडे। मार्ग मे मुसलमानो की चौकियाँ भी मिली, किन्तु साहसपूर्वक उन सब चौकियो को पार करते हुये चलते गये। अन्तत निर्भीक संन्यासी ने अपने ही हाथो से वह अन्त्येष्टि कर्म सम्पन्न करा दिया।

सर्व नियन्ता ईश्वर का स्मरण देव आत्मानन्द को प्रतिपल रहता था। ईश्वर कवच से आवृत वे प्रत्येक सङ्कटापन्न प्राणी के कार्य मे सहयोग देते थे। रात हो वा दिन, जब भी किसी ने उन्हें स्मरण किया, वे तत्काल उस ओर प्रस्थान कर देते थे। वे अपने सुख और दुःख अन्यो के कष्ट-निवारण में तिरोहित करते चले जाते थे।

पाकिस्तान वन जाने के १।। मास पश्चात् पाकिस्तान प्रशासन ने हिन्दुओ से शस्त्रास्त्र छीनने प्रारम्भ कर दिये। आर्य समाज लुण्डा बाजार शरणार्थी शिविर मे एक अनुज्ञप्त‡ प्रणलिका और परिक्राम+ था। किसी समय भी छापा मारा जा सकता है—यह सोचकर स्वामी जी ने मोदप्रकाश से कहा कि यदि किसी प्रकार प्रणलिका और परिक्राम+ भारत पहुँच जाये, तो अच्छा हो। मोदप्रकाश ने इस सुझाव को गम्भीर दृष्टि से लिया। दूसरे दिन ज्ञात हुआ कि गार्डन कालिज के स्टाफ की कुछ व्यक्तियाँ भारत जा रही है, सैनिक उनके साथ चकलाला स्थात्र* तक जायेगे। जब वे अश्वयान× से चल पडे, तो मोदप्रकाश और मदनलाल भी एक अश्वयान× से उनके पीछे-पीछे चल दिये। स्थात्र* में प्रवेश करने से पूर्व दो बलौच सैनिक पार पत्र का निरीक्षण करके ही आगे जाने की अनुमति देते थे। अगले अश्वयान× यात्रियो के समीप आज्ञा पत्र था। उसे देखकर अश्व-यानो× को पार हो जाने का आदेश दे दिया। पश्चात् आज्ञा पत्र वाले पुरुष ने कहा—"यह पिछला अश्वयान हमारे साथ नही है।" सैनिक ने उनका अश्वयान रोक लिया, फिर वे किसी प्रकार उस मृत्यु मुख से निकल वाहर हुए और अश्वयान उलटा चल दिया। इतने में एक अश्वयान वाला मिला और वोला—"एक व्यक्ति मेरे यान मे वैठ

‡लाइसेन्स्ड। +पिस्तौल। *स्टेशन। ×तागा।

जाओ। उसके इस वचन पर वे हिचकचाए। तब वह कहने लगा, "आपके सरक्षण का अब यही उपाय है।" मदनलाल जी के शिर की पगड़ी उसने उतार कर अपने शिर पर रख ली।

जब दोनो अश्वयान रावलपिण्डी आर्य समाज के द्वार पर उलटे पहुँचे, तो स्वामी आत्मानन्द जी वहाँ खड़े थे। वह समय उनके ध्यान मे बैठने का था। उनकी आंखो से अश्रु बह रहे थे। इस दूसरे अश्व-यान को उस दिव्य विभूति आत्मानन्द जी ने ही भेजा था। मोदप्रकाश जी ने महाराज से पूछा—'आपने अश्वयान क्यो भेजा ?' उस ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष ने प्रतिवचन में कहा—"मोद! जब मैं ध्यान मे बैठा, तो तुम मेरे समक्ष थे और एक सैनिक ने तुझे पकडा हुआ था। मैंने प्राणायाम आदि सब उपाय किये, पर जब भी ध्यान लगता, तुम सम्मुख आ जाते। न जाने मैं कैसे नीचे उठकर चला आया। अश्वयान वाला 'बाकर' मेरा परिचित था। मैं अनेक वार इसके अश्वयान पर आता-जाता रहा हूँ। एक वार इसे औषध भी दे चुका हूँ। इस कारण विश्वास करके मैंने इसे भेज दिया।"

अभी कुछ काम शेष है

तीन अक्टूबर को चिरञ्जीत राय साहनी ने जब दृढप्रतिज्ञ आदर्श सन्यासी से यह निवेदन किया कि मैंने वायुयान मे अधिष्ठान आरक्षित करा लिया है, आप भी चलिये। तब सन्यासिराट् ने उत्तर दिया—जब तक भारत जाने का अभिलाषी एक-एक जन यहाँ से भारत प्रदेश मे नही चला जाता, तब तक मैं इस स्थान को नही छोड सकता।

भङ्गियो को राज्य के मुसलमान अधिकारी उस प्रदेश से निकलने नही दे रहे थे। इसी कारण आक्रमणकारियो ने उन पर आक्रमण भी नही किया था। वे उन्हे परिशोधन-कार्य निमित्त अपने यहाँ सुरक्षित रखना अभीष्ट समझते थे; किन्तु वे भारत आने की ताक मे थे, यह एक अतिशय जटिल समस्या थी।

उस दिव्य महापुरुष की इस उपर्युक्त घटना का सङ्केत श्री पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालङ्कार* से किया था। श्री पण्डित जी का कथन है कि भारत मे आने वाला प्रत्येक शरणार्थी दल, स्वामी जी से अनुरोध करता

*स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती।

था कि आप भी तो चलिये। आप यहाँ क्यो बैठे हैं ? परन्तु वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे। जब अन्तिम दल चलने लगा और उनकी प्रतिज्ञा के अनुसार कोई हिन्दू शेष नही रहा, तब व्यक्तियो ने निवेदन किया, 'महाराज ! अब तो पधारिये अब तो आपकी प्रतिज्ञा भी पूर्ण हो चुकी है'' इस पर उन्होने उत्तर दिया, "अभी कुछ काम शेष है।" "वह काम क्या है ?" यह पूछने पर उस लोह पुरुष ब्रह्मर्षि आत्मानन्द ने कहा—"अभी हमारे कुछ भङ्गी भाई शेष है, उन्हें कैसे छोड दूँ ?" अन्त में उनको भी स्वामी जी ने भारत-प्रदेश में भेज दिया। इस से राज्याधिकारी रुष्ट हो गए, किन्तु उस समय के मण्डलोपायुक्त की भद्रता के कारण वे महाराज का कुछ न विगाड सके।

इस विधि अन्तः करण में अपनी दृढ प्रतिज्ञा की कोई भी भावना तुर्याश्रमसेवी उस महात्मा ने ऐसी न रहने दी, जिसके कारण पश्चात्ताप हो।

भगवद् भक्ति से परिपूर्ण, सर्वोत्कृष्ट पाण्डित्य से भरपूर, तप और त्याग मे परोपकार-वृत्ति से समन्वित, श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की भव्य भावनाओ का अनुपम दर्शन देश-विभाजन के उस सङ्कट काल मे प्राप्त हुआ।

आर्य समाज के इतिहास मे महर्षि दयानन्द के पश्चात् ब्रह्मशक्ति से समुज्ज्वल एक आदित्य ब्रह्मचारी के दर्शन, स्वामी आत्मानन्द के रूप में लोगो को उपलब्ध हुवे।

सात मास निरन्तर शरणार्थी शिविर का कार्य करने के पश्चात् महर्षि दयानन्द का प्रतिनिधि वह कर्मठ महापुरुष भारतीय आत्मा के रूप मे पाकिस्तान से चल कर भारत भू-भाग मे चमक उठा।"

आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

परार्थ प्रकाश

भारत के भूतल पर तुर्याश्रमसेवी उस महापुरुष के चरण सुगमता से नही पडे। उन्होने बहुत पूर्व अपने अनुयायी तथा पट्ट विश्वस्त शिष्य श्री प० विद्याधर जी स्नातक और महेशचन्द्र को भारत भूमि में अगस्त के दूसरे सप्ताह मे भेज दिया था, कि वहाँ पहुँच कर निवास-योग्य कोई स्थान अन्वेषण करो। श्री स्नातक जी ने अलाहर ग्राम मे अपना डेरा लगा कर भिन्न-भिन्न स्थानो का परिभ्रमण किया।

उन्ही दिनो पाकिस्तान और भारत के गृह युद्धो में देश की ऐसी विकट स्थिति उपस्थित हो गई थी कि सयानो× से शरणार्थियो का आदान-प्रदान सर्वथा अवरुद्ध हो गया था, जो सयान किसी स्थान+ पर खडा हो गया, वह वहाँ से आगे हो नही बढ रहा था। विवश हो कर शरणार्थी वही उतर जाते थे और कही शरण ले लेते थे। बहुत समय तक यही क्रम चलता रहा। यह सुनने मे आने लगा था कि रावलपिण्डी से तो सब व्यक्तियाँ आ चुकी है, किन्तु स्वामी आत्मानन्द जी महाराज नही पहुँचे हैं। श्री स्वामी जी महाराज को स्नातक जी कभी अम्बाला खोजते, तो कभी लुधियाना और जगाधरी। जगाधरी में स्वामी जी के सेवक श्री किशोरचन्द जी तो मिल गए, किन्तु स्वामी जी नही मिले। रावलपिण्डी से भेजो गई गुरुकुल की सब सामग्री भी किशोर चन्द के साथ उपलब्ध हुई। श्री विद्याधर जी स्नातक ने स्वामी

× रेल। + स्टेशन।

जी को सहारनपुर, मुजफ्फर नगर और दिल्ली आदि स्थानों पर भी खोजा, किन्तु कही पता न चला। जब स्वामी जी ही नही हैं, तो निवास के लिए सुविधा जनक स्थान की अन्वेषणा किस के निमित्त की जावे ? इस असमञ्जस मे श्री स्नातक जी बहुत चिन्तित हो गए। अन्ततः नवम्बर मास आ गया। वे श्री रामलाल साहनी के निकट दिल्ली गए और उनसे कहा—"स्वामी जी अभी तक नही आए हैं, सब स्थानों पर खोज कर ली गई, किन्तु कुछ पता नही चलता।" श्री साहनी जी ने कहा—"मेरा ज्येष्ठ पुत्र रघुवीर वायुयान से लाहौर गया है। मैं उसे दूरभाष* कर देता हूँ, वह रावलपिण्डी जा कर स्वामी जी को लेता आयेगा।" यह निश्चय हो गया।

किन्तु देव ने दुर्दैव उपस्थित किया और सूचना प्राप्त हुई कि रघुवीर को प्रणलिका— की गोली से उड़ा दिया गया है। इस से साहनी परिवार में शोक प्रसारित हो गया। वे पहले ही पाकिस्तान से उजड कर आए थे। रावलपिण्डी लाहौर, पेशावर, कोहमरी आदि विभिन्न स्थानो में उनका व्यापक व्यापार था, वह तो ठप्प हुआ ही, पुत्र-वियोग भी सहना पड़ा।

श्री विद्याधर जी स्नातक पुन अन्वेषण में प्रवृत्त हुए। वे ३० नवम्बर को दिल्ली में फतहपुरी से दीवानहाल जा रहे थे कि कृत्रिम निर्झर‡ पर अकस्मात् श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन हो गए। दुख की रेखाएँ मिट गयी। हर्ष के तरङ्ग उठ चले; किन्तु जब स्वामी जी को अन्वेषण का पूर्ण कथानक सुनाया गया, तो वे रघुवीर के मृत्यु पर अति खिन्न हुए।

परोपकार परायण यतिवर्य ने दीवान हाल में अपना आसन लगा लिया। दिल्ली आकर देखा, तो यहाँ शरणार्थियो की समस्या अति-जटिल थी। जहाँ संयान×, वायुयान शरणार्थियो को नि.शुल्क स्थानान्तरों में पहुँचा रहे थे, वहाँ बहुत दूर-दूर से सहृदय महानुभावो को बिना पत्त्रक+ के संयान यात्रा की सुविधा भोजन सामग्री पहुँचाने के लिए प्रशासन ने की हुई थी। स्वामी जी महाराज यहाँ उद्घाटित शरणार्थियों के शिविरो मे पहुँच कर अपना परामर्श देने लगे। शोकाकुल परिवारों में जा कर उन्हे सान्त्वना भी देते थे। रघुवीर की पत्नी विद्यावती जी पर भी महाराज ने कृपा दृष्टि की। उन के यहाँ १५ दिन

*टेलीफोन। —बन्दूक। ‡फव्वारा। ×रेल। +टिकिट।

तक महाराज जाते-आते रहे। वे करौलबाग आर्यसमाज भी गए। वहाँ भी शरणार्थी अपना आवास किए हुए थे। महाराज को रात्रि के १२ बजे जब यह पता चला कि गुरुकुल चोहा भक्ताँ के स्नातक श्री वेदप्रकाश जी बाहर लकडी का खोखा बना कर उस मे निवास कर रहे हैं, तो वे तत्काल एक व्यक्ति को साथ लेकर आर्य मन्दिर से बाहर आए। वेद प्रकाश जी को पुकारा, वे किवाड लगाए शयन कर रहे थे। उन की पत्नी श्रीमती सावित्री जी ने यतिभूषण का कण्ठ-स्वर पहचान लिया और पतिदेव को जगाया। परस्पर साक्षात् होने पर यतिवर्य आत्मानन्द ने पूछा—"कोई कष्ट तो नही है? किसी पदार्थ की आवश्यकता पडे, तो निस्सङ्कोच कह देना।" संन्यासिप्रवर के इन शब्दो से वे अति तृप्त हुए।

स्नातक जी ने श्री चरणो मे निवेदन किया—"हम सब के आवास के लिए अभी तो यही उचित जान पड़ता है कि जगाधरी आर्य मन्दिर मे चला जाए। वह एकान्त भी है और अन्य सुविधाएँ भी वहाँ उपलब्ध हैं। किशोरचन्द्र जी द्वारा गुरुकुल की सकल सामग्री भी वहाँ पहुँच चुकी है। वहाँ अपना डेरा लगा कर ही कही रम्य अवास योग्य स्थान की खोज करेंगे। नरेला, छोटा खेडा आदि के समीपवर्ती प्रदेश तो देख लिए है, वे अनुकूल नही हैं। गुरुदेव को वह स्वीकार हुआ और वे २६ दिसम्बर को जगाधरी पहुँच गए।

शनै. शनै स्वामी जी महाराज की विश्रुति जन-जन में व्याप्त होने लगी। श्री लछमनदास जी अधिवक्ता, श्री विद्यारत्न जी, प्यारे लाल जी, श्री ज्ञानचन्द जी, लाला मिश्री लाल जी, श्री नन्दकिशोर जी, लाला परसराम जी तथा उन के सुपुत्र श्री चन्द्रभान जी महाराज के अतिशय श्रद्धालु भक्त बन गए। आर्य समाज मे प्रतिदिन सत्सङ्ग लगने से लोगों के जीवन मे धर्म-भावनाएँ सञ्चार करने लगी। इससे पूर्व दीपक तो थे, पर उन्हे जलाने वाला कोई प्रदीप्त दीपक न था। महाराज स्वय प्रदीप्त दीपक बने। उन्होने स्वय के प्रकाश से सब को प्रकाशित कर दिया। प्रति दिन सत्सङ्ग में उपस्थिति के बढते रहने से उत्साह-समुद्र उमड रहा था।

लाला मिश्रीलाल जी का भवन आर्य मन्दिर के सम्मुख ही है। उन के भवन भाटक के लिए रिक्त थे। श्री स्वामी जी महाराज के अनन्य भक्त गुजरात मण्डल के निवासी चिकित्सक श्री सन्तराम जी ने

एक आवासगृह निकट ही भाटक पर ले लिया। वे महाराज के कार्यक्रम से प्रभावित हो कर श्री स्वामी जी मे आस्थावान् हो गए। यह एक आश्चर्य की बात है कि जो महाराज के एक वार निकट सम्पर्क मे आ गया, उसके जीवन पर उनके सौम्य् गुण, देदीप्यमान मुखमण्डल एवं सद्व्यवहार का ऐसा प्रभाव पड़ता था कि वह गृहस्थ-जीवन मे रहते हुए भी लोक कल्याण की ओर अपना आधा जीवन व्यतीत करने लगता था। चिकित्सक महोदय की धर्मपत्नी दुर्गा देवी जी गुजरात मण्डल मे दैनिक समाज लगाया करती थी। उन्होने यहाँ जगाधरी में भी अपने गृह पर स्त्री-सत्सङ्ग लगाना आरम्भ कर दिया। महापुरुष जानते हैं कि जब तक स्त्री सुधार न हो, देश का कल्याण होना कठिन है और मुख्य रूप से देवियाँ ही देवियो में प्रचार कर सकती है। स्त्री समाज के निर्वाचन में दुर्गादेवी जी प्रधाना चुनी गईं। वे हिन्दू कन्या पाठशाला की अध्यापिकाओ से सम्पर्क स्थापित करने गईं। अन्य दो देवियाँ भी उनके साथ थी। उन तीनो देवियों की उपस्थिति मे जब कुछ देवियाँ अपनी कन्याओं का प्रवेश कराने आईं, तो उन्हे प्रवेश मिलना तो दूर, प्रत्युत कुछ अपमान ही सहना पड़ा। इस तिरस्कार की चोट से व्यथित-हृदया दुर्गादेवी जी श्री स्वामी जी महाराज के चरणो में उपस्थित होकर अपना खेद उडेलने लगी। यह एक अच्छी बात है, किसी के सम्मुख अपना दुःख प्रकट कर देने से मस्तिष्क कुछ विश्राम अनुभव करता है। श्री स्वामी जी ने देवी से पूछा—"कहिए, आप क्या चाहती है ?" उन्होने उत्तर दिया—"मैं इस समाज में एक कन्या पाठशाला खोलना चाहती हूँ। जो व्यक्ति वर्तमान सङ्कट मे है, वे अपनी बच्चियो का प्रवेश कहाँ कराएँ ? महाराज तो थे ही त्याग, तपस्या एव दया की प्रतिमा। उन्होने देवी जी को आश्वासन दे कर उत्साहित किया और उपस्थित परिषत्-जनो को अपना सङ्केत देकर इस कार्य को शीघ्र चालू कर देने की प्रेरणा दी। जगाधरी निवासी अपना अंशदान सहर्ष देने लगे। स्वामी जी इस कला के रहस्य को जानते थे। वे उत्तम कार्यों के लिए प्रेरणा देने मे देर नही लगाते थे। महाराज जी से प्रेरणा पाकर दो देवियो ने कुछ मास तक अवैतनिक कार्य करने का वचन दे दिया। निर्धन बालिकाओ के पुस्तक आदि का प्रबन्ध भी स्वामी जी ने करवा दिया।

महर्षि दयानन्द के अनुरूप श्री स्वामी जी मे धर्म कार्यार्थ इतनी गहरी निष्ठा थी कि वे इसके लिए नूतन-नूतन उपाय खोज निकालते

थे। देव आत्मानन्द ने वहाँ तीन बृहद् यज्ञ कराये; यज्ञ के दिनों में वे नगर में पटहनाद से घोषणा करा दिया करते थे कि जो सज्जन शुद्ध होकर इस यज्ञ में आएगा, उस प्रत्येक व्यक्ति को दस आहुतियाँ डालने का अधिकार है। इससे जनता में हवन के प्रति श्रद्धा के साथ-साथ पुण्यार्जन का अङ्कुर भी उदय हुआ। इससे यज्ञवेदी में आहुतियाँ प्रक्षेप करने वालों की पर्याप्त सङ्ख्या एकत्रित होने लगी। यज्ञ में योगी आत्मानन्द प्रतिदिन एक-एक वेद मन्त्र की कथा भी करने लगे। श्रीयुत् पं० विद्याधर जी 'स्नातक' का इस कार्यक्रम को रोचक बनाने में सहयोग रहता था।

सन्१९४८ के फरवरी मास मे स्वामी जी महाराज किसी एकान्त स्थान की खोज करने नाहन राज्य में गए, वहाँ उन्हे एक सुन्दर, उत्तम एवं सुरम्य स्थान उपलब्ध हुआ। वह स्थान सराहाँ ताल्लुके में था। उनके पुराने मित्र योगी सोमतीर्थ जी भी ग्रीष्म ऋतु में वहाँ ही अपना डेरा लगाया करते थे। योगानुरागी भगवान् आत्मानन्द जी वहाँ से शीघ्र ही लौट आए।

भली-भाँति विचार करने के पश्चात् उन्हों ने स्वामी योगानन्द को गुरुकुल झज्जर में लिखा कि योगाभ्यास के अनुकूल स्थान की व्यवस्था लगभग हो गई है। मैं शीघ्र ही आप लोगो को इधर बुलाने वाला हूँ। आत्मभिक्षु जी को भी शीघ्र बुलाया जायगा।

इन्ही दिनो लाला खेमराज जी साहनी, जो रावलपिण्डी से आकर करनाल मे वास कर चुके थे, की पुत्र-वधू का देहपात हो गया। उस परिवार को सान्त्वना देने के लिये स्वामी जी ने करनाल मे उन के घर पहुँचने की अनुकम्पा की। एक वार स्वामी जी ने इस घर में और इसी प्रकार पदार्पण किया जब कि हैदराबाद सत्याग्रह मे अपनी त्रिचक्रिका के पचास रुपये सहायता निधि में देने वाले बालक का यहाँ करनाल मे स्वर्गवास हुआ।

इस के अनन्तर स्वामी जी रामलाल साहनी के घर दिल्ली पहुँचे और उन की विधवा पुत्र-वधू को ईश-भजन मे लगे रहने की प्रेरणा दी। विद्यावती साहनी ने महाराज की इस प्रेरणा पर बहुत कर्णपात किया। विद्यावती जी का मन जब सन्ध्या मन्त्रो मे न लगता था, तो महाराज ने मन्त्रो के अर्थ लिखाने आरम्भ किये। धीरे-धीरे वे इस ओर प्रगति करने लगी। २० दिन पश्चात् महाराज लौट आए।

स्त्रियों का जीवन उन्नत कैसे हो !

सितम्बर सन् १९४८ में 'माता गार्गी का उपदेश' इस शीर्षक से लिखे लेख द्वारा श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती की लेखनी से निम्न बाते सङ्क्षेप रूप से स्पष्ट होती है।

(१) सयम, परिश्रम और तप से सधाए हुए शरीर कभी कष्ट का अनुभव नही करते।

(२) अन्न की अपेक्षा कन्द, मूल, फल और दूध का भोजन सात्त्विक एवं शक्तिशाली होता है। कन्द, मूल, फल के वृक्ष एक वार के लगाए हुए अनेक वर्षों तक उपयोग में आ सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इन्हे अपने प्राङ्गण के उपवनो में लगा सकती है। अन्न की अपेक्षा इनका उत्पादन सरल है।

(३) कन्याओं और कुमारो के विद्यालय पाँच कोस के अन्तर से हों। यह अन्तर इसलिए रखना आवश्यक है कि कुमार और कन्याएँ मिलने न पावे। काम वासनाएँ बड़ी प्रबल होती हैं। दर्शन मात्र से ही मन में विकार उत्पन्न हो जाता है और शरीर की शक्ति नष्ट हो जाती है। इसीलिये मनु भगवान् जैसे तपोधन ने मनुष्य की इस निर्बलता का अनुभव कर कन्याओ और कुमारो के ब्रह्मचर्य काल मे परस्पर दर्शन और स्पर्शन का निषेध किया है।

(४) कन्याओ को शिल्पकला और शस्त्राभ्यास करना चाहिए।

(५) समय का यदि सदुपयोग न किया जावे, तो उसका अवश्य ही अनुचित उपयोग होना आरम्भ हो जावेगा। अतः प्रतिक्षण सावधानता की आवश्यकता है।

(६) जीवन जैसे अमूल्य वस्तु को साधारण हाथो मे नही सौपा जा सकता।

(७) यदि अन्दर ब्रह्मचर्य रूपी तैल हो तो, प्रति दिन किये जाने वाले वाह्य अस्थायी शृङ्गार की आवश्यकता नही है। यह वाह्य शृङ्गार वासनाओ को जन्म देता है। वह किया भी इसी लिए जाता है कि लोग उस की ओर देखे, और प्रशसा करे। वही से वासनाओ का उदय होना आरम्भ हो जाता है। जिन्हो ने उन्नति के इस तत्त्व को समझ लिया वे सादा जीवन व्यतीत करते हैं और आजीवन सुख का आनन्द लूटते हैं।

(८) सयँयमी स्त्री पुरुषो का देह सुडौल, सुन्दर, स्फूर्तिमान् एवं जीवन निर्भय होता है ।

(९) जैसे कृषक जन अपने खेतो मे बोने के लिए अच्छे-से अच्छा बीज सुरक्षित रखते है, ऐसे ही नर और नारी को सन्तानोत्पत्ति के लिए ब्रह्मचर्य पालन से अच्छे बीज का सञ्चय करना चाहिए । उस से उत्पन्न सन्तान रोगी नही होता और माता-पिता पर उस का भार नही पडता।

(१०) ब्रह्मच र्य से दीक्षित कन्याएँ ही गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करने के पश्चात् गृहस्वामिनी बनती है तथा स्वस्थ रहते हुए सौ वर्ष जीती है ।

(११) सब प्रकार की शक्ति सञ्चय के लिए ब्रह्मचर्य, प्राणायाम और व्यायाम का आश्रय लेना पडता है । ऐसे किये विना मनुष्य अपने अन्न को अपने शरीर का अङ्ग नही बना सकता। इन नियमो के पालन मे तत्क्षण तत्परता दिखानी चाहिये और विशेषत उन्हे, जिन्हे कि स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमो का पता विलम्ब से लगा हो ।

(१२) अपने शरीर को रचना को देख कर उसी प्रकार के गुण तथा स्वभाव वाला और नपी-तुली मात्रा मे किया हुआ भोजन उचित भोजन कहलाता है । अन्न के गुणो और दोषो को जानने के लिये प्रत्येक देवी को आयुर्वेद का द्रव्य गुण प्रकरण अवश्य पढ लेना चाहिए। उनका वह स्वाध्याय उनके अपने सन्तानो के लिए भी उपयोगी होगा।

(१३) जिसने ब्रह्मचर्य से अपने शरीर की रक्षा की है, उसका कर्तव्य है कि वह दूसरो को भी वह बूटी पिलावे ।

(१४) मनुष्य विवेकी कहलाता हुआ भी पशु-पक्षियो और वृक्षो से भी निकृष्ट जीवन व्यतीत कर रहा है । ब्रह्मचर्य की शिक्षा मनुष्य को इन पशु-पक्षियो और वृक्षो से भी ले लेनी चाहिए। ये समय पर ही फल देते है, अत अथर्ववेद मे इन्हे ब्रह्मचारी कहा गया है ।

(१५) वासनाओ को न उठने देना ही ब्रह्मचर्य का पालन है; अन्यथा उसी क्षण से यह शक्ति पिघल कर बहने लग जाती है और शरीर के विभिन्न स्रोतो से बाहर निकल जाती है ।

(१६) पाठशालाओ मे भी इन भावनाओ मे पगे हुए चरित्रोन्नायक अध्यापक-अध्यापिकाएँ होनी चाहिएँ, जिस से वे कुमार-कुमारियो के चरित्र को समुन्नत बना सके ।

(१७) जैसे घड़े में आटा दबा-दबा कर बहुत भर दिया जाता है, इसी प्रकार व्यायाम, प्राणायाम और ब्रह्मचर्य से शक्ति दबा-दबा कर अधिक मात्रा में शरीर में भर दी जाती है, वह फिर सहज नही निकल पाती।

(१८) वेद ने ब्रह्मचर्य से पूर्ण युवा और युवती को ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश का अधिकार दिया है, जो ऐसा नही करते, वे मानव-जाति के वंश को विकृत करते है; अतः वेद से विरुद्ध कार्य करना पाप में सम्मिलित है। सब प्रकार की उन्नति के लिए वेद का स्वाध्याय ही मनुष्य मात्र को प्रति दिन करना चाहिए।

स्वामी आत्मानन्द जी महाराज सन् १९४८ के अक्टूबर मासारम्भ में स्वास्थ्य की दृष्टि से शिमला विराजमान रहे। पश्चात् जगाधरी चले आये।

भारतीय लोक सङ्घ

इसी वर्ष नवम्बर मास में श्री स्वामी जी महाराज के मन में आया कि किसी पार्वत प्रदेश पर रह कर आत्म चिन्तन करूँ और छः मास का मौनव्रत रक्खूँ, किन्तु उन की यह आकाङ्क्षा कार्य रूप में परिणत न हो सकी, क्यो कि इसी मास गाजियाबाद मे लाला हरिशरण दास जी ने एक विद्वत्सम्मेलन बुलाया। श्री स्वामी जो महाराज भी वहाँ पधारे। निकाली गयी शोभायात्रा में स्वामी जी को हाथी पर विठाया गया।

अधिवेशन में 'भारतीय लोक सङ्घ' नाम की एक राजनीतिक संस्था को जन्म दिया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्र शासन में सच्चे वैदिक महापुरुषों का भेजना था। इस सङ्घ के प्रधान पद का कार्यभार आर्य जनता ने महाराज के कन्धों पर रक्खा। श्री रामचन्द्र देहलवी, श्री भगवद्दत्त जी स्नातक अनुसन्धाता, प्राध्यापक रामसिंह, पण्डित बुद्धदेव विद्यालङ्कार, पण्डित ज्ञानचन्द, रामगोपाल जी शास्त्री बालदिवाकर हस आदि सब प्रान्तों की इक्कीस व्यक्तियाँ भारतीय लोक सङ्घ की कार्यकारिणी में निर्वाचित की गईं। तथा सङ्घ के उसी समय नियम और उपनियम बना दिये गए। 'लोक सङ्घ' का विधान भी बनाया गया। ग्रामो नगरो और प्रान्तों मे सङ्घ की शाखाएँ बनाने का निश्चय किया गया।

'भारतीय लोक सङ्घ' के उपप्रधान पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी नियुक्त हुए और मन्त्री श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार। सङ्घ का कार्यालय रमाबाड़ी गाजियाबाद रक्खा गया।

१८ दिसम्बर को पत्र द्वारा स्वामी जी ने भारतीय लोक सङ्घ की जानकारी आचार्य भगवान् देव जी गुरुकुल झज्जर को दी। उन्हे यह भी लिखा कि रोहतक प्रान्त से सङ्घ के सभासदों मे आपका नाम लिखा गया है। आप के द्वारा भेजे गए पत्र से आप के सम्बन्ध में जो समाचार विदित हुए, उन के आधार पर यह कहना अनुचित नही है कि आप बहुत अधिक शरीर पर अत्याचार करते है। सेवक को इतना कष्ट नही देना चाहिए और फिर इस शरीर पर आप का ही अक्षुण्ण अधिकार भी तो नही है, इस मे जनता का भी तो बहुत बड़ा भाग है। आशा है आप आगे से ध्यान रक्खेगे। आप अभी कुछ काल विश्राम ही करे और खा-पी कर शीघ्र स्वस्थ सावधान हो जाइये। भारतीय लोक सङ्घ का कार्यक्रम यथा सम्भव शीघ्र ही आरम्भ करना है।

उत्सव पर आ जाऊँगा। मौन तो अब कुछ काल के लिये स्थगित ही है। आर्य समाज के कार्य-क्रम के विषय मे पुस्तिका लिख भेजूँगा।

२९-१-१९४९ को स्वामी जी महाराज रामस्वरूप वर्मा वाणिज्य स्नातक को उन के पत्र के आधार पर निर्देश देते हैं—"प्रतिक्षण प्रसन्न रहो। प्रभु का चिन्तन मन से न बिसराओ। अपनी पत्नी को एक सन्तान और भगवद् भजन दोनो ही प्रदान करो। अपनी भावनाएँ प्रेम पूर्वक उनके मन मे भरने का प्रयत्न करो। विवाह के समय भूल से अथवा जान कर जो व्रत ले लिया है, उस का भी प्रतिपालन करो और अपने जीवन-उद्देश्य को भी मत भूलो। गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी आदर्श धार्मिक बन सकते हो। भजन और स्वाध्याय भूल कर भी मत छोडो। इसी मार्ग मे अपनी धर्मपत्नी को भी कुछ पग उसके साथ चल कर चलाने की चेष्टा कर सकोगे। उचित धर्म से निभाया गया गृहस्थ धर्म भी भव-सागर से पार होने का साधन बन सकता है। परमात्मा मङ्गल करे।"

फर्वरी मास में श्री स्वामी जी महाराज रुधिर-निपीड के रोग से अधिक पीडित हो गये। रुधिर का निपीडन २३० था। चिकित्सकों ने बोलना तथा कार्य करना बन्द कर दिया था। १५, २० दिन पश्चात् ज्यो ही स्वामी जी कुछ स्वस्थ हुए, वे पुन. कार्य सँल्लग्न हो गए। श्री भगवान् देव जी स्वामी जी को गुरुकुल झज्जर का कुलपति बनाना

चाहते थे; किन्तु स्वामी जी ने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि चिकित्सक महानुभाव मुझे पाँच-छः मास के लिए पर्वत पर चले जाने की प्रेरणा दे रहे हैं, जिस से स्वास्थ्य बल पकड़ जावे। स्वामी जी उन दिनों भारतीय लोक सङ्घ के कार्य मे संलग्न थे।

निर्वाचन पद्धति

लोकतन्त्र शासन के नाम से भारत मे जिस प्रकार निर्वाचन होते हैं, उन को दृष्टिगत रखते हुए आर्यसमाज करौल बाग दिल्ली के वार्षिकोत्सव के समय २१ मार्च सन् १९४९ को श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने निम्न शब्दो मे चेतना दी, जो साप्ताहिक सम्राट् के २७ मार्च के अङ्क मे प्रकाशित हुई।

वर्तमान पद्धति

वर्तमान निर्वाचन पद्धति पाश्चात्य प्रणाली के अनुरूप ही है। साधारण रीति यह है कि निर्वाचनार्थी अपने नाम की घोषणा करता है और जनता से कहता है कि मुझे अपने मत प्रदान करो। इसी लिए वह अपने कार्य के लिए पर्याप्त आन्दोलन करता है। अनेक साधन कार्य मे लाता है। अपने अभिकर्त्ताओ को काम पर लगाता है। अनेक प्रकार के प्रलोभन और भय दिखलाता है। झूठ की सीमा नही रहती। पहले तो इस प्रकार करना ही राष्ट्र का पतन करना है, इस से मनुष्यो के मन बिगड़ते हैं। झूठ, धूर्तता, घूँस लेना आदि दोष जड़ पकड जाते हैं। निर्वाचनार्थियों का एक प्रकार से आत्महनन समझना चाहिए। इसी प्रकार से जनता को अपने लिए समुद्यत किया जाता है। निर्वाचन करने वाली जनता शिक्षित नही है। अत: साधारण जनता ठीक-ठीक निर्वाचन नही कर सकती। शुद्ध निर्वाचन यजुर्वेद अध्याय बारह मे "विद्धा ते" आदि मन्त्र मे बतलाया गया है कि चुनाव करने वाले शिक्षित होने आवश्यक हैं। वे सभी प्रकार के प्रलोभनो से दूर रहने वाले हो। इस प्रकार से सदस्य होने वाली व्यक्ति स्वय जनता से मत नही माँगती; अपितु जनता स्वयं योग्य व्यक्ति को चुनती है। जनता स्वय समझती है कि कौन जनता का सच्चा सेवक है। योग्य है। समझदार है। मिथ्याभिमान से दूर है। जनशक्ति से भरपूर है। प्रजा-हितैषी है। अपने क्षेत्र मे उत्पन्न हुआ और रहता है। अपने क्षेत्र का उसे पूर्ण बोध है। वह अपने लिए कोई प्रचार नही करता। स्वयं गम्भीर है। प्रजा के विरुद्ध आचरण नही करता। प्रजा देखती है कि जिस मनुष्य

को हम अपना प्रतिनिधि चुन रहे है, वह राजनीति के कार्य मे निपुण है, अच्छा है। जन-हित के समस्त कार्यों को कर सकता है। उस पर किसी प्रकार का प्रभाव नही डाला जा सकता। वह अपने देश की भूमि, जल और आकाश की सब व्यवस्था को जानता है। जनता में से वह आगे बढा है। इस प्रकार के सज्जन को अपना प्रतिनिधि छाँटना चाहिए।

वर्तमान कार्य

आर्यसमाजी देश-हितैषी सज्जनो को चाहिए कि जनता मे निर्वाचन पद्धति के ढङ्ग का प्रचार करे, जिस से जनता शिक्षित हो जाये। अपना भला बुरा समझ सके। पाश्चात्य पद्धति को नही पकड़ना चाहिए। जब तक जनता शिक्षित न हो, तब तक आगे बताया ढङ्ग स्वीकार करना चाहिए।

सामयिक पद्धति

जब तक जन साधारण शिक्षित न हो जाय, तब तक आपद्धर्म मान कर यह किया जावे कि ग्राम की पञ्चायत होवे और वह अपने में से कुछ शिक्षित समझदार जन सेवक पञ्चो को छाँट लेवे और वे छँटे हुए पञ्च अपने मतो द्वारा अपना प्रतिनिधि चुने। शिक्षित होने पर यह पद्धति हटा दी जावे और प्रत्येक को मत-दान का अधिकार दे दिया जावे। मतदाताओ के मत-दान पर अवश्य योग्यता का अङ्कुश होना चाहिए अन्यथा देश पतन के गढे मे गिर जावेगा।

निर्वाचन का मूल

यजुर्वेद अध्याय बारह का 'आत्वा हार्षम्' मन्त्र निर्वाचन का ठीक अभिप्राय बतलाता है, जिस मे चुने जाने वाले के गुण बताये गये हैं कि किस प्रकार वह स्थिर योग्य, दृढ पुरुषार्थी और जनता का हृदय जीतने वाला हो, जिस को पाकर राष्ट्र मे त्रुटि न आवे। यदि ऐसी व्यक्तियो को सदस्य बनाया जावे, तो राष्ट्र की उन्नति होती है। इन गुणो से रहित को किसी भी प्रलोभन से यदि चुन लिया गया, तो हानि हो सकती है, लाभ नही। शासन-अधिकारियो को भी इन बातो पर ध्यान देना चाहिए। जिससे देश-हित को प्राथमिकता मिले।

जगाधरी मे व्यापक कण्डू रोग

जगाधरी मे व्यापक रूप से कण्डू रोग फैल गया। खुजाते-खुजाते जनता राते आँखो मे काटती थी। आङ्गल चिकित्सको ने औषधो के

अन्तःक्षेप (इन्जेक्शन) करने आरम्भ कर दिए, पुनरपि यह महापिशाच रोग न्यून न हुआ, बढता ही गया। दो मास होने को आए। एक दिन स्वामी जी के समीप आसीन उन का शिष्य महेश भी अपने शरीर पर नख चलाने लगा। खुजाते-खुजाते वह भी दुःखी हो गया। स्वामी जी ने पूछा—"महेश ! क्या बात है ?" महेश ने उत्तर में निवेदन किया—"प्रभो ! कण्डू ने मेरे शरीर पर साम्राज्य कर लिया है। कोई औषध हो, तो बताइये; अन्यथा आप का यह पुत्र बहुत कष्ट भोगेगा।" स्वामी जी ने कहा—"मिट्टी का तैल, कपूर और थोड़ा-सा शुल्बारिक अम्ल (गन्धक का तेजाब) मिला कर लगा लो। सब कुछ ठीक हो जायगा। वह स्वामी जी मे बहुत आस्थावान् था। वह चिकित्सकों के निकट अन्त.क्षेप कराने न गया। झटिति एक काँच कुप्पिका उठाई। थोड़ा-सा तैल उस में लेकर एक आपण से कपूर ले लिया और उसी में डाल दिया। पश्चात शुल्बारिक अम्ल भी उसी में डलवा लिया और सम्मिश्रण कर शरीर पर लगा लिया। दो दिन के ही प्रयोग से वह सर्वथा स्वस्थ हो गया।

वैदिक साधनाश्रम के निर्माण की पृष्ठ भूमिका

जगत् में सब प्रकार की व्यक्तियाँ होती हैं, यदि ऐसा न हो, तो अच्छे बुरे की पहचान भी कैसे हो ? एक दिन एक व्यक्ति ने समाज के सदस्यों के मध्य यह विचार प्रकट किया कि स्वामी जी नियम-भङ्ग कर रहे हैं। आर्य समाज मन्दिर में तीन दिन रहने का नियम है। यह बात फैलते-फैलते महाराज तक भी पहुँच गई। योगिवर्य ने कहा—"ठीक है, अब हम अपना प्रबन्ध अन्यत्र कर लेगे, पर कुछ काल अपेक्षित है"। श्री लाला मिश्रीलाल जी और कश्मीरी लाल जी दो भ्राताओ ने अपनी भूमि में से आश्रम बनाने के लिए ३५ बीघे भूमि प्रदान कर दी एवं एक सहस्र रुपया भी दे दिया। इस के अतिरिक्त मुलाना निवासी श्री लाला गोपीराम जी की स्मृति मे इन्हीं दोनों भ्राताओ के द्वारा गोपीराम न्यासनिधि● के ८५५४ रुपये ३७ पैसे भी प्राप्त हुए। गुरुकुल रावल पुष्टाहार (रावलपिण्डी) की पाकिस्तान में परित्यक्ता भूमि भी उसी भूमि के निकट ले ली गई। यह भूमि जगाधरी स्थात्र※ से दक्षिण दिशा मे तीन सहस्रमान‡ की दूरी पर रायपुर-शादीपुर के मध्य खजूरी मार्ग पर है। वहाँ उस समय मण्डलरथ्या* नही थी। मार्ग में रात्रि के समय लोग लुट जाते थे। ब्रह्मचारी सेवाराम

● ट्रस्ट। ※ स्टेशन। ‡ किलोमीटर। * जिले के अधीन पक्की सड़क।

जी ने उस भूमि मे जाकर महाराज के आदेश से एक झोपड़ी बना ली। महाराज जगाधरी को छोड कर झोपडी मे रहने लगे। उस झोंपड़ी को देख कर प्राचीन ऋषियो की स्मृति आने लगी। तत्कालीन सर्वथा निर्जन स्थान में एक खजूर के पेड़ के नीचे जहाँ अन्य वृक्षो की छाया न हो, गरमी के दिनों में, अन्य वस्तुओं के साथ-साथ तीन-चार व्यक्तियो के लिए दोपहर को विश्राम लेना और वह भी छोटी-सी झोपड़ी में कठिन था, अतः कुछ दूर जाकर जामुन के वृक्ष की विरल छाया में लू के दिन काटते थे। यद्यपि उन दिनो स्वामी जी को रुधिर-निपीड भी था, हृदय में पीड़ा भी हो जाती थी, परन्तु जिस स्थान को एक वार छोड़ दिया, वह छोड़ ही दिया। अब कितनी भी कठिनाइयाँ हो, वही झेलनी है। जिस महापुरुष ने रुधिर-निपीड के होते हुए भी सात महीने तक भारत स्वतन्त्र होने के दिनो में हुए उपद्रवो में जीवन पर खेल कर शरणार्थी शिविरों का कार्य किया हो, वह इस कष्ट को क्या समझे! महात्मा जन ऐसे अवसरों को जीवन के सुगन्धित पुष्प ही गिनते हैं। महाराज योगी थे। अन्तरात्मा से निकला आनन्द ही उन्हे समस्त अवस्थाओ मे एक-सा रखता था। वे गीतिका बनाते थे और गाते थे—

नगरो के सुन्दर भवनो का, कुटिया में कुछ चिह्न नही।
बाह्याडम्बर शून्य गतश्री, पर्णकुटी है क्लिन्न कही ॥१॥
उसमे बैठा एक भिखारी, जीवन के दिन गिनता है।
माँग कही से भीख भूख की, सदा मिटाता चिन्ता है ॥२॥
यद्यपि इस कुटिया के भीतर, सुख का कोई साज नही।
खाने भर को इस कुटिया मे, रक्खा कही अनाज नही ॥३॥
है तथापि कुटिया का स्वामी, अपनी कुटिया मे सानन्द।
राजगृहो को भूल गया पा, राज दुर्लभा नीद अमन्द ॥४॥
कुटिया का आनन्द तनिक तो, वृद्ध भिखारी से पूछो।
पाता क्या विश्राम थका वह, श्रान्त पुजारी से पूछो ॥५॥

मई मास मे एक दिन प्रात. ३ बजे उस झोपडी मे आग लग गई†। उस समय देव आत्मानन्द उस पर्णकुटीर से कुछ दूर विवृत भूतल पर भगवान् के ध्यान मे समाधिस्थ थे। दूसरे साधको का कोलाहल जब

† ब्रह्मचारी सेवाराम जी प्रात. दो बजे उठ कर नित्य कर्मों से निवृत्त हो, भोजन बनाया करते थे और चार बजे तक खा-पीकर ग्रामो मे काम पर चल देते थे। उसी समय झोपडी मे आग लग गई थी। आश्रम के समीपवर्ती ग्रामो मे पाठशालाएँ खुलवाने के लिए यत्न करना आश्रम के समक्ष से मण्डल रथ्या के लिए हस्ताक्षर कराना आदि अनेक काम वे करते थे।

उनके कानो में पहुँचा, तो वे भी आग बुझाने दौडे, परन्तु हस्त-उदञ्च* से उसी समय निकाला जाता हुआ पानी प्रचण्ड उस अग्नि-ज्वाला को कैसे शान्त कर सकता था। आधी ही घडी मे सब कुछ भस्मसात् हो गया। कुटिया में रक्खे हुए काँसी के पात्र भी पिघल गए। सूर्योदय होते ही वह प्रदेश उजडे जङ्गल की भाँति दीखने लगा। पर्णकुटीर से लगे हुए खजूर वृक्ष की थोड़ी-सी छाया बैठने को हो जाती थी; खजूर के भी साथ ही जल जाने से वह भी समाप्त हो गई। इसके पश्चात् वहाँ एक दरी तानी गई, पर आँधी इतनी चलती थी कि वह उसके खूँटों को ही उखाड़ फैंकती थी। दो-तीन दिन, जब तक भोजन का प्रबन्ध वहाँ नहीं कर सके, स्वामी जी के श्रद्धालु भक्त जगाधरी से प्रतिदिन दोनों समय भोजन पहुँचाते रहे। उस दरी से ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी नहीं रुकती थी। स्वामी जी से निवेदन किया गया—"आप प्रातः यमुनानगर के आर्य मन्दिर में चले जाया कीजिए और सायं लौट आया कीजिए। आप के रोग को देख कर यह उष्णता का सहना अच्छा प्रतीत नही होता।" इस कथन पर भी वे यमुनानगर नही गए। श्री मिश्रीलाल जी के उद्यान मे जो एक सहस्रमान दूर था, साढे दस बजे जाते, तो उस समय की उष्णता भी असह्य ही थी। वहाँ कोई विशेष छायापर्ण वृक्ष भी नही थे। एक दिन रात के समय वर्षा होने लगी। सब ने उसी दरी में आश्रय लिया। वह स्थान-स्थान पर टपकने लगी। उस समय परम सहिष्णु स्वामी जी ने भी सम्पूर्ण रात्रि बैठे-बैठे भीगते हुए बिताई। इस प्रकार कार्य चलता न देख कोई कुटीर बनाने का निश्चय किया। सर्व प्रथम काम चलाऊ कच्ची-पक्की ईंटो का एक प्रकोष्ठ खड़ा कर लिया गया। पश्चात् आश्रम बनाने का उपक्रम किया।

योगनिष्ठ श्री स्वामी जी ने अपने उस आश्रम का नाम वैदिक साधन आश्रम रक्खा। वेदो में प्रतिपादित योग-साधनों का उस आश्रम में अनुष्ठान किया जाना था; अतः नाम का निर्धारण तदनुकूल ही किया। वास्तु-शास्त्री श्री स्वामी जी ने थोड़ी सम्पत्ति मे उस आश्रम को इस योग्य बनाया कि सब कार्य उसी से सध सके। जब भवनों का आकार बन कर पूर्ण हो गया, तो पण्डित राजाराम जी ठेकेदार ने कहा— "स्वामी जी ने वास्तु-कला※ कहाँ सीखी है ?"

वहाँ भूमि की गोलाई लेते हुए प्रथम छः कोने वाले छोटे-छोटे छः कक्ष× एक-एक साधक के लिये पृथक्-पृथक् बनाये गए। प्रत्येक कक्ष की

*हैण्ड पम्प। ※ इन्जीनियरिंग। ×कमरा।

उपासना मन्दिर के समक्ष का भाग
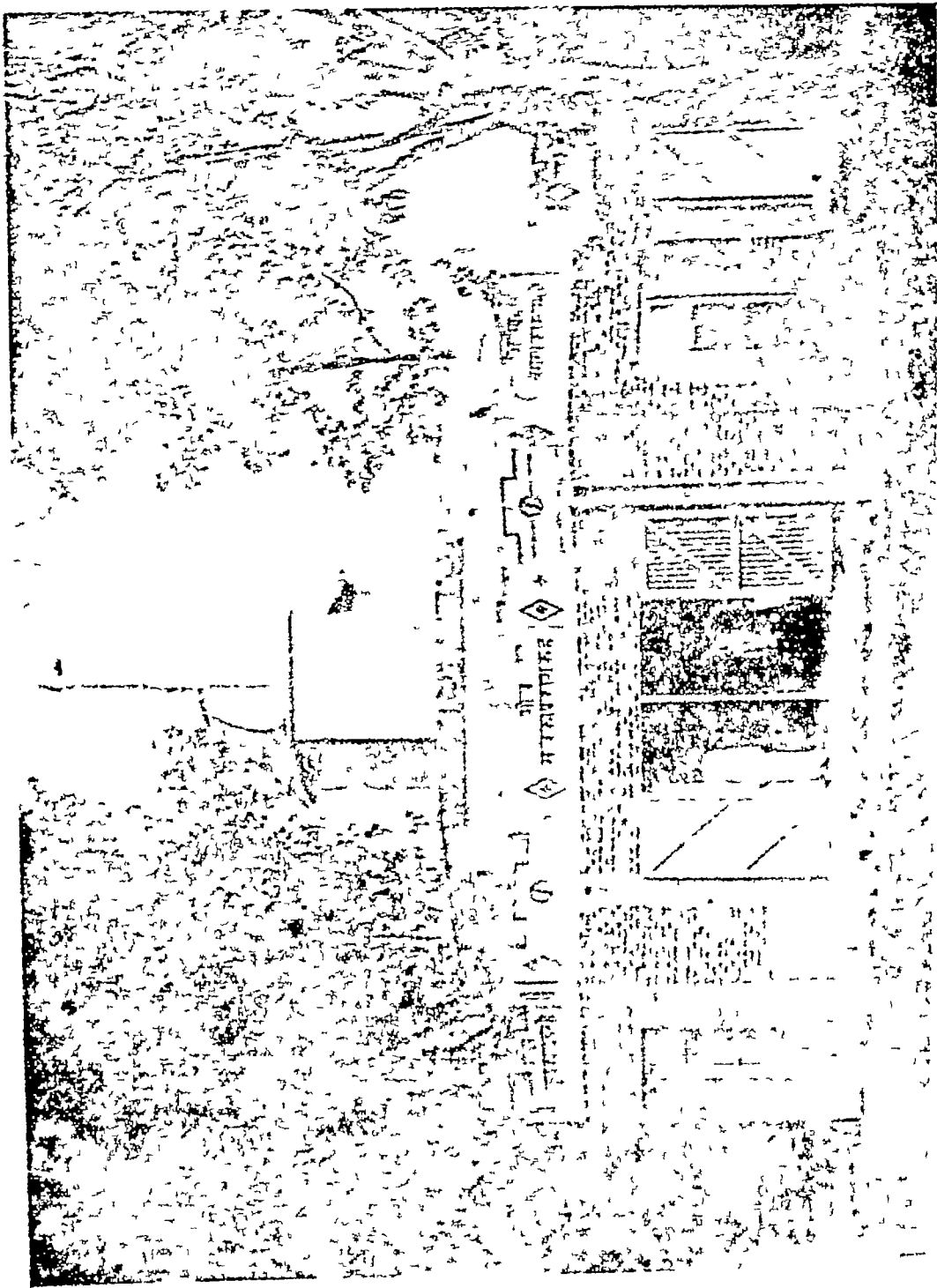
वैदिक साधना आश्रम यमुना नगर का उपासना मन्दिर (पीछे से)

छहो भित्तियाँ सब ओर से साढे सात फीट रक्खी गई। कक्ष आमने सामने एक दूसरे की सीध मे बने। छहो के बन जाने पर आठ-आठ फीट चौडे छ ही मार्ग सीधे निकल जाने के लिये रह गए। मध्य मे एक हवन कुण्ड बना दिया। छहो कक्षो पर छत डाल कर भीतर की बारहों भित्तियो को ऊपर उठा कर उन पर और हवन कुण्ड के चारो ओर खडे किये गए छ. कोनो वाले छह स्तम्भों पर धरणी † रख कर छत डाल दी गई। ठीक यज्ञ कुण्ड के ऊपर वज्र-चूर्ण‡ की पक्की छत देकर एक छोटा-सा छ कोने का कोष्ठ ऊपर से ऐसा गोलाकार बना दिया कि वह दूर से मन्दिर प्रतीत होने लगा। इस प्रकार यज्ञ कुण्ड के चहुँ ओर गोलाई मे एक अत्युत्तम सभा-भवन बन गया। कक्षो की छहों भित्तियों में यज्ञशाला की ओर छ. अलमारियाँ बना दी गई, जो पुस्त-कालय बन गया। उपासना मन्दिर के इन छहो कक्षो के साथ बडे छहों द्वारों को सम्मिलित करके भीतर को ओर बारह तथा बाहर की ओर छत के साथ-साथ चौबीस परदे बन गये। बाहर की ओर मुख्य द्वार पर लिखा गया—'ओ३म् खं ब्रह्म' इस वाक्य के नीचे लिखा—'स्वागतम्' इस के नीचे लिखा—'उपासना मन्दिर'। फिर मुख्यद्वार के दो पार्श्व भागो पर लिखा—(१) उठो—उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते (२) देवान् यज्ञेन बोधय। पश्चात् उत्तर की ओर से आरम्भ कर के परदो पर, एक-एक परदा मध्य में चित्रकारी के लिए छोड़ते हुए क्रमशः ये वाक्य लिखे—(१) अहिंसा प्रेम का श्रेष्ठ स्रोत है। (२) सत्य सङ्घटन का जनक है। (३) अस्तेय विश्वास का मूल है। (४) ब्रह्मचर्य शक्तियो का भण्डार है। (५) अपरिग्रह वैराग्य का स्तम्भ है। (६) शौच सत्त्व का प्रकाशक है। (७) सन्तोष सुख का साधन है। (८) तप. क्षमा का आधार है। (९) स्वाध्याय लक्ष्य का दर्शक है। (१०) ईश्वर-प्रणिधान प्रभु में निज अर्पण है। (११) आत्म-शुद्धि इन यम-नियमो से करे। इस प्रकार सभी चौबीस परदे पूरे हो गये।

श्री स्वामी जी महाराज कहा करते थे कि योग-साधना मे यम-नियमो का ही प्रमुख स्थान है, जब तक ये नही पकते, तब तक साधना मे प्रगति होना कठिन है। अत. उन्हो ने जहाँ अन्य साधन अपनाए, वहाँ कविता रसिकों के लिए तद्विषयक कविता का प्रणयन भी कर दिया।

---

† शहतीर। ‡ सीमेन्ट।

यम और नियम

भुजङ्गप्रयात छन्द

उठो देश को देश वालो उठाओ, गिरा जा रहा है बचाओ, बचाओ।
सदाचार को मार नीचे गिराया, दुराचार ने आन डेरा जमाया।
भली भद्रता का ठिकाना नहीं है, निरी नीचता फैलती जा रही है।
जगो जाति की सभ्यता को जगाओ

१—अहिंसा (यम)

दया की प्रभा क्रूरता ने छिपाई, ध्वजा प्रेम की द्वेष ने आ गिराई।
वड़ा कर्म है दीन प्राणी सताना, बना धर्म है जन्तु को मार खाना।
बचे दीन प्राणी अहिंसा सिखाओ। जगो०……

२—सत्य

नहीं चित्त से मेल वाणी मिलाती, यहाँ और है और बाहर सुनाती।
न विश्वास का वश देता दिखाई, अविश्वास ने दुन्दुभी आ बजाई।
गहो सत्य को झूठ सारा विसारो। जगो०……

३—अस्तेय

न व्यापार का भी रहा बोल बाला, ठगी ने इसे देश से आ निकाला।
धनाधीश जो जाति के हैं कहाते, यहाँ और के वस्तु वे भी चुराते।
चलो स्तेय के जङ्गलों को जलाओ। जगो०……

४—ब्रह्मचर्य

न हों इन्द्रियों में फंसे लोग सारे, दमो भीष्म से देश के हों दुलारे।
पढे वेद विज्ञान का सार जानें, सभी वर्ण आचार को मुख्य मानें॥
बना ब्रह्मचारी सभी को चिताओ॥ जगो०……

५—अपरिग्रह

न होना कभी दान लेवा भिखारी, बनो कर्म के वीर सच्चे पुजारी।
पड़े जाति से वस्तु आहार लेना, कभी तो तभी चौगुना काम देना।
यही है अनादान का गीत गाओ॥ जगो०……

६—शौच (नियम)

बना शुद्ध है मास-सा भ्रष्ट खाना, कभी गर्मियाँ दु.ख दें तो नहाना।
नहीं चित्त को धर्म गङ्गा पठावे, बना शुद्धि के गीत कोरे सुनावे।
उड़ा ढोंग ये, शौच सच्चा सिखाओ॥ जगो०……

७—सन्तोष

मिले न्याय से अन्न के बीस दाने, मुझे मोद से आज वे ही उड़ाने।
बिना कर्म के भोग कैसे मिलेगा, पराया लिया फेर देना पड़ेगा।
यही मर्म सन्तोष का जा सुनाओ॥ जगो०......

८—तप:

कडी धूप हो, शीत हो, वा झडो हो, दुधारा लिए राज सत्ता खड़ी हो।
छुरे से पडे पेट चाहे चिराना, नही धर्म से पैर पीछे हटाना।
तपस्या यही धार ऊँचे कहाओ॥ जगो०.....

९—स्वाध्याय

पढे धर्म सद् ग्रन्थ का पाठ सारे, बुरे नाटको की कथा को विसारे।
करे वाद सिद्धान्त का सार जाने, इसे जीवनी का बड़ा अङ्ग मानें।
यही पाठ नारी–नरो को पढ़ाओ॥ जगो०......

१०—ईश्वरप्रणिधान

उषा काल को व्यर्थ कोई न खोवे, सदा ईश के ध्यान मे मग्न होवे।
निशारम्भ में भी इसे न भुलावे, पिता ईश की दीप्ति से दीप्ति पावे।

सिखा भक्ति यो सज्जनो को तराओ।
जगो जाति की सभ्यता को जगाओ॥
उठो देश को देश वालो उठाओ।
गिरा जा रहा है बचाओ बचाओ॥

इस उपासना मन्दिर के निर्माण समय मे महाशय मुकुन्द लाल जी काष्ठ व्यापारी यमुना नगर, बाबा गुरुमुखसिंह जी, श्री रणवीर सम्पादक मिलाप, कुन्दनलाल प्रेमप्रकाश धुरी पटियाला, वीराँवाली सेठी सुपुत्री कृपाराम जी रावलपिण्डी, पण्डित राजाराम यमुनानगर, हुकमचन्द गुलाटी, सेठ घूँघरमल, बाबू राम ओमप्रकाश आढती, प्यारेलाल ज्ञान चन्द जगाधरी और कश्मीरीलाल नरेन्द्रनाथ ने रुपये दिये। इन दिनो कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि धनराशि समाप्त हो गया वा कम रहा तो पण्डित विद्याधर जी स्वामी जी से पूछते कि अमुक वस्तु के लिए कितना व्यय करूँ ? स्वामी जी उत्तर मे कहते—'जितना व्यय करोगे, उतना ही आ जाएगा।' सचमुच भवन-निर्माण का कार्य चलता रहता था और पैसा आता रहता था।

स्वामी जी के जीवन मे सर्वत्र ऐसा देखा गया कि—जब कहीं वे भवन बनाना प्रारम्भ करते थे, दानी महानुभाव स्वय ही धन भेंट करना आरम्भ कर देते थे। श्री स्वामी जी ने सब दानी महानुभावों के नाम को पत्थर पर अङ्कित करा दिया।

एक दिन वे कहने लगे—"लोग रुपया देते हैं, भवन निर्माण के लिए, किन्तु दाताओ में से यह कोई भी सोचने का कष्ट नही करता कि ये भोजन कहाँ से कर रहे है? खाते भी है वा नही? उनका सम्पूर्ण राशि भवन निर्माण में लगा दिया जाता है और सविवरण लेखा रक्खा जाता है। कभी भी कोई देख सकता है। परिणाम यह होता है कि ये आश्रम सदा निर्धन ही बने रहते है। वहाँ भवन तो दीखते है। बनने वाले आत्माओ के दर्शन नही होते। उन्हे भोजन की चिन्ता लगी रहती है, जिससे उनकी साधना मे बाधा आती है।"

समीपवर्ती स्थानो मे स्वामी जी की विपुल कीर्ति फैलती जा रही थी। गुन्दाना (करनाल) ग्राम निवासी श्री पुन्नूराम जी और रिसालसिंह जी ने अपने ग्राम से सुना कि यमुनानगर के समीप जङ्गल मे एक ऋषि आकर बैठा है, उसका नाम स्वामी आत्मानन्द है। उन्हो ने ऋषि नाम पुस्तको में तो पढा था, परन्तु अब तक ऋषि के दर्शन नही किये थे; अतः वे यह देखने के लिए कि ऋषि कैसे होते है, स्वामी जी के चरणों मे आए। उन्होने अति भक्ति भाव से स्वामी जी को अभिवादन किया। महाराज ने उन्हे प्रेम से समीप बैठाया और कुशल क्षेम पूछा। दोनो भक्त महानुभावो ने देखा कि ऋषि का स्वास्थ्य अत्युत्तम है, मुख अत्याकर्षक है, उन की आकृति से अविरल शान्ति धारा प्रवाहित हो रही है। मुख से निकले वचन और भी अधिक शीतलता प्रदान करते है। उन्हों ने यह भी देखा कि वे किसी बात का उत्तर नपे-तुले शब्दो में ही युक्ति सङ्गत दे देते है। प्रभावित होकर दोनो जने स्वामी जी महाराज में अतीव निष्ठावान् बन गए। वे घर लौट कर ग्राम वासियो मे स्वामी जी की चर्चा करने लगे तथा उन्हो ने अपने पुत्रो को ऋषि-प्रणाली से शिक्षा देने का सङ्कल्प ले लिया।

जगाधरी माडल टाऊन के दीवान राजपाल जी भी महाराज के अति निकट सम्पर्क मे आए।

एक दिन भट्ठे के ठेकेदार श्री लाला लक्ष्मी दास वासुदेव यमुनानगर वासी अध्यात्म विभूति श्री स्वामी जी के चरणो मे आए। साथ मे उनका परिवार भी था। वे कुछ अशान्त थे। महाराज को अभिवादन

करके सम्मुख बैठ गए। महाराज के मुख-मण्डल से शान्ति के तरङ्ग प्रवाहित होते देख वे सुख का अनुभव करने लगे। उन्हे अपनी अशान्ति के प्रकटी करण का अवसर ही न आया। लाला जी का मन महाराज के चरणो से हटने को ही न करता था। पश्चात् महाराज ने सब को आशीर्वाद दिया, बच्चो की पीठ पर हाथ फेरा। लाला जी के सुपुत्र श्री मदनलाल जी तो महाराज के अनन्य भक्त बन गए।

महाराज से अध्यात्म शान्ति प्राप्त करके श्री लाला जी लौट गए। उन्हे शान्ति-प्राप्ति का अद्भुत आश्रय मिल गया, जब भी कभी उन्हें अशान्ति जीवन मे दृष्टि गोचर होती, वे महाराज के चरणो मे थोड़ी देर बैठकर चले जाते।

महाराज ने अनेक वार लाला जी के घर को भी अपने चरणो से पवित्र किया। हवन कराया और उपदेश भी किया।

इन दिनो यतिवर्य श्री आत्मानन्द सरस्वती आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की न्याय उपसभा की त्रिमूर्ति मे भी विराजमान थे। इस सभा मे केवल तीन ही महापुरुष थे, वे थे—१ श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती, २—स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, ३—आचार्य राजेन्द्र कृष्ण कुमार जी।

योग विद्या में अग्रणी

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के वैदिक साधनाश्रम यमुनानगर से श्री विद्याधर जो स्नातक, जो स्वामी जी के एक विशेष शिष्य हैं, स्वामी जी से आज्ञा लेकर श्री सोमतीर्थ जी की सन्निधि में खरखोदा योग सीखने गए। श्री स्नातक जी ने छ मास पूर्व से अन्न छोड़ा हुआ था। वहाँ भी उन्हो ने वही क्रम प्रारम्भ रहने दिया। सियाराम जी के शिष्य स्वामी सोमतीर्थ जी नें जिस विधि से उन्हे कुछ सिखाया, वह विपरीत ही पडा। अन्त में डेढ-दो मास रह कर वे आश्रम लौट आए और महाराज से अपनी अवस्था बिगड़ने की कथा सुनाई। उनका शरीर काँपता था। गिर पड़ने की आशङ्का प्रतिक्षण बनी रहती थी। जब श्री स्नातक जी को योगिप्रवर श्री स्वामी जी महाराज के निर्दिष्ट विधि से लाभ हो गया, तो उन्हे निश्चय हुआ कि स्वामी जी महाराज, योग-विद्या मे बहुत आगे पहुँचे हुये हैं।

योग-निष्णात स्वामी जी ने कभी किसी से यह नही कहा कि मुझ से योग सीखो और न ही कभी वे अपने किसी योग-चमत्कार का वर्णन

करते देखे गए। इसीलिए उनके शिष्य इधर-उधर भटकते रहे। हाँ, यदि उनसें किसी ने इस सम्बन्ध मे कुछ पूछा तो बताया, अतिशय प्रेम से।

आश्रम से प्रस्थान कर महाराज १५-११-४६ की रात्रि को आर्य-मन्दिर मेरठ ठहरे और दूसरे दिन पाली चले गए।

श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी की संन्यास-दीक्षा

भारत का विभाजन अभी नही हुआ था, तभी महात्मा नारायण स्वामी जी के आश्रम रामगढ़ मे पहुँच कर खुशहालचन्द्र जी ने उन से प्रार्थना की कि उन्हे संन्यास की दीक्षा दीजिए, तब श्री पं० गङ्गाप्रसाद जज तथा श्री नारायण दत्त जी भी वहीं थे। महात्मा जी ने उन की बात सुन कर प्रसन्नता प्रकट की, और कहा कि आप का संन्यास दीक्षा ग्रहण करना साधारण नही, अतः इस वन मे नही, हरि-द्वार चल कर यह संस्कार किया जायगा। उन्हो ने कहा—"जैसी आप की आज्ञा।" महात्मा जी कहने लगे कि नाम अभी से निश्चय कर देते है—"आनन्द स्वामी सरस्वती।"

उन का यह अवसर ऐसा टला कि टलता ही गया। महात्मा जी का शरीर रुग्ण हो गया। देश का विभाजन हो गया। लाहौर से उजड कर वे नई दिल्ली पहुँचे। मिलाप तथा हिन्दी मिलाप का कार्य जालन्धर, नई दिल्ली और हैदराबाद दक्षिण में प्रारम्भ किया। इन की व्यवस्था ठीक करने मे दो वर्ष, तीन मास लग गये। कार्य सुचारु रूप से होने लगा, तो उन्होने मन मे निश्चय किया कि अब मोह माया मे फँसे रहना उचित नही है। उसी दिन यमुनानगर पहुँच कर, पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी महाराज सरस्वती की सेवा में अपने हृदय की बात निवेदन कर दी। साथ ही प्रार्थना की कि सन्यास की दीक्षा का कार्य क्रम चुप-चाप हो जाए, तो अधिक अच्छा है। स्वामी जी महाराज मुस्कराकर कहने लगे—"देखो! जैसी प्रभु की इच्छा होगी।" तब यतिवर्य ने गुरुवार पहली दिसम्बर १९४९ का दिन दीक्षा के लिए नियत कर दिया।

उन्हे तीन दिन केवल जल पीकर, आत्मचिन्तन करने और मौन रहने का आदेश हुआ, चुप चाप सन्यास दीक्षा की वार्ता कर्ण परम्परा से उन के परिवार तक पहुँच गयी। समाचार प्राप्त होते ही उनकी पत्नी श्रीमती मेलादेवी जी हैदराबाद से वायुयान द्वारा दिल्ली पहुँच कर आश्रम जा पहुँची और सन्यासिराज से निवेदन किया कि अभी

इन्हे संन्यास की दीक्षा न दीजिए। ये चुप-चाप चले आए है, इस सम्बन्ध में हम ने अभी कुछ भी नही विचारा। अच्छा उपयुक्त समय देख कर यह कार्य कीजिएगा।

निस्पृह स्वामी जी ने उत्तर मे कहा—"मैंने इन्हे बुलाया नही है। आप स्वय ही इन से वार्तालाप कर ले।" जब वे उधर गईं तो, उन्हों ने अपना द्वार खोला ही नही, तब देवी जी को यह निश्चय हो गया कि पहली दिसम्बर को संन्यास की दीक्षा पूर्ण हो ही जाएगी और अब टल नही सकती।

स्वामी जी तो वहाँ अभी ऐसा आश्रम बना कर बैठे ही थे, जिस के गृहतल भी द्रव्याभाव के कारण वज्र-चूर्णित नही बने थे। वे बडे असमञ्जस में पड़ गए। सोचने लगे, "दीक्षा दिवस पर जितने भी महानुभाव इस महोत्सव में सम्मिलित होगे, वे सब मेरे ही अतिथि होगे। वे सङ्ख्या में कितने होगे वा नही होगे ? यह भी कुछ पता नही। ऐसी अवस्था मे कितना और क्या प्रबन्ध किया जावे ? यह सर्वथा सन्दिग्ध है। ला० खुशहालचन्द्र 'आनन्द' भी सर्वथा त्यागी हो कर आए हैं। इस विचार सन्तति मे महाराज ने यही निश्चय किया कि जो होगा, उसी समय देखा जायेगा। गैरिक वस्त्रो और एक उत्तम कमण्डलु का प्रबन्ध करना तो निश्चित है ही। अत. महाराज ने वस्त्रो को रगाना आरम्भ करा दिया और कमण्डलु के लिए एक व्यक्ति को हरिद्वार भेज दिया।

दीक्षा दिवस १ दिसम्बर के प्रात से ही आर्यजन आने आरम्भ हो गए। श्रीमती मेलादेवी ने प्रथम ५०) खाद्य सामग्री के दिए, उसको सामग्री आनी आरम्भ हो गई। व्यक्तियाँ और बढी तो १००) पुन. दिए और बढी, तो १००) पुनः दिए। तथा आगे भी जो व्यय होगा उसे चुकता करने का वचन दिया और अन्त मे ३३५ रुपये समस्त व्यय प्रबन्धक महोदय को दे दिया।

जिस प्रकार से वस्तु आते रहे उसी प्रकार से पाकशाला का कार्य प्रारम्भ होता रहा। प्रबन्धक, कार्य कर्त्ता, पाचक सब बडी कठनाई मे उलझ गए। महाशय ठाकुरदास जी भोजन का समस्त प्रबन्ध करा रहे थे।

तीन दिन के उपवास के पश्चात् प्रातः जव वे साधना के कमरे से बाहर निकले तो एक बड़ी तैयारी के चिह्न देखे। गुरु जी के चरणो मे

प्रणाम करके आत्म-चिन्तन के तीन दिनों का अनुभव वतलाते हुए उन्होने निवेदन किया कि सारे बन्धन टूट ही चुके है, परन्तु चित्त पर दो अत्यन्त सूक्ष्म रेखाये अभिमान तथा मोह की दिखलाई देती हैं। स्वामी जी ने विचार कर कहा—"ठीक है, ये भी टूट जायेगी। अब मुण्डन करा लो। चोटी के बाल पाँच-सात रहने देना।"

मुण्डन कराते-कराते वड़ा जन-समूह एकत्र हो गया। मिलाप परिवार के भी छोटे-बडे सभी वहाँ पहुँच गए। अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना, अम्वाला,सहारनपुर, दिल्ली, फिरोजपुर, करनाल इत्यादि से स्त्री-पुरुष आ पहुँचे। श्री महाशय कृष्ण जी, श्रीमती गन्नोदेवी जी, डा० मिलखीराम जी, श्री यशपाल जी, श्री नारायण दास जी कपूर, डा० लालचन्द जी तथा अन्य महानुभाव भी पधारे।

संन्यास-दीक्षा-संस्कार प्रारम्भ हुआ। वीच ही में यतिवर्य ने उन्हे यज्ञवेदी से उठाया और दो सहस्रमान दूर यमुना नहर के शीतल जल में खड़ा कर के चोटी के शेष वाल उखाड़ने की आज्ञा दी। यज्ञोपवीत भी उतारने को कहा और उन्हे नदी मे बहा दिया गया। स्नान कर के तट पर आये, तो यतिराज चार सौ व्यक्तियो के साथ कषाय वस्त्र लिये खडे थे। उस समय कहने लगे कि इन वस्त्रो का रङ्ग अग्नि की ज्वाला के समान है, आज आप को इन अग्नि-ज्वालाओ में वैठाने लगा हूँ। जिस प्रकार अग्नि-चिता में बैठी व्यक्ति कोई बुरा चिन्तन अथवा कर्म नही करती, उसी प्रकार आप ने भी इस चिता मे वैठ कर कोई बुरा विचार तथा कार्य नही करना है। यह कह कर उन्हे भगवे रङ्ग के वस्त्र पहना दिए।

यमुना-नहर से लौट कर, पुनः यज्ञ मण्डप मे पहुँचे। वहाँ शेप कार्यवाही सम्पन्न हुई और पूर्णाहुति के पश्चात् उन्हे गुरुदेव ने आज्ञा दी कि अव भिक्षा माँगो। श्री आनन्द स्वामी जी ने निवेदन किया, "गुरुदेव ! क्या भिक्षा भी माँगनी होगी ?" महाराज कहने लगे, "हाँ, इसी से अभिमान तथा मोह की रेखाये टूटेगी। अभिमान होगा कि वडा वैभव था, वहित्र थे, भृत्य थे ,मोह ममता भी थी, यह सब भिक्षा-वृत्ति वनाने से नष्ट हो जाता है।" उन्हों ने मस्तक झुका दिया।

गुरु जी ने करमण्डल तथा भिक्षा झोली हाथ मे देकर आदेश दिया कि पहले उस देवी (श्री रणवीर जी, ओम् जी, यशः जी, प्रकाश

जी, युद्धवीर जी, सर्व मित्र जी की माता जी) से भिक्षा माँगिये। साथ ही वे शब्द भी बतलाए, जो कहने थे। तब वे पहले उसी देवी के समीप भिक्षार्थ पहुँचे, और कहा—"देवि! आज तक आप के अतिरिक्त, शेष सारे ससार को देवियाँ माता समान थी, आज से आप भी मेरी माता बन गई है, भिक्षा दीजिए।" उनके इन शब्दो के मुख से निकालते ही शिष्य श्री आनन्द स्वामी जी को वे दोनों रेखायें मिट गईं।

जितने नर-नारी बैठे थे, सबके नेत्र जल पूर्ण हो गये। सब से भिक्षा ले कर गुरु जी के चरणो मे अर्पण कर दी। पश्चात् श्री आनन्द स्वामी जी के सम्बन्ध मे आर्यजनो के व्याख्यान हुए तो, महाशय कृष्णजी ने यह कह कर उन्हे बधाई दी कि खुशहाल चन्द्र जी मुझ से आगे निकल गए हैं।

१९५० के आरम्भ मास मे स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने स्व-रचित 'गीताभाष्य' और 'मनोविज्ञान तथा शिवसङ्कल्प' पुस्तको के निरीक्षण का कार्य आरम्भ किया। पुस्तक समाप्त हो चुके थे और अब उनका पुन. प्रकाशन करना था।

२८ फरवरी से ६ मार्च सन् १९५० तक श्री स्वामी जी महाराज गुरुकुल काङ्गडी के सुवर्ण जयन्ती महोत्सव पर पधारे और अपने शुभ दर्शनो से जनता को परितृप्त किया। महोत्सव मे महाराज के उपदेश तथा व्याख्यान भी हुए। तत्कालीन आवास की सुविधा को देखकर स्वामी जी ने अपना आसन वानप्रस्थ सन्यास आश्रम ज्वालापुर मे लगाया।

एक ओर तो राष्ट्र के मान्य नेता, आर्य नेता और विद्वन्मण्डल अपने अलभ्य उपदेशो से जनता को कृतार्थ कर रहे थे और दूसरी ओर होली के इस अवसर पर रग, गुलालो की हुल्लड़ बाजी मे असभ्य जन अपना अमूल्य समय विनष्ट कर रहे थे।

विरोधी तत्त्व को देख कर हँसो

श्री रामस्वरूप जी आङ्गल स्नातक अपने गार्हस्थ्य जीवन एव कुटुम्ब से तग थे। विवेकी आत्मानन्द ने उनके पत्रोत्तर मे सान्त्वना देते हुए १० मई को लिखा—"यह जान कर आश्चर्य हुआ कि आप को सब सम्बन्धियो के योग एक जैसे ही कटु मिले है। अब इन्हे पूर्व कर्मो का भोग समझकर प्रसन्नता से निभाना ही श्रेयस्कर है। किसी के

किसी भी कार्य को मान-हानि न समझो । यह समझो कि यह कार्य मेरी क्षमा की परीक्षा के लिए भगवान् की ओर से भेजा हुआ एक प्रश्न पत्र है । किसी भी अपने विरोधि-तत्त्व को देखकर हँसो और खिलखिला उठो । समझो कि कर्म भोग का एक भार शिर से उतर गया, और यह भी मुझे क्षमा का एक पाठ पढा गया । सब लोगो की सुविधा यदि इसमे हो कि तुम्हारी धर्मपत्नी पृथक् हो जावे, तो ऐसा कर दो, परन्तु अपनी ओर से अपनी माता की सेवा-शुश्रूषा मे कमी न करो । पिता जी तुम्हारी धर्म पत्नी के समीप भोजन करे, तुम दोनों ओर कर लिया करो ।"

१३ मई को श्री लाला दीवानचन्द मेरठ को लिखते है—"भगवान् के भक्तों के काम वे स्वयं सिद्ध करते है । कभी-कभी वे परीक्षा भी लेते है और कभी-कभी प्रबल भोग भी अपना प्रभाव दिखाता है । भगवान् की ओर से आए हुए सुख और दु:ख को प्रसन्नता से ग्रहण करना चाहिए । भगवान् आप सब को धर्म के पवित्र मार्ग का यात्री बनाए और कल्याण करे ।"

आत्मदर्शी श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने 'आत्मा का स्थान' शीर्षक से लेख लिखा, जिसे ज्वालापुर से स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ ने 'वेद पथ' मासिक के अगस्त १९५० से फरवरी १९५१ ई० (भाद्रपद २००७ से फाल्गुन २००७ वि०) तक के ६ अङ्को मे प्रकाशित किया ।

एक दिन श्री आज्ञाराम जी गान्धी ने आश्रम मे आकर महाराज से कहा—"मेरे समीप २६ रुपये ६२ पैसे है, आप आश्रम के कार्य में इन्हे लगा लीजिए । इससे अधिक और शुद्ध कमाई क्या होगी ।" स्वामी जी ने पूछा—"आप क्या काम करते है ?" उत्तर आया—"मैंने यमुनानगर पेपर मिल मे कोयला कूटने का ठेका लिया हुआ है । कोयलो से काला-कलूटा हुआ रहता हूँ । देश-विभाजन के पश्चात् मुझे अतिशय कठिनाई से यही काम मिला । एक मास मे केवल ये ही पैसे बचा पाया हूँ ।"

गान्धी जी का यह उत्तर सुन कर स्वामी जी बहुत गम्भीर हो गए । थोड़ी देर मे कहने लगे—"आप बाल-बच्चेदार है । परिवार में ही काम आ जाएँगे ।" गान्धी जी ने पुन: आग्रह किया और कहा—"मैं आश्रम में देने का सङ्कल्प कर चुका हूँ, अत: स्वीकार करके आप मुझ पर कृपा करेंगे अन्यथा मुझे कष्ट होगा कि ईश्वर के तो हम सताए हुए हैं ही, महात्मा लोग भी हमे दुत्कारते है ।" यह कहे जाने पर

स्वामी जी के लिये अब कोई विकल्प न रह गया और उन्होने कहा—"अच्छा, आश्रम के लिये आप अपने इन रुपयो के वस्तु ले आइये। मैं लिख देता हूँ।" स्वामी जी महाराज ने गान्धी जी को तैल इत्यादि बहुत-सी सामग्री लिखा दो और गान्धो जी ने लाकर स्वामो जी को भेट कर दी।

१५ दिन पश्चात् गान्धी जी को तैल-निस्सारणी का ठेका मिल गया। उन के समीप रुपये न थे, किन्तु सौभाग्य वश मिल गये और काम चल गया।

तब उन्हे दृढ निश्चय हो गया कि यह सब स्वामी जी महाराज की ही अनुकम्पा है। अत. वे स्वामी जी में अतीव श्रद्धावान् हो गए।

एक दिन स्वामी जी मध्याह्न के समय नगर मे आकर आपण पर बल्लियाँ देख रहे थे। गाँधी जी उधर से निकले और देखते ही स्वामी जी के निकट पहुँच कर उन्हे अभिवादन किया तथा विनम्र निवेदन करते हुए बोले—"स्वामी जी! बल्लियाँ आदि का प्रबन्ध करना तो हम गृहस्थो का काम है। ऐसे साधारण कार्यों मे आप का बहुमूल्य समय नष्ट नही होना चाहिये।" गाधी जी इस के अतिरिक्त भी स्वामो जी महाराज की सरलता, निरभिमानता आदि गुणो के विषय मे गम्भीर विवेचना मे पड़ गये और प्रकट रूप मे बोले—"आश्रम मे बहुत व्यक्तियाँ हैं, आप मेरे समीप किसो के द्वारा सूचना भेज दिया कीजिये। इस सम्बन्ध मे, मैं बहुत कुछ सहयोग देने का यत्न करूँगा। आप के आश्रम मे श्री स्वामी प्रेमानन्द जी ही एकाकी नगर के कार्यों मे पर्याप्त है। आश्रम का लेखा आप स्वय आश्रम मे ही अपनी व्यक्ति से रखावे। वस्तुओ के मूल्य का भुगतान मैं करा दिया करूँगा।"

इस के अनुरूप चलते-चलते गाधी जी के रुपये १६८० ०० आश्रम पर हो गये और उन्होने माग की। उन्हे आवश्यकता थी। स्वामी जी ने कहा—"अब के बार शीत ऋतु मे गन्ने के आय से दे देगे।"

स्वामी जी के इस कथन से गाधी जी को अतिशय खेद हुआ कि आश्रम बहुत निर्धनता की अवस्था मे चल रहा है। ऐसी अवस्था में रुपयो की याच्ञा भी एक अनुचित ही कर्म हुआ।

कुछ काल इसी प्रकार अतिवाहित हो गया। स्वामी जी महाराज बाहर से आकर असमय मे आर्य समाज मन्दिर यमुनानगर मे ही ठहरते थे। किसी के घर पर कहो भी ठहरना उनकी प्रकृति के प्रति-

कूल था। विशेष किसी से कार्य हुआ तो अपने समीप ही उसे आहूत कर लिया करते थे। अनेक वार श्री आज्ञाराम गान्धी जी को भी इस कृपा का अवसर उपलब्ध हुआ। गान्धी जी का सकल परिवार ही श्री स्वामी जी मे श्रद्धान्वित था। स्वामी जी साधारणतया व्यवहार करते प्रतीत होते हुए भी गहरा ध्यान मनुष्यो की आजीविका स्थिर बने रहने पर देते थे। एव तत्सम्बन्धित अधिकारी को भी प्रेरणा दे दिया करते थे कि किसी व्यक्ति की आजीविका नष्ट न होने पावे, जिस से वह स्वधर्म-पालन से विचलित न हो। गान्धी जी के जीवन मे भी ऐसा अवसर आया और स्वामी जी की अपार कृपा से उनका धन्धा स्थिर रहा।

एक समय प्रात चार बजे शयन करते हुए गान्धी जी ने ऐसा सुना मानो, स्वामी जी महाराज बाहर खड़े पुकार रहे हैं। द्वार खोल कर ऊपर-तले सर्वत्र देखा, वहाँ स्वामी जी कही न दीख पड़े। पारिवारिक व्यक्तियो से भी पूछा, सभी ने नकार किया। इस कौतुक की यथार्थता लेने के लिये वे प्रात कालीन कार्यो से निवृत्त होकर स्वामी जी महाराज के चरणो मे आश्रम पहुँचे और पूछा—"आपने मुझे आज घर पर पुकारा था क्या ?" स्वामी जी ने प्रतिवचन में कहा—"नही, मैं तो वहाँ नही गया।" गान्धी जी बोले—"वाणी तो आप की ही थी।" "कितने बजे थे ?" यह पूछने पर गान्धी जी ने उत्तर दिया—'चार बजे थे।" स्वामी जी ने अतीव सरल भाव से कहा—"मै गया तो नही था, यही था, पर आप को उस समय स्मरण अवश्य किया था।" गान्धी जी इस वचन पर श्रद्धातिरेक से और भी अधिक अभिषिक्त हो गये और कहा—"सोलह सौ अस्सी रुपये, जो मेरे आश्रम के नाम निकलते है, मैं लेना नही चाहता, मेरी पत्नी के नाम दान की रसीद काट दीजिये।" इस से स्वामी जी अति गम्भीर मुद्रा मे हो गये और गान्धी जी सहज मे वहाँ से खिसक आये। सायङ्काल श्री पण्डित विद्याधर जी स्नातक ने, जो कि आश्रम के आय-व्यय लेखे के लेखक थे, नगर मे गान्धी जी से भेट हो जाने पर उन्हे बताया कि आज स्वामी जी महाराज निश्चिन्त थे।

अनेक वार गान्धी जी को स्वामी जी के साथ आश्रम आने का रात मे भी अवसर मिला। ऊंचे-नीचे विषम कच्चे मार्ग पर सर्प लेटे हुए दिखाई देते, तो स्वामी जी उस समय कहते—"हमे भी जाने का मार्ग दो। इस मार्ग पर चलने का सभी का

अधिकार है।" तब सर्प वहाँ से खिसक जाते और स्वामी जी आगे बढ जाते थे।

दया के आगार श्री स्वामी आत्मानन्द

अलाहर (करनाल) निवासी श्री पण्डित केवलराम जी का घर पुत्र से सूना था। देवी जी दिवङ्गत हो चुकी थी। श्री केवलराम जी भी स्वर्गारोहण की सज्जा मे थे। उन्हो ने श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज को अपनी सम्पत्ति के लिए उत्तराधिकार पत्र लिख कर दे दिया। श्री केवलराम जी के देवलोक पहुँच जाने पर स्वामी जी ने श्री विद्याधर जी स्नातक को अलाहर ग्राम की व्यक्तियो की साक्षी के लिए वहाँ भेजा। उन्हो ने द्वारकादास जी नम्बरदार और आसाराम सरपञ्च को पञ्जीकरण के निमित्त एकत्रित किया आर्य प्रतिनिधि सभा के भजनोपदेशक श्री ओम्प्रकाश जी भी वहाँ उपस्थित थे। वे भी केवलराम जी के दूर सम्बन्धियो मे से है। उन्हो ने बताया कि स्नातक जी के अलाहर पहुँचने पर केवलराम जी के द्वितीय घराने के प्रपौत्र सोहनलाल और बाबूराम को यह दृढ निश्चय हो गया कि केवलराम जी की ४० बीघा भूमि अब अवश्य स्वामी जी के आश्रम के नाम राजकीय पञ्जी मे पञ्जीकृत हो जावेगी। वे दौडे-दौडे स्वामी जी के चरणों मे आश्रम आए और निवेदन करने लगे—"स्वामी जी! हम तो चिरकाल से इस भूमि पर दृष्टि जमाये हुए थे। हम केवलराम जी के सम्बन्धी हैं। उनकी भूमि के मिलने से हमारे दिन सौभाग्य मे परिवर्तित हो जायेगे।" स्वामी जी ने पूछा—"क्या तुम वास्तव मे अधिकारी हो? हमे तो इस सम्बन्ध मे कुछ नही बताया गया।" इसके पूर्व कि वे उत्तर देते, स्नातक जी बोले—"हाँ स्वामी जी। ये ठीक कह रहे हैं, मैं इन्हे जानता हूँ।" इस कथन के सुनते ही उदार चेता स्वामी जी ने कहा—"अच्छा, सब भूमि तुम्हारी। तुम ही जोतो-बोओ।" केवलराम जी के पुस्तक उन के काम के न थे, वे उन्हो ने आश्रम मे भिजवा दिये।

लोकैषणा के गन्ध से दूर

प्रकाशन विभाग, वैदिक साहित्य सदन, लाल दरवाजा, सीताराम बाजार दिल्ली मे श्री भगवान् देव जी आचार्य, श्री स्वामी जी का लिखा 'मनोविज्ञान तथा शिव सङ्कल्प' पुस्तक छपा रहे थे। प्रकाशन विभाग के प्रबन्धक श्री राजेन्द्र नारायण जी (श्री जगन्नाथ के लघु

भ्राता) ने स्वामी जी महाराज से पुस्तक के ऊपर उन का चित्र देने की अनुमति माँगी, तो महाराज ने ६-१०-१६५० के पत्र मे उन्हे लिखा— "चित्र देने को मन नही चाहता। मैं इस मे लोकैषणा की घातक झलक देखता हूँ। कृपया नाम मात्र ही पर्याप्त समझे।"

चित्र के लिए दोबारा राजेन्द्र नारायण जी के आग्रह करने पर २४-१०-१६५० को स्वामी जी ने उन्हे पुन. लिख भेजा—"मैं तो अनेक दोषो से सम्पन्न एक साधारण जीव हूँ। कपिल, कणाद आदि पूज्य महर्षियो का चित्र आज तक किसी ने उन के पुस्तको मे नही छापा और उन के जीवन अपने सुगन्ध से आज तक जनता के जीवनो को सुगन्धित कर रहे है। अत. यदि जीवन मे कुछ भी गुण हुआ, तो विना ही चित्र के किसी को कुछ लाभ पहुँच ही जावेगा। कृपया पुस्तक मे चित्र न दीजिए।"

ब्रह्मचारी सत्यप्रिय जी व्रती लाडवा से प्रति सप्ताह एक दिन स्वामी जी के चरणो मे आकर उपस्थित होते थे और अपनी शङ्काओ का निवारण सारे दिन ही करते रहते थे, यद्यपि स्वामी जी के शरीर मे रुधिर-निपीड के कारण निरन्तर इतना समय देने की क्षमता न थी, तथापि वे श्री ब्रह्मचारी जी की शङ्काओं का समाधान निरन्तर करते रहते थे। इस प्रकार श्री ब्रह्मचारी जी सर्वथा नि.सशय हो गए और आर्य जनो को अपने उपदेशो से परितृप्त करने लगे।

५ दिसम्बर १६५० को परिव्राट् श्री आत्मानन्द ने गुरुकुल झज्जर मे पधार कर कुलवासियो को कृतार्थ किया। वहाँ के आचार्य श्री भगवान् देव जी से श्री स्वामी जी महाराज का चिर स्नेह था, किन्तु ५ दिसम्बर को श्री महाराज का उन के यहाँ पधारना इतने दीर्घकाल मे सर्वथा प्रथम था। उन्हों ने गुरुकुल के प्रत्येक विभाग को ध्यान पूर्वक देखा और अपनी सम्मति गुरुकुल के सम्बन्ध में निम्न शब्दो में प्रकट की—

५-१२-५० आज मैने गुरुकुल झज्जर का अवलोकन किया। ब्रह्मचारियो का स्वास्थ्य अच्छा है। यहाँ की पाठ्य-प्रणाली आर्ष पद्धति के अनुसार है। रहन-सहन, वेप-भूपा तथा खान-पान सब कुछ सात्विक है। ब्रह्मचारियो से ब्रह्मचर्य के नियमो का पालन कराने की चेष्टा की जा रही है और उन्हे विद्या दान तथा आचार शीलता के अभ्यास के साथ-साथ श्रमशील एवं तपस्वी बनाने का यत्न किया जा रहा है।

ब्रह्मचारियो को आचार व्यवहार के जिस नियन्त्रण मे रखने की चेष्टा की जाती है, यहाँ के आचार्य तथा अध्यापक वर्ग भी अपने आप को आचार व्यवहार के उसी बन्धन मे नियन्त्रित रखने का यत्न करते है। यहाँ बाह्याडम्बरों का उतना समादर नही देखा, जितना श्रौत-स्मार्त सदाचार का। ऐसी सस्थाएँ ही देश को तपस्वी, सदाचारी कार्यकर्त्ता दे सकती हैं। मुझे इस सस्था को देख कर प्रसन्नता हुई है। यहाँ का प्राचीन आदर्शों का अनुसरण ही इस प्रसन्नता मे कारण है। यह सस्था जनता की सहायता की विशेष रूप से पात्र है। भारतीय सस्कृति के प्रेमियो को अवश्य यहाँ के अधिकारी वर्ग का हाथ बँटाना चाहिए।"

आचार्य भगवान् देव जी ने महाराज का उपदेश कराने की योजना बनाई और ब्रह्मचारियो से कहा—"श्रद्धेय पूज्यपाद स्वामी जी का व्याख्यान होगा, कोई हिले नही, सब अन्त तक सीधे बैठे रहे।"

उस के पश्चात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री आत्मानन्द ने वहाँ के ब्रह्मचारियो को अथर्ववेद के ११-५-३ मन्त्र का उपदेश किया। उन्हो ने निम्न मन्त्र का उच्चारण ओजस्वी वाणी मे किया—

"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिण कृणुते गर्भमन्तः।
त रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति त जात द्रष्टुमभिसयन्ति देवाः॥"

उपदेश के कुछ शब्द निम्न हैं—

श्री स्वामी जी ने ब्रह्मचारियो को सम्बोधित करते हुए कहा—"जीवन की उन्नति के लिए, जैसे तपस्वी, कठोर नियमपालक, ब्रह्मचारी आचार्य की आवश्यकता विद्यार्थियो को हुआ करती है, उस के अनुरूप आचार्य तुम्हे मिले हुए हैं। यह सुअवसर तुम्हे हाथ से नही खोना चाहिए। प्रतिक्षण उनकी आज्ञा मे तत्पर रह कर कठोर नियमों का पालन अत्यन्त प्रसन्नता के साथ करना तुम्हारे लिए इस वय मे बहुत आवश्यक है। क्यो कि अभी तुम अपने जीवन की आधार शिला को दृढ बनाने मे विवेकी नही हो। यदि ऐसे वायुमण्डल मे भी तुम अपना निर्माण नही कर सके, तो यह दोष तुम्हारा अपना ही होगा। यह गुरुकुल भूमि आचार्य का गर्भ कहलाती है। गर्भ मे नियत समय तक रहना अत्यन्त आवश्यक होता है, अत कब तक ब्रह्मचारी को गुरुकुल मे रहना चाहिये, इस ओर भी मन्त्र मे प्रकाश डाला गया है। इसके लिए इस मन्त्र मे 'तिस्र. रात्री' शब्द आए हैं। वे तीन प्रकार

की विद्याओं के द्योतक हैं । ज्ञान, कर्म और उपासना, ये तीनो वस्तु ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के आधार पर जब तक तुम्हारे जीवन का अङ्ग न बन जावे तब तक तुम्हे गुरुकुल मे रहने का अधिकार है और वह ही तुम्हारी परिपक्व अवस्था है । तुम अपने इस अधिकार को, अपने आचार्य से माँगने के पूर्ण अधिकारी हो । तुम्हें सब प्रकार से योग्य बना देना उन का अपना कर्त्तव्य है । इस के पश्चात् विद्या रूपी माता से तुम्हारा ऐसा उत्कृष्ट जन्म होगा कि सामान्य जन तो क्या, बडे-बड़े विद्वान् तुम्हे देखने आवेगे । तुम्हे किये गए इस कठोर तप के लिये साधुवाद देंगे । तुम्हारे जीवन में आने वाली कठिनाइयों से वे तुम्हे उबारेंगे, तुम उन के सम्पर्क में आ जाओगे और देश का अधिक से अधिक कल्याण कर सकोगे ।" इस के पश्चात् महाराज जी वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर लौट गये ।

अठारह जनवरी से स्वामी जी की पीठ मे भयङ्कर पीड़ा रहने लगी; उस के उपचारार्थ औषध-सेवन किया गया, जिस से रुधिर-निपीड पुनः बढ गया । पीठ की पीड़ा एक मास रही, किन्तु रुधिर-निपीड के बढ जाने से चिकित्सको ने भाषण देने के लिए स्वामी जी को वर्ज दिया ।

ब्रह्मर्षि आत्मानन्द की अध्यक्षता मे अमरोहा (जिला मुरादाबाद) में एक रामजीदास नामक व्यक्ति के घर पर सम्पूर्ण यजुर्वेद से सात दिन का यज्ञ आरम्भ हुआ । उन दिनो आर्यसमाज मन्दिर में श्री विद्यानन्द जी विदेह की कथा हो रही थी । यजमान महोदय ने महाराज से निवेदन किया—"स्वामी जी ! हम ने अपने हवन मे सम्मिलित होने के लिये श्री विद्यानन्द जी विदेह से वहुत आग्रह किया, किन्तु वे स्वीकार ही नही करते ।" महाराज ने कहा—"मेरा नाम ले देना कि स्वामी जी बुला रहे हैं, वे आ जाएँगे ।" यजमान बुलाने चला गया । इतने समय मे स्वामी जी ने उनके लिए पृथक् से एक दरी वेदी के उच्च भाग में बिछवा दी और उस पर बहुत सुन्दर एक चादर डलवा दी । श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी भी वही थे । श्री विद्यानन्द विदेह के आने पर अति सत्कार पूर्वक महाराज ने उन्हे उनके आसन पर आसीन किया । उस दिन की हवन-समाप्ति हो चुकी थी । नियमानुसार एक मन्त्र की कथा प्रारम्भ होनी थी । महाराज ने उस दिन किसी मन्त्र की व्याख्या कर देने को श्री विद्यानन्द जी विदेह से कहा । विदेह जी ने उत्तर दिया—"महाराज ! आप के सम्मुख हम क्या बोल सकते हैं ?" महाराज के पुनः आग्रह पर भी विदेह जी ने स्वीकार नही किया । फिर

स्वामी विशुद्धानन्द जी से कहा गया। उन्हो ने भी अस्वीकार कर दिया। अत. अन्त मे ऋषि आत्मानन्द ने ही कथा की। महाराज मे यह विशेष गुण था कि वे प्रत्येक विद्वान् का समुचित आदर करते थे। विदेह जी थोड़ी देर पश्चात् उस यज्ञ स्थान से अपने आवास पर आ विराजे।

साय सूर्यास्त के पश्चात् जब श्री विद्यानन्द जी विदेह की कथा हो रही थी. तो आर्य मन्दिर मे जनता की भीड अच्छी थी। महाराज भी अकस्मात् कथा स्थान मे पहुँच गए। वस्तुत· विदेह जी की वाणी ओजस्विनी एवं सरस थी। उन्हो ने अपनी कथा प्रारम्भ रखते हुए मध्य में एक श्लोक बोला और उस की व्याख्या की, किन्तु वह व्याख्या श्लोक पर नही घट रही थी। जनता मन्त्र मुग्ध की भाँति विदेह जी के पदलालित्य मे कथा-प्रसङ्ग सुन रही थी। कथा मे कोई कमी न थी, कमी थी तो केवल यही कि श्लोक वहाँ ठीक प्रकार से नही घट रहा था। कथा समाप्ति पर सब चले आये। महाराज के अपने स्थान पर आ जाने पर एक विद्वान् ने उन से पूछा—"क्या विदेह जी उस श्लोक का ठीक अर्थ कर रहे थे?" महाराज ने उत्तर मे कहा—"नही, जैसी मैंने विदेह जी की प्रशंसा सुनी थी, उसके आधार पर इन्हे मैं अच्छा विद्वान् समझता था, पर यह धारणा विपरीत निकली। पुनरपि अपने स्वाध्याय से बहुत उन्नति कर गए हैं।"

इस प्रसङ्ग को छोड कर महाराज ने रामायण का निम्न श्लोक बोला—

> मय्येव जीर्णता यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
> नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकाङ्क्षति॥

फिर इस की व्याख्या करते हुए कहा कि मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, कितनी उच्च सस्कृति ससार के लिए छोड गए है। वे कहते है—

हे कपे! हनुमन्! जो तुम ने मुझ पर उपकार किया है (वैदेही के अन्वेषण मे अपनी पूर्ण शक्ति से रात-दिन एक कर दिये है) यह उपकार मुझ मे ही जीर्ण हो जावे—समाप्त हो जावे। उस का बीज भी मेरे हृदय मे न रहने पावे। क्योकि प्रत्युपकार की भावना रखने वाला मनुष्य उस पर विपत्ति चाहता है। अर्थात् विना विपत्ति आये प्रत्युपकार सम्भव नही है, अतः तुम्हारा यह उपकार यही समाप्त हो जावे।

यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् महाराज अपने एक शिष्य को लेकर जो कि उनके आश्रम से साथ ही था, आर्य समाज दीवानहाल दिल्ली आ गये। शिष्य की योग मे रुचि थी। महाराज ने उस से कहा—"चलो,

ब्रह्मचारी व्यासदेव जी के समीप ऋषिकेश चले।" दोनो दिल्ली से चल कर ऋषिकेश जा उतरे। वहाँ सबसे पहले स्वामी देवानन्द जी से मिले, जो वैदिक आश्रम आर्य समाज मन्दिर मे थे। प्रातः काल का समय था, वहाँ जलपान किया। भोजन के लिये आग्रह करने पर महाराज ने अस्वीकार कर दिया और श्री व्यासदेव जी की ओर चल दिये। चल कर बाहर आये ही थे कि बोले—"रिक्त हाथ नही जाना चाहिए यह आर्य मर्यादा है, चलो नगर से कुछ ले ले।" आपण पर पहुँच कर कुछ बादाम तुलवा लिये और कहा—"ये तुम श्री ब्रह्मचारी जी को भेट कर देना।"

मार्ग मे शिवानन्द आश्रम आदि पार करते हुए गङ्गा पार जाने के लिए एक नौका मे बैठ कर पार हो गये। स्वर्ग आश्रम मे श्री व्यास जी से चार आँखे हुई। परस्पर अभिवादन के अनन्तर सबने अपने-अपने आसन ग्रहण कर लिये। शिष्य ने भेट समर्पित कर दी। महाराज ने व्यासदेव से कहा—"यह आपका शिष्य है, इसे कुछ बताइये।" व्यास देव जी ने आर्य मर्यादा के अनुसार कुछ पेय-खाद्य सामग्री ले लेने का आग्रह किया। महाराज ने कहा—"हम दूध पीछे पी आये है और अभी भोजन का समय हुआ नहीं है।" श्री व्यास देव जी ने विशेष रूप से सादा भोजन बनाने का पाकशाला मे आदेश दे दिया। पश्चात् उन्हों ने महाराज के शिष्य से योग-सम्बन्धि कुछ उस की अभिज्ञता ज्ञात कर के उसे पानी पर त्राटक करने का सुझाव दिया। महाराज ने ब्रह्मचारी जी से अभ्यास करने के लिये अपने यहाँ कोई प्रकोष्ठ देने के लिए कहा। श्री व्यास देव जी की ओर से उत्तर मिला—"अमुक कक्ष मे अमुक सेठ आने वाले हैं और अमुक मे अमुक। अतः यहाँ कोई स्थान रिक्त नही रहा।" पुनः महाराज ने कहा—"गरमी के दिनो मे इसे आप अपने साथ पर्वत पर ले जावे।" व्यास देव जी की ओर से उत्तर आया—"वहाँ तो स्थान की बहुत ही कमी है।" इस के पश्चात् अन्य वार्तालाप मे समय अतिवाहित हो गया। भोजनोपरान्त विश्राम किया और पुनः महाराज ने मन और इन्द्रियों के विषय मे श्री व्यासदेव जी से सूक्ष्म बाते पूछी। लगभग एक घण्टा वार्तालाप होता रहा। व्यास जी के समीप उस समय वैशेषिक दर्शन रक्खा था; उस पर तो कोई चर्चा नही चली। अन्त मे महाराज उन से मिल कर लौट आये। मार्ग में शिष्य ने स्वामी जी से कहा—"व्यास जी ने मन और इन्द्रियो के विषय में जो प्रकाश डाला है, वह समझ मे नही आया।" स्वामी जी

ने उत्तर दिया—"मेरी भी समझ मे नही आया। मै तो उन की बात चुप-चाप सुनता रहा। व्यास देव जी की स्थिति पहले बहुत अच्छी थी। इन में बहुत आकर्षण था। इन का बड़ा तप था, ये अनेक प्राणायाम जानते थे। मुख मण्डल पर विशेष आभा थी। पर अब वह बात नही रही। योग सिखाने के चक्कर मे पड़ गए। योग सिखाना कोई बुरा काम नही, बहुत उत्तम है। किन्तु इस मार्ग के अवलम्बी मे समदृष्टि आना बहुत आवश्यक है। व्यास जी के समीप धनी व्यक्तियो के लिये तो स्थान है, निर्धनो के लिये नही। यह बड़ी विचित्र बात हो गई।"

देश में सदाचार की दुर्दशा

श्री स्वामी जी ने देश और विदेश मे मानव-जीवन के आधार भूत सदाचार पर एक प्रसङ्ग मे प्रकाश डालते हुए कहा—"अपने भाग्य पर सन्तोष, दान, दया, न्याय का आदर, सत्य का अनुसरण, इन्द्रियो पर संयम, परोपकार की भावना, धन का सदुपयोग, ब्रह्मचर्य का सदनुष्ठान आदि सदाचार के मूल तथा शाखा-प्रशाखाओ को जीवन के लाले पड़े हुए हैं। हम विष वृक्ष को सीच रहे है और आशा लगाये बैठे हैं कि यह हमे अमृत फल देगा। मानव वश-वन मे द्वेष का भयङ्कर अग्नि लगा कर हम आकाश से आती हुई शान्तिदायक जल धाराओ का स्वप्न देख रहे है। आँखे खोलते हुए भी हम अपनी इस आत्मवञ्चना को देखने मे असमर्थ हो रहे हैं। अस्थाई और थोडे से भूमि, चादी और सोने के टुकड़ो के लिये आज मानव, मानव के गले पर कटार फेर रहा है, निरपराध दुध-मुहे बालको तक को भालो की नोक से बीधा जा रहा है, तैल के कडाहो मे तला जा रहा है, वा गोले फेक कर भस्म किया जा रहा है। रोती हुई और अपने सतीत्व की रक्षा के लिये करुणा की भीख माँगती हुई असहाय मातृ-शक्ति को भी अत्याचार की भयङ्कर ज्वालाओ मे जलाया जा रहा है। इस भयङ्कर अत्याचार को देख कर यह मानने को मन नही चाहता कि आज के व्यावहारिक जगत् मे सदाचार नाम का कोई वस्तु बचने दिया जावेगा।"

भगवान् आत्मानन्द का कथन था—"हमारी शक्ति का प्रयोग भाषण मे हुआ, कर्म मे नही, हम ने आदर भी भाषण को दिया, कर्म को नही। महर्षि दयानन्द के जीवन में कर्म प्रथम था, भाषण पश्चात्। उन्होने अपने जीवन को पहले रङ्ग कर दूसरो के जीवन को रङ्गने

के लिए भाषण पीछे किये है। देश मे वैदिक संस्कृति और सभ्यता की स्थापना करना ही ऋषि ऋण से अनृण होने का एक मात्र साधन है। यह कार्य हम सदाचार की आधार शिला की स्थापना से कर सकते हैं और उस के लिये हमे दिव्य-आत्मशक्ति को प्राप्त करना होगा।

वैदिक निर्वाचन प्रणाली

सन् १९४८ मे 'भारतीय लोक सङ्घ' की स्थापना की गई थी। जिस का प्रधानत्व श्री स्वामी जी महाराज ने स्वीकार किया था। यह एक राजनयिक सस्था थी, जिस का उद्देश्य निर्वाचन के समय योग्य से योग्य पुरुष, शासन-सूत्र को चलाने के लिये, चुन कर भेजना था। इस 'भारतीय लोक सङ्घ' को उन सब दोषो से दूर रखने की चेष्टा थी, जो वर्तमान राजनीतिक सस्थाओ में आ गए हैं।

राष्ट्रपति महोदय किस योग्यता के हों; वे किस के द्वारा चुने जावें, तथा वे राष्ट्र की भलाई के लिये अपना क्या कर्त्तव्य जनता में घोषित करें, ऐसी कुछ आवश्यक जानकारी को लक्षित करके 'वैदिक निर्वाचन प्रणाली' एक लघु पुस्तक का श्री स्वामी जी महाराज ने लेखन किया, जिसे श्री लालचन्द जी चिकित्सक, प्रधान आर्य समाज, गुरुकुल विभाग अम्बाला छावनी ने प्रकाशित कराया। इस के प्राक्कथन में स्वामी जी लिखते हैं—

"देखने में आता है कि निर्वाचन के समय देश का वायु मण्डल अत्यन्त दूषित हो जाता है, कटुता बढ जाती है और निर्वाचन से पहले जिनके सम्बन्ध अत्यन्त मधुर थे, वे भी इस निर्वाचन प्रथा के प्रताप से एक दूसरे के शत्रु बन जाते है। छोटे-छोटे ग्राम भी टोलियों में बँट जाते है और एक टोली का दूसरी टोली के साथ स्थायी वैर आरम्भ हो जाता है। निर्वाचन के लिये नाम देने वाले महानुभावो के ऊपर निर्दयता से कीचड फेका जाता है और उन के गुणों को छिपा कर उन के कही कल्पित और कही यथार्थ दोषो की डोंडी पीटी जाती है। इस अवसर पर जिन अनुचित उपायो का अनुसरण किया जाता है, वे देश के भ्रष्टाचार की उन्नति मे पर्याप्त सहायक बनते हैं। इन उपायों का अनुसरण होने से अधिकारो पर कई वार ऐसे पुरुष भी स्थान पा जाते हैं, जो उन अधिकारो के योग्य नही होते। ऐसे लोगों के अनुचित व्यव-हारो से प्रजाजन उच्छृङ्खल हो जाते हैं और राष्ट्र का नियन्त्रण शिथिल पड जाता है। ऐसे ही लोगो की सदाचार मे शिथिलता को देख कर

प्रजा भी शिथिल पड जाती है और राष्ट्र अनाचार के कारण एक भयानक भँवर मे फँस जाता है।

जो छोटी सी पुस्तिका मैं जनता के समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ वह निर्वाचन क्षेत्र के इसी दोष को देख कर लिखी गई है। इस पुस्तक मे मेरा अपना कुछ भी नही है। यह निर्वाचन विषय पर भगवान् की ओर से सृष्टि के आरम्भ मे आये हुए यजुर्वेद के बारहवे अध्याय के कुछ मन्त्रो के भावो का सङ्ग्रह मात्र है। यदि जनता ने वेद के इन पवित्र विचारो को ध्यान से पढ कर अपने हृदय मे स्थान दिया, तो देश वर्तमान निर्वाचन प्रणाली के दोषो से बचेगा और उसके गुणों की ओर अग्रसर होगा।

यह पुस्तिका श्री स्वामी जी ने भारत के राष्ट्रपति महोदय को निम्न शब्दो से समर्पित की—

हे मान्य भारत राष्ट्र के स्वामी महोदय लीजिए।
है यह प्रसादी ईश की कर कमल आगे कीजिए॥

श्री स्वामी जी महाराज द्वारा वेद मन्त्रो के आधार पर निर्धारित इस निर्वाचन प्रणाली से निम्न सिद्धान्त प्रकाश में आते हैं; जो उन्हों ने स्वयं प्रस्तुत किये हैं—

(१) "सर्व साधारण जनता के द्वारा राष्ट्रपति अथवा उस के सहायक वर्ग का सीधा निर्वाचन नही किया जा सकेगा।

(२) पहले सर्व साधारण प्रौढ जनता निर्वाचन क्षेत्र में भाग लेने के लिये आचार निष्ठ शिक्षित वर्ग के निर्वाचन का कार्य करेगी।

(३) प्रत्येक प्रजाजन को निर्वाचन क्षेत्र मे जाकर जो भावनाएँ उस के हृदय मे गम्भीर विचार के पश्चात् उत्पन्न हुई हो; उन्ही के आधार पर अपना मत देना चाहिए, किसी के कहने सुनने से अपने मत को पलट न देना चाहिए।

(४) भय से अथवा किसी प्रकार के प्रलोभन मे आकर किसी भी प्रजा जन को अपना मत न देना चाहिए।

(५) राष्ट्रपति और उस के सहायक वर्ग ही साक्षात् शिक्षित प्रजा द्वारा निर्वाचित किये जायेगे।

(६) राष्ट्रपति स्वतन्त्र रूप से प्रजा मे से किसी भी व्यक्ति को सहायक वर्ग मे निर्वाचित नहीं कर सकता।

(७) राष्ट्रपति केन्द्र में अथवा प्रान्तो मे प्रजा द्वारा निर्वाचित कर के दिये हुए सौ अथवा एक सहस्र सभासदो मे से ही अपनी सभा वा

समिति बना सकेगा और उन्हे योग्यता के अनुसार विभिन्न विभागों मे बाँट सकेगा। और यदि उसे इस सङ्ख्या मे वृद्धि की आवश्यकता हुई तो वह निर्वाचन भी प्रजा द्वारा ही होगा। वेद के द्वारा यह बहु सङ्ख्या का निर्देश मात्र है परिगणन से तात्पर्य नही।

(८) निर्वाचनार्थी लोगों के नाम और यथार्थ गुण, कर्म, स्वभाव की घोषणा अपने मुख पत्र द्वारा राष्ट्रपति जनता मे करेगा।

(९) निर्वाचन के सम्बन्ध मे किसी भी प्रत्याशी के अनुकूल अथवा विरुद्ध किसी प्रकार का आन्दोलन करने का किसी को अधिकार न होगा और किसी को किसी निर्वाचक को धन अथवा प्रलोभन देने का अधिकार न होगा।

(१०) राष्ट्रपति को आरक्षी विभाग और सेना विभाग भी प्रबन्ध अथवा रक्षा के लिये प्रजा की ओर से ही मिलेंगे।

(११) प्रजा का कर्त्तव्य होगा कि राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये सारे देश का भली भाँति मन्थन करे। उस मन्थन के पश्चात् जो देश के जन-समुदाय में से सर्वाधिक गुण सम्पन्न विद्वान् मिले, उसे ही राष्ट्रपति पद पर अभिषिक्त करे।

(१२) राष्ट्रपति का सहयोगी वर्ग भी न्यूनाधिक इसी प्रकार की योग्यता से युक्त निर्वाचित होना चाहिये।

एक दिन श्री गुरुकुल चित्तौड़गढ़ के आचार्य श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज, श्री स्वामी जी के स्थान वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर में पधारे। ग्रीष्म काल था। स्वामी जी ने समय के अनुकूल सम्मानित अतिथि का यथोचित्त भोजनपान से सत्कार किया।

इस के पश्चात् स्वामी व्रतानन्द जी ने महाराज से पूछा—"स्वामी जी! यह बतलाने की कृपा कीजिए कि आपने अपने शरीर को सुडौल एवं सुरक्षित कैसे रक्खा है?" महाराज ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा—"इस शरीर को अब तक के जीवन मे ठीक प्रकार से भोजन नही मिला है, यह केवल सदाचार के बल पर टिका है।"

स्वामी व्रतानन्द जी ने दूसरा प्रश्न किया—"प्रत्याहार क्या है? यह समझ मे नहीं आया।" स्वामी जी ने प्रत्युत्तर दिया—"जैसे ये इन्द्रिय बहिर्मुख हुए-हुए बाहर के आहार (विषय) को ग्रहण करते हैं, और भीतर के विषय को ग्रहण नही करते ठीक, इसी प्रकार जब ये शरीर के भीतरी विषयो को ग्रहण करने लग जाएँ और बाहर के विषयो के ग्रहण मे आस्था न रक्खें, वह ही प्रत्याहार है। इस से पूर्व मनुष्य पूर्ण जितेन्द्रिय नही हो सकता।"

अज्ञात वास का अभिलाष

तुर्याश्रमसेवी यतिराट् श्री आत्मानन्द सरस्वती की मनोवाञ्छा कभी-कभी एकान्त स्थान मे चले जाने की हो जाती थी। उन्होने १५-९-५१ के दिन अपने एक भक्त वैद्य रामलाल जी (भारत विभाजन से पूर्व मण्डी भावुद्दीन के निवासी) से कहा—"अब मैं कुछ दिन के लिए अन्तर्हित हो जाना चाहता हूँ।" वैद्य रामलाल जी भी आध्यात्मिक पुरुष थे, उन्होने ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी जी से निवेदन किया, "भगवन्! मुझे भी सङ्ग ले चलिए।" महाराज ने उन्हे साथ रखने की अनुमति दे दी। देहरादून और नाहन मे से किसी एक स्थान पर जाने का कार्यक्रम बनाते हुए दो दिन ही बीते थे कि स्वामी जी महाराज विना सूचित किए अकस्मात् एकाकी ही कही आश्रम से चले गए। १५ दिवस पर्यन्त उनका कोई सन्देश जब न मिला, तो वैद्य जी ने महाराज की अन्वेषणा के विचार से देहरादून जाने की सज्जा आरम्भ की। वे सयान स्थात्र पर पहुँचे ही थे कि यतिकुल भूषण श्री आत्मानन्द सरस्वती दिल्ली के सयान से उतर कर आते दिखाई दिए। साक्षात् होने पर आश्चर्यान्वित मुद्रा मे वैद्य जी ने सहसा कहा "स्वामी जी महाराज! आप आ गए!" योगिराट् होठो मे हँसते हुए बोले—"इस कारण आ गया हूँ कि आप को कष्ट न हो।"

सन्यासिप्रवर की शिक्षाएँ भी विचित्र थी। एक दिन वे वैद्य रामलाल जी के साथ आश्रम से यमुनानगर जा रहे थे। मार्ग मे एक कुत्ते का शव मिला। उससे उत्कट दुर्गन्ध आ रहा था। वैद्य जी नें अपने गोह से करपट निकाल लर अपनी नासिका पर रख लिया; किन्तु यतीन्द्र श्री आत्मानन्द यथा पूर्व चलते रहे। तब वैद्यराज ने उनसे पूछा—"स्वामी जी! आप को दुर्गन्ध नही आता!" सयमी यतिवर्य ने प्रतिवचन मे कहा—"तुम भी नाक को अपनी बना लो, तुम्हे भी गन्ध प्रतीत नही होगा। भिषग्वर इस वाक्य को समझ गए और उन्होने निर्धारण कर लिया कि गुरुदेव मे इन्द्रिय-वशित्व की पराकाष्ठा है। यह ही कारण है कि इनके मुखमण्डल पर सुख-दुःख, हर्ष और क्षय की विभिन्न रेखाएँ कभी दृष्टि गत नही होती।

स्वामि-शिखामणि आत्मानन्द ने कभी-कभी अपनी अन्तरङ्ग व्यक्तियो से सङ्केत किया कि वैद्य रामलाल जी की आत्म-स्थिति उन्नत है। अपने ताया जी की प्रेरणा से इन्होने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा था।

उससे योग में रुचि हो गयी। इसके लिए इन्हो ने वैरागियों, उदासियों और मुसलमान-सन्तो के द्वार खट खटाए। उनसे लाभ भी उठाते रहे। पर कुछ सन्तों ने भांग, गाँजा, सुलफा और धूमवर्ति आदि पीने का उपदेश किया। किन्तु इनका सौभाग्य था कि ये दोषों से सम्पृक्त न हुए। अन्तत. एक उदासी साधु से भेंट हुई, जिसने इन्हें गायत्री जप मे प्रवृत्त कर दिया। निरन्तर असङ्ख्यात गायत्री जप से इन में कुछ सिद्धियाँ भी प्रकट हो गयी थी। यद्यपि इन्हे इसका आभास नही था; पर जव कुछ भावुक लोग इन्हे तङ्ग करते, तो ये अपना पीछा छुड़ाने के लिए गायत्री मन्त्र लिख कर दे देते थे और उनके कार्य सिद्ध हो जाते थे।

यतिवर्य श्री आत्मानन्द जी महाराज को श्री पण्डित दयाचन्द जी स्नातक की एक पुस्तिका प्राप्त हुई। श्री दयाचन्द जी ने यह पुस्तिका जैनियो की ओर से लिखी थी। इस पुस्तिका में आर्य सिद्धान्तों पर वहुत से प्रश्न किए गए थे। अनेक स्थलो पर आर्य सिद्धान्तो की समालोचना भी की थी। पुस्तक का नाम है "क्या ईश्वर जगत् कर्त्ता है।" स्वामिवर्य ने इसका उत्तर एक लेख द्वारा दिया। लेख का शीर्षक रक्खा "ईश्वर जगत् कर्त्ता है।" यतिराज ने भली-भाँति समाधान कर के अन्त मे ६ प्रश्न जैनियों पर और कर दिये।

सिद्ध पुरुष दोनों प्रकार के ही हैं

महाराज से यह पूछने पर कि अनूपशहर और कर्णवास के मध्य गङ्गा तट पर भृगुक्षेत्र में ठहरे हुए एक टाटिया वावा रामदास जी कला-अधिस्नातक ने वताया कि मूर्धा में ध्यान करने से जो सिद्धों के दर्शन होते है, वे वोलते नहीं; ऐसा अनेक वार करके देखा गया। महाराज ने उत्तर मे कहा—"दोनों ही वातें है, वोलते भी हैं और नहीं भी वोलते। उन्हे ऐसे सिद्धों का दर्शन हुआ होगा, जो नही वोलते। कभी-कभी ये साधक के समक्ष इस रूप में भी प्रकट होते हैं कि सव सिद्ध पुरुष शान्त भाव से पङ्क्ति वद्ध खडे हैं और एक सिद्ध सव के नामों का क्रमशः निर्देश करता है।

आर्यसमाज करौलबाग में कथा

एक वार श्री आत्मानन्द सरस्वती आर्य समाज करौल वाग दिल्ली के वार्षिकोत्सव पर पधारे। वे वहाँ भी दो वजे उठकर शौच

से निवृत्त हो, समाधिस्थ हो जाते थे और उसी समय स्नान कर लेते थे। वहाँ उन दिनो उन का प्रात: ८ बजे से ८।।। बजे तक प्रतिदिन उपदेश होता था। प्रथम दिन उन्होने 'प्राण' विषय पर प्रकाश डाला। दूसरे दिन 'अपान' पर और तीसरे दिन 'व्यान' पर। स्वामी जी के उपदेशो मे यह बात विशेष लक्षित हुई कि वे शरीर के आन्तरिक सूक्ष्म विषयो पर पौन-पौन घण्टा बोल जाते थे। यदि समय अधिक हो, तो अधिक भी बोलने की क्षमता थी। जब से वे अपना उपदेश आरम्भ करते थे, तब से अन्त तक श्रोता बहुत ध्यान से इस सूक्ष्म विषय को भी सुनते रहते थे। उनके प्रतिपादन की शैली मे ही कुछ ऐसा निरालापन था कि वह किसी को उचाट न होने देता था। इस प्रकार निरन्तर प्रात. तीन दिन तक कथा होने के पश्चात् चौथे दिन उत्सव प्रारम्भ था। महाराज ने कहा—"कल उपदेश प्रात: समाज सन्दिर में नही होगा, क्योकि कल से उत्सव का प्रारम्भ है। अत कल हम 'समान' विषय पर पण्डाल में बोलेगे।"

जन-समूह से भरपूर विशाल मण्डप मे जब स्वामी जी उपदेशक-वेदी पर 'समान' विपय पर व्याख्यान करने उपस्थित हुए, तो जनता सहसा शान्त हो गयी। स्वामी जी ने तब निर्धारित एक घण्टे तक उक्त विषय पर ऐसा भाषण किया कि जनता झूम उठी। प्रस्तोता महोदय ने भाषण समाप्त होने पर घोषणा की कि श्रद्धेय स्वामी जी महाराज के भाषण के पश्चात् अब किसी का व्याख्यान नही होना चाहिए, क्योकि यह मूल्यवान् उपदेश दूसरे उपदेशो की ओट मे अन्तर्हित हो जायगा, किन्तु निर्धारित कार्य-क्रम का निर्वहण भी अत्यावश्यक है, अत. विवश हो कर कार्यवाही आगे चालू ही रखनी पडेगी।

उत्सव के उन्ही दिनो मे महाराज मुलतानी ढाडे मे एक गन्त्र‡ देखने जा रहे थे कि उनके तागे को एक मनुष्य ने हाथ के सङ्केत से रोक लिया और सात रुपये (एक-एक के अर्थ-पत्र+) देकर एक पदे पीछे हट गया। तागा चल पड़ा। महाराज से दाता की कोई वार्ता नही हुई। जब महाराज से उनके शिष्य ने पूछा कि क्या आप इस मानव को पहचानते हैं, जिसने ऐसे कुतूहल पूर्ण प्रकार से रुपये भेंट किये है, महाराज ने कहा—"नही जानता, ये कौन थे। इसी का नाम भोग है।"

‡तैल का इन्जन +नोट।

सब ताले खुलवा दिए

महाराज के वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर के निकट मिसरी माजरा ग्राम में एक रात्रि को डकैती पड़ गयी। घबराया हुआ एक पुरुष भाग कर स्वामी जी के आश्रम मे आया। सोतों को जगाया और सूचना देकर चलता बना। महाराज ने ब्रह्मचारी सेवा राम जी को उसी समय जगाधरी थाने में भेजा और शेष आश्रम वासियो से कहा— कि सम्भवतः डाकू कोठी-समान इस आश्रम-भवन को देख कर इधर भी आजावे, अतः सब ताले खोल दिए जावे और गाय यही बन्धी रहने दी जाये। सब व्यक्तियाँ सम्पत्ति को ऐसे ही छोड़ कर कुछ दूरी पर अन्तर्लीन हो जावे, जिससे मनुष्यो को चोट न पहुँचे और उन्हे जो कुछ ले जाना हो, प्रसन्नता से ले जावे। उनके इस लूट के मार्ग पर कोई बाधा उपस्थित नही होगी। सब ही आश्रम वासी कुछ दूर प्रदेश मे छिपे बैठे रहे, पर डाकू उधर आए ही नही।

हड्डी टूट गयी

सन् १९५१ के दिसम्बर मास मे शारीरिक अवस्था तो विकट थी ही, श्री स्वामी जी जगाधरी मे श्री प्यारे लाल जी के घर एक छत से विरामदे की छत पर गिर पडे, जिससे उनके वामहस्त की कलाई का अस्थि भङ्ग हो गया, जिस पर लेप चढा दिया गया। १७-१-५२ को खोलने पर पता चला कि अस्थि कुछ थोडे अन्तर से जुडा है, किन्तु पीडा सर्वथा नही है।

मेरठ मे वेद कथा

आर्य समाज बुढाना द्वार मेरठ मे वेद-प्रचार सप्ताह मनाया गया। स्वामी जी महाराज ने वहाँ सात दिन तक वेद कथा की। प्रथम दिन 'अग्निमीले पुरोहितम्' मन्त्र पर विशेष प्रभावोत्पादक मधुर उपदेश किया। दूसरे दिन 'अग्नि' पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत' इस मन्त्र की विशद् व्याख्या की। तीसरे दिन 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' की उपादेयता को मार्मिक शब्दो मे प्रस्तुत किया। महाराज ने उस यज्ञ मे मन्त्रोच्चारण की शुद्धता पर भी विशेष बल दिया।

श्री इन्द्रराज जी सातो दिन श्री-सेवा में विद्यमान रहे।

गोमेध यज्ञ पद्धति

स्वामी जी महाराज ने इन दिनो एक 'गोमेध यज्ञपद्धति' का निर्माण किया। 'गोमेध यज्ञ के सम्बन्ध मे उन्होने लिखा कि 'गो मेध' शब्द गो शब्द और मेध धातु से बनता है। इसकी व्युत्पत्ति है— गावो मेधन्ते संगच्छन्ते अस्मिन् स गोमेधः। जिसमे गावो का सङ्गम हो, उसे गोमेध यज्ञ कहते हैं। इस प्रकार इस शब्द से यह प्रतीत होता है कि यह यज्ञ गायों की वृद्धि के लिए गायो के सङ्गम के रूप में वैदिक काल में रचाया जाता होगा। वेद मन्त्रो के पाठ के अनन्तर भी हम इसी परिणाम पर पहुँचते है।

मध्य काल मे उन मन्त्रो के अर्थ प्राय लुप्त हो गए और पठन-पाठन के बन्द हो जाने पर तथा नवीन साहित्य मे शब्दो के अर्थ भिन्न हो जाने पर और यज्ञो मे मांस की शास्त्र विरुद्ध आहुति चल पड़ने पर 'गोमेध यज्ञ' का अर्थ भी परिवर्तित हो गया। इसका अर्थ लोग गायों के बलिदान का यज्ञ करने लगे और इस यज्ञ मे गायो को मार कर उनकी आहुति डालने लगे। महर्षि दयानन्द ने आ कर लोगो के इस भ्रम को दूर किया। आर्ष आधार पर वेदो के शब्दार्थ का स्पष्टी-करण किया और यज्ञ के वास्तविक स्वरूप से विद्वानो को परिचित किया।

अथर्ववेद के जिन मन्त्रो का विपरीत अर्थ कर जिस भ्रम मे पड़े हुए विद्वानो ने इस नृशंस प्रथा को प्रचलित किया, उस भ्रम को दूर करने के लिए उन मन्त्रो के अर्थ हम इस 'गोमेध यज्ञ पद्धति' में सङ्क्षिप्त भावार्थ सहित लिखेगे, यह यज्ञ किस प्रकार करना चाहिए? इस विधि का भी इस पद्धति मे हम स्पष्ट रूप से उल्लेख करेंगे।

ब्रह्मसत्र

इस वर्ष वैदिक साधन आश्रम के शिविर पर 'ब्रह्म सत्र' का आयोजन किया गया। इस यज्ञ मे जिन मन्त्रो से आहुतियाँ दी गयी, वे चारो वेदो मे से अध्यात्म सम्बन्ध के सङ्कलित मन्त्र थे। जिनका सङ्कलन पं० विद्याधर जी स्नातक और प० वेदानन्द जी वेदवागीश से स्वामी जी महाराज ने कराया। पश्चात् प्राङ्गारीय पत्रो (कार्बन पेपर) द्वारा उनकी चार-चार प्रतिलिपियाँ बनाई गयी। यज्ञ नियत

समय पर प्रातः दो घण्टे और सायं एक घण्टा ५ से १२ अप्रैल तक चलता रहा। आर्य समाज के मान्य नेता, एव स्वामी जी महाराज के शिष्य श्री महात्मा आनन्दभिक्षु जी यज्ञ का नेतृत्व कर रहे थे। यज्ञ के मध्य में श्री स्वामी जी महाराज अध्यात्म मन्त्रों की व्याख्या करते थे। प्रतिदिन नये-नये यजमान अपनी पत्नी के साथ यज्ञवेदी पर आसीन हो कर यज्ञ को शोभा बढाते थे। हवन की पवित्रता को स्थिर रखने के लिए स्वामी जी महाराज ने प्रत्येक यजमान को धोती पहन कर यजमान का आसन ग्रहण करने का आदेश दिया और कहा– "यत. धोती प्रतिदिन स्नान करते समय धोई जाती है; अतः इसका नाम धोती पडा। इस परम्परा को ग्रामीण जन अब तक अक्षुण्ण वनाए हुए है।"

यजमानो में एक-एक दिन के लिए श्री बाबूराम ओम्प्रकाश ढत्तो, श्री आज्ञाराम गान्धि, महाशय मुकुन्द लाल शर्मा और लाला मिश्री लाल आदि सद्गृहस्थों ने 'ब्रह्मसत्र' को अपने घृत और सामग्री से अभिषिक्त किया। इसके अतिरिक्त यजमान महोदय सौ रुपये से न्यून दक्षिणा भी नही देते थे।

'ब्रह्मसत्र' से भिन्न समय मे शिविर पर साधक लोग निर्धारित कार्य-क्रम के अनुसार महाराज से योग-शिक्षण तथा शङ्कासमाधान का लाभ भी उठाते रहे। इस अवसर से, विभिन्न प्रान्तो के लगभग ४०० नर-नारी उपकृत हुए।

दो सौ रुपये अमरोहा निवासी श्री रामजीदास ने भी इस यज्ञ के निमित्त भेज कर पुण्य का अर्जन किया।

शिविर की समाप्ति पर 'ब्रह्मसत्र' के सञ्चालक श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने ब्रह्मसत्र मन्त्रो की एक लिपिका महात्मा आनन्द भिक्षु जी को प्रदान की।

आदर्श प्रचारक श्री स्वामी जी महाराज २५ से २७ अप्रैलसन् ५२ तक मुजफ्फर नगर मण्डल मे वर्तमान खतौली आर्य समाज के उत्सव मे विराजमान हुए।

सहानुभूति सम्पन्न महात्मा

यति आत्मानन्द जी महाराज दयालुता के भावो से भावित थे। उनके समक्ष कोई अपनी करुणामयी गाथा रक्खे, तो उनका हृदय

द्रवित हो जाता था। एक दिन जगाधरी वासी श्री ज्ञान चन्द जी प्यारे लाल जी ने देव आत्मानन्द को अपनी दु:खभरी कहानी सुनाई। जिसके परिणाम स्वरूप महात्मा आत्मानन्द ने २८-५-५२ को उन्हे पीतल के पात्र बनाने के अपने उद्योग मे दो सहस्र रूपयो की समय पर सहायता की। यद्यपि इस राशि को लाला जी ने व्याज पर लेना स्वीकार किया था, किन्तु २०-६-५२ को जब यह धन लौटा दिया गया, तो स्वामी जी ने व्याज लेने से निषेध करा दिया। इस घटना से आर्य समाज के प्रधान श्री प्यारे लाला जी ने महाराज, का अन्त तक अति आभार प्रकट किया है। महाराज की इस उदार पूर्ण कृपा से उनकी आर्थिक अवस्था सुधार के चरण मे प्रवेश कर गई और दुर्भाग्य के दिन सदा के लिए विलीन हो गए।

समस्याओं का समाधान

लगभग इन्ही दिनो से आर्य समाज नूरपूर (कागडा) से श्री वैद्य-रामसिह जी का समस्याओ से भरपूर एक पत्त्र उपलब्ध हुआ। महाराज के उत्तर से ही उनकी समस्याओ का आभास लक्षित होता है। महाराज ने कहा—"सीधा हाथ करके लेने, उलटा हाथ करके देने की योग्यता का प्राप्त करना ही वास्तव मे व्यवहार की पवित्रता का एकमात्र साधन है। यह ही समझना कठिन है कि किस अवसर पर किस से कितना लूँ और किसे कितना दूँ ? आपके अर्थ सम्बन्धी सारे प्रश्न इसी योग्यता से सम्बन्ध रखते है। सङ्क्षिप्त-सा विचार यह है कि किसी से कुछ लेने का हमारा कितना अधिकार है और किसी को कुछ देना अपनी शक्ति के अनुसार और अधिकारी देख कर कितना चाहिए, इसका लेने और देने के समय हमे विवेचन करना चाहिए। लेने के समय अधिकार से अधिक और देने वाले की शक्ति से अधिक तो हम कुछ नही ले रहे। और देने के समय अनधिकारी को देखकर पापी तो नही बन रहे। शक्ति से अधिक देकर अपनो पर अत्याचार तो नहीं कर रहे, यह देखना नितान्त आवश्यक है। लेने के समय उपकृत व्यक्ति से भी उस की शक्ति के अनुसार ही लेना चाहिए। आपके लेन-देन सम्बन्धी शेष विचार ठीक हैं। हाँ, यदि कोई अनुपकृत व्यक्ति भी आप की जाति-सेवा से सन्तुष्ट हो कर आप को इसलिए कुछ देना चाहती है कि आप की घरेलु समस्या का समाधान हो जाने पर आप

अधिक सेवा कर सकेंगे, तो लेने मे भी कोई आपत्ति नही, क्योकि देने वाला आपको दान के रूप मे नही, आपकी सेवाओ का जनता के हित सदुपयोग कराने की दृष्टि से दे रहा है।

गायत्री जप के ही आग्रह की आवश्यकता नही, यदि ओ३म् के जप की ओर ही मन अधिक जाता है, तो वह ही करना चाहिए।

पलाण्डु तामस है, सात्त्विक नही। इसके स्थान पर त्रिकुटे का तथा आमलक का सेवन अच्छा है।

भ्रुकुटी मे आज्ञाचक्र है, वहाँ मन को एकाग्र कर विचारो से रिक्त कर देने का यत्न करे। फिर जब भ्रुकुटी मे प्राणो का दबाव प्रतीत होने लगे, तो ध्यान को ब्रह्मरन्ध्र मे एकाग्र करने का यत्न करें। जब वहाँ भी प्राणो का दबाव प्रतीत होने लगे, तो चित्त को पीछे के लघु मस्तिष्क मे एकाग्र करे। फिर सुषुम्णा मे क्रम से चित्त एकाग्र करते हुए मूलाधार तक ले जावे और जब सारी सुषुम्णा मे प्राण का सञ्चार होने लगे, तो मुझे लिखे।"

सन्यासी को ऐसे आराम की आवश्यकता नहीं।

इन दिनो के प्रचण्ड ग्रीष्म ऋतु मे श्री बी० एल० सूद नेत्र विशेषज्ञ और श्री लालचन्द जी रोग चिकित्सक अम्बाले से स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ यमुनानगर उनके आश्रम पर गए। स्वामी जी महाराज उस समय यज्ञशाला के साथ बनी एक छोटी कुटिया में काष्ठ पटल पर विराजमान होकर लेखन-कार्य मे व्यस्त थे। अभ्यागत महानुभावो ने चरणो मे प्रणाम किया और समीप बैठ गये। यतिराज ने भी लेखन-कार्य को विराम दिया और उनके साथ वार्तालाप करने लगे। दोनो दर्शनार्थी उष्णता की भीषणता से व्याकुल थे, पर महाराज थे, जो नितान्त शान्त मुद्रा में प्रश्नो के उत्तर देते जा रहे थे। नेत्र विशेषज्ञ महोदय ने कहा—"स्वामी जी, उष्णता बहुत ही अधिक है और विशेषत यहाँ आश्रम मे, जहाँ न ऊँचे वृक्ष हैं, न ही नगरो की भाँति निकटवर्तिनी उच्च अट्टालिकाएँ हैं। आश्रम के कुछ छोटे-छोटे कक्ष जङ्गल मे बने है। ऐसे प्रचण्ड सूर्य से तप्त इस कक्ष में बैठ कर आप को लेखन के कार्य मे कष्ट होता होगा। आप की कुटिया मे यदि विद्युत्-व्यजन लगवा दिया जावे, तो लेखन का कार्य आप सुभीते मे कर सकेंगे।"

सहिष्णु श्रेष्ठ श्री स्वामी जी ने अपनी प्रकृति के अनुसार थोडे शब्दो मे ही पूर्ण उत्तर देते हुए कहा--"अभी तो विद्युत् यहाँ नहीं

आई ।" उन्होने कहा—"विद्युत् आने पर लगवा दिया जायेगा ।" इस पर महाराज चुप रहे ।

कुछ समय पश्चात् स्वामी जी अम्बाला गए । अन्य कार्य करने के पश्चात् वे श्री सूद जी से भी मिले (आँखे दिखाने के लिए कभी-कभी स्वामी जी वहाँ पहुँच जाते थे और अवकाश नही हुआ, तो सूद जी ही आश्रम मे देखने आ जाते थे। उनके आर्य समाज के प्रधान रह चुकने के कारण भी स्वामी जी विचार-विमर्श करने वहाँ पहुँच जाते थे) उन्होने कहा—"स्वामो जी, अब तो आश्रम में विद्युत् आ गई है । अब पखा लगवा देता हूँ ।" तपस्वी श्री स्वामी जी ने धीरे से कहा—"नही ।" सूद जी ने पुन. निवेदन किया—"पखा लगाने का मैंने निश्चय किया हुआ है । इस मे मेरी अपनी इच्छा है ।" इस पर महाराज बोले—"सन्यासी को ऐसे आराम की आवश्यकता नही होती । शेष आश्रम-वासी भी तो इसी प्रकार रहते है । मैं एकाकी अपने कुटीर मे विद्युत् व्यजन● लगवा कर भेद-भाव क्यो उत्पन्नक रूँ ।" समदर्शी श्री स्वामी जी के इस उत्तर से वे आश्चर्य चकित रह गये कि इतने उदात्त विचार इतना उत्कृष्ट तप, आश्रमवासियो के साथ इतना आत्मीय प्रेम तथा समभाव अन्यत्र सन्यासिवर्ग और आचार्यगण में देखने को नही मिलता । अभाव तो किसी भी पदार्थ का नहीं है, पर महाराज के इन वचनो से दोनो सभ्य महानुभावो को सर्वत्र ही उत्तम विचार सरणी, प्रकृष्ट तपस्या, सात्त्विक त्याग और चित्तविमोहिनी समता की भावना का अभाव एक ही क्षण में भासने लगा । विशेषत. उन में, जो आर्य समाज के प्रचार के लिए वैदिक धर्म से अनुप्राणित शिष्य मण्डल के निर्माण की भावना को अभिव्यक्त करते है ।

मैं घोड़ा नहीं बनूंगा

योगी आत्मानन्द जी महाराज के सम्पर्क मे आए हुए श्री महेशचन्द्र युवक को जब बहुत दिन हो गए, तो उसने सोचा—"साधु योगी की सङ्गत करने पर कोई निराली घटना जीवन मे नही घटी" तभी उसको स्वामी जी का सन्देश मिला—"महेश तुम विवाह कर लो, पचीस सहस्र रुपया सद्योरोक† और आभूषण भी मिलेगे ।"

●बिजली का पखा । † रोकडा

स्वामी जी की इस प्रेरणा से वह अवाक् रह गया और सोचने लगा—'जिन महाराज की कृपा से मैं गार्हस्थ्य के झंझटो से अब तक बचते चला आ रहा हूँ आज वे ही मुझे किधर प्रेरित कर रहे है ?" वह अपने कार्य से अवकाश लेकर स्वामी जी के चरणो मे उपस्थित हुआ। स्वामी जी ने कहा—"विवाह कर लो, आधी रोटी मुझे भी मिल जाया करेगी। अब तुम्हारे समीप धन भी पर्याप्त है। महेश ने विनीत भाव से निवेदन किया—"प्रभो ! हम सात भाई है, उनमे से यदि एक भी धर्म खाते मे न पड़ा, तो सात सत्य सिद्ध नही हो सकेंगे।" महाराज ने कहा—"यह मार्ग बहुत कठिन है। कोई प्यार नही करेगा, जीवन फीका-फीका रहेगा।" उसने निवेदन किया—"महाराज ! प्यार नही करेगा तो भी श्रद्धा का समुद्र ठाठे मारता हुआ मिलेगा।" जब सम्पूर्ण दिवस इसी चर्चा मे बीत गया, तो अन्त में स्वामी जी ने कहा—"अच्छा, तुम इस पचडे मे नही पडना चाहते। मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा। प्रभु तुम्हारा कल्याण करे। तुम मेरी बिरादरी में आए।" महेश ने अपनी बात को दूसरी ओर मोड देते हुए पूछा—"जो ब्रह्मचारी अपने व्रत से डिग जाते है, उनका क्या होता है ? महाराज ने प्रतिवचन मे कहा—"वे तो घोडा बनते हैं और अपने परिवार रूप वाहन को खीचते रहते हैं। इसी वाहन को खीचने के कारण दो समय उन्हे भोजन मिल जाता है।" महेश इस गहरे बोध को सुन चौंक पड़ा और बोला—"मैं घोडा नही बनूँगा। सब को कल्याण का मार्ग दिखाऊँगा। आपका आशीर्वाद मेरे साथ है। मैं अपने दृढ व्रत से नही फिसलूँगा।"†

(ब्रह्मचारी महेशचन्द्र)

स्वामी जी ने महेश के दृढ़ विचारो को देखकर उसके पिता जी को सम्मुख पृष्ठ पर मुद्रित हुआ पत्र लिखा।

† इस वार्ता के पश्चात् महेश जी अपने व्रत में दृढ रहे और उन्होंने स्वामी जी का रोम-रोम मे आभार प्रगट किया है।

विध उपाधिधारी होते हुए भी संसार का कुछ हित नही साध सकता। अत: वेद का दृष्टि कोण मनुष्य-निर्माण करके ससार मे शान्ति की धारा बहा देना है। जो वर्तमान मे प्रचलित शिक्षा-पद्धति को परिवर्तित करने से ही सम्भव है।

इस से पूर्व उन्हो ने प्रात: काल के अधिवेशन में 'पञ्च वहत्यग्र-मेषाम्...' इस अथर्ववेद के दसवे काण्ड के गम्भीर विषय को अति सरल रीति से समझाया। आत्मा के स्वरूप को परिच्छिन्न बताते हुए ईश्वर-प्राप्ति के साधनों का समुचित निर्देश किया।

दोनो व्याख्यानों का श्री जगदीशचन्द्र विद्यार्थी पर इतना प्रभाव पडा कि वे इसी सरणी का अनुगामी बनने के लिए समुद्यत हो गए।

महाराज रुधिर-निपीड से पीडित थे, अत. पुरोहित श्री रामचन्द्र जी उन्हे विश्राम स्थल पर ले आए और पूछा—"महाराज, शरीर की कैसी दशा चल रही है?" उत्तर मे कहा—"और तो कोई चिन्ता नही, केवल आत्मा का ही ध्यान आना है। यह रोग यथेच्छ योगा-भ्यास मे बाधक बना हुआ है।"

नदी सूक्त की व्याख्या

काशी से प्रकाशित होने वाली 'वेदवाणी' मासिक पत्रिका के संवत् २००६ कार्तिक अङ्क मे श्रोत्रिय विद्वान् श्री आत्मानन्द जी महाराज द्वारा लिखित 'नदी सूक्त की व्याख्या' प्रकाशित हुई। यह सूक्त आर्य विद्वानो के लिए सन्दिग्ध चला आ रहा था। इस सम्बन्ध मे यतिराज ने कहा—"नदी सूक्त की व्याख्या मे, मै भाष्यकारों से प्राय: पृथक् चला हूँ। नामो के वेदानुमोदित यौगिक सिद्धान्त ने तथा इसी सूक्त में प्रतिपादित इक्कीस जल धाराओ ने ही मुझे ऐसा करने के लिए विवश किया है। विद्वानो की सेवा मे मैंने ये अपने विचार सम्मत्यर्थ ही उपस्थित किये हैं। अनुमोदन अथवा अननुमोदन दोनो ही शिरोधार्य होगे। अनुमोदन के अभाव मे संशोधन की प्रतीक्षा मे रहूँगा।"

आज फिर आह्वान तेरा

स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती का अन्त:करण जहाँ समुद्र की भाँति अति गम्भीर और शान्त था, वहाँ वेद निर्दिष्ट पथ पर भी जब आर्यसमाजियों को चलते नही देखते थे, तो वे अत्यन्त क्षुब्ध हो जाते

थे। उस समय उन्हे महर्षि दयानन्द का स्मरण हो आता और अनायास ही उन की हृत्तन्त्री तरङ्गित हो उठती, आज फिर आह्वान तेरा।

फिर वही छाया अन्धेरा। आज फिर आह्वान तेरा॥ टेक॥
सो गये फिर तान चादर, था जिन्हे ऋषि ने जगाया।
भटकते फिरते पथिक मग, आपने जिनको दिखाया॥
भूल ही सब तो गया वह, दान तेरा ज्ञान तेरा।
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा॥१॥

गुरुकुलो के राग गाते, जो फिरे डफली बजाते।
आज कालिज के तराने, गा रहे वे ही पुराने॥
पश्चिमी घन ने प्रभो! फिर, प्राच्य रवि को आन घेरा।
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा॥२॥

कन्या कुमारो के विनय-नय-शील हित का ध्यान कर।
पृथक शिक्षा योजना दी, आर्य मत का मान कर॥
आज सहशिक्षा कुनय का, स्थान मे उस के बसेरा।
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा॥३॥

वेद के मृदु गान को, आचार के सस्थान को।
फस रेडियो के जाल मे, भूले सुपथ के मान को॥
छिप ब्रह्मचर्य-भा गयी, कर न यौवन का सवेरा।
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा॥४॥

हे दया के पुण्य आकर, हे ऋषि! आनन्द रस घर।
वेद की वशी सुना कर, फिर न आये आप जाकर॥
देख लो फिर आप आकर, छिप रहा वैदिक प्रभाकर।
जो गए थे तब चढाकर, मिट रहा वह राज तेरा॥
फिर वही छाया अन्धेरा, आज फिर आह्वान तेरा॥५॥

ब्रह्मचर्य के साधन

श्री स्वामी जी महाराज अपने आश्रम मे विराजमान थे। आचार्य भगवान् देव जी उन के चरणो मे गए और निवेदन किया, "स्वामी जी, कुमार और कुमारियो के लिए ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे पुस्तिकाएँ लिख दे तो अपार कृपा हो। पुस्तिका रूप मे लघ्वाकार साहित्य हमारे यहाँ शीघ्र निकल जाता है।" ब्रह्मचर्य के धनी श्री महाराज ने 'माता गार्गी का उपदेश' इस शीर्षक से लिखे गये लेख को 'कन्या और ब्रह्मचर्य' इस नाम से प्रकाशित करने की अनुमति दे दी। तथा कुमारो के लिए 'आदर्श ब्रह्मचारी' लिख कर दे दिया। योगनिष्ठ

सन्यासी ने आचार्य भगवान्देव जी से यह भी कहा—"आप वर्ष मे तीन मास यहाँ आश्रम पर आकर योगाभ्यास किया करे ।"

ईंट पत्थरों में समय बीत गया

उत्तम साहित्य-निर्माण की आशा रख कर आचार्य भगवान् देव जी ने अपने एक सहयोगी से पुनः निवेदन कराया कि महाराज, सर्व-हितैषी उच्च साहित्य की आज अति आवश्यकता है, यदि आप द्वारा उसे लिख देने का अनुग्रह हो जाय, तो बहुत कल्याण होगा ।" महाराज ने कहा—"अव तो सब कुछ विस्मरण हो गया है । जो लिखने के दिन थे, वे सस्थाओ के भवन-निर्माण करते-करते ईंट-पत्थरो मे बीत गए ।"

इस के पश्चात् देव आत्मानन्द मेरठ चले गए और बिहारी जी के भवन मे आसन किया । वहाँ हो रहे गायत्री यज्ञ मे दो दिन कथा कर के आश्रम पर लौट आये ।

विद्वदनुरागी गुण ग्राही संन्यासी

निष्पक्ष स्वामी आत्मानन्द जी महाराज आश्रम से प्रस्थान कर गुरुकुल ज्वालापुर पधारे। उन दिनो वानप्रस्थ संन्यस्त आश्रम के अध्यक्ष श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ से वही के सदस्यो का विवाद चल रहा था । स्वामी जी उस आश्रम के प्रधान थे । विवाद का निर्णय करने के लिए सदस्यो ने स्वामी आत्मानन्द जी को ही निर्णायिक बनाया । श्री उदयवीर जी साङ्ख्यतीर्थ उस आश्रम मे जाते रहते थे । स्वामी जी महाराज का श्री उदयवीर जी मे विश्वास था, अत. विवाद की तथ्यता के परिज्ञान के लिए निर्णायिक श्री आत्मानन्द जी महाराज उन्ही के समीप पहुँचे और उन द्वारा प्राप्त तथ्यों का स्वामी जी ने सम्मान किया ।

इस के पश्चात् श्री उदयवीर जी ने स्वामी जी से कहा—"जितने भी आज तक साङ्ख्य दर्शन के भाष्यकार हुए है, उन का भाष्य 'ईश्वरासिद्धे.' इस विषय पर मुझे सन्तुष्ट नही कर सका । मै बहुत असमञ्जस मे रहा । अन्त मे मैंने ऋषि दयानन्द का अर्थ जो सत्यार्थप्रकाश मे लिखा है, देखा । यद्यपि वहाँ भाषा स्पष्ट अर्थ का उद्बोध नही करती, तथापि मुझे वहाँ का पूर्वापर कुछ स्थल देखने मे अर्थ की सङ्गति लगाने मे दिशा मिल गयी है । महर्षि कपिल को हम अनीश्वर वादी तो कह ही नही सकते । महर्षि दयानन्द के उस स्थान पर लिखे

शब्दो से इस सूत्र का अच्छा सम्बन्ध लगा पाने मे समर्थ हो गया हूँ। और वह यह कि उपादान कारण ईश्वर को मान कर उस की सिद्धि नही की जा सकती। कहिए स्वामी जी, इस मे आप की क्या सम्मति है।" स्वामी जी ने कहा—"सत्यार्थ प्रकाश हो तो, देख ले।" सत्यार्थ प्रकाश देखा, तो उसी से पुष्ट वह अर्थ पाया गया। तब महाराज ने पण्डित प्रवर की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा—"सत्यार्थ प्रकाश को अनेक वार मैने भी देखा है। यह सूत्र भी दृष्टि से निकला ही है, पर कभी मेरा ध्यान इस ओर नही गया। आप ने बहुत ही सुन्दर अर्थ कर के विद्वानो को भारी भ्रम से निकाल दिया है।"

तदनन्तर महाराज आश्चर्य-चकित हुए कुछ काल तक ध्यानावस्थित से बने रहे और शान्त मुद्रा-भङ्ग करके बोले, "हम भी आज तक ऋषि दयानन्द के इन शब्दो को नही पकड सके। पण्डित जी, आप बहुत धन्यवाद के पात्र है। आप ने एक गुत्थी को सुलझा दिया है। भावी सन्तति आप के उपकार को मान कर सदा नतमस्तक रहेगी।"

उस दिन २।। घण्टे तक श्री उदयवीर जी की गुणग्राही श्री स्वामी जी महाराज से साङ्ख्य के अन्य स्थलो पर भी चर्चा चलती रही। श्री उदयवीर जी उस चर्चा मे दार्शनिक विद्वान् योगनिष्ठ महात्मा आत्मानन्द सरस्वती से अपने विचारो पर सम्मति लेते जा रहे थे।

ब्रह्म पारायण यज्ञ के अध्यक्ष

करनाल मण्डलान्तर्गत पुण्डरी निवासी चिकित्सक श्री नत्थूलाल जी ने अपने गृह पर चारो वेदो से यज्ञ कराने के लिए प्रतिष्ठित सन्यासी श्री स्वामी जी महाराज को निमन्त्रित किया। यज्ञ-प्रक्रिया का समस्त दायित्व श्री चिकित्सक महोदय ने उन्ही पर छोड़ दिया। पण्डित मण्डल मे महात्मा आनन्द स्वामी जी, श्री रामावतार जी, आचार्य विश्वश्रवा जी, श्री भूदेव शास्त्री, प० विद्याधर स्नातक, श्रीसत्य-प्रिय 'व्रती', ब्रह्मचारी अखिलानन्द जी, सङ्गीत शास्त्री श्री महेशचन्द्र जी और स्थानीय विद्यालय के एक शास्त्री थे। ऋत्विजो का निर्णय करने के लिए यज्ञ के अध्यक्ष श्री स्वामी जी महाराज ने अपने इस पण्डित वर्ग का अन्तरङ्ग अधिवेशन किया। उस मे ज्यो ही उन्हो ने 'ब्रह्मा' पद के लिए श्री रामावतार जी का नाम घोषित किया। एक अहम्मन्य पण्डित ने आपत्ति करते हुए कहा—"पण्डितो मे सब समान हैं।

आप ने रामावतार जी में ऐसी क्या उत्कृष्टता देखी है, जो उन्हे ही 'ब्रह्मा' पद के योग्य समझा है, दूसरो को नही। आप के स्वय ब्रह्मा बनने में हमें कोई आपत्ति नही थी।"

महाराज का मन कुछ विचित्र साचे में ढला था। वे दूसरे को सम्मानित करके ही अपने कर्त्तव्य को उत्कृष्ट बनाते थे, अतः ब्रह्मा पद पर स्वयं आसीन होने की भावना का परित्याग कर, उन्हों ने रामावतार जी का नाम घोषित किया था। एक पद के लिए सब निर्वाचित किये भी नही जा सकते थे।

स्वामी जी ने उक्त पण्डित जी से कहा—"श्री रामावतार जी के स्थान पर यदि दूसरे को नियुक्त किया जाता है, तो यह आपत्ति अन्य शेष के लिए ज्यो की त्यो बनी है। जब इस पद के लिए रामावतार जी को कह दिया गया है। तब यह पद उन्ही के लिए ठीक है। एक वार सम्मानित कर के उस से विपरीत आचरण प्रीतिदायक नही होता।"

महाराज की इस उक्ति में बोझ होते हुए भी उक्त पण्डित जी को सन्तोष न हुआ और वे अपना आग्रह दुहराते रहे। अधिक विवाद के प्रवृद्ध हो जाने पर स्वामी जी ने निर्णय दिया कि जैसे समाजो में प्रधान उप-प्रधान होते है, आप 'उपब्रह्मा' रहे। महाराज के इस वचन का पण्डित जी ने सम्मान किया और वार्ता द्वितीय चरण में प्रविष्ट हुई।

वेद पाठियो की तीन श्रेणियाँ बनाई गई, जिन मे तीन-तीन ऋत्विक् निश्चित हुए। यज्ञ २१ जनवरी सन् १९५३ से आरम्भ हुआ, जिस की सुषमा दर्शनीय थी।

यजमान श्री नत्थूलाल जी ने आर्यसमाज मन्दिर मे पण्डित मण्डल के निकट ही एक पृथक् कोष्ठ में स्वामी जी के निवास का प्रवन्ध किया, क्योकि उनका रुधिर-निपीड रोग एकान्त तथा शान्त स्थान की अपेक्षा रखता था। इस पर और दूसरे अहङ्कारी पण्डित ने महाराज के कोष्ठ में ही अपना आसन जमा लिया, जिस मे वे भी अन्यो की अपेक्षा विशिष्ट प्रतीत हो।

श्री नत्थूलाल जी स्वामी जी का विशेप ध्यान रखने के अभिलापी थे; अत. उन्हो ने सनातन धर्म मन्दिर के पुजारी अपने सहयोगी से कहा—"स्वामी जी महाराज का प्रवन्ध तुम अपने यहां एकान्त शान्त

स्थान में कर लो।" पुजारी महोदय महाराज की भव्याकृति से प्रभावित था। उस ने तत्क्षण हर्षातिरेक मे कहा—"आप ने मुझे उपकृत कर दिया। महाराज के वस्त्रादि प्रक्षालन तथा अन्य सभी सेवा मैं स्वय ही करूँगा।"

इस प्रकार महाराज के स्थानान्तरित हो जाने पर वे पण्डित जी भी पुन: वही उन के समीप पहुँच गए। स्वामी जी ने उन्हे बहुत समझाया—"शेष पण्डितो पर आप के इस आचरण की उत्तम प्रतिक्रिया नही होगी। आप को अपना तथा सब की मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए।" इतना सुन लेने पर भी पण्डित जी को महाराज की यह वाचोयुक्ति उचित प्रतीत नही हुई और वे अपना डेरा वही लगाये रहे।

यजमान महोदय ने सभी अभ्यागतो के निवास एव खान-पान का सर्वोत्तम प्रबन्ध किया था। वे एक दिन जो भोज्य पदार्थ बनवाते थे, दूसरे दिन उस की आवृत्ति नही होने देते थे। मिष्टान्न मे एक दिन खीर है, तो दूसरे दिन रबडी, तीसरे दिन कुछ और।

ग्यारहवे दिन यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। दक्षिणा मे पण्डितो को एक एक गिन्नी, बहुमूल्य वस्त्र तथा द्विशाले दिये। ब्रह्मा और उपब्रह्मा को कुछ विशेष एव यज्ञाध्यक्ष श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज को अधिक विशेष उपहार दिये।

पुण्डरी मे यह यज्ञ जिस मे चारो वेदो, का पारायण हुआ, प्रथम ही था।

हवन-समाप्ति पर महाराज ने आश्रम मे पहुँच कर कुछ दिन विश्राम किया। पश्चात् वे ६ फरवरी से ११ फरवरी तक आर्यसमाज मेरठ मे पहुँच कर उस के दैनिक हवन मे प्रतिदिन अध्यात्म प्रवचन करते रहे। भक्त इन्द्रराज जी प्रतिदिन श्री सेवा मे उपस्थित रहे।

मेरठ से निवृत्त होकर दिल्ली पहुँचे और श्री सदाराम जी के साथ गुरुकुल झज्जर के ३१ वे वार्षिकोत्सव पर आ विराजे। वह शिवरात्रि का दिन था। महर्षि दयानन्द की बोध रात्रि थी। बालको को बुद्धिमान् बनाने के लिए मातृ शक्ति का कितना हाथ है? अपने मर्मस्पर्शी भाषण मे उस के एक-एक पक्ष को लेकर विशद विवेचन किया।

जिस से उत्सव मे उपस्थित मातृ शक्ति अपने उत्तरदायित्व को समझ कर बालकों के निर्माण मे गुरुकुल के आचार्यो का कार्य हलका कर सके ।

वस्तुत. इस महोत्सव में महाराज को यज्ञशाला का शिलान्यास करने निमन्त्रित किया गया था । यज्ञशाला की आधार शिला रखने के पश्चात् महाराज ने ऋग्वेद प्रथम मण्डल १६४ वे सूक्त के ५० वे मन्त्र का उच्चारण किया—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्या. सन्ति देवाः ॥

इस मन्त्र के आधार पर मनुष्यो का प्रथम कर्त्तव्य 'यज्ञ' को निर्धारित किया और उद्घोषित किया कि यज्ञ ही एक ऐसा कर्म है, जो मनुष्य मे देव बना कर उन्हे मोक्ष के दर्शन कराता है । इस का आश्रय पौर्वकालिक ऋषियो ने भी लिया था ।

'अश्मन्वती रीयते सरभध्वम्' मन्त्र की भी साथ-साथ व्याख्या की । महाराज का तीसरा व्याख्यान उत्सव मण्डप में ही हुआ । उस मे सन्ध्या के 'वाक् वाक्, चक्षु. चक्षु.' आदि मन्त्र का मनोरम विश्लेषण किया ।

व्याख्यान के अन्त मे गुरुकुल के आचार्य ने सूचित किया कि जहाँ कहीं भी हमारी ओर से ब्रह्मचर्य शिविर लगाए जायेंगे, उन मे स्वामी जी महाराज ने अपना अमूल्य समय देना स्वीकार कर लिया है । इस पर जनता ने करतल ध्वनि मे हर्ष प्रकट किया ।

कन्या गुरुकुल नरेला की आधार शिला के स्थापक

गुरुकुल चित्तौडगढ के आचार्य श्री स्वामी व्रतानन्द जी का यह उत्कट अभिलाष था कि जैसे मैंने कुमारो के लिए गुरुकुल स्थापित कर के शिक्षण-व्यवस्था की है, उसी प्रकार कुमारियो के लिए भी किसी स्थान पर गुरुकुल सञ्चालित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ अन्यथा मैं पक्षपाती कहलाऊँगा, जब कि वैदिक मन्तव्य कुमार और कुमारियो को जीवन के प्रत्येक पहलू में प्राय' समान समझते हैं ।

गुरुकुल झज्जर के आचार्य श्री भगवान् देव जी ने उन की इस उत्कृष्ट भावना का आदर करते हुए लगभग एक सौ बीस बीघा भूमि

अपनी निज सम्पत्ति मे से प्रदान कर दी। इस प्रकार दोनो ब्रह्मचारी आचार्यो का एकत्र समागम होकर कन्या गुरुकुल सम्भावित हो गया।

शिलान्यास दिवस पर सभी आजन्म ब्रह्मचारी इकट्ठे हो गए, जिस से स्त्री जाति का उद्धार करने वाली कुछ आजन्म ब्रह्मचारिणियो को जन्म दे सके, उपर्युक्त महानुभावो के अतिरिक्त ब्रह्मचारी वरेण्य स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ और वर्णिप्रवर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज भी उपस्थित हुए। वैद्य कर्मवीर जी के यहाँ उद्यान मे बने कच्चे कुटीर मे स्वामी वेदानन्द जी स्वाध्याय कर रहे थे। जब सब के मान्य नेता अखण्ड ब्रह्मचारी स्वामी आत्मानन्द जी महाराज वहाँ पहुँचे, तो देखते ही स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने ऐसे अभिवादन किया जैसे एक विनीत शिष्य बद्धाञ्जलि नत मस्तक हो जाता है। वैद्य कर्मवीर जी उच्च सन्यासी द्वारा प्रिय नेता का हृदयङ्गम अभिवादन देख, प्राचीन ऋषियो की सौहार्द्य भावना को निहार उठे। यह सब कुछ एक ही क्षण मे हो गया, जिस से स्वामी वेदानन्द जी द्वारा अपनाई गई अभिवादन शैली आँखो से ओझल रह गयी।

आर्यसमाज की इन दिव्य विभूतियो मे से स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने वैद्य कर्मवीर जी से हाथ का सङ्केत करते हुए कहा—'आप का इन लोगो से कैसे मेल हो गया, जो स्त्रियो के विरोधी हैं और कन्याओ का गुरुकुल खोल रहे है। उन का सङ्केत आचार्य भगवान्देव और जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती की ओर था।

अन्त मे उन्हो ने कहा—"यह मेरा परिहास मात्र है, इस स्थली मे कन्याओ के शिक्षण की बहुत आवश्यकता है, इस से पुण्य कार्य और क्या होगा।"

गुरुकुल का शिलान्यास करने के स्थान पर प्रथम हवन हुआ। पश्चात् हमारे चरित्रनायक स्वामी आत्मानन्द जी ने आधार-शिला की स्थापना की और आर्य मन्दिर नरेला मे रात्रि को उन का एक कथानक रूप मे रोचक उपदेश हुआ, जिस का विषय था—"पुरुष-शरीर-निर्माण मे स्त्रियो की शरीर साधना।"

कन्या गुरुकुल के इतिहास मे सन् १९५३ का वह फरवरी मास अपनी अमिट छाप छोड गया।

शरीर की कठोरता

हमारा शरीर पत्थर की भाँति कठोर बने, 'अश्मा भवतु नस्तनु.' इस के स्वामी जी महाराज स्वयं प्रमाणभूत थे। एक दिन मेरठ वासी इन्द्रराज जी महाराज को मेरठ मे 'सूर्य कुण्ड' पर भ्रमण कराने ले गए। वहाँ इन्द्रराज जी के प्रिय मल्लो ने तैल-मर्दन करने का आग्रह किया। प्रथम तो महाराज निषेध ही करते रहे, परन्तु उन की पुन' पुन. प्रार्थना पर वे मान गए। उन में यह विशेष गुण था कि किसी को वे दु.खी वा अप्रसन्न नही करते थे। उन्होने मल्लो को अवसर दिया। जिस समय अखाडे के मल्लयुद्ध-विशारद अपने कर्कश हाथो से महाराज के ब्रह्मचर्य और व्यायाम से सुघटित शरीर को दबाने लगे, तो आश्चर्य भरे शब्दों मे कह उठे—"महाराज ! आप का देह मानवीय नही है, यह तो लोहे का स्तम्भ है, ऐसा पत्थर-तुल्य काय हम ने जीवन मे पहले नही देखा।"

कामवासना विजय पर बधाई

महाराज से अनेक युवक दूर रहते हुए भी सम्पर्क स्थापित किये रहते थे और अपने जीवन का निर्माण करते रहते थे। महाराज भी उन के पत्रो का उत्तर पत्रो से ही देते रहते थे। श्री इन्द्रजीत की प्रशसा करते हुए १८-३-५३ को लिखते है—"इस अवसर पर तुम ने जो अपने ऊपर नियन्त्रण किया है, वह प्रशसा के योग्य है। ऐसे अवसरो पर वडे-वड़े पतित होते देखे गये है। शरीर के साथ शरीर का सयोग हो जाने पर भी बच जाना थोडी-सी बात नही है। तुम्हारे इस सयम के लिए मैं तुम्हे बधाई देता हूँ। तुम्हारे मन मे जो कामवासना पैदा हो गयी थी, उस के लिए एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जप करो और एक दिन का निराहार व्रत करो। भगवान् तुम्हे अपने व्रत पर अटल रक्खे।

सब से बडा औषध तप है। भजन और तप से ही सच्चा सयम होता है; परन्तु फिर भी धनिया और चन्दन का बुरादा पीस कर ६ माशे नित्य सेवन कर लिया करो। खान-पान सात्त्विक रक्खो। भजन को अधिक समय दिया करो। ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र का पाठ किया करो।"

आश्रम में साधना शिविर

प्रथम से पाँचवीं अप्रैल तक वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर का साधना शिविर आयोजित हुआ। इस वर्ष यज्ञ मे 'सावित्री यज्ञ' को प्रमुखता दी गयी। हवन नियत समय पर प्रात साय होता था। इसी अवसर पर उस महापुरुष ने चौपाई और दोहा छन्द मे सावित्री-सार छपवा कर वितरण कराया। आइये! हम भी उस से अपने को पवित्र कर ले।

चौपाई

ओ३म्— गुणगण रक्षण आदि सुहायो,
ब्रह्म नाम निज ओ३म् कहायो।
भू.— तुमहु प्राण प्रभु प्राण सहारे,
भुव.— सब सङ्कट के मोचन हारे।
स्वः— तुम सुख-सम्पत् के हो दानी,
परमानन्द धाम विज्ञानी।
सवितु — जग रचते सुन्दर तुम स्वामी,
हो प्रकाश मम अन्तर्यामी।
देवस्य— सद्गुण दिव्य शक्ति के दाता,
तुम हो सकल जगत् विख्याता।
वरेण्यम्— वरण योग्य तव नाथ! पियारा,
भर्ग.— ऐश्वर्य, जग व्यापन हारा।
तत् धीमहि— उसे वरू नाचू अरु गाऊँ,
उस ही को ध्याऊँ अरु पाऊँ।
य — जो विज्ञान रूप है प्यारा,
शरणागत का एक सहारा।
न.— उससे आज विनती है मेरी,
धिय — नशे कुमति करे ना देरी।
अटल भक्ति मेरी मति धारे,
गहे प्रेम, अभिमान विसारे।
शुभ कर्मों मे रुचि विकसावे,
सुखद समर्पण भाव जगावे।
प्रचोदयात्— इस विधि यह ऐश्वर्य तिहारो,
मति गति को हो प्रेरण हारो।

समर्पण

कुछ जगत् मे नही है मेरा,
भेंट धरूँ कैसे फिर तेरा।

दोहा

पुष्पपत्र ले भक्ति के, सजा हृदय का थाल।
लिए शरण मे आखडा, स्वीकारो प्रण पाल ॥

श्री महेशचन्द्र स्वामी जी महाराज के कोष्ठ मे गए और बोले, महाराज आप तो आशु कवि भी सुने जाते है, वेद विषय पर भक्ति का एक भजन लिखा दीजिए। महेश जी आश्चर्य मे रह गए, सचमुच वे तो लिखाने ही लगे—

वेद-ध्वनि कुछ बोल, अब तो वेद-ध्वनि कुछ बोल।
साम का मनहर गान सुनादे, ऋषियो की वह तान सुनादे।
जिन तानो को सुन कर मेरा, सके न मन फिर डोल ॥१॥
अनहद रव तेरा सुन सुन कर, दुर्गुण दूर करूँ।
चुन चुन कर शुभ गुण ही धारूँ, पढूँ जब मन को खोल।
वेद ध्वनि कुछ बोल, अब तो वेद ध्वनि कुछ बोल ॥२॥

आश्रम पर महिलाओ के लिए सुविधा जनक स्थान की आवश्यकता थी। उस की पूर्ति श्री जगदीश सहाय सेठी की धर्मपत्नी श्रीमती वीरावाली ने कर दी। स्नानागार और पाक-गृह भी साथ ही सम्बद्धित कर दिये।

वैशाखी पर स्वामी जी महाराज गुरुकुल काङ्गड़ी के उत्सव पर पधारे। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का उत्सव भी उसी अवसर पर था। महाराज उस मे भाषण कर रहे थे। विषय दार्शनिक था। श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने भाषण के मध्य मे ही उन्हें कुछ लिख कर दिया। स्वामी भागवतानन्द जी गहरी दृष्टि से देख रहे थे कि देखे श्री रामेश्वरानन्द जी के आक्षेप को महाराज किस रूप मे लेते है। महाराज ने उसे पढा और अपने गोह मे रख लिया। भाषण चालू रक्खा। उस की चर्चा तक न की। वे भाषण समाप्त करके जब बैठ गए, तो गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के कुलपति राव श्री नरदेव जी शास्त्री ने स्वामी रामेश्वरानन्द जी से कहा—"आप को भाषण के मध्य मे लिख कर नही देना चाहिए था।"

२५, २६, २७ अप्रैल को देवर्षि आत्मानन्द आर्यसमाज जम्मू के वार्षिकोत्सव मे जा उपस्थित हुए।

अधिक कार्य-व्यापार से महाराज का रुधिरनिपीड रोग प्रवृद्ध हो गया। अत वे लाला नरेन्द्रनाथ मोहन के घर उनके आग्रह पर सोलन ब्रूरी चले गए। श्री नरेन्द्र नाथ जी ने महाराज का सर्वविध समुचित प्रबन्ध किया। विश्राम तथा खान-पान की निपुण व्यवस्था से स्वास्थ्य सुधरने लगा। इस कारण शेष ग्रीष्म ऋतु वही शीतल प्रदेश मे अति-वाहित करने का निश्चय कर लिया। आङ्गल चिकित्सको के परामर्श से वे पर्वतीय प्रदेश मे जाने से कतराया करते थे, किन्तु इस वर्ष के अनुभव ने सिद्ध कर दिया कि वह तो केवल भ्रममात्र था। चिकित्सको का यह मन्तव्य भी कि रुधिरनिपीड समुद्र-स्तर पर समस्थिति मे रहता है, मान्य नही।

१४ सितम्बर को परिव्राट् श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज आर्य समाज शिमला के वार्षिकोत्सव पर पधारे। प्रागपुर (कागडा) वासी सूदवशीय दो सहोदर भ्राताओ—श्री ठाकुरदास आर्य और पृथिवी चन्द आर्य ने आर्य ससार के मान्य नेता श्री स्वामी जी महाराज को अपने गृह पर निमन्त्रित किया। साथ मे श्री आनन्द स्वामी जी, स्वामी व्रतानन्द जी, प० भगवद्दत्त जी, प० बुद्धदेव जी, प० दीनानाथ शर्म्मा और प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु भी थे। श्री दीनानाथ शर्मा ने अवसर का लाभ उठाते हुए स्वामी आत्मानन्द जी से प्रश्न किया— "भगवन्! देश का उद्धार कब होगा?" उस महापुरुष ने उत्तर मे कहा— 'जब आर्य विद्वान् ईर्ष्या और अहम्मन्यता के क्षुद्र भावो को तिलाञ्जलि दे, एक दूसरे के दृष्टिकोणो का उचित आदर करते हुए स्वेच्छा से अपने आपको एक दृढ अनुशासन-सूत्र मे बाँध, आर्य जनता को अनुशासन का पाठ सिखा और उनके हृदय मे वेद भगवान् के प्रति सच्ची आस्था जमा, स्वय वेदविद्या के गम्भीर अनु-सन्धान मे तत्पर हो कर, वेद प्रचार का दृढ सङ्कल्प कर लेगे, तब सम्पूर्ण भूमण्डल पर महर्षि दयानन्द के उद्देश्य की विजय पताका अवश्य लहरायेगी।"

दिव्य यतिवर्य के इन वचनो से प० दीनानाथ शर्मा के अन्त करण मे नूतन भावना का सञ्चार हुआ और उनके समक्ष वही काल उपस्थित हो गया, जब वे गुरुकुल रावल मे आचार्य मुक्ति राम (भविष्यत् के स्वामी आत्मानन्द) जी से अपनी शङ्काओ का समाधान करा के कृतार्थ हुआ करते थे।

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का आग्रह

बहुत समय से आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, यतिराट् आत्मानन्द जी से निवेदन करती आ रही थी कि लाहौर के उपदेशक विद्यालय को पुन. इस प्रदेश में सञ्चालित करके उसे आप अपना आचार्यत्व प्रदान करे, किन्तु महाराज कह देते थे—"ये सब झमेले पाकिस्तान बनने के साथ ही समाप्त कर दिये है और इस वयः में रुधिर-निपीड से पीडित हुआ-हुआ मैं विद्यालय के सञ्चालन मे सक्षम भी नहीं हूँ।"

सभा के प्रधान महाशय कृष्ण जी कुशल नेता थे। वे जानते थे कि वर्तमान समय मे इस कार्य के लिए स्वामी आत्मानन्द जी जैसा वीतराग, निस्पृह, कर्मठ पुरुष और नही है, अत. उन्होने लिखा कि आपकी प्रत्येक सुविधा का ध्यान रखना उनका कर्त्तव्य है। विद्यालय के लिए सभा का अपना धन है। सभा उपदेशक विद्यालय को आपके ही आश्रम मे स्थापित कर के प्रसन्न है। इस कार्य के आरम्भार्थ नौ सौ बानवे रुपये आठ आने (९९२-५०) का धनादेश आपकी सेवा मे भेज रहा हूँ। स्वीकार कीजिए।

श्री स्वामी जी ने उसे लौटा दिया और अपनी असमर्थता प्रकट कर दी, किन्तु महाशय जी भी थकने वाले न थे। उन्होने अपना प्रयत्न चालू रक्खा। किया गया प्रबल प्रयास कठोर हृदय को भी द्रवित कर देता है। महाराज तो थे भी करुणानिधान। वे शरीर को अवेक्षित दृष्टि से देखने के अभ्यासी थे, अत यदा-कदा उनके हृदय मे ऐसे विचार स्थान पाने लगे कि इस रोग-अवस्था मे भी यदि कुछ कल्याण होता रहे तो ठीक ही है।

कुछ ही दिन पश्चात् श्री महाशय कृष्ण जी महाराज के आश्रम मे जा पहुँचे और निवेदन किया, "स्वामी जी, कुछ भी हो यह कार्य तो आप ने ही करना है। हम भी पूरा ध्यान रक्खेगे कि आप को रुग्णावस्था मे कष्ट न होने पाए। पाकिस्तान से उजडने के पश्चात् किसी प्रकार सभा को जमा पाये हैं। अब उसके जो कार्य वहाँ थे, वे तो करने ही चाहिएँ। सभा को उपदेशक दूसरी सस्थाओ से मिलने कठिन है। उन्हे तो अपना ही विद्यालय सञ्चालित कर के इस कार्य की पूर्ति करनी होगी।" महाराज ने अत्याग्रह देख, महाशय जी को स्वीकृति दे दी।

उपदेशक महाविद्यालय का आचार्य पद स्वीकार कर लेना महाराज के अनुरूप ही था। वे भले ही रुधिर-निपीड से पीडित थे। आत्मा तो

उस शरीर के भीतर प्रकाशमान था। यह उन का स्वभाव था कि वे अपने जीवन मे आर्य समाज की अवनति नही देख सकते थे। उनका उस समय तक सम्पूर्ण जीवन ही आर्य समाज के क्षेत्र को विभिन्न विधाओ से उन्नयन करने मे व्यतीत हुआ था, फिर भला अन्त में उस चिरपालित प्रवृत्ति का कैसे वे अवमान कर सकते थे।

पश्चात् २७ सितम्बर और ४ अक्टूबर के आर्य अङ्क मे सम्पादकीय लेख प्रकाशित हुआ—"१८ अक्टूबर सन् १९५३ को विजय दशमी के अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, दयानन्दोपदेशक विद्यालय को वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर मे फिर से प्रारम्भ कर रही है। देश विभाजन से पूर्व गुरुदत्त भवन मे वर्षों तक इस का सञ्चालन होता रहा था। अब स्वामी आत्मानन्द जी के आचार्यत्व मे इसका आरम्भ किया जा रहा है। श्री स्वामी आत्मानन्द जी आर्य समाज के सर्वमान्य मूर्धन्य सन्यासी हैं। सभा की चिर काल से इच्छा थी कि स्वामी आत्मानन्द जी के आचार्यत्व मे इस का सञ्चालन करे। अब उन्होने सभा की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है। उनका व्यक्तित्व अपने भीतर विशेष आकर्षण रखता है। निर्भीकता, निरभिमानता और आध्यात्मिकता की सुन्दर झलक उनके जीवन का वैशिष्टच है। इन के सरक्षण मे पढने वाले विद्यार्थी आर्य समाज के सन्देश तथा वैदिक धर्म के आदेश को वाणी के साथ-साथ अपने आचरण से भी फैलाने वाले होगे।"

उपदेशक महाविद्यालय का उद्घाटन

सन् १९५३ क्टूबर १८ के प्रातः ही अम्बाला छावनी यमुनानगर, माडल टाउन, जगाधरी और समीपवर्ती ग्रामो की जनता वैदिक साधन आश्रम में उपस्थित होने लगी। सभा प्रधान महाशय कृष्ण जी, उपप्रधान श्री चरण दास जी अधिवक्ता, सभा मन्त्री भीमसेन जी तथा प० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार और अनेक वानप्रस्थ एव सन्यासी महात्माओ ने अपनी उपस्थिति से नागरिको को शोभा प्रदान की। वृहद्यज्ञ के पश्चात् १२ बजे तक उपदेशक विद्यालय का उद्घाटन हुआ। जिसमे सभा प्रधान महाशय कृष्ण जी ने उपदेशक विद्यालय के भूतपूर्व आचार्यों की त्याग-तपस्याओ की परम्पराओ का उल्लेख करते हुए स्वामी आत्मानन्द जी जैसे कर्मवीर त्यागी आचार्य के मिलने पर प्रसन्नता प्रकट की। सभा की ओर से महाराज को धन्यवाद दिया। श्री चरणदासपुरी तथा सभा मन्त्री जी ने भी अपने उद्गार

प्रकट किए। अन्त मे पण्डित बुद्धदेव जी ने कहा—"पण्डित जवाहर लाल नेहरू कहते है–अमरीका का अनुकरण मत करो, रूस का भी मत करो, परन्तु यह नही बताते कि किस का करे ? परन्तु दयानन्द, और गान्धी बताते थे कि भारत के तपोवनो मे जाओ। वहाँ की सस्कृति तथा विचार धारा को अपनाओ। आज त्यागी विद्वान् स्वामी आत्मानन्द जी ने इस तपोवन मे दयानन्दोपदेशक विद्यालय का कार्यभार लेकर इस कमी को पूर्ण कर दिया है।"

पश्चात् प्रवेशार्थी विद्यार्थियो ने जनता के समक्ष धर्म सेवा का मौन व्रत लिया और महाराज ने कहा—"प्रवेशार्थियो के प्रार्थना पत्र तो अनेक आए, परन्तु मैंने केवल त्यागी, लगन वाले छात्र ही चुने है। सङ्ख्या की अपेक्षा दूसरे गुणो पर ही बल दिया है।"

इस अवसर पर सब अपनी-अपनी योग्यता का कार्य कर रहे थे। कर्म नारायण जी ने दो छात्र वृत्तियाँ, महाशय मुकुन्दलाल जी ने काष्ठचतुष्किकाएँ देना अङ्गीकार किया।

आर्य समाज मेरठ में श्राद्ध पर शास्त्रार्थ

स्वति स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती की अध्यक्षता मे श्राद्ध पर शास्त्रार्थ रक्खा गया। दोनो पक्ष स्वामी जी की अध्यक्षता में आस्थावान् थे। स्वामी जी ने इन्द्रराज जी से कहा—" आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ करने वाले महानुभाव दूसरे पक्षी से निर्बल है। मैं दूसरे पक्षावलम्बी को जानता हूँ। इसके समक्ष आपका शास्त्रार्थी नही ठहर सकेगा।" इन्द्रराज जी ने महाराज से कहा—" सुनने मे तो यह ही आता है कि ये शास्त्रार्थ महारथी है और स्वय भी बहुत उछल-कूद मचाते हैं।" महाराज बोले—" देख लो, यह तुम लोग जानो, दूसरा पण्डित अपने विषय और तर्क मे धनी है। मैं आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर सकता था, किन्तु अब इस झमेले मे पड़ना नही चाहता क्योकि इसमे तर्क के साथ छल-जाति आदि उपायो का आश्रय लेना होता है, जो सन्यासी के लिए शोभनीय नही है।"

शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पूर्व महाराज ने पहले एक घण्टे तक न्याय शास्त्र के छल-जाति और निग्रह स्थान पर व्याख्यान किया। पश्चात् दोनो मतवादियो को शास्त्र-चर्चा मे अग्रवर्ती होने का आमन्त्रण दिया।
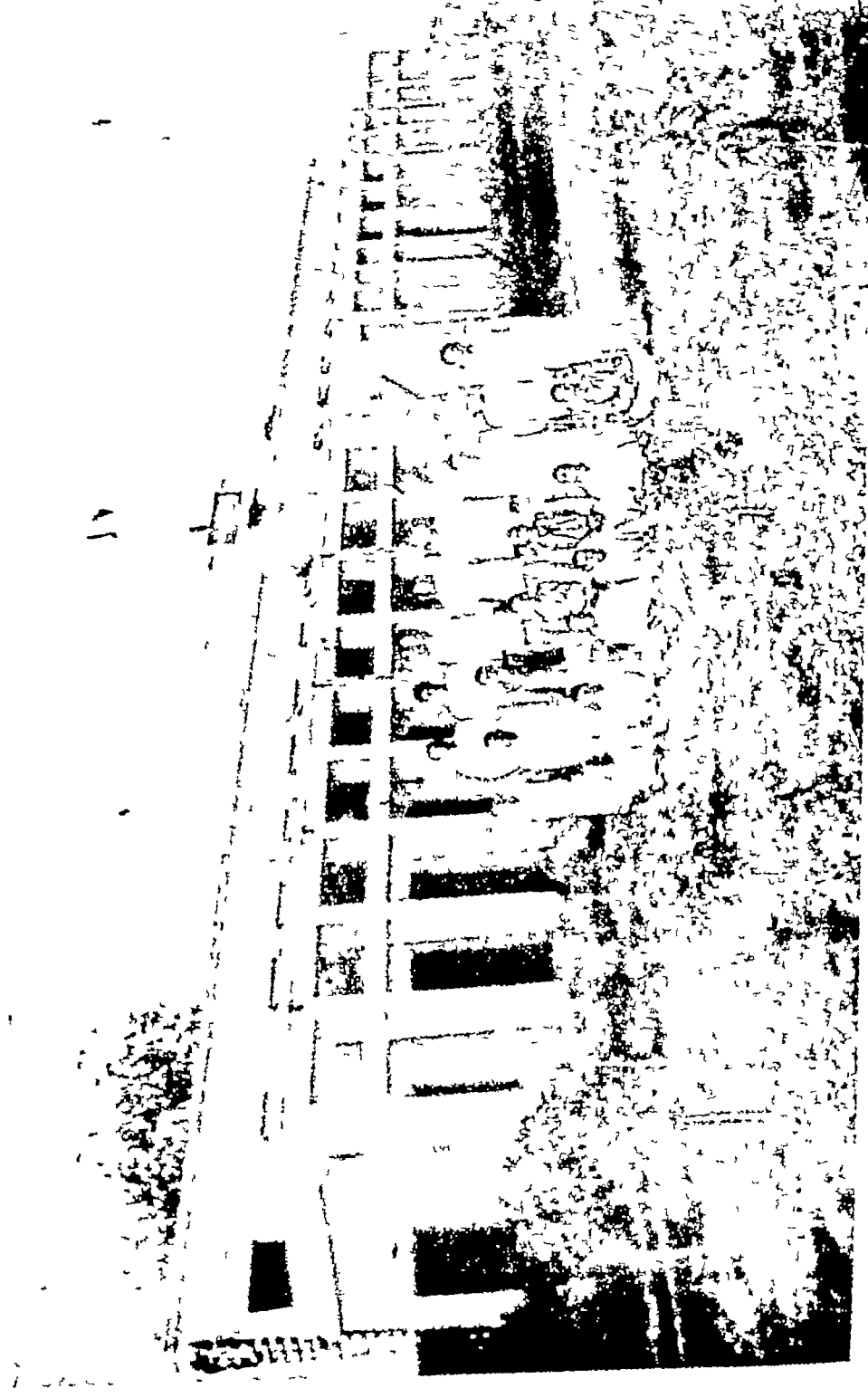
श्री दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय वैदिक साधना आश्रम, यमुनानगर

वाद प्रारम्भ हुए कुछ ही समय अतिक्रान्त हुआ था कि सम्भावित परिणाम दृष्टिगत होने लगा। आर्य समाजस्थ पण्डित के पैर लड-खड़ाते देख आर्य जन दाये बाएँ झाँकने लगे। यह शास्त्रार्थ गड़बड़ में ही समाप्त हुआ और आर्य समाज के लिए विपरीत प्रभाव छोड गया।

नागरिकों मे व्याप्त इस कुप्रभाव को अपसारित करने के लिए श्री रामचन्द्र जी देहलवी को आहूत किया गया, जिन्हों ने कुछ दिनों तक वहाँ विराजमान होकर वैदिक प्रवचनो द्वारा जनता का ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट कर दिया।

गुरुकुल उच्च विद्यालय की स्थापना

सर्वहितकारी स्वामी जी महाराज ने जहाँ श्रीमद्दयानन्द उप-देशक महाविद्यालय के आचार्यत्व का गुरुभार स्वीकार किया, वहाँ शिक्षा की दृष्टि से पिछडे उस प्रदेश मे विद्या-प्रसार के निमित्त अनेक आङ्गल विद्यालयो का उद्घाटन भी कराया। नाङ्गल तथा शाबेपुर के उच्च विद्यालयो को उन्नत करने मे उन के आशीर्वाद प्राप्त शिष्य ब्रह्मचारी सेवाराम जी तथा ब्र० वीरभद्र जी प्रमुख थे।

उन्होने जहाँ सर्वसाधारण की आवश्यकताओ को दृष्टि में रक्ख आङ्गल विद्यालयों के उद्घाटन कराये, वहाँ छात्रो को विशेष आचार-मय वातावरण मे रखते हुए शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरुकुल उच्च-विद्यालय की भी स्थापना आश्रम के निकट ही की। श्री लाला गोविन्द राम जी ने उस गुरुकुल आङ्गल उच्च विद्यालय के प्रबन्ध का भार अपने ऊपर लिया। उसकी आधार शिला भी उपदेशक महाविद्यालय के समस्त ब्रह्मचारियो और नागरिको की उपस्थिति मे प्रार्थना मन्त्रो के पाठ पूर्वक श्री स्वामी जी महाराज के करकमलो द्वारा रक्खी गई। उन भवनो मे विद्यालय चालू कर दिया। यद्यपि स्वामी जी महाराज के विचार पूर्वानुभव के आधार पर यही थे कि आङ्गलविद्यालय से हमारे अभीष्ट की पूर्ति नही होगी, तथापि श्री लाला गोविन्दराम जी के विशेष आग्रह और प्रबन्ध सभालने के आश्वासन पर उसे चालू किया था। लाला जी द्वारा शिथिलता दिखाने और उससे वैदिक प्रचारार्थ कुछ भी लाभ न देख, उसे तुरन्त तोड़ दिया। उन भवनो मे उपदेशक विद्यालय चालू कर दिया गया जो अब तक यज्ञशाला के समीपवर्ती

कोष्ठो में चलता था और वहाँ स्थान की बडी न्यूनता अनुभव की जा रही थी क्योंकि उन दिनों विद्यालय में तेईस चौबीसके लगभग छात्र थे।

नपुंसक भी तो संसार में रहते हैं

उच्च महात्मा प्रतिक्षण अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय देते हैं, वे कभी अपनी मर्यादा का भङ्ग नहीं करते। एक समय महाराज, मोहन आश्रम हरिद्वार के अन्त कलह के निर्णायक बनाये गए। निर्णय शीघ्र न हो सकने की अवस्था में जब उन्होने आदेश के रूप मे कोई पग न उठाया, तो एक असहिष्णु व्यक्ति ने महाराज को कहा—"यह तो नपुंसकता है।" महाराज शान्त मुद्रा में बोले—"नपुंसक भी तो संसार मे ही रहते हैं।"

कठोर हृदय द्रवित हो उठा

महात्मा-संन्यासी भी स्वामी जी महाराज का मान करते थे। स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ ने दीवान हाल दिल्ली मे अपने लिए एक कक्ष निर्धारित कर उस मे अपना ताला लगा लिया। गुरुकुल चित्तौडगढ के आचार्य स्वामी व्रतानन्द जी को ऐसा किया जाना खटका; क्योंकि स्थान के अभाव मे दूसरो को क्लेश होता था। अतः उन्हो ने एक पट्ट पर यह लिख कर लटका दिया—"आर्य समाज के साधु भी अब स्थानो पर अधिकार करने लगे है।" आश्चर्य है कि उस पट्ट के अपसारण का कोई भी साहस न कर सका। अन्ततः इस अप्रिय घटना से परित्राण पाने के लिए स्वामी वेदानन्द जी महाराज समीप ही अवस्थित स्वामी आत्मानन्द जी के चरणों मे पहुँचे। उन के निवेदन पर महाराज ने स्वामी व्रतानन्द जी से कहा—"स्वामी जी, आर्य समाज मे उत्साही संन्यासियों की बहुत ही न्यूनता है। यदि हम ही उन का सम्मान न करेंगे, तो इस मे आर्य समाज की महती क्षति होगी।" श्री व्रतानन्द संन्यासी ने निवेदन किया—"मैं ने तो सच्ची बात लिखी है।" महाराज बोले–"ठीक भी हो, तो भी ऐसा लिख कर लटकाना अच्छा नही है।" एकता के प्रतिपादक उस महापुरुष ने अपनी प्रकृति के अनुसार श्री व्रतानन्द जी संन्यासी को सम्मानित करते हुए आगे कहा—"यद्यपि मुझे आर्य जगत् का नेतृत्व प्राप्त है और आप को नही है तथापि जितना विश्वास बहुत-से आर्य महानुभाव आप का करते हैं, उतना मेरा नही। आप के इस व्यवहार से वे सब स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ के प्रतिकूल

हो जावेंगे और परिणामतः इन के मन मे भी प्रतिक्रिया के उत्पन्न हो जाने से आर्य जनो का कितना अनिष्ट हो जायगा।" इतना सुनते ही श्री व्रतानन्द जी ने अपना आग्रह छोड दिया और कहा, "महाराज जी! आप मे मेरी बहुत श्रद्धा है। आप कहते हैं, तो मैं उतार देता हूँ।"

दमे का औषध

महाराज जी बाहर से लौट कर जब आश्रम पहुँचते थे, तो उन्हे जिज्ञासुओ के बहुत-से पत्र आए हुए मिलते थे। श्री वैद्य कर्मवीर जी ने नरेला से दमे का औषध पूछा, तो महाराज ने लिखा– "एक गोले को आक के दूध से भर ले। फिर उसे सूखने दें। दूध सूख जाने पर कपड़ मट्टी करके दस सेर गोसो की आँच दे दें। गोले और दूध दोनो के भस्म को पीस लें। बस यह ही दमे का औषध है। तर दमे मे काम करता है। शुष्क मे नही। मक्खन वा मलाई में डाल कर देना चाहिए।"+

करनाल मण्डल मे विद्यमान आर्य समाज शाहबाद के ४, ५, ६ नवम्बर सन् १९५३ मे होने वाले वार्षिक महोत्सव को अपना पूरा समय देकर महाराज ने अपने शिक्षाप्रद भाषणों से और भी अधिक शोभा सम्पन्न बना दिया।

दर्शन सम्मेलन के सभापति

भारत विभाजन के पश्चात् २४, २५, २६, २७ दिसम्बर सन् १९५३ बृहस्पति, शुक्र, शनिवार और रविवार को पञ्जाब प्रान्तीय आर्य महासम्मेलन अम्बाला में रक्खा गया। सम्मेलन आरम्भ होने से पूर्व १६ दिसम्बर से अनाज मण्डी के विशाल भूभाग मे यजुर्वेद पारायण महायज्ञ का आरम्भ हुआ, जिस का उद्घाटन श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने किया। सम्मेलन के कार्य-क्रमो के दिनो मे आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के समस्त उपदेशको और भजनीको का साधना शिविर भी आयोजित किया गया, जिस मे प्रात काल स्वामी जी महाराज का भी उपदेश होता था।

सम्मेलन मे वेद सम्मेलन, दर्शन सम्मेलन, विशाल पञ्जाब सम्मेलन, महिला सम्मेलन, गोरक्षा सम्मेलन, राजनीति सम्मेलन, शिक्षा सम्मेलन और आर्य कुमार सम्मेलन रक्खे गए।

+वैद्य कर्मवीर जी ने इस औषध से बहुत से रोगियों को लाभ पहुँचाया।

२६ दिसम्बर को ८॥। से ११ बजे तक होने वाले दर्शन सम्मेलन के अध्यक्ष पद को दर्शनाचार्य श्री स्वामी आत्मानन्द जी ने सुशोभित किया। सम्मेलन मे अनेक दार्शनिको के व्याख्यान हुए, जिसमे यह निश्चय किया गया कि दर्शनो के विषय वैदिक प्रमाणो से पुष्ट किए जावे। ऋषि दयानन्द के दार्शनिक विचार क्या है ? यह निर्णीत किया जावे। उन विचारो का पोषण वेद के प्रमाणो से करते हुए वेद-विरुद्ध विचारों का प्रत्याख्यान किया जावे और इस विधि से एक 'दयानन्द दर्शन' का निर्माण हो।

स्वामी जी ने अपने अध्यक्षीय अभिभाषण मे त्रैतवाद, प्रतिबिम्ब-वाद, अवच्छेदवाद, आभासवाद, अनिर्वचनीय वाद, आत्मख्याति, असत्ख्याति, अख्याति, अन्यथा ख्याति, अनिर्वचनीय ख्याति का आख्यान करके, आठ प्रमाणो का विश्लेषण करते हुए मुक्ति से पुनरावृत्ति का विशद विवेचन किया।

कार्य-भार का प्रभाव

श्री दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय के छात्रो को उन दिनों स्वामी जी महाराज स्वयं ही सन्था दिया करते थे। पण्डित विद्याधर जी भी अध्यापन मे सहयोग दे देते थे। महाराज के समीप आर्यसमाजो के उत्सवो के कार्य-क्रम भी निरन्तर आते ही रहते थे। वे उन मे भी अपने जीवन की आहुति डालने से न चूकते थे। कभी-कभी तो यहाँ तक हुआ कि उत्सवो के कार्य क्रमो से लौट कर रात्रि के दस बजे ही वे विद्यार्थियो को पढ़ाने मे प्रवृत्त हो जाते थे। छात्रो का अनध्याय उन्हे बहुत खटकता था। उत्सवो के पुरोगमो और उपदेशक विद्यालय के उत्तरदातृत्व के कारण महाराज का रुधिर-निर्पीड रोग अति प्रवृद्ध हो गया, जिस से खान-पान भी सब छूट गया। अम्बाला वासी श्री प्रेमनाथ चिकित्सक ने उपचार आरम्भ करते हुए परामर्श दिया कि अब तो शान्ति से बैठे रहने मे ही जीवन की आशा है। भ्रमण और प्रचार का कार्य सर्वथा वर्जित कर दीजिए। चिकित्सक महोदय के इस सत्परामर्श का आदर करते हुए महाराज ने उत्सवो के अपने अग्रिम सभी कार्य क्रम अवरुद्ध कर दिये।

योग मे अभिरुचि तो महाराज की सदा ही बनी रहती थी। एकान्त में आत्म-चिन्तन की सुविधा देने के लिए भक्तराज श्री केदारनाथ सूद

सराफ तरन तारन वाले ने अपनी स्वर्गीया माता श्रीमती रत्नदेवी जी की स्मृति में आश्रम के नालकूप के समीप एक कुटीर बनवा दिया। महाराज अपना डेरा भी वही रखने लगे।

महाराज कैसे भी अस्वस्थ हों, अध्यात्म पिपासुओ के लिए उनके द्वार सदा खुले रहते थे। अपनी इस अस्वस्थता में भी उन्हों ने प्रतिवर्ष की भाँति ७ अप्रैल से ११ अप्रैल तक आश्रम पर साधना शिविर का आयोजन किया। महाराज का शिष्य समुदाय इस अवसर की प्रतीक्षा में ही रहता था और महाराज के दर्शन एव शङ्का-निवृत्ति से प्रफुल्ल-चित्त हुआ घर लौटता था।

कृषकों की दीन दशा से आतुर

वैदिक साधन आश्रम के सम्मुख से होकर एक मार्ग नगर को जाता था। एक शताब्दी पूर्व वह पथ यमुना नहर की पटरी था। नहर का जल १॥ सहस्रमान+ विस्तार मे फैल जाने के कारण घातक-जलचरो का केन्द्र बन चुका था, अत. नहर को दूर सरका दिया और वह पुरानी पटरी बची रही, जो ऊँची थी। कृषक लोग उसी पटरी से अपनी बैल गाडियो द्वारा गन्ना इक्षुपीडित्र× में पहुँचाते थे। मार्ग में गहरे-गहरे गर्त्त पडे थे। शीतकाल की वर्षा मे बैलो के पैर फिसलते थे। कभी-कभी तो आश्रम के सम्मुख ही गन्ने की उलटी हुई गाडी और बैल उस के नीचे दबे हुए देखे गए। एक दो बैलो का इस प्रकार मृत्यु भी हो गया था। अनेक गाडियाँ टूट चुकी थी। १० सहस्रमान+ दूर तक का गन्ना अहर्निश वहाँ से होकर जाता रहता था। इस दयनीय दशा को देख कर महाराज के अथक सेवक ब्रह्मचारी सेवाराम जी से रहा न गया, महाराज भी बहुत दु.खी थे। महाराज ने उन्हे अपना आशीष दिया और वे आश्रम के सम्मुख से पक्का मार्ग बनवाने के कार्य में ग्राम-ग्राम भ्रमण करने लगे। ग्रामीणो के हस्ताक्षर कराये। धन-सङ्ग्रह किया। कृषको का कुछ धन इक्षुपीडित्र मे कटौती कटते-कटते सञ्चित हो चुका था। २॥ वर्ष निरन्तर परिश्रम करते-करते महाराज के प्रभाव, लोगो के उत्साह और ब्रह्मचारी जी के परिश्रम से सन् १९५४ मे सङ्गृहीत और सञ्चित धन द्वारा आश्रम के समक्ष खजूरी से यमुनानगर तक जानपद रथ्या* का निर्माण हो गया। यातायात की सुविधाएँ इस प्रकार

+ किलोमीटर। × शुगर मिल। * जिले की सडक।

उपलब्ध हो जाने से दूर-दूर ग्रामों तक महाराज की सहानुभूति पूर्ण उदार चित्तवृत्ति और ख्याति व्याप्त हो गयी । ब्रह्मचारी सेवाराम जी के द्वारा सम्पन्न इस कार्य को कभी भुलाया नही जा सकता। वर्षा ऋतु के जल में चलते-चलते उन के पैर गल गये थे, सूज गये थे । रक्त बहने लगता था, पर महाराज मे अतीव श्रद्धावान् होने के हेतु उन्हों ने कार्य-समाप्ति से पूर्व कार्य को विराम नही दिया । कर्मठ शिष्य के द्वारा कर्मठ गुरु स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के गुणो का अनुमान ग्राम्य जन घर बैठे-बैठे ही लगाते रहते थे ।

सावधान

उपदेशक विद्यालय के कुछ छात्र यतिराज के चरणों मे आसीन थे । सायकाल भोजनोपरान्त वार्तालाप के प्रसङ्ग मे गुरु ने शिष्यो से कहा—"प्यारे विद्यार्थियो ! दत्तचित्त होकर अध्ययन करो । तुम्हे ज्ञान है, हम ने किन कठिनाइयो मे विद्यार्जन किया है ? वाराणसी मे मुझे बारह वर्ष के अध्ययन काल का वह दिवस स्मरण नहीं, जब भूख लगने पर भोजन किया हो । परन्तु यतः विद्या-प्राप्ति लक्ष्य था, अतः सकल कष्टो को सहन किया । तुम्हे तो यहाँ पर्याप्त सुविधाएँ हैं । ऐसे उत्तम साधन उपलब्ध होते हुए भी यदि अवेक्षा वृत्ति किसी अन्तेवासी के हृदय मे है, तो विद्योपलब्धि मे इस समय की यह अवहेलना उसे वहाँ ले जाकर पटक देगी, जहाँ फिर कुछ करते न बनेगा ।"

उन्ही दिनो आर्य सिद्धान्तो से विज्ञ सत्यप्रिय* नामक एक युवक विद्यालय मे प्रविष्ट होने आए । आश्रम मे पहुँचते ही उस युवक ने गैरिक वस्त्रो से आवृत्त उस भव्य सन्त के दर्शन किए । वार्तालाप के समय महाराज की विद्वत्ता, तेजस्विता, सात्त्विकता और गम्भीरता ने उसे अपने प्रभाव मे ले लिया और वह उस महामानव के वर्चस्वी जीवन से लाभान्वित होने के लिए उन का अन्तेवासी बन गया । महाराज के वैदुष्य से वह उस समय और भी अधिक प्रभावित हुआ, जब उन्हो ने उस की कक्षा को बिना पुस्तक लिये ही पढाना आरम्भ कर दिया । योग्य आचार्य की ऐसी स्थिति न केवल दर्शनो मे ही थी, दूसरे विषय भी इसी प्रकार रसनाग्रवर्ती थे । सूक्ष्मान्वीक्षक इस सत्यप्रिय

*वर्तमान मे श्री सत्यप्रिय सिद्धान्त शिरोमणि प्राध्यापक ब्राह्म महाविद्यालय हिसार ।

युवक ने अपने आचार्य प्रवर को रात्री मे भी यदा-कदा वेद मन्त्र, दर्शन-सूत्र तथा सस्कृत बोलते देखा ।

स्वामी तो वही एक था

उच्च श्रेणी के छात्र एक समय गुरुवर के निकट सन्ध्या लेने के लिए आसीन थे । भित्ति पर ऋषिवर दयानन्द का चित्र टगा था । भावसुलभ मुद्रा मे एक ब्रह्मचारी बोला—"हमारे मध्य मे दो स्वामी है ।" उसी समय महाराज ने कहा—"स्वामी तो वही एक था ।"

कितना प्रगाढ अनुराग था शिष्यों का, जो अपने गुरु को महर्षि दयानन्द से उपमित करते थे । वस्तुत: स्वामी आत्मानन्द जी ने ही योग समाधि के उग्र तप से दिव्य दयानन्द के गुणो का सूक्ष्म ईक्षण किया । प्रतिष्ठा की इस उच्च पीठिका पर वे तब अधिष्ठित हो सके, जब उन्होने समता के व्यवहार को भी अपने जीवन का अश बना लिया । यहाँ तक कि अध्यापन काल मे भी वे शिष्यो के समक्ष भूतल-आसन पर ही आसीन रहते थे । कहना ही पडेगा—मान की वासना उनके मन से अपना बिस्तर समेट चुकी थी ।

विचित्रोपचार

ब्रह्मचारी ओम्प्रकाश के पैर के पञ्जे मे खजूर का काटा प्रविष्ट हो गया । वह निकल तो गया, परन्तु पीडा बनी रही और उसने सम्पूर्ण रात्रि आँखो मे काटी । महाराज तो कभी भी किसी को कष्ट मे देख कर अवहेलना वृत्ति का अवलम्बन नही करते थे, पुन. शिष्य की पीडा देख कर कैसे अवेक्षा करते । आश्चर्य है कि उन्हे समय पर कुछ विचित्र ही उपचार सूझ जाते थे । उन्होने तुरन्त पाकशाला से उष्ण जल मगाया और पग पर डालने लगे । ओम्प्रकाश ने निवेदन किया—"स्वामी जी ! मैं स्वयं सेक लूंगा, आप रहने दीजिए ।" महाराज बोले—"तुम्हे पता नही, चिकित्सा कैसे करनी है । वह तो मैं ही जानता हूँ ।" यह कहकर वे कुछ देर तो पञ्जे को सेकते रहे । पश्चात् रगडते हुए अकस्मात् ही ऐसा दबाया कि क्षण भर में सम्पूर्ण पीडा न जाने कहाँ चली गई । फिर किसी प्रकार का कोई कष्ट रहा ही नही ।

इन-दिनो महाराज ने 'मनोविज्ञान तथा शिवसङ्कल्प' पुस्तक मे कुछ परिवर्धन किया और उसे उपोद्धात मे सम्मिलित कर दिया ।

'सन्ध्या के तीन अङ्ग', पुस्तक में उपस्थान मन्त्रों का भी विषय विवेचनीय था, अतः जून मास मे इस पुस्तक का संशोधन तथा परिवर्धन भी आरम्भ कर दिया।

एक दिन महाराज आश्रम से नगर जा रहे थे। उनके साथ बलदेव प्रभृति कुछ बलिष्ठ छात्र भी थे। स्वामी जी साधारण गति से चलते प्रतीत होते थे, किन्तु विद्यार्थी उनके पीछे भागते थे। इस गति का कारण योगनिष्ठ यतिकुलभूषण ने बताया, "इस तीव्र गति में ब्रह्मचर्य का नियम से संरक्षण ही मूल हेतु है। मुझे यह प्रतीत नही होता कि मैं चलने मे शीघ्रता करता हूँ। अब यह एक स्वभाव ही बन गया है।"

विद्यानुरागी सन्यासि—प्रवर को विद्यार्थियों का बोधोपलब्धि विषयक ध्यान बहुत अधिक रहता था। इसकी अपेक्षा वे धनागम को न्यून महत्त्व देते थे। इस वार्ता का बोध निम्न सन्दर्भ से स्पष्टतया लक्षित होता है—

वम्बई निवासी सेठ शूर जी बल्लभदास ने गुर्जर प्रदेश में वैदिक धर्म का प्रचार करने के निमित्त एक योजना का निर्माण किया। उसके लिए उन्होने 'वीलापार्ला' मे पौने दो लाख की सम्पत्ति से एक साधन आश्रम की स्थापना की। दस वानप्रस्थो को वहाँ शिक्षण देना था। आश्रम के अध्यक्ष मुनि श्री मेधाव्रताचार्य ने सेठ जी के सुपुत्र श्री प्रताप जी शूर जी के आग्रह पर यतिराट् श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज को पत्र लिखा कि "गुरुदेव ! आप कुछ काल के लिए यहाँ पधारने का अनुग्रह कीजिए। आपके धर्मोपदेशो से यहाँ के आर्य-जन लाभान्वित होना चाहते हैं। आप के इधर शुभागमन करने पर मैं आप को अपना 'दिव्यकुञ्ज' नामक आश्रम भी दिखाऊँगा, जो योग साधना की दृष्टि से आपके आदेश से मैंने बनाया था।" इस के उत्तर मे उस तुर्याश्रमी महात्मा ने ७-८-५४ को लिखा—"आश्रम मे उपदेशक विद्यालय खोल दिया गया है। उस मे ऐसे ही विद्यार्थी लिए जाते हैं, जिनका उद्देश्य वैदिक धर्म प्रचार ही हो। उनको आत्मिक लक्ष्य की ओर आगे बढने का भी कार्य-क्रम दिया जाता है। अभी एक ही अध्यापक योग्य मिले है, शेष पठन-पाठन का कार्य-क्रम स्वय ही चलाना पड़ता है। यदि कही बाहर जाऊँ, तो विद्यार्थियों का अध्ययन छूट जाता है। यदि कोई योग्य अध्यापक मिल गया, तो बाहर जाने का

भी अवसर मिल जावेगा। यह ही कारण है कि मैं वम्बई आने मे अपने आप को असमर्थ पाता हूँ। सेठ जी को नमस्ते कहे और मेरा यह सन्देश उन्हे भी दे दे।"

१८-८-५४ को स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती करौलबाग दिल्ली विराजमान हुए। वे वहाँ सतभ्रावाँ आर्य कन्या उच्च विद्यालय के वन महोत्सव मे भाषण करते दीख रहे हैं।

व्याख्यान वेदि पर उपस्थित श्री वालकराम जी उपमन्त्री आर्य समाज करौलबाग, श्री बी० बी० गुप्त आचार्य रामजस विद्यालय, लाला शिवराम चण्डहोक, प्रधान आर्य समाज करौलबाग, श्री महाशय थापर विद्यालय निरीक्षक, निरञ्जन नाथ जी प्रधान सतभ्रावां आर्य कन्या उच्च विद्यालय, चिरञ्जीत राय साहनी प्रबन्धक विद्यालय, पण्डित मूलराज जी, सत्यपाल जी भसीण मन्त्री, केदार नाथ जी अध्यापक, और श्रीमती सत्या जी मेहरा है।

सत्य के ग्रहण मे उद्यत

दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय की नियमावली के 'पाठ पद्धति' शीर्षक-विवरण मे लिखा था—"वे ग्रन्थ इस महाविद्यालय

के पाठविधि मे न रक्खे जावेगे, जिनके पठन-पाठन का महर्षि दयानन्द के लेखो मे निषेध पाया जाता है।"

गुरुकुल झज्जर के ब्रह्मचारी वेदव्रत ने, जो सिद्धान्त शिरोमणि की परीक्षा देने के अभिलाषी थे, उपदेशक विद्यालय के आयुर्वेद मे, निषिद्ध 'शाङ्ग धर' ग्रन्थ का नाम देखकर विद्यालय के आचार्य स्वामी आत्मानन्द जी का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। उन्होने ब्रह्मचारी जी के पत्र को अत्यन्त सहानुभूति से देखा और सोचा, 'ये ही तो महर्षि दयानन्द द्वारा लहराई गई वैदिक ध्वजा को भविष्यत् मे ऊँचा उठा कर घर-घर में वैदिक सन्देश पहुँचाने वाले होनहार बालक है, जो महर्षि दयानन्द के एक-एक शब्द का अनुसरण करने के अभिकाङ्क्षी है। नि सन्देह देश का कल्याण ऐसे ही ब्रह्मचारियो से सम्भव है। इस के लिए आवश्यक है कि पहले पाठविधि में 'शाङ्ग धर' के स्थान पर दूसरे ग्रन्थ का समावेश किया जावे, पश्चात् पत्रोत्तर दिया जावे।"

श्री स्वामी आत्मानन्द जी, जो पहले स्वयं आचरण करते थे, पश्चात् बोलते थे, ने लगभग एक मास पश्चात् ७५ अगस्त सन् १६५४ को लिखा—"बिना सशोधन किए उत्तर लिखना उचित न समझा था। अब संशोधन कर दिया है। द० उ० वि० की नियमावली मे 'शाङ्ग धर और हमारे शरीर की रचना' के स्थान पर 'चरक' रख दिया है।"

एक दूसरे प्रश्न के उत्तर मे लिखा—"पेठे के विषय मे जो तुमने लिखा था, सो ब्रह्मचर्य के लिए वातकारक तथा कफजनक होने से 'काशीफल' जिसे मीठा कद्दू भी कहते है, उसका निषेध किया है। पेठे का जिसकी मिठाई हलवाई बनाते है, निषेध नही किया है। यह पेठा तो हृदय तथा ज्ञान तन्तुओ के लिए अत्यन्त लाभदायक है। मूत्रावरोध शमनम् आदि गुण इसी के है।"

आप क्यों चिन्ता करते हैं

एक दिन विद्या प्रेमी श्री स्वामी जी महाराज चिन्तित-से हुए आर्य समाज यमुना नगर के सत्सङ्ग मे पहुँचे। आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के भजनोपदेशक श्री ओम्प्रकाश जी, महाराज को म्लान देखकर बड़े दु.खी हुए। पण्डित राजाराम जी ठेकेदार ने साहस करके पूछ ही

लिया—"स्वामी जी, आज आप उदास क्यो है ?" महाराज बोले—"प्रतिनिधि सभा केवल दश छात्रो के व्यय को वहन करने मे वचन-बद्ध है और वह साहाय्य निरन्तर दे रहो है । किन्तु मेरे समीप उपदेशक विद्यालय मे प्रवेशार्थी आते ही रहते हैं । हृदय पर पत्थर बाँध कर उन्हे भी पढाने के लिए मुझ से निषेध नही किया जाता । इस कारण व्यय बहुत बढ चुका है । अब तुरन्त मुझे दो सहस्र रुपयो की आवश्यकता है ।" पण्डित राजाराम जी ने एकपदे निवेदन किया—"भगवन् ! आप का कार्य तो केवल विद्या-दान करना है । शेष आवश्यकताओ की पूर्ति करना हमारा काम है । एक सहस्र रुपया मै देता हूँ और एक सहस्र महाशय मुकुन्दलाल जी दे देगे । आप क्यो चिन्ता करते हैं ।"

सरधने में सम्मेलन के अध्यक्ष

ब्रिटिश प्रशासन ने अपने शासन काल मे भारतीयो को अपने-अपने मत का प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्रदान की हुई थी । इस स्वतन्त्रता का अनुचित पूर्णलाभ विदेशीय ईसाई भी भारतीयो को ईसाई बना कर उठा रहे थे । भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर काग्रेस प्रशासन ने भी उसी सरणी का अनुगमन किया । परिणाम यह हुआ कि ईसाई मत का प्रचार भारत मे अधिक बढता गया । इस की प्रवृद्धि मे एक विशेष कारण यह भी बना कि काग्रेस प्रशासन के आर्थिक शोषण ने भारतीय जन साधारण को निर्धन बना दिया । ईसाई लोग भारतीयो को अनेक सुख-सुविधाओ के प्रलोभन देकर अपने मत मे दीक्षित करते रहे । सरधना (मेरठ) ईसाई मत के प्रचार का गढ बना हुआ था । आर्य समाज यह जानता है कि भावनाएँ ही है, जो राष्ट्र के उन्नयन एव पतन का कारण बनती हैं । यदि भारत मे ईसाई मत का ही प्रचार होता चला जाये, तो अधिकाश देश, विदेशीय भावनाओ मे आत्म-गौरव को विस्मरण कर जायगा और ऐसा हो जाने पर पराधीन भारत के दिन पुन. आ सकते है । महर्षि दयानन्द ने इस रहस्य को समझा था । उन का पदानुयायी आर्य समाज भी ईसाइयो की कुरीतियो के, आडम्बर का और धर्म की निर्मौलिकता का कच्चा चिट्ठा भारतीयो को दिखा कर उन्हे अपने धर्म पर ही आरूढ बनाते हुए आत्म गौरव को चमकाता है ।

सरधने मे ईसाइयो की चेष्टाएँ जब प्रबल हो गयी, तो इस अनिष्ट कारिणी प्रवृत्ति को अवरुद्ध करने के लिए एक सम्मेलन का आयोजन

किया गया। सम्मेलन के आयोजन का द्वितीय लक्ष्य था—देश में प्रवृद्ध गोहत्या का निरोध। यह भारत की संस्कृति के विरुद्ध कांग्रेस प्रशासन के ऊपर कभी न मिटने वाला कलङ्क है। राष्ट्रीय ध्वज में अशोक का चक्र रख कर अहिसकता की परिभाषा वह किन शब्दो मे करता है, इस का उत्तर देने के लिए अभी उन्हें कोष मे कोई शब्द मिल नही रहा। जनता को धोखा देने के लिए कॉग्रेस ने अपना निर्वाचन चिह्न "बैलों" का अवश्य रख लिया है।

सरधने मे से ईसाइयो के गढ को हटा देने के लिए, रघुनन्दन स्वरूप अधिवक्ता, दीवानसिह आर्य, कृष्ण मुरारी शर्मा, सत्यभूषण वेदालङ्कार और रघुवीरसिंह जी ने प्रबल प्रयास आरम्भ किए। कार्तिक सुदी १, २ और ३ सवत् २०११ विक्रमी तदनु० २७, २८, २९ अक्टूबर सन् ५४ बुध, बृहस्पति और शुक्र दिवस सम्मेलन के निश्चित किए। आर्य जगत् के प्रतिष्ठित नेता श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज को सम्मेलन का अध्यक्ष निर्वाचित किया। नियत समय पर दौराला में अवस्थित स्वागत समिति ने अपने प्रिय नेता का आर्य सामाजिक समाघोषों के तुमुल ध्वनि से स्वागत करते हुए वैदिक धर्म के विजय को मुखरित कर दिया।

वैदिक धर्म की जागरूकता की गहरी छाप से ईसाइयो के हृदयों को व्यथित करने के लिए उच्च कोटि के आर्य नेता श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी और पण्डित बुद्धदेव जी विद्यामार्तण्ड प्रभृति सम्मेलन मे अपना पूर्ण योग दे रहे थे।

२७ अक्टूबर के प्रात ९ बजे नगर मे सयात्रा निकाली गयी। इस शोभा यात्रा मे भाग लेने के लिए जनपद के समस्त आर्य समाज और आर्य सस्थाएँ उपस्थित थी।

सम्मेलन के अध्यक्ष स्वामी जी महाराज को एक विशालकाय हाथी पर अधिष्ठित किया गया। उस समय महाराज सब की दृष्टियो के केन्द्र थे। दूरवर्ती ग्रामीण जन भी महाराज के दर्शन कर के प्रफुल्ल हो गए।

व्याख्यान वेदी पर अनेक व्याख्याताओ ने अपने विचार प्रकट किए। सम्मेलन के अध्यक्ष के प्रशंसन मे भी कुछ शब्द कहते ही थे। उत्तर प्रदेश के एक उपदेशक महानुभाव ने यह भी कहा कि हैदराबाद सत्याग्रह के दिनो मे, हैदराबाद की कारा मे स्वामी जी महाराज, जब

पण्डित मुक्तिराम जी थे, ने मुझ से कुछ योग के आसन करा के मेरा अर्श रोग ठीक कर दिया था।

महाराज के अधिपतित्व में योजना के अनुसार शुद्धि सम्मेलन सम्पन्न हुआ और अनेक विधर्मी बने परिवारो को प्राचीन वैदिक धर्म मे दीक्षित कर के अध: पतन के गर्त से उभार लिया।

इसी वर्ष योगानुवर्ती देवर्षि आत्मानन्द सम्माननीया सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के प्रधान निर्वाचित हुए।

ऊंचा व्यक्तित्व

योगी आत्मानन्द सरस्वती जी का वैयक्तिक प्रभाव आर्य संसार पर कितना था, इस की कषवटी स्वय जनता है। जनता के मान्य नेता राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री ने अपने प्रव्राट् बनने का गुरु श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज को ही चुना। राजगुरु जी ने अपने सन्यास दीक्षावसर पर खुरजा, चित्तौड़गढ, झरिया, दिल्ली, प्रयाग, कलकत्ता, बदायू, देहरादून, गुरुकुल काँगडी तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, बिहार, राजस्थान, मध्यभारत, उत्तर प्रदेश, आगरा, बम्बई, पटना, अलीगढ, मेरठ, बाकीपुर, हैदराबाद, औरङ्गाबाद, बड़ौदा प्रभृति विभिन्न स्थानो से आर्य जनों को दीक्षा स्थली साधु आश्रम हरदुआ गञ्ज मे एकत्रित कर के जहाँ अपनी विश्रुति को प्रमाणित किया, वहाँ देव आत्मानन्द सरस्वती की ख्याति को भो दिगन्तव्यापिनी बना दिया।

जन-जन के प्रिय यति के गुरुराज श्री स्वामी सर्वदानन्द जी के इस आश्रम पर ७ नवम्बर सन् १९५४ को एकत्रित हुए तीन सहस्र नर-नारियो की दृष्टि सन्यास-दीक्षा के समय १० बजे केवल दो ही व्यक्तियो पर थी—एक थे, स्वामी आत्मानन्द जी महाराज और दूसरे राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री। दीक्षोपरान्त श्री धुरेन्द्र शास्त्री ने 'वैदिक धर्म पर ध्रुव रहने मे ही आनन्द है', इस विशिष्ट भावना से अपना नाम 'ध्रुवानन्द' रखा कर श्री गुरु चरणो मे अपना मस्तक नमा दिया।

सब से प्रथम सन्यासी वर्ग की ओर से स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी और विद्वत्समाज की ओर से पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु प्रभृति ८, १० विद्वानो ने अपने-अपने स्थानो के प्रतिनिधि रूप मे नवोदित सन्यासी स्वामी ध्रुवानन्द जी को अभिनन्दित किया।

राधाकृष्ण सस्कृत महाविद्यालय के आचार्य महामहोपाध्याय प० परमानन्द जी को भी सत्पुरुषो ने जब अपने उद्गार व्यक्त करने

को कहा, तब स्वामी आत्मानन्द सरस्वती को भान हुआ कि इस समारोह में बाल्यकाल की शिक्षा के उनके आदि गुरु भी विराजमान हैं। वे सहसा आसन से उठे और अति श्रद्धा से गुरु चरणों में पहुँच कर उनके चरण-स्पर्श किये। लोग देख कर आश्चर्य-चकित रह गये, जब जगत् के प्रसिद्ध सन्यासी को श्वेत-वेष-विभूषित श्री परमानन्द जी के पाद-पद्मों में नतमस्तक होते देखा……इसका नाम है—गुरुओं में श्रद्धा, जो एक व्यक्ति को समाज में आदर की उच्च पीठिका पर अधिष्ठित करती है।

अन्त में गुरु आत्मानन्द ने शिष्य ध्रुवानन्द को संन्यास धर्म का ठीक-ठीक पालन करने मे समर्थ होने के लिए पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा के परित्याग को मुख्य कर्त्तव्य बताया। प्रथम दो एषणाएँ छूट जाने के पश्चात् भी लोकैषणा शेष रह ही जाती है। यतः संन्यासी मानव-समाज मे सबसे उच्च माना जाता है; अतः ऐसे सत्पुरुष को लोकैषणा का स्पर्श भी वर्जनीय ही है। महाराज ने इस की पुष्टि में यह श्लोक उच्चारण किया—

"अद्यापि दुर्निवारं कीर्तिकन्या वहति कौमारम्।
सद्भ्यो न रोचते सा असन्तस्तस्यै न रोचन्ते॥

आदि सृष्टि से अद्य पर्यन्त कीर्ति रूप कन्या, कुमारी ही बनी हुई है। उसका विवाह नही हो सका और न ही होने की सम्भावना है, क्योकि वह असत्पुरुषों का वरण नही करती, यदि सत्पुरुषो के निकट जाती है, तो वे उसे अपने से दूर हटाते रहते हैं, क्योकि वह उन्हे अच्छी नही लगती।"

उस विचित्र आचार्य के सान्निध्य मे पहुँच कर विद्यार्थी अपने माता-पिता को भी विस्मृत कर देते थे। एक दिन सत्यव्रत राजेश को उन्होने सिरसा ग्राम मे घृत लेने भेज दिया था। भोजन मे उस दिन खीर बनी। महाराज ने स्वय न खा कर उसे उठा कर रख दिया कि वह ब्रह्मचारी खीर से वञ्चित न रह जावे। सायकाल जब वह घृत लेकर लौटा और सन्ध्या मे निवृत्त हुआ, तो खीर का कटोरा लेकर महाराज उसी के समीप पहुँच गये और कहा—"खालो।" वह सकुचाते हुए बोला—"आचार्य जी, आप ही सेवन कीजिए।" महाराज बोले—"नही, यह तुम्हारे ही लिए है।" स्वामी जी की इस अलौकिक

वत्सलता को देख कर वह यह अनुभव करने लगा कि ये साधारण साधु नही है, कोई विशिष्ट विभूति हैं।

१५ से २२ नवम्बर तक परिव्राट् श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज वैदिक साधन आश्रम गुरुदास पुर के शिविर मे विराजमान हुए। जहाँ अनेक साधको को ज्ञानामृत से परितृप्त किया।

सन्ध्या अष्टाङ्गयोग

वर्ष की समाप्ति के साथ-साथ 'सन्ध्या अष्टाङ्ग योग' पुस्तक प्रकाशित हो कर जनता के हाथो में आया। यह 'सन्ध्या के तीन अङ्ग' नामक पुस्तक का परिवर्धित सस्करण था। प्रस्तुत पुस्तक मे 'सन्ध्या के तीन अङ्ग' का कोई अश नही छोड़ा गया और उसके नाम का भी वर्तमान पुस्तक मे वर्णन न कर, उसे सर्वथा ही तिरोहित कर दिया। नवीन पाठक इस नूतन संस्करण को पढ कर यह अनुमान नही लगा सकेंगे कि इस विषय की कोई पुस्तिका पहले लिखी गयी थी। महाराज ने इस पुस्तक को ही ऐसा रूप दिया, जैसे यह ही आरम्भ से प्रकाशित होता चला आ रहा है।

युवक को संन्यास—दीक्षा का निषेध

आश्रम मे संन्यासि-प्रवर स्वामी जी महाराज से एक युवक सन्यास-दीक्षा ग्रहण करने आया। महाराज ने उसके निवेदन की अवेक्षा की और कहा—"आप अभी कुछ वर्ष और प्रतीक्षा कीजिए। सन्यास जैसे कर्म शीघ्रता की अपेक्षा नही रखते।" महाराज की इस उक्ति का उस पर कोई प्रभाव न पडा और बोला—"मेरा वैराग्य मुझे सन्यास-दीक्षा के लिए आमन्त्रित करता है। मेरे इस अधिकार को आप मुझ से पृथक् न कीजिए, कृपानिधान।"

स्वामी जी ने उसे फिर भी प्रोत्साहन न दिया, जब कि रावल गुरुकुल मे वे एक योगानन्द को सन्यास से दीक्षित कर चुके थे और उस युवक ने अपने सदाचरण का अङ्कन महाराज के हृदय मे कर भी दिया था।

दूसरे के हृदय-सस्कारो के प्रेक्षक योगिवर्य स्वामी जी ने पुन कहा—"कुछ वर्ष और प्रतीक्षा कर लेना तुम्हारे हित में रहेगा, शीघ्रता न करो।" किन्तु वह फिर भी आग्रह करता ही रहा। स्वामी जी महाराज जो शब्द अपनी वाणी से निकालना नही चाहते थे, उसके

आग्रह ने वे शब्द विवशत. निकलवा ही दिये। अतः अन्तःप्रेक्षी महाराज ने प्रश्न किया—"यदि मार्ग में तुम्हे कोई युवती मिल जाये, तो तुम क्या करोगे?" युवक ने उत्तर दिया—"नीची दृष्टि करके निकल जाऊँगा।" सस्कारों के विशेषज्ञ श्री स्वामी जी को इतने मात्र से सन्तुष्ट कर देना कठिन था, अत. महाराज ने दूसरा प्रश्न किया—"यदि वह तुम्हे देखकर मुस्करा दे?" इतना कहना था कि युवक ने मुस्करा दिया। पुनः महाराज की ओर देख कर और यह जानकर कि तू परीक्षा मे असफल रहा, उसका मुख नीचे गड़ गया। उसके मुख से एक शब्द भी न निकल सका। सन्यास दीक्षा का अपूर्व उत्साह पल भर मे कही से कही खिसक गया। उसे निरुत्तर देख महाराज वहाँ से उठ गए और उस ने भी फिर तद्विषयक कोई चर्चा न चलाई।*

उपदेशकों को प्रशिक्षण

सामाजिक क्षेत्र मे वेद प्रचार की शिथिलता का अनुभव करके आर्य-प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने उपदेशक साधना शिविर की एक योजना बनाई। इस शिविर का घटन १३ से २० जनवरी सन् १९५५ तक आर्य-समाज कवाडी बाजार, अम्बाला छावनी मे किया गया। यतिराट् आत्मानन्द जी महाराज के द्वारा भी प्रशिक्षित कराने के लिए माननीया सभा ने उन्हे निमन्त्रण दिया। अत यतिभूषण प्रतिदिन प्रात. शिविर में योग सम्बन्धि-प्रवचन करने लगे। जिससे अध्यात्म-प्रकाश से प्रकाशित हो कर उपदेशको का जीवन जनता के लिए अनुकरणीय बन सके।

इस के साथ-साथ महाराज उन तत्त्वो पर भी प्रकाश डालते थे, जो वेद प्रचार के मार्ग मे बाधा बन कर खड़े हो जाते है।

इस प्रशिक्षण शिविर मे सन्यासिराज ने दयानन्द उपदेशक विद्यालय के छात्रो को भी सम्मिलित होने का आदेश दिया, जिससे वे भी सर्व-विध लाभ उठा सकें।

महाराज प्रतिदिन अम्बाला से अपने आश्रम पर यमुनानगर आ जाते थे और एकान्त शान्त प्रदेश में योगाभ्यास-जनित ज्ञान को ले कर प्रात पुन. अम्बाला पहुँच जाते थे।

---

* स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी दीनानगर मठ मे सत्यव्रत बन्धु प्रभृति छात्रों को महाराज की यह घटना सुनाया करते थे।

१४ जनवरी को मध्याह्नोत्तर जो कार्य-क्रम शिविर मे चला, उसमें अन्य उपदेशको के वक्तव्यो के पश्चात् महाराज ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये—

आर्य-समाजो को पुरोहित रखने चाहिएँ। उन्हे भृत्य न समझा जावे। गुरु के समान उनकी अर्चना हो। पुरोहित का व्यय समाज दे; परन्तु वे आर्य प्रतिनिधि सभा के अधीन हो। पुरोहित महानुभाव विद्यालय के समय से अतिरिक्त शेष समय मे आर्य-बच्चो को अपने समीप रक्खे। न्यून-से-न्यून प्रात दो घण्टे और साय तीन घण्टे आर्य-बालक पुरोहित के प्रभाव मे रहे। पुरोहित के निरीक्षण मे ही वे व्यायाम, भ्रमण, सन्ध्या और अग्निहोत्र आदि करे। पुरोहित उनकी प्रत्येक चेष्टा का नियन्त्रण करे और अपने अधीन उन्हे धार्मिक शिक्षण दे।

गुरुकुलो मे एक 'आर्य प्रशिक्षण महाविद्यालय' स्थापित किया जावे, जिस में आङ्गल विद्यालयो* और महाविद्यालयो‡ के लिए अध्यापक निर्माण किए जावें।

सभा के उपदेशक विद्यालय मे एक 'प्रशिक्षण महाविद्यालय' सञ्चालित किया जावे, जिसमे पुरोहितो का निर्माण हो।

२० जनवरी सन् १९५५ को अन्तिम दिवस लिये गये बाई ओर लगे चित्र मे स्वामी जी महाराज के साथ आर्य-प्रतिनिधि सभा के उपदेशक, अधिकारी, आर्य-समाज के अन्तरङ्ग सदस्य और वैदिक साधन आश्रम के भावी उपदेशक भव्य-मुद्रा में दीख रहे हैं—

सुध-बुध भूल जाती है

इन दिनो महाराज पर कार्य का भार बहुत अधिक था। उन्हों ने आचार्य भगवान् देव जी को लिखा—"विद्यालय का और इस के साथ ही अन्य कार्यों का भार इतना अधिक है कि सब सुध-बुध भूल जाती है। पत्रो के उत्तर भी समय पर नही दे पाता। आप के उत्सव मे पहुँचना कठिन हो रहा है। पहले अन्यत्र के लिए मान चुका हूँ।"

"विभिन्न स्थानो से पत्र इतने अधिक आये पडे हैं कि उन्हे पढने को भी मन नही करता। इच्छा होती है कि सहसा कही एकान्त मे जा कर छिप जाऊँ।"

रुधिर-निपीड रोग का उतार-चढाव तो उन के शरीर मे विद्यमान रहता ही था।

---

* स्कूल ‡ कालिज

धर्म प्रचार का सुगम उपाय

फरवरी १२ को महाराज दिल्ली पधारे। वहाँ सतभ्रावां आर्य-कन्या विद्यालय मे अवस्थित भक्त देवीदास आपणिक ने पूछा, "गुरुदेव ! मैं अपने जीवन में क्या काम करूँ ?" महाराज ने उत्तर दिया—"जहाँ बैठो, वैदिक धर्म की बाते ही सुनाते रहो। इस प्रकार प्रत्येक आर्य अपने सकल कार्यो को करते हुये सुगमता से धर्म-प्रचार कर सकता है ।"

श्री देवीदास जी ने गुरुवाणी का अङ्गीकार किया और आपण पर आते जाते ग्राहकों को सत्यमार्ग की बाते बतानी आरम्भ कर दी।

क्या लिखें ? एक तड़प

शिवरात्रि विशेषाङ्क के लिये प्रति वर्ष महाराज से आर्य पत्रो के सम्पादक लेख भेज देने का निवेदन करते थे; पर दिव्य आत्मानन्द देखते थे कि लेखो से आर्य जन लाभ नही उठा रहे। इस वर्ष उन की इच्छा कुछ भी भेजने की न थी; पर आग्रह वलवान् था, अत दु:ख भरे हृदय से यही लिख भेजा कि 'हे ऋषिवर, हम अवोध आपके वोध की कहानी क्या लिखे ?

१. आप ने सन्ध्या और योग के अनुष्ठान का आदेश दिया था, हम आज तक सन्ध्या मन्त्रो का शुद्ध उच्चारण भी न सीख सके। योगानुष्ठान का अव तक स्पर्श भी न किया। योग के अनुष्ठान के लिये तो किसी विशेप अधिकारी ने उपदेशकों को यहाँ तक कह दिया कि तुलाई में वैठे-वैठे ही गायत्री-जप कर लिया करो। इतना ही पर्याप्त है।

२. आप ने सङ्गठन का पाठ पढ़ाया था। हम पदलोलुपता के ग्रास वन कर विघटन की ओर ही पग वढाते जा रहे है।

३. आप ने वेदो की ओर अग्रसर करने वाली वेदवाणी के विस्तार का आदेश दिया था, परन्तु हम पूज्या सरस्वती के स्थान पर आङ्गल भापा को ही पूजा कर रहे हैं।

४ आप ने गुरुकुल-विद्यालयो में वेदो के गम्भीर अध्ययन का आदेश दिया था, परन्तु हमारी साधारण दृष्टि भी इस ओर नही जा रही।

५ आप ब्रह्मचर्य के धनी थे। आप ने इन सस्थाओ मे ब्रह्मचर्य को जीवित रूप देने का आदेश दिया था। गुरुकुलो के वायु-मण्डल को

स्त्री-सम्पर्क से रहित रखना और नवीन आकर्षणों से ब्रह्मचारियो को बचाए रखना ही इस कार्य-क्रम का साधक था, परन्तु अब हम इस दिशा मे भी शिथिल होते जा रहे हैं ।

६ आप ने सह-शिक्षा का प्रबल विरोध किया था; परन्तु सह-शिक्षा का विरोध तो क्या करेगे, स्वय अपने हाथो से उसका सञ्चालन कर रहे हैं ।

७ आप ने वेद-प्रचार के दो साधन, आचरण और विचार चुने थे; परन्तु हम ने उन मे पहले साधन को स्पर्श करना ही छोड़ दिया है ।

८ आप ने देशोद्धार की दृष्टि से वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का पुनरुद्धार करना आवश्यक समझा था; परन्तु हम उन्हे अनावश्यक समझ रहे हैं ।

९ हम प्रबोध के लिए आप का बोध दिवस प्रति वर्ष मनाते हैं; परन्तु बोध की ओर एक पग भी आगे बढा नही है । अतः आप के बोध की कहानी क्या लिखे ?

आदर्श सुधारक आचार्य आत्मानन्द जी महाराज आर्यसमाज करौल बाग नई दिल्ली के वार्षिकोत्सव पर पधारे । वहाँ उन का व्याख्यान इतना प्रभाव शाली था कि श्री प्रधान जी ने व्याख्यान के अन्त में घोषणा की—"कल स्वामी जी का व्याख्यान अजमल खाँ पार्क में होगा ।" सब श्रोता यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुए । स्वामी जी ने उसी समय कहा—"व्याख्यान ही सुनते रहोगे वा उस पर आचरण भी करोगे ?" यह सुनते ही सारी सभा मे सन्नाटा छा गया ।

रोहतक मे आर्य महा सम्मेलन के अध्यक्ष

इस सम्मेलन का अध्यक्ष श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को निर्वाचित किया था; किन्तु वे अकस्मात् यमार्बुद* से पीडित हो गये, जिस के उपचारार्थ उन्हे बम्बई जाना पड़ा । कार्य-क्रम को सुचालित रखने के लिये स्वामी आत्मानन्द जी महाराज को अध्यक्ष चुन लिया गया ।

१८ मार्च सन् १९५५ को नगर कीर्तन के समय सम्मेलन के अध्यक्ष चरित्र-नायक श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज को आर्यजनो ने

* कैंसर

बग्घी में अधिष्ठित कर के सुशोभित एव समादृत किया। साथ में स्वामी वेदानन्द जी और पण्डित बस्तीराम जी भी आसीन हुए। बग्घी के पिछले भाग में दो आर्य-युवक सशस्त्र खडे किये गये। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे राष्ट्रपति की सवारी निकल रही हो। नगर कीर्तन की संयात्रा इतनी सुव्यवस्थित एवं लम्बी थी कि इससे पूर्व रोहतक वासियो को ऐसी शोभा यात्रा देखने को न मिली थी। सहस्रो नर-नारियों के इस समारोह मे आश्चर्य है कि आरक्षिदल का कही भी नाम न था, फिर भी व्यवस्था सैनिक रूप धारण किये हुए थी। सयात्रा मे धार्मिक और राष्ट्रोत्थान के भजन भी चलते-चलते गाये जा रहे थे। समाघोषो से वातावरण गूञ्ज रहा था। यह शोभा यात्रा आर्यसमाज मन्दिर झज्जर रथ्या से आरम्भ हो कर सम्पूर्ण नगर मे होती हुई वही आ कर समाप्त हो गयी।

दूसरे दिन श्री सत्यभूषण जी की अध्यक्षता मे सम्पादित वृहद्यज्ञ के अन्त में महाराज का अमृतोपम उपदेश हुआ।

सम्मेलन के अध्यक्ष स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने अपने भाषण मे 'वेद प्रचार की योजना' प्रस्तुत की, जिसके अनेक पक्ष निर्धारित कर के विशद विवेचन किया। उन पक्षो मे आचरण, सङ्गठन, सस्था, कुमार गुरुकुल, आर्ष गुरुकुल और उपदेशक विद्यालय, लेख, भाषण, उत्सव, वेद व्याख्यान, बालक कथानक, युवक प्रतियोगिता और युवती प्रतियोगिता को महत्त्व देते हुए उन्हे वेद प्रचार का अनिवार्य अङ्ग घोषित किया।*

आचरण की प्रमुखता

वेदर्षि आत्मानन्द अपने सम्पर्की पुरुषो का बहुत ध्यान रखते थे। होनहार युवको को सामाजिक-कल्याण की ओर प्रेरित करते रहना उन्हे सदा स्मरण रहता था। जब महाराज को यह अवगत हुआ कि महेशचन्द्र जी प्रशासकीय दूरभाष का कार्य छोड़ कर सामाजिक सेवा करना चाहते हैं और उनका त्याग-पत्र स्वीकार नही किया जा रहा है, तो स्वामी जी ने उन्हे लिख कर भेजा कि ऐसा लिखो—"मैं अपना जीवन सेवा मे ही लगाना चाहता हूँ। मेरा पहले भी यही

* सम्पूर्ण अध्यक्षीय भाषण, जो मन्त्री भरतसिंह जी ने छपवा दिया था, "आत्मानन्द लेख माला" मे पढ़िए।

उद्देश्य था। इसी कारण मैं विवाह से सम्बन्धित अनेक प्रलोभनों में भी नही फँसा और मैंने वैवाहिक जीवन का सर्वथा तिरस्कार कर दिया। तब यह राजकीय सेवा-वृत्ति मुझे कैसे लुभा सकती है; अतः मेरा त्याग-पत्र स्वीकार किया जावे।"

उपर्युक्त शब्दो के लिखने से जब महेशचन्द्र जी का त्याग-पत्र स्वीकार हो गया, तो वे श्री चरणो मे आए और निवेदन किया—"महाराज, अब कैसे कार्य आरम्भ करूँ ?" स्वामी जी ने कहा—"आप का स्वर अच्छा है, मै चाहता हूँ कि आप का वह राग प्रभु का ही राग आलापे; अत थोडे दिन फिरोजपुर जा कर सङ्गीत का शिक्षण ले आओ। किन्तु ध्यान रखना—जब तुम गाते हो, तुम्हारा अपने ऊपर भी रङ्ग चढता हैं। अपने जीवन मे सदाचार को प्रमुख बनाए रखना। इसी की प्रधानता मे सभी कार्य-क्रम शोभा पाते हैं। सदाचारी का आसन समाज मे ऊँचा उठता चला जाता है।"

श्रद्धा-उद्रेक

सन् १९५५ मे होने वाला वैदिक साधन आश्रम का शिविर निकट आ गया। दूर-दूर से नर-नारी पहुँचने प्रारम्भ हो गये। महिलाओ ने स्वाभाविक अपनी गान-गति मे बोलना आरम्भ किया—

(१)

चल मन जहाँ है निर्मल नीर
योगियो की भूमि, यतिवर का आश्रम,
जहाँ यह मन बाँधे धीर
चल मन जहाँ है निर्मल नीर ॥१॥
ऋषि के चरणो मे, निर्मल गङ्गा जल,
जहाँ शीतल होत शरीर,
चल मन जहाँ है निर्मल नीर ॥२॥
ना कोई तेरा ना कोई मेरा,
फिर मन क्यो होत अधीर,
चल मन जहाँ है निर्मल नीर ॥३॥
ज्योति देख उस परम पिता का,
जिसने तुझे यह दिया शरीर,
चल मन जहाँ है निर्मल नीर ॥४॥

(२)

उठो आर्यो चल कर के आश्रम मे जावे"
चलो उन के चरणो के दर्शन को पावे। उठो...

सन्तों की टोली रहती जहाँ है,
अमृत की गङ्गा वहती वहाँ है।
चलो चल के हम भी तो गोता लगावें। उठो आर्यो...
वेदों के मन्त्रों की व्याख्या सुनाते,
ईश्वर की भक्ति का पन्था बताते।
चलो हम भी जीवन को सफली वनावें। उठो आर्यो...
योगीश्वर, मुनीश्वर, ऋषिवर यति है,
प्रति पल समाधि में उन की मति है।
वे सत्य मुक्ति का पन्था वतावें। उठो आर्यो...
(निर्मात्री माता हरदेई)

स्वामी जी की इच्छा

महाराज चाहते थे कि सर्वत्र वार्षिक उत्सवों का कार्य-क्रम शिविर के रूप में प्रचलित हो, जिस से आर्य-जनों मे क्रियात्मक लाभ दिखाई देने लगे। सव से पहले उन्हो ने यह प्रथा अपने ही आश्रम मे चलाई और परीक्षण किया। सफलता मिलने पर उन्हो ने आगामी वर्षों में भी साधना शिविरो को ही महत्त्व दिया। २९ चैत्र २०११ से ४ वैशाख २०१२ तदनुसार १२ से १७ अप्रैल सन् ५५ दिन मङ्गलवार से रविवार तक वार्षिक चतुर्थ साधना शिविर का कार्य-क्रम निम्न रहा—

प्रात: ४ वजे	जागरण
४ से ५॥ वजे तक	शौच, दन्त-धावन, व्यायाम, स्नान आदि नित्य-कर्म
५॥ से ६॥ ,,	योगाभ्यास (ध्यान आदि) किसी के नेतृत्व में
६॥ से ७ ,,	योग-सम्बन्धि प्रवचन
७ से ७॥ ,,	प्रभु कीर्तन
७॥ ,, ९ ,,	अध्यात्म-यज्ञ
९ ,, ९॥ ,,	प्रातराश
९॥ ,, १०॥ ,,	भजन तथा उपदेश
१०॥ ,, ११॥ ,,	मन्त्रो के शुद्ध उच्चारण का अभ्यास
११॥ ,, २ ,,	भोजन तथा विश्राम
२ ,, २॥ ,,	भजन
२॥ ,, ३॥ ,,	किसी आर्य-सिद्धान्त पर व्याख्यान
३॥ ,, ४॥ ,,	शङ्का-समाधान

४॥ ,, ६ ,,	शौच भ्रमण आदि
६ ,, ६॥ ,,	अग्नि-होत्र
६॥ ,, ७॥ ,,	सन्ध्या तथा ध्यान
६॥ ,, ८॥ ,,	भोजन
८॥ से ६॥ बजे तक	भजन तथा आर्यसमाज की विभिन्न परिस्थितियो पर विचार।

६॥ बजे शयन।

अन्तिम दिवस महाशय ताराचन्द जी को वानप्रस्थ आश्रम मे दीक्षित किया और वानप्रस्थ प० गङ्गादत्त जी को सन्यास श्राश्रम मे दीक्षित करके स्वा० विश्वेश्वरानन्द नाम से अलङ्कृत किया।

लाडवा (करनाल) मे श्री स्वामी जी महाराज की श्रध्यक्षता में ऋग्वेद से श्री लाला रघुवीर जी ने एक सत्र रचाया। वेद पाठियो मे महाराज के शिष्य उपदेशक विद्यालय के छात्र थे। प्रति दिन स्वामी जी वेद मन्त्र की कथा यज्ञोपरान्त करते थे। यतिराज की सोम्य आकृति और दिव्य प्रतिभा का उपस्थित जन समुदाय पर प्रभूत प्रभाव पडता था। छात्रो मे ब्रह्मचारी भद्रसेन महाराज की प्रतिपलचर्या का गम्भीर निरीक्षण करते जा रहे थे कि यतिभूपण के जीवन मे कही भी तो पाषण्ड एव निकृष्ट वस्तु का समावेश नही है, किन्तु छोटे-बडे और निर्धन-धनी को समान आदर देने का एक विचित्र सम्मिश्रण श्रवश्य विद्यमान है। वे प्रत्येक मनुष्य के आकर्षण केन्द्र है और शङ्काश्रो का निराकरण थोडे ही शब्दो मे सयौक्तिक कर देते है।

ऐसे अवसरो पर भी स्वामी जी महाराज अपने नियमित योगाभ्यास काल का व्यतिक्रम नही होने देते थे।

मानव नहीं देव

महाराज देव थे, क्यो कि उन की प्रत्येक चेष्टा दिव्यता से अनुप्राणित थी। वे उपदेशक विद्यालय के श्राचार्य अवश्य थे, पर आचार्यत्व की अहङ्कृति उन मे लक्षित न होती थी। वे गुरु के कर्तव्य निभाने मे जागरूक थे, पर शिष्यो के कर्त्तव्यों मे सन्निविष्ट गुरु-परिचर्या के आकाङ्क्षी न थे। कतिपय छात्र अपनी कर्त्तव्य-प्रेरित भावना से बहुत प्रात· उन्हे स्नान कराने हस्त-उदञ्च पर पहुँचते, पर श्राचार्य श्रेष्ठ उन से पूर्व ही स्नान कर के निवृत्त हो चुके होते थे। विद्यार्थियों

को पाठ देते समय वे अकस्मात् उठ कर चल देते, पाकशाला से गिलास उठाते और हस्त-उदञ्च चला कर स्वयं जल पान कर लेते थे। छात्र योगिराज की ऐसी चेष्टाओं से लज्जावनत हो जाते; पर विवश थे। उन्हें क्या पता कि वे क्या करना चाहते है।

हाँ, उन से विना पूछे आत्म-तुल्य ही उन की आवश्यकताओं को भांप कर स्वय ही उन के कार्य को सम्पादन करने वाले ब्रह्मचारी से वे कालान्तर मे सङ्कोच अवश्य हटा लेते थे और फिर उसे कार्य के लिए भी सहर्ष कह दिया करते थे। अपनी इस आचरण-प्रणाली से जहाँ दूसरो को मौन-शिक्षा देना उन का स्वभाव था, वहाँ शिष्यों के अभिज्ञान का भी यह निराला उपाय था। वे कार्य के एक घण्टे मे विद्यार्थियों के साथ खेत वा उद्यान मे भी सम्मिलित हो जाते थे। यह ही कारण है कि जनता ने मनुष्यत्व से उठा कर उन्हें देवत्व का आसन दिया।

एक समय भद्रसेन के शरीर मे ग्रीष्म ऋतु की भीषण उष्णता प्रविष्ट हो गयी। उस की व्याकुलता से वह अचेत हो गया। भान होते ही महाराज ने उस के माथे पर शीतल जल की पट्टी रक्खी, जिस से वह चेतना मे आया और आँखे खोल दी। वह विस्मित रह गया, जब आचार्य श्री स्वामी जी को ऐसा उपचार करते देखा। वह पुनः आन्त्र ज्वर से पीड़ित हो गया। दिन-रात मे अनेक वार महाराज उसे देखते। २८ दिन मे उसे आन्त्र ज्वर से मुक्ति मिली; पर शिर के सम्पूर्ण वाल उड गये थे। तब त्रिफले का सेवन कराके उन्हे पुन. उगाया गया। श्री भद्रसेन जी यतिकुल भूषण के इस औदार्य का स्मरण करके अति आभार मानते हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का प्रधान पद

भारत विभाजन का प्रभाव आर्य प्रतिनिधि सभा पर भी पडा। सभी आर्य विखरे-विखरे हो गए। एक दूसरे के सम्पर्क मे आने के लिए पर्याप्त समय लगा। सभा प्रधान श्री महाशय कृष्ण जी भी किसी प्रकार अपनी पत्रकारिता को सुव्यवस्थित करने मे सक्षम हो गए और आर्य-प्रतिनिधि सभा का कार्य आरम्भ हुआ। महाशय जी ने अपने पत्र द्वारा सभा के समाचार प्रसारित कर के शनैः-शनैः उसे दृढता के कवच से आवृत्त कर दिया। अति धैर्य और लगन का काम था वह।

इसी कारण महाशय कृष्ण जी सभा के निरन्तर सात वार प्रधान निर्वाचित हुए। वेद-प्रचार का निधि समाप्त होता जा रहा था, महाशय जी ने अनेक सम्भ्रान्त पुरुषो को साथ लेकर अनेक वार स्वामी जी महाराज से इस विकट स्थिति मे नव जीवन सञ्चार करने के लिए सभा का नेतृत्व करने का साग्रह निवेदन किया, किन्तु महाराज टालते ही रहे।

अन्त मे अम्बाला छावनी में अनेक चुने हुए भद्र पुरुषो ने एक विचार गोष्ठी की। जिस मे महाराज के अनेक अति श्रद्धालु महानुभावो को भी सम्मिलित किया गया। उसी अवसर पर महाराज को भी साग्रह सादर निमन्त्रित कर जब महाशय कृष्ण जी ने पुन. प्रार्थना की, तब सभी का अत्यन्त आग्रह महाराज अस्वीकार न कर सके।

निर्वाचन के लिए ३० जुलाई १९५५ को आर्य आङ्गल विद्यालय लुधियाना के विशाल रामलीला भवन मे भिन्न-भिन्न समाजो के १८२ प्रतिनिधि एकत्रित हुए। अधिवेशन मे महाशय कृष्ण जी ने सभासदो से कहा—"अत्यन्त हर्ष का विषय है कि मैं सभा के प्रधान पद के लिए आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वान् तप तथा त्याग की मूर्ति, ईश्वर-भक्त महात्मा आत्मानन्दजी महाराज का नाम प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूँ। सभा के इतिहास मे यह प्रथम ही अवसर है जब कि एक वीतराग सन्यासी प्रधान पद को सुशोभित कर रहे है।"

महाशय जी के इस प्रस्ताव का सब पार्षदो ने हर्षनाद और करतल ध्वनि से अनुमोदन कर दिया।

पश्चात् श्री बद्रीदास जी, पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार और चरनदास जी अधिवक्ता सर्वसम्मति से उपप्रधान निर्वाचित हो गए।

साहित्याधिस्नातक श्री वीरेन्द्र जी को मन्त्री उद्घोषित किया गया। प्राचार्य नन्दलाल और श्री दिवाकर स्नातक क्रमश पुस्तकाध्यक्ष और कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए।

पण्डित बुद्धदेव जी ने निर्वाचन पर हर्ष प्रकट करते हुए कहा—"आर्य समाज का सौभाग्य है कि उसे श्री स्वामी आत्मानन्द जी के रूप मे एक ऐसा नेता मिल गया है जिसे अहर्निश सोते-उठते, चलते-फिरते, खाते-पीते और साँस लेते समय आर्य समाज की उन्नति के अतिरिक्त और किसी बात की चिन्ता नही है।"

सब पार्षदो ने अपने प्रिय नेता मे विश्वास प्रकट करते हुए कहा कि अब वे आदेश पालक सैनिक बन कर आदेश की प्रतीक्षा करेगे।

दयानन्द उपदेशक विद्यालय के आचार्यत्व का गुरुतर भार होते हुए भी सभा का कार्य कर्मठ सन्यासी ने आरम्भ कर दिया। पण्डित जगदीश चन्द्र जी शास्त्री श्री पण्डित विद्याधर जी के सहयोग से छात्रों के अध्ययन की व्यवस्था को सँभाले हुए थे।

सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के प्रधान श्री स्वामी जी महाराज २७, २८ अगस्त को होने वाले धर्मार्य सभा के अधिवेशन मे दिल्ली पधारे।

दिल्ली से प्रस्थान कर यति भूषण आत्मानन्द जी यमुनानगर आश्रम को चले गए। मार्ग मे मेरठ आने पर एक रणवीर विद्यार्थी ने महाराज का साक्षात्कार किया और शिरोवेदना का औषध पूछा। वे विद्यार्थियो की प्रवृत्ति जानते थे। ब्रह्मचर्य वय मे शिरोवेदना का क्या काम ? अत दयाभिषिक्त स्वामी जी ने उसी के अनुरूप उत्तर दिया—"बादाम, चारो मगज, ब्राह्मी, सतावरी और मिश्री का चूर्ण बना कर प्रातः साय दूध के साथ ले। सदाचार की ओर विशेष ध्यान रखना। व्यायाम भी अवश्य किया करो, जितना शरीर माने।"

आश्रम मे पहुँच कर सभा प्रधान जी ने ६ और ७ सितम्बर को यमुनानगर मे उपदेशको, प्रचारकों और अनेक प्रतिष्ठित महानुभावो का सम्मेलन बुलाया, जिस का उद्देश्य था—'आर्य समाज और उपदेशकों की कठिनाइयो का समाधान करना।'

श्री प्रधान जी वेद-प्रचार-निधि के लिए धन-सङ्ग्रह का कार्य भी कर रहे थे। उन्हो ने वहाँ एक नूतन नीति अपनाई कि वेद प्रचार का धन-राशि समाज के भूतपूर्व प्रधानो को भेट किया जावे, जिस से आर्य जगत् मे उन का मान बना रहे। यमुनानगर मे ११०० रुपये अशदान सङ्गृहीत हुआ। उसे श्री सभा प्रधान जी ने सभा के भूतपूर्व प्रधान श्री बद्रीदास जी को भेट कराया और उन्होने वह धन सभा कार्यालय जालन्धर मे पहुँचा दिया।

आश्विन १४ सवत् २०१२ तदनुसार ३० सितम्बर को सभा प्रधान श्री स्वामी जी महाराज ने राजपुरा आर्य समाज टाउन शिप के प्रथम उत्सव पर आर्य समाज मन्दिर के विशाल-भवन (हाल) की आधार शिला का स्थापन किया।

३० सितम्बर से २ अक्टूबर तक होने वाले आर्य समाज फिल्लौर के उत्सव पर वेद प्रचार के लिए स्वामी जी को पाँच सौ रुपये की थैली उपहार स्वरूप प्रदान की गयी।

वर्तमान जल-प्रलय और आर्य समाज

नवम्बर ६ के आर्य अङ्क मे सभा प्रधान श्री आत्मानन्द जी सरस्वती ने एक परिपत्र निकाला कि पिछले दिनो जो बाढ आई है,

वह वास्तव मे जल-प्रलय का एक भयङ्कर रूप था। ऐसा कहा जाता है कि गत सौ वर्षो मे ऐसी वर्षा और इस प्रकार का जन तथा धन का नाश सुनने मे नही आया। पञ्जाब जितना क्षति ग्रस्त हुआ है, उस की सम्भावना भी नही की जा सकती थी। कितनी हानि हुई है, इस का अनुमान लगाना सम्भव नही, कहा जाता है कि एक करोड रुपये से अधिक की क्षति हुई है।

इस अवसर पर घोर परिश्रम और महान् त्याग की आवश्यकता है। आर्य समाज के वृद्ध, युवक और बालक तथा देवियो तक को इस समय क्षति ग्रस्त लोगो की सेवाओ के लिए आगे बढना चाहिए। राज्य प्रशासन भी यथा सम्भव सहायता करने का यत्न कर रहा है। परन्तु इस क्षति की पूर्ति तो वर्षो का काम है। आर्य समाज ने अपने लम्बे-चौडे इतिहास मे जब कभी जाति के किसी भाग पर और देश के किसी कोने मे सङ्कट के बादल छाए है, तन-मन और धन से, सङ्कट मे पड कर भी, सेवा कार्य को निभाया है। अब भी अनेको स्थानो पर आर्य समाज ने सेवा और साहाय्य का कार्य आरम्भ कर दिया है। दूसरे स्थानो पर भी, हमे अपने व्यक्तिगत कार्य-क्रम को कुछ काल के लिए स्थगित कर के इस भयङ्कर आपत्ति मे जनता की सेवा का बीडा उठाना चाहिए और आर्य समाजो मे सहायता केन्द्र स्थापित करके अविलम्ब कार्य आरम्भ कर देना चाहिए।

यद्यपि इसी पञ्जाब का निवासी होने के नाते आर्य समाज का भी बहुत सारा भाग इस सङ्कट की लपेट से बचा हुआ नही रहा, फिर भी जो आर्य समाज और आर्य भाई इस सङ्कट से बचे रह गए है, उन्हे कमर कस कर अपने और पराये का ध्यान न रखते हुए पीड़ितो का सङ्कट मे सहायक होना चाहिए। जहाँ अन्न की आवश्यकता हो वहाँ अन्न, जहाँ वस्त्र की अपेक्षा हो वहाँ वस्त्र, और जहाँ स्थान की अनिवार्यता हो वहाँ स्थान देने और दिलाने मे भगीरथ प्रयत्न करना चाहिए. मैं यह देखना चाहता हूँ कि प्रत्येक सेवा मे आर्य समाज सब से आगे खडा हो।

आर्य समाजियो, आर्यसमाजो तथा आर्य सामाजिक सस्थाओ को इस अति वृष्टि तथा बाढ से जो क्षति पहुँची हो, उसका विवरण इस सभा के कार्यालय जालन्धर मे भेजना चाहिए, जिससे स्थिति की जानकारी हो सके।

जिन आर्य समाजो मे सहायक समितियाँ बना कर सहायता का कार्य किया जा रहा है और आगे किया जाये तथा जो आर्य भाई जिस

रूप मे जो सेवा करे, उसका पूरा विवरण भी सभा कार्यालय मे भेजने का कष्ट करें।

आर्य जनता से पुनरावेदन करता हूँ कि वाढ़ पीडित जनो की सहायता के लिए अधिक से अधिक धन मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाव, गुरुदत्त भवन, होशियार पुर रोड, जालन्धर नगर को भेजे।

मैं आशा करता हूँ कि मेरे इन शब्दो का आर्य जगत् की ओर से यथोचित उत्तर मिलेगा।

वाढ पीडितो के निमित्त श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती द्वारा की गई घोषणा के आधार पर आचरण सव से प्रथम करौल बाग आर्य-समाज दिल्ली ने किया। एक सहस्र रुपये की खाद्य-सामग्री एक उद्वाही में भरकर उक्त समाज ने तुरन्त भेज दी, पाँच सौ रुपया किसी ने गुप्त-दान दिया, अन्य भी भिन्न-भिन्न स्थानों से चार सौ साठ रुपये पहुँचे। इस कार्य के लिए एक लाख रुपया एकत्रित करना था।

वाढ पीडितों को सहायता पहुँचाने के लिए सभा के समस्त अधिकारी और कमचारी-वर्ग प्रयत्नशील थे। श्री दयानन्द-उपदेशक विद्यालय के छात्र भी ग्राम-ग्राम मे परिभ्रमण कर अन्न-वस्त्र आदि का सङ्ग्रह कर रहे थे।

भारत प्रशासन ने एक सीमा-निर्धारण आयोग* नियुक्त किया था। उस ने जो अपना प्रतिवेदन प्रकाशित किया, उस के विषय में महाराज ने निम्न सम्मति दी—

"इस प्रतिवेदन मे जहाँ सम्प्रदायवाद से ऊँचा उठने का प्रयत्न किया गया है, उस के साथ ही न्याय-व्यवस्था का भी अनुसरण किया गया है। यदि जनता सम्प्रदायवाद के स्तर से उँचा उठ कर इस पतिवेदन का अध्ययन करे, तो यह समस्त प्रान्त के लिए एक हितकारक पग है।"

महर्षि दयानन्द के ऋग्वेद का अग्रेजी में अनुवाद

अंग्रेजी भाषा से प्रशिक्षित एव विदेशियो मे महर्षि दयानन्द के भाष्य की यथार्थता को प्रदर्शित करने के लिए वानप्रस्थ सन्यास-आश्रम ज्वालापुर के व्यय से साधुमण्डल के प्रधान श्री स्वामी आत्मानन्द

* स्मरण रहे कि सीमा-निर्धारण आयोग ने महापञ्जाव का अभिस्ताव किया था, जो कि अब तक भी कार्यरूप मे नहीं आ सका है, क्योंकि इस में हिमाचल प्रदेश भी सम्मिलित है।

जी महाराज ने स्वामी भूमानन्द जी साहित्य अधिस्नातक से ऋग्वेद का अंग्रेजी मे अनुवाद कराना नवम्बर सन् उन्नीस सौ पचपन प्रारम्भ कर दिया।

गुड़गाँव छावनी में आर्य-सम्मेलन के अध्यक्ष

दिसम्बर २ से ४ तक गुडगाँव छावनी में आर्य-सम्मेलन हुआ, जिस मे २४ समाजो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। सम्मेलन की अध्यक्षता श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज कर रहे थे। सम्मेलन की सफलता पर आर्य-महानुभावो ने स्वामी जी का अभिनन्दन किया।

धन सङ्ग्रहार्थ-पुनरावेदन

सभा प्रधान श्री स्वामी जी ने आर्यजनो की दक्षता का परिचय देते हुए कहा—

ऋषि ने वेद का पढ़ना-पढाना तथा सुनना-सुनाना आर्यसमाज का मुख्य कर्त्तव्य माना है। महर्षि के इसी कार्य को शिरोधार्य कर पञ्जाब की सुसङ्घटित आर्य-प्रतिनिधि सभा ने वेद-प्रचार को कार्य रूप मे परिणत करने के लिए सतर्क हो कर अपने प्रकाश मे आने के समय से ही कार्य आरम्भ किया हुआ है। वेद-प्रचार के लिए ही छोटे-बड़े अनेक पुस्तक लिखे गये। वैदिक सिद्धान्तो का सुबोध कर वेद-प्रवचनो, वेद-कथाओं तथा यज्ञो की झडी लगा दी। वेद की भावनाओ को सर्व-श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए अनेक शास्त्रार्थ किए। अनेक अवैदिक ग्रन्थो की समालोचना की। वेद के अध्यापन के लिए गुरुकुल जैसी अनेक सस्थाओ को जन्म दिया और इसी पवित्र उद्देश्य की सिद्धि के लिए बलिदान दिये।

आर्य प्रतिनिधि सभा का यह विशाल कार्य—क्रम ऋषि द्वारा बताए हुए वेद-ज्ञान के पवित्र ज्योति· को जगाए रखने के लिए, दीपक को जलाए रखने वाले, तैल के समान था।

हम ऊँचे स्वर से आर्य जनता को यह सन्देश देना चाहते है कि ऋषि के जगाये हुये, विज्ञान के पवित्र ज्योतिः का प्रकाश अब कम होता जा रहा है, आप आँखे खोलिए और मद्धम पड़ते हुए इस ज्योतिः को गम्भीर दृष्टि से देखिये। यह साधारण ज्योति· नही, आर्यसमाज का जीवन हैं।

आप को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि आप के सेवक सभा के अधिकारी-वर्ग ने इस ज्योति को सदा जगता रखने के लिए प्रयास आरम्भ कर दिया है। अब तो ईसाइयत की आँधी का प्रहार भी इस ज्योति के ऊपर निरन्तर होने लगा है।

इसी लक्ष्य को दृष्टि मे रख कर अधिकारी-वर्ग ने जनता से ५ लाख रुपये का पुनरावेदन किया है। यह विशाल धन-राशि तब ही सञ्चित हो सकेगा, जब कि सारी आर्य जनता अपना-अपना भाग आगे बढ़ कर इस कोष मे डालने की ओर अग्रसर होगी और शेष जनता से भी सङ्ग्रह कर सभा के कोष को पूर्ण करने का भगीरथ प्रयत्न करेगी।

अधिकारी वर्ग ने धन सङ्ग्रह का कार्य आरम्भ कर दिया है और जनता इस कोष में उदारता से दान दे रही है। दिल्ली मे सङ्ग्रह का कार्य निरन्तर चल रहा है। पञ्जाब के अन्य भागो मे भी यह कार्य शीघ्र आरम्भ हो जाना चाहिए। सब समाजो को विशेष कर धनी मानी वर्ग से विशेष और शेष सब से एक-एक रुपये के अर्थ-पत्र से धन-सङ्ग्रह आरम्भ कर देना चाहिए। अर्थ-पत्र यथासम्भव शीघ्र ही समाजो के समीप पहुँच जावें।

श्री दयानन्द मठ में आध्यात्मिक शिविर

रोहतक श्री दयानन्द मठ मे २६ दिसम्बर ५५ से १ जनवरी ५६ तक आध्यात्मिक शिविर लगाने का आयोजन किया गया। जिसे पूर्ण-रूपेण सफल बनाने के लिए एवं आध्यात्मिक धारायें मानव हृदय मे सञ्चारित करने के लिए श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती से अभ्यर्थना की गई। महाराज ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस शिविर से पूर्व उन्हो ने गुरुकुल काङ्गडी की समिति मे सम्मिलित होना था। किन्ही कारणो से गुरुकुल का अधिवेशन पीछे हटाना पड़ा, अतः शीघ्र ही सूचना भेजी कि मैं २६ दिसम्बर से ३० दिसम्बर तक शिविर मे रह सकूँगा। इसी के अनुसार मेरा कार्य-क्रम बना दिया जावे।

उस आध्यात्मिक शिविर में प्रतिदिन महाराज के कथा-वचनामृत से साधक-गण तृप्त होते रहे। कथा का विषय—ईश्वर, जीव, योग-साधना, आर्यो के कर्त्तव्य और प्राणायाम होता था। प्रत्येक विषय को समझाने की शैली महाराज की अपूर्व थी। श्रोता-गण आनन्द विभोर हुए अति सावधानी से चित्र-चित्रण करने की भाँति एक-एक शब्द को पकड़ कर चित्त मे बैठाते जाते थे।

उस आध्यात्मिक शिविर मे प्राणायाम सीखने का समय भी रक्खा गया था।

महाराज ने एक-एक साधक को प्राणायाम सिखाने के लिए, नियत एकान्त स्थान पर बुलाया। जब स्वामी नित्यानन्द जी का क्रम आया, तो समय समाप्त हो चुका था।

महाराज के प्रति दिन के प्रेरणा-सूत्रो से प्रेरित होकर आचार्य भगवान् देव जी ने गुरुकुल झज्जर मे प्रति वर्ष साधना-शिविर सप्ताह रखने की योजना बना कर महाराज से निवेदन किया—"स्वामी जी ! हमारा विचार है कि हम गुरुकुल झज्जर मे प्रति वर्ष आध्यात्मिक शिविर-सप्ताह मनावे, किन्तु वह आपके द्वारा ही सफल हो सकेगा। अत आप स्वीकृति दे दीजिए।" इस अभ्यर्थना को महाराज ने स्वीकार कर लिया।

शिविर पर उपस्थित श्री वैद्यराज बलवन्तसिंह जी ने बताया कि स्वामी जी महाराज का प्रति दिन प्रवचन होता था। वे मन्त्र के एक शब्द पर ही निरन्तर बोलते चले जाते थे। सम्भवत पूरे मन्त्र की व्याख्या महीना ले जाती।

प्राणायाम बतलाने के सम्बन्ध मे कहा—"जिसे नही आता था, उसे करके दिखाते थे। जिसे आता था, उसे वैसे ही करने की प्रेरणा देते थे। जिसे किसी प्रकार की रुकावट थी, उसके प्राणायाम मे सशोधन करते थे।

जो रह गया सो रह ही गया

एक दिन उपदेशक विद्यालय यमुनानगर के छात्रो से स्वामी जी महाराज कहने लगे—"प्रिय ब्रह्मचारियो ! यह यौवन अवस्था ही है, जिसमे अभ्यास आदि मे सफलता मिल सकती है। जब अवस्था ढल जाये, कमर झुक जाए, बैठने का सामर्थ्य न रहे, सब इन्द्रिय क्षीण हो जाये, पाचन शक्ति बिगड जाये, तब कुछ नही बनता। केवल रोना धोना ही शेष रह जाता है। अपनी यौवन अवस्था मे अभी तुम इन बातो को नही समझते और योगाभ्यास को गौण समझते हो; पर उस समय तो पछताने के अतिरिक्त कुछ हाथ लगेगा ही नही। इस की तुम गाँठ बाँध लो। यदि इस दिशा मे तुम प्रगति करना चाहते हो, तो अभी से सावधान होने की आवश्यकता है। जिस भी व्यक्ति ने इसे अपना लक्ष्य बनाया है, यम-नियम, सयम, ब्रह्मचर्य, सदाचार और व्यवहार उसके स्वत अनिवार्यत. पालन होने प्रारम्भ हो जाते हैं। इनके ह्रास मे इस दिशा मे यत्किञ्चित् भी प्रगति नही होती, इसीलिए इसका नाम 'असिधारा' है। पर यह भी सोच लो, इधर पग शूरवीर ही रखते

हैं। क्या तुम निर्बल बनोगे ? ब्रह्मचारी कभी निर्बल नही होता। इस दिशा मे चलने से वह पक्का ब्रह्मचारी बनता है। यह ही एक ऐसी अद्भुत सरणी है, जिस मे पड़ कर व्यक्ति अधिक से अधिक काल तक ब्रह्मचारी रहने की चेष्टा करती है। अन्त मे मैं यह कहे देता हूँ— इस दिशा मे जो बढ़ गया, सो बढ गया और जो रह गया, सो रह ही गया।"

सर्व प्रिय महात्मा

यह ही बात नही कि श्री स्वामी जी में आर्य-जनों की ही श्रद्धा-विशेष हो, यमुनानगर निवासी श्री सेठ घूँघरमल जी सनातनी होते हुए भी, अपने अतिशय वार्द्धक्य में अपने वहित्र× से आश्रम आते और श्री चरणो मे फल-मेवे एवं विभिन्न उपरोपित‡ पौधे श्रद्धा रूप मे भेंट करते थे। आश्रम मे सञ्चालित दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय के छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देते और उनके लिए वर्षा ऋतु मे आम भिजवाते थे। आश्रम के साधना-शिविर पर यज्ञ के यजमान भी बनते और यज्ञ की दक्षिणा अन्य आर्य महानुभावो की भाँति पर्याप्त देते थे।

भेंट मे प्राप्त वस्तु, श्री स्वामी जी सब व्यक्तियों मे वितरण करा देते और अपना भाग वितरक से ही प्राप्त करते थे।

दाँत कैसे टूटे ?

एक दिन उपदेशक विद्यालय के छात्रो द्वारा पूछे जाने पर महाराज ने अपने दाँत टूटने की घटना सुनाई—"मैं लाहौर स्यात्र पर सयान-पत्त्रक+ लेने के लिए द्वारी पर पहुँचा। वहाँ एक वृद्ध अपने हाथ में दस रुपये का एक अर्थ-पत्त्र÷ पकडे खडा था और पत्त्रक-विक्रेता* से पत्त्रक माँग रहा था। विक्रेता ने उसे धमकाते हुए कहा— "यहाँ खुले पैसे नहीं है, खुलवाकर लाओ, तब पत्त्रक मिलेगा।" वृद्ध ने दीनता भरे शब्दो में पुनरावेदन किया— "दाता जी! मैं कहाँ जाऊँ, कहाँ से लाऊँ, भली भाँति चला नही जाता, दृष्टि भी मन्द है। सयान आने वाला है। कृपया पत्त्रक दे दीजिये अन्यथा संयान निकल जायेगा और मैं यहाँ पड़ा-पड़ा शीत मे ठिठुर कर मर जाऊँगा।" पत्त्रक-विक्रेता ने इस बार डाट कर कहा—"खुले पैसे लाओ, मेरा सिर न खाओ।" मुझे उस वृद्ध पर दया आई और उसके हाथ से दस

×कार। ‡फलदार्माँ। +रेलवे टिकिट। ÷नोट। *टिकिट बाबू।

रुपये का अर्थ-पत्त्रक† लेकर अतिद्रुत गति से प्रतीक्षा-कोष्ठ+पार करते हुए एक हाट पर पहुँचा। मैंने अपना भी संयान-पत्त्रक‡ लेना था और संयान*, श्रीकार⊙ दे चुका था। मैं पैसे लेकर बहुत तीव्र गति से दौड़ा। अन्यमनस्कता मे प्रतीक्षाकोष्ठ के गोलचक्र में लगा तार मुझे दीख न पड़ा और उसमे मेरी चादर उलझ गई। मैं धडाम से पड़ा। शीघ्र उठकर फिर दौडा, उस वृद्ध को पैसे दिये। इतने मे क्या देखता हूँ कि मेरे वस्त्र लहूलुहान हो गए है, मुख मे अत्यन्त पीडा है और ध्यान से देखा, तो पता लगा कि सम्पूर्ण दन्त पङ्क्ति ही हिल गई है। यत. सयान, मञ्चक● पर पहुँच चुका था और मैंने रावल पिण्डी पहुँचना आवश्यक था; अत. चोट की अवेक्षा करते हुए, सयान-पत्त्रक लेने की ओर ही ध्यान आकर्षित रक्खा। संयान के श्रीकार देने पर मैं अत्यन्त भीड के मध्य किसी प्रकार कोष्ठ-- मे चढ पाया। चिकित्सा के लिए वहाँ रुके रहना मेरे लिए अशक्य था; अत. मैंने यात्रा चालू रखना ही उचित समझा। उसके पश्चात् मेरे दाँत विकृत हो गए और अब मैं सब दाँत कृत्रिम लगाए हुए हूँ।"

पर-कार्य-रत, दया से परिपूर्ण महाराज के जीवन को जयदेव, बलदेव, वेदप्रकाश, भद्रसेन, सत्यप्रिय और रामप्रसाद आदि छात्र प्रति दिन अति निकट से देखते थे कि इस अलिप्त महापुरुष के चरणों में भक्त जन कम्बल, वस्त्र और फल आदि उत्तमोत्तम वस्तु भेंट कर जाते हैं और वह उनमे कोई आस्था नही रखता। यदि किसी समय कोई विद्यार्थी वा समागत यह कह देता कि स्वामी जी! ये वस्तु तो अत्युत्तम हैं। तो उस समय महाराज का यह ही वचन होता था 'उत्तम हैं, तो ग्रहण कर लो।' अभ्यर्थी को तो अवश्य ही वह वस्तु प्रदान कर देते थे। आश्रम-शोधक नानक मेहतर को भी अनेक वार महाराज ने उत्तमोत्तम वस्त्र प्रदान किये।

यदि कोई विद्यालय से जाना चाहता था, और उसके समीप सकल वस्तु आश्रम के ही होते, तो वस्त्र पुस्तक आदि यह कह कर उसे प्रदान कर देते थे कि "विद्यार्थी है, जहाँ जायेगा, कम्बल ओढने में और पुस्तक पढने में काम आएँगे।" इस प्रकार ममता और मोह के द्वार यतिराज के जीवन मे सदा अवरुद्ध रहे।

---

†नोट। +मुसाफिर खाना। ‡रेल का टिकिट। *रेलगाड़ी।
⊙सीटी। ●प्लेट फार्म। --डब्बा।

सभा प्रधान सन्यासिराट् श्री आत्मानन्द जी ने तिथि ११-७-२०१२ तदनुसार २७-१०-१९५५ को वेद प्रचार के निमित्त एक विज्ञप्ति वैदिक साधन आश्रम, यमुनानगर (जिला अम्बाला) से प्रसारित की कि "इस समय वेद प्रचार के लिए बड़े-बड़े उत्सव रचाए जाते है। धन सङ्ग्रह होता है और व्यय हो जाता है। बहुत व्याख्याताओ के व्याख्यान हो जाते है, परन्तु उनका स्थायी प्रभाव नही होता। अधिकारी वर्ग को तो उन व्याख्यानो को सुनने का भी अवसर नही मिलता। वे काम मे उसी प्रकार उलझे रहते हैं,जिस प्रकार विवाह में। इस लिए विचार किया जाता है कि कथाओ और यज्ञों के द्वारा प्रचार किया जावे। प्रत्येक बीस समाजों के लिए एक विद्वान् प्रचारक नियत किया जावे। उसका कार्य क्षेत्र वे ही २० समाज हो। वह वारी वारी से उन मे सप्ताह-सप्ताह की कथा करे। उनके धर्म कार्यो की उन्नति का वह उत्तरदाता हो। अपने केन्द्र के सुयोग्य पुरुषो का सम्पर्क प्राप्त कर उन्हे भी प्रचार कार्य मे सहयोग देने के लिए प्रेरित कर अपना सहयोगी वनाए। जहाँ सम्भव हो कथा के साथ यज्ञ भी कराए। स्वाध्याय करे, कराए और नित्यकर्मों की सुन्दर व्यवस्था करे। उसके साथ एक भजनोपदेशक भी हो। इस प्रकार ६० समाजों मे तीन उपदेशक और तीन भजनोपदेशक हो जावेगे। उन साठ समाजों के उत्सव भी वे ही उपदेशक मिल कर कर लिया करे। वर्ष मे सब समाजों का एक सम्मिलित उत्सव भी किसी केन्द्र मे मेले रूप मे मना लिया जाया करे। इस में केन्द्र से विशेष विद्वान् भी एक दो आ जाया करें। जो समाज अपना स्वतन्त्र पुरोहित रखना चाहे, रखे; परन्तु २० समाजो का तो एक पुरोहित अवश्य हो। उपदेशक अपने केन्द्र मे नए समाज भी खोले।

कृपया उत्तर शीघ्र लिखिए कि क्या आप के समाज को यह प्रचार की प्रणाली अभीष्ट है ?

सभा प्रधान श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज, श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार उपप्रधान को साथ लेकर वेद-प्रचार निधि के लिए करनाल पहुँचे। स्वामी जी महाराज रुधिर-निपीड से पीड़ित थे। करनाल आर्यसमाज से आर्य-महापुरुषो ने स्वामी जी की सयात्रा* समारोह पूर्वक निकाली। सयात्रा मे जन-समूह इतना अधिक एकत्रित हो गया कि उसका अगला भाग संयान स्थान† पर और पिछला भाग

* जलूस। † रेलवे स्टेशन।

पण्यवीथिका ‡ पर था। इस जन-सङ्घट्ट मे श्री लाला खेमराम जी ने पर्याप्त प्रयत्न किया कि किसी प्रकार स्वामी जी महाराज के चरण-स्पर्श करलूँ, परन्तु वे अपनी भावना को अति कठिनता से ही क्रियान्वित कर सके। स्वागत के साथ स्वामी जी महाराज को, आर्य-पुरुष होली मुहल्ले के आर्यसमाज मे ले गए। उस समय पण्डित बुद्धदेव जी के अतिरिक्त प्रतिष्ठित उपदेशको में पण्डित यश.पाल जी सिद्धान्तालङ्कार और ब्रह्मचारी सत्यप्रिय जी 'व्रती' भी स्वामी जी से आ मिले। रात्रि को समाज मे भाषण हुए। जब उपदेशक महानुभावों ने सभा प्रधान जी को उनके रुधिर-निपीड के कारण व्याख्यान न देने दिया, तब उनके मुखारविन्द से निकलने वाले अमृत शब्दो के अभाव में श्रद्धालु आर्य-जन उन की ओर ताकते रहे। पश्चात् विशेष आग्रह किए जाने पर सभा प्रधान जी ने थोड़ी देर भाषण करके आर्य-महानुभावों को प्रसन्न किया। श्री स्वामी जी महाराज को उस समय दो सहस्र रुपये की थैली भेट की गई।

यति-कुल-भूषण श्री आत्मानन्द सरस्वती ने दुर्गादेवी को वान-प्रस्थ आश्रम की दीक्षा देना स्वीकार किया।

३० दिसम्बर सन् १९५५ को दीवानहाल दिल्ली मे दीक्षा का दिन निश्चित किया गया। इस निश्चित काल पर बडी श्रद्धा एवं विधि पूर्वक श्री पुरोहित रामचन्द्र जी जिज्ञासु से स्वामी जी ने संस्कार कर-वाया, जिस में आर्य जनता पर्याप्त सङ्ख्या मे उपस्थित थी। गुरुदेव जी ने दीक्षान्त समय मे जब नाम परिवर्तन के लिए पूछा, तब दुर्गा देवी जी ने निषेध कर दिया ×। उनके साथ 'शारदा' नामक बहिन जी को भी दीक्षा दी गई।

जनक की भांति आचरण

वैदिक साधन आश्रम मे पधारने पर उपदेशक विद्यालय के छात्र श्री स्वामी जी महाराज को अति गम्भीर भाव से देखते थे। श्री बल-देव सूक्ष्म निरीक्षण के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचे कि स्वामी जी महाराज ससार के महान् कर्मठ होते हुए भी विदेह जनक की भाँति पूर्ण अलिप्त है। उच्च सभाओ, उत्सवों, सस्थाओ तथा विशाल सम्मे-लनों के प्रधान पद के उच्च उत्तरदायित्व को पूरा करके जब स्वामी

---

‡ बाजार। × आर्य कन्या गुरुकुल नरेला मे आचार्य मेधाव्रत जी और स्वामी व्रतानन्द जी महाराज ने दुर्गा देवी नाम बदल कर 'ब्रह्मशक्ति' रक्खा। वे उक्त गुरुकुल की मुख्याधिष्ठात्री थी।

जी महाराज आश्रम लौटते है, तो अपने चित्त-पटल को नितान्त संस्कार-रहित और स्वच्छ रूप में ही लाया करते है। आश्रम रूप यज्ञ स्थली में आने पर ऐसा लगता है, मानों आप किसी गिरि-कन्दरा में से लम्बे असम्प्रज्ञात समाधि से उठ कर आए है और आपको संसार का कुछ भी भान नही है। भोले भाले शिशु के समान मौन-मुद्रा-सी में आश्रमस्थ उद्यान आदि वस्तुओ को निहारते हुए शनै. शनै परिभ्रमण करते रहते है। दीर्घकालीन स्वाध्याय के उपरान्त उन्हे बोध होता है कि स्वामी जी तो "जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्" इस मनूक्ति के साक्षात् करने मे लगे हुए है और इनकी महत्ता की परिभाषा मौन है। ये दिव्याचरण करते हुए भी शान्त है। निस्पृहता मे इतने आगे बढ़ चुके है कि सब कुछ करते हुए भी उन सब से मुक्त है। लोकैषणा का आकर्षण इनके दर्शन करते ही चुप-चाप खिसक जाता है।

इस त्याग मूर्ति का व्रत अति विचित्र है। यह प्राप्त हुई प्रभु-प्रसादी को निष्काम और निष्पक्ष भाव से दीन-हीन जन-निवह में वितरण करता चला जा रहा है।

उदासीन महात्मा

श्री स्वामी जी महाराज ३१-१-१९५६ ई० को आर्य समाज सदर बाजार मेरठ में विराजमान हुए। कर्ण परम्परा से श्री स्वामी जी के आगमन का समाचार पाकर प्राध्यापक श्री शिवानन्द जी नगरपालिका सदस्य श्री चरणो में उपस्थित हुए और निवेदन किया "हम आपके पितृ-ग्राम वासी है, बहुत समय से आपके दर्शनो से वञ्चित रहे। हमारी श्रद्धा आप पर निरन्तर बनी हुई है।" प्राध्यापक जी के इन वचनों से श्री महाराज की आकृति में यत्किञ्चित् भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। उन्होंने आगे कहा—"महाराज, हम आपको निमन्त्रण देना चाहते हैं। भोजन भी आपका घर पर रहेगा। कृपया स्वीकार करके अनुगृहीत कीजिए।" महाराज चल दिए। प्राध्यापक श्री शिवानन्द जी ने घर ले जाकर उन्हे अपना परिचय दिया। पर महाराज विरक्त-सदृश आत्मस्थ बने रहे। उन्होने एक छवि ले लेने की अभ्यर्थना की। महाराज कहने लगे—"प्रतिकृति में क्या रक्खा है ?" उन्होने पुन निवेदन किया, "आप तो विरक्त महात्मा हैं, आपके लिए इसका कोई मूल्य नहीं, किन्तु हमारे लिए तो, यह एक महत्त्व पूर्ण वस्तु है। महाराज ने उन्हे आगे विशेष कहने का अवसर नही दिया और खड़े होकर बोले "कहाँ खड़ा हो जाऊँ ?" उनकी इस कृपा पर श्री शिवानन्द जी ने अपनी इच्छानुसार एक रूपित्र खड़े हुए और दूसरा आसनस्थ का लिया।

वहाँ से निवृत्त होकर मेरठ सदर के समाज मे महाराज ने "ओं वाक्-वाक्" सन्ध्या के इस मन्त्राश की प्रभाव पूर्ण शब्दो मे अति रोचक व्याख्या की।

मेरठ मे माता हरदेई ने श्री चरणो मे उपस्थित होकर अपने पुत्र रणवीर का परिवाद किया। इस पर महाराज ने रणवीर को समझाते हुए कहा—"देखो बेटा! मैं अपने इन्द्रियो को अब भी वैसे ही सयत रखता हूँ, जैसे २५ वर्ष की अवस्था मे रखता था। जिसका परिणाम यह है कि इन मे अब भी उसी अवस्था के समान वेग है।"

रणवीर ने पुन ब्रह्मचर्य के विपय मे पूछा, महाराज ने कहा—"पादाङ्गुष्ठासन का अभ्यास प्रतिदिन १५ मिनट तक करो। भस्त्रिका प्राणायाम करो तथा मन को एकाग्र करने की चेष्टा करो।

रणवीर के ज्येष्ठ भ्राता बलदेवराज जिस के बच्चे उतर जाते थे, उसको बुलाकर समझाया—"देखो बेटा! श्री कृष्ण जी ने १२ वर्ष तक तप करके एक ही प्रद्युम्न पुत्र उत्पन्न किया था। उसी प्रकार तुम भी ब्रह्मचर्य का पालन करो और प्रभु का गुण गान किया करो, वे सब ठीक करेंगे।" यथा निर्दिष्ट आचरण करने पर आगे सन्तति ठीक रही।

३-२-५६ को श्री स्वामी जी महाराज आर्य समाज दीवान हाल दिल्ली में पधारे। रात्री के ८ बजे आचार्य भगवान् देव जी तथा श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती शास्त्री से हरयाणा प्रान्त के सम्बन्ध मे विचार विमर्श किया।

२६ से ३० मार्च तक साधना शिविर प्रति वर्ष की भाति वैदिक साधन आश्रम यमुना नगर मे सम्पन्न करके महाराज ने अनेक अध्यात्म जिज्ञासुओ को उपकृत किया।

वैशाख शुक्ला तृतीया रविवार स० २०१३ को महाराज गाजियाबाद पधारे। वहाँ उन्होने श्री दयानन्द आश्रम का शिलान्यास किया, तथा आर्यसमाज के सङ्गठन को अधिक बलवान् बनाया।

महाराज १२-४-१९५६ को विश्वविद्यालय गुरुकुल काङ्गड़ी के वार्षिकोत्सव पर पधारे और वहाँ वेद सम्मेलन के सभापति पद को अलङ्कृत किया ।

हरियाणा प्रान्तीय द्वितीय आर्य सम्मेलन के अध्यक्ष

यति कुलमणि श्री स्वामी जी महाराज चैत्र शुक्ला एकादशी सँव्वत् २०१३ विक्रमी २० अप्रैल सन् ५६ को रिवाड़ी मे आयोजित आर्य सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए । अपने अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए महाराज ने यजुर्वद के आठवे अध्याय के छियालीसवे मन्त्र पर गम्भीर विवेचन किया ।

इसके अतिरिक्त दो बाते अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और कही, जो वेदव्रत जी आयुर्वेदाचार्य, सिद्धान्त शिरोमणि की दैनन्दिनी से उपलब्ध हुई ।

१—यदि सब गुरुकुलो को आर्ष रीति से चलाया जाय, तो देश मे संस्कृति की धारा बह निकले ।

२—हरियाणा आर्य समाज की रीढ की हड्डी है । हरियाणा ऐसी उर्वरा भूमि है, जिसमे बोया हुआ बीज स्वय उग आता है । आर्य समाज का इसमे गौरव है कि हरियाणा उसकी पीठ पर है ।

सम्मेलन के अध्यक्ष सभा प्रधान श्री स्वामी जी के समक्ष, जनता की अपरिमित उपस्थिति में हरियाणे के नेताओ ने अपनी प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली का पजाब प्रतिनिधि सभा मे विलीनीकरण घोपित कर दिया । जिससे पुराने तथा दिल्ली प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के अधीन रहे नवीन समाजों के सम्मिलित हो जाने से आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का सङ्घटन विशाल एव दृढ हो गया ।

महाराज का आवास स्थल सम्मेलन-भूमि से दो दशिमान दूर था, वहीं पर स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ प्रभृति सन्यासी ठहराये गए थे । सम्मेलन के कार्यक्रम मे सम्मिलित होने के लिये वे सब साथ ही प्रस्थान करते थे, परन्तु महाराज अपनी स्वाभाविक गति मे भी उन सबसे आगे निकल जाते थे और इतने मार्ग मे वे दो-तीन बार खड़े होकर पृष्ठानुगामियो को साथ लेते थे ।

* * *

स्वामी जी का भोजन सयम

ज्वर-निपीडित होते हुए भी स्वामी जी महाराज इन दिनो ग्रीष्म ऋतु मे कच्ची लौकी और दुग्ध ही लिया करते थे । भोजन सर्वथा

वर्जित किया हुआ था। लौकी के छोटे-छोटे टुकडे करके धीरे-धीरे कृत्रिम दाँतो से चबाते रहते थे। उस कच्ची लौकी मे नमक मीठा आदि कुछ भी नही मिलाते थे। इस प्रकार एक मास तक यही क्रम रक्खा।

पृथ्वी का धारण और सुख की प्राप्ति

अगस्त २१ सन् १९५६ ई० को श्री स्वामी जी महाराज तृतीय वार गुरुकुल झज्जर पधारे। गुरुकुल के आचार्य ने उन्हे आयुर्वेद महाविद्यालय के उद्घाटनार्थ आहूत किया था। उस समय श्री महाराज ने निम्न मन्त्र का व्याख्यान किया।

सत्यं बृहद्दतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ पृथ्वी धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुलोक पृथिवी न. कृणोतु॥
(अथर्व० १२-१-१)

इस मन्त्र के व्याख्यान मे गुरुकुल के अधिकारियो और छात्र समूह को बतलाया कि जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, इस पृथ्वी ने जितने भी प्राणी इस पर जन्म धारण कर चुके हैं, अब कर रहे है वा आगे करेंगे, उन सबकी रक्षा की है, कर रही है और करेगी। हम सब भिन्न-भिन्न मार्गों से चलकर जिस ब्रह्म-लोक के दर्शन करना चाहते हैं। उस लोक को भी यह ही देने वाली है। इस पर उत्पन्न अन्न से ही हम अपने शरीरो का निर्माण कर उत्तम साधनो से ईश्वर-दर्शन कर सकते हैं। जब बात ऐसी है तो हमे अपने प्राणार्पण से भी इस मातृभूमि पृथ्वी की रक्षा दुराचारी, नास्तिक, कपटी मनुष्यो से करनी चाहिए। वे इस पृथ्वी की शक्ति को नष्ट करते हैं। इसे निरन्तर अपनी शक्ति मे स्थिर रखने के उपाय हैं—सत्य का पालन, ईश्वर की भक्ति, विज्ञान का सम्पादन, चारो आश्रमो की दीक्षा का अनुष्ठान, तपस्या का जीवन, वेद का पठन पाठन, और अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधान्त यागो का स्वीकरण। हम चाहते तो हैं—ब्रह्म का सुख। भला वह सुख इन व्रतो के अनुष्ठान के विना कैसे उपलब्ध हो सकता है और इनके अनुष्ठान की आधार भूमि है गुरुकुल। अत. जीवन का निर्माण करने वाले छात्रो को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। मैं आज विशेषतः आयुर्वेद के उन छात्रो को इस ओर अग्रसर करना चाहता हूँ, जिनका उत्तरदायित्व प्राणीमात्र को सुखी रखने मे है, न कि द्रव्य-सञ्चय मे। आयुर्वेद की शिक्षा के पश्चात् आपके सम्पर्क मे आने वाली व्यक्तियो को आप पूर्वोक्त सिद्धान्त बताकर उसके अनुष्ठान से भविष्यत् मे उन्हे अनेक कष्टो से बचा सकते है और उत्तरोत्तर उन्हे मोक्षपदगामी भी बना सकते है।

पण्डित धर्मदेव जी विद्यालङ्कार, विद्यामार्तण्ड ने स्वामी जी से पत्र द्वारा पूछा—"संस्कार विधि मे नामकरण संस्कार के प्रसङ्ग पर महर्षि दयानन्द ने जन्म, तिथि और उसका देवता, नक्षत्र और उसका देवता इन चार से इनके साथ चतुर्थी विभक्ति लगाकर आहु-तियों के प्रक्षेप का विधान किया है, इन देवताओ का तिथियो और नक्षत्रों के साथ क्या सम्बन्ध है ?" स्वामी जी ने विस्तार पूर्वक सबके उत्तर लिख भेजे।

प्राणायाम का चमत्कार

इन्ही दिनो अत्यन्त रुग्णता की अवस्था मे स्वामी जी महाराज दीवानचन्द नर्सिंग होम नई दिल्ली मे प्रविष्ट हुए। उनके शिष्य श्री गणेशचन्द्र देव जी भाई पटेल परिचर्या में साथ थे। "उनसे एक दिन स्वामी जी ने कहा—"जैसे मैंने तुझे प्राणायाम सिखाया हुआ है, ठीक उसी प्रकार गोल डाकखाने के निकटवर्ती राजकीय प्रासाद मे निवास करने वाले श्री पूर्णचन्द्र जी वास्तुकला शास्त्री को भी सिखाया हुआ है। उन्होने अपने पूर्ण प्रयत्न से उसमें पर्याप्त सफलता प्राप्त की हुई है। मैं उन्हे कहूँगा कि वे तुझे एक दिन प्राणायाम करके दिखावे, तब तुझे इस प्राणायाम मे पूर्वापेक्षा द्विगुणित श्रद्धा उत्पन्न हो जावेगी। और तू ध्यान मे चिरकाल तक बैठा रह सकेगा।"

वह ही हुआ—एक दिन श्री पूर्णचन्द्र जी, महाराज के चरणो मे आए और उन्होने निर्वस्त्र होकर प्राणायाम दिखाना आरम्भ कर दिया। प्राणायाम मे उनकी प्रगति को देखकर गणेशचन्द्र जी आश्चर्य से भरपूर हो गए। जब वे प्राणायाम करते थे, तब ऐसा प्रतीत होता था, मानो रोम-रोम से प्राणो का सञ्चार हो चला है। तत्काल उन्हे यह भी अनुभव हो गया कि अवश्य ही इनकी इस प्राणायाम-विधि से ध्यान मे अति तीव्र गति होगी।

प्राणायाम प्रदर्शन के पश्चात् वे श्रान्त, शान्त, निश्चित बैठे ही थे कि मूत्रादि परीक्षण के एक विशेषज्ञ श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ आए। उन्होने आते ही एक दृष्टि में जब श्री पूर्णचन्द्र जी को केवल कौपीन मे देखा, तो पूछ बैठे—"आप यह क्या कर रहे थे ?" उन्होंने उत्तर मे कहा,—"महाराज के समक्ष मनोरञ्जन कर रहा था।" इसके पश्चात् स्वामी जी ने विशेषज्ञ जी को यथार्थता से अवगत किया। विशेषज्ञ जी बोले, "भगवन् ! मुझे इन बातो मे तनिक भी श्रद्धा नही है। महाराज। मुझे आप, ऐसी युक्ति बताइये, जिससे मैं श्रद्धालु बन सकूं।"

इस बात को सुनकर स्वामी जी हंस पडे और श्री पूर्णचन्द्र जी की ओर देखने लगे ।

श्री पूर्ण चन्द्र जी ने कहा, "महाविज्ञ महोदय ! आप मूत्रेन्द्रिय सम्बन्धी तन्तुओं का ज्ञान रखते ही हैं। कृपया इधर आइये और कौपीन मे हाथ डाल कर देखिए कि मेरा मूत्रेन्द्रिय है वा नही ?" महाविज्ञ तो इन बातों में अभ्यस्त होते ही हैं, उन्हे सङ्कोच कैसा ! वे तत्काल अपनी आसन्दिका से उठे और उनके मूत्रेन्द्रिय को टटोलने लगे; किन्तु उन्हे कही मूत्रेन्द्रिय का पता न चला। वे विस्मय पूर्ण भावो मे बोले, "यहाँ तो कुछ नही है।" पूर्णचन्द्र जी ने कहा—"महाविज्ञ महोदय ! आप भ्रान्त न हूजिए, मेरे परिवार मे मेरे अपने बच्चे भी हैं। कदाचित् आप ऐसा न समझ बैठे कि ये मूत्रेन्द्रिय-विहीन हैं; अत आप को निर्भ्रान्त कर देना आवश्यक समझता हूँ। कृपया पुनः इधर आने का कष्ट कीजिए और अब देखिये कि आप किस परिणाम पर हैं।" उनके इस कथन पर महाविज्ञ ने पुन. देखा, तो उनका उपस्थ उपस्थित था। तब महाविज्ञ महोदय कौतुक पूर्ण शब्दो में बोले, "यहाँ कोई ऐसा स्थान ही नही है, जहाँ पर मूत्रेन्द्रिय को विलुप्त किया जा सके। कृपया यह तो बतलावे, आपने यह सब कैसे किया ?" पूर्णचन्द्र जी ने प्रतिवचन मे कहा, "यह सब स्वामी जी महाराज की कृपा का प्रसाद है।"

यह बोध होते ही विशेषज्ञ महोदय ने स्वामी जी से निवेदन किया, "भगवन् ! मुझे प्रतिदिन सन्ध्या-मन्त्रो के अर्थ बता दिया कीजिए।" महाराज को क्या देर थी, उन्होने उसी समय सन्ध्या के सकल मन्त्रो का अर्थ सङ्क्षेप मे वर्णन कर दिया।

कुछ दिनो के पश्चात् श्री महाविज्ञ पुन. स्वामी जी के चरणो मे आए और निवेदन करने लगे, "महाराज ! अब मैं श्रद्धा पूर्वक सन्ध्या करता हूँ और श्री पूर्णचन्द जी के गृह पर भी जाया करता हूँ। अद्य पर्यन्त मुझे विदेशीय लेखो पर आस्था थी, किन्तु अब स्पष्ट हो गया है कि वास्तविक तत्त्व यहाँ स्वदेश मे ही है और एकाग्रता सम्पादन करने का क्या विधि है, यह भी यही सीखा जा सकता है।"

जैसे को तैसे

श्री स्वामी जी ने गणेशचन्द्र जी को एक पुरानी घटना सुनाई कि "मैं एक वार वस्त्रो की एक भारी गठरी लेकर रावलपिण्डी सयान-स्थात्र पर उतरा। वे सब वस्त्र गुरुकुल के ब्रह्मचारियो के लिये थे।

उन्हे गुरुकुल ले जाना था। मैंने ताँगे वाले से पूछा—"गुरुकुल तक जाने का क्या लोगे ?" उसने कहा—"पांच रुपये" मैंने ताँगे में गठरी रक्खी और स्वयं भी बैठ गया। ताँगे वाला वोला—"एक आध सवारी और ढूँढ लूँ" मैंने कहा "ढूँढ लो"। इतने मे क्या हुआ कि उस ताँगे वाले को पूरे ताँगे का भाडा दश रुपये देने वाला मिल गया। लोभ बुरा होता है, वह मुझ से वोला—"आप उतर जाइये, मुझे, गुरुकुल नही जाना है" मैंने पूछा "क्यो ?" उसने कहा—"मेरी इच्छा मुझे १० रुपये वाला यात्री मिल रहा है।" मैंने उससे तुरन्त कहा—"मैं तुम्हे ११ रूपये दूँगा, अब तो चलोगे वा नही ?" उसने उत्तर दिया—'हाँ अब अवश्य चलूँगा," वह ताँगे पर वैठ कर घोडे को साधने लगा। मैंने कहा—"अभी नही थोडी देर ठहरो।" मैंने उसकी धूर्त्तता का समुचित उत्तर देना था। जब सयान के सब यात्री स्थात्र से नगर को चले जा चुके, तब मैं अपनी वोझल गठरी ताँगे से उठा, अपने कन्धे पर रख पैदल चल पडा। ताँगे वाला वोला, "कहाँ जा रहे हो ?" मैंने कहा "गुरुकुल"। "ताँगे मे क्यो नही बैठते ?" "मेरी इच्छा, मुझे नही बैठना।" ताँगे वाला समझ गया कि १० रुपये के लोभ मे मैंने इन्हें उतरने के लिये कहा था। यात्रियो के अभाव में अब मुझे पाँच भी नही मिलेगे। वह म्लान मुख हो गया। मैंने अब उसमे वैठना नही था, अतः आगे आकर गुरुकुल पहुँचने का दूसरा प्रवन्ध कर लिया।

स्वामी जो ने आगे सुनाया—"मैं एक वार प्रथम श्रेणी के सयान कोष्ठ मे यात्रा कर रहा था। रात्री को मैं ऊपर शयन-स्थान पर जा सोया। प्रगाढ निद्रा आने पर मुख खुल गया। जब जागा, तो पता लगा कि मेरे कृत्रिम दाँत नही है। मैं घबराया। सम्भव है, नीद में समस्त निम्न दन्त पङ्क्ति निगल गया हूँ। मैं पेट को दवा-दवा कर देखने लगा। सोच रहा था - सम्भव है, अब उदर की शल्यक्रिया करानी पडेगी। दूसरे मुझे यह भी विचार आया कि इतना वडा वस्तु कण्ठ के छोटे छिद्र मे से कैसे जा सकता है। जब विस्तर पर खोजने से वे कही भी दृष्टिगोचर नही हुए, तब मुझे निगलने वाली बात ही सत्य प्रतीत होने लगी। इतने मे नीचे वैठी एक देवी ने कहा," "बाबा जी ! आपके दाँत नीचे गिर गए थे, लीजिए।" मैं इस घटना से तब मन ही मन बहुत हस रहा था।"

दीवान नर्सिग होम मे स्वास्थ्य-लाभ करने के पश्चात् यतिवर्य १९ ११. ५८ को यमुनानगर आ विराजे।

● ● ●

आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

सत्याग्रह प्रकाश

आगामी पङ्क्तियो मे आने वाले विषय को हृदयङ्गम करने के लिए गम्भीर विवेचन अनिवार्य है। अत. अध्येतृवर्ग की सुविधा के लिए प्रत्येक बात का उल्लेख क्रमशः करते है, जिससे यह स्पष्ट लक्षित हो जाये कि पञ्जाब मे हिन्दी सत्याग्रह की पृष्ठ भूमि क्या थी। सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति दिल्ली के प्रधान आर्य शिरोमणि श्री घनश्यामसिह गुप्त के शब्दो मे सर्व प्रथम इस विषय को इस प्रकार पढ़िए—

सच्चर ज्ञानी सूत्र

सच्चर ज्ञानी सूत्र जो साधारणतया सच्चर सूत्र कहलाता है, इसका सबसे आपत्ति-जनक भाग वह है, जो हरयाणा तथा हिन्दी क्षेत्र के अन्य भागो के सभी विद्यार्थियो के लिए गुरुमुखी लिपि मे लिखित पञ्जाबी के अध्ययन को अनिवार्य ठहराता है। इस सूत्र की उत्पत्ति का इतिहास काला है। मेरी सूचना यह है कि काग्रेस विधान सभा मण्डली मे श्री भीमसेन सच्चर और श्री गोपीचन्द भार्गव के मध्य सङ्घर्ष था और दोनो की शक्ति लगभग समान थी। ज्ञानी करतार-सिह के हाथ मे तुला थी। दोनो (भीमसेन सच्चर तथा गोपीचन्द भार्गव) ने उन पर डोरे डाले। ज्ञानी करतारसिह जी ने अपना काम अतिशय चतुरता से निकाला और दोनो से पृथक-पृथक मिलकर तथा अपनी सहायता का विश्वास देकर दोनो को सच्चर सूत्र स्वीकार करने के लिए प्रसन्न कर लिया। सत्य यह है कि यद्यपि इस सूत्र का नाम सच्चर सूत्र है तथापि ज्ञानी करतारसिह इसके जन्मदाता है। वह सच्चर सूत्र यह है:—

सच्चर सूत्र

१—पूर्वी पञ्जाब मे दो भाषाये पञ्जाबी और हिन्दी बोली जाती हैं। पञ्जाबी भाषा भाषी क्षेत्र मे पञ्जाबी क्षेत्रीय भाषा होगी और हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र में हिन्दी क्षेत्रीय भाषा होगी। प्रान्तीय शासन विशेषज्ञो के परामर्श के अनुसार क्षेत्रो का निर्धारण करेगा।

पञ्जाबी का अर्थ गुरुमुखी लिपि मे लिखित पञ्जाबी होगा और हिन्दी का अर्थ देवनागरी लिपि मे लिखित हिन्दी होगा।

२—पञ्जाबी भाषा क्षेत्र की समस्त पाठशालाओं मे उच्च विद्यालय तक शिक्षा का माध्यम पञ्जाबी होगा। प्राथमिक विद्यालय की अन्तिम कक्षा से लेकर उच्च विद्यालय तक हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप मे पढ़ायी जायेगी और कन्या पाठशालाओ में केवल माध्यमिक श्रेणियों मे।

ऐसी अवस्थाये भी सम्मुख आयेगी जब कि विद्यार्थी के माता-पिता वा अभिभावक उसे हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दिलाने की इच्छा करें, इस आधार पर कि हिन्दी उसकी मातृ-भाषा है, क्षेत्रीय भाषा नही है। ऐसी स्थिति मे माता-पिता वा अभिभावक की घोषणा पर आपत्ति किये विना प्राथमिक विद्यालय की श्रेणियो मे हिन्दी में शिक्षण की व्यवस्था की जायेगी, परन्तु ऐसे विद्यार्थियो की सङ्ख्या पाठशाला मे ८० अथवा प्रत्येक कक्षा मे १० से कम न होनी चाहिये। इस व्यवस्था के अनुसार प्राथमिक श्रेणियो मे विद्यार्थियो के लिये शिक्षा का माध्यम हिन्दी होगा, परन्तु कुमारो के विद्यालयो मे चौथी श्रेणी से और कुमारियो के विद्यालयो में छठी श्रेणी से क्षेत्रीय भाषा अनिवार्य विषय के रूप मे पढाई जायेगी। माध्यमिक श्रेणियो में भी इन विद्यार्थियो की शिक्षा का माध्यम हिन्दी रहेगा, यदि प्रशासन, नगरपालिका वा मण्डल परिषद् के विद्यालयो के समस्त विद्यार्थियो का $\frac{1}{3}$ भाग हिन्दी के माध्यम को प्रार्थना करे। प्रशासन, राजकीय सहायता प्राप्त करने वाले विद्यालयो मे भी हिन्दी के माध्यम का प्रबन्ध करेगा, यदि विद्यालय के $\frac{1}{3}$ विद्यार्थी ऐसा चाहेंगे और यदि क्षेत्र मे हिन्दी शिक्षण की पर्याप्त सुविधायें न होंगी। $\frac{1}{3}$ की सविदा की पूर्ति न होने की अवस्था में माध्यमिक कक्षाओ मे क्षेत्रीय भाषा के माध्यम मे पढना सुगम बनाने के लिये हिन्दी भाषा भाषी विद्यार्थियों को पहले पहले वर्षो में

प्रश्नो के उत्तर हिन्दी मे लिखने की छूट दे दी जावेगी, परन्तु माध्यमिक श्रेणियो मे क्षेत्रीय भाषा अनिवार्य विषय रहेगा।

३—हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र की समस्त पाठशालाओ मे उच्च विद्यालय तक शिक्षा का माध्यम हिन्दी होगा और प्राथमिक विद्यालय की अन्तिम कक्षा से लेकर उच्च विद्यालय तक पञ्जाबी अनिवार्य विषय के रूप में पढायी जायगी, कन्या पाठशालाओ में केवल माध्यमिक श्रेणियो मे।

ऐसी अवस्थाये भी सम्मुख आयेगी जब कि विद्यार्थी के माता-पिता वा अभिभावक उसको पञ्जाबी के माध्यम से शिक्षा दिलाने की इच्छा करें, इस आधार फर कि पञ्जाबी उसकी मातृ-भाषा है और क्षेत्रीय भाषा नही है। ऐसी स्थिति में माता-पिता वा अभिभावक की घोषणा पर आपत्ति किये विना प्राथमिक श्रेणियो मे पञ्जाबी भाषा मे शिक्षण की व्यवस्था की जायेगी, परन्तु ऐसे विद्यार्थियो की सङ्ख्या पाठशाला मे ४० और प्रत्येक श्रेणी मे १० से कम न होनी चाहिये। इस व्यवस्था के अनुसार प्राथमिक श्रेणियो मे विद्यार्थियो के लिये शिक्षा का माध्यम पञ्जाबी भाषा होगी, परन्तु कुमारो के विद्यालयो मे चौथी श्रेणी से और कन्याओ के विद्यालयो मे छठी श्रेणी से क्षेत्रीय भाषा अनिवार्य विषय के रूप मे पढाई जायेगी। माध्यमिक श्रेणियो मे भी इन विद्यार्थियो की शिक्षा का माध्यम पञ्जाबी रहेगा, यदि प्रशासन, नगरपालिका, वा मण्डल परिषद के विद्यालय के समस्त विद्यार्थियो का $\frac{1}{3}$ भाग पञ्जाबी के माध्यम की प्रार्थना करे। प्रशासन राजकीय सहायता प्राप्त करने वाले विद्यालयो मे भी पञ्जाबी के माध्यम का प्रबन्ध करेगा, यदि स्कूल के $\frac{1}{3}$ विद्यार्थी ऐसा चाहेगे और उस क्षेत्र मे पञ्जाबी के शिक्षा की पर्याप्त सुविधा न होगी। $\frac{1}{3}$ की सविदा की पूर्ति न होने की अवस्था मे माध्यमिक श्रेणियो में क्षेत्रीय भाषा का पढना सुगम बनाने के लिये पञ्जाबी भाषा भाषी विद्यार्थियो को पहले पहले वर्षों मे प्रश्नो के उत्तर पञ्जाबी भाषा मे लिखने की छूट दे दी जायेगी। परन्तु माध्यमिक श्रेणियो मे क्षेत्रीय भाषा अनिवार्य विषय रहेगा।

४—क्षेत्रीय भाषा से भिन्न भाषा में शिक्षण की माँग से उत्पन्न होने वाली अप्रत्याशित स्थितियो के सुधार के लिये प्रशासन अन्य आवश्यक निर्देश प्रसारित कर सकता है।

५—प्रशासन द्वारा स्वीकृत परन्तु सहायता प्राप्त करने वाले विद्यालयो मे शिक्षा के माध्यम को उसकी प्रबन्ध समिति निश्चित करेगी। किसी दूसरी भाषा में शिक्षा के माध्यम की व्यवस्था करना उनके लिये अनिवार्य न होगा, परन्तु अवस्थानुसार दूसरी भाषा के रूप में पञ्जावी वा हिन्दी की शिक्षा का प्रबन्ध करना अनिवार्य होगा।

६—वर्त्तमान में अंग्रेजी और उर्दू शासन और न्यायालय की भाषाओं के रूप में व्यवहृत होती रहेगी। अन्ताराष्ट्रिय भारतीय कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की ५-८-१९४९ की बैठक में पारित प्रस्ताव में निहित सिद्धान्तो के प्रकाश में क्रमशः इन भाषाओं का स्थान हिन्दी और पञ्जावी लेती रहेगी।

(निश्चय की प्रतिलिपि संलग्न है)

७—ये प्रस्ताव उन विद्यार्थियों पर लागू न होंगे, जिनकी मातृ-भाषा न तो पञ्जावी है और न हिन्दी। इस प्रकार के विद्यार्थियो की मातृ-भाषा मे शिक्षा के लिये समुचित प्रबन्ध किया जायगा, यदि किसी स्थान पर इस प्रकार का प्रबन्ध सम्भव बनाने के लिये उनकी सङ्ख्या पर्याप्त हो।

	ह०	भीमसेन सच्चर
नई दिल्ली	ह०	गोपीचन्द भार्गव
१-१०-१९४९	ह०	उज्ज्वलसिंह
	ह०	करतारसिंह

पञ्जाब के, विशेषतः हरियाणा के हिन्दुओं ने इस सूत्र को कभी नही माना। इसके विरोध में समाचार पत्रों में लेख छपे, विरोध-सभाएँ हुई और सहस्रो व्यक्तियो के हस्ताक्षर कराकर आवेदन पत्र भेजे गये। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्ही कारणो से यह सूत्र न तो विधान सभा में लाया गया और न कांग्रेस विधान सभायी दल के समक्ष ही रक्खा गया। इस सूत्र पर पञ्जाब के मन्त्री मण्डल में भी विचार नही हुआ। इस प्रकार यह न्यूनाधिक रूप में केवल प्रशासनिक योजना थी, जिसे लागू करने के लिये इधर-उधर मे प्रयत्न किये जाते रहे।

२९ अगस्त १९५५ को पञ्जाब के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्रीयुत भीमसेन सच्चर ने पञ्जाब की भाषा समस्या और सच्चर सूत्र में

सम्बन्ध में चण्डीगढ सचिवालय मे आयोजित पत्र-प्रतिनिधि सम्मेलन मे अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया था—

"वे (राज्य प्रशासन) विविध क्षेत्रों से सूचनाये एकत्र करने मे लगे हैं, और ज्यो ही पूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हो जायेगी, वे विधान सभा के सम्मुख एक विधेयक प्रस्तुत करेगे। इस समय तक उन्होने (राज्य-प्रशासन ने) इन विषयो मे कोई निश्चय नही किया है, क्योकि इस विषय मे अभी तक कई बाते विचारणीय है।

न्यायालयो की भाषा के प्रश्न का निर्णय उच्च न्यायालय के परामर्श से होना है। परिषद् और विधान सभा के अध्यक्षो के परामर्श से विधान सभा की भाषा नियत की जानी है। सचिवालयो और विभागो के अध्यक्षो के कार्यालयो मे किस भाषा मे काम हुआ करेगा, इसका भी अन्तिम निर्णय होना है।"

"वे (राज्य प्रशासन) समस्या की गहरी छान बीन कर रहे हैं और अन्त मे उन्हे आवश्यक विधेयको को पारित कराने के लिये विधान सभा मे जाना होगा।"

"इस प्रश्न का निर्णय भाषा आयोग भी करेगा और विधान सभा को आयोग के अभिस्ताओ को भी स्वीकार करने की छूट होगी।"

भाषा का प्रश्न विधान सभा के सम्मुख कब रखा जायगा, इस विषय मे सच्चर महोदय निश्चित समय का सङ्केत न कर सके।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सच्चर सूत्र की कोई सैद्धान्तिक वा वैधानिक स्थिति नही है।

पेप्सू व्यवस्था

मैं पेप्सू समस्या की वास्तविक स्थिति जानना चाहता था परन्तु मुझे कोई ऐसा विपत्र प्राप्त न हो सका, जिसमे इस योजना का उल्लेख हो। मेरी सूचना यह है कि इस प्रकार की व्यवस्था कही पर भी लेखबद्ध नही है। इस व्यवस्था के द्वारा सम्भवत उन कुछ वस्तुओ को बनाये रक्खा गया है, जो पेप्सू के पुराने शासन में प्रचलित थी। इस व्यवस्था की एक अत्यन्त आपत्तिजनक बात यह है कि इसमे बच्चे के माता-पिता वा अभिभावक को प्राथमिक विभाग मे भी उसकी शिक्षा का माध्यम चुनने का अधिकार नही है। पेप्सू के बहुत बडे भाग मे

बच्चे को अपनी शिक्षा पञ्जाबी मे प्रारम्भ करनी होती है, चाहे उसके माता-पिता की इच्छा हिन्दी पढाने की ही हो, और चाहे विद्यालय में उनकी सङ्ख्या पर्याप्त भी हो (अर्थात् कक्षा मे १० और पाठशाला मे ४० से अधिक छात्र हों।) सङ्क्षेप में वहाँ हिन्दी पर बहुत बडा प्रतिबन्ध है।

पुर्ननिर्मित पञ्जाब मे हिन्दी और पञ्जाबी भाषा भाषी समुदायों का प्रतिशत क्रमश· ६६ और ३४ है। इस पुर्ननिर्माण के कारण पञ्जाब द्विभाषी राज्य उद्घोषित किया गया है और संविधान "सशोधन अधिनियम सं० ७" द्वारा संशोधित सविधान की धारा ३७१ के अधीन राष्ट्रपति के आदेशानुसार पञ्जाब के २ क्षेत्र अभी कुछ दिन हुए निर्धारित हुए हैं। पञ्जाबी क्षेत्र में होशियारपुर, जालन्धर, लुधियाना, फिरोजपुर, अमृतसर, गुरुदासपुर, पटियाला, भटिण्डा, कपूरथला, और सगरूर तथा अम्बाला मण्डलों के कुछ भाग रखे गए हैं। हिन्दी क्षेत्र में शिमला, कांगड़ा, हिसार, रोहतक, गुडगांव, करनाल, महेन्द्रगढ, कोहिस्तान, और अम्बाला तथा सगरूर मण्डलो के कुछ भाग सम्मिलित किये गये हैं। इन दोनो क्षेत्रो की जनसङ्ख्या के आंकडे इस प्रकार हैं—

(हिन्दी क्षेत्र)

मण्डल	कुल जनसङ्ख्या	हिन्दी भाषी समुदाय की जनसङ्ख्या	पञ्जाबी भाषी समुदाय की जनसङ्ख्या
१ शिमला	४६१५०	३८७३३	७४१७
२ कागडा	९२६८७७	९०८०७६	१८४०१
३ हिसार	१०४५६४५	९६५२५१	८०३९४
४ रोहतक	११२२०४६	१११४१३९	७६०७
५ गुडगांव	९६७६६४	९६१३५४	६३१०
६ करनाल	१०७९३७९	९८२९२१	९३४५८
७ महेन्द्रगढ	४४३०७४	४४०४५६	२६१५
८ कोहिस्तान	१४७४०३	१३४१९७	१३२०६
९ अम्वाला की तीन तहसीलें	२६७८४७ २१०३७२ १२२९०६	ये आंकडे उपलब्ध नहीं है।	
१० संगरूर की दो तहसीलें	१६९६४४ १६९९८४	ये आंकडे उपलब्ध नहीं हैं।	

(पञ्जाबी क्षेत्र)

मण्डल	कुल जनसङ्ख्या	हिन्दी भाषी समुदाय	पञ्जाबी भाषी समुदाय
१ होशियारपुर	१०८५६२४	८०१३०४	२८४३२०
२ जालन्धर	१००८७६६	४३९२७९	५६९४८७
३ लुधियाना	८०६७७९	३०९३६०	४९७४१९
४ फिरोजपुर	१३०८२३७	५२८२१३	७८००२४
५ अमृतसर	१२७०३२०	३७३०११	८९७३०९
६ गुरुदासपुर	७६१७८२	४०७१०१	३५४६८१
७ पटियाला	५२४२६९	२७७३३४	२४६९३५
८ फतहगढ साहब	२३७३९७	८२६८३	१५४७१४
९ भटिण्डा	६६६८०९	१४५७६४	५२१०४५
१० कपूरथला	२९५०७१	१०७५०३	१८७५६८
११ अम्बाला की दो तहसीलें			
(१) रोपड़	१३९२०२	आँकड़े उपलब्ध नही हैं।	
(२) खरड़ (भाग)	१७३४०७	” ” ”	
१२ संगरूर			
(१) बरनाला	५३६७२८	१५५९१७	३८०८११
(२) सगरूर	१२७२११	आँकड़े प्राप्त नही है।	
(३) सुनाम	१७६०९४	” ” ”	

पिछले सन्दर्भों मे दिये गये कारणो से मैं सिक्ख वास स्थान को पञ्जाबी भाषाभाषी और असिक्ख हिन्दू वासस्थान को हिन्दी भाषा-भाषी मानता हूँ।

उपर्युक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि हिन्दी क्षेत्र मे ९६ प्रतिशत लोग हिन्दी और ४ प्रतिशत से कम पंजाबी भाषा-भाषी वर्ग मे आते हैं, जबकि पञ्जाबी क्षेत्र मे पञ्जाबी भाषा-भाषी वर्ग की संङ्ख्या ५५ प्रतिशत के लगभग और हिन्दी भाषा-भाषी वर्ग की ४५ प्रतिशत के लगभग है।

यह भी उल्लेखनीय बात है कि हिन्दी क्षेत्र में एक भी मण्डल ऐसा नही है, जहाँ पञ्जाबी भाषा-भाषी लोगो की सङ्ख्या विशेष उल्लेख-नीय हो। विपरीत इसके पञ्जाबी क्षेत्र में भटिण्डा को छोड़कर प्रायः प्रत्येक मण्डल मे हिन्दी भाषा-भाषियों की सङ्ख्या ३० प्रतिशत से अधिक

है। होशियारपुर मण्डल मे तो कुल जनसङ्ख्या का ७२ प्रतिशत से अधिक भाग हिन्दी भापा-भाषी है।

द्विभाषी राज्य से क्या अभिप्राय और उसकी पूर्ति के लिये क्या वाचनिकाएँ हैं, यह राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रतिवेदन की ७२वीं कण्डिका से (जिस से अच्छा कोई और प्रमाण नहीं हो सकता) स्पष्ट हो जाता है।

"जिस राज्य में समस्त जनसङ्ख्या का ७० प्रतिशत वा उससे अधिक भाग एक भाषा भाषी हो, केवल वह राज्य ही एक भाषा-भाषी राज्य स्वीकार किया जाना चाहिये और जिस राज्य में समस्त जन सङ्ख्या का ३० प्रतिशत वा उससे अधिक भाग अल्प सङ्ख्यकों का हो वह द्विभाषी माना जाना चाहिए।"

एक और महत्त्वपूर्ण वात विचारणीय है। पञ्जाब के बहुत विशाल क्षेत्र में जिसको हरयाणा कहते हैं और जिसमें रोहतक, हिसार, करनाल, गुड़गाँव, और अम्बाला के मण्डल है, ५ प्रतिशतक से अधिक लोग वोल चाल में भी पञ्जावी भाषा का प्रयोग नही करते। शेष ९५ प्रतिशतक हिन्दी वोली वोलते हैं।

इस प्रकार हिन्दी क्षेत्र को विशुद्ध एक भाषा-भापी कह सकते हैं। परन्तु पञ्जावी क्षेत्र को ऐसा नही कह सकते। यह क्षेत्र निश्चित रूप में द्विभापी क्षेत्र है। जनसङ्ख्या पर आधारित क्षेत्रों के निर्माण के विपय में इतना कहना ही पर्याप्त है।

तात्पर्य यह है कि पञ्जावी क्षेत्र में हिन्दी की तुलना, हिन्दी क्षेत्र मे पञ्जावी भापा के साथ नही की जा सकती। यह स्पष्टतः आवश्यक है कि पञ्जावी क्षेत्र मे मण्डल स्तर और उसके नीचे पञ्जावी और हिन्दी दोनो ही राज्य भापाएँ स्वीकृत होनी चाहियें। यह भी ध्यान देने योग्य वात है कि हिन्दी की दोहरी स्थिति है। एक क्षेत्रीय भापा की और दूसरी राष्ट्र भाषा की।

पञ्जाव में भापा की स्थिति

विभाजन से पूर्व पञ्जाव में शिक्षा और प्रशासन के क्षेत्र मे उर्दू और अंग्रेजी का प्रावान्य था। उस समय भी आर्य समाज ने हिन्दी को अपनाकर अपनी विविध मान्यता प्राप्त समस्त शिक्षा संस्थाओं मे हिन्दी को महत्त्व दिया।

इसके अतिरिक्त आर्य समाज ने अनेक गुरुकुल स्थापित किये, जिनमें आंगल-महाविद्यालय तक की शिक्षा का माध्यम हिन्दी रहा। यद्यपि ऐसा करने से वे राजकीय मान्यता और सहायता से वञ्चित रहे। आज हम उन कठिनाईयों तथा त्याग का अनुमान सुगमता से नही लगा सकते जिनमें से हिन्दी के पक्ष का पोषण करने के लिये आर्य समाज को प्रगति पथ पर चलना पडा था। इसके पश्चात् अन्य हिन्दुओं की कतिपय शिक्षा सस्थाओ ने आर्य समाज द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण किया। इस प्रकार पञ्जाब प्रान्त के शैक्षणिक जीवन मे हिन्दी को सम्मानित स्थान प्राप्त हुआ।

हिन्दी की लिपि निरन्तर देवनागरी रही, जब कि पञ्जाबी भाषा गुरुमुखी, फारसी, और हिन्दी इन तीन लिपियो मे लिखी जाती थी। पञ्जाब विश्वविद्यालय की परीक्षाओ मे जिनमे बुद्धिमान्, विद्वान् और ज्ञानी परीक्षाएँ भी सम्मिलित है, ये तीनो लिपियाँ मान्य रही हैं।

पञ्जाब की तुलना मे विद्यार्थियो एव उनके अभिभावको में हिन्दी की सापेक्ष माग और लोकप्रियता निम्नाङ्कित आँकडो से सुस्पष्ट है:— जालन्धर सम्मण्डल में ९७ २ प्रतिशत लोगो की बोलचाल की भाषा पञ्जाबी है; परन्तु १९५५ तक ५ वर्ष मे विश्वविद्यालय पञ्जाब की हिन्दी एव पञ्जाबी भाषा की परीक्षाओ मे बैठने वाले विद्यार्थियो का प्रतिशत क्रमश ६२.२ और ३७.८ रहा।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि १९५१ से १९५५ तक पञ्जाब विश्वविद्यालय की विनीत (मैट्रिक) परीक्षा में बैठने वाले १०२७५८ छात्रो मे से जिन्हे इतिहास और भूगोल के प्रश्न पत्रो का हिन्दी वा पञ्जाबी किसी एक भाषा मे उत्तर देने की छूट प्राप्त थी। ७३.५ प्रतिशत ने हिन्दी को और केवल २६.५ प्रतिशत ने पञ्जाबी को चुना।

क्षेत्रीय-योजना की रूप रेखा

क्षेत्रीय योजना के सम्बन्ध मे सुविज्ञ लोगो के मन मे भी कुछ भ्रान्ति व्याप्त है। इस योजना की रूप रेखा ३ अप्रैल १९५६ को लोक सभा के पटल पर रखी गई थी, यह केवल एक मात्र रूप रेखा ही थी। जब कोई वस्तु सदन के पटल पर रखी जाती है, तो स्वभवत. सदस्यगण उसको अङ्कित करके वाद-विवाद में उसकी चर्चा कर सकते हैं। यदि उदाहरण के लिये "भूमिसुधार" का "स्वामित्व अधिकार उन्मूलन" के विधेयको पर कृषक सङ्घ वा स्वामित्व

अधिकार सङ्घ अपनी आलोचनाएँ भेजे और वे प्रवर समिति को दी जाये वा सदन के पटल पर रख दी जायें, तो वाद के समय सदस्यगण उनका उल्लेख कर सकते हैं, और प्रायः उल्लेख करते भी है। परन्तु इस प्रकार के उल्लेख से उन आलोचनाओं को सैद्धान्तिक वा संवैधानिक स्थिति प्राप्त नही हो जाती। क्षेत्रीय-योजना की रूप रेखा के सम्बन्ध में ठीक यही हुआ है। जब मैंने कुछ लोगो को जिन्हे सुविज्ञ समझा जाता है, यह कहते सुना कि क्षेत्रीय योजना लोक सभा द्वारा स्वीकृत है, तो मुझे आश्चर्य हुआ। मैं ने लोक सभा के वाद (परिशिष्ट स) को पढ़ा, पढ़ने पर मुझे ज्ञात हुआ कि वास्तव मे क्षेत्रीय योजना न केवल लोक सभा द्वारा पारित ही नहीं हुई अपितु इस योजना को संविधान विधेयक (नौवा संशोधन) मे सम्मिलित करने विषयक श्री ठाकुरदास भार्गव और सरदार बहादुर सिंह के प्रस्ताव भी अस्वीकार कर दिये गये। अत. इस योजना को सैद्धान्तिक वा वैधानिक रूप कदापि प्राप्त नही है।

आपत्तिजनक धाराएँ नवी और दसवी हैं, जो इस प्रकार हैं।

(९) वर्तमान पञ्जाब राज्य के क्षेत्र मे सच्चर सूत्र लागू रहेगा, और उस क्षेत्र में जो वर्तमान पेप्सु राज्य है, वर्तमान व्यवस्था तब तक चलती रहेगी, जब तक कि पारस्परिक समझौते से उसके स्थान पर कोई दूसरी व्यवस्था लागू नही की जाती अथवा वह परिवर्तित नही की जाती।

(१०) मण्डल स्तर और उससे नीचे प्रत्येक क्षेत्र में राज्य भाषा क्षेत्रीय भाषा होगी।

लोकसभा, राज्य सभा वा पञ्जाब की विधान सभा में ऐसी कोई बात नही हुई, जिससे क्षेत्रीय योजना की इस रूप रेखा को वैधानिक स्थिति प्राप्त हो, संविधान की धारा ३७१ के अनुसार राष्ट्रपति को पूर्ण अधिकार है कि वे जो चाहे कर सकते है। धारा ३७१ इस प्रकार है।

"इस संविधान में निहित किसी व्यवस्था के होते हुए भी, राष्ट्रपति अपने आदेश से आन्ध्र प्रदेश या पञ्जाब राज्य के लिये विधान सभा की क्षेत्रीय समितियों के संघटन और कार्य क्रम की प्रनासनीय कार्य व्यवस्था के नियमों में सुधार की, राज्य की विधान सभा की कार्य प्रणाली की, और क्षेत्रीय समितियों के सम्यक् सञ्चालन के लिये राज्यपाल की विशेष उत्तरदायिता की, व्यवस्था कर सकते है।"

हिन्दी सत्याग्रह के लिये परामर्श

पञ्जाब मे हिन्दी सत्याग्रह की रूप रेखा पर विचार-विनिमय करने के लिये श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती २ अप्रैल शुक्रवार को स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ के आश्रम विरजानन्द वैदिक संस्थान खेड़ा खुर्द पधारे। महाराज के पहुँचते ही स्वामी जी ने उठकर उनका अभिवादन किया। सुन्दर आसन पर महाराज को अधिष्ठित करके ब्रह्मचारियों से हाथ-मुंह प्रक्षालन के लिए जल मंगाया। तत्पश्चात् यथोचित फलाहार से महाराज का स्वागत किया। उससे निवृत्त होकर दोनो यतीश्वर सत्याग्रह आन्दोलन की योजना में दत्तचित्त हो गए। ब्रह्मचारी भीष्मदेव जी इस घटना को बडे ध्यान से देख रहे थे। शिष्टाचार की पद्धति मे आबद्ध हुए मर्यादापालक श्री स्वामी वेदानन्द जी निरन्तर खडे-खडे ही महाराज से वार्तालाप करते रहे। प्राय: प्रत्येक अवसर पर उनकी महाराज के लिए यह ही सरणी रहती थी।

स्वामी वेदानन्द जी ने महाराज से निवेदन किया—"भगवन्! आप इसके लिए अभी शीघ्रता न कीजिए। हम पर्याप्त मात्रा मे धन और जन शक्ति एकत्रित करके पूर्ण सङ्गठन के साथ सत्याग्रह का सूत्र-पात करेंगे। प्रभो! हम किसी कार्य को प्रारम्भ करके उससे पराजित होना नही सीखे। आर्य जनो मे कुछ ऐसे जन है, जो इन सब बातो की अवहेलना करके केवल आपकी साधुता से अनुचित लाभ की आकाङ्क्षा मे आपको शीघ्र से शीघ्र आगे धकेलकर आपके इस गिरे हुए स्वास्थ्य को भी धूलि-धूसरित कर देना चाहते है। उनसे सतर्क और सावधान रहने की अति आवश्यकता है। वैयक्तिक स्वार्थ की दल-दल मे फसे हुए महर्षि दयानन्द की लहलहाती हुई इस फुलवाड़ी को विद्वेषाग्नि से झुलसा देना चाहते हैं। स्वार्थ मे मनुष्य अन्धा हो जाता है और उसकी विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है। उस नष्ट बुद्धि से वह जो कुछ भी विचारता है, उसे वह ही उत्तम प्रतीत होता है। मानव-कल्याण की भावनाएँ वस्तुत उसके चर्म-चक्षुओ से तिरोहित हो जाती हैं।"

महाराज ने उत्तर मे कहा—"ऐसी बातो से मैं कभी घबराया नही हूँ। घबराना ऋषि दयानन्द ने नही सिखाया। दूसरे जन जब अपनी चिरपालित भावनाओ का परित्याग नही कर सकते, तब हम सङ्कट मे भी डटे रहने की ऋषि पद्धति को कैसे छोड सकते हैं? हा! यह बात ठीक है कि धन और जन शक्ति का होना अनिवार्य है। इस पर कई दृष्टियो से विचार करने की आवश्यकता है।"

दूसरे वार २५ अप्रैल को स्वामी वेदानन्द जी से उन्ही के स्थान खेड़ा खुर्द मे पहुँच कर महाराज ने हिन्दी रक्षा के विषय में परामर्श किया ।

तीसरे वार १६ मई को एकाकी ही पुनः महाराज श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ से साक्षात् करने के लिये उनके आवास स्थल खेड़ाखुर्द पधारे। उस समय सायङ्काल के सात वजे थे। अतिथि-पूजन के अनन्तर स्वामी वेदानन्द जी ने महाराज से अपने लिए कुछ आदेश की याच्ञा की। महाराज वोले—"अम्वाले में होने वाले हिन्दी सम्मेलन में आपको अवश्य उपस्थित होना चाहिए।" स्वामी जी ने महाराज की इस आज्ञा को शिरोधार्य करते हुये निवेदन किया—"यह सब कार्यवाहियाँ तो हम कर लेंगे। आपको इसके लिए अधिक भ्रमण करने एव चिन्ता-रत होने को आवश्यकता नही है। इससे आपके स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है। हिन्दी सत्याग्रह हम बुद्धिमत्ता के साथ करेंगे। आप अन्य व्यक्तियो की छोटी-छोटी वातों की ओर ध्यान न दीजिये।"

केन्द्रीय और राज्य शासन की ओर से शिक्षा क्षेत्र मे जव न्याय का उच्च आसन निरन्तर सचेत किए जाने पर भी नीचे गिराया जाता रहा, तो पञ्जाव में हिन्दी को सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए अम्वाला नगर मे सर्वदल हिन्दी सम्मेलन रक्खा गया, जो भाद्रपद शुक्ला २४ (ऋषि पञ्चमी) संवत् २०१३ तदनु ६ सितम्वर सन् १६५६ को आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाव के प्रधान वीतराग श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के सभापतित्व मे सम्पन्न हुआ। उसमें, प्रशासन से निम्न मांगे स्वीकार कराने के लिए प्रवल समर्थन हुआ।

१—सम्पूर्ण नये पञ्जाव राज्य में एक ही भाषा योजना लागू होनी चाहिए।

२—शिक्षा सस्थाओं मे शिक्षण के माध्यम का चुनाव माता-पिता की इच्छा पर छोड़ देना चाहिए।

३—किसी विशेष स्तर पर दोनो भाषाओं (हिन्दी-पञ्जावी) में से किसी एक भाषा का द्वितीय भाषा के रूप मे पढ़ाया जाना अनिवार्य नहीं होना चाहिये।

४—शासन के प्रत्येक स्तर पर अंग्रेजी भाषा का स्थान हिन्दी को मिलना चाहिये।

५—मण्डल के स्तर वा उससे नीचे की प्रशासन की सब सूचनाएँ और निर्देश दोनो भाषाओ मे होने चाहिये ।

६—किसी भी भाषा मे प्रार्थना-पत्र देने की आज्ञा होनी चाहिये । उनके उत्तर भी उस ही भाषा मे होने चाहिये ।

७—मण्डल स्तर तथा उसके नीचे के न्यायालय और अन्य कार्यालयो के प्रशासन अभिलेख दोनो लिपियों मे होने चाहिये ।

सम्मेलन के पश्चात् पञ्जाब की आर्य समाजो ने राज्यपाल के नाम अपना आवेदन भेजा, जिसे राज्यपाल ने मुख्य मन्त्री की सेवा मे भेज दिया , उन्होने १०-१०-५६ को जो उत्तर दिया, उसके सम्बन्ध मे श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने कहा ।

"हिन्दी रक्षा समिति द्वारा प्रस्तुत सात माँगों मे से पाचवी तथा छठी माँग प्रशासन ने स्वीकार कर ली है । अन्य मागों के सम्बन्ध मे हम निम्न लिखित सुधारो का निर्देश देते हैं ।

माँग १

१—हम राज्य के इस आश्वासन पर आस्था रखते है कि प्रशासन समस्त राज्य मे यथा सम्भव शीघ्र एक भाषा योजना को चरितार्थ करने का प्रयत्न करेगा ।

माँग २

२—हम प्रशासन के स्पष्टीकरण को स्वीकार करते है, यदि निम्नलिखित आश्वासन दिये जाएँ—

(अ) हिन्दी को बच्चो के शिक्षण का माध्यम स्वीकार करने के लिये माता-पिताओं को पृथक प्रार्थना-पत्र न देना होगा । प्रवेश प्रपत्र पर ही उनकी घोषणा पर्याप्त होगी ।

(ब) प्रत्येक प्रारम्भिक पाठशाला मे, जिसमे शिक्षा का माध्यम पञ्जाबी होगी, प्रशासन कम से कम एक सुयोग्य अध्यापक की हिन्दी शिक्षण के लिये नियुक्ति की व्यवस्था करेगा ।

माँग ३

३—हमारा यह सुनिश्चित विचार है कि राज्य मे दूसरी क्षेत्रीय भाषा के शिक्षण के सम्बन्ध में अनिवार्यता न होनी चाहिये ।

माँग ४ और ७

५—चौथी और सातवी माग से सम्बद्ध प्रशासन के स्पष्टीकरण को हम स्वीकार करते हैं, यदि निम्नाङ्कित वाते और जोड़ दी जाये—

(अ) समस्त राज्य-कर्मचारी अपने टिप्पण, निर्णय वा आदेश, जिस भाषा मे वे चाहे, अङ्कित करने में स्वतन्त्र होगे।

(व) उर्दू और अंग्रेजी का स्थान क्रमशः पञ्जावी और हिन्दी के लेने में एक रूपता होगी।"

सङ्घटन के दूत हिन्दी-रक्षा-समिति के सर्वाधिकारी श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने पञ्जाव मे हिन्दी आन्दोलन के हेतु समाचार पत्रों मे लेख एवं सूचनाये देनी आरम्भ कर दीं। प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाव तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली को भी इस आन्दोलन मे आशीर्वाद प्राप्त करने के पत्र भेजे और दोनों मान्य-सभाओ ने उस महापुरुष का आगे से आगे बढ़कर आदर किया। अपने इस आन्दोलन को किस प्रकार क्रियात्मक रूप दिया जावे? स्वामी जी ने पञ्जाव की हिन्दी प्रेमी जनता के लिए उसका कार्य-क्रम घोषित कर दिया।

हिन्दी समर्थक अभ्यर्थी ही मत के अधिकारी

हिन्दी रक्षा आन्दोलन की सज्जा के इन दिनो मे समस्त भारतवर्ष में पञ्चवर्षीय केन्द्रीय और प्रान्तीय निर्वाचन क्षेत्रो के प्रत्याशियो की प्रगतियाँ प्रारम्भ हो गईं। हिन्दी रक्षा समिति ने अपनी नीति निर्धारण की कि इस निर्वाचन मे प्रत्येक हिन्दी प्रेमी, चाहे वह किसी भी धर्म और जाति से सम्बन्ध रखता हो, अपना मत उसी प्रत्याशी को दे, जो हिन्दी का पक्ष-पोषक हो। इसके लिये हिन्दी रक्षा समिति के सर्वाधिकारी श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने वृत्त-पत्रों में विज्ञप्तियाँ प्रकाशित करा दी।

तत्पश्चात् स्व-स्व निर्वाचन क्षेत्र के प्रत्याशियों के समर्थन प्राप्त करने की प्रार्थनाएं श्री स्वामी जी के समीप वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर पहुँचने लगी।

महाराज के आदेश का श्रद्धा भक्ति से पालन करते हुये आर्य-समाज की सभाओ, समाजो, संस्थाओं और उपदेशको ने अपने-अपने स्थानो मे उसी प्रत्याशी के समर्थन का प्रचार करना आरम्भ कर

दिया, जो हिन्दी-हितैषी था और जिसे श्री स्वामी जी की मान्यता प्राप्त होती जा रही थी, चाहे वह फिर किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्धित हो।

स्वपक्ष मे करने के लिए निर्वाचन क्षेत्रो मे जो घुस पैठ प्रारम्भ होने लगती थी, उसके गढ को विच्छिन्न करने के लिए महाराज ने अनेक स्थानो पर भाषण करने प्रारम्भ कर दिए। इसके अतिरिक्त उन्होंने दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय के भावी उपदेशको को गुडगावा मे हिन्दी के समर्थक निर्वाचनार्थी के सम्बन्ध मे प्रचार करने के लिये भेज दिया।

इस प्रकार समस्त पञ्जाब मे आर्य समाज की ओर से हिन्दी के पक्ष में प्रचार किया जा रहा था।

हिन्दी रक्षा समिति की बैठक

हिन्दी रक्षा के प्रश्न पर अन्तिम पग उठाने का निर्णय करने के लिये हिन्दी रक्षा समिति की महत्त्वपूर्ण बैठक ५ मई सन् १९५७ को साई दास एंग्लो संस्कृत विद्यालय जालन्धर मे रक्खी गई। उस बैठक मे रक्षा समिति के सदस्यो के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न नगरो से आए हुए एक सौ से अधिक प्रतिष्ठित प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे। बैठक मे भाग लेने वालो मे आचार्य भगवान दास, प्राचार्य रलाराम, रायबहादुर, बद्रीदास, श्री वीरेन्द्र, श्री विश्वनाथ, पण्डित लक्ष्मी चन्द्र, श्री ना० दा० ग्रोवर, श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती, श्री सत्यव्रत, लाला जगत नारायण और श्री आचार्य रामदेव के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय थे। श्री आनन्द स्वामी जी सरस्वती की अध्यक्षता मे, श्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू प्रधान मन्त्री भारत सरकार के साथ दिल्ली मे हुई बात-चीत का विवरण रखते हुए यह निर्णय कर दिया गया कि ३० मई से सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया जाये। उस सत्याग्रह का पहला रूप 'सद्भावना यात्रा' होगा, यह नाम इसलिये निर्धारित किया गया कि आन्दोलन से किसी प्रकार की गडबड न हो। यह निश्चय हो जाने के पश्चात् स्वयं सेवको की भर्ती प्रारम्भ कर दी गयी। सब राज्यो की आर्य समाजो को निर्देश भेज दिये गये और 'सद्भावना यात्रा' के प्रथम यात्री सर्वाधिकारी श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ही नियुक्त हुए।

उसी समय १२ एकशास्ताओ× का चुनाव कर दिया गया और यह भी निश्चय कर दिया गया कि प्रत्येक सत्याग्रही दल की सूचना अपने स्थान से चलने से पूर्व श्री प्रधान मन्त्री भारत प्रशासन को दे दी जाये।

श्री स्वामी जी ने अपने कार्यक्रम की सूचना पञ्जाब के मुख्य मन्त्री श्री प्रतापसिंह कैरो को भेज दी, जिस मे यह लिखा कि वे ३० मई को प्रातः १० बजे चण्डीगढ़ के मन्त्रालय मे मुख्य मन्त्री के कार्यालय मे आपके समक्ष हिन्दी रक्षा समिति की मागे रक्खेगे।

५ मई को जालन्धर में हुई बैठक के पश्चात् पञ्जाब की हिन्दी प्रेमी जनता उत्साहित हो उठी। हरयाणा प्रान्त से झटिति ५००० स्वयं सेवको ने अपने नाम सत्याग्रह के लिये लिखा दिये। श्री महाराज का कार्यक्रम दिनों दिन बहुत व्यस्त होने लगा। स्थान-स्थान पर सारे पञ्जाब मे हिन्दी रक्षा के लिए सभाओ का आयोजन होने लगा। स्वामी जी को जहाँ भी निकट सभा के आयोजन की सूचना मिलती, वहाँ अपने स्वास्थ्य की अवेक्षा करते हुए सभा में अवश्य उपस्थित हो जाते थे। १७ मई को आर्य समाज मन्दिर संयानरख्या* अम्बाला नगर में हिन्दी रक्षा समिति की बैठक रक्खी गयी।

वहाँ भगवान् आत्मानन्द ने इस बात पर बल दिया कि आन्दोलन में कही भी शिथिलता न आने पाये। 'सद्भावना यात्रा' नाम रखने का प्रयोजन यह है कि इसमें कोई ऐसी बात न की जावे, जिससे किसी प्रकार की साम्प्रदायिक उत्तेजना उत्पन्न हो वा बढ़े। कोई समाघोष ऐसा न लगाना चाहिए, जिससे किसी को आपत्ति हो। हम प्रशासन के लिये भी कोई उलझन उत्पन्न करना नही चाहते। इसलिए हम एक सीमित सत्याग्रह करने लगे है।

महात्मा आनन्द स्वामी जी की घोषणा।

श्री गुरुदेव आत्मानन्द जी महाराज के आदेश पालक, प्रमुख संन्यासी शिष्य प्रवर महात्मा आनन्द स्वामी जी ने भी उसी समय घोषणा की कि जो पग उठाया जा चुका है, वह अब लौटाया नही जा सकता। पञ्जाब मे हिन्दी को जीवित रखने के लिए जो भी बलिदान देना पड़े, हम देने के लिये समुद्यत हैं और यह आन्दोलन उसी गौरव और समारोह से चलाया जायेगा। जैसे आर्य समाज के पहले आन्दोलन

× डिक्टेटरों। *[illegible] रोड।

चलाये जाते रहे हैं और सफल हुए है। श्री आनन्द स्वामी की इस घोषणा के होते ही आर्य प्रादेशिक सभा, आन्दोलन मे कूद पड़ी।

सार्वदेशिक सभा की बैठक में

हिन्दी सत्याग्रह से पूर्व जितने भी आन्दोलन आर्य समाज के हुए थे, उन्हे व्यापक रूप तब ही दिया जा सका था, जब वे सर्व शिरोमणि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली ने सँभाल लिये थे। श्री स्वामी जी के निवेदन को, कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के हिन्दी आन्दोलन को व्यापक रूप दे, सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री स्वामी अभेदानन्द जी और अन्य मन्त्रिगण ने स्वीकार कर लिया था। सार्वदेशिक की १९ मई को होने वाली बैठक मे सर्वाधिकारी श्री आत्मानन्द जी महाराज ने पहुँचना था, अत. दिल्ली के समाचार पत्रो द्वारा दिल्ली की समस्त हिन्दी प्रेमी जनता को सूचना दे दी गई कि वे अपने प्रिय नेता, हिन्दी रक्षा आन्दोलन के सञ्चालक श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती का १९ मई के प्रात· सात बजे सीमान्तप्रेष— से दिल्ली स्थात्र पर उतरने के साथ ही अपनी श्रद्धाञ्जलि स्वागत के रूप मे अर्पित करे और अपने हिन्दी प्रेमी होने का प्रमाण दे।

मञ्चक‡ पर सयान* आने से पूर्व आर्य जनता के हाथो मे ओ३म् ध्वजाएँ लहरा रही थी। जैसे ही सयान* मञ्च‡ पर पहुँचा, स्वागत कारियो की भीड ने 'स्वामी आत्मानन्द का जय हो' के समाघोषो† से सम्पूर्ण स्थात्र+ गुंजा दिया। वह दृश्य अतिशय कुतूहल पूर्ण था, जिसने सयान* से उतरते हुए जनसमुदाय को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया। सभी निर्निमेष नेत्रो से श्री महाराज को निहार रहे थे। महाराज के चरण स्पर्श कर लोग अपना अहोभाग्य समझ रहे थे। रुधिर-निपीड× की विकट स्थिति मे भी इस प्रकार से उत्साह के साथ महाराज को कार्य सञ्चालन मे भाग लेते देखकर, आर्य जनता अति प्रेम से अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रही थी।

दिल्ली की बैठक के पश्चात् सर्वाधिकारी स्वामी आत्मानन्द अम्बाला लौट गए और हिन्दी रक्षा समिति से परामर्श करके अपनी प्रगतियो का विवरण मुख्य मन्त्री को भेजा।

—फ्रंण्टियर मेल *रेलगाडी ‡प्लेटफार्म †नारो +स्टेशन ×ब्लड प्रेशर

हिन्दी भाषा की स्वतन्त्रता के लिए पञ्जाब के हिन्दी प्रेमी सभी मतावलम्बियों मे दिन प्रतिदिन उत्साह वृद्धि करता जा रहा था, वे उस दिन की प्रतीक्षा मे थे, जिस दिन से इस कार्य के लिए कुछ विशेष चेष्टाएँ प्रारम्भ हो। जालन्धर में हुई हिन्दी रक्षा समिति की बैठक मे ५ मई को 'सद्भावना यात्रा' के कार्यक्रम का निश्चय कर देने के पश्चात् यमुनानगर, माडल टाउन, और जगाधरी नगर की जनता के परस्पर विचार-विमर्श के उपरान्त यह निश्चय किया कि यद्यपि यात्रा का प्रारम्भ अमृतसर से रक्खा गया है, फिर भी श्री स्वामी जी महाराज को उनके आश्रम मे ससम्मान विदाई देना, हम नगरवासियो का परम कर्त्तव्य है। अतः २३ मई को मध्याह्नोत्तर ४ बजे, नगर मे उनकी संयात्रा निकाली जाय और उसमे श्री स्वामी जी को ११०० रु० की थैली भी अर्पण की जावे।

२३ मई का निश्चित समय आ जाने पर, तीनों नगरो के आर्य समाजो, सनातन धर्मियो और हिन्दी प्रेमियो ने अपने पूरे उत्साह से
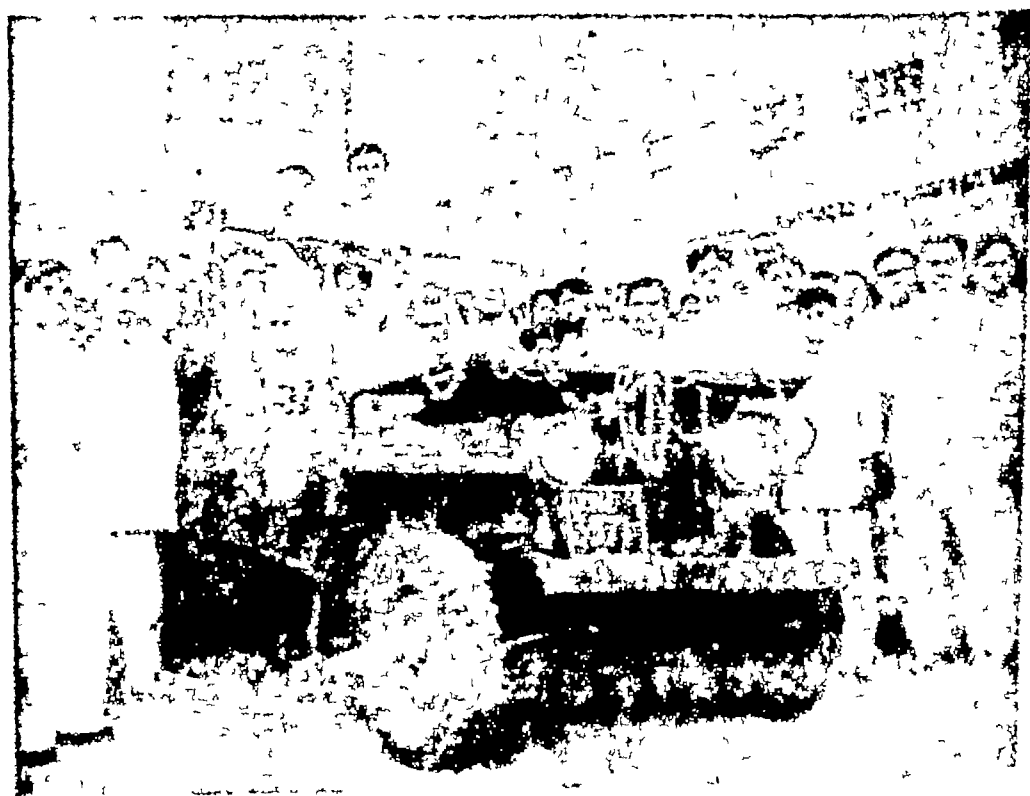
यमुनानगर में सद्भावना यात्रा निकल रही है

श्री महाराज की शोभायात्रा को सुसज्जित किया। महाराज की विदा-

परिवहित्र मे बैठाया गया। पाठशालाओ के बालक बालिकाएँ, श्री दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय के ब्रह्मचारी, और तीनो नगरो की हिन्दी प्रेमी जनता उस शोभायात्रा मे सम्मिलित थी। एक वाद्य आगे-आगे बजता जा रहा था। मध्य-मध्य मे शोभायात्रा को रोक रोककर, हिन्दी भाषा को पञ्जाब मे गुरुमुखी की दासी बनाए जाने का विश्लेषण किया जा रहा था। स्थान-स्थान पर महाराज को पुष्पमालाये पहनाई जा रही थी। पुष्प वृष्टि से सम्पूर्ण विवृत परिवहित्र भर गया था। कतिपय महानुभाव पत्रमुद्राओ की मालाएँ भी महाराज के गले मे डाल रहे थे। मन्त्रध्वनि और जयघोषो के साथ-साथ सयात्रा अपनी मन्थर गति से चलती हुई, नगर के मुख्य-मुख्य स्थानो मे प्रवेश कर रही थी। हाटो पर बैठे आपणिक भी अपने हाटो पर खडे होकर, महाराज को साधुवाद, धन्यवाद, देते हुए अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुये, दृष्टिगोचर हो रहे थे। शोभायात्रा आर्य समाज मन्दिर यमुनानगर से प्रारम्भ होकर उसी स्थान पर समाप्त की गई।

म० मुकुन्दलाल जी १४३२ रुपये की थैली भेंट कर रहे हैं
जनता ने महाशय मुकुन्दलाल जी को अपना प्रतिनिधि बनाकर उनके हाथ से १४३२) रुपये की थैली भेट करायी।

कितने सत्याग्रही इस आन्दोलन में प्रगृहीत होंगे ? 'पत्रकारों' द्वारा यह पूछे जाने पर स्वामी जी ने उत्तर दिया—देश के प्रत्येक भाग से सत्याग्रही इस आन्दोलन में सम्मिलित होंगे तथा दश सहस्र सत्याग्रही कारागारों में अपना प्रग्रहण कराकर अपनी उचित मांगे प्रशासन से स्वीकार करायेंगे।

समझौता वार्ता क्यो असफल हुई ? यह प्रश्न करने पर सर्वाधिकारी श्री स्वामी जी ने उत्तर में कहा—"इसका उत्तरदायित्व प्रशासन पर है; क्योंकि प्रशासन की देरी लगाने की नीति सहन नहीं की जा सकती। केवल विवाद चार मागों पर अवलम्बित है—

१—अंग्रेजी का स्थान हिन्दी ले।

२—सम्पूर्ण राज्य में एक भाषा सूत्र लागू हो।

३—मण्डल-स्तर और निचले स्तर पर समस्त अभिलेख दोनों लिपियो मे रक्खे जावे।

४—एक भाषा को दूसरी भाषा के अधीन न किया जावे।

स्वामी जी ने आगे कहा—आचार्य भगवान्दास और दीवान अलखधारी ने प्रथम जत्थे में जाने की अनुमति माँगी थी; किन्तु उन्हे कहा गया कि वे आन्दोलन की देखभाल करें और उसे सफल बनावें।

हिन्दी सत्याग्रह प्रारम्भ होने से पूर्व पत्र द्वारा श्री विद्यानन्द विदेह ने महाराज से निवेदन किया "भगवन् ! आप सत्याग्रह का नेतृत्व न करें; क्योंकि आपकी शारीरिक स्थिति इस भारी बोझ को सहने योग्य नही है ?" महाराज ने विदेह जी के इन शब्दो का कोई उत्तर नही दिया। महाराज की प्रवृत्ति कुछ कहने की अपेक्षा करके दिखाने की अधिक थी।

यमुनानगर से प्रस्थान कर सद्भावना यात्री पञ्जाब हिन्दी रक्षा समिति अम्बाला के कार्यालय में जा विराजे। श्री आनन्द स्वामी आर्य-नेता भी दल में सम्मिलित होने के लिये दिल्ली से सीधे अम्बाला पहुँच गए। रात्रि पर्यन्त वहाँ विश्राम करके २४ मई को श्री आत्मानन्द सरस्वती, अपनी 'सद्भावना यात्रा' में श्री आनन्द स्वामी, श्री आनन्द मित्र, श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द, श्री स्वामी विज्ञानानन्द और [illegible] श्री गोपाल कृष्ण पिपलानी को साथ लेकर अम्बाला नगर की प्रमु[illegible]

सद्भावना यात्रा

बाये से दाये बैठे हुए —

१ श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती, २. श्री आनन्द भिक्षु जी वानप्रस्थ, ३. हिन्दी सद्भावना यात्रा के सर्वाधिकारी श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती, ४. श्री गोपाल कृष्ण पिपलानी अधिवक्ता वानप्रस्थ, ५. स्वामी विज्ञानन्द सरस्वती ।

पण्यवीथिकाओ÷ से होते हुये एक विशाल जन-समूह के साथ अम्बाला सयान-स्थात्र* पर सुशोभित हुए। हिन्दीप्रेमी जनता ने 'सद्भावना यात्रा' के प्रथम दल+ मे, सद्भावना यात्रियो सहित अपने प्रिय नेता को हिन्दी भाषा से सम्बन्धित-विजयघोषो के साथ जब बम्बई आशुग सयान† मे अधिष्ठित किया, तो सयान-यात्रियो के कान एकाएक खडे हो गये। सोते हुये यात्री भी जाग-जाग कर इस मनोहर दृश्य को देखने लगे। सयान× छूटने के पश्चात् भी स्थात्र* जयघोषो से कुछ देर तक गूँजता रहा। अम्बाला से लेकर अमृतसर तक जितने भी स्थात्रो* पर बम्बई आशुग सयान खड़ा हुआ। सभी स्थात्रो पर जय-घोषो से अपार भीड़ को वातावरण गुञ्जाते देखा। ३० मई से पहले इस सद्भावना यात्रा का उद्देश्य, जन-जन मे हिन्दी भाषा की स्व-तन्त्रता के प्रति जागर्ति उत्पन्न करना था। जनता को जागरूक करने के लिए, अपने कर्त्तव्य पर आरूढ़ हो जाने के लिए और प्रत्येक प्रकार का बलिदान देने को उद्यत रहने के लिए, श्री आनन्द स्वामी जी महाराज अपने गुरु के आदेश पर स्थात्रो* पर सयान खड़े होते ही, स्वागतकारी अपार भीड़ को आदेश देते जा रहे थे। उस समय एक से एक आगे बढकर, श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन करने का इच्छुक था और स्वामी जी महाराज शान्त रूप से खडे होकर दर्शकों को अपने दर्शनो से आत्मविभोर कर रहे थे। सब लोगो के मुख से निकला धन्य-धन्य ध्वनि, महाराज के चरणो में श्रद्धा के पुष्प चढा रहा था। इस प्रकार एक-एक स्थात्र पार करता हुआ श्री स्वामी जी महाराज का सयान उनके गन्तव्य स्थान अमृतसर, साय सात बजे पहुँचा। यह २४ मई का दिन था, जिस दिन हिन्दी प्रेमी विशाल जन-समूह ने, अपने प्रिय नेता का, सामूहिक रूप से सद्भावना यात्रा के पहले दिन ही हार्दिक अभिनन्दन किया। अमृतसर के नाम को सार्थक बनाने के लिए, सद्भावना यात्रा का प्रथम दिन इसे ही प्रदान किया गया। इस नगर के जन समूह से उद्भूत भावनाएँ, समस्त भूमण्डल की हिन्दी प्रेमी जनता की भावनाओ को उकसाती रहे, जीवन प्रदान करती रहे। अमृतसर की जनता ने इन्ही उमङ्गो से भरपूर होकर अपने तन-मन-धन से पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया। महाराज ने एक सार्वजनिक सभा मे अपने भाषण मे कहा—"परिस्थितियो ने हमे विवश कर दिया है कि हम अपने प्रशासन से न्याय माँगने के लिए

÷—बाजारो। *रेलवे स्टेशन। +जत्था। †ऐक्सप्रैस। ×रेलगाडी।

बलिदान दें। यह सद्भावना यात्रा कि वा सत्याग्रह आवश्यक हुआ तो, उस समय तक चालू रक्खा जायगा, जब तक प्रशासन अपनी भाषा योजना मे हिन्दी को उसका अपना स्थान नही देता। इसी सम्बन्ध में महात्मा आनन्द स्वामी और महात्मा आनन्द भिक्षु जी ने अनशन करके अपने प्राण त्याग देने की घोषणा कर दी है। हमने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया है। आप अपना कर्त्तव्य स्वयं निश्चित करलें। हमारा आपको सुझाव है कि आप इस धर्म युद्ध के लिये प्रस्तुत रहें। जनता की मांग सत्याग्रह की थी; परन्तु गत ५-६ मास को प्रशासन की विभेदक नीति को दृष्टि में रखते हुए आर्य समाज ने सद्भावना और आत्मबलिदान का मार्ग अपनाया है। जिससे प्रशासन अपने कर्मचारियों तथा पिट्ठुओं द्वारा इस अराजनीतिक और असाम्प्रदायिक आन्दोलन को साम्प्रदायिक रङ्ग न दे सके। हमारी मांगे हमारे धार्मिक तथा साँस्कृतिक भावनाओ की प्रतीक मातृभाषा हिन्दी से सम्बन्ध रखती हैं; अत: यह आन्दोलन धार्मिक दृष्टि से ही चलेगा। इसमे विरोधी भावना न होगी और न किसी सम्प्रदाय, गुरुमुखी वा कांग्रेस दल आदि के विरुद्ध पग उठाया जायेगा। यदि प्रशासन ने हमारे आन्दोलन को दबाने के लिए १४४ धारा का प्रयोग किया, तो हम उसे तोड़ेंगे। प्रशासन की दमन नीति का उच्चतम साधनों से विरोध करेंगे।

प्रथम चार जत्थों का निर्देश

हमारा प्रथम जत्था चण्डीगढ पहुँचने पर दूसरा जत्था स्वामी रामेश्वरानन्द जी आचार्य गुरुकुल घरोडा के नेतृत्व मे घरोंढा से प्रस्थान करेगा। तीसरा दल पञ्जाब जनसङ्घ के प्रधान आचार्य रामदेव जी के अधिपतित्व मे चण्डीगढ की ओर चलेगा और चौथा, वीर अर्जुन जालन्धर के सम्पादक श्री वीरेन्द्र जी १२ जून को फिरोजपुर से लेकर पञ्जाब प्रशासन से अपना विरोध प्रकट करेंगे।

प्रत्येक दल मे पाँच-पाँच व्यक्तियां होंगी, अभी हमने यह निर्णय नहीं किया कि इन जत्थों के अपहरण पर हम क्या करेंगे। स्थिति अनुसार कार्य-क्रम में परिवर्तन किया जा सकेगा।

एक ओर सद्भावना यात्री अपने कार्य-क्रम के अनुसार प्रचार कर रहे थे, तो दूसरी ओर भिन्न-भिन्न नगरों में सभाओं का आयोजन हो रहा था। २० मई को हिन्दी रक्षा समिति अमृतसर की सूचना है

अनुसार हिन्दी सत्याग्रह में जो विश्वास व्यक्त किया गया, उनमे प्रमुख उल्लेखनीय सभी धार्मिक एवं सामाजिक सङ्घटनों के अग्रवर्ती नेता लोग उपस्थित थे। पटियाला हरगोविन्दपुरा अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना, अम्बाला, होशियारपुर, गुरुदासपुर, आदि नगरो मे भी सद्भावना यात्रा के सम्मेलन हुए।

स्वामी जी ने घोषणा की कि यदि हम प्रगृहीत हुए, तो घरोडा के स्वामी रामेश्वरानन्द आन्दोलन के द्वितीय सर्वाधिकारी और आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष आचार्य सूर्यभान हिन्दी रक्षा समिति के अध्यक्ष होगे।

अमृतसर से श्री आत्मानन्द सरस्वती अपने जत्थे के अन्य पाँच प्रतिष्ठित महानुभावो के साथ साय पाँच बजे २५ मई को जालन्धर पहुँचे। यहां स्वागत कर्त्ताओ की भीड़ उसी प्रकार दृष्टि गोचर हो रही थी, जैसी कि अमृतसर मे। यह भारी स्वागत स्पष्ट घोषित कर रहा था कि जो पग श्री महाराज ने उठाया है, जनता उसका समर्थन करती है। सायङ्काल आयोजित एक भारी सभा मे महाराज ने कहा कि हमारी मांगो के आधार ये हैं, जिसका उत्तर प्रशासन नही दे रहा—

१—क्या हिन्दी के राष्ट्रभाषा होते हुए भी देश के किसी भाग में उस पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है ?

२—क्या पञ्जाब प्रशासन की भाषा योजना मे यह धारा नहीं रक्खी गयी कि प्रान्त मे राष्ट्रभाषा मे शिक्षा लेने के लिए विशेष प्रार्थना पत्र देने पड़ेगे और इस पर भी पठन-पाठन की सुविधाएँ न दी जा सकेंगी, जब तक कि एक कक्षा में दस विद्यार्थी न हो ?

३—क्या राष्ट्रभाषा का आरम्भ में किसी भी प्रान्त मे वा देश के किसी भाग मे पढाना सर्वथा वर्जित किया जा सकता है, जैसा कि पञ्जाब के एक भाग मे किया जा रहा है ?

४—क्या मण्डल स्तर तक केवल गुरुमुखी भाषा को राज्य भाषा बनाकर ६० प्रतिशत लोगो को अनपढ़ नही बना दिया गया है ? क्या यह राष्ट्रभाषा का अपमान नही है ?

५—क्या भारत के सविधान मे स्वीकृत १४ भाषाओ में से किसी एक को अपनाने की स्वतन्त्रता नही दी गई है। यदि नही दी गई, तो इन भाषाओ के समस्त विभाग भी क्यो वर्णित नही किये गये ?

६—क्या पञ्जाव प्रशासन देश की एकता तथा सङ्गठन को भापा के आधार पर छोटे भाग बनाकर दुर्वल नही बना रहा। जबकि देश के और प्रान्तों में भापाई साम्राज्यवाद समाप्त करके जनता मे प्रेम तथा मिलन वर्तन बढाया जा रहा है ?

७—क्या भापा के आधार पर टुकड़े करके प्रशासन उन बच्चों की शिक्षा मे बाधक नही बन रहा, जिनके माता-पिता प्रशासन सेवा में होने के कारण दूसरे देश के विभाग में स्थानान्तरित किये जायेंगे ?

८—क्या पञ्जाव प्रशासन की ओर से हिन्दी तथा गुरुमुखी के विस्तार में व्यय किये गये धन का अन्तर इस बात का प्रमाण नही कि पञ्जाव प्रशासन की नीति हिन्दी घातक है ?

९—क्या यह सत्य नहीं कि पञ्जाव प्रशासन के भापा विभाग में महत्त्व के सभी पदों पर ऐसे पुरुप नियुक्त किये गये हैं, जो हिन्दी के ज्ञान से अपरिचित है, जब कि यह विभाग दोनो भापाओं के प्रसार के लिये स्थापित किया गया है ?

१०—इस बात को ध्यान में रखकर कि भापा योजना मे त्रुटियां हैं या नहीं, क्या यह सत्य नही कि स्वार्थी नेताओं के स्थान पर शिक्षा शास्त्रियों को ऐसी योजना बनाने का अधिकार था ?

जालन्धर का संचालन-स्थान छोड़ने से पूर्व स्वामी जी ने कहा—अभी बात-चीत प्रशासन से टूटी नही है; किन्तु अब उसमें पूर्व-सा सौहार्द नहीं रहा है।

यह आन्दोलन राजनयिक नही है और न किसी राजनयिक दल को इससे राजनीतिक लाभ उठाने दिया जायेगा और न ही राजनीतिक दल के रूप से इसमें सम्मिलित होने दिया जायेगा।

अन्त मे स्वामी जी ने राष्ट्रभापा की तुलना राष्ट्रध्वज से की और कहा—"जिस प्रकार कोई स्वाभिमानी भारतीय राष्ट्रध्वज का अपमान अथवा उस पर प्रतिबन्ध सहन नहीं कर सकता, उसी प्रकार कोई भारतीय राष्ट्रभापा का अपमान अथवा उस पर प्रतिबन्ध सहन नहीं कर सकता, समिति हिन्दी पर लगाए गए प्रतिबन्ध को हटाने के लिए सर्वस्व बलिदान के लिए बद्धपरिकर है।"

२६ मई को 'सद्भावना यात्रा' में प्रचार करते हुए श्री स्वामी जी महाराज अपने साथियों सहित होशियारपुर नगर के जन-समूह में सुशोभित हुए। वहाँ भी स्वामी जी [illegible] बहुत [illegible] हो [illegible]। [illegible]

[illegible]

श्री आनन्द स्वामी जी और श्री आनन्द भिक्षु जी ने जनता से आवश्यक अनुरोध किया कि—

(१) कोई भी हिन्दी प्रेमी, सत्याग्रही दल* वा दर्शक हिन्दी रक्षा समिति द्वारा निर्णीत नादो के अतिरिक्त भिन्न नाद नही लगावे। इससे हमारा पक्ष सबल बनेगा।

(क) हिन्दी भाषा अमर रहे। (ख) देश का बच्चा, बच्चा होगा, हिन्दी भाषा पर बलिदान (ग) मातृभाषा हिन्दी है, हमारी माग हिन्दी है। (घ) हिन्दी से प्रतिबन्ध हटाओ। (ङ) हिन्दू सिक्ख सङ्गठन अमर रहे। (च) आर्य समाज के सदैव लगाये जाने वाले नाद।

(२) यष्टिप्रहार+ अथवा गोली चालन आदि शासन के अत्याचारों का उत्तर आत्म बलिदान से दिया जायेगा न कि हिंसा आदि से।

जो भाई बहिन किसी प्रकार से भी किसी को दुःखाने वाले नाद लगायेंगे वा दूषित कर्म करेंगे, वे इस आन्दोलन के हितकारी नही समझे जायेंगे; क्योकि राज्य अपना है। इसके साथ अपनो के समान लडना है, चाहे उसकी ओर से कितना अन्याय अत्याचार क्यो न हो।

प्रत्येक पञ्जाब प्रान्त निवासी को चाहे वह किसी भी मत का है, इसे अपना परिवार समझना है तथा सद्भावना से ही उस खाई को भरना है, जो पञ्जाब प्रशासन की साम्प्रदायिक नीति से खुद गई है।

(३) यदि हमारी सद्भावना यात्रा की सफलता में प्रशासन ने कोई बाधा उपस्थित की अथवा किसी प्रकार के अन्याय वा अत्याचार का व्यवहार किया, तो सामूहिक सत्याग्रह आरम्भ कर दिया जायेगा।

(४) अविवाहित और चालीस वर्ष से कम अवस्था की देवियो को छोडकर देविया भी अपने नाम सत्याग्रह के लिए लिखा सकती हैं, किन्तु उनका दल* पुरुषो से पृथक् होगा, जिसमे देवियां ही देविया होगी। बीस देवियो से अधिक वे अपना गण* नही बना सकती तथा उन्हे तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार ही भेजने अथवा न भेजने की अनुमति दी जायेगी।

२७ मई के दिन 'सद्भावना यात्रा' के यात्री अपने सर्वाधिकारी श्री आत्मानन्द सरस्वती के आदेश का अनुसरण करते हुए, होशियार-

*जत्था। +लाठी चार्ज।

पुर से प्रस्थान कर लुधियाना मे जा विराजे । उस दिन ग्रीष्म ऋतु की भीषण उष्णता के होते हुए भी लुधियाना के सहस्रो नागरिको ने इस दल का भव्य स्वागत किया । ज्यो ही उड्डयी जनता संयान× स्थात्र‡ पर पहुँचा, पुरुषो और स्त्रियो की भारी भीड ने नेताओं का स्वागत किया और उन्हे हार पहनाये । सयान स्थात्र से एक लम्वी संयात्रा+ निकाली गई, जो महापथ,÷ घण्टाघर चौक, गिरजाघर, चौडा वाजार, घास मण्डी और चौक निक्का मल सर्राफ से होती हुई आर्य समाज मन्दिर सावुन वाजार पहुँची । सयात्रा+ मे स्थानीय आर्य-समाजियों, जनसङ्घियो, महा पञ्जाव के अभिलाषी सदस्यो और अन्य कई सस्थाओ ने भाग लिया । सद्भावना यात्रियो को विवृत परिवहित्रं मे वैठाया गया था । संयात्रा+ मे भाग लेने वाले लोग "हिन्दी भाषा अमर रहे" "हमारी माग हिन्दी भाषा" और "राष्ट्र भाषा हिन्दी है" आदि समाघोष लगा रहे थे । स्थानीय पाठशालाओं के छात्रों ने भी संयात्रा मे भाग लिया । आर्य आङ्गल विद्यालय का वाद्य● वज रहा था ।

जव सद्भावना दल की संयात्रा+ आर्यसमाज मन्दिर सावुन वाजार मे समाप्त हुई तो श्री आत्मानन्द सरस्वती ने वह पत्र खोला, जो लुधियाना स्थात्र‡ पर संयान के कोष्ठ मे प्रवेश करके एक व्यक्ति ने उन्हे दिया था । उस पत्र के सम्बन्ध मे श्री आत्मानन्द सरस्वती ने अपने साथियो से विचार विमर्श किया । वह पत्र पञ्जाव के मुख्य मन्त्री श्री प्रतापसिंह कैरो की ओर से भेजा गया था । सायं एक पत्र कार सम्मेलन मे महाराज ने मुख्य मन्त्री के इस पत्र का उल्लेख किया और वताया कि इसमे निम्न शब्द लिखे हैं ।

मैं आपको इस वात का पहले ही विश्वास दिला चुका हूँ कि हम किसी भी अवसर पर अनुभव की जाने वाली कठिनाइयो को भली-भांति समझने और उनका आदर करने को समुद्यत हैं । इस पारस्परिक वातचीत द्वारा उन्हे दूर करने के लिए प्रत्येक कार्य करेंगे । पत्र मे यह भी लिखा है कि मैंने २० मई को कहा था कि आपकी मांगो का उत्तर मन्त्रिमण्डल मे परामर्श के पश्चात् दूंगा, किन्तु आपने पहले ही 'सीधी कार्यवाई' प्रारम्भ कर दी है । श्री स्वामी जी ने इस पत्र पर

×[illegible] । ‡[illegible] । +[illegible] । ÷[illegible] ।
[illegible] । ●[illegible] ।

के उत्तर मे कहा कि यह कार्रवाई नही है, 'सद्भावना यात्रा' है। हम अपने ढंग से अपनी मागे प्रस्तुत करेगे। श्री स्वामी जी ने सवाद दाताओ को आगे बताया कि सरदार कैरो ने मुझे यह भी लिखा है कि आप अपने प्रभाव का प्रयोग करें और लोगो को समझाएँ कि जो भी कठिनाई होगी, बातचीत द्वारा दूर कर ली जायेगी।

स्वामी जी ने कहा कि हमने जो पग उठाया है, वह इस पत्र के कारण रुक यही सकता। मैंने सरदार कैरो को २२ मई को पत्र लिखा था, जिसमे कार्य-क्रम की सूचना दी थी। हमने अपना भावी कार्यक्रम अभी नही बनाया। इस समय सद्भावना यात्रा आरम्भ है। जब तक सन्तोष जनक उत्तर नही मिलता, हम शान्ति से चण्डीगढ मे बैठे रहेगे। हम गुरुमुखी पढाने को बाध्य किये जाने के विरुद्ध हैं। हिन्दी को घटिया स्थान दिये जाने से सारे पञ्जाब को हानि होगी। हमारा आन्दोलन किसी के विरुद्ध नही। हम इतनें जत्थे रखते हैं कि यह आन्दोलन निरन्तर एक वर्ष भी चल सकता है। हम नही कह सकते कि आन्दोलन कब तक हमारे हाथ में रहे। सम्भवत अन्ताराष्ट्रिय आर्य सभा इसे अपने हाथ मे ले ले।

दूसरे दिन 'सद्भावाना यात्रीदल' अम्बाला नगर में विराजमान हुआ। विधान मण्डल सदस्य श्री प्राध्यापक शेरसिंह ने कहा—"पञ्जाबी का बलपूर्वक पढाया जाना अनुचित है और स्मरण रहे कि हिन्दी प्रेमियो को उस भर्त्सना का कोई भय नहीं कि यदि पञ्जाबी न पढी गई, तो वे पञ्जाबी प्रान्त की मांग पर उतारू हो जायेंगे।

श्री लाल जगत्नारायण ने शिक्षा-प्रावकलन पर वाद-विवाद के समय कहा कि प्रशासन जनता को यह आश्वासन दे रहा है कि दशमी श्रेणी तक शिक्षा नि शुल्क की जायेगी, उसमें करोड़ो रुपया व्यय होता है। यह नि शुल्क शिक्षा की वार्ता केवल झासा मात्र है।

२६.५.५७ को अम्बालाछावनी से सद्भावना यात्री श्री स्वामी जी ने मुख्य मन्त्री पञ्जाब के पत्र का उत्तर लिख भेजा।

श्री आत्मानन्द सरस्वती के नेतृत्व मे हिन्दी रक्षा समिति का सद्भावना यात्रा दल ३० मई को प्रातः चण्डीगढ पहुँच गया। वहाँ एक सार्वजनिक सभा मे भाषण करते हुए महाराज ने कहा कि आज सचिवालय जायेंगे। वहा हिन्दी की रक्षा के लिये अपना माग पत्र पञ्जाब के मुख्य-मन्त्री को प्रस्तुत करेगे। जब तक हमे सन्तोषजनक

उत्तर नही मिलेगा, हम सचिवालय के सम्मुख धरना देकर बैठे रहेगे। हम गुरुमुखी और पञ्जावी के विरुद्ध नहीं है। हम इसे सीखने को उत्सुक हैं। हम केवल इतना ही चाहते हैं कि किसी भी स्तर पर पंजावी का सीखना अनिवार्य न हो।

तदनन्तर एक सँव्वाद-सम्मेलन को सम्वोधित करते हुए स्वामी जी ने कहा कि 'सीधी कार्यवाही' केवल उसी स्थिति मे की जायेगी, जव समझौते के अन्य सभी मार्ग अवरुद्ध हो जायेगे। एक सँवाददाता के यह पूछने पर कि किसी कार्यवाही का अवसर कव आयेगा और उसका क्या रूप होगा ? महाराज ने कहा कि कार्यक्रम स्थिति के अनुसार ही वनाया जायेगा।

तत्पश्चात् श्री स्वामी जी महाराज अपनी 'सद्भावना यात्रा' के सदस्यो का नेतृत्व करते हुए जयघोषो के तुमुलध्वनि के मध्य सचिवालय की ओर चल दिये।

जव दल सचिवालय के मुख्य द्वार पर पहुँचा तो, शिक्षा उप मन्त्री श्री यश ने शिष्टमण्डल का स्वागत किया। गण को लेकर श्री सर्वाधिकारी स्वामी जी आगे वढ गये। जव मुख्य मन्त्री के कार्यालय पर पहुँचे तो, मुख्य मन्त्री ने वाहर आकर 'सद्भावना यात्रा' के सदस्यों का स्वागत किया। उन्होंने श्री आत्मानन्द सरस्वती और श्री आनन्द स्वामी जी के चरण छूए।

महाराज के साथ श्री मुख्य मन्त्री की जव वात चीत आरम्भ हुई तो शिष्टमण्डल के सदस्यो के साथ वहाँ वात चीत में वित्तमन्त्री पण्डित मोहनलाल, शिक्षा मन्त्री श्री अमरनाथ विद्यालङ्कार, स्वास्थ्य मन्त्री चौधरी सूरजमल, शिक्षा उप मन्त्री श्री यश भी उपस्थित थे। श्री स्वामी जी ने मुख्य मन्त्री के सम्मुख समिति की सात मांगो का ज्ञापन प्रस्तुत किया। वात चीत एक घण्टे से अधिक समय तक होती रही। मुख्य मन्त्री ने वात चीत के समय में स्वामी जी से कहा—"कि राज्य की सरकार प्रादेशिक सूत्र से वंधी हुई है और मैं इसमें कोई भी परिवर्तन करने मे असमर्थ हूं। प्रादेशिक सूत्र और भारतीय सरकार की घोषित नीति के अनुसार हिन्दी और पंजावी दोनों भाषाओं का उचित ध्यान रखा जायगा। मुख्य मन्त्री ने पत्र में समिति की मांगों के विषय में लिखित उत्तर दिया। शिष्ट मण्डल ने इस पत्र पर विचार किया और अन्त में निर्णय किया कि मुख्य मन्त्री का यह उत्तर हिन्दी

रक्षा समिति को सौंप दिया जावे। जब तक समिति का उत्तर हमें न मिले, यही धरना दिये बैठे रहेगे। श्री स्वामी जी सहित छहो सदस्यो ने अपनी मांगो के सन्तोष जनक उत्तर के लिये जानपद सचिवालय के प्राङ्गण मे धरना मार दिया। उन्हे मुख्य मन्त्री का उत्तर उचित प्रतीत नही हुआ था। पश्चात् मुख्य मन्त्री ने पत्र प्रतिनिधियो को बताया कि "मैंने जो उत्तर लिखित रूप मे बता दिया है, वह अन्तिम है। मैंने आर्य समाज के नेताओ को सन्तुष्ट करने में कोई प्रयत्न उठा नही रक्खा। मैं एक परामर्शदात्री समिति का निर्माण करने के लिए उद्यत हूँ, जो क्षेत्रीय सूत्र* के निष्पक्ष प्रचालन का ध्यान रक्खेगी। समझौते के विषय मे पूछे जाने पर मुख्य मन्त्री ने कहा कि "समझौते का द्वार अभी तक खुला है।"

गण के चारो ओर आरक्षी दल— का पहरा था। हिन्दी रक्षा समिति के सदस्य बाहर उपस्थित थे। शिष्टमण्डल के प्राङ्गण में बैठ जाने पर समिति सदस्यो ने गण को दरी, गिलास, और सुराही देने की अनुमति माँगी। प्रशासन ने अनुमति न दी। शिक्षा उपमन्त्री श्री यश ने दल को एक चारपाई देना चाहा, वह भी न देने दी गयी। आरक्षी— अधिकारियो ने श्री यश का आदेश मानना अस्वीकार कर दिया और कहा कि हम अपने अधिकारियो की अनुमति के बिना कुछ नही कर सकते। इसी कारण प्राचार्य श्री भगवानदास जी को सत्याग्रहियो को भोजन पहुँचाने मे भी पौन घण्टा लग गया।

उसी दिन हिन्दी रक्षा समिति की बैठक तीसरे पहर हुई और उसमे यह मत व्यक्त किया गया कि मुख्य मन्त्री का उत्तर असन्तोष-जनक है।

सचिवालय के कार्य का समय समाप्त होने के पश्चात् यह नियम है कि सचिवालय की सीमा मे कोई बैठ वा प्रवेश नही कर सकता। किन्तु श्री स्वामी जी महाराज का गण वहाँ सचिवालय के प्राङ्गण मे जमा बैठा था कि जब तक हमे सन्तोषप्रद उत्तर नहीं मिलेगा, हम यहाँ से नही हिलेंगे। ऐसी अवस्था में प्रशासन के समक्ष यह प्रश्न आया कि अब क्या किया जावे? गण को यहाँ से कैसे उठाया जाये। सन्यासी महात्माओं से प्रार्थना की गयी कि कार्यालय बन्द हो जाने पर कोई व्यक्ति कार्यालय के भीतर नही रह सकती। किन्तु

---

*रीजिनल फार्मूला। —पुलिस।

जब वे वहाँ से हिलने तक को समुद्यत न हुए, तब मन्त्री और अन्य प्रशासन अधिकारी वहाँ से चले गये। रात को ग्यारह बजे आरक्षी* दल वहित्र+ लेकर वहाँ आ गया और उन्हे वहाँ से उठा ले गया। स्वामी आत्मानन्द जी और उनके चार साथियों को स्वामी जी के यमुना नगर वैदिक साधन आश्रम मे छोड़ आया और महात्मा आनन्द स्वामी जी को आर्य समाज मन्दिर हनुमान रथ्या× नई दिल्ली में। इस काम के लिये रात का समय इसलिए उपयुक्त समझा गया कि कोई प्रदर्शन न हो। दिन के समय यह कार्यवाही होती तो प्रदर्शन हो सकता था। जब स्वामी जी महाराज को सचिवालय से उठाया गया, उनका रुधिरनिपीड— बढा हुआ था। उस रुधिर-निपीड मे नींद तो आ सकती नही थी। इसलिए वही नीद की गोली खिला दी गयी थी। सम्पूर्ण मार्ग मे स्वामी जी नि.सञ्ज्ञ जैसी तन्द्रा की अवस्था मे रहे। आरक्षी*, आरक्षि-अधीक्षक‡ और एक चिकित्सक सचिवालय से ही श्री स्वामी जी के साथ थे। मार्ग मे श्री चिकित्सक महोदय श्री स्वामी जी का रुधिरनिपीड— लेते रहे। आश्रम मे श्री स्वामी जी को उतारने के पश्चात् लगभग चार बजे होगे, चिकित्सक ने पुनः रुधिर निपीड लिया और यह कह कर लौट गये कि स्वामी जी की अवस्था ठीक है। वास्तव में बात यह थी कि वे उस समय भी सञ्ज्ञा-हीन जैसी अवस्था में थे।

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती, अपने दल के साथ दोवारा सचिवालय में धरना चालू रखने के लिये अपने वैदिक साधन आश्रम से ३१ मई के सायङ्काल अम्बाला पहुँच गये। श्री आनन्द स्वामी जी, जिन्हे दिल्ली छोडा गया था, सीधे दिल्ली से गण में सम्मिलित होने के लिये अम्बाला चल पडे। श्री स्वामी जी ने सँव्वाद दाताओ से बात चीत करते हुये कहा—"मैं पुनः सद्भावना-यात्रा दल सहित शनि-वार को प्रातः ८ बजे अम्वाला से चण्डीगढ के लिए प्रस्थान करूँगा। जहाँ पजाब सचिवालय के समक्ष धरना मारूँगा।" इस प्रश्न पर कि आप कब तक इस प्रकार राजधानी जाते रहेगे, स्वामी जी ने कहा—"मैं उस समय तक 'सद्भावना यात्रा' करता रहूँगा, जब तक कि हिन्दी रक्षा समिति कोई और निर्देश प्रस्तुत नही करती। इसी प्रकार समिति के गण तब तक चण्डीगढ जाते रहेगे, जब तक कि सरकार माँगे

---

*पुलिस। +कार। ×रोड। —ब्लड प्रेशर। ‡सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस।

स्वीकार नही कर लेती। गुरुकुल घरोंडा के आचार्य श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने भी कल से दूसरे गण के लिए अपनी चेष्टाएँ प्रारम्भ कर दी हैं।"

भारत सरकार के प्रधान मन्त्री ने लोक सभा में इस आन्दोलन की निन्दा की है, उस पर टिप्पणी करते हुए श्री स्वामी जी ने कहा कि किसी ने यह विषय श्री नेहरू को उचित रूप से नहीं समझाया है।

श्री स्वामी जी महाराज, जिस समय अपने आश्रम से चलकर सायं ६ बजे जगाधरी संयान स्थात्र‡ से अम्बाला के लिए चले थे, उस समय उन्हे भारी रुधिर-निपीड— था। दो दिन से नोद भी नही आई थी। कोष्ठ शुद्धि न होने की भी रुजा+ थी। पेट में पीड़ा भी कभी-कभी होने लगती थी।

अम्बाला मे सब यात्रियो के एकत्रित हो जाने पर अपने गण× को लेकर श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती पुनः २ जून को आर्य समाज मन्दिर, २२ शकलमां† चण्डीगढ पहुँच गये और ३ जून को पूर्ववत् अग्नि होत्र करके सचिवालय पर धरना देने के लिये चल पडे। श्री स्वामी जी ने अपने साथियो के परस्पर परामर्श से यह निश्चय किया कि इस वार सचिवालय के प्राङ्गण में धरना न देकर सचिवालय के समक्ष धरना देंगे। जब आर्य नेता सचिवालय के द्वार पर पहुँचे, तो आरक्षी* द्वारा सचिवालय के द्वार रुद्ध कर दिये गये। इस पर आर्य नेताओ ने 'हिन्दी भाषा अमर रहे' इत्यादि समाघोष लगाये और थोड़ी देर पश्चात् द्वार खोल दिये गये। आर्य नेताओ को एक वरिष्ठ आरक्षी* अधिकारी द्वारा मुख्य सचिवालय के कार्यालय मे ले जाया गया। सद्भावना यात्रियो ने मुख्य मन्त्री से मिलना था, किन्तु उनकी अनुपस्थिति मे उन्होने मुख्य सचिव श्री नकुलसेन से भेंट की। श्री नकुलसेन ने नेताओ से बात चीत करते हुये प्राशासनिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला और कहा कि प्रशासन, समिति की सात मागो मे से पाँच माँगे पहले ही स्वीकार कर चुका है। उन्होने नेताओ को अपने गोह से त्याग पत्र निकाल कर भी दिखाया कि यदि कोई ऐसी बात होगी, जिससे यह प्रतीत हो कि हिन्दुओ की भावनाओ को ठेस पहुँचेगी, तो मैं तत्क्षण त्याग पत्र उपस्थित कर दूँगा। अत आप निश्चिन्त रहे। परस्पर की बात

---

‡रेलवे स्टेशन। —ब्लड प्रैसर। +शिकायत। ×जत्था। †सैक्टर (भाग टुकडा)। *पुलिस।

चीत से सब समाधान ठीक हो जायेगा। हिन्दी रक्षा समिति को कोई भी पग उठाने की आवश्यकता नही है और न ही धरना देने की। यह वार्तालाप लगभग ८० मिनट तक चालू रहा।

श्री स्वामी जी जानते थे कि उच्च पदाधिकारी प्रायः अवसरवादी हुआ करते है, वे जनता का गला घोट कर भी, प्रशासन ही की ढपली बजाते हैं। ब्रिटिश शासन में इन्होने ही स्वतन्त्रता के पुजारियों को फांसी दे देकर भारत माता से पृथक् कर दिया था, उस समय इनकी आँखो से दो आँसू भी नही टपकते थे और अनेक बलिदानो के पश्चात् जब भारत स्वतन्त्र हुआ, तब वे ही पुनः मुख्य पदों पर आसीन हो गये। अब इस राज्य की हाँ मे हाँ मिलाने लगे और उस जनता के हित की बाते इनके हृदयो को कभी भी स्पर्श नही करतीं, जिसके अर्जित आय से इन अधिकारियो का भरण पोषण चलता है। अतः मुख्य सचिव की सारी बाते निपट धोखा है। ये सब बाते तो हम एक वर्ष से सुनते चले आ रहे हैं, जिनके परिणाम कुछ भी नही निकलते। यह सोचकर श्री स्वामी जी ने घोषणा की कि जब तक वे मुख्य मन्त्री से नही मिल लेते और भाषा समस्या का सन्तोषजनक समाधान नही हो जाता, वे सचिवालय के सम्मुख अपना धरना चालू रक्खेगे। उस समय वर्षा हो रही थी; इसलिये मुख्य सचिव ने उन्हें सचिवालय के बिरामदे में ठहरने की अनुमति दे दी। वे आसन्दियो पर बैठ गये। वर्षा के पश्चात् बाहर जाकर बैठ गये।

पश्चात् हिन्दी रक्षा समिति के सर्वाधिकारी एवं गण के नेता श्री आत्मानन्द सरस्वती ने सँव्याददाताओ को बताया कि मुख्य सचिव के स्पष्टीकरण से पता चलता है कि राज्य प्रशासन के प्रकार मे कोई परिवर्तन नही हुआ है, किन्तु भेट के समय श्री नकुलसेन का व्यवहार मुख्य मन्त्री की अपेक्षा अधिक अच्छा था।

जब कोई आन्दोलन छिड़ता है तो, उसे असफल बनाने वाले, अपनी असफल चालो का प्रदर्शन भी साथ-साथ करते रहते हैं। श्री स्वामी जी उधर तो सचिवालय मे धरना मारे बैठे थे और इधर हिन्दी रक्षा समिति के कार्यालय में एक विचित्र प्रस्ताव दूरभाप पर मिला था, जिसमे कहा गया था कि श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने अपनी 'सद्भावना यात्रा' स्थगित कर दी है। किन्तु उस प्रस्ताव मे स्थगन की राज्य-वाचनिकाएँ कुछ भी न थी; अतः हिन्दी रक्षा समिति के सदस्यों को सन्देह होजाना स्वाभविक ही था।

श्री स्वामी जी ने हिन्दी रक्षा समिति को पहले ही श्री आचार्य भगवान् दास, आचार्य सूर्यभान, महाबलपति केशव चन्द्र, श्री नारायण दास ग्रोवर आदि निष्ठावान्, कुशल व्यक्तियो के हाथो मे सौंपा था, जो स्वामी जी की अनुपस्थिति मे भी राज्य प्रशासन की चालो मे न आवें। उन्होने तथाकथित मध्यस्थो से स्पष्ट कह दिया कि यदि प्रशासन को बातचीत द्वारा समझौता करने मे रुचि है, तो वह समिति से सीधी पहल करे। जिन व्यक्तियों को बातचीत का अधिकार है, उनसे चर्चा के लिये समिति के द्वार सदा खुले है।

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने कहा कि ३० मई की रात को जब आरक्षी दल हमे वाहनो में बैठा रहा था, तो हमने समझा कि वह हमे निगृहीत करके कारागार ले जायेगा, किन्तु जब हमे ले जा कर यमुना नगर आश्रम छोड़ दिया, तो हमारी धारणा को ठेस लगी। इस वार यदि हमे यहाँ से हटाने का प्रयत्न किया गया, तो हम उनका विरोध करेंगे।

प्रशासन ने वही किया, जो पहले वार किया था। श्री आनन्द स्वामी जी को दिल्ली और श्री स्वामी जी सहित अन्य चार सत्याग्रहियो को उनके आश्रम यमुना नगर ११॥ बजे रात को उठाकर ३ बजे प्रातः पहुँचा दिया गया। एक राजकीय चिकित्सालय के चिकित्सक भी साथ थे, जो स्वामी जी का रुधिर निपीड नापते रहे।

श्री स्वामी जी द्वारा इस सद्भावना गण के साथ धरना दिये जानें के पश्चात् जो व्यवहार हुआ, उसकी निन्दा स्थानीय हिन्दी रक्षा के सयोजक लाला बाबूराम अधिवक्ता और समिति के अध्यक्ष लाला रामदत्त ने अपने एक वक्तव्य मे इस प्रकार व्यक्त की कि "यह सब जानते हैं कि देश-विदेश मे श्री स्वामी आत्मानन्द और महात्मा आनन्द स्वामी का कितना आदर है। इतना ही नही सद्भावना मण्डल के अन्य चारो सत्याग्रही भी सास्कृतिक भारत के महान् नेता है, किन्तु यह श्रेयस्कर बात नही कि प्रशासन ने उनके साथ अनुचित वर्ताव किया है। शिष्ट मण्डल को अभी तक प्रगृहीत नही किया गया था, फिर भी किसी मिलने वाले को उन तक न पहुँचने दिया गया। उन तक भोजन भी न पहुँचने दिया गया। शिष्ट मण्डल के नेता श्री स्वामी आत्मानन्द जी का स्वास्थ्य अच्छा नही। सामान्यत. वे दिन के समय ११॥ बजे तक भोजन कर लेते हैं, पर उस दिन उन्हे तीन बजे तक भोजन न मिला। आर्य प्रतिनिधि सभा

के मन्त्री को भी मण्डल से न मिलने दिया गया, जब कि उस समय आर्यसमाजी नेताओं में मुख्य मन्त्री सरदार प्रतापसिंह कैरों के पत्र पर परामर्श हो रहा था। इतने पर भी इतिश्री नहीं, रात के ११॥ बजे उन्हें अधकचरी नीद से जगाकर वाहन में प्रसह्य बैठाकर लगभग तीन बजे प्रातः उनके आश्रम मे छोड़ दिया गया।"

श्री स्वामी आत्मानन्द एक दिन आश्रम मे ठहर कर और वहाँ के पते पर आयी हुई चिट्ठियाँ देख कर, उनके उत्तर आदि से निवृत्ति पाकर ५ जून को अम्बाला हिन्दी रक्षा समिति के कार्यालय में सब हिन्दी प्रेमियो के मध्य जा विराजे।

इसी दिन श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने जो दूसरे सद्भावना दल का नेतृत्व कर रहे थे, सचिवालत मे पहुँच अपनी माँगे उपस्थित की। मुख्य मन्त्री वहाॅ नही थे, अत· वित्तमन्त्री श्री मोहन लाल ही को श्री स्वामी रामेश्वर नन्द जी से अपना बीच-बचाव करना पड़ा। श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी को वित्तमन्त्री की बातो में केवल लीपा पोती ही दिखाई दी, अत. उन्होने कहा कि यदि हिन्दी के प्रश्न पर पञ्जाब प्रशासन डरता है तो, उसे शासन छोड देना चाहिये, क्योकि यह भय निर्बलता का चिह्न है।

श्री आत्मानन्द सरस्वती ने श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी की सद्भावना यात्रा की चेष्टाओं से भी प्रशासन की नीति मे कोई परिर्वतन न देख, कोई अन्य पग उठाना उचित समझा। प्रशासन और हिन्दी रक्षा समिति के बीच जो बात-चीत चल रही थी, वह असफल हो गई। पञ्जाब प्रशासन ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि ३० मई को जो उत्तर दिया जा चुका है, वह अन्तिम है। यदि इसके अतिरिक्त कोई नयी माँग रक्खी जायेगी, तो विचार किया जा सकता है।

सर्वाधिकारी श्री आत्मानन्द सरसवती ने हिन्दी रक्षा समिति कार्यालय अम्वाला से मुख्य मन्त्री सरदार कैरो को एक पत्र लिखा। जिस मे उन्हे सूचित किया गया कि वे सात जून के सायङ्काल चार पाँच बजे के मध्य चण्डीगढ के सचिवालय में एक वार फिर मिलेगे और उनके सम्मुख हिन्दी रक्षा समिति की माँगे प्रस्तुत करेगे।

पत्र मे सरदार कैरो को चेतावनी दी गयी थी कि हिन्दी रक्षा समिति ने यदि कोई अन्तिम पग नही उठाया है, तो उसे इसकी दुर्वलता नही समझा जाना चाहिए। मैं और मेरे साथी हिन्दी को पञ्जाव में

उसका उचित स्थान दिलाने के लिये एक वर्ष से आपका द्वार खटखटा रहे हैं, किन्तु प्रत्येक वार हमारे उद्देश्य और माँगो को अवहेलना की दृष्टि से देखा गया है। प्रशासन चाहे कुछ ही करे और हमे कितना भी बलिदान क्यो न देना पड़े, हम हिन्दी को पञ्जाब में उसका उचित स्थान दिलाकर रहेगे।

सात जून को चण्डीगढ़ पहुँच कर, सचिवालय में आपने तीसरे वार सद्भावना मण्डल को पहुँचाने से पूर्व एक भारी सभा मे घोषणा की कि पञ्जाब प्रशासन हिन्दी रक्षा समिति के सद्भावना प्रयास को समझने में असफल रहा है। अब कल से हमारे इस सद्भावना शिष्ट मण्डल का अन्त हो जायेगा और उसे सत्याग्रह का रूप दे दिया जायेगा।

जब श्री स्वामी जी, तीसरे वार सचिवालय में पहुँचे, तो उस दिन राज्य-मन्त्रि-मण्डल के साथ होने वाली वार्ता मे ज्ञानी करतार सिंह भी उपस्थित थे। स्वामी जी ने कहा कि समिति आन्दोलन को समझौता वार्ता के लिये स्थगित नही करेगी। वर्तमान स्थिति मे इस प्रकार के आन्दोलन की अतिशय आवश्यकता है।

वार्तालाप के पश्चात् वे सचिवालय के बाहर धरना देकर बैठ गये। रात्रि होने पर उन्हे वहाँ से बल पूर्वक हटा कर, पूर्व की भाँति यमुना नगर, उनके आश्रम मे पहुँचा दिया।

आर्य समाज द्वारा प्रचालित हिन्दी आन्दोलन के सम्बन्ध मे जनता की प्रगति को देखकर प्रधान मन्त्री नेहरू जी ने ३० मई को लोक सभा मे कहा था कि यह बडे खेद और आश्चर्य की बात है कि इस आतङ्कित, विक्षुब्ध और उत्तेजित विश्व मे हमारे कुछ मित्र अपनी स्थानीय समस्याओ मे उलझ गए है तथा अपना समय और शक्ति उन्ही मे लगा रहे हैं। दिल्ली के निकट ही एक अत्यधिक विचित्र प्रकार का आन्दोलन आर्य समाज द्वारा चलाया जा रहा है। कहा यह जाता है कि यह हिन्दी के पक्ष मे है किन्तु प्रत्यक्ष मे इससे सबसे अधिक हानि हिन्दी को ही होगी। मैं उनकी बात को यत्किञ्चित् भी नहीं समझ सका हूँ। पञ्जाब मे बुद्धिमान् पुरुष एक कठिनाई उत्पन्न कर रहे हैं तथा अन्य व्यक्तियो का ध्यान ऐसी समस्या की ओर आकृष्ट कर रहे हैं, जिसे सन्तोष जनक रीति से सुलझा लिया गया है।

भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू को सर्वाधिकारी श्री स्वामी आत्मानन्द जी ने ८ जून को एक विस्तृत पत्र लिखा।

श्री नेहरू जी को पत्र लिखने के पश्चात् ८ जून को श्री स्वामी जी ने घोषणा की कि कल ९ जून को सारे पञ्जाब मे सत्याग्रह प्रारम्भ दिवस मनाया जायेगा और १० जून से सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया जायेगा। घोषणा के अनुसार ९ जून का दिन सम्पूर्ण पञ्जाब में बड़ी धूमधाम और उत्साह के साथ समाप्त हुआ। १० जून से 'सत्याग्रह' प्रारम्भ कर दिया गया, शकलम् नं० २२ चण्डीगढ़ आर्य समाज मन्दिर में सैकड़ो की सङ्ख्या में सत्याग्रही पहुँच चुके थे। रात्रि को खुले भूभाग मे शासकीय नीति की कटु आलोचना होती थी। श्रीमद्दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय यमुना नगर के ब्रह्मचारी और हरयाणा प्रान्त के युवक आरम्भ मे अपना बलिदान देने को आगे आए। वे उत्साह सम्पन्न सत्याग्रही, प्रशासन को चुनौती दे रहे थे कि कितनी भी हम पर गोलियाँ बरसे, कितना भी लाठी प्रहार हो, कितनी भी गुप्त चोटें लगायी जावे, वे अपना अधिकार लेकर रहेगे और दूसरो के अधिकारो पर छापा नही मारेगे।

जब उत्साही वीरों के गण को प्रस्थान से पूर्व सुसज्जित किया गया, तो माताएँ सत्याग्रहियो को तिलक लगा रहीं थी। वृद्ध उन्हे आशीर्वाद दे रहे थे और युवा दूसरे दलों मे सम्मिलित हो सचिवालय पहुँच कर कैरो तन्त्र का विध्वंस करने का प्रण ले रहे थे। उस समय पाँच सहस्र आबालवृद्ध नर नारियो के जयकारो का तुमुल नाद प्रशासन को सफलता की चुनौती दे रहा था।

जैसे ही ओ३म् की पताकाएँ लिये सत्याग्रही आगे वढ़े, समस्त जनता उनके पीछे-पीछे चलती हुई बोल रही थी:—

नही सहेगे नही सहेगे हिन्दी भाषा का अपमान,‡
समाघोष लगाओ मिलकर बच्चे बूढे और युवान,
नही सहेंगे, नही सहेंगे, हिन्दी भाषा का अपमान।

राष्ट्र भाषा भारत की यह प्राणों से भी प्यारी है,
भूमण्डल की भाषाओं में यह भाषा महतारी है।
देश का बच्चा बच्चा होगा, मातृभाषा पर बलिदान,
नही सहेगे, नही सहेगे, हिन्दी भाषा का अपमान।

ऋषियो-मुनियो की यह प्यारी, गुरुवाणी है इसमे सारी,
दादू और कबीर व नानक, इस भाषा के रहे पुजारी।

‡यह पङ्क्ति जनता द्वारा दोबारा बोली जाती थी।

भूषण और रहीम के मन में भी था इसका कितना मान,
नही सहेगे, नही सहेगे, हिन्दी भाषा का अपमान।

भारत का अभिमान यही है राष्ट्र का है प्राण यही,
तुलसी व सूरदास सरीखे, कवि का गौरव सदा यही।

इसकी रक्षा हित कर देगे अपना तन मन धन बलिदान,
नही सहेगे, नही सहेगे हिन्दी भाषा का अपमान।

लाठी और कृपाण से जो भी, हमे मिटाना चाहेगा,
"नन्दलाल" कहे निश्चय जानो, स्वयं वही मिट जायेगा।

कैरो के अभिकर्त्ताओ! तुम, सब ही सुन लो खोल के कान,
नही सहेगे, नही सहेगे, हिन्दी भाषा का अपमान।

ग्रीष्म ऋतु की उष्णता से उष्णित स्थानो पर चलते हुए जब सत्याग्रही सचिवालय के मुख्य द्वार तक पहुँचे, तो आरक्षी चहुँ ओर का मार्ग रोके खड़े थे। सत्याग्रही पङ्क्ति तोड़कर आगे बढने का प्रयत्न करने लगे, तो आरक्षिदल उन्हे पीछे को धकेलने लगा। दोनों परस्पर जूझ रहे थे। जनता चारो ओर खड़ी सत्याग्रहियो का उत्साह बढा रही थी और बोल रही थी.—

आगे चरण बढाओ वीरो, आगे चरण............

यह कैरो, जनतन्त्र विरोधी, कभी न इससे तुम घबड़ाओ,
सत्याग्रह मे लड़ना होगा, कष्टो मे भी बढना होगा।

पीछे चरण न कभी हटाना, चाहे जितने डण्डे खाओ,
हिन्दी माँ के वीर युवानो बढकर आगे छाती तानो।

केसरिया बाना पहना अब, मत माता का दूध लजाओ,
आगे चरण बढाओ वीरो, आगे चरण............

(प्रदीपकुमार इलाहाबाद)

चलो चलो चलते ही जाओ, पथ पर यात्री बढ़ते जाओ,
लेकर विजय पताका कर में, लक्ष्य भवन पर चढते जाओ।

लक्ष्य तुम्हारा बहुत दूर है, यात्री बहुत ही कम चले हो,
तोड़ो तोड़ो विषम द्वार सब, ऐसे द्वार तोड़ते जाओ।

सहो यातना और ताड़ना, विपदाओ से मत घबड़ाओ।
दुर्गम को है गम्य बनाना, काटो मे ही चलते जाओ॥

जब तक प्राणो में सम्बल है, विपदाओ से लड़ते जाओ,
जीवन की प्रत्येक भूल पर, हँस हंस कर तुम चढ़ते जाओ।
चलो चलो चलते ही जाओ, पथ पर यात्री बढ़ते जाओ।
(ईश्वरदत्त गुप्त 'आनन्द' दिल्ली)

इस प्रकार सत्याग्रही निरन्तर ३ घण्टे तक झूमते रहे और उनके परिश्रान्त हो जाने पर उन्हे उठा उठाकर आरक्षिवाहन× मे भेड़ बकरियो के समान भर दिया गया। जून की अत्यधिक उष्णता मे प्यास लगने पर उन्हे पानी भी न दिया गया। सूर्यास्त के पश्चात् दूर ले जा कर आरक्षी ने उन्हे रात्रि के समय ऐसे सघन वन प्रान्तों मे जा उतारा, जहां से कही मार्ग भी दृष्टिगोचर न होता था कि किधर जाया जाये और कहाँ से उन्हे पुनः चण्डीगढ़ पहुँचने के लिए सर्वयान मिले। फिर भी किसी-न किसी प्रकार वे प्रातः होते-होते पुनः चण्डीगढ़ अपने स्थान पर आ पहुँचे थे।

यही क्रम निरन्तर चल रहा था। १३ जून को आचार्य रामदेव जी के नेतृत्व मे जिस गण ने सत्याग्रह किया, उसे उसके नेता से पृथक करके किसी ऐसे अज्ञात स्थान पर छोड़ा, जहाँ से वे अगले दिन दोपहर तक चण्डीगढ पहुँच सके। उनके पग काँटो से छलनी हो रहे थे और सूज गये थे। ये लोग मोरनी पर्वत माला के सान्द्र और भयावह जङ्गलो से होते हुए वैद्य ओम्प्रकाश के नेतृत्व मे ३२ सहस्रमान‡ का कठिन पर्वत मार्ग पार कर, एक स्थान मे सर्वयान* पकड़ सके थे। इनमे से कोई भी इस भू-भाग से परिचित न था और आरक्षिवाहन× ने इन्हे रामपुर रानी के परे ले जाने के लिये कोई १६० सहस्रमान‡ का चक्कर लगाया था।

पञ्जाब हिन्दी रक्षा समिति के नेता स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने प्रदेश कांग्रेस के प्रधान ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर के नाम एक खुले पत्र में कहा कि समिति ने हिन्दी रक्षा आन्दोलन आरम्भ करने से पूर्व राज्य की भाषा समस्या के शान्तिपूर्ण समाधान के लिए सब उपायों का प्रयोग किया था, परन्तु यह सब कुछ कांग्रेस और प्रशासन के बहरे कानो पड़ा और वार्ता के लिये समिति की प्रार्थनाओं को स्वार्थी तत्त्वों का प्रकार बताया। हमे धमकियाँ भी दी गयी और पदो

×पुलिस वैगन। ‡किलोमीटर। *बस।

का प्रलोभन देकर तथा आक्रमण का काल्पनिक भय उत्पन्न कर हमारे सङ्घटन को विघटित करने का प्रयास किया गया।

हिन्दी रक्षा समिति को राजस्व मन्त्री ज्ञानी करतारसिह का वह प्रस्ताव स्वीकार है, जो उन्होने चण्डीगढ मे सत्याग्रही गण के नेता स्वामी रामेश्वरानन्द के समक्ष रक्खा था। ज्ञानी जी ने यह कहा था कि यदि हिन्दी रक्षा समिति समस्त पञ्जाब मे पजाबी का प्रचार करना मान ले तो, वह प्रशासन पर बल डालेगे कि गुरुमुखी की अनिवार्य पढाई समाप्त कर दी जावे।

श्री स्वामी जी ने यह भी कहा कि पंजाब मे गुरुमुखी की अनिवार्य पढाई समाप्त करदी जाये, तो हिन्दी रक्षा समिति अपना नाम परिवर्तित करके उसे "पजाबी हिन्दी रक्षा समिति" का नाम दे सकती है और तब वह हिन्दी तथा पजाबी दोनो भाषाओ के प्रचार मे प्रयत्नशील हो जायेगी।

स्वामी जी ने यह भी कहा कि मेरा यह विचार है कि यदि पंजाबी की पढाई मे अनिवार्यता समाप्त कर दी जाये, तो इससे गुरुमुखी का प्रचार करने के मार्ग में कोई रुकावट न आकर उसमे पर्याप्त सहायता मिलेगी।

ज्ञानी करतारसिह का उपर्युक्त सुझाव हिन्दी रक्षा समिति के लिये केवल झासा मात्र था। उन तिलो मे तैल नही था। जहाँ राज्यपाल-पद पर अधिष्ठित पुरुष भी, जब कि उन्हे निष्पक्ष होना चाहिए, पजाबी सम्मेलन मे सम्मिलित हो, वहाँ आत्मबल के अलभ्य दर्शन अति दुर्लभ हैं। ऐसे आचरण से वे द्वितीय पक्ष की जनता का विश्वास खो बैठते है और अपने राज्यपाल पद को कलङ्कित करते हैं।

अम्बाला से १३ जून के दिन हिन्दी रक्षा समिति के सर्वाधिकारी स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने पजाब के राज्यपाल श्री चन्द्रशेखर प्रसाद नारायणसिह को एक पत्र लिखा, जिसमें उनके पजाबी सम्मेलन मे सम्मिलित होने पर आपत्ति उठाई थी। इस सम्मेलन मे आर्यसमाज तथा अन्य हिन्दुओ के विरुद्ध बड़े उत्तेजनापूर्ण और धमकी भरे भाषण किये गये थे। अत राज्यपाल के नाम एक खुले पत्र मे स्वामी जी ने कहा कि आपके इस कृत्य से पजाब की जनता का आप मे विश्वास नष्ट हो गया है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री स्वामी अभेदानन्द जी ने शुभ कामना करते हुए श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज, को लिखा:— महात्मन् ! आपका नेतृत्व आर्य जगत् में जीवन–सञ्चार कर रहा है। सारा आर्य संसार आपका अनुगमन करने को तत्पर है। 'सत्यमेव जयते' की प्राचीन उक्ति ही हमारी आशा है। हम आस्तिकों का एक मात्र परमात्मा ही कवच है।"

१३-६-५७ को प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने श्री स्वामी आत्मानन्द की खुली चिट्ठी का उत्तर दिया और पश्चात् वे भारत से बाहर चले गये।

स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने एक दिन आचार्य रामदेव जी से कहा कि मैं आपको वैदिक साधन आश्रम यमुना नगर का सञ्चालन-भार सँभलवा देना चाहता हूँ। आश्रम के अध्यक्ष का संन्यासी होना आवश्यक है। अभी तो समय दीक्षा का है नही। यह तो सत्याग्रह के अनन्तर ही सम्भव है।

जून मास की सोलहवी तारीख को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली की कार्यकारिणी द्वारा सतरह सदस्यों की एक समिति बना दी गयी। जिसका कार्य पञ्जाव में चल रहे आन्दोलन को प्रगति देना, निर्देश करना तथा उसके मार्ग में आने वाली कठिनाइयो को हटाना एव उसे अखिल भारतीय रूप देना था।

कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव द्वारा अपने सभी प्रादेशिक घटकों को कह दिया कि वे अपने-अपने क्षेत्र मे हिन्दी रक्षा समितियां बनावे, स्वय सेवक भरती करे और पञ्जाब मे आन्दोलन को सहायता देने के लिये धन सङ्ग्रह करे।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा कार्यकारिणी ने आरक्षी द्वारा चण्डीगढ मे शान्त एव अहिंसक सत्याग्रहियो पर किए गये अमानवीय अत्याचारो की निन्दा की और चेतावनी दी कि जो इन अत्याचारों के लिये उत्तरदात्ता है, उन्हें इनके दण्ड भोगने होगे।

सतरह सदस्यीय समिति के सदस्यो में श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त, भूतपूर्व अध्यक्ष मध्यप्रदेश विधान सभा (अध्यक्ष) श्री रघुवीरसिंह शास्त्री (संयोजक) आचार्य सूरजभान डी. ए. वी. कालेज जालन्धर, महाशय कृष्ण, महात्मा आनन्दस्वामी, आचार्य भगवान् दास (डी. ए.-

वी. कालेज अम्बाला) स्वामी आत्मानन्द (सर्वाधिकारी हिन्दी रक्षा समिति पञ्जाब) महाबलाधिपति केशव चन्द्र, श्री लक्ष्मी दत्त दीक्षित, श्री यज्ञदत्त, और हरदेव सहाय आदि प्रमुख थे।

कार्यकारिणी के १७ सदस्यो तथा १५ आमन्त्रित जनो ने बैठक में भाग लिया। बैठक की अध्यक्षता सभा के प्रधान श्री स्वामी अभेदानन्द जी ने की।

श्री स्वामी जी महाराज हिन्दी आन्दोलन की प्रगति, प्रशासन के अत्याचार और समय पर उचित परामर्श देने, के लिये कभी दिल्ली, कभी चण्डीगढ, और अम्बाला आते-जाते रहते थे। समाचार पत्रो द्वारा जनता को यह सूचना दे दी जाती थी कि स्वामी जी महाराज किस दिन कहाँ पर हैं, जिससे किसी को उनसे वैयक्तिक रूप में मिलना हो, तो मिल सके।

१९ जून की घटनाओ के विषय में स्वामी जी नें कहा कि जिस प्रकार के ढंग पजाब प्रशासन अपना रहा है, उसे देख कर मुझे बड़ा धक्का लगा। सत्याग्रही पूर्ण रूप से शान्त और संयत थे, वे उत्तेजक समाघोष भी नही लगा रहे थे।

अखिल भारतीय रामराज्य परिषद् के अध्यक्ष श्री करपात्री जब अपना दल लेकर चण्डीगढ पहुँचे, तब श्री स्वामी आत्मानन्द जी वही थे। उन्होने २१ जून को स्वामी करपात्री जी के हिन्दी सत्याग्रह मे सम्मिलित होने तथा एक दल का नेतृत्व करनें का स्वागत किया।

स्वामी जी ने आयोजित एक सभा मे कहा कि हिन्दी को पजाव मे उसका उचित स्थान दिलाने के लिये संन्यासियो के महान् स्तम्भ श्री करपात्री जी महाराज का हिन्दो सत्याग्रह में सम्मिलित होना अति प्रशंसनीय और हर्ष का विषय है। स्वामी जी अखिल भारतीय रामराज्य परिषद् के अध्यक्ष है।

अब आवश्यकता इस बात की है कि आर्य समाजी और सनातनी दोनो मिल कर काम करे, तो शीघ्र सफलता होगी। स्वामी करपात्री जी को अपना एक प्रतिनिधि हिन्दी रक्षा समिति मे भी भेजना चाहिए। इससे दोनो का समन्वय हो जायेगा।

श्री स्वामी करपात्री जी के दल मे से जहाँ अन्य व्यक्तियाँ प्रगृहीत हुई, वहाँ स्वामी परमानन्द जी के अतिरिक्त विज्ञानानन्द जी विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री स्वामी विज्ञानानन्द जी ही आन्दोलन के सर्वा-

धिकारी स्वामी आत्मानन्द जी की सेवा मे रहते थे। परिचर्या के लिये रुपये भी उन्ही के समीप थे। वे भी सब साथ ही चले गये। उनके प्रगृहीत हो जाने से महाराज की शुश्रूषा में कुछ कठिनाई उपस्थित हुई। पश्चात् सेवाप्रेमी श्री रामप्रसाद जी (उपदेशक विद्यालय के छात्र) को परिचर्या में नियुक्त कर दिया गया।

१३-६-५७ को प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने स्वामी जी को जो पत्र अपनी विदेश यात्रा पर जाने से पूर्व लिखा था, उसकी एक प्रति मुख्य मन्त्री पंजाब राज्य को भी भेजी थी। उस पर ये शब्द लिखे थे—"समाचार पत्रो मे देने के लिये नही।" परन्तु जब मुख्य मन्त्री से हिन्दी आन्दोलन सभलता दिखाई नही दिया, तो उन्होने, उस पत्र को २३ जून के समाचार पत्रो मे दे दिया। फिर स्वामी जी के लिये भी उसका प्रतिवाद करना आवश्यक हो गया। क्योकि विरोधी तत्त्वो की ओर से यह समाचार हिन्दी रक्षा समिति में आने लगे कि आर्य समाज को अब अपना आन्दोलन लौटा लेना चाहिये। किन्तु सत्याग्रह को जिस दृष्टि से श्री नेहरू ने परखा था, वह सर्वथा असङ्गत थी; अत श्री स्वामी जी की अध्यक्षता मे हिन्दी रक्षा समिति अम्बाला ने परामर्श किया और अखिल भारतीय हिन्दी प्रेमी जनता को सूचित किया कि यतः प्रधान मन्त्री नेहरू द्वारा स्वामी आत्मानन्द सरस्वती को लिखे पत्र मे इस विवाद मे मूलभूत बाते नही मानी गई है, अत समिति को आन्दोलन हटा लेने का कोई कारण दिखायी नही देता।

स्वामी आत्मानन्द जी ने प्रधान मन्त्री के आरोप का खण्डन किया और कहा कि आर्य समाज का यह आन्दोलन पूर्णतया सास्कृतिक एव धार्मिक है और इसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नही है। आर्य समाज ने प्रशासन मे भी प्रतिनिधि वा विधान मण्डल में शासनाधिष्ठान जैसी कोई राजनीतिक माँग नही की है। वह तो केवल यह चाहता है कि राज्य के लोगो के एक भाग को अपनी धार्मिक भाषा पढने की स्वतन्त्रता दी जाय। प्रशासन हिन्दी की शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगा कर उन्हे सांस्कृतिक तथा धार्मिक स्वतन्त्रताओ से वञ्चित कर रहा है। मैंने प्रधान मन्त्री के साथ भेंट नही की, जैसा कि उनके पत्र मे लिखा है। उनसे शिष्टमण्डल मिला था, जिसमे महात्मा आनन्द स्वामी भी सम्मिलित थे, परन्तु शिष्टमण्डल उनके साथ वार्ता से सन्तुष्ट नही हुआ था।

प्रधान मन्त्री के इस कथन की चर्चा करते हुए कि माता-पिता को अपने बच्चो के लिए भाषा चुनने की स्वतन्त्रता दी गई है, आप ने कहा कि वह सुविधा सच्चर सूत्र की इस व्यवस्था से समाप्त हो जाती है कि यह सुविधा तब लागू होगी, जब किसी पाठशाला के चालीस छात्र वा किसी श्रेणी के कम से कम दस छात्र शिक्षा के उस माध्यम के लिये माँग करे। इन परिस्थितियो में पञ्जाबी भाषा भाषी क्षेत्र मे अधिकतर हिन्दू छात्र हिन्दी नही सीख सकेंगे; क्योकि अधिकतर बच्चे जो कि पाठशाला जाते हैं, प्रारम्भिक शिक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् पाठशाला छोड़ जाते है।

स्वामी जी ने कहा कि पहले ही पजाबी भाषा भाषी क्षेत्र में ६० प्रतिशत हिन्दी अध्यापको के स्थान पर अकाली लगा दिए गए हैं।

श्री नेहरू ने अपने पत्र में लिखा है कि दूसरी भाषा किस चरण पर पढाई जाये, इसका निर्णय शिक्षा आचार्यों पर छोड़ देना चाहिये। परन्तु उन्होने इसका निर्णय करने के लिए विशेषज्ञो के विषय मे कोई आश्वासन नही दिया।

स्वामी जी ने श्री नेहरू पर आरोप लगाया कि अकालियों को कांग्रेस मे लाकर इस सङ्गठन में साम्प्रदायिकता को प्रविष्ट किया गया है। प्रधान मन्त्रो ने इस तथ्य की ओर ध्यान नही दिया कि अकाली पहले अपने सङ्गठन के प्रति निष्ठावान् है पश्चात् कांग्रेस के प्रति। फिर उन्होंने अपनी पगड़ी नीली ही रखी है, श्वेत नही की। महाराज ने आगे कहा—श्री नेहरू ने पहले वार अपने पत्र मे हिन्दी रक्षा समिति को मान्यता दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री नेहरू केवल शक्ति को समझते हैं और जितनी अधिक शक्ति हो, वे उतने ही अधिक झुकते दीखते हैं। अब प्रशासन के साथ वार्ता पुनः तब प्रारम्भ हो सकती है, जब भाषा योजना मे अनिवार्यता के तत्त्व को हटा दिया जाये।

स्वामी जी ने प्रधान मन्त्री श्री नेहरू के पत्र के उत्तर मे आरक्षी+ के अत्याचारो का वर्णन करते हुए कहा कि इस समय जो सत्याग्रही जङ्गलो से लंगड़ाते और लड़खडाते लौट कर चण्डीगढ आ रहे हैं, उनके वक्तव्यो से पता चलता है कि आरक्षी+ ने उनको सिंह चीतो और अजगरो से भरे जङ्गल मे जाकर अंधेरी काली रातो मे

+पुलिस।

पटक दिया। श्रीमद्दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर के एक हृष्ट-पुष्ट ब्रह्मचारी अभयदेव ने मुझे बताया कि उसको आरक्षियो ने नालागढ के जङ्गल मे एक पर्वत पर एक बडे साँप के ऊपर पटक दिया। वह उस साँप पर सीधे पड़ने से अपने को बचाने में पत्थरो पर जा गिरा। वहाँ वह ऐसा फिसला कि उसकी कटि और नितम्ब भाग नितान्त घायल हो गये। उनमें स्थान-स्थान पर गहरे घाव हो गये। उसकी रीढ की हड्डी मे प्रबल पीड़ा हो रही है। एक पत्थर से टकराने से एक एड़ी पर से एक आङ्गुल× चौड़ा मांस उड़ गया है। आरक्षियों‡ ने वाहन÷ में सत्याग्रहियों को क्रूरता से पीटा, इसके भी अनेक परिवाद मिले है।

आरक्षियो ने सत्याग्रहियो को सताने के लिए यहाँ एक नया ढंग अपनाया है। जब आज १४ सत्याग्रही सचिवालय पर १० बजे प्रातः पहुँचे, तब उनको धक्के देकर घनी झाड़ियो में पटक दिया। आरक्षी‡ ने उनको प्रगृहीत नहीं किया। वे बिना भोजन और पानी के समाघोष# लगाते रहे।

२६ जून सन् १९५७ को चण्डीगढ से दैनिक वीर अर्जुन दिल्ली कार्यालय मे दूरभाष+ पर समाचार पहुँचा कि स्वामी आत्मानन्द जी का स्वास्थ्य अकस्मात् ही बिगड़ गया है। उनका तापांश १०३ है और वे पाँच-छः घण्टे से निरन्तर अचेत है। रुधिर-निपीड के कारण उनका शरीर सूजना प्रारम्भ हो गया है।

श्री स्वामी जी को एक चिकित्सक को दिखाया गया, जिसने उन्हे चिकित्सालय में प्रवेश करने का परामर्श दिया और रात्रि के आठ बजे उन्हे चिकित्सालय में प्रविष्ट कर दिया गया।

आचार्य रामदेव, प्राचार्य भगवान्दास, श्री ओम्प्रकाश और स्वामी जी के निजी सेवक श्री रामप्रसाद जी उनकी देखभाल के लिये चण्डीगढ मे उपस्थित रहे। रात्रि के दस बजे तक स्वामी जी की स्थिति मे कोई अन्तर नही पड़ा।

पीछे के समाचार से प्रतीत हुआ, कि उनकी स्थिति मे सुधार प्रारम्भ हो गया है।

स्वामी जी ने चिकित्सा कराते हुये कई वार यह इच्छा प्रकट की

×इञ्च। ‡पुलिस। ÷लारी। #नारे। +टेलीफोन

कि मैं एक वार ठीक हो जाऊँ, फिर सत्याग्रह को जीवन-प्रदान करने के लिए व्यापक पर्यटन करना चाहता हूँ।

हिन्दी से प्रतिबन्ध हटने तक सत्याग्रह चालू रहेगा

हिन्दी रक्षा सत्याग्रह के सर्वाधिकारी स्वामी आत्मानन्द जी ने २८ जून को चण्डीगढ में कहा कि मैं यह बात मानने को उद्यत हूँ कि हिन्दी के साथ पजाबी का विकास भी हो, परन्तु मैं इस बात के विरुद्ध हूँ कि अकाली इसे राजनीतिक प्रभुत्व का प्रतीक बनाये। महाराज ने आगे कहा कि अनिवार्यता से भाषा में प्रभुत्व स्थापित करने का तत्त्व आ जाता है। जब तक किसी भाषा में बाध्यता तथा अनिवार्यता रहती है, तब तक उसका विरोध रहता है।

प्रधान मन्त्री नेहरू के पत्र पर वक्तव्य देते हुये स्वामी जी ने कहा कि क्षेत्रीय योजना की इस धारा से कि पंजाबी प्रदेश मे मण्डल स्तर तक सम्पूर्ण राजकीय कार्य पजाबी में होगा, हिन्दी पर प्रतिबन्ध लग जाता है। ससार के किसी भाग मे राष्ट्र भाषा पर इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नही। जब तक राष्ट्र भाषा प्रयोग करने का मौलिक अधिकार हमे नही मिलता और हम दोनो क्षेत्रो मे स्वतन्त्रता पूर्वक इसका प्रयोग नही कर सकते, तब तक कोई समझौता सम्भव नही। हम अकालियो के समान भाषा को राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने का साधन नही बनाना चाहते। पजाबी भारत की भाषा है। हमारा इससे कोई झगडा नही। हम केवल इतना चाहते है कि बाध्यता समाप्त कर दी जाये।

प्रशासन के अत्याचार एव हठ धर्मी को देख कर न्याय का आसन ऊँचा करने के निमित्त हिन्दी प्रेमी जनता का उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। कविरत्न रामभरोसे लाल के मुख से भी निकल पड़ा—

कण-कण से यह नाद उठा है सह सकते अन्याय नही,
हिन्दी भाषा अजर अमर है सह सकते अपमान नही।
जाग चुका है बच्चा बच्चा मा की लाज बचायेगा,
बोध लिया है जिस माता से उसका मान बढायेगा।
हिन्दी भाषा के ऊपर तो जन-जन शीश कटायेगा,
देश के कोने कोने से जत्थे पै जत्था आयेगा।

हिन्दी का अपमान देखकर रह सकते चुप चाप नही,
हिन्दी भाषा अजर अमर है सह सकते अपमान नही।
शस्य श्यामला भारत की हिन्दी भाषा अति प्यारी है,
हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई सब की ही हितकारी है।
गुरु-ग्रन्थ और रामायण की इसने की रखवारी है,
कोटि-कोटि भारत वीरो को प्राणो से भी प्यारी है।

उसी मात के लिये, आज क्या हो सकते बलिदान नही।
हिन्दी भाषा अजर अमर है सह सकते अन्याय नही।
कैरों की अन्याय नीति ना यहाँ पर अब चल पायेगी,
दुष्ट शृगालों की धमकी भी आज कुचल दी जायेगी।
अन्याय करे जो प्रजा पर वह राज्य स्वयं मिट जायेगा,
कोटि-कोटि बहुमत के आगे शठ-धर्मी झुक जायेगा।

क्यों कर यह अन्याय सहे हम, कहलाते क्या पुरुष नही
जब तक अन्तिम बिन्दु रुधिर का, सह सकते अन्याय नही।

३० जून को जालन्धर मे आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य प्रादेशिक सभा, सनातन धर्म सभा, जैन सभा, और पजाब के विभिन्न नगरो की हिन्दी रक्षा समितियो के प्रतिनिधियो की एक सभा हिन्दी रक्षा समिति के प्रथम सर्वाधिकारी स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की अध्यक्षता में ३ बजे मध्याह्नोत्तर आङ्गल संस्कृत उच्च विद्यालय में हुई, जिसमें प्रमुख नेताओ के अतिरिक्त लगभग ६०० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इससे पूर्व प्रातःकाल आर्य प्रतिनिधि सभा और आर्य प्रादेशिक सभा की कार्यकारिणी की एक संयुक्त बैठक मे हिन्दी रक्षा आन्दोलन के विषय पर लम्बे समय तक विचार विमर्श के पश्चात् महत्त्वपूर्ण निर्णय किये गये।

कांग्रेस के अध्यक्ष श्री ढेबर, श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति, महात्मा आनन्द स्वामी, प्राध्यापक शेरसिह जी ने नेहरू के पत्र के आधार पर श्री स्वामी जी से हिन्दी आन्दोलन वापिस लेने के लिये पत्र और दूरलेख दिये; किन्तु स्वामी जी, जो एक विशाल हिन्दी जनता का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, उनके हार्दिक विचारो का ध्यान रखते हुये, आन्दोलन चालू रहेगा, यह घोषणा सतत करते रहे।

श्री स्वामी आत्मानन्द जी की इस घोषणा से हिन्दी प्रेमी श्री प्राध्यापक शेरसिंह जी ने कांग्रेस को छोड़ना तो स्वीकार कर लिया

किन्तु पजाब में हिन्दी घातक नीति को प्रोत्साहन नही दिया, और आन्दोलन के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चलने लगे।

श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी ने भी अपने गुरुदेव की उपर्युक्त घोषणा का समुचित आदर करते हुये इतनी तत्परता से कार्य किया, मानो आन्दोलन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उन्ही पर हो। उनकी करनी और कथनी पुष्पमाला की एक लड़ी के दो केन्द्र महापुष्प थे, जो परस्पर एक दूसरे की शोभा बढा रहे थे।

रुधिर-निपीड से जर्जरित होते जाते शरीर की अवस्था मे भी स्वामी आत्मानन्द जी द्वारा सत्याग्रह को अविकल रूप से आगे बढते देख दूरवर्ती लश्कर निवासी श्री भारतभूषण त्यागी का हृदय स्रोत महाराज के अभिशसन मे कविता रूप मे बह निकला—

हिन्दी का हित तुझ को है, तू ऋषि का अनुयायी है।
आपत्ति मे बढने की,—क्षमता तूने पाई है॥
अङ्गारो से हँस-हँस कर, तू खेल रहा वलिदानी।
जीवित हुतात्म होने की, तेरी है करुण कहानी॥१॥

सर्वोच्च शिखर को तूने, निर्भय हो ललकारा है।
सत्ता-मदान्ध से टक्कर लेने का व्रत धारा है॥
सद्भाव यात्रा तेरी जो बिन्दु रूप में आई।
जनता का महासिन्धु बन वह, भारत भर मे लहराई॥२॥

रुधिरपीड को पीछे कर, तू आगे बढता जाता।
हा, रुधिरपीड के क्रम मे, प्राणो को होम चढाता॥
कृशता से लड़कर-भिडकर, ऋषि-थाति तुझे बचानी।
निर्बलता क्या कर लेगी, आत्मिक वल के सेनानी॥३॥

कल तक जो त्यागी थे वे रागी बन फूल चुके हैं।
तुझको समझाने वाले, अपने को भूल चुके है॥
कहने और करने की—सच बिगडी परिपाटी है।
है पञ्चशील जिह्वा पर, युग हाथो मे लाठी है॥४॥

कितना दुरूह होता है, अपनो को मार्ग बताना।
इस आन्दोलन के कारण यह ठीक-ठीक है जाना॥
अपनो की दुश्चालो से, विभ्रम प्रतिपल होता हैं।
अपनो से न्याय मागना, कितना दुष्कर होता है॥५॥

प्रतिकूल परिस्थितियों का, ऐसा प्रवाह बहा है।
हा ! नाविक ही घबरा कर, नौका को डुबो रहा है ॥
बिताकर वयः अठत्तर तूने उसको समझाया ।
ले पतवार विवशता में नौका को स्वयं चलाया ॥६॥
ओ ! कर्णधार मत घबरा, सबने सङ्कल्प किया था ।
जब कोटि-कोटि हाथों ने, चप्पू को हाथ लिया था ॥

सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति की बैठक का निश्चय ।

समिति ने श्रीयुत पं० जवाहरलाल जी के १३ जून १९५७ के पत्र पर, जो श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज को भेजा गया था और जिसमें हिन्दी आन्दोलन को बन्द किये जाने का उनसे तथा आर्य समाज से पुनरावेदन किया था ८-७-५७ की अपनी बैठक में उस आधार पर विचार किया, जिसके अधिकारी हमारे प्रधान मन्त्री हैं।

प्रधान मन्त्री महोदय के पत्र की शैली और इस आन्दोलन की शीघ्र समाप्ति की उनकी सदिच्छा का आदर करते हुये भी समिति को इस बात का खेद है कि उनका पुनरावेदन निम्नलिखित ३ विवादास्पद बातो पर आधारित है कि:—

(१) आर्य समाज साम्प्रदायिक दलो और समुदायो के हाथों मे उनके राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए खेल रहा है।

(२) वास्तव में यह विवाद भाषा सम्बन्धी नही है, भाषा का केवल बहाना बनाया गया है।

(३) वास्तव में कोई बाध्यता नही है, जिसका परिवाद किया जाता है।

यह समिति प्रधान मन्त्री महोदय और सर्व साधारण जनता पर स्पष्ट कर देना चाहती है कि जहाँ तक आर्य समाज का सम्बन्ध है, वह इन आरोपो का पूर्णतया खण्डन करता है।

आर्य समाज ने अपने को कभी भी साम्प्रदायिक वा राजनीतिक दलो के द्वारा प्रयुक्त नही होने दिया है और न वह कभी ऐसा होने देगा।

निस्सन्देह आर्य समाज विविध वर्गों से मूल्यवान् तथा प्रचुर साहाय्य प्राप्त कर रहा है और उनमे वे व्यक्तियाँ भी सम्मिलित हैं, जो आर्य समाज की सदस्य नही। हमें उनका आभार मानना चाहिए, क्योंकि वह सहायता स्वेच्छा से विना किसी वाचनिका के और सत्याग्रह के

लिये नियत आर्य समाज के अनुशासन के भीतर रहते हुए दी जा रही है।

आर्य समाज का आन्दोलन विशुद्ध भाषा समस्या के समाधान तक सीमित है। इसकी आड़ मे और वस्तु नही है। यह समिति प्रधान मन्त्री और जनता को यह आश्वासन देती है कि आर्य समाज की मागो को, जो न्याय्य है, पूर्ति हो जाने पर आर्य समाज सत्याग्रह बन्द कर देगा।

वास्तव में बाध्यता नही है, इस स्थापना के सम्बन्ध मे यह समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि वस्तुस्थिति से परिचित जन यह जानते हैं कि पजाब में जो बाध्यता थोपी जा रही है, वह भारतीय सङ्घ के अन्य किसी द्विभाषी राज्य में नही पाई जाती अर्थात् बहुसङ्ख्यकों के विद्यार्थियो को अल्पसङ्ख्यको की भाषा में पढने के लिए विवश करना। जो भाषा किसी जाति तथा वर्ग पर उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात् लादी जाती है, उसका विरोध अवश्य होता है। मुख्यतया उस दशा मे, जब कि वह भाषा राजनीतिक वा साम्प्रदायिक कारणो से बलात् लादी जाए।

समिति एक और बात कह देना चाहती है और वह वास्तविक प्रादेशिक सूत्र की उस धारा से सम्बद्ध है, जो मण्डल और उससे नीचे के स्तर पर समस्त प्रशासकीय कार्य मे केवल एक भाषा का प्रयोग अनिवार्य ठहराती है। इससे राज्य कर्मचारियो पर अनावश्यक प्रतिबन्ध लगता है और वे अपनी रुचि की भाषा के प्रयोग से वञ्चित हो जाते है। इस प्रकार उन स्थानो में भी जहाँ हिन्दी भाषा भाषी जनता अधिक सङ्ख्या मे निवास करती है, हिन्दी समस्त राजकीय कार्यों मे प्रयुक्त होने से वञ्चित हो जायेगी।

क्या हम श्री पण्डित जी, श्री ढेबर भाई और काग्रेस के अन्य महारथियो से पुनरावेदन कर सकते है कि वे इस बात को देखे कि सच्चर सूत्र द्विभाषी राज्यो में भाषाओ के प्रयोग से सम्बद्ध काग्रेस कार्य कारिणी समिति के अगस्त १९४९ के प्रस्ताव की सीमाओ के भीतर सीमित क्यो नही है? पेप्सू व्यवस्था के नाम से सम्बोधित की जाने वाली व्यवस्था क्यो प्रचलित है? यह न केवल काग्रेस कार्य कारिणी समिति के उपर्युक्त प्रस्ताव के ही, अपितु भारतीय सविधान की धारा स० ३५० (अ) के भी विरुद्ध है? फिर ये सब व्यवस्थाये पजाब ही मे क्यो?

समिति को यह प्रकट करते हुये दुःख होता है कि बहुसङ्ख्यक जन यह अनुभव करते हैं कि काग्रेस समिति के प्रस्ताव के उल्लङ्घन पूर्वक इन सूत्रों का प्रचलन और निर्माण कराके कांग्रेस ने साम्प्रदायिकता के आगे घुटने टेक दिये है। समिति को इस बात का तनिक भी सन्देह नही है कि यदि पण्डित जी और काग्रेस के अन्य नेता हमारे पुनरावेदन पर शान्ति से और निष्पक्ष भाव से विचार करेंगे, तो वे इस बात को देखेंगे कि आर्य समाज का पक्ष पूर्णतया ठीक है एवं वह संविधान की धारा तथा कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव के अन्तर्गत है।

वर्तमान स्थिति मे इस समिति को उस प्रशसनीय कार्य मे जो हिन्दी रक्षा समिति कर रही है, अपना योग अवश्य प्रदान करना चाहिये। जनता की यह प्रबल माँग है कि पंजाब प्रशासन के उत्तेजनात्मक पक्ष विशेषत संन्यासियो एव स्त्रियों सहित शान्त और अहिसात्मक सत्याग्रहियो के प्रति किये गये अभद्र व्यवहार को देखते हुये सत्याग्रह को उग्र किया जावे और उसे वर्तमान साङ्केतिक सत्याग्रह तक सीमित न रखा जावे, परन्तु यह समिति अपने प्रधान मन्त्री के पुनरावेदन का आदर करते हुये इस आशा के साथ कि प्रधान मन्त्री के विदेश से लौट आने पर न्याय युक्त समाधान का कोई मार्ग निकल आयेगा, इस समय सत्याग्रह के विस्तार का परामर्श न देगी।

कांग्रेस की उच्च भावनाएँ कहाँ गई ?

आन्दोलन के सर्वाधिकारी स्वामी आत्मानन्द जी ने अपना वक्तव्य अभिव्यक्त करते हुए कहा "मैं कुछ काल से रुग्णावस्था मे पड़ा हुआ हूँ। परन्तु ऐसा होते हुए भी समाचार पत्रो तथा अपने साथियो द्वारा आन्दोलन की प्रगतियो के सम्बन्ध मे पूर्ण वोध रखता हूँ। मुझे खेद है कि कई कॉग्रेसी भाई, तथा अकाली नेता कई प्रकार की भ्रम सूचक बाते आन्दोलन के विषय मे कह जाते हैं, जिनमे से कई सर्वथा असत्य तथा निराधार होती हैं, जिनको पढ कर अत्यन्त खेद होता है और यह जान कर निराशा भी होती है कि काग्रेस जैसे उत्तरदायित्व सम्पन्न राजनीतिक दल की व्यक्तियो मे भी ऐसी अनुत्तरदायित्व पूर्ण भावनाये क्यो प्रविष्ट हो रही है। चाहिये तो यह था कि उनके हृदय मे ऐसी उदार भावनाये जागरित होती; जैसे उच्च स्तर की भावनायें पूज्य महात्मा गांधी जी किसी समय प्रकट किया करते थे। वह दिन

आँखो के समक्ष दीख रहा है, जब पूज्य महात्मा गाँधी जी और उनके अनुयायी राजनीतिक नेताओ ने भी मातृभाषा हिन्दी के सिर पर राष्ट्रियता का मुकुट बाँधा था और वह समस्त देश मे मातृभाषा हिन्दी की पूजा देखने के इच्छुक थे।

परन्तु आज कल कितने ही कांग्रेसी महानुभाव स्थान-स्थान पर देखने मे आ रहे है, जो राष्ट्रभाषा हिन्दी का उत्थान देखने के इच्छुक ही नही। चाहिये तो यह था कि आज देश की उन्नति तथा राष्ट्र की एकता का ध्यान रखते हुये कांग्रेस के नेता आज के साम्प्रदायिकता-युक्त वातावरण मे साम्प्रदायिकता की भावनाओ को त्याग कर उसके स्थान पर असाम्प्रदायिक भावनाओ का उदय करते। मैं समझता हूँ, कि यदि ऐसा किया जाता, तो जाति मे साम्प्रदायिकता के कलह जैसे भाव कभी जागरित ही न होते। फिर तो हम भारतीय अपने आपको हिन्दू और सिक्ख की दृष्टि से न सोचकर भारतीयता के नाते एक दूसरे का आदर करते हुए दिखाई देते। उस समय मैं समझता हूँ हिन्दी और पजाबी जैसे भेद भाव कभी देखने को ही न मिलते परन्तु परिस्थिति ऐसी बनाई न गई; अपितु साम्प्रदायिकता की भावनाओ को बल दिया गया और समय-समय पर उसकी जडो को पनपने का अवसर दिया गया। कितने ही राजनीतिक नेताओ की ओर से भी ऐसी स्थिति को जागने देने का अवसर दिया गया और सत्य तथा वास्तविक माँगो को भी उचित स्थान न देकर उनको ठुकराने की चेष्टा की गई। जिसे देख और सुनकर मुझे अत्यन्त खेद होता है। ऐसे अवसरो पर कई कांग्रेसी सज्जनो ने उन अयथार्थ भावनाओ का प्रचार भी किया है, जिनका मैं बलपूर्वक विरोध करता हूँ। वे ये है —

(क) कांग्रेस के कुछ मन्त्री तथा अन्य अकाली लोग पाकिस्तान की ओर से आक्रमण के भय की घंटी बजा-बजा कर हमारी साँस्कृतिक भावनाओ को दबाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे है। उसका हमारे इतिहास और कार्य-क्रम से ताल-मेल नही खाता। हमारा इतिहास देश-भक्ति से भरी हुई भावनाओ से ओत-प्रोत है। देश-भक्ति मे हम कभी न पीछे रहे है और न रहेगे। यह सम्पत्ति हमारे निकट जन्म सिद्ध अधिकार के रूप मे रही है, अत. इस विषय मे किसी को भ्रम नही रहना चाहिये।

(ख) कुछ कांग्रेसी नेता और मन्त्री गण इस बात की डोण्डी पीट रहे है कि हमने पजाब मे हिन्दी भाषा को उचित स्थान दिला दिया

है और वह स्थान वही है, जो उसे प्रादेशिक-सूत्र के रूप में मिला है। परन्तु यह कहना कि हिन्दी को उचित स्थान मिल गया है, सर्वथा असत्य है। हम तो यह समझते हैं कि हिन्दी पञ्जाब के बहुसङ्ख्यक लोगो की मातृ-भाषा और सांस्कृतिक भाषा है। इसलिये जब तक इस भाषा को अपना यह उचित स्थान न मिल जावे, तब तक हमारा सङ्घर्ष चालू रहेगा। इस प्रकार किसी की मातृ-भाषा के पढने तथा प्रयोग करने पर प्रतिबन्ध लगाना न हम किसी दूसरे पर होता हुआ सहन करेंगे और न अपने ऊपर किसी को करने देंगे। ऐसा करने के लिये हम कटिबद्ध हैं। इसमे किसी को भ्रम न रहे। अतः हम आशा करते हैं कि विना आरोप लगाए हमारी उचित माँगो को स्वीकार किया जाये और एक सर्वथा नई भाषा हमारे ऊपर प्रशासन बल के आधार पर न ठोंसी जाये। किसी अन्य भाषा की स्वीकृति को मित्र वर्तन के ढग से ही हम मान सकेंगे, राज्य-प्रभाव से नही।

(ग) कुछ अकाली नेता यह भ्रम फैला रहे हैं कि हमारी माँगे सिक्खो तथा गुरुमुखी के विरुद्ध हैं, यह सर्वथा असत्य है। न हमारा सिक्खो से कोई विरोध है, और न गुरुमुखी से। हमें यह पढकर दुःख हुआ है कि हमारी सद्भावनाओ को गुरुमुखी और सिक्खों के विरुद्ध कहकर हमारी सद्भावना तथा मान प्रतिष्ठा को धक्का लगाया जा रहा है। यह एक प्रकार की हमारी पवित्र धारणाओं के प्रति प्रत्यक्ष विरुद्ध प्रचार है। इससे हमारी भावनाओं पर लाञ्छन तो नही लग सकता; परन्तु इस प्रकार की धारणाएँ देश मे साम्प्रदायिकता का अग्नि अवश्य प्रज्वलित कर सकती हैं। फिर भी हमारा उपाय शान्ति की स्थापना की ओर रहेगा।

(घ) कई वार राज्य कर्मचारियो तथा अकाली नेताओ से सुनने मे यह आया है कि आन्दोलन पर हिन्दी रक्षा समिति का पूर्ण अधिकार नही रहा है; प्रत्युत वह सर्वथा जनसङ्घ के हाथ में चला गया है इससे वड़ा झूठ कदाचित् हमारे भाई नही वोल सकते थे। आज देश का वच्चा-वच्चा तथा पञ्जाब के सवके सव हिन्दू ही नही, अपितु वहुत से सिक्ख भाई भी आर्य समाज की इन उचित मांगों के साथ हैं। ऐसे कुछ लोग रह गये होंगे, जिनका साक्षात् प्रशासन से सम्बन्ध है, वे हमारे साथ हिन्दी के स्वर मे स्वर न मिलाकर वोल रहे होंगे। हिन्दी रक्षा समिति की छाया के नीचे रहकर कार्यक्रम मे भाग लेने वाले वे ही लोग हैं, जो हिन्दी के साथ प्रेम रखते हैं और इसलिये सम्भव है

यह विपरीत धारणा बहुत से लोगो ने अपना ली है, कि हिन्दी का आन्दोलन जनसङ्घ के हाथ मे चला गया है। ऐसे लोगो को यह ज्ञात नही होता कि कांग्रेस विरोधी दलो को हिन्दी आन्दोलन मे लाने वाला कांग्रेस का वह निश्चय है, जिसमें उन्होने हिन्दी प्रेमियों की भावनाओ को दबाने के लिये कांग्रेसियों को आदेश भेजा है, जब कि सरदार हुक्मसिह तथा ज्ञानी करतारसिह के हिन्दी विरोधी चालो पर वे सदैव चुप रहे हैं। हिन्दी के साथ प्रेम करना आज पजाब मे पाप बन चुका है ! कितने ही हिन्दी प्रेमी कांग्रेस से निकाले जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी समाचार प्रताप और वीर अर्जुन पर प्रतिबन्ध भी इसी के कारण लगाया जा चुका है।

(च) कई सज्जन हमारे ही मित्र बन कर ऐसी भावनाओ का प्रचार कर रहे है, जिनसे यह प्रतीत होता है कि हम बातचीत का मार्ग छोड़कर सत्याग्रह के मार्ग पर चलने के अपराधी हैं। उनका यह कहना सर्वथा असत्य है। उन ऐसे हिन्दी प्रेमियो को प्रशासन से पूछना चाहिए कि पूर्ण एक वर्ष की हमारी प्रतीक्षा कहाँ गई, उस समय जब कि हम समझौते के लिये द्वार-द्वार घूमते रहे। इतना ही नही, अपितु हमें समभौते के लिये मास्टर तारासिह जी का द्वार दिखाया जाता रहा। क्या यह हमारा घोर अपमान नही था और समभौते के लिये हमारी ओर से नही, अपितु मास्टर तारासिह जी आदि अन्य लोगो की ओर से उपेक्षा दिखाई जाती रही। प्रशासन तथा अकालियो की यह नीति होते हुये भी हमारे ऊपर समझौता न करने का दोष लगाना किसी को कैसे शोभा देता है ?

(छ) मैं इस बात को भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कुछ अकाली नेता जिनके समीप हमारी मागो के विरोध की कोई युक्ति नही है, वे सरोवरो मे सिगरेटो के फैंकने का बहाना करके तथा अन्य प्रकार के झूठे तथा निराधार आरोप लगाकर सीधी साधी सिक्ख जनता को उभार रहे हैं। यह जो कुछ वे कर रहे हैं, यदि सत्य भी है, तो यह किसी भी हिन्दी प्रेमी का कार्य नही है, जो कि किसी मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे वा किसी भी पवित्र स्थान की ओर अपवित्र भावना रखता है। वह हमारी घृणा का पात्र है। हम किसी भी प्रकार से ऐसे सज्जन को अपने सम्मुख न आने देगे। मैं इस बात को बडे उत्तरदायित्व के साथ कह रहा हूँ।

(ज) मुझे बहुत दुःख है कि पजाब प्रशासन तथा आरक्षी हमारे सत्याग्रहियो से कई प्रकार का दुर्व्यवहार तथा अत्याचार कर हमारे हृदयो को ठेस पहुँचा रहे है। आर्य समाज के श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी तथा सनातन धर्म के श्री स्वामी करपात्री जी जैसे महात्माओं का अपमान करना, सत्याग्रहियों को घसीट-घसीट कर आरक्षि सवृत्त-यान मे भरना, सत्याग्रह के लिये बाहर से आती हुई देवियो के जत्थे को एवं अन्य सत्याग्रहियों को रात्रि के समय घण्टो भूखा तथा प्यासा रखना और श्री सभ्रवाल जी को घातक चोट पहुँचाना—ये नित्य प्रति की घटनाये हमारे रोप को बढा रही है। गणतन्त्र राज्य मे इस प्रकार के अत्याचार तथा अन्याय हिन्दी विरोधी नीति का एक उदाहरण है। मुझे यह जानकर भी बहुत दु.ख हुआ कि अकाली नेता मास्टर तारा-सिंह जी ने अकालियो को १५ अगस्त के शुभ अवसर पर हिन्दू विरोधी सभाये करने का आदेश दिया है। मैं सब हिन्दू भाइयो से प्रार्थना करूँगा कि वे १५ अगस्त के सुअवसर पर सर्वथा शान्त रहे तथा आशा करता हूँ कि कांग्रेसी भाई और अन्य राज्य कर्मचारी-गण भी उस दिन शान्ति-स्थापना मे पूर्ण सहयोग देगे।"

अम्बाला छावनी पंजाबी मुहल्ले के अधिवासी श्री लालचन्द जी चिकित्सक अपने समस्त परिवार सहित सत्याग्रह कार्य में सलग्न थे। इस कारण पजाब प्रशासन ने श्री लालचन्द जी को प्रगृहीत कर लिया। स्वामी जी ने विचारा कि मेरा इनसे सम्बन्ध रहने पर पजाब राज्य की आँखें इनके परिवार पर भी गडी हुई हैं, अतः मुझे इनके निकट से दूर हो जाना चाहिए। जब उस भक्त परिवार को इस वार्ता का बोध हुआ, तो सम्पूर्ण परिवार ने महाराज से विनम्र निवेदन किया कि चाहे हमारे परिवार का एक-एक सदस्य प्रगृहीत हो जाये; पर हमारे पर कष्ट आने की भावना से आप हम से दूर ठहर कर सत्याग्रह का सञ्चालन करे, यह हमें सह्य नही है। हिन्दी-रक्षा-आन्दोलन मे हमारा योगदान हमारे ही कर्त्तव्य पर निर्भर है और वह हमे अभीष्ट है।

सर्वथा औचित्य पर आधारित हिन्दी सत्याग्रह विषय का पाठक-गण जिस औदार्य से विश्लेषण कर रहे है, नवभारत टाइम्स (दिल्ली) का सम्पादकीय लेख भी २३-७-१९५७ के अपने पत्त्र मे उसी बात को उद्घोषित करता है। वह लिखता है:—

"पंजाब हिन्दी रक्षा समिति के प्रधान श्री स्वामी आत्मानन्द ने

पं॰ नेहरू को जो पत्र भेजा है, वह वैसा ही सद्भावना एव मैत्रीपूर्ण है जैसा कि पं॰ नेहरू ने गत मास अपनी यूरोप-यात्रा से पूर्व भेजा था। उसमे लिखे चार सहस्र शब्दो मे उन्होने जो भाव व्यक्त किये हैं, उनसे साम्प्रदायिकता अथवा राजनीतिक लाभ-अर्जन का कही कोई गन्ध नही आता। वे एक सत्यनिष्ठ राष्ट्र एव सस्कृति प्रेमी हृदय का ध्वनि-मात्र प्रतीत होते है। उनसे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनकी गहन आस्था और पजाबी के प्रति उनका प्रेम दोनो ही प्रकट है। वह पत्र भाषा-सम्बन्धी इस विवाद को सुलझाने की दिशा मे एक अत्यन्त विवेकपूर्ण पग है। इसमे न तो कोई धमकी है और न ही बुद्धि-हीन हठ। है केवल सत्यनिष्ठ दृढता। हमे विश्वास है कि जिस सद्भावनापूर्ण ढग से वह लिखा गया है यदि उसी सद्भावना से उस पर विचार किया गया तो गत कुछ समय से पजाब मे भाषा सम्बन्धी जो अप्रिय विवाद चल रहा है और जिसके कारण राज्य की शान्ति अस्त-व्यस्तता मे पड गई है, वह समाप्त हो जायेगा।

पं॰ नेहरू ने अपने पत्र मे दो बाते कही थी—एक तो यह कि दूसरी भाषा कब और किस स्तर से पढ़ाई जाय, इसका निर्णय भाषा-विद् कर ले। उन्होने दूसरी भाषा पढाये जाने की अनिवार्यता पर वल दिया था। दूसरे उन्होने यह व्यक्त किया था कि यदि मण्डल और मण्डल स्तर से नीचे पजाब के पजाबी भाषा भाषी प्रदेश मे भी हिन्दी को पजाबी के समान स्थान दिया गया तो उससे कई लाख का व्यय बढ जायेगा। पण्डित जी की ये बातें तो ठीक हैं, परन्तु स्वामी जी ने उनका जो उत्तर दिया है, वह विचारणीय है और एक अच्छा मध्यम मार्ग बन सकता है।

राज्य मे द्वितीय भाषा पढ़ाये जाने के विरोध मे कोई नही है, और स्वामी जी ने भी अपने पत्र मे यही बात व्यक्त की है। उन्होंने प्रधान मन्त्री के इस सुझाव का स्वागत किया है कि दूसरी भाषा किस स्तर से पढाई जाये, इसका निर्णय शिक्षावित् करे, परन्तु इसके साथ ही दो बातो पर बल दिया है—एक तो यह कि दूसरी भाषा कौनसी हो उसका चुनने का अधिकार माता-पिता पर छोड दिया जाये और दूसरी भाषा के साथ अनिवार्यता की सविदा हटा दी जाये। हमारी सम्मति मे स्वामी जी का कथन वहुत ही न्यायसङ्गत है। प्रशासन को तो अधिक से अधिक यही अभीष्ट हो सकता है कि छात्र एक से अधिक भाषा सीखे। उसके लिये एक भाषा के ही सीखने का

आग्रह क्यो होना चाहिये ? दूसरे, यदि पजाबी को ही द्वितीय भाषा का स्थान प्राप्त हो, तो माता-पिता अथवा छात्र की अनिच्छा पर उसके साथ अनिवार्यता की संविदा क्यो होनी चाहिये ? कोई भी प्रशासन किसी भाषा को किन्ही लोगो पर बलात् थोप कर नही सिखा सकता। यह काम प्रेम और सद्भावना से ही हो सकता है और सद्भावना बाध्यता से कभी उत्पन्न नही होती।

पंजाब के पजाबी भाषी क्षेत्र में मण्डल तथा मण्डल स्तर से नीचे का कार्य हिन्दी मे किये जाने की छूट से व्यर्थ का व्यय बढ जाने की जो बात है, उसके सम्बन्ध में भी स्वामी जी का उत्तर बुद्धिगम्य है। उन्होने कहा है कि "यदि इस व्यय से उभय पक्ष सन्तुष्ट होते हों, तो इस व्यय को वहन कर लेना चाहिये।" यद्यपि आजके अर्थ-सङ्कट के समय मे अतिरिक्त व्यय-वहन की बात कुछ विचित्र प्रतीत होती है, पर हिन्दी की प्रतिष्ठा को स्थिर रखने तथा राज्य की अशान्ति के वातावरण को समाप्त करने के लिये इतना मूल्य चुकाना कोई बडी बात नही है। शान्ति का मूल्य अन्य सब मूल्यो से अधिक है।

पहले यह सब काम-काज मुख्यतः अंग्रेजी मे होता था। अग्रेजी तब राज्य भाषा थी। अब राज्यभापा हिन्दी है। फिर अब हिन्दी को वह स्थान क्यो नही दिलाया जाना चाहिये ? वह स्थान पजाबी ग्रहण करे—इसकी पुष्टि में कोई तर्क नही है। हमें विश्वास है कि स्वामी जी के पत्र से पण्डित जी को यह विश्वास हो जायेगा कि हिन्दी आन्दोलन के पीछे न तो साम्प्रदायिकता है, और न राजनीति। और वह एक ऐसी स्थिति उत्पन्न करने में सहायक होगा, जिससे इस अप्रिय विवाद एवं आन्दोलन का शान्ति पूर्ण अन्त हो जायेगा।"

२४ जुलाई को हिन्दी आन्दोलन के सर्वाधिकारी श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने अपने वैदिक साधन आश्रम यमुना नगर में वरिष्ठ नेता प्राचार्य भगवान्दास, प्राध्यापक श्री नारायणदास ग्रोवर, आचार्य श्री भगवान् देव, और जगदेव सिह सिद्धान्ती (महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पजाव) को आमन्त्रित किया तथा सत्याग्रह-सम्वन्धित अन्य विचार-विमर्श के पश्चात् हरयाणा प्रान्त के दिग्गज केसरी श्री आचार्य भगवान्देव और श्री सिद्धान्ती जी से पूछा कि सत्याग्रह करने की इच्छा कव है ? उत्तर मिला "स्वामी जी, हम तो सज्जीभूत वैठे हैं, केवल आपके आदेश की प्रतीक्षा है।" स्वामी जी ने फिर कहा—"क्या दो सहस्र सत्याग्रही दे सकोगे ?" दोनो महानुभाव

उसी क्षण बोले—"दो सहस्र तो क्या, सत्याग्रह चलाने के लिये अकेला हरयाणा ही पर्याप्त है, आप सत्याग्रहियो से निश्चिन्त रहिये। हमारा हरयाणा सदा जागरूक रहता है। वह कभी किसी से पीछे नही रहता।"

इस प्रकार उल्लास पूर्ण वातावरण मे ३० जुलाई से रोहतक में सत्याग्रह शिविर की स्थापना का निश्चय किया गया।

रोहतक मे केन्द्र स्थापित करने की इस आज्ञा का अन्तिम रूप भाषा स्वातन्त्र्य समिति के प्रधान श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त ने देना था, अत. दीवान हाल दिल्ली की बैठक मे उनसे पूछे जाने पर उन्होने कहा,—"रोहतक मे केन्द्र नही खोलना चाहिये, क्योकि वहाँ के लोग लडाकू प्रकृति के हैं। वे सत्याग्रह के नियमो का पालन नही कर सकेगे।"

श्री जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री और आचार्य भगवान्देव जी ने श्री गुप्त जी को विश्वास दिलाया कि हमारे प्रान्त से आप सर्वथा निश्चिन्त रहिए। हरयाणा वालो की ओर से कोई ऐसी बात न की जायेगी, जो सत्याग्रह के प्रतिकूल हो।

यह आश्वासन प्राप्त हो जाने पर श्री गुप्त जी ने उन नेताओं को रोहतक मे ३० जुलाई के दिन सत्याग्रह-शिविर-स्थापना की स्वीकृति दे दी। शिविर की स्थापना के अनन्तर श्री आचार्य भगवान् देव जी और श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती शास्त्री ने श्री गुप्त जी के समक्ष अपने आप को प्रस्तुत किया कि सर्व प्रथम रोहतक मे हमे ही सत्याग्रह करने की आज्ञा दीजिये, किन्तु श्री गुप्त जी ने उन दोनो के पुन-पुनः बल दिये जाने पर भी उन्हे सत्याग्रह करने का निषेध कर दिया और कहा—"आप महानुभावो ने तो प्रचार करना है। सत्याग्रहियो के लिये पृष्ठभूमिका बनानी है, जिसकी आन्दोलन को प्रगति देने के लिये अतिशय आवश्यकता है। आप लोगो का सत्याग्रह इसी मे है कि अपने प्रचार द्वारा जनता मे एक ऐसा वातावरण बना दिया जाय, जिससे सत्याग्रह के लिये लोग उमड पडे और एक से एक पहले जाने की चेष्टा करे।

अखिल भारतीय भाषा स्वातन्त्र्य समिति के प्रधान माननीय श्री गुप्त जी का यह आदेश दोनो वरिष्ठ हरियाणा केसरियो ने अङ्गीकार कर लिया।

माननीय नेता श्री स्वामी आत्मानन्द जी ने पजाब के राज्यपाल के नाम एक सविस्तर पत्र लिखा, जिसमे सत्याग्रहियो के साथ किए गए दुर्व्यवहार तथा प्रशासन की पक्षपात पूर्ण अन्याय प्रियता का दिग्दर्शन था। वह पत्र आन्दोलन के सूत्रधार श्री स्वामी जी ने ८-६-१६५७ को स्वयं राज्यपाल को दिया, उस समय उनके साथ आचार्य रामदेव, प्राचार्य भगवान्‌दास और ज्ञानचन्द जी अधिवक्ता भी थे।*

श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज, एक नेता के गुणो से सम्पन्न थे। उनके समक्ष उपस्थित होकर आर्य महानुभाव एक दिन सत्याग्रह में प्रगति देने की भिन्न-भिन्न योजनाएँ उपस्थित करने लगे। वे चुप-चाप सुनते रहे; किन्तु अपनी सम्मति उनके समक्ष प्रकट न की। श्री ओम्प्रकाश जी पुरुषार्थी इस घटना को बहुत ध्यान से देखते रहे।

प्रत्येक परामर्शदाता ने समझ लिया कि मेरी विचारधारा को स्वामी जी महाराज ने स्वीकार कर लिया है और कल से इसी के अनुसार कार्य होगा; किन्तु जब आगामी दिन स्वामी जी अपनी ही पृथक पद्धति से चलते दिखाई दिये, तो वे अपनी विचारधारा मे त्रुटि का अनुभव करने लगे और विचारा कि सचमुच एक नेता मे इतना अधिक गाम्भीर्य होना आवश्यक ही है, अन्यथा पहले ही अपनी सम्मति का प्रकाश करने से मन्त्रणा फूट जाय, तो अनेक कठिनाइयो के साथ सत्याग्रह की विफलता के दिन भी निकट आ सकते है।

सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति दिल्ली द्वारा सञ्चालित हिन्दी आन्दोलन, भारत के कोने-कोने मे ही नही प्रत्युत समस्त भूमण्डल मे जहाँ भी हिन्दी प्रेमी और न्यायप्रिय जन रहते है बृहत् स्तर पर व्याप्त हो चुका था। पजाब प्रशासन आन्दोलन को असफल बनाने के लिये विदेशो में भी अपने केन्द्र स्थापित करने की योजनाये बनाने लगा था। इस सम्बन्ध मे आर्य समाज नैरोबी (पूर्वी अफ्रीका) के प्रधान श्री लाहौरीराम कोहली द्वारा श्री स्वामी आत्मानन्द जी को लिखा गया पत्र प्राप्त हुआ, जो निम्न है —

"आदरणीय श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ! सादर नमस्ते। राष्ट्र भाषा हिन्दी के रक्षार्थ आप द्वारा प्रारम्भ किये गये आन्दोलन

*राज्यपाल, प्रधानमन्त्री, मुख्य मन्त्री आदि के साथ किया गया पत्र व्यवहार, 'आत्मानन्द सरस्वती पत्र व्यवहार' नामक पुस्तक मे पढिये।

को हम लोग अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक देख रहे है। जो भी न्यूनातिन्यून समाचार उपलब्ध है, उनसे आर्य परिवार का प्रत्येक सदस्य अवगत रक्खा जा रहा है। दैनिक प्रताप की सूचनानुसार पजाब प्रशासन इस आन्दोलन को उन्मूलन करने हित यहाँ एक केन्द्र स्थापित करने का विचार कर रहा है। हम आपके अत्यन्त ही कृतज्ञ होगे, यदि आप भी इसे दृष्टिगत रख, अपने सम्बन्धित विभाग को भी आदेश दे कि वह हमे नियमित रूप से इस आन्दोलन की प्रगति से अवगत करते रहे जिससे यहाँ के लोगो को वास्तविकता से अनभिज्ञ न होने दिया जाये।

यद्यपि वर्तमान समय मे हमारे लिये कोई सत्याग्रही भेजना सम्भव नही है; फिर भी हमारे हृदय पूर्णरूपेण आपके ही चरणानुयायी है और प्रतिक्षण यथा सम्भव सहायतार्थ आशा की प्रतीक्षा मे हैं। आर्य समाज नैरोबी ने मुझे आदेश दिया है कि मैं एक सहस्र रुपयो का अधिकोष विकर्ष× आपकी सेवा मे अर्पित करूँ। यद्यपि यह अत्यन्त अल्प है, फिर भी आशा है कि इसे पुष्पाञ्जलि समझ कर स्वीकार करने का कष्ट करेंगे तथा साथ सलग्न पचास रुपये का धनादेश* जो कि ए० एम० मरवाह जी की श्रद्धाञ्जलि है, को स्वीकार कर इस पत्र तथा उपर्युक्त धनराशियो की स्वीकृति की सूचना भेज देने का सम्बन्धित विभाग को आदेश देगे।

अन्तिम प्रार्थना यह है कि पण्डित जवाहरलाल द्वारा प्रकाशित पत्र, जो कि हमारे नेताओ मे भी मन-मुटाव का कारण बन रहा है, मे हमे ऐसी कोई आश्चर्यजनक बात नही दिखाई देती, जिससे इस समय आन्दोलन स्थगित करने का प्रश्न उठे। यदि ऐसा किया गया तो यह एक महान् भूल होगी।"

सत्याग्रह ने इतना बल पकड़ा कि कुछ ही दिनो मे जब दस सहस्र सत्याग्रही कारागारो मे पहुँच गए, तो प्रशासन ने सत्याग्रहियो पर ही नही, खेतो मे हल चलाते हुए हरयाणे के कृषकजनो पर भी इस कारण यष्टि प्रहार किया, कि वे आतङ्कित होकर सत्याग्रह मे न जा सके। बहु अकबरपुर के ग्रामीणो को भी उन पर अमानवीय अत्याचार करके उनके मार्ग से जाते हुए सत्याग्रहियो का सम्मान करने से रोका।

× बैंक ड्राफ्ट। *चैक।

फिरोजपुर कारागार का हत्याकाण्ड

पञ्जाब प्रशासन जब इतने अमानवीय आक्रमणो से भी सन्तुष्ट न हुआ, तो उसने फिरोजपुर कारागार मे दण्ड भुगत रहे पुराने जघन्य अपराधियों से २४ अगस्त को सत्याग्रहियो पर अकस्मात् खाट की वाहियो, लोहे के नालो, लाठियो से प्रबल आक्रमण करा दिया, जिसमे लगभग ४०० सत्याग्रही घायल हो गए। ३९ की हड्डियाँ टूट गयी।

हरयाणा के एक युवक फूलसिंह उस दिन एक सौ पाँच तापांश÷ ज्वर मे अपने टाट पर लेटे थे, और चण्डीगढ़ आर्य समाज के मन्त्री चिकित्सक वर्मा तापमान* लगाकर उनका ज्वर देख रहे थे। इतने मे पीछे एक खाट की पट्टी उनके सिर पर आकर पड़ी, जिससे उनका सिर फट गया और वे अचेत होकर गिर पड़े। पश्चात् उस ज्वर ग्रस्त वीर को उसी खाट की मोटी पट्टी से मारना आरम्भ किया। जिससे उसके पेट की तीन पसलियाँ टूट गईं। एक वीर के सिर फटने से इतना रुधिर बह गया, जिससे उसके आँखो का ज्योतिः जाता रहा। लक्ष्मणसर आर्य समाज (अमृतसर) के एक प्रसिद्ध व्यापारी के गले की दोनो ओर की हड्डियाँ तोड दी गईं। पठानकोट के एक सत्याग्रही सत्यपाल जी के गुप्त अङ्गो को कुचल दिया गया। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के सुयोग्य स्नातक श्री सच्चिदानन्द शास्त्री को तो चार-पाँच ने मिलकर इतना लाठियो से पीटा, जिससे उनकी एक-एक हड्डी हिल उठी। जगाधरी और पानीपत के चौदह-चौदह वर्ष के बालकों को भी मार खाते देख कर यह सोचना पड़ता था कि मानवता क्या तू इतनी पाशविकता में भी परिणत हो सकती है।

स्वामी परमानन्द जी जो सोलह दिन से अनशन पर थे, वे भी इन नर-व्याघ्रो के आक्रमण से न बच सके। उन्हे स्वामी आत्मानन्द जी समझ कर जब उन पर लाठी और कमर मे बाँधने वाली पेटियाँ लेकर टूट पडे, तो सत्याग्रही स्वामी जी पर लेट गये। स्वामी जी को बचाने वालो मे ही नौ वीरो की हड्डियाँ टूट गयी। स्वामी परमानन्द जी को स्वामी आत्मानन्द जी समझकर लाठी मारते समय वे कहते जाते थे— यह ही वह दुरात्मा है, जिसने पजाब मे आग लगाई है और ये ही शब्द अन्य सत्याग्रहियो को मारते समय वे बोलते थे। लाठी मारते थे

÷डिग्री। *थर्मामीटर।

ग्रौर कहते जाते थे, "ग्रौर हिन्दी पढोगे ? पजाबी तुम्हारे गले मे ग्रटकती है ?"

सहारनपुर के एक ६२ वर्षीय सिक्ख सरदार सुन्दरसिंह जी, जो एक अच्छा दल लेकर गये थे, उनके भी एक हाथ की हड्डी टूट गयी।

नया बाँस ग्राम (रोहतक) वासी सुमेरसिंह नामक युवक, जो ग्रपने ग्रासन पर ग्रासीन हुए सत्यार्थप्रकाश पढ रहे थे, तो उसी समय उन क्रूर अत्याचारी आक्रामको के प्रहारो से प्राण छोड़ गये।

चार दिन तक उन घायलो के उपचार पर जब सम्यक् ध्यान न दिया गया, तो २८ ग्रगस्त को प्रात नगर के विशेष प्रतिनिधियों, मण्डलोपायुक्त एव कतिपय चिकित्सकों ने घायलो का निरन्तर छह घण्टे लगकर साधारण पट्टी बन्धन किया। रक्त स्वस्तिक समिति (रैडक्रास-कमेटी) के प्रधान ने अपनी समिति की ओर से चार सौ से अधिक रुपये के अन्त क्षेप भेजे।

एक सब से आश्चर्य की बात, जिसे सब देखकर स्तब्ध थे, वह थी कि इतना सब कुछ होने के पश्चात् भी किसी के मुखकमल पर अनुत्साह के चिह्न न थे। सत्याग्रही वीर उलटे श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त, श्री अलगूराय शास्त्री ग्रौर प्रकाशवीर शास्त्री ग्रादि महानुभावो को; जो उस समय कारागार का निरीक्षण करने गये थे, धैर्य बँधाते हुये कहने लगे, "जो होना था, सो हो लिया। माँ हिन्दी को हमारी परीक्षा लेनी थी। उसमे हम सफल हुए। एक भाई हमारा देवलोक सिधार गया। हड्डियाँ जिनकी टूटी है, वे भी सम्भव है, जुड जावे, घाव गहरे हो वा हल्के, कभी-न कभी तो भरेंगे ही। अब तो उस घडी की प्रतीक्षा है, जब कैरो प्रशासन गोली चलाये और हम छाती खोल कर उन्हे भी झेले।

बन्द करो मन मानी ग्रपनी जन-जन जाग उठा है।
आग लग चुकी ऐसी, जिसने कण-कण है झुलसाया,
अनाचार अत्याचारो का पार न कोई पाया,
शासन सत्ता के मद मे जन-जन को उकसाया,
अरे ! आज रक्षक हो भक्षक हमे सताने आया,
पर सन्देह, प्रमाद भय मन से ही भाग चुका है,
बन्द करो मन मानी अपनी जन-जन जाग उठा है।

यही पञ्चनद, जहाँ ऋचाओ की वह मधुमय वाणी,
जल, थल, अम्बर मे गूँजी, जो जन-जन की कल्याणी,
है वही पञ्चनद, जहाँ कि ऋषियों ने होम किया था,
सप्तसिन्धु की धाराओ ने मिलकर गान किया था,
उस धरती मे पुनः क्रान्ति का भैरव राग छिडा है,
बन्द करो मन मानी अपनी जन-जन जाग उठा है।

क्या न सुनी है उस धरती की करुणा भरी कहानी,
क्या न सुनी है उस सुमेर की खोई हुई युवानी,
जो असमय मे गई हाथ से, नही लौटने वाली,
मिटी मान के लिये रही, अन्तिम दम तक मदवाली,
उसी शिला मे कैरो शासन का विध्वंस छिपा है,
बन्द करो मन मानी अपनी जन-जन जाग उठा है।

ठीक, तुम्हारे हाथों मे सत्ता का गर्व समाया,
ठीक तुम्हारे हाथों ने शासन कर चक्र चलाया
पर रक्खो स्मरण विजय है सदा "सत्य" का होता,
आज तुम्हारा राज्य यहाँ विद्वेष बीज है बोता,
भाषा भी जन-सम है उसको जो चाहे अपनाए,
फिर यह क्यो अधिकार नही हम सब को मिलने पाए,
युग कहता सामन्तवाद का समय न आज रहा है,
बन्द करो मन मानी अपनी जन-जन जाग उठा है।

(कवि—सत्यभूषण वेदालङ्कार साहित्य-अधिस्नातक)

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती का हृदय सभी हिन्दी प्रेमी जनता के हृदय को लेकर इन घटनाओ से क्षुब्ध हो गया था। उन्होंने हिन्दी आन्दोलन को प्रचलित रखने की घोषणा करते हुये ४ सितम्बर के दिन कहा, "मेरा ध्यान यू० पी० आई० के प्रतिवेदन की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमे प्रधान मन्त्री श्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने पजाब के हिन्दी आन्दोलन को अत्यधिक असभ्य वतलाते हुए कहा है कि यह आन्दोलन राजनीतिक उद्देश्यो की सिद्धि के लिये प्रारम्भ किया गया है। इस प्रतिवेदन मे मुझे अत्यन्त दु:ख हुआ है और मैं

चाहता हूँ कि यह प्रतिवेदन असत्य हो। परन्तु मैं श्री नेहरू जी के इन विचारो के सम्बन्ध मे अपनी भावनाओ को इस आधार पर कि यू० पी० आई० का प्रतिवेदन सत्य होगा, विशेषत: तब, जब कि उसका प्रतिवाद नही किया गया है, प्रकट किये बिना नही रह सकता—

सस्कृत की एक कहावत है "शेष कोपेन पूरयेत्"—अर्थात् जब किसी की बुद्धि मे कोई युक्ति शेष नही रहती, तो फिर वह केवल रोष तथा गालियो का ही आश्रय लेता है। यही बात श्री नेहरू जी के कथन पर अक्षरश चरितार्थ होती है। यह नि सन्देह अत्यधिक दु ख और आश्चर्य की बात है कि पण्डित नेहरू की नाक के नीचे बहु अकबरपुर तथा फिरोजपुर कारा मे हुई घटनाओ के विषय मे उन्हें खेद प्रकट करने के लिए एक शब्द भी उपलब्ध नही हुआ अथवा कोई उपमा उपलब्ध न हो सकी। यद्यपि मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्री नेहरू को इन घटनाओ की काग्रेस संसत्समिति के मन्त्री श्री पण्डित अलगूराय शास्त्री जैसे महानुभावो से, जो स्वय घटनास्थलो पर जाकर जाँच कर चुके हैं, जानकारी प्राप्त हुई होगी तथापि श्री नेहरू जी के हृदय मे इस प्रकार की घटनाओ से पीडित व्यक्तियो के लिये दया तथा सहानुभूति का स्थान प्रतीत नही होता। श्री नेहरू जी समझते हैं कि यह सब अत्याचार शिष्ट है, जबकि हमारा न्याय और सत्य पर आधारित अहिंसात्मक तथा शान्त आन्दोलन अशिष्ट है। इस प्रकार के शब्द उस व्यक्ति के मुख से शोभा नही देते, जो महात्मा गान्धी का अनुकरण करने का अभिमान करता है और उच्च स्वर मे 'पचशील' की घोषणा करने से नही थकता। इन शब्दो से उनके हृदय मे विद्यमान घोर पक्षपात का आभास मिलता है, जो हमारे शान्त आन्दोलन के प्रति हिंसा के भावो से परिपूर्ण है।

श्रीयुत पण्डित नेहरू जी को गालियो और अपशब्दो की वर्षा के होते हुए भी हम अपनी न्यायोचित मागो के लिए सङ्घर्ष करते रहेगे, जो पजाब मे दोनो भाषाओ हिन्दी और पजाबी की पूर्ण स्वतन्त्रता पर आधारित है। मेरी समझ मे यह बात नही आई कि हमारा आन्दोलन राजनीतिक किस प्रकार बताया जा रहा है जब कि आर्यसमाज ने अपने लिए कभी भी राजनीतिक सुविधाओ की माग नही की। श्री पण्डित नेहरू हमारी न्यायपूर्ण माँगो को स्वीकार करलें, फिर देखें कि मागो के स्वीकार होते ही हमारा सत्याग्रह बन्द हो जायेगा।"

स्वामी आत्मानन्द जी द्वारा सत्याग्रह की घोषणा

हिन्दी रक्षा समिति पजाब के प्रधान श्री स्वामी आत्मानन्द जी ने प्रधान मन्त्री श्री नेहरू को अपने सत्याग्रह करने के सम्बन्ध मे निम्न पत्र लिखा —

"प्रधान मन्त्री श्री नेहरू जी, सब वातावरण को देखते हुये मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा है कि मेरे स्वास्थ्य के शिथिल होते हुए भी मुझे अब सत्याग्रह करना चाहिये। मुझे आशा थी कि आर्यसमाज ने जो इतने बलिदान दिये है, उससे शासन के हृदय मे परिवर्तन हुआ होगा और हमारी न्याय युक्त माँगे स्वीकार करली जायेगी; परन्तु ऐसा नही हुआ और निकट भविष्यत् मे होने की सम्भावना भी नही दीखती। उल्टा हमारे आन्दोलन पर ही विभिन्न प्रकार के कटाक्ष किये जाते हैं और विना समझे बूझे उसकी निन्दा भी की जाती है, जिसके फलस्वरूप हमारे ऊपर अत्याचार पर अत्याचार किये जा रहे है, जिनका आपको पता है वा होना चाहिये।

भारत मे नैतिकता का स्तर इतना नीचा हो जावे कि अत्याचार और अत्याचारी की निन्दा न होकर उनकी निन्दा की जावे कि जो अत्याचार के आखेट है, इसका मुझे दु ख है। साम्प्रदायिकता और अन्याय की जड़ को खोदने वाले पर ही साम्प्रदायिकता और अन्याय का दोष लगाया जावे, इससे बढकर दु ख की बात और क्या हो सकती है।

अत. मैने निश्चय किया है कि सत्य की रक्षा के हेतु मैं भी सत्याग्रह करूँ। मेरे सत्याग्रह का स्थान चण्डीगढ होगा। सत्याग्रह करने के लिये मेरे साथ एक प्रिय गरोश जो मेरा विद्यार्थी है, वह वहाँ रहेगा। क्योकि वह मुझे इस अवस्था मे अकेला नही छोडना चाहता और उसके इस आग्रह को मै टाल नही सकता। इसके अतिरिक्त मेरे साथ पांच सत्याग्रही और होगे। परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि इस पवित्र भूमि भारत मे सत्य, न्याय और धर्म का साम्राज्य स्थापित करे। निश्चित तिथि की सूचना मैं दूरलेख द्वारा दूँगा।"

आकस्मिक अज्ञातवास

श्री स्वामी जी महाराज का स्वास्थ्य पर्याप्त समय से गिरावट पर जा रहा था। वृद्धावस्था मे २६० तक रुधिर-निपीड का पहुँच जाना

और उस पर भी पञ्जाब के हिन्दुओ का कष्ट उन्हे निरन्तर कृश ही कर रहा था। इन दिनो वे श्री बाल मुकुन्द जी आहूजा के पर्यलिन्द पर दिल्ली ठहरे हुए थे। उनकी भावनाएँ सत्याग्रह करके कारागार मे जाने की प्रबल हो चुकी थी। उन्हे इस बात मे स्वास्थ्य के और भी अधिक विकृत हो जाने का भय नही था, पर मान्य नेता श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त ने उन्हे सत्याग्रह करने की, ऐसी स्वास्थ्य की डाँवाडोल अवस्था मे, आज्ञा न दी। उधर उनके मन को यह भावना कि मेरे सात सहस्र सत्याग्रही कारागारो मे है, पञ्जाब का कोना-कोना अन्याय और दमन मे पिस रहा है, सात वीर बलिदान हो चुके हैं और मैं अभी बाहर हूँ, झकझोर रही थी। उस समय श्री स्वामी जी के अन्तरात्मा से यही ध्वनि निकलता था कि अब मुझे कारागार मे जाना चाहिये वा फिर जङ्गल मे जाकर अपने प्रभु से कुछ कहना चाहिये।

श्री स्वामी जी के सेवक ब्रह्मचारी गणेशचन्द्र देव जी भाई पटेल ने अनेक वार स्वामी जी के भरे हुए गले से कहते सुना कि हे मेरे भगवन्! पञ्जाब की हिन्दू जनता ने ऐसे क्या पाप किये है, जो सत्य और न्याय पूर्ण होते हुए भी उसकी माँगे नही मानी जा रही हैं। मेरे प्रभो! क्या तेरे भक्त और सत्य के पुजारी ऐसे ही मारे और पीटे जाते रहेगे। कब तक तूने हमारी परीक्षा लेनी है। नाथ! अब तो बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, साधु, महात्मा, सब इस परीक्षाग्नि मे कूद चुके हैं।

किसी को क्या पता था कि स्वामी जी की इस अन्तर्वेदना मे उनका कुछ और ही रूप छिपा है। वे अकस्मात् रविवार ६-१०-१९५७ को सूर्यास्त के समय, अपने प्रिय सेवक गणेशचन्द्र देव जी भाई पटेल की आँखो से बचकर (जब वह नगर के किसी कार्यवश थोडी देर के लिये बाहर पूछ कर गया था) कन्धे पर चादर रख, जूते वही छोड़ (जिससे समझा जाय कि स्वामी जी यही कही शौचागार आदि स्थान मे होगे) नंगे पैरो स्व-कक्ष से चुप चाप विना किसी को सूचना दिये निकल गये। श्री गणेश जी ने बहुत देर के पश्चात् भी जब स्वामी जी का आवास स्थल निर्जन-गम्भीर और शान्त देखा, तो भीतर घर मे जाकर पता लगाया। श्री आहूजा जी का समग्र परिवार इस विचित्र एव अत्यन्त दु खद घटना से अति विह्वल हो उठा। शीघ्रता की खोज मे निकटवर्ती स्थानो पर भी जब स्वामी जी का पता न लगा, तो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय को, श्री स्वामी जी के

अकस्मात् कही चले जाने की सूचना दूरभाष* द्वारा भी दी गई। दिल्ली के सभी आरक्षी स्थानो+ को सूचित कर दिया गया, समाचार पत्रो को दूरभाष* कर दिये गये। सकल आर्य जगत् मे एक गहरी चिन्ता एव व्यग्रता हो गई। वहित्र× और वीथीयान‡ श्री स्वामी जी की खोज मे दिल्ली की रथ्याओ— और गली-गली का चक्र लगा रहे थे। न थाने से स्वामी जी के मिल जाने का समाचार प्राप्त होता था, न किसी व्यक्ति विशेष से। अन्वेषण करते-करते रात्री के दश बज गये। गणेश जी हाथ में दूरभाष* पकडे निरन्तर बैठे रहे। न कही से सुखद समाचार और नही कही से आशा की झलक। सब ओर से स्वामी जी को अनुपलब्धि-रूप दु:खद समाचार ही प्राप्त हो रहे थे। इस असह्य पीडा से उनका गला भर गया और स्वामी जी की उपलब्धि तथा अनुपलब्धि के समाचार सुनाने तक की भी जब उसकी शब्द शक्ति न रही तो दूरभाष पटक कर वीथीयान द्वारा स्वय भी अन्वेषण करने निकल गया। पर स्वामी जी वहाँ कही हो, तो मिले। मिनट पर मिनट, घण्टे पर घण्टे, और पहर पर पहर बीतते चले गये, पर स्वामी जी का कही पता न चला। आर्य जगत् मे जहाँ देखो, वही स्वामी-जी की चर्चा, जहाँ सुनो वही स्वामी जी के लिए करुण क्रन्दन। लोग प्रभु से उनके पा जाने की प्रार्थनाएँ कर रहे थे। सम्पूर्ण रात्रि आर्य पुरुषो की ऐसे ही अतिक्रान्त हो गई। ५ बजे प्रात: फिर गणेश ने वीथीयान‡ से रथ्याओ और गलियो का चक्र लगाना प्रारम्भ किया। बहुत दौड़ धूप के पश्चात् कुछ प्रकाश हो जाने पर शक्ति नगर के चतुष्पथ के निकट एक वृक्ष के नीचे स्वामी जी महाराज को समाधिस्थ अवस्था में आसन जमाए देखा। देखते ही उसने वीथीयान को रुकाकर झटिति छलाग लगाई और दौडा-दौड़ा स्वामी जी के निकट पहुँचा। चरण स्पर्श किये। अभिवादन किया। महाराज से निज आवास पर पधारने के लिये निवेदन किया। स्वामी जी ने उत्तर मे कहा—"यहाँ ही ठीक है, वही जाकर क्या करेंगे।" गणेश जी, श्री स्वामी जी महाराज से यह कहकर कि मैं अभी आ रहा हूँ, श्री बालमुकुन्द जी आहुजा का वहित्र लेने चल दिये और एक अपरिचित मनुष्य से जो स्वामी जी से थोडी ही दूर रथ्या— के प्रकाशक विद्युत्कन्दों† के नीचे समाचार पत्र पढ रहा था, उसके शीघ्र हो लौट आने तक स्वामी जी की देख-रेख का सङ्केत

---

*टेलीफोन। +पुलिस थाना। ×कार। ‡स्कूटर —सडक।
†बिजली का बल्ब।

किया। जब गणेश जी श्री बालमुकुन्द आहूजा के साथ वहित्र लेकर लौटे, तो न वह पुरुष दिखाई दिया और न ही स्वामी जी। दोनो ही अपना स्थान छोड़ चुके थे। यत. वे वहित्र लेकर शीघ्र लौट आए थे, अत. स्वामी जी के निकट ही कही होने की सम्भावना मे इधर उधर दृष्टि-निक्षेप किया, तो वहाँ से दो दशिमान‡ से कुछ दूर पर आगे ही आगे जाते हुए स्वामी जी महाराज दिखाई दिए। उनके निकट जाकर वहित्र रोक दिया गया और उन्हे उसमे बैठ जाने के लिए कहा। स्वामी जी बोले—"मै यही ठीक हूँ, वहाँ जाकर क्या करूँगा।" भक्त-जनो के पुन. आग्रह करने पर, स्वामी जी वहित्र मे बैठ गये और अपने आवास स्थान पर आ गये। स्वामी जी के मिल जाने के समाचार आर्य जनता और हिन्दी प्रेमी महानुभावो को दे दिये गये। सबने अतिशय शान्ति अनुभव की। जिस समय श्री स्वामी जी को आहूजा जी की कोठी पर लाकर देखा गया तो १०३ तापाश था। रुधिर-निपीड* २७० था। पैर मे एक बहुत बडा छाला पड गया था। बहुत से काँटे लगे थे। वस्त्र झाडी मे उलझकर फट गये थे। दो-चार दिन के उपचार से जब स्वामी जी स्वस्थ हो गये, तो पूछने पर उन्होने हँसकर अपनी कथा इस प्रकार सुनाई:—मै इधर के मार्गो से अपरिचित था, रात हो गई थी। साथ मे मैंने अपना उपनेत्र नही लिया था, मुझे मार्ग ठीक से दीखता नही था। मैं ऐसे ही चलता चला गया, कही-कही झाड़ियो मे उलझ जाता था—कठिनाई से उस से निकल कर आगे बढता था, जब चलता-चलता थक गया, तो एक बृहद् उद्यान मे चला गया। वहाँ कुछ श्रमिक मिले, वे चाय बना रहे थे। उन्होने मुझे एक चारपाई झिंगली-सी विश्राम करने को दे दी। उन्होने मुझे चाय भी दी। मुझे ठण्ड भी लग रही थी। उनके निकट विशेप वस्त्र न था और मैं उनसे लेने मे भी सङ्कोच करता था। रात के लगभग दो बजे मैं वहाँ से चल पडा। रथ्या पर आकर मैं वैसे ही रथ्या—रथ्या चलता रहा। मार्ग मे मुझे आरक्षी चौकी मिली। आरक्षियो— ने मुझसे कहा—"बाबा कहाँ जा रहे हो ? यही आराम करलो।" मै वही अपनी चादर ओढे बैठे रहा। फिर सुना—चार वज गये, तो मै वहाँ से उठकर एक वृक्ष के नीचे जा बैठा। वहा से गणेश मुझे ले आया।

श्री स्वामी जी के अकस्मात् कही चले जाने के समाचार दिल्ली के सभी दैनिक पत्रो मे तत्काल निकल गये थे और वे समाचार दूसरे

‡एक फर्लाङ्ग। *ब्लड प्रेशर। ÷पुलिस।

ही दिन कारागार मे सत्याग्रहियो के समीप भी पहुँच गये थे। इस घटना को पढकर बन्दी सत्याग्रहियो के हृदय हिल गये, उनका जी चाहता था कि कारागार से निकलकर स्वामी जी की खोज करे; किन्तु ऐसा करने मे विवश थे। अन्त में मन मसोस कर रह गये। स्वाधीनता और पराधीनता मे केवल इतना ही अन्तर है। दो दिन पश्चात् जब स्वामी जी के मिल जाने का समाचार पहुँचा, तो पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। यह था सभी का—स्वामी जी के प्रति अनुराग ! स्वामी जी के प्रति श्रद्धा !! स्वामी जी के प्रति विश्वास !!!

हमदर्द दवाखाना के हकीम श्री अब्दुल हमीद ने श्री स्वामी जी के उपचार मे अपना अच्छा योगदान दिया। वे श्री स्वामी जी के निरीक्षणार्थ दो-तीन वार आए, जब कि वे अन्यत्र जाने का नाम भी न लेते थे। वे धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष है। आर्य समाज से उन्हे स्नेह है। वे गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ मे ग्रीष्म-काल अतिवाहित करते रहे हैं। उनका सम्पूर्ण काल धार्मिक चर्चाओ एवं स्वाध्याय मे ही वीतता रहा है। आते समय वे ब्रह्मचारियो मे मिष्टान्न भी वितरण करते रहे है।

श्री आहूजा जी का परिवार यह वात अपने हृदय मे अङ्कित करता रहा कि स्वामी जी के समीप हम कितनी भी देर वैठे रहें, इनके मुख से न किसी की निन्दा निकलती है, और न ही स्तुति। सचमुच इस अद्भुत् ऋषि के मिल जाने से अब किसी दूसरे के चरणस्पर्श करने के लिये आत्मा सङ्कोच करता है। वस्तुत· संन्यासी ये ही है, जो आन्दोलन का उग्र नेतृत्व् करते हुए भी शान्ति की धारा प्रवाहित कर रहे हैं।

सत्याग्रह के दिनों में सभा का निर्वाचन स्थगित

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाव के प्रधान की दृष्टि से स्वामी जी ने निम्न विज्ञप्ति प्रसारित की.—

"सभा का साधारण अधिवेशन प्रतिवर्ष सितम्वर के अन्तिम सप्ताह मे हुआ करता है, जिसमे तीन मुख्य कार्य होते है.—

(१) वार्पिक चुनाव। (२) गत वर्ष का कार्य विवरण तथा निरीक्षित लेखा। (३) नये वर्ष का वजट स्वीकार होना।

इस वर्ष उक्त साधारण अधिवेशन से पाँच मास पूर्व ही हिन्दी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया है और यह न केवल इस सभा के लिये किन्तु आर्य जगत् के लिये जीवन मरण का प्रश्न वन गया है। आर्य

जगत् के प्रमुख व्यक्ति तथा आर्य समाजो के अधिकाश प्रतिनिधि इस समय इस आन्दोलन में जूझे हुए हैं। अनेक प्रगृहीत हो चुके है और शेष रात दिन परिवार छोड कर इस आन्दोलन की सफलता के लिये प्रयत्नशील हैं। अभी यह अनुमान लगाना कठिन है कि यह आन्दोलन कब तक चलेगा। सभा के तीनो मन्त्री भी प्रगृहीत हो चुके है। इसके अतिरिक्त सभा के नियमानुसार नियत अवधि बीत जाने पर भी अधिकाश समाजो से वेद प्रचार तथा दशाश का राशि नही पहुँचा। अतः प्रमाणित प्रतिनिधियो का निश्चित करना अति कठिन है। इन परिस्थितियो मे सभा का वार्षिक साधारण अधिवेशन बुलाना और चुनाव कराना सम्भव नही। अत मै सभा नियम सङ्ख्या ३२ के आधार पर असाधारण स्थिति के उत्पन्न हो जाने से निश्चय करता हूँ कि वर्त्तमान अधिकारी तथा सदस्य ही सँम्वत् २०१४ के लिये भी निरन्तर कार्य करते रहेगे। आगामी साधारण अधिवेशन नियम पूर्वक अगले वर्ष मास सितम्बर १९५८ मे बुलाया जायेगा। वर्तमान अन्तरङ्ग सभा चालू वर्ष सँम्वत २०१४ के लिए अगले साधारण अधिवेशन की स्वीकृति की आशा मे बजट स्वीकार करके सभा के कार्य को सञ्चालित रक्खे।"

हिन्दी आन्दोलन को निरन्तर चलते हुए साढे पाँच मास बीत चले थे, वह इतना उग्र रूप धारण कर चुका था कि पजाब प्रशासन के एक आरक्षी से लेकर उच्चपदाधिकारी राज्यपाल तक समस्त कर्मचारी वर्ग इस से निपटने मे रात्त दिन एक कर रहा था। न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश भी अपना बुद्धि कौशल सत्याग्रहियो पर निखार रहे थे। वे देश मे अशान्ति डकैती, लूट खसोट, और तोड फोड करने जैसे अभियोग लगाकर सत्याग्रहियो को दण्ड दे रहे थे। केन्द्रीय प्रशासको के कान भी आन्दोलन के तुमुल ध्वनि से विश्रान्ति नही ले रहे थे। साम-दान-दण्ड-भेद ये सब राजनीति के उपाय समय-समय पर प्रयोग मे लाकर देख लिये गये थे, किन्तु जहाँ प्रशासन की सम्पूर्ण शासन शक्ति पक्ष-पात की सीमा को अतिक्रान्त कर गई थी, वहाँ जनता के हृदय को विदीर्ण करने मे ये सभी नीतिशास्त्र कुण्ठित हो चुके थे। जहाँ, गुरुकुल कागडी के ब्रह्मचारी सुभाषचन्द्र, जो अपने एक साथी के साथ एक कोठी मे बैठे हुए, मास्टर तारासिह के इगलिश मे दिये गये भाषण का हिन्दी मे अनुवाद कर रहे थे, रात्रि के समय उन्हे प्रग्रहण कर लिया गया हो, वहाँ इससे बढकर पक्ष-पात का क्या कोई उदाहरण है? जहाँ पजाब के भूतपूर्व मन्त्री प्राध्यापक शेरसिह को काँग्रेस से

केवल इस कारण निष्कासन मिला हो कि वे काग्रेस के प्रधान की इच्छानुसार इस आन्दोलन का विरोध करने से निषेध करते थे और सरदार कैरो की उन्हे यह धमकी देना कि वे इस आन्दोलन मे छ. सात सौ सत्याग्रहियो के हाथ-पाँव तुडवा कर इस आन्दोलन को कुचल देगे, वहाँ भला न्याय की कभी आशा की जा सकती है ?

जहाँ महात्मा आनन्द स्वामी, श्री आनन्द भिक्षु, प्राध्यापक शेरसिह, महाशय कृष्ण, श्री रामचन्द्र देहलवी, श्री जगदेवसिह सिद्धान्ती, श्री रघुवीरसिह शास्त्री, श्री बुद्धदेव विद्यालङ्कार, आचार्य कृष्ण, आचाय रामदेव, गुरुकुल भैसवाल के अधिकारी और तपोनिष्ठ साधु-महात्मा, कर्मठ-पुरुष कारागार के सीकचो मे बन्द किये गये हों, वहाँ प्रशासन भला कभी पुण्यार्जन कर सकता है ? जहाँ आर्य नेता स्वामी अभेदानन्द, श्री घनश्याम सिह गुप्त, पण्डित नरेन्द्र, पण्डित प्रकाशवीर शास्त्री, आचार्य विश्वश्रवा., और आचार्य भगवान्देव जैसे सुहृदय महानुभाव पजाव प्रशासन के अत्याचारी शासन में अपने को न सौंप, ऋषि दयानन्द के आशीर्वाद से, अपने प्राणो को सङ्कट मे डाल कर भी निरन्तर प्रचार करते हुए आन्दोलन को प्रगति दे रहे हो, वहाँ प्रशासन चाहे कुछ भी करले, क्या कारागार कभी रिक्त रह सकते हैं ? जहाँ जत्थे रूप मे गुरुकुल झज्जर के ब्रह्मचारियो को आपणिक भी पीछे ही पीछे चलते हुए यह कहते सुनाई देते हो कि ये आर्य समाजी हैं। ये किसी को छेड़ते नही और छेड़ते है, तो छोड़ते नही, वहाँ क्या आर्यवीर कभी दवाए जा सकते है ? जहाँ निर्धन और धनी सभी ने हिन्दी के रक्षार्थ अपने हाथ खुले कर दिये हो, जहा लेखको की लेखनी अविरत चल रही हो, भला वहाँ कोई कमी रह सकती है ? जहाँ सत्यनिष्ठ काग्रेसी जैनो, सनातनी, और हिन्दी प्रेमी जनो का रुधिर अपनी मातृभापा की स्वतन्त्रता के लिये खोल रहा हो, वहाँ भला कोई अपनी नीद हराम कर सकता है।

इस विधि पजाव प्रशासन और सत्याग्रह के परस्पर सङ्घर्षण मे एक ऐसा दिन आ उपस्थित हुआ, जव जनता ने प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू और आन्दोलन के सर्वाधिकारी स्वामी आत्मानन्द सरस्वती को अपनी श्रद्धा की तुला पर चढ़ा दिया। यह देखने के लिये कि किसका पलड़ा भारी है। दोनो की शक्ति परीक्षण का दिन नौ नवम्बर १९५७ नियत हो गया।

स्वामी जी द्वारा सत्याग्रह और प्रधान मन्त्री का चण्डीगढ़ पहुँचना

जैसे-जैसे नौ नवम्बर का दिन निकट आता गया, वैसे-वैसे प्रधान मन्त्री के स्वागत की सज्जाएँ भी प्रचुरता से चण्डीगढ मे होने लगी। पंजाब राज्य के आरक्षी का अधिक भाग पहले से ही गुप्तरूप से मगवाकर रख दिया गया। आरक्षी दल ने चण्डीगढ के चारो ओर का क्षेत्र घेरा हुआ था। जिस से श्री प्रधान मन्त्री के आने से पूर्व ही हिन्दी सत्याग्रहियो को चण्डीगढ जाने से रोका जा सके। एव जो कोई पहिले भी आने का प्रयत्न करता था, उसे पकड़ कर जङ्गलो मे छोड़ आते थे। जिस से कैरो के अत्याचारो की भनक भी श्री नेहरू के कर्ण तक न पहुँचने पावे। अनेक पुरुष प्रगृहीत करके बन्दीगृहो और काली-कोठरियो मे बन्द कर दिये गए। कई स्थानो पर यष्टि प्रहार भी हुआ और अश्रुवाति‡ भी छोड़ी गई।

इतने अत्याचारो के होते हुए यह भी सम्भव था कि नेहरू का स्वागत कभी फीका ही न रह जावे, अतः सर्वयान* और उद्वाही+ ग्रामो से व्यक्तियो को अधिक से अधिक सङ्ख्या मे ले आने के लिये लगा, दिये गये। इस व्यवस्था में पजाब राज्य का बहुत रुपया व्यय हो गया। जनता के परिश्रम की कमाई का धन पानी की भाँति बहा दिया गया। वह सब इसलिये था कि उनके प्रति जनता की सहानुभूति भी प्रकट हो जावे और आन्दोलन का प्रभाव प्रधान मन्त्री के निकट तक पहुँचने न पावे।

दूसरे पक्ष में भाषा स्वातन्त्र्य समिति दिल्ली के आदेश पर श्री स्वामी आत्मानन्द जी, जो अपने आश्रम यमुनानगर मे थे, नौ नवम्बर को सत्याग्रह करने के लिये अपने आश्रम से ७ नवम्बर को वहित्र÷ द्वारा सहारनपुर आर्य मन्दिर खालापार आये और अगले दिन दिल्ली पहुँच गये। पजाब प्रशासन को इस बात का खेद हुआ कि उसकी असावधानी से हिन्दी सत्याग्रह के सेनानी पंजाब-सीमा को पार कर उत्तर प्रदेश मे पहुँच गये।

८ नवम्बर को साय ७ बजे गान्धी मैदान दिल्ली मे श्री स्वामी के स्वागत, सत्याग्रह में जाने के लिये बधाई और विदाई के उपलक्ष मे

---

‡टियर गैस। *बस। +ट्रक। ÷कार।

एक विराट् सभा का आयोजन किया गया। सभा की अध्यक्षता सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के प्रधान श्री पूज्य स्वामी अभेदानन्द जी महाराज ने की। उस विशाल सभा मे वृहद् भाषण वेदि पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश की भाँति सत्याग्रह की सेनानी तीन मूर्तियाँ सुशोभित थी—सर्वाधिकारी श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज, उनके शिष्यराज महात्मा आनन्द स्वामी जी और शिष्यप्रवर श्री आनन्दभिक्षु जी वानप्रस्थ। गान्धी मैदान मे यह सभा अपने रूप में पहली ही थी, जिसमें आर्य समाज और अन्य हिन्दी प्रेमी नर-नारी सहस्रो की सङ्ख्या में उपस्थित थे। दिल्ली के आर्यसमाजो की ओर से श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज को २२ सहस्र रुपये की एक थैली भेंट की गयी। पश्चात् श्री पं० नरेन्द्र, श्री रामगोपाल शालवाले, प्राध्यापक शेरसिंह और श्री आनन्द स्वामी जी के व्याख्यान हुए।

केन्द्रीय भाषा स्वातन्त्र्य समिति के प्रधान माननीय श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त जिन्हे अकस्मात् अपनी धर्मपत्नी की चिन्ताजनक स्थिति के कारण नागपुर जाना पड़ा, इस सभा में चाहते हुये भी उपस्थित न रह सके। परन्तु उनका दूरभाष* द्वारा प्राप्त सन्देश समिति के प्रचार मन्त्री श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री ने पढकर सुनाया। श्री गुप्त जी ने अपने सन्देश मे कहा—

पंजाब का यह सत्याग्रह अब छठे मास में चल रहा है। पंजाब की हिन्दी रक्षा समिति के प्रधान पूज्यपाद स्वामी आत्मानन्द जी महाराज, महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज, और महात्मा आनन्दभिक्षु जी, ये आर्य जगत् के वे मूर्धन्य संन्यासी हैं, जिन्हे इस आन्दोलन की सबसे बड़ी आहुति कहा जायेगा। पिछले साढ़े पाँच मासों में जो अत्याचार हिन्दी सत्याग्रहियों पर ढाये गये है, पंजाब देर तक उन्हें नही भूल सकेगा। जब हमारी माँग सत्य और न्याय पर आधारित हैं। तब शासन द्वारा यह दमन का प्रकार कहाँ तक उचित कहा जा सकता है। पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी और अन्य भी दोनो महात्माओ के चरणो मे मेरा प्रणाम निवेदन करते हुये उनसे कह दें—आन्दोलन आपके सत्याग्रह मे प्रस्थान करने से और भी बहुत आगे चला गया है। निश्चिन्त होकर आप कारावास की यात्रा करें। पंजाब की जनता ने आर्य समाज को सब से अधिक विश्वास पात्र और गम्भीर सङ्गठन समझकर उसके हाथो अपना हिन्दी-विषय सौंपा है। हम उसके साथ

*टेलीफोन।

८ नवम्बर रात्री के ८ बजे सत्यग्रह करने से पूर्व दिल्ली की आर्य जनता गान्धि मैदान मे अपने प्रिय स्वामी आत्मानन्द सरस्वती को बधाई दे रही है ।

बाये से दाये मच पर — १ श्री आनन्द स्वामी, २. श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती, ३ श्री स्वामी अभेदानन्द सरस्वती, ४. श्री आनन्द भिक्षु जी ।

घात कभी नही कर सकते । जब तक सातो मागे पूरी नही हो जाती, तब तक आन्दोलन स्थगित नही किया जा सकता । हमें मरने मे प्रसन्नता होगी; किन्तु अन्याय के आगे सिर कभी भी नही झुकायेगे । प्रभु हमे बल देवे, जिससे हम आगे बढते रहे ।

श्री रामगोपाल शालवाले ने अपने भाषण मे कहा कि स्वामी आत्मानन्द जी के जत्थे के प्रग्रहण के पश्चात् यदि पजाब मे आन्दोलन तीव्र हो गया, तो उसका उत्तरदायित्व श्री नेहरू पर होगा, क्योंकि उन्होने ही रामलीला भू-भाग मे भाषण करते हुए आर्य समाजियो पर आरोप लगाया था कि वे समझौते के लिए राष्ट्रपति का नाम बीच मे घसीट रहे है ।

श्री रामगोपाल जी ने आगे कहा "किस प्रकार हमे दूरभाष किये गए कि हम श्री घनश्यामसिह जी गुप्त को बातचीत के लिये राष्ट्रपति भवन मे भेजें । हमने जब बताया कि श्री गुप्त जी बम्बई मे हैं, तो हम से उनका बम्बई का पता और दूरभाष का क्रमाङ्क तक भी पूछा गया और उन्हे बम्बई से बुलाया गया । अब नेहरू हम पर आरोप लगाते है कि हम राष्ट्रपति का नाम बीच मे घसीट रहे हैं । भारत का बच्चा-बच्चा पण्डित नेहरू की काराएँ भर देगा, परन्तु आन्दोलन को असफल नही होने दिया जायेगा ।"

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती, श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी, श्री आनन्द भिक्षु जी वानप्रस्थ, और छ वर्ष का उनका पौत्र, जोधपुर के एक प्रसिद्ध अधिवक्ता (जिन्होने समारोह मे ही सन्यास आश्रम की दीक्षा ग्रहण की थी) श्री रामलाल वैद्य यमुनानगर, श्री वेदानन्द वेदवागीश, श्री भोजराज और श्री गणेशचन्द्र देव जी भाई पटेल, ये नौ महानुभाव जत्थे मे सम्मिलित थे ।

श्री स्वामी जी महाराज द्वारा सत्याग्रह किया जाना एक विशेष महत्त्व रखता था, हिन्दी रक्षा समिति की ओर से समस्त पजाब राज्य मे प्रधान मन्त्री नेहरू के चण्डीगढ पहुँचने के उपलक्ष मे हिन्दी पर सङ्कट का प्रदर्शन करने के लिये और श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के जत्थे का भारी से भारी सङ्ख्या मे, पठानकोट आशु-सयान के रुकने वाले प्रत्येक स्थात्र पर श्रद्धा और अति प्रेम से भव्य स्वागत करने के लिये नौ नवम्बर को सम्पूर्ण पजाब मे हट्टताल किये जाने की आज्ञायें समाचार पत्रो द्वारा प्रसारित कर दी गई थी ।

जिस प्रथम श्रेणी के संयान-कोष्ठ को, जत्थे के अधिनायक श्री स्वामी आत्मानन्द जी और उनके शिष्य महात्मा आनन्द स्वामी जी तथा महात्मा आनन्द भिक्षु जी ने शोभा प्रदान की, उसमे प्रथम से कुछ अन्य यात्री भी उपस्थित थे। उसमें अधिष्ठानो+ की अपेक्षा कुछ सङ्ख्या अधिक ही हो गयी; अतः श्री स्वामी जी के जत्थे के अन्य साथियो को दूसरे डब्बो मे बैठना पड़ा।

९ नवम्बर के प्रातः दिल्ली सङ्गम स्थात्र÷ पर श्री स्वामी जी की भव्य विदाई के पश्चात् जब पठानकोट आशु-संयान* प्रस्थान करने लगा, तो सैकड़ों की सङ्ख्या मे दिल्ली निवासी केवल यह देखने के लिये सयान पर चढ़ गये कि देखे श्री स्वामी जी का प्रग्रहण‡ कहाँ किया जाता है।

अगले स्थात्रो पर जहाँ जहाँ सयान ने रुकना था, स्वागत-कारिणी जनता श्री स्वामी जी की प्रतीक्षा में सतृष्ण नेत्रो से एक-टक देख रही थी। कोई भी स्थात्र ऐसा न था, जहाँ अपार जन-समूह न उमड़ रहा हो। समस्त जनता ने अपने कार्य बन्द कर दिये और वह प्रशासन की नीति के विरोध में हट्टताल करके स्थात्रो की ओर बढ़ रही थी। आशु-सयान ज्यो ही दिल्ली सङ्गम स्थात्र से आगे बढा, निकट ही सब्जी मण्डी के स्थात्र पर अपार जन-समूह ने अपने प्रिय नेता के दर्शन किये। नरेला स्थात्र पर आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री कर्मवीर जी के प्रयत्नो से एक विशाल जन-समूह अपने महान् नेताओ के दर्शन के लिये एकत्रित था। श्री स्वामी जी ने सबको दर्शन दिये और आशीर्वाद दिया। पानीपत और घरोण्डा आदि मे भी श्री स्वामी जी का भव्य स्वागत हुआ। आशु-सयान जब करनाल पहुँचा, तो आरक्षी दल जनता का नियन्त्रण न कर सका और समग्र सयान-स्थात्र जन-समूह से भर गया। हिन्दी समर्थक समाघोषो और नेताओ के जयकारो से आकाश गूँज उठा। आरक्षी की ओर से श्री स्वामी जी का प्रग्रहण करनाल मे ही किया जाना था, पर भीड के कारण वह वहाँ न कर सका। भीड़ में पीछे खड़े नर-नारी सतृष्ण नेत्रो से महाराज को निहारते हुए अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कर रहे थे। साथ मे लाई हुई अपनी भेटे आगे-आगे एक दूसरे के हाथो-हाथ पहुँचाते हुए श्री महाराज की सेवा मे पहुँचा पाये थे।

+सीटें। ÷जङ्क्शन स्टेशन। *ऐक्सप्रैस। ‡गिरफ्तारी।

९ नवम्बर सन् १९५७ को सत्यग्रह के लिए प्रस्थान से पूर्व पुष्पमाला से सुशोभित श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती अपने दो प्रमुख शिष्यों के साथ।

स्थात्र पर अपार भीड को सम्बोधित करते हुए महात्मा आनन्द स्वामी जी और महात्मा आनन्दभिक्षु जी वानप्रस्थ ने आर्यजगत् को सन्देश दिया.—

"तप, त्याग, और बलिदान के विना कोई बडा यज्ञ सफल नही होता, प्रतीत यह हो रहा है कि अभी पर्याप्त तप नही हुआ। हिन्दी प्रेमी, हाँ-हाँ सत्य और न्याय के प्रेमी, तपस्या की भट्टी मे पडे हैं। इन्हे तब तक तपना होगा, जब तक कुन्दन बन नही जाते। अभी रुकने का समय नही, चलते ही चलो। इतने बलिदान दे डालो कि सत्ताधारियो के हृदय पिघल जाये।

पूर्ण अहिंसात्मक रहकर हृदय मे सब के कल्याण की भावना रखते हुए अपनी आहुति डालते चले चलो।"

इस प्रकार प्रत्येक स्थात्र पर भाषण का क्रम चलता रहा। स्वामी आत्मानन्द जी महाराज अस्वस्थ होने से भाषण नही करते थे। जब जनता ने स्वामी जी के दर्शन करने की भावना अभिव्यक्त की, तो वे सयान कोष्ठ द्वार मे खडे हो गये; जिससे उन्हे सब देख सके। स्वामी जी ने जनता के अभिवादन का उत्तर हाथ जोड कर दिया।

अपार भीड के कारण आशु सयान को कई वार रुकना पडा। पर उसे तो आगे जाना ही था, वह आगे बढ गया। जब वह नीलोखेड़ी स्थात्र पर पहुँचा, तो करनाल स्थात्र पर ही उनके कोष्ठ मे छीड हो जाने के कारण महाराज ने दूसरे सत्याग्रहियो को एक ही स्थान पर उनके कोष्ठ मे आजाने का आदेश दिया। अब सभी सत्याग्रही एक ही स्थान पर हो गए। नीलोखेडी से प्रस्थान कर जब सयान कुरुक्षेत्र पहुँचा, तो उसे सयान मञ्च पर पहले ही रोक लिया और अम्बाला परिक्षेत्र के उपमहानिरीक्षक आरक्षी* ने स्वामी जी महाराज से कहा, "आप प्रगृहीत हैं"। महाराज का आदेश पाकर सब सत्याग्रही बिना समाघोष‡ लगाए शान्ति पूर्वक सयान से उतर गये। सयान-स्थात्र से बाहर आरक्षिवाहन+ और वहित्र— खडे थे। सङ्केत पाकर सत्याग्रही अपने वस्तु लेकर उस ओर बढ गये।

श्री स्वामी जी महाराज अस्वस्थ थे, अत श्री उपमहानिरीक्षक महोदय ने स्वामी जी को स्वय धीरे से कोष्ठ से उतारा और पकड कर

*अम्बाला रेंज के० डी० आई० जी० पुलिस। ‡नारा। +पुलिस लारी। —कार।

ही आगे बढ़े। अन्य आरक्षी अधिकारी दूसरे प्रतिष्ठित नेताओं के साथ साथ चल रहे थे।

कुरुक्षेत्र स्थात्र से स्वामी जी और उनके साथी १८-२० के आरक्षि-दल के सरक्षण मे आरक्षि-वाहनो में बैठे हुए जव आगे बढ रहे थे, तो वाहन मे आगे के अधिष्ठान पर अधिष्ठित एक सत्याग्रही ने, साथ में एक अन्य श्वेत वस्त्र धारी पुरुष से पूछा—"अब हमें कहाँ ले जाया जा रहा है?" इस प्रश्न के उत्तर मे उसने कहा—"दोपहर को आप सब पिपली राजकीय विश्रान्ति निकेतन मे विश्राम करेंगे और भोजन पायेंगे। अब हम सभी वही चल रहे हैं।" उसने आगे कहा—"मैं गुप्तचर हूँ। मै दीवान हाल, श्रद्धानन्द बलिदान भवन आदि स्थानों मे सब के साथ सन्ध्या हवन करता हूँ और प० प्रकाशवीर शास्त्री, पं० नरेन्द्र, प० रामगोपाल शालवाला, स्वामी अभेदानन्द जी आदि सभी व्यक्तियो को जानता हूँ।"

पिपली राजकीय विश्रान्ति निकेतन* मे पहुँच कर अधिकारी वर्ग ने शुद्ध घृत का तत्काल भोजन बनवाया। जब आसन्दियो× के मध्य बिछे काष्ठ-पटलों† पर रक्खी थालियो मे आँगल पद्धति से भोजन परोसा गया, तो उसके साथ फलो में अगूर-सन्तरे-केले-सेव भी सम्मिलित किये गये।

श्री स्वामी जी महाराज ने अस्वस्थता के कारण वहाँ भोजन नही किया। एक राजकीय चिकित्सक उनकी देख-रेख भी कर रहा था। चार-पाँच आरक्षि-व्यक्तियाँ पहरे पर थी। सब को यह विश्वास तो था ही कि जत्था बहुत सभ्य, शान्त और अति प्रतिष्ठित व्यक्तियो से समन्वित है, अत. वे केवल अत्यन्त श्रद्धाभाव से सब का परिचय ही उपलब्ध कर रहे थे और सर्वाधिकारी श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के दर्शन कर स्वय को कृतार्थ समझ रहे थे।

जब सायं के चार बज गये, तब जत्थे को चलने के लिये कहा गया और वह पहले की ही भाँति वहित्रों‡ तथा वाहनो÷ मे आरक्षि-दल+ की संरक्षता मे बैठ गया। जत्थे से यह नही बताया कि उसे कहाँ ले जाया जा रहा है? बहुत दूर निकल जाने पर जब उन्हें

---

*रैस्ट हाउस। ×कुर्सी। †मेज। ‡कारें। ÷लारियां।
+पुलिस-दल।

प्रग्रहण के लिए स्वामी आत्मानन्द जी सयान से नीचे उतर रहे हैं ।

श्री आनन्द भिक्षु जी और आनन्द स्वामी जी प्रग्रहण के लिए सयान से नीचे खड़े हैं ।

श्री महात्मा आनन्द स्वामी और आनन्द भिक्षु जी को प्रगृहीत करके ले जा रहे हैं ।
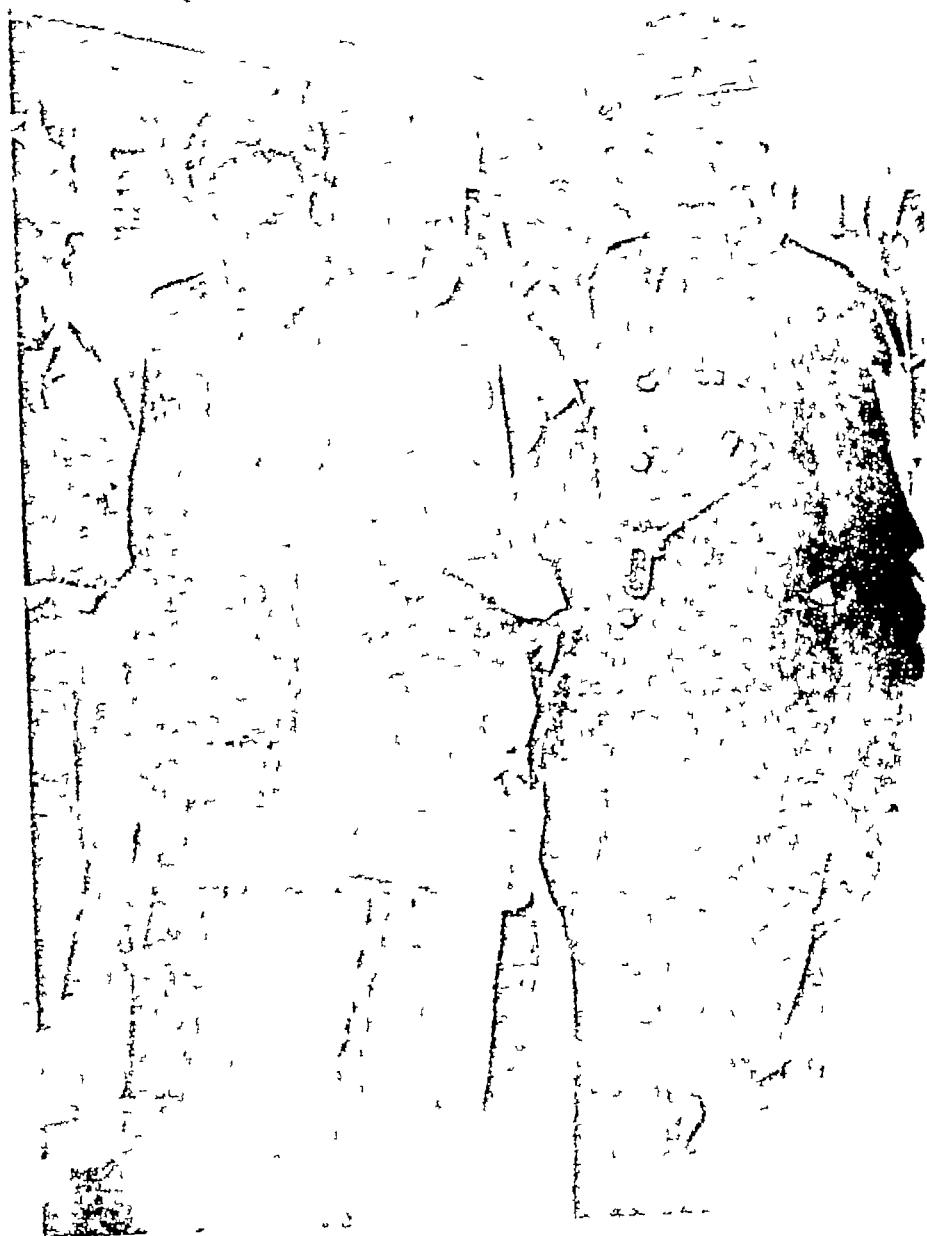
परिचित रथ्या× का आभास हुआ, तब अनुमान लगाया कि उन्हें आश्रम ले जाकर छोड दिया जायेगा।

अनुमान ठीक निकला। कुछ ही देर मे स्वामी जी महाराज को उनके दल सहित आश्रम पर पहुँचा दिया और प्रथम से ही आदिष्ट आरक्षि-दल का पहरा सहारनपुर रथ्या, खजूरी रथ्या पर लगा दिया गया। इस प्रकार आन्दोलन के सर्वाधिकारी श्री स्वामी जी महाराज आश्रम मे ससीमित* कर दिये गये। यह पूछने पर कि यह ससीमितता कब तक रहेगी ? उत्तर मिला, "जब तक प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू चण्डीगढ से दिल्ली नही लौट जाते, उसके एक दिन पीछे तक रहेगी।

आरक्षि-पुरुष अत्यधिक चौकन्ने थे। एक अधिवेशन मे सम्मिलित होने के लिये एक परिवहित्र‡ जब रात्रि के आठ बजे यमुना नगर से श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी को लेने आया और लेकर लौट चला, तो उन्होने अपना परिवहित्र उसके पीछे लगा दिया और अन्त तक पीछा किया।

पहरे पर विद्यमान शेष आरक्षि-दल से कहा गया कि इसमे तो आनन्द स्वामी जी गये हैं। स्वामी आत्मानन्द जी तो भीतर ही विद्यमान है, यदि विश्वास न हो, तो भीतर आकर दर्शन कर लो, तब उन्होने उत्तर मे कहा—"हम यही से उन्हे शीश नमाते है। हमे उनसे भय लगता है। उनके समीप जाने का साहस नही होता।" थोडा परिचय बढ जाने पर एक-एक आरक्षी ने दूसरे दिन श्री चरणो मे पधार कर उनके दर्शन किये। महाराज की शान्त एव गम्भीर-वात्सलय भरी मुद्रा को देखकर उन्हे अतिशय आनन्द हुआ।

९ नवम्बर को श्री प्रधान मन्त्री "मेघदूत" वायुयान से चण्डीगढ पहुँचे। मार्ग मे अनेक स्थानो पर काली झण्डियो से प्रदर्शन करके जनता ने अपनी भावनाएँ प्रधानमन्त्री जी के प्रति, जैसी थी प्रकट की। श्री पण्डित नेहरू के समक्ष अपनी एकता प्रदर्शित करने के लिये सहस्रो हिन्दी प्रेमी वहाँ पहुँचे, जबकि जनता की न्याय प्रिय भावना को कुचलने के लिये कैरो प्रशासन ने अनेक प्रकार के हथकण्डे रचे हुए थे।

शनिवार ९ नवम्बर १९५७ का यह दिवस पजाब के इतिहास मे

×सडक। *नजर बन्द। ‡जीप।

एक स्मरणीय दिवस रहेगा। छह मास से प्रशासन की भाषा नीति के विरोध में चल रहे हिन्दी रक्षा आन्दोलन के सञ्चालकों ने प्रधान मन्त्री की पंजाब यात्रा के अवसर पर हट्टताल रखने तथा विरोध प्रदर्शन का जो पुनरावेदन किया था, पंजाब की जनता ने उसके अनुसार ६ नवम्बर को समग्र पजाव मे हट्टताल रक्खी और प्रधान मन्त्री को यह अनुभव करा दिया कि समस्त पजाव में उनकी भाषा नीति के कारण कितना असन्तोष है।

प्रधान मन्त्री नेहरू के लिये पजाब प्रशासन ने रात के दो बजे से ढाई सौ उद्वाहियो* मे ग्राम के सिक्खो को भर कर ढोना प्रारम्भ कर दिया था, और उन लोगो को ही स्वागत पङ्क्ति मे खडा कर प्रधान मन्त्री के जयकारे बुलवाये गये थे। प्रशासित नगर होने पर भी नागरिकों में कोई उत्साह नही देखा गया। आरक्षियों‡ का कठोर नियन्त्रण होते हुये भी तीन हिन्दी प्रेमियों ने हिन्दी समर्थक समाघोषां लगाए। दो छात्र मार्ग मे वृक्षो पर लटके हुये थे वे प्रधान मन्त्री के वहित्र÷ को आता देखकर सहसा कूद पडे और 'हिन्दी भाषा अमर रहे' के समाघोष लगाते रहे।

आरक्षी ने इन्हे प्रगृहीत कर लिया। आर्य समाज मन्दिर चण्डीगढ में ८ नवम्बर के सायं से ही घेरा पड़ा हुआ था। न कोई आ सकता था, न जा सकता था। दो पाचको, एक औषध-योजक और एक हवन करने वाले को प्रगृहीत× कर लिया था।

इस दिन करनाल, जीन्द, नरेला, अम्बाला, लुधियाना, जालन्धर, घरोण्डा, शाहबाद मारकण्डा, हिसार, रोहतक, पठानकोट, गुरुदासपुर, बटाला, पानीपत, संगरूर, पलवल, गुरुग्राम, भिवानी आदि स्थानो पर पूर्ण हट्टताल● रही। छात्र भी विद्यालय नही गये। उस दिन अनेक स्थानो पर हिन्दी प्रेमी जनता की संयात्रा+ पर अश्रुवाति तथा यष्टि प्रहार भी हुआ और अनेक प्रगृहीत हुए।

प्रधान मन्त्री ने चण्डीगढ पहुँच कर विधान सभा मे घोषणा की कि हिन्दी रक्षा समिति पंजाब की नव्वे प्रतिशत माँगें स्वीकार कर ली गई है। शेष दश प्रतिशत पर परस्पर मे प्रेम पूर्वक बैठ कर विचार किया जा सकता है।

---

*ट्रक। ‡पुलिस। ां नारे। ÷कार। ×गिरफ्तार। +जुलूस। ●हड़ताल।

यत. राज्य प्रशासन द्विजिह्व होता है, उस पर सहसा विश्वास नही किया जा सकता, अत. हिन्दी रक्षा समिति ने अपना आन्दोलन प्रधान मन्त्री के आश्वासन पर स्थगित नही किया और वह पूर्ववत् चालू रहा।

पञ्जाब प्रशासन का सम्पूर्ण ढाँचा प्रमत्त हो गया है।

पञ्जाब हिन्दी रक्षा समिति के अध्यक्ष यतिभूषण आत्मानन्द सरस्वती ने १२ दिसम्बर सन् १९५७ को समाचार पत्रो के लिए दिए एक वक्तव्य मे पञ्जाब प्रशासन को प्रधान मन्त्री के उस भाषण का स्मरण दिलाया जो उन्होने ९ नवम्बर को चण्डीगढ मे किया था। जिसमे उन्होने परामर्श दिया था कि आन्दोलन कर्त्ताओ को प्रेम से जीतना चाहिए।

प्रधान मन्त्री के भाषण के पश्चात् लुधियाने मे निर्दोष महिलाओ और बच्चो पर अत्याचार एव हिन्दी समर्थको पर यष्टि-प्रहार को उस 'प्रेम' का नाम नही दिया जा सकता, जिसका प्रचार नेहरू जी ने किया था। मुझे विवश होकर कहना पडता है कि वर्तमान प्रशासन पथ-भ्रष्ट हो गया है। जब तक वह आत्मनिरीक्षण और पश्चात्ताप नही करेगा, तब तक वह अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त न कर सकेगा। इसका प्रमाण यह है कि जनता ने न्याय का पक्ष लेकर प्रशासन की त्रुटि-पूर्ण नीतियो का विरोध प्रारम्भ कर दिया है। जो लोग न्याय माँग रहे हैं, उन्हे कुचलने के लिए राज्य उचित और अनुचित प्रयत्न कर रहा है। यदि प्रशासन जनता के कष्टो का निवारण करना चाहता है, तो उसे न्याय का मार्ग अपनाना पडेगा। किसी भी राज्य के लिए यह शोभा नही कि वह जनता को उसके अधिकारो से वञ्चित करे।

अन्त मे स्वामी जी ने कहा कि मेरे विचार मे निवारक ससीमित नियम के अवधि मे वृद्धि करना तर्क-सङ्गत नही, विशेषत इस कारण कि पञ्जाब मे इस नियम का प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यो के लिए किया जा रहा है।

अन्त में प्रशासन को झुकना पड़ा

निरन्तर आन्दोलन को दृढतर होते देख अन्त मे प्रशासन को झुकना पडा। गृह मन्त्री प० गोविन्द बल्लभ पन्त ने समझौते के

लिए श्री घनश्याम जी गुप्त को बुलाया और परस्पर विचार विमर्श करके हिन्दी रक्षा समिति की माँगे स्वीकार करने का आश्वासन दिया। श्री गुप्त जी ने भी इसे स्वीकार कर लिया और सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। पश्चात् पंजाब प्रशासन ने अपने कारागारो से सब सत्याग्रही छोड़ दिए जाने का वक्तव्य समाचार पत्रों मे प्रकाशित करा दिया और वे छोड दिए गए।

धन्यवाद

वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर से सत्याग्रह के सूत्रधार श्री आत्मानन्द सरस्वती ने ३१ दिसम्बर सन् १९५७ को धन्यवाद रूप में निम्न वक्तव्य समाचार पत्रो मे प्रकाशनार्थ दिया—

पंजाब मे आर्य समाज की दोनो सभाओ ने मिलकर हिन्दी की रक्षा के लिए देश भर में एक विशाल योजना बनाई थी। लक्ष्य यही था कि देश मे राष्ट्र भाषा हिन्दी का महत्त्व किसी भाषा से कम न समझा जावे। इसी विचार को ध्यान मे रख कर, हिन्दी को समान प्रतिष्ठा दिलाने के लिए यह यज्ञ रचाया गया था। पंजाबी और अन्य किसी भाषा के लिये आर्य समाज के मन मे किसी प्रकार का कोई विरोध न था। इस कार्य-क्रम में आर्य समाज की दोनो सभाओं ने कन्धे से कन्धा मिलाकर सङ्घटित रूप से तथा उदार भावनाओ से भाग लिया। इसके लिए प्रतिष्ठित सभाएँ धन्यवाद की पात्र हैं।

इस अवसर पर कार्य के महत्त्व को ध्यान मे रख कर दोनों सभाओ ने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का द्वार खटखटाया। माननीया सभा ने भी सभाओ की पुकार को प्रेम से सुना और पूर्ण सहायता का वचन दिया। इसके लिए सभा के अधिकारी वर्ग का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूँ।

इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये एक महान् नेता की आवश्यकता थी। आर्य समाज को सब ओर दृष्टिपात करने पर श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त का नाम ही दृष्टि मे जंचा और प्रार्थना करते ही इस कार्य के सञ्चालन के लिये उन्होंने सहृदय स्वीकृति प्रदान की। उन्होंने जिस उत्तमता से अपने प्रबल कन्धो पर लेकर इस कार्यभार का सञ्चालन किया, यह उनकी कार्य-दक्षता और दृढता का स्पष्ट ही परिचय करा

रहा है। अत मै श्री घनश्यामसिह जी गुप्त का हृदय से आभार प्रदर्शित करता हूँ।

देश भर की समस्त हिन्दी प्रेमी जनता ने, जिसमे कांग्रेस, समाजवाद, जनसङ्घ, हिन्दूमहासभा, तथा अन्य सस्थाएँ सम्मिलित है, सङ्गठित होकर उदारता तथा प्रेम पूर्वक हिन्दी रक्षा मे धन-जन सब प्रकार का सहयोग करते हुये जो आर्य समाज की सहायता की है तथा बलिदान दिये है, उनके इस उदार भाव को भुलाया नही जा सकता।

फिरोजपुर और बहु अकबरपुर आदि काण्डो मे जिन वीरो ने बलिदान देते हुए मातृभाषा हिन्दी के लिये अनेक प्रकार के कष्ट सहन किये है, उनके हम और देश तथा आर्य जाति सदा के लिये आभारी रहेगे।

देश के जिन विद्वान् पुरुषो ने अपनी सम्पादन कला के द्वारा अनेक कष्ट सहन करते हुए जनता का उचित नेतृत्व किया है, वे तो मेरे ही नही, सारे देश के धन्यवाद के पात्र हैं। आर्य समाज के समक्ष समय-समय पर इस प्रकार की अनेक कठिनाइयाँ आ सकती है। उस अवसर पर सङ्गठित रूप से आर्य समाज की सेवा में तन-मन-धन समर्पित करते रहना, आशा है आर्य समाज को स्मरण रहेगा। देश के सब वर्गो मे प्रेमभाव का सञ्चार करना, जो कि आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है, उसके प्रसार मे आर्य गण सदा ही तत्पर रहकर सब का उत्थान करने की चेष्टा करते रहेगे।

गृहमन्त्री श्री प० गोविन्द वल्लभ पन्त और अन्य राज्य वर्ग ने जो सद्भावना प्रकट कर आर्य समाज को उनका अपना अधिकार दिलाने के लिए उत्कट इच्छा प्रकट की है, उसके लिये वे सहर्ष धन्यवाद के पात्र हैं।

समाचार पत्रो मे सब सत्याग्रही वर्ग को छोड़कर, एक सत्याग्रही को विशेष कारण से न छोडने का जो विचार पञ्जाब राज्य की ओर से प्रकट किया गया है, उसके अनुसन्धान मे कुछ भूल हुई है। वह भूल यह है कि इस समय दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर में जो विद्यार्थी पढते हैं, उनमे दो विद्यार्थी सत्यप्रिय नाम के है। उनमे से एक विद्यार्थी को ६ मास का दण्ड २५ नवम्बर को मिला था। इस

विद्यार्थी के लिये हमने सत्र न्यायालय मे पुनरावेदन किया था और वह १८ दिसम्बर को दण्ड से मुक्त होकर आश्रम पहुँच गया था। सम्भव है इसके मुक्त होने की सूचना पञ्जाब प्रशासन को न मिली हो और सत्यप्रिय को न छोड़े जाने का विचार प्रकट कर दिया गया हो। सूचनार्थ निवेदन है कि इस समय विद्यालय मे दोनो विद्यार्थी जो कि सत्यप्रिय नाम के है, पहुँच चुके है। अब प्रशासन की सूचना के अनुसार कारागार मे कोई सत्याग्रही शेष नही रहा है।
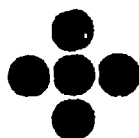
आत्मानन्द-जीवन-ज्योतिः

जीवन् मुक्त प्रकाश

शान्ति और क्रान्ति का समन्वय

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री अब्दुल कलाम आज़ाद का निधन हुआ। आश्रम मे शोक सभा का आयोजन किया गया। केन्द्रीय शिक्षा विभाग से प्रान्तीय शिक्षा विभाग का सम्बन्ध भी रहता ही है। हिन्दी आन्दोलन मे पञ्जाब प्रशासन के अत्याचार हिन्दी-प्रेमी जनता देख चुकी थी। वे घाव भरे नही थे। अत. कुछ छात्रो ने उत्तेजनात्मक भाषण किये। महाराज उस सभा के अध्यक्ष थे। महाराज ने अध्यक्षीय भाषण मे कहा—"हम कब कहते है, क्रान्ति मत करो, हम तो तुम्हे क्रान्ति की ज्वालाएँ बनाने मे प्रयत्नशील है, परन्तु क्रान्ति भी देख कर की जाती है। आप अपनी शक्ति बढ़ाओ और क्रान्ति मचाओ। विना शक्ति के क्रान्ति-क्रान्ति चिल्लाना सर्वथा निरर्थक है।"

स्वामी जी महाराज के भक्त उनकी चिकित्सा के लिये अपनी श्रद्धा के अनुसार कुछ-न कुछ भेजते ही रहते थे। ८-२-१९५८ को श्री प्रेम विहारीलाल मन्त्री आर्यसमाज अमरोहा ने ६० रुपये भेजे।

पञ्जाब मे हिन्दी आन्दोलन के कार्याधिक्य से महाराज का स्वास्थ्य बहुत शिथिल हो चुका था, वे अब पूर्णतया विश्राम कर सकें, एतदर्थ आर्यजनो का पारस्परिक विचार-विनिमय होने लगा। ऐसी स्थिति मे उस देव महापुरुष को श्री दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय के उत्तरदातृत्व वाले आचार्यपद के कार्यो से भी कुछ समय के लिए पृथक् रखना अनिवार्य था। परामर्शदाता श्रद्धालु-भक्त जनो के आग्रह पर यतिराट् आत्मानन्द सरस्वती ने श्री बालमुकुन्द आहूजा ५/१७ रूपनगर

सब्जी मण्डी दिल्ली के पर्यलिन्द* के एक एकान्त कक्ष में डेरा जा लगाया। महाराज के प्रिय शिष्य श्री गणेशचन्द्र देव जी भाई पटेल श्री स्वामी जी की सेवा मे सन्नद्ध थे। प्रत्येक सुविधा के अनुसार औषधोपचार प्रारम्भ हो गया। किन्तु २४ जनवरी सन् १९५८ को उस भव्य-मूर्ति का रुधिर निपीड‡ २७५/१३६ हो गया। आर्य महानुभाव उस हृदय द्रावक समाचार को वृत्त-पत्रों में पढ कर व्याकुल हो उठे। स्थान-स्थान से स्वामी जी के स्वास्थ्य-समाचार जानने के लिए दूर-लेख+ एवं चिट्ठी-पत्रियाँ पहुँचने लगी। महाराज मे आत्मिक साहस अदम्य था। उनकी आकृति प्रतिक्षण तेज:पूर्ण विराजती थी। चिकित्सकों ने उस समय तक रुधिर-निपीड के असङ्ख्य रोगी देखे थे, किन्तु महाराज के देदीप्यमान मुख-मण्डल को देख कर वे आश्चर्य-चकित रह जाते थे और कहते थे—ऐसा अद्भुत पुरुष पहले देखने मे नही आया, जो इतने अधिक रुधिर-निपीड के होते हुए भी शरीर धारण किये हुये है। महाराज की दिव्य-आकृति से एक प्रशान्त-शान्ति निरन्तर प्रस्फुटित होती थी। वे उस समय आत्मस्थ रह आभ्यन्तर शान्ति अनुभव करते थे।

इस प्रकार वे ज्यों ही रोग-मुक्त होने लगते कि सभा के प्रधान होने के कारण सभा से सम्बन्धित पत्रों के उत्तर लिखाने लगते थे। दर्शनार्थी आश्चर्य करते थे कि महाराज को इस अवस्था में भी कफ नही बनता। जब कि मनुष्य स्वस्थ अवस्था में भी स्थान-स्थान पर थूकते फिरते हैं।

सभा के मन्त्री श्री वैद्य सत्यव्रत जी ने स्वामी जी के अनन्य परि-चारक श्री गणेश जी को गुप्त पत्र द्वारा सूचना दी कि "वे महाराज के जीवन-वृत्त को लिपिबद्ध करते रहे और उनको इसका आभास न होने पाए तथा यह भी ध्यान रहे कि उनके मस्तिष्क पर कोई दुष्प्रभाव भी न पडे।"

श्री स्वामी जी महाराज के यशस्वी शरीर की उत्तरोत्तर आर्यजनों को अधिक आवश्यकता अनुभव होती जा रही थी। उनकी सम्मति के बिना अथवा सहयोग की अवहेलना मे आर्यजनों का कोई कार्य सुविधा पूर्वक पूर्ण होता प्रतीत नही होता था। महर्षि दयानन्द के उच्च सिद्धान्तों को राजनीतिक क्षेत्र मे पहुँचाने के लिए "दैनिक प्रताप" के

---

* बंगला। ‡ ब्लडप्रैशर। + तार।

सम्पादक श्री वीरेन्द्र जी साहित्य अधिस्नातक पजाब परिषद् के लिए स्नातक क्षेत्र से चुनाव मे निर्वाचनार्थी थे। उन्हो ने इस उत्तम कार्य मे समस्त हिन्दी प्रेमी और आर्य जनता का सहयोग पाने की दृष्टि से श्री चरणों मे निवेदन किया। जिसे महाराज ने सहर्ष स्वीकार किया और समाचार पत्रों से पूर्ण सहयोग देने की विज्ञप्तियाँ जन-जन मे पहुँचा दी गईं। उस महापुरुष के आदेश पर अन्य व्यक्तियो के साथ-साथ आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के समस्त अधिकारी वर्ग ने श्री वीरेन्द्र जी को सफल बनाने के लिए पूर्ण प्रयत्न के साथ अपनी सेवाये अर्पित कर दी।

चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध रखते हुए भी ता० १५-३-५८ को श्री देव आत्मानन्द जी का रुधिर निपीड इतना निम्न हो गया कि आँख, कान, जिह्वा, हाथ और पग सभी शरीरावयव अपने-अपने कार्यों से उपरत होने लगे। स्वास्थ्य की इस निम्नतम दशा को देख कर यह विचार मुखरित हो उठा कि दिल्ली के अत्यधिक जन समूह मे जल वायु की प्रतिकूलता ही इस में विशेष कारण है। अत स्वास्थ्यवर्धक स्थानो में राजपुरा और शिमला की उपयोगिता को अनुभव किया गया। किन्तु ऐसी विकट स्थिति मे उस अमूल्य शरीर को गति में लाना और भी कठिन जान पडा। यात्रा का कष्ट जब स्वस्थ शरीरो मे भो स्वप्रभाव दर्शाए बिना नही रहता, तब सर्वथा हृत शरीरो को तो झकझोरे बिना कैसे रह सकता है। अत पाँच-सात दिन मे कुछ रुधिर की स्थिति समावस्था मे आ जाने पर स्वय श्री महाराज ने यही निश्चय किया कि सबसे पहले अपने आश्रम पर यमुनानगर ही चलना समुचित है। महाराज के इस आदेश को शिरोधार्य कर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री स्वामी अभेदानन्द जी, श्री आचार्य कृष्ण जी को अपने साथ लेकर श्री आहूजा जी के वहित्र † द्वारा महाराज को आश्रम पर ले आए। मार्ग मे श्री गणेश जी ने औषध आदि का पूर्ण ध्यान रक्खा।

इस अमूल्य निधि के सकुशल आश्रम मे पहुँच जाने पर समस्त आश्रमस्थ जन अति हर्षित हुए और उन्हे पूर्ण विश्राम देने की चेष्टाएँ प्रारम्भ करने लगे। श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज उस चतुर्थाश्रम वासी लोकोत्तर विभूति मे अत्यन्त निष्ठावान् थे। आश्रम मे वे प्रथमवार ही पधारे थे। आर्य जगत् के उस मान्य नेता ने महाराज के उस एकान्त-स्थित आश्रम को निहार कर श्री दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय के

† कार।

होनहार भावी उपदेशको को प्राचीन ऋषि-पद्धति का स्मरण कराया और सारगर्भित अपने उपदेश मे इस ऋषि प्रणाली के सिद्धान्त प्रस्तुत करके उन्हें अपनी भावनाओ से प्रभावित किया।

महाराज ने स्व स्थान पर पधार कर एक अपूर्व शान्ति का अनुभव किया। उन की यह शान्ति निरन्तर स्थिर रहे और वे कुछ स्वस्थ रहते हुए आर्य जगत् को अपने सत्परामर्शों से आप्लावित करते रहे; इस वार्ता को दृष्टिगत रख कर परम हितैषी श्री महाराज के भक्तो ने आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के प्रधान पद से स्वामी जी के त्याग-पत्र दे देने का बहुत दिनो से उपस्थित विषय ४ मई सन् १९५८ रविवार को आर्य समाज हनुमान रथ्या नई दिल्ली मे होने वाली बैठक में प्रस्तुत कर दिया, जिसे अत्यन्त खेद के साथ स्वीकार किया गया।

१० अगस्त सन् १९५८ को मध्याह्नोत्तर लगभग ३ बजे, पञ्जाब के मुख्य मन्त्री श्री प्रतापसिह जी कैरो, कुछ नागरिक जनों के सहित वैदिक साधनाश्रम यमुना नगर पधारे। आचार्यप्रवर के चरण स्पर्श कर नीचे ही दरी पर बैठ गये। उस समय श्री आचार्यराज अस्वस्थ थे। चिकित्सको ने बोलने के लिए प्रतिषेध किया हुआ था। इसी कारण वे उन से अधिक न बोल सके। श्री मुख्य मन्त्री महोदय ने कुशल-क्षेम एवं रुधिर निपीड के विपय मे पूछ कर निवेदन किया—"महाराज, कुछ आदेश है?" इस के उत्तर मे महाराज ने शिर हिला दिया। श्री कैरो ५ मिनट तक श्री चरणों मे बैठ, अभिवादन करके चले आये।

दूसरे वार जब पञ्जाब के मुख्यमन्त्री श्री प्रतापसिह कैरों मुख्य मन्त्री के रूप मे यमुना नगर पधारे, तो स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के दर्शन करने आश्रम पर भी पधारे और साभिवादन निवेदन किया—"महाराज, मुझे कुछ उपदेश देकर कृतार्थ करने की कृपा कीजिए।" उस समय केवल इतना कहा—

"अधिकारियो को स्व प्रजा पर पुत्र-समान प्रेम करना चाहिए, सफलता के दर्शन तब ही सम्भव हैं।"

आश्रम के भादु नामक सेवक की समीपवर्ती रायपुर ग्राम निवासी अब्दुल्ला के सेवक से कुछ कहा सुनी हो गई। इस पर यवन सेवक ने उस पर लाठी प्रहार किया और वह घायल हो गया। इस दुःखद घटना की सूचना भादु के पिता आदि को गांव मे मिल गई तथा आश्रम मे भी यह घटना फैल गई। विद्यार्थी भी यौवन के प्रवाह में अब्दुल्ला के ही सङ्केत से यह दुष्कृत्य हुआ समझ, प्रतिशोध के लिए उतावले हो

गये। स्वामी जी को जब इस घटना का ज्ञान हुआ, तो उन्हों ने तुरन्त ग्राम के वृद्ध महानुभावों एव पञ्चायत के प्रधान आदि को बुलवाया और वे एकपदे पहुँच गये। श्री अब्दुल्ला भी उपस्थित हुआ। ग्राम की गण्य मान्य व्यक्तियो ने उपर्युक्त घटना पर खेद प्रकट किया। सर्व प्रथम स्वामी जी महाराज से सद्भावना का आदेश लेकर श्री अब्दुल्ला जी कमरे से बाहर आया, स्वामी जी की आँखो से ओझल होने पर प्रकोष्ठ के बाहर एकत्रित आक्रष्ट विद्यार्थियो ने उस को पीटना प्रारम्भ कर दिया। उस के द्वारा पहले भी कुछ अभद्र व्यवहार हुए थे, जिन को लेकर ब्रह्मचारियों ने ऐसा किया। विद्यार्थियो द्वारा किये गये प्रति-रोध की यह लीला शीघ्र ही श्री स्वामी जी महाराज को अवगत हो गई। विद्यार्थियो से रोषावेश मे ऐसा व्यवहार हो जाने पर, स्वामी जी के निकट बैठे हुए उन मुसलमान सज्जनो ने कहा, कि देखिये स्वामी जी महाराज! आप के आश्रम पर आप के आदेशानुसार जब हम आए हुए है, और आप की उपस्थिति में हमारे साथ ऐसा व्यवहार हो सकता है, तो हम और किसी से क्या गिला कर सकते हैं? इस बात के श्रवण करते ही पूज्य आचार्यप्रवर को इतना कष्ट हुआ कि रुधिर-निपीड † भी अत्यधिक प्रवृद्ध हो गया। वे ऐसे असमञ्जस में पडे कि अपनी व्यथा को व्यक्त भी नही कर पाए। अब्दुल्ला अपने खेतो की ओर चला गया, तब स्वामी जी ने श्री प० विद्याधर जी स्नातक को पुन सचेत किया कि देखिये कही उधर विद्यार्थी खेतो में छुपे हुए न बैठे हो। श्री स्नातक जी उधर गये, तो वस्तुतः विद्यार्थी वहाँ लाठी और नाल लिये बैठे थे। स्नातक जी ने उन सब को धमकाया और विद्यालय में भेज दिया। सब के चले जाने पर जब महाराज को स्नातक जी ने अत्यन्त कष्ट का अनुभव करते देखा, तब सभी विद्यार्थियों को समझाने के लिए बुलवाया। उस गम्भीर वातावरण मे जब कि सब मौन साधे हुए थे, अपने अनुभवो से पूज्य स्वामी जी के कष्ट को अनुभव करते हुए श्री पण्डित विद्याधर जी 'स्नातक' ने विद्यार्थियो को सन्मार्ग का सदुपदेश किया। इतना सब होने पर भी स्वामी जी को उस अनुचित व्यवहार पर विपुल अन्त.खेद बना ही रहा और कहा कि इस प्रकार के अनुचित व्यवहार करना हम जैसो को शोभा नही देता। इस पर कुछ देर सन्नाटा छाया रहा। तब स्वामी जी ने आशङ्का करते हुए कहा—"सम्भवत. ये लोग मिल कर आते-जाते ब्रह्मचारियो को

---

† ब्लड प्रेशर।

कही कोई हानि न पहुँचावें।" तब पण्डित वेदानन्द जी ने उन की रुग्णावस्था को ध्यान मे रखते हुए निवेदन किया कि आप क्यो चिन्ता करते है ? आप का तो राजकीय क्षेत्र में भी प्रभाव है। इतना सुनते ही स्वामी जी ने अतीव गम्भीर स्वर में कहा—"इन प्रभावो पर कभी गर्व नही करना चाहिए।" आचार्य श्रेष्ठ के इन दिव्य शब्दों ने रामप्रसाद आदि कतिपय भावनावान छात्रो के हृदय को गम्भीर बना दिया।

पूज्य स्वामी जी के क्लेश को कम होता न देख पण्डित जी ने पुनः निवेदन किया कि आप दु खी न हो, जब विद्यार्थी ग्राम में प्रचार आदि करने जायेंगे, तब सब वातावरण ठीक हो जायेगा। इस पर स्वामी जी बोले—"अभी इन में वह योग्यता नही जो दूसरों को उपदेश कर सकें।" महाराज के इस वाक्य से रामप्रसाद विद्यार्थी को एक बार सन्ध्या के अवसर पर महाराज द्वारा किया गया उपदेश स्मरण आ गया कि "प्रिय ब्रह्मचारियो ! आप यहाँ उपदेशक बनने के लिए अध्ययन कर रहे हैं। यह अच्छा है, परन्तु उपदेशक का एक प्रमुख कर्त्तव्य यह है कि वह प्रतिदिन ध्यान आदि करते हुए आत्म-निरीक्षण करे। यदि आप उपदेशक बनना चाहते है, तो आप को प्रतिदिन आत्म निरीक्षण करना होगा और यदि ऐसा न कर सके, तो प्रचार-कार्य छोड देना चाहिए। जो उपदेशक प्रतिदिन आत्म-निरीक्षण न करते हुए निज त्रुटियों को दूर करने का हार्दिक प्रयास नही करता, उस को यदि हम गम्भीर दृष्टि से देखें, तो अधिकार ही क्या है कि वह दूसरो को उपदेश दे। ऐसी अवस्था मे वह कर्त्तव्य-रहित ही समझा जायेगा। अतः तुम्हारा कर्त्तव्य है कि प्रतिदिन सन्ध्या आदि के साथ ध्यान करते हुए सच्चे हृदय से आत्म-निरीक्षण कर निज त्रुटियो को दूर करने का आत्मना सतत प्रयास करते रहो। इस प्रकार स्व जीवन को समुज्ज्वलित करने, अध्यात्म प्रसाद प्राप्त करने तथा दूसरो को भी सच्चे सात्त्विक आचरण शील बनाने का सुन्दर अवसर तुम्हारे हाथ लगेगा। आप को देख कर किसी के मुख से खेद पूर्वक तुलसीदास जी द्वारा रचित ये शब्द न निकल पावें कि—"पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे।" प्रभु आप सब को अपने शुभ लक्ष्य में सफलता प्रदान करे।"

[illegible]+ पढ़ने के लिए २८-१०-१९५८ को शीत ऋतु में

+ होमियोपैथी।

श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती श्री इन्द्रराज दीवानचन्द के विशेष आग्रह पर मेरठ जा विराजे। उन्होने एकान्त मे एक सुविधा जनक स्थान श्री महाराज के लिए किराये पर ले दिया और स्वय भी अन्य मेरठ निवासी आर्य जनो के साथ सेवा मे उपस्थित रहे। दूर-दूर तक के आर्य-परिवार प्रतिक्षण महाराज के समाचार जानने को उत्सुक रहते थे। पता लगते ही दिल्ली निवासी श्री नारायणदास कपूर और श्री रामनाथ भल्ला ने श्री सेवा मे उपस्थित हो आर्थिक सहयोग दिया; किन्तु मेरठ निवासियो ने महाराज का कुछ भी व्यय न होने दिया। वे व्यक्तिगत रूप से तथा आर्य समाज बुढाना द्वार की ओर से भी पर्याप्त सहायता करते रहे।

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के लिए यह विश्रुति व्याप्त थी कि वे कठिन-से कठिन सङ्कट में आ जाने पर भी जहाँ अपने लिए किसी से कुछ कहते न थे, वहाँ परोपकार के प्रत्येक कार्य में अपने आर्य बन्धुओं से कुछ कहते हुए यत्किञ्चित् भी सङ्कोच न करते थे।

महाराज की इस भावना को देख दिल्ली निवासी श्री वेदव्यास जी ने ३-११-५८ को एक हजार पाँच सौ रुपये का रेखाङ्कित धनादेश महाराज की सेवा मे अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए इन दो शब्दो के साथ समर्पित किया "यह थोडा-सा धन रुपया १५०० आप की सेवा के लिए है।"

इसी प्रकार जैतपुर काठियावाड गुजरात से आर्य श्रेष्ठ श्री मेल्हूराम राँझेमल जी कटारिया तथा उन के सुपुत्र श्री नारायणदास जी एवं अमरोहा से श्री रामजीदास जी भी समय-समय पर श्री सेवा मे धन भेजते रहते थे।

यह आप के अपने निर्णय की बात है

एक दिन प्रभात आश्रम टीकरी, जिला मेरठ के ब्रह्मचारी अवतारसिह जी श्री चरणो मे उपस्थित हुए और निवेदन किया—"मेरे मन मे गृहस्थ सम्बन्धित विचार उठते है, जब कि मेरा वय इस समय ३८ वर्ष है, और योगाभ्यास के साधनो का अनुष्ठान भी करता हूँ। ऐसा क्यो है ? यह समझ मे नही आता। ऐसी अवस्था मे क्या मैं विवाह कर लूँ ?"

महाराज ने उत्तर मे कहा—"यह सब मनुष्य के निर्बल विचारों का परिणाम है। जो पुरुष केवल इतने ही विचार से अपना प्रशस्त मार्ग छोड़ कर दूसरे मार्ग का अवलम्बन करते है। वे उधर भी सफल नहीं हो पाते। जहाँ तक सयँम का प्रश्न है, वह दोनों अवस्थाओं में समान है। इतना यहाँ और भी विशेष है कि एक गृहस्थ को आदर्श गार्हस्थ्य जीवन विताने के लिए कहीं अधिक सयँम की आवश्यकता है। अब यह आप के अपने निर्णय करने की बात है कि कौन-सा मार्ग आप को अभीष्ट है।"

शिष्य को उपदेश

महाराज के श्रद्धालु सेवक श्री भद्रसेन जी ने महाराज से निवेदन किया, "मेरा अध्ययन-काल समाप्त हो गया है और सभा के नियमानुसार अब एक वर्ष अवैतनिक रूप से प्रचार के लिए देना है। सभा की आज्ञा आने वाली ही है। कृपया यह बताइये कि मुझे प्रचार क्षेत्र मे किन नियमों का परिपालन करते रहना चाहिए, जिस से कि मैं स्वय को सफल प्रचारक प्रमाणित कर सकूँ।" भगवान् ने उत्तर देते हुए आशीर्वाद से भरपूर भावों मे कहा—

"वत्स ! जीवन की पवित्रता और सदाचार की स्थिरता, ऐसे अद्भुत वस्तु है, जो एक उन्नति परायण युवक को धर्म प्रचार के क्षेत्र में अत्युत्तम स्थान पुरस्कृत करते हैं; अतः अत्यन्त जागरूक रहते हुए, यम, नियम के पालन में प्रतिक्षण तत्पर रहना चाहिए और प्रतिदिन के नित्य नियम उसी प्रकार निभाने चाहिये, जैसे कि अब तक विद्यालय में रह कर अभ्यास किया है। नित्य नियमो मे किसी एक नियम का भी व्यतिक्रम और अवेक्षण जीवन मे शिथिलता लाकर अगले सब कार्यों को अनुत्साहित बना देते है।

महाराज के प्रेम पूर्ण और सूत्र रूप इस उपदेश से शिष्य का हृदय गद्गद् हो गया और उन्हों ने विनम्रमौलि होकर आभार प्रकट करते हुए कहा—"प्रभु से प्रार्थना है कि जीवन में कही भी शिथिलता आने पर आप का यह कृपापूर्ण उपदेश मार्ग-दर्शन का प्रकाश स्तम्भ बने।"

श्री स्वामी जी महाराज अपनी रोग-शय्या पर लेटे हुए—'यं ब्रह्मा-वरुणेन्द्ररुद्रमरुत:" अपने इस प्रिय श्लोक को गुन-गुना रहे थे। निकट बैठे हुए श्री इन्द्रराज जी ने निवेदन किया—"स्वामी जी, इस श्लोक में आशीर्वाद का एक भी शब्द नही है।" महाराज ने एक क्षण गा

कर कहा—"इस श्लोक का चतुर्थ चरण परिवर्तन कर देते हैं । पूरा श्लोक इस प्रकार रहेगा—

"यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुत स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः,
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति य योगिनः,
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफल त्रैलोक्यनाथ. प्रभु: ।।"

महाविद्यालय ज्वालापुर के लिए आशीर्वाद

महाविद्यालय की सुवर्ण-जयन्ती, जिसमे अभी डेढ़ मास शेष था, तक स्वस्थ हो जाने की आशा प्रतीत नही हो रही थी। अत. उन्हो ने अपनी शुभ कामना के रूप मे एक सौ रुपया मेरठ से ही जयन्ती के लिए भेज दिया और श्री 'राव' जी के इस पत्र के उत्तर मे कि "यदि रुग्णता वश आप न आ सके, तो इस की सफलता के लिए दिये गये आशीर्वाद का बडा मूल्य है" महाराज ने लिखा भेजा—

"स्वर्गीय वीतराग स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती का लगाया हुआ ज्वालापुरीय महाविद्यालय कल्पतरु ही उन का सच्चा स्मारक है, कल्पतरु तो सब को आशीर्वाद देता है, लेता नहीं । इस कल्पतरु की छाया मे प्राचीन सस्कृति तथा सभ्यता के प्रेमियो को विश्राम मिलता रहे, तथा आर्यसमाज को भी यह कल्पतरु सदा फल देता रहे ।"

महाराज ने दूसरे पत्र मे यह भी लिखवाया कि "किसी भी राष्ट्र और जाति के लिए वहाँ की सभ्यता और सस्कृति ही प्राण हुआ करती है । जितने प्राचीन दृष्टान्त मिलते हैं, उन सब के उन्नयन मे इसी नियम का समन्वय देखने मे आया है । वर्तमान तथा भविष्यत् में हमारा राष्ट्र भी स्वतन्त्रता के पश्चात् उन्नत होना चाहता है । यह तब ही सम्भव है, जब कि ऋषि मुनियो के उत्तराधिकार मे प्राप्त आर्ष पाठ-विधि के निर्देशानुसार अपने राष्ट्र मे शिक्षा-दीक्षा का प्रसार करे, जिस मे त्याग, तप और अनुशासन आदि शुभ गुणो का समावेश है ।"

इस के उत्तर मे "राव" जी ने लिखा—"सौ रुपये के साथ आप का सन्देश भी मिला । अब निश्चय ही महाविद्यालय ज्वालापुर की सुवर्ण जयन्ती सफल होगी । जब कि "प्रसाद चिह्नानि पुर फलानि" ईश्वर आप को शीघ्र स्वस्थ करे ।"

स्वामी जी ने उच्च रुधिर-निपीड से पीडित होते हुए भी, मेरठ मे अपने पुराने लेखो को सङ्गृहीत करके उन्हे पुस्तक रूप मे "उपासना

का वैदिक स्वरूप" यह नाम दिया। उस के छपवाने आदि का प्रबन्ध श्री इन्द्रराज जी द्वारा किया गया।

एक प्रसङ्ग मे महाराज ने श्री इन्द्रराज जी से कहा,—"इन्द्रराज ! क्या बताऊँ, इस रुधिर-निपीड के रोग ने सब आनन्द किरकिरा कर दिया है। मैं समाधि मे प्रतिदिन आत्म-साक्षात्कार किया करता था प्राण अब भी बैठते ही सहसा ऊपर चढने प्रारम्भ हो जाते है, पर शरीर की इस डॉवांडोल अवस्था मे मैं उन्हे सँभाल नही पाता, इस लिए मै सन्ध्या कर के प्रात: साय की नियत वेला मे लेटा रहता हूँ और प्रभु का चिन्तन करता रहता हूँ।"

योगी आत्मानन्द जी सरस्वती ने आश्रम से बडे अक्षरो मे छपा योग-दर्शन मगाया, उस का वे नित्य प्रति स्वाध्याय किया करते थे। सेवक श्री इन्द्रराज जी ने एक दिन महाराज से निवेदन किया—"स्वामी जी, गीता का भाष्य कर के आपने लोगो को एक नूतन विचार दिया है।"

महाराज ने प्रतिवचन मे कहा, "आज तक किसी ने मेरे लिखे का प्रतिवाद नही किया है।"

श्री इन्द्रराज जी दीवानचन्द जी का परिवार

आश्रम का उत्सव निकट आता जा रहा था; अत देवर्षि आत्मानन्द ने भक्तो से आश्रम चले जाने का अनुरोध किया। मेरठ वासियो ने उस महापुरुष की परिचर्या करके पुण्यार्जन कर लिया। आर्थिक दशा से साधारण होते हुए भी श्री इन्द्रराज दीवानचन्द के इस परिवार ने निरन्तर साढ़े चार मास तक भोजन आदि का पूर्ण व्यय अपनी ओर से किया। २० मार्च को प्रस्थान करते समय २०० रुपये श्रद्धा रूप मे और भेट किये। नगर के अन्य देवी देवताओ ने भी अपनी

श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। सब मिला कर आठ सौ रुपये हो गए। अहो! धर्म-सञ्चय के साथ उन सब नर-नारियो ने अपने आत्मा को कैसा पवित्र बना लिया।

महाराज के रोगोपचार मे आङ्गल चिकित्सक श्री करौली जी ने जो अपना योग दिया, वह उन की अत्यन्त उदार भावना और श्रद्धातिरेक का परिचय कराता है।

वैदिक साधना शिविर

वैदिक साधना शिविर का आयोजन १ से ५ अप्रैल तक हुआ। महाराज मेरठ से इस अवसर पर आश्रम पधार गये। महाराज के आश्रम पर लगने वाले शिविर विशेष महत्त्व के होते थे। पञ्जाब के आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिकारी श्री जगदेवसिह सिद्धान्ती, आचार्य भगवान्देव, श्री सत्यव्रत वैद्य तो प्राय पहुँच ही जाते थे। जिन के सहयोग से कार्य का सञ्चालन सुचारु रूप से चलता रहता था। इस अवसर पर महाराज के शिष्य मण्डल मे श्री आनन्द स्वामी जी महाराज, श्री आनन्द भिक्षु जी आदि प्रमुख महानुभाव भी अत्यन्त श्रद्धालसित होकर श्रोताओ को सदुपदेश का अमृतपान कराया करते थे। श्री आनन्द स्वामी जी से महाराज अति प्रसन्न थे। उन्हे एक वार महाराज ने कहा था कि देश-विदेश मे परिभ्रमण करके वैदिक धर्म के प्रचार की मै आप से बहुत आशा करता हूँ। महाराज के इस आदेश का वे उसी समय से पालन करते आ रहे थे। वर्मा, तिब्बत और नेपाल मे वे अपना परिभ्रमण समाप्त कर चुके थे। अफ्रीका और अन्य देशो मे भी उन का विचार निकट भविष्यत् मे ही जाने का था। भारतवर्ष के तो वे कोने-कोने मे घूम चुके थे।

महात्मा श्री आनन्द भिक्षु जी के मन्त्रोच्चारण से प्रसन्न होकर महाराज ने उन्हे एक यजुर्वेद भेट किया था। श्री आनन्द भिक्षु जी उपदेश के लिए जब व्याख्यान वेदी पर पधारते थे, तो ईश-वन्दना के पश्चात् पहले वाक्य उन के यही होते थे कि गुरुदेव के चरणो मे बैठ कर उपदेश करने की मैं परीक्षा दे रहा हूँ। हम यहाँ सब सीखने आये है और बहुत कुछ सीख कर यहाँ से जायेगे। यह हमारा सौभाग्य है कि इस शिविर मे आने के लिए हमे अवकाश उपलब्ध हो ही जाता है। यह सब गुरु महाराज की कृपा का परिणाम है।

शिविर पर आए हुए लोक सभा सदस्य श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने अपने भाषण में यह भी कहा कि यहाँ आश्रम में एक ऋषि रहते हैं, जिन का पवित्र शुभ नाम स्वामी आत्मानन्द सरस्वती है। उन्हों ने अपने आचरण से ऋषि-परम्परा को स्थिर कर दिया है। हमारा सौभाग्य है कि हमे अपने जीवन मे एक ऋषि के दर्शन हो रहे हैं।

सडसठ वर्ष के युवक महाकवि श्री आचार्य मेधाव्रत जी अपने भ्राता पण्डित सत्यव्रत जी के साथ नासिक से लखनऊ होते हुए सीधे योगिवर्य श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के दर्शनार्थ पधारे। काकतालीय न्याय से उस समय आश्रम पर साधना शिविर भी लगा हुआ था। उन्हो ने अपने गुरुदेव स्वामी आत्मानन्द जी महाराज से संस्कृत में वार्तालाप करते हुए कहा—"७५ वे वर्ष मे मैं संन्यास की दीक्षा लेना चाहता हूँ। ईश्वर कृपा से आप का शरीर बना रहे, तो मैं आप से ही दीक्षा लूँगा; क्योंकि आर्य जगत् मे आप पर ही मेरी पूर्ण श्रद्धा है।" तब महाराज ने शिष्य कविवर से कहा—"आप मुझ से स्वय को दीक्षित समझ लेना।"

महाराज के सेवक गणेशचन्द्र देव जी भाई पटेल श्री महाराज से आदेश लेकर स्वगृह जाने के लिये समुद्यत हुए। चलते समय उन्होंने स्वामी जी से प्रार्थना की—"महाराज ! मुझे कोई ऐसी बात बताइये, जिसे मैं आजीवन स्मरण रखकर स्व-जीवन निर्माण में आगे ही आगे बढ सकूँ।" तब उन्होंने कहा—"देखो वत्स ! मैं जो कुछ पढा हूँ, उसका मुझे गर्व नही है। मुझ से विद्वान् मिल जायेंगे। परन्तु मुझे यदि किसी वस्तु का गर्व है, तो यही, कि मैंने स्वजीवन मे चरित्र कमाया है। बस, मेरी इतनी-सी बात तुम स्मरण रखो। यह ही मेरा तुम्हारे लिये मुख्य सन्देश है।"

श्री रामचन्द्र जी पाचक, महाराज के भोजन का बहुत ध्यान रखते थे। उनकी दिनचर्या बहुत सुव्यवस्थित थी। अपने कार्य से निवृत्त हो कर वे उद्यान मे कार्य करने लगते, वा गौ की सेवा करते। बारह मास उनका यही क्रम चलता रहता था। यदि शीत के दिन हुए और उन से कोई कहता कि गन्ना चूस लो, तो उन की ओर से उत्तर मिलता, यह तो निष्क्रिय जनो का काम है। स्वामी जी महाराज उनसे बहुत प्रेम करते थे।

एक रात की बात है कि गौवो के हितचिन्तक श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज गोशाला की ओर गये। श्री रामचन्द्र जी ने अन्धेरे मे समझा—कोई बाहर की व्यक्ति है। वे तत्क्षण उठे और अपना दण्ड सँभाला। फिर ध्यान से दृष्टि डाली, तो रामचन्द्र जी को पता लगा कि ये तो स्वामी जी महाराज हैं। वे सहसा महाराज के चरणो मे नतमस्तक हो गये और पूछा—"स्वामी जी क्या बात है ?" महाराज ने कहा—"यह देखने आया था कि सोते हो वा जागते भी हो।"

वैदिक साधन आश्रम का उत्तराधिकारित्व

जीवन्मुक्त श्री स्वामी जो महाराज वैदिक साधनाश्रम यमुनानगर के लिये अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देना चाहते थे, उनका अभिलाष था कि पण्डित विद्याधर जी स्नातक, जो कि बाल्यावस्था से उनके सम्पर्क मे रहे हैं, और जिन की सद्वृत्ति का परिज्ञान इतने लम्बे काल मे भली भाँति हो चुका है, आश्रम के उत्तराधिकारी बने। स्वामी जी ने उनसे स्वीकृति लेने के लिए वैद्य रामलाल जी को नियुक्त किया। वहाँ से नकारात्मक उत्तर मिलने पर वे स्वामी जी के आदेश से आचार्य रामदेव जी के निकट गये, तो उन्होने वैद्य रामलाल जी से कहा—"यदि आप महानुभाव सहयोग देंगे, तो मुझे कोई आपत्ति नही है।" इस प्रकार स्वीकृति मिल जाने पर ९ जुलाई १९५९ को वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर की चल और अचल सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वामी जी ने आचार्य रामदेव जी को वना दिया। उस उत्तराधिकरण पत्र में लिखा गया कि—'पण्डित विद्याधर जी स्नातक वैदिक-साधन-आश्रम के आजीवन सदस्य रहेगे और आश्रम उनकी सब आवश्यकताएँ पूर्ण करेगा। कोतरखाना निवासी वानप्रस्थ ताराचन्द जी आश्रम चलाने मे सहायक रहेगे और आचार्य रामदेव जी निम्न बातो का पालन करेगे:—

आश्रम एक आर्य संस्था है। आर्य सन्यासी और आर्य वानप्रस्थ वा साधक लोग आश्रम मे निवास करेगे। जिनका मुख्य कार्य जनता मे वैदिक धर्म का प्रचार होगा। वे स्वय पठन-पाठन और स्वाध्याय करेगे। इस आश्रम मे वार्षिक साधना शिविर प्रतिवर्ष लगा करेगा। जिसमे साधक, साधु, और जिज्ञासु जन आत्म-लाभ उठा सकेगे। इस आश्रम में एक औषधालय है, जो चालू रहेगा और जनता की निःशुल्क सेवा करेगा। वैदिक साहित्य के प्रचार के लिये लेख

और पुस्तक लिखे जाते रहेंगे। रुग्ण और वृद्ध आर्य संन्यासियों तथा वानप्रस्थों को इस आश्रम में यथाशक्ति विश्राम दिया जायेगा।

साक्षी	साक्षी	अधिकार दाता
वैद्य रामलाल पिता	लाला जगन्नाथ कपूर पिता	
प्रभुदयाल जी	डा० उत्तम चन्द	स्वामी आत्मानन्द

तारीख १०-९-१९५९ को उस दिव्य जीवन् मुक्त आत्मा ने आश्रम से प्रस्थान कर जगाधरी स्थात्र× से बराडा तक सयान‡ में यात्रा की। उनके साथ श्री ताराचन्द जी वानप्रस्थ तथा श्री ओम्प्रकाश जी सिद्धान्त शिरोमणि सेवक रूप में थे। वे बराडा स्थात्र से सर्वयान★ में आरूढ हो कर नहान सर्वयान स्थाम❀ जा उतरे। किसी कारण वश श्री सिकण्ड जी तथा श्री लक्ष्मणदास जी अधिवक्ता वहाँ न मिल सके। आर्यसमाज मन्दिर तक जाने के लिये उस पार्वत प्रदेश में कहीं स्थान नीचा था, तो कहीं ऊँचा था। जब मन्दिर में पहुँचे तो श्री लक्ष्मणदास जी वहाँ उपस्थित मिले। पर्वतीय प्रदेश के उतार चढ़ाव से महाराज का रुधिर-निपीड २६० हो गया था। दूसरे दिन तक स्वामी जी ने वहीं विश्राम किया और १२ सितम्बर को चिकित्सालय से रोगीवाहण○ आया और उन्हें चिकित्सालय ले गया। स्वामी जी चिकित्सालय के बाहर पीठों पर ही बैठ गये, और थोडी देर के पश्चात् उन्हें सम्मान के साथ चिकित्सालय के कमरे में ले जाया गया। रुधिर-निपीड लेने के अनन्तर अन्त.क्षेप● और मुख की गोलियों द्वारा चिकित्सा आरम्भ की गई।

उपचारिकायें सेवा में निरत थीं। चिकित्सालय के समस्त कर्मचारी जब महाराज के स्थान से निकल गये, तो महाराज बोले—"यह स्थान ठीक नहीं, यहाँ सेवा में सब कन्यायें ही हैं।" उन्हें चिकित्सालय में बहुत सङ्कोच होने लगा। उस रोगी-कक्ष में और भी रोगी थे। भक्त-जनों के परामर्श से १४ तारीख को महाराज का वह कक्ष दे दिया गया, जिसमें केवल दो ही बिस्तर थे। सेवक श्री ओम्प्रकाश जी की भी वहीं शयन की व्यवस्था कर दी गई। महाराज को दिन में चार-चार अन्त:क्षेप किये जाते थे और पानी के साथ अन्य औषध भी मुख द्वारा दिये जाते थे।

उदर और वक्षस्थल के क्षरश्मि परीक्षण÷ भी किये गये। वे

× स्टेशन। ‡ रेलगाड़ी। ★ बस। ❀ अड्डा।
○ एम्बूलेंस। । स्टूल। ● इन्जेक्शन। ÷ एक्सरे।

सर्वथा निर्दोष पाये गये। १४ सितम्बर को रुधिर-निपीड २२०/१४०, दूसरे दिन २१०/१२० था। तीसरे दिन क्षौर कर्म करा के महाराज स्नान करने चल दिये। उनकी यह प्रकृति थी, कि जब भी थोडा विश्राम लाभ अथवा स्वास्थ्य लाभ अनुभव करते थे, विना कहे स्वय काम करने लग जाते। स्नान के लिये जाते समय उन्हे चक्र आया और नीचे पड़ते ही लकड़ी के बने परदे पर उनका सिर जा टकराया। श्री ओम्प्रकाश जी दौड़े और उन्हे सँभाला। पूछने पर महाराज ने उत्तर दिया—"कुछ नही, ठीक है, चोट नही लगी।" श्री चिकित्सक जी ने इसके पश्चात् कक्ष से बाहर जाने की स्वीकृति न दी। मूत्र-पुरीपादि का सब प्रबन्ध वही कक्ष मे करा दिया और स्नान करने का निषेध कर दिया। महाराज को यह सब व्यवस्था न रुचि। वे मन ही मन खिन्न रहने लगे। इसका प्रभाव रुधिर-निपीड पर पडना अनिवार्य था। महाराज को सन्तोप देने के लिये २६ सितम्बर को वही उष्ण जल से स्नान कराया, किन्तु रुधिर-निपीड फिर भी बढता ही रहा। इष्ट अन्त क्षेप× बाहर से मगवा कर भी प्रयोग किये जा रहे थे। पुनरपि स्वास्थ्य निरन्तर गिरता ही चला गया। निर्बलता विशेष अपना रग दिखाने लगी। ओम्प्रकाश जी ने चिकित्सक जी से निवेदन किया, "अन्त क्षेप और अन्य औषधो का कोई प्रभाव नही हो रहा है। इन सब का विपरीत ही प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।" उनके इस कथन का उत्तर श्री चिकित्सक जी सन्तोपप्रद न दे सके। २ अक्टूबर को रुधिर-निपीड २४०/१३० हो गया। स्वामी जी का चित्त भी वहाँ से उपराम हो चुका था। श्री लक्ष्मणदास जी विधिवक्ता उन्हे उस अप्रिय चिकित्सालय से छुट्टी दिला कर रोगी वाहण से आर्य समाज मन्दिर मे ले आये। वहा आकर महाराज ने अतिशय सन्तोष और विश्राम अनुभव किया। श्री लक्ष्मणदास जी विधिवक्ता ने अपनी सम चिकित्सा आरम्भ की और रुधिर-निपीड ठीक होने लगा। चार-पाँच दिन आर्य मन्दिर मे स्वास्थ्य लाभ करके आश्रम पहुँचने के लिए पत्र लिख दिया। ८ अक्टूबर को महाराज ने "आर्य मित्र" पत्र की हीरक जयन्ती के विषय में आये पत्र का उत्तर दिया—"मुझे खेद है कि स्वास्थ्य की विकट परिस्थिति मे, मैं इस महत्त्वपूर्ण अवसर से लाभ न उठा सकूँगा। इच्छा तो वहुत थी, किन्तु विवशता है। आप महानुभावो के साथ मेरी भी शुभ कामनाये इस समारोह के सम्बन्ध मे दृढ है।

× इन्जैक्शन।

इतने मे श्री वैद्य रामलाल और जगन्नाथ कपूर के साथ श्री स्नातक जी वहित्र लेकर महाराज के चरणों में आ उपस्थित हुए और आश्रम चलने के लिये निवेदन किया। महाराज उसी क्षण प्रस्थान को उद्यत हो गये।

नाहन से प्रस्थान करके पांवटा साहव मन्दिर पर आ कर वहित्रों रोका गया। वह स्थान अतिरम्य है, निकट से यमुना नदी का प्रवाह है। वहाँ कुछ समय विश्राम करके स्वामी जी महाराज आश्रम पर ६ अक्टूबर को आ विराजे। आश्रम पहुँचते ही श्री लक्ष्मणदास जी को लिखाया कि आप के औषध से लाभ है।

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने श्री कृष्णचन्द्र जी शास्त्री को २० अक्टूबर के लगभग संन्यास की दीक्षा दी और अनन्तानन्द नाम रख दिया।

सभा के प्रधान एवं उपदेशक विद्यालय के आचार्य पद से मुक्त हो जाने पर भी महाराज के समीप जव व्यक्तियो के अपनी-अपनी समस्याओं से समन्वित पत्र आते ही रहे, तो महाराज ने समाचार पत्रों मे देने के लिये निम्न ज्ञापन लेखक श्री निगम-व्रत जी से लिखाया :—

"मैं ने प्रधान, आचार्य, आदि सव पदों से चिरकाल से त्याग पत्र दिया हुआ है। इसी कारण से मैं प्रवन्ध के कार्यों मे हस्तक्षेप नहीं करता। फिर भी कभी-कभी कुछ सज्जनों के द्वारा मेरे लिये ऐसा कह दिया जाता है कि मैंने यह कार्य स्वामी जी की इच्छानुसार किया। परन्तु बात वस्तुतः ऐसी नहीं होती। अधिकारी वर्ग ही सव कार्यों के उत्तरदाता हैं और मैं अपनी आज्ञा के द्वारा कोई प्रत्यक्ष वा परोक्ष विधि विधान न करता हूँ, और न ही करना चाहता हूँ। सूचनार्थ निवेदन कर दिया है।"

उपदेशक विद्यालय के प्राध्यापक श्री सुदर्शन देव जी ने महाराज से "स्पय" और "चपाल" शब्दो के अर्थ पूछते हुए कहा—"मैंने सव कोष देख लिए, इनका अर्थ नही मिला।" महाराज ने वताया—"यज्ञ मे पशु वांधने के लिये यूप में लगा हुआ कड़ा "स्पय" कहलाता है और स्थाली पाक के शकल करने के लिये "चपाल" होता है।

श्री सुदर्शन देव जी ने महाराज से अनेक वार विभिन्न अवसरों पर पूछा कि—"मैं अपने जीवन मे क्या करूँ ?" महाराज का प्रति वार एक ही उत्तर होता था और वह भी क्रमशः इन्हीं शब्दो मे कि—

---

[१]कार।

"सदा अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहना" "कर्त्तव्य का कैसे पता चले ?" यह पूछने पर स्वामी जी ने बताया—"वह तो स्वयं आगे-आगे दिखाई देता है।"

भारतीय सीमा पर स्थित मणिपुर से आया हुआ राजपाल नामक एक विद्यार्थी उच्च स्वर से मुद्रा राक्षस का निम्न श्लोक बोल रहा था :—

उल्लङ्घयन् मम समुज्ज्वलतः प्रतापं,
कोपस्य नन्दकुलकाननधूमकेतोः।
सद्यः परात्म-परिणाम विवेकमूढ,
कः शालभेन विधिना लभता विनाशम् ॥

स्वामी जी ने राजपाल को अपने निकट बुलाया और पुनः उच्चारण करने को कहा—उसने फिर ऐसे ही उच्चारण किया। तब स्वामी जी ने कहा, "परिणाम" नही है "परिमाण" है। उसने पुस्तक लाकर दिखाया, तो महाराज बोले—यह अशुद्ध छपा है, ठीक कर लो।

जब महाराज यत्किञ्चित् भी स्वस्थावस्था मे होते, तो प्रतिदिन विद्यालय की परिक्रमा अवश्य कर लेते थे। एक दिन प्रातः विद्यालय के मुख्य द्वार के दक्ष कोष्ठ में रुधिर के छींटे पड़े थे। महाराज ने पूछा, यह क्या है ? विद्यार्थियो ने कहा—"यहाँ बहुत लम्बा काला विषधर सर्प आ गया था। उसे उसी समय रात्रि मे प्रधानाध्यापक जी की सहायता से मार कर फैंक दिया। रात्रि मे स्थान की शुद्धि नही कर सके।"

स्वामी जी ने मुख्याध्यापक को बुलाया और कहा—"सर्प को क्यो मार दिया ?" "नही मारते तो काटता"। "कुछ भी हो, उठाकर दूर फैंक देते, मारना नही चाहिये। हमारे आश्रमो की मर्यादा रही है कि कभी किसी भी जन्तु को न मारा जाय।"

श्री सत्यप्रिय सिद्धान्त शिरोमणि श्री चरणो मे दर्शनार्थ पहुँचे। महाराज ने उन्हें एकान्त में बैठ कर स्नेहलसित वाणी मे उपदेश दिया, "वत्स ! राजकीय परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर तुम विद्यालय मे एक अध्यापक बन जाओगे। वहाँ प्रधानाध्यापक की अनुचित बातों को भी सहन करना पडेगा। अत. उपदेशक का जीवन अपनाओ। इससे यश और सम्मान की प्राप्ति होगी और ऋषि-ऋण से उन्मुक्त हो जाओगे।"

श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द जी के चले जाने के पश्चात् विद्यालय के आचार्य पद के लिए स्वामी जी महाराज ने आर्य जगत् मे पुनः

दृष्टिपात किया और इस पद के उपयुक्त महाविद्वान् श्री उदयवीर जी साङ्ख्य तीर्थ को पत्र लिखा। १० जनवरी को उन्हे पत्र मिला और अगले दिन ही श्री उदयवीर जी श्री चरणो मे उपस्थित हुए। साथ ही भेट स्वरूप कुछ फल भी ले गये। उन्हे किस कारण आमन्त्रित किया गया है, यह ज्ञात न था। स्वामी जी महाराज ने उपदेशक विद्यालय के छात्रों के समक्ष महाविद्वान् श्री उदयवीर जी का भाषण कराया। स्वामी जी रुधिर-निपीड में अति ग्रस्त थे। फिर भी अपने रोग की अवज्ञा करते हुए वे मान्य अभ्यागत विद्वान् के भाषण में आदि से अन्त तक आसीन रहे।

पश्चात् सर्वथा एकान्त मे स्वामी जी ने उदयवीर जी से कहा—"आप इस संस्था को सँभाल लीजिये। आप जानते ही हैं कि मैं बहुत रोगी हूँ। ऐसी अवस्था में मेरे लिये संस्था का ध्यान रखना कठिन है।"

श्री उदयवीर जी ने निवेदन किया—"स्वामी जी! मैं ऐसी स्थिति मे नही हूँ कि संस्था सँभाल सकूँ। मैंने लेखन का कार्य आरम्भ किया हुआ है। मैं कुछ दर्शन-साहित्य जगत् को दे देना चाहता हूँ। ६७ वर्ष के वय मे फिर अब अध्यापकत्व की ओर रुचि नही होती। आप की अनुकम्पा है, जो आपने मुझे स्मरण रक्खा है, पर इस सेवा के लिये मैं विवश हूँ।" स्वामी जी ने हर्षित होते हुए कहा—"ठीक है, आप वही कार्य करते रहिये। विद्यालय तो जैसे तैसे चल ही रहा है।"

दयानन्द उपदेशक विद्यालय के प्रधानाध्यापक प्रतिदिन मध्याह्न में भोजन से पूर्व स्वामी जी महाराज को अभिवादन करने जाते तो वे उनसे पूछते—"आज क्या पढ़ाया है।" अध्यापक महानुभाव की अवस्था २७ वर्ष की ही थी। अत: स्वामी जी महाराज पितृवत् प्रेम दर्शाते हुए उनसे वार्तालाप करते थे। जब सुदर्शन देव जी कहते कि आज न्याय का यह स्थल पढ़ाया है, तो स्वामी जी महाराज उससे आगे का पाठ मौखिक ही बोलना प्रारम्भ कर देते और बहुत समय तक बोलते रहते। एक दिन सुदर्शनदेव जी ने कहा—गुरुकुल [illegible] के ब्रह्मचारी वेदपाल जी न्याय मुक्तावलि पढ़कर आया है तो स्वामी जी ने पूछा—"कौन-सी कारिका?" इस पर वे कारिका का [illegible] [illegible] [illegible] न कर सके। पश्चात् स्वामी जी ने उसे [illegible] [illegible] किया।

इस पर सुदर्शन देव जी के यह कहने पर कि आप तो कहा करते है—"मैं सब कुछ भूल गया ।" स्वामी जी वोले—"इतना तो स्मरण है ही ।" उन्होने फिर आगे कहा—"अब न्याय मुक्तावलि के पढ़ाने वाले भी नही रहे । अनुमान खण्ड तो कोई पढा ही नही पाता । वह उन्हे बहुत कठिन जान पड़ता है ।"

एक दिन सुदर्शन देव जी से पूछ बैठे—"कितने वर्ष सस्कृत का अध्ययन किया है और क्या-क्या पढे हो ?" उन्होंने उत्तर मे कहा—"आठ-दस वर्ष निरन्तर पढा हूँ और महाभाष्य पर्यन्त व्याकरण, दर्शन तथा साहित्य की परीक्षाएँ उत्तीर्ण हूँ । इस पर महाराज ने प्रश्न किया अच्छा ! "वाह वाह" का संस्कृत बताओ ? सुदर्शन देव जी ने उत्तर दिया–"इस का तो अभी तक सस्कृत पढा नही । पुन. महाराज ने कहा, "देखो मैं बताता हूँ—प्राचीन समय मे यज्ञ बहुत होते थे। उससे प्रभूत धन-धान्य होता था । आहुति प्रक्षेप करते हुए याज्ञिक अति प्रसन्नता से "स्वाहा" शब्द का उच्चारण करते थे, जनता भी उनका अनुकरण करते हुए "स्वाहा" बोलती थी । "स्वाहा" शब्द के आदि सकार और अन्त का आकार अब सब भूल गये और अपनी साधारण बोली मे "वाह-वाह" हर्ष के समय बोलते हैं ।"

फिर प्रेम-पूर्ण भावो मे कहा—"अच्छा है आपने जो कुछ भी पढा है, पर आप एक वार काशी जाओ, वहां पारस्परिक वाद-विवाद मे आप के सब विषय हस्तामलक हो जायेगे ।" श्री सुदर्शन देव जी के यह पूछने पर कि विद्यालय में यहाँ कौन कार्य करेगा ? महाराज ने कहा–"अच्छा फिर तो यही रहो ।"

स्वामी जी से उन्होने फिर प्रार्थना की "स्वामी जी ! मैं आप से मीमांसा दर्शन पढना चाहता हूँ ।" महाराज ने गम्भीर भाव मे कहा–"चार-पाँच वर्ष पूर्व कहते तो मीमासा आपको बहुत अच्छी प्रकार पढा देता, जिन चिन्न स्वामी जी से मैने मीमासा का अध्ययन किया है, उनके यहाँ अब तक कर्मकाण्ड की प्रणाली चल रही है । इस समय तो मैं रुग्ण हूँ, कैसे पढाऊँ ?" । प्रधानाध्यापक जी ने निवेदन किया कि जब आप स्वस्थ हो जाये, तव पढा दीजियेगा ।" इस पर महाराज हँस पडे । उन्होने पुन पूछा—"आपकी क्या इच्छा है ?" रुक कर स्वामी जी ने कहा—"यहाँ सव को वडा कष्ट होता है, सव

मेरी सेवा में लगे रहते है। कही एकान्त में जाना चाहता हूँ।" "वहाँ सेवा कौन करेगा; भोजन आदि की क्या व्यवस्था होगी ?" यह पूछने पर कहा–"भगवान् सब का रक्षक है, वह ही सब को देता है। अब तो शरीर की समाप्ति ही चाहता हूँ। इससे किसी को लाभ नहीं हो रहा है।"

उपदेशक विद्यालय यमुनानगर मे एक राजपाल नामक छात्र आसाम से विद्याध्ययन करने आये। उन्हें इंगलिश भाषा का अच्छा बोध था। वे ईसाइयो के प्रमुख विद्यालय आसाम से विद्या-निष्णात थे। स्वामी जी के शरण में उपस्थित होकर राजपाल ने स्वय को अतिशय सौभाग्यशाली अनुभव किया। वे अपनी अनेक समस्यायें लेकर श्री चरणों मे उपस्थित हुए। किन्तु स्वामी जी थोड़े-से ही शब्दों में उन का समाधान कर देते थे। वे कई बार छात्रो से सम्बन्धित झगड़े भी लेकर उन की सेवा में उपस्थित हुए। पर स्वामी जी की समझाने की उत्तम शैली से वे अवाक् हो जाते थे। एक दिन विद्यार्थियो ने उन से कहा कि यदि आप को हमारा समाधान उचित नही प्रतीत होता तो स्वामी जी के चरणो मे चले जाइये। उन्हों ने कहा – वहाँ जाने से तो सब कुछ ही ठण्डा हो जाता है। मुख से कुछ बोल ही नही निकल पाता। एक दो वाक्य मे ही सब समस्यायें सुलझ जाती हैं।

अबोहर (फिरोजपुर) में दयानन्द एंग्लो वैदिक महाविद्यालय की प्रबन्धक समिति ने जुलाई सन् १९६० से साहित्य, कला और विज्ञान विद्योपाधि महाविद्यालय का सत्र प्रारम्भ किया, जिसे पञ्जाब विश्व विद्यालय से मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष थे–भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति श्री मेहरचन्द महाजन, और श्री नारायणदास ग्रोवर, नियुक्त हुए महाविद्यालय के प्राचार्य। महाविद्यालय के स्थापना-दिवस पर जीवन्मुक्त श्री स्वामी जी महाराज ने निम्न सन्देश लिख कर भेजा—

तपस्वी जीवन तथा सादगी

"इस नवीन क्षेत्र के कार्य-क्रम को हस्तगत करते हुए सब से पहली बात यह ध्यान मे रखियेगा कि सदाचार की शिक्षा (अक्षर ज्ञान) की अपेक्षा किसी भी अवस्था में कम महत्त्व न दिया जावे। ऋषि दयानन्द की विचार धारा इस क्षेत्र में पूर्ण रूपेण प्रवाहित करनी

चाहिये। दयानन्द एंग्लो वैदिक सस्थाओं के संस्थापकों ने इन की स्थापना के समय बड़े अच्छे उद्देश्य निर्धारित किये थे, किन्तु इन संस्थाओ ने उस दिशा मे कितना कार्य किया और क्या-क्या न्यूनतायें रही? यह सब शान्त भाव मे विचारणीय है। उन्ही उद्देश्यो के अनुसार दृढता पूर्वक आचरण करने की आवश्यकता है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से मातृ भाषा के विज्ञान का स्तर सदा ऊँचा रहना चाहिए उक्त सस्थाओ की ओर से सहशिक्षा को कभी भी प्रोत्साहन नही मिलना चाहिए। किन्तु इस के विरोध मे आन्दोलन चलता रहना चाहिए। क्योकि सहशिक्षा देश के लिए बडी अनर्थकारिणी है। विद्यार्थी वर्ग मे तपस्वी जीवन तथा सादगी का सञ्चार होना चाहिए।"

सभा आदि के पारस्परिक कलहो का विषय जब श्री स्वामी जी महाराज के सम्मुख उपस्थित होता था, तो वे अनेक वार यह कहते देखे गये कि इन कलहो का मूल कारण मनुष्यो के जीवन मे आध्यात्मिकता का अभाव है। बहुत से आर्य बन्धु आध्यात्मिकता पर धारावाहिक आकर्षक भाषण कर लेते हैं, किन्तु उन्हे आध्यात्मिकता छू तक न पाई। उन दिनो महाराज को श्री ओम्प्रकाश जी, श्री ब्रह्मचारी व्यासदेव जी का लिखित "आत्म विज्ञान" ग्रन्थ पढ कर सुनाया करते थे। कभी वे योगदर्शन भी सुना करते थे। अधिक से अधिक समय वे योग सम्बन्धी विचारो मे ही बिताने की चेष्टा मे रहते थे। एक दिन स्वामी जी महाराज अपने सेवक श्री ओम्प्रकाश जी से कहने लगे—"वत्स! तुम अभ्यास सीखने के लिए व्यासदेव जी के समीप चले जाओ। मैं उन्हे पत्र लिख देता हूँ। मैं रोगी होने के कारण तुम्हे विशेष सहायता नही दे सकता।" ओम्प्रकाश जी ने महाराज के स्वास्थ्य की उस विकट अवस्था मे श्री चरणो मे रहने का ही दृढ निश्चय रक्खा।

श्री आत्मानन्द सरस्वती २३-७-१९६० की सार्वदेशिक धर्मार्य सभा की बैठक मे सम्मिलित हुए, जो आश्रम पर ही रक्खी गयी थी। उनके प्रधानत्व मे उन के जीवन की यह अन्तिम बैठक थी। वे सन् १९५४ मे सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के प्रधान नियुक्त हुए थे। विद्वज्जन को क्या पता था कि धर्मार्य सभा में उन के ये अन्तिम दर्शन हैं।

२९-८-१९६० से अपने स्वास्थ्य की कामना से श्री स्वामी जी ने गायत्री याग चलाया। आप उस मे प्रथम दिन पलङ्ग पर लेटे रहे। दूसरे दिन से बैठने लगे। जब नगर निवासियों को यह ज्ञान हुआ, तो वे भी अति सङ्ख्या में सम्मिलित होने लगे। सात दिन निरन्तर हवन होता रहा और आप कुछ स्वस्थ हो गये।

श्री सत्यव्रत राजेश ने पूछा, "यज्ञोपवीत कभी उतारना चाहिए वा नही ?" उत्तर दिया, "नही"। "यदि किसी को तैल-मर्दन करना हो तो ?" "तब दुहरा करके गले मे डाल लेना चाहिए।" "यदि धोना हो तो" ? "तब गले मे डाले हुए ही आधा भाग एक बार धो लें और शेष दूसरे बार।"

गुरुकुल झज्जर में

दीपावली १९ अक्टूबर का दिन था। श्री आचार्य भगवान्देव जी गुरुकुल झज्जर से समाल ग्राम निवासी चौ० सूरतसिंह जी ठेकेदार का वहित्र‡ लेकर वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर पहुँच गये। वहाँ से साय चार बजे वे महाराज को लेकर गुरुकुल झज्जर के लिये चल पडे। पाच बजे करनाल आ पहुँचे। नगर के भीतर से विलम्ब हो जाने के कारण ५॥। बजे पानीपत पहुँच सके। मार्त-तैल उदञ्च* पर कतिपय महानुभावो ने महाराज के दैवयोग से दर्शन हो जाने पर अतीव प्रसन्नता प्रकट की। कुछ विधान-मण्डल-सदस्य राजधानी चण्डीगढ़ से पधार रहे थे, उन्होंने भी चरण वन्दना कर महाराज का कुशल-क्षेम पूछा। देर होती जा रही थी, अत वहाँ से शीघ्र प्रस्थान करके वे श्री वैद्य कर्मवीर जी मन्त्री आर्य कन्या गुरुकुल नरेला के आवास स्थान पर नरेला आ सुशोभित हुए।

महाराज सायङ्काल दुग्धपान किया करते थे। अकस्मात् अभ्यागतो के पहुँच जाने पर श्री कर्मवीर जी पूर्व से दुग्ध का प्रबन्ध न कर सके थे। उनके यहाँ एक बाखड़ी (बहुत दिनो से सूई हुई) गाय थी, वह बिना लात मारे दूध न देती थी; अत उससे तङ्ग आकर कुछ दिनो से उसका दूध निकालना ही छोड़ा हुआ था। अन्य स्थान से भी तत्काल दुग्ध की कोई व्यवस्था न बन सकती थी और महाराज को दुग्ध-पान कराना आवश्यक था। श्री वैद्य जी की धर्म-पत्नी ने कहा "आज महाराज जी पधारे हैं, गाय अवश्य दूध देगी।" इसी धारणा से

‡कार। *पेट्रोल पम्प।

वे उसे दुहने बैठ गयी और उसने चुप-चाप दूध दे दिया। घटना का यह् विचित्र सामञ्जस्य था, जिसने सभी को ग्राश्चर्य मे डाल दिया।

दुग्ध-पान ग्रौर ग्रौषधोपचार से निवृत्त हो महाराज ने वहाँ से प्रस्थान किया और साढ़े नौ बजे गुरुकुल-झज्जर मे पहुँच गये। ब्रह्म-चारि-मण्डल ने पूर्व से परिशोधित ग्रौर परिमार्जित एक एकान्त कक्ष मे यतिभूषण आत्मानन्द का डेरा लगा दिया। उष्ण जल से उनके पादपद्म प्रक्षालित किये। पश्चात् महाराज सो गए।

श्री ओम्प्रकाश जी सिद्धान्त शिरोमणि महाराज की सेवा में उपस्थित थे। रात्री के तीन बजे जब उनकी आँखे खुली, तो उन्होने महाराज की शय्या रिक्त देखी। वे शीघ्रता मे उठे, इधर-उधर देखा; पर कही पता न चला। वे अति विस्मित थे कि स्वामी जी कहाँ चले गये। फिर उन्होने निकटवर्ती छात्रावास मे महाराज की खोज की। ग्रन्धेरे में, वहाँ एकवर्णी खेस ओढ कर बैठा हुग्रा दिखाई दिया। शीघ्रता मे उस ओर विशेष ध्यान नही दिया। बाहर के विद्युत्-कन्द* जलाकर अन्यो के सहयोग से महाराज जी की पुनः खोज ग्रारम्भ हुई। निराश होकर फिर छात्रावास में आये, वहाँ का विद्युत्-कन्द* जलाया। तब भान हुग्रा कि विद्यार्थी तो सोया हुआ है और उसके बिस्तर के समीप महाराज जी खेस ओढे विराजमान हैं। महाराज को वहाँ से उनकी शय्या पर ले गये। आगे से रात्री के समय कपाट खुले नही रक्खे। चौकसी भी उनकी ग्रधिक रखनी प्रारम्भ कर दी। दूसरे दिन जब महाराज से उक्त घटना का विवरण पूछा, तब उन्होने अपनी शान्त मुद्रा मे कहा—"मैं लघुशङ्का के निमित्त बाहर गया था। ग्रन्धेरे मे मुझे अपना कक्ष× नही मिला। ऐसे ही किसी प्रकोष्ठ मे प्रवेश कर गया। स्थान नवीन होने से कक्षो का प्रत्यय मुझे नही था। ठण्ड थी, वहाँ एक दौलड़ा (मोटा खेस) हाथ आ गया और उसे ओढकर वही बैठ गया।"

अपनी स्वभाव सुलभ प्रकृति के अनुसार महाराज जी किसी की निद्रा मे विघ्न उपस्थित करना नही चाहते थे। अत उन्होने न सेवक को जगाया ग्रौर न ही उस महावीर विद्यार्थी को, जिसका समीप में रक्खा हुग्रा खेस ओढकर वे उसी के समीप बैठ गये थे। न ही वे किसी को ग्रपने लिये कष्ट देना चाहते थे, अत. उन्होने समीप मे रक्खे

---

*बल्ब। ×कमरा।

गये मूत्रपात्र का भी उपयोग नही किया था। स्वस्थावस्था की तो बात दूर, यत्किञ्चित् सामर्थ्य होने पर भी उनका ऐसा आचरण करना कितनी उत्कृष्ट भावना का परिचायक था।

प्रात: महाराज को उष्ण जल से स्नान कराया जाता था और सायङ्काल प्राय: वे स्नान नही करते थे। जैसे ही महाराज के गुरुकुल में आगमन का निकटवर्ती मनुष्यों को बोध हुआ। सर्वैकप्रिय-दर्शन श्री स्वामी जी के दर्शनो के लिये वे श्री चरणो मे पहुँचने लगे। उन्हे अति विस्मय हुआ कि महाराज रुग्ण सुने जाते है, किन्तु आकृति पर रुग्णता के चिह्न नही हैं। देव आत्मानन्द उन्हे समुद्र की भाति गम्भीर और शान्त प्रतीत हो रहे थे।

स्वच्छ वातावरण, प्रशान्त वायुमण्डल, और शुद्ध जल वायु मे भगवान् आत्मानन्द का स्वास्थ्य प्रतिदिन चन्द्रकला के समान वृद्धि पा रहा था। वे प्रतिदिन आठ दशिमान* तक भ्रमण कर लौट आया करते थे। २३ अक्टूबर को सायङ्काल अपना भ्रमण का मार्ग परिवर्तित कर दूसरी दिशा मे चल दिये। उन्हे लौटते हुए एक गुरुकुल का नालकूप+ चलता देख स्नान की इच्छा हुई। प्रकोष्ठ मे आकर वस्त्र उतार स्नान के लिए चल दिए। सेवक द्वारा रोके जाने पर भी वे स्नानार्थ कूप पर ही पहुँच कर स्नान से निवृत्त हुए।

आत्मदर्शी श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती को आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रयत्नशील महानुभावों का बहुत ध्यान रहता था। वे सेवक श्री ओम्प्रकाश को निरन्तर दो दिन से कह रहे थे कि विद्या को पत्र लिख दो; पर वे अवकाश न मिलने से टालते रहे। २३-१०-१६६० को महाराज ने निम्न पत्र लिखा ही दिया:—

"श्रीमती पुत्री विद्यावती जी, सप्रेम नमस्ते।

आपके कुशल समाचार का मुझे पता लग गया था। मैं यह भी जान गया था कि आपके चित्त की अवस्था आजकल कैसी है। आपका मन आजकल ध्यान और प्राणायाम मे बहुत कम लग रहा है। ध्यान लगाकर प्राणायाम मे विशेष गति बढाने की चेष्टा करें। [illegible] देवी जी से ध्यान के विषय मे विशेष बातचीत करती रहें।"

जब विद्यावती जी को महाराज का यह पत्र मिला, तो उन्हें

+ट्यूब वेल। *चार फर्लांग।

अतिशय आश्चर्य हुआ कि स्वामी जी को मेरी इन वातो का कैसे ज्ञान हो गया ! जब कि मैंने इस सम्बन्ध मे उन्हे कोई सूचना ही नही दी।

शिष्या श्री विद्यावती जी को स्वामी जी महाराज का यह अन्तिम पत्र प्रमाणित रहा।

२७ अक्टूबर को प्रात. उष्ण जल से स्नान करने के पश्चात् महाराज सन्ध्योपासन के आसन पर निरन्तर दो घण्टे तक बैठे रहे। वे प्रात प्रतिदिन भ्रमण के लिये जाया करते थे, अत श्री ओम्प्रकाश ने निवेदन किया—"स्वामी जी ! भ्रमण का समय हो गया है, फिर धूप हो जायेगी, इच्छा हो तो चलिये।" यह सुनकर वे सहसा उठे। ध्यानावस्थित-से थे। उठ कर ज्यो ही जूता पहनने के लिये आगे बढ़े कि जूता पहरते-पहरते उनकी गरदन टेढी हो गई। सेवक ने इस दृश्य को देखा और सहसा सँभाल कर उन्हे धीरे से पर्यङ्क पर लिटा दिया। सयोग वश उसी समय श्री आचार्य भगवान्देव जी भी आ पहुँचे और उन्होने तुरन्त महाराज को औषध दिया। जिससे उन्होने बोलना अ रम्भ कर दिया और कहा "वायु, कम्प-कम्प"

दो तीन दिन के पश्चात् महाराज के बाँये हाथ और पैर पर पक्षाघात के लक्षण प्रतीत हुए। उपचारार्थ महानारायण आदि तैल का मर्दन हस्त-पाद पर प्रारम्भ किया और दशमूलारिष्ट पिलाया।

महाराज के पक्षाघात की सूचना आर्य जनता को समाचार पत्रों द्वारा दे दी गई। वैदिक-साधन आश्रम मे पण्डित विद्याधर जी को दूरलेख दिया। वे और वैद्य श्री रामलाल जी तत्काल आए। पहली नवम्बर १९६० ई० को श्री आचार्य रामदेव जी गुरु महाराज के दर्शनार्थ पधारे।

उसी दिन श्री लाला रामलाल जी साहनी और उनके साथ श्रीमती विद्यावती और धनदेवी जी भी गुरुदेव के दर्शन करने दिल्ली से आई। श्री गुरुदेव ने उन सब से कुशल क्षेम पूछा। जब वे वैदिक साधनाश्रम यमुनानगर मे थे, विद्यावती जी का पुत्र रोग-ग्रस्त था, उन्हे स्मरण रहा, अत उसके विषय मे भी पूछा—"काके का क्या हाल है ?"

महाराज अतिथि-सेवा का बहुत ध्यान रखते थे, पक्षाघात की स्थिति मे आ जाने पर भी अतिथि सत्कार को नही भूले, अत श्री आचार्य भगवान् देव जी से कहा—"सब प्रकार का प्रबन्ध कर दीजिए, किसी प्रकार का इन्हे कष्ट अनुभव न हो।"

भैषजिक-शल्य-स्नातक‡ सेवा निवृत्त⊛ श्री चिकित्सक इन्द्रजीत जी झज्जर से गुरुकुल मे पधारते रहे और अपने औषधोपचार से उनकी पुष्कल परिचर्या करते रहे।

दिल्ली निवासियो से भली-भाँति वार्तालाप करने के पश्चात् सायं साढ़े पांच वजे शयन कर साढ़े सात वजे प्रातः ही महाराज की आँखें खुली, किन्तु तन्द्रा का साम्राज्य उनके शरीर पर व्याप्त हो गया। गुरुकुल के श्री वैद्य वलवन्तसिंह जी उपचार मे सावधान थे। वे वहु-मूल्य औषधो का सेवन कराते रहे। गुरुकुल में सव औषध विधिवत् निर्माण किए गए उपस्थित थे। वृहद्वात चिन्तामणि, ब्रह्मीवूटी, कस्तूरी भैरव को सर्पगन्धा, ज्योतिष्मती और अश्व गन्धा के क्वाथ मे दिया गया। वातकुलान्तक और मोतीभस्म मधु में दिया गया। दिन में अनेक वार उनका रुधिर-निपीड भी नापा जाता था। वह प्रातः २०५ से वढकर क्रमश. २१०,२१५ और साय २२५ हो जाता था। निर्वलता अत्यधिक वृद्धि पर थी। श्री दयानन्द आयुर्वेद शास्त्री अपना अधिक से अधिक समय श्री सेवा मे लगाने लगे। श्री चन्द्रलाल जी ने भी रात दिन एक कर दिया। निरन्तर सावधानी रखने और यथोचित उपचार से ७ नवम्वर को स्वास्थ्य के कुछ लक्षण प्रतीत हुए। उस समय लाला दीवानचन्द जी मेरठ से दूसरे वार पधारे हुए थे, वे महाराज के पुराने भक्त और सेवक थे। रुधिर-निपीड उस दिन २१८।११५ था। आगन्तुकों से स्वामी जी महाराज वार्त्तालाप करते और उन्हे धैर्य रखने का आश्वासन देते थे, किन्तु भक्त जन स्पष्ट देख रहे थे कि हमारे करुणा-निधान दिन प्रतिदिन शिथिलता पर जा रहे है। उस अवस्था मे भी महाराज मूत्रण आदि छोटे-छोटे कार्य विस्तर से उतरकर नीचे करते थे।

कन्या गुरुकुल नरेला की अधिष्ठात्री ब्रह्मशक्ति जी भी प्रातः गुरुदेव श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ आईं। वे उन के आदेश से स्त्री-शिक्षा मे तत्पर हुई थी। उनको महाराज ने स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे उत्साह पूर्वक लगे रहने की प्रेरणा दी।

हरिद्वार और जालन्धर से भी बहुत-सी देवियाँ मिलने आईं। जो कोई स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ आते थे, वे कुछ न कुछ श्रद्धा-भेंट अवश्य करते थे।

‡एम. बी. बी. एस। ⊛ रिटायर्ड।

। आध्यात्मिक क्षेत्र मे अति प्रसिद्ध प्रभु आश्रित श्री महात्मा टेकचन्द जी भी महाराज के सान्निध्य मे पहुँचे। वे महाराज मे अति निष्ठावान् थे। उनके साथ ही आचार्य सत्यभूषण जी कुछ साथियो को लेकर श्री चरणो मे विराजमान हुए।

करौल बाग दिल्ली से श्री चिरञ्जीतराय साहनी ने भी अपनी पत्नी श्रीमती लाजवन्ती साहनी, भावज वृजराणी साहनी, कृपाराम जी की पुत्री बीराँवाली सेठी और पौत्र मोतीराम जी की पत्नी शीलादेवी साहनी के साथ, महाराज की सेवा मे उपस्थित होकर अपनी अति श्रद्धा व्यक्त की। महाराज कुछ अचेत थे। पाद स्पर्श होते ही उन्हो ने आँखे खोल ली, तब अभ्यागतो ने निवेदन किया कि आपका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है, अत दिल्ली मे चिकित्सा की व्यवस्था उचित रहेगी। हम सब सेवक पूर्ण प्रबन्ध करेंगे।

महाराज ने इसका जो उत्तर दिया, उसे कोई समझ न सका। महाराज के विकृत स्वास्थ्य का समाचार जब श्री आनन्दभिक्षु जी को मिला, तो वे भी बहुत दूर से अपने प्रचार कार्य को छोड़कर श्री सेवा मे उपस्थित हुए। किन्तु कार्य की व्यस्तता मे वे चाहते हुए भी अधिक न ठहर सके।

चित्तौडगढ़ गुरुकुल के आचार्य श्री स्वामी व्रतानन्द जी भी महाराज को देखने आए। सेवको ने महाराज से निवेदन किया कि स्वामी व्रतानन्द जी पधारे है, तो महाराज ने पूछा, 'गुरुकुल चित्तौडगढ के ?' "जी हाँ।" लोग चकित थे कि महाराज को इस अवस्था मे भी कितनी स्मृति बनी हुई है।

सर्दी से बचाव के लिये महाराज को यदि टोपा उढाते, तो शिर पर हाथ फेर कर उसे पीछे सरका देते। पैरो में जुराबे पहराते, तो उन्हे निकाल कर फेक देते थे। जो कार्य उन्होने जीवन भर न किया, वह इस समय भी उन्हे न भाता था।

महाराज को निरन्तर विकलता विद्यमान था। १४ नवम्बर को मुजफ्फरनगर से चिकित्सक श्री महेन्द्रप्रताप जी को बुलाया गया। उन्होने Largectil की गोली दी, जिससे लाभ हुआ, किन्तु यदा–कदा महाराज व्यक्तियो को कम पहचानते थे। अधिक से अधिक शयन करते और बहुत न्यून बोलते थे। ऐसा करते-करते महाराज का

नवम्बर मास समाप्त हो गया। यह स्थिति भक्तजनों से देखी न गयी। वे चिन्तातुर हो उठे। आचार्य भगवान्देव जी भी अधीर थे। वे महाराज का पूरा ध्यान रख रहे थे। उन्होंने अपने प्रचार का समस्त कार्य-क्रम स्थगित किया हुआ था। यद्यपि वे हृदय के अति कठोर हैं; तथापि महाराज की उस शोचनीय अवस्था को देखकर वे अपने हृदय के आँसू बाहर न निकलने देने में असमर्थ ही रहे।

महाराज के उपचार के लिए बाहर से भी बहुमूल्य औषधो का निरन्तर प्रबन्ध किया जाता रहा। गुरुकुल में स्थापित राजकीय चिकित्सालय के चिकित्सक श्री ज्योतिस्वरूप जी और वैद्य बलवन्तसिंह जी तो वहाँ निरन्तर विद्यमान रहते ही थे। ६ दिसम्बर को पुनः मुजफ्फरनगर से श्री महेन्द्रप्रताप जी चिकित्सक को बुलाया गया। श्रद्धा-सम्पन्न सत्यपाल, ओम्व्रत, योगानन्द आदि ब्रह्मचारियो द्वारा महाराज के शरीर पर तैल-मर्दन निरन्तर चालू था। दो दिन पश्चात् रुधिर-निपीड १६०।६० था, जो सर्वथा ठीक था और पक्षाघात का प्रभाव भी तैल-मर्दन के द्वारा हाथ पैरो से सर्वथा हट चुका था।

इस प्रकार बाह्य उपचारो और परीक्षणो से आश्वस्त होकर महाराज का क्षौर कर्म कराया गया। ८ दिसम्बर के इस दिन के पश्चात् भी महाराज अधिकाधिक मौन अवस्था मे होते चले गये। उनकी अन्तश्चेतना निरन्तर विद्यमान थी, जिसका आभास उनकी समुज्ज्वल आकृति से होता था। ६ दिसम्बर को मध्याह्नोत्तर श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती, श्री महाशय कृष्ण, श्री रघुवीरसिंह शास्त्री और श्री रामनाथ भल्ला महाराज का कुशल-क्षेम देखने आए। दूसरे दिन ११॥ बजे उन्हे कफ का दौरा हुआ, कण्ठ अवरुद्ध हो गया और उदरस्थ वायु से पेट फूल गया। श्वास लेने मे कठिनता दीख पड़ती थी। दिए गए औषध उलटे आने लगे। चिकित्सक श्री रामस्वरूप जी आयुर्वेदालङ्कार रोहतक से रात के साढे दस बजे आए। ध्यान से निरीक्षण कर उपचार किया और सेवकों से कहा—"महाराज की आकृति मे रुग्णता नही झलकती। घबराओ नही बेटा! सब ठीक हो जायेगा।"

गोमन्तता, अभ्रक और शृङ्ग भस्म भी मधु मे समय-समय पर दिये गये। ढेड बजे के पश्चात् शान्ति के दर्शन हुए और वह शान्ति निद्रा मे विलीन हो गई। प्रातर्वेला मे महाराज का मुख-मण्डल प्रभावान् था किन्तु वे सर्वथा मौन साधे लेटे थे।

इसी दिन साढ़े ग्यारह बजे मध्याह्न में श्री ओम्प्रकाश जी ने

औषध चटाने का प्रयत्न किया, तो महाराज ने अपने दक्षिण-हस्त से उनका हस्त दूर हटा दिया। उन्होने पुन. औषध देने का प्रयास किया तो भगवान् ने फिर वैसे ही दूर हटा दिया। अपनी इस चेष्टा से मानो वे सङ्केत कर रहे थे—"हे प्रिय। अब इन बाह्योपचारो की आवश्यकता नही है, इनकी पहुँच तो समाप्त हो चुकी है। ये सब प्रयास अब व्यर्थ हैं।"

तत्पश्चात् महाराज ने सेवक की ओर एक टक देखा, उनकी आँखो मे विशेष ज्योतिः था। यह सब होते हुए भी सेवक ने भगवान् की आँखे बचाकर ज्यो ही उनके मुख मे औषध रक्खा, वह उसी क्षण बाहर निकल आया। इस घटना से समस्त गुरुकुल में चिन्ता की एक लहर फैल गई। आचार्य भगवान् देव जी की आँखो के सम्मुख अन्धेरा छा गया।

रात्री के नौ बजे औषध देने का पुन प्रयास किया गया, किन्तु वायु के प्रश्वास ने धक्का देकर उसे उसी क्षण बाहर निकाल दिया। महाराज के नेत्र खुले थे, वे अन्तः स्थित होते जा रहे थे। इस परिवर्तन से श्वास की गति मे परिवर्तन होने लगा और उससे शरीर मे उष्णता उद्भूत हो गई। आचार्य भगवान्देव जी के मुख से सहसा खेद भरे शब्द निकले—"अब महाराज मनुष्य-चिकित्सा से बाहर हो गये हैं। अब तो भगवान् को ही जो अभीष्ट है, वह ही होगा।"

श्री ओम्प्रकाश, श्री दयानन्द, श्री चन्दूलाल आदि सेवक महाराज के निरीक्षण मे निरन्तर अवस्थित थे। उस समय महाराज के उस भव्य शवासन मे आपाद-मस्तक कही भी कष्ट के लक्षण लक्षित न होते थे। उनकी आँखो की एक तानता निरन्तर बनी हुई थी। प्रात. छः बजे महाराज की वह एक तानता टूटी और उन्होने कुछ क्षणो तक समीपस्थ भक्तो की ओर देखा, फिर आँखे खोले हुए ही अन्त स्थित हो गए। इस प्रक्रिया मे श्री भगवान् का मौन सङ्केत था—"विश्व में मेरा यह सन्देश दे देना कि ब्रह्मोपासना पूर्वक कर्त्तव्य-कर्म का अनुष्ठान ही प्रेम का सच्चा स्रोत है और वह ही पारस्परिक मतभेद-निवारण की एक मात्र कुञ्जी है।"

इसके पश्चात् सवा छ बजे और उस ब्राह्म मुहर्त्त में वे ब्रह्मरन्ध्र से निकलते हुए ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान कर गये।

हैदराबाद सत्याग्रह मे अत्यधिक कार्य से उद्भूत भयङ्कर

रुधिरनिपीड के रोग मे ही निरन्तर कार्य करते हुए अन्त मे हिन्दी सत्याग्रह के झटके झेलते हुए केवल वैदिक धर्म पर ही बलिदान हो गए।

१२ दिसम्बर सन् १९६० को उस दिन उदय होते हुए भगवान् भास्कर ने समस्त चराचर जगत् को अपने आलोक से आलोकित किया, पर मानव हृत्कमलो को वह निरन्तर निविड़ तिमिर की ही चादर मे आवृत्त करता चला गया। उस समय* सर्वत्र शोक का गहन अन्धकार व्याप्त हो गया। महाराज के सेवक श्री दयानन्द जी फूट-फूट कर रो रहे थे।

यद्यपि लोगो के मुख निष्कान्त हो चले थे, तथापि उस दिव्यात्मा की मुख-कान्ति ठीक उसी प्रकार थी, जैसे तत्क्षण का निर्वाण दीप यत्किञ्चित् काल तक स्वप्रकाश की स्मृति को स्थिर रखता है।

शीघ्र ही निकटवर्ती ग्रामीण जनो ने आकर श्री-शरीर के दर्शन किये, तो उन्हें यह विश्वास ही नही हुआ कि स्वामी जी अब इस देह में नहीं हैं।

झज्जर, रोहतक और दिल्ली से दूर लेख और दूरभाष× द्वारा महाराज के स्वर्गमन का समाचार पाते ही सकल आर्य जगत् शोकाकुल हो उठा। आर्य जनो ने अपनी समस्त संस्थाएँ और कार्यालय तत्काल बन्द कर दिये। उस दिव्य विभूति के दर्शन तो अब कहां? जनता उनकी दिव्य-देह के दर्शनो को व्याकुल हो उठी।

भगवान् के पाञ्चभौतिक देह को अग्नि-क्रिया से पञ्चभूतो में मिलाने के लिये आचार्य भगवान् देव जी ने उपस्थित सभी प्रमुख व्यक्तियो से परामर्श करके गुरुकुल मे ही अगले दिन २ बजे मध्याह्न में अन्त्येष्टि-संस्कार करने का निश्चय किया।

दिल्ली मे सूचना पाते ही श्री पण्डित जगदेव सिंह जी शास्त्री मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, श्री रघुवीर सिंह जी शास्त्री मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली, और प्राध्यापक श्री शेरसिंह जी विधान मण्डल सदस्य आदि नेताओं ने दिल्ली के अन्य प्रमुख आर्य समाजी नेताओं से परामर्श करके उसी दिन सायं ५ बजे दिल्ली में निगम-बोध घाट पर स्वामी जी के शरीर का अन्तिम संस्कार करने का कार्य-क्रम बना लिया और तत्काल श्री सिद्धान्ती जी और श्री प्राध्यापक शेरसिंह जी ५१ अधिष्ठानों का सर्वयानों लेकर गुरुकुल झज्जर पहुँचे

*पौष कृष्णा नवमी सम्वत् २०१७ सोमवार। ×तार और टेलीफोन। ट्रंक। [illegible]

गये। ६५ सहस्रमान के व्यवधान के कारण अन्त्येष्टि के दोनो कार्य-क्रमों का समन्वय न हो सका था। मिलने पर पुन यह निश्चय किया कि कल १३ दिसम्बर बारह बजे तक आने वाले सज्जन गुरुकुल मे पहुँच जावेंगे। तत्पश्चात् यहाँ शोक सभा करके सायङ्काल दिल्ली मे महाराज के शव की शोभा यात्रा निकाली जावे और निगम बोध घाट दिल्ली मे ही सस्कार सम्पन्न हो।

इसी के अनुसार दैनिक-पत्रो मे सूचना प्रकाशित की गई।

नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, वीर अर्जुन, मिलाप, प्रताप और दिल्ली के अन्य अँग्रेजी पत्रो द्वारा आदित्य ब्रह्मचारी स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के इस लोक से अपने ज्ञान किरणो को समेट लेने की सूचना प्रसारित कर दी। आकाश-वाणी ने भी तीन वार इस सूचना का प्रसारण किया। सूचनाओ के प्रसार मे दिल्ली के दगल मैदान से आरम्भ होने वाली शव यात्रा एवं अन्त्येष्टि कर्म का विवरण भी स्पष्ट कर दिया गया था।

१३ दिसम्बर के प्रात· श्री पण्डित रघुवीर सिंह जी शास्त्री, तथा श्री आचार्य लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित गुरुकुल पधारे। महाराज के शव को सुशोभित एव सुदृढ शिविका पर शयन करा दिया गया। श्रद्धालु भक्तो ने सुगन्धित पुष्पो से शव को अलङ्कृत किया। एक ईश्वर भक्त की मुखाकृति अन्त समय मे भी कितनी आभावान् रहती है, यह देखने के लिये महाराज के मुख को खुला रहने दिया गया। समीप खडा ब्रह्मचारि-वर्ग वाष्पपूर्ण नेत्रो से उसे निहार रहा था। पाषाण-सम दृढ हृदय भी अनाथ से हुए वियोग के उस दारुण दु ख से द्रवित हो रहे थे। जिधर देखो, उधर ही अगाध विपुल-शोक-सागर उमड रहा था। जो उस दारुण कष्ट को न सह सके, वे शोक-परायण हुए एकान्त मे स्थित हो गये। शव को दिल्ली ले जाने से पूर्व १२ वजे से १ वजे तक श्री आचार्य मेधाव्रत जी कवि रत्न के सभापतित्व मे शोक-सभा हुई जिसमे गुरुकुल के ब्रह्मचारियो और कार्य-कर्त्ताओ के अतिरिक्त बाहर से आये हुए सज्जन भी सम्मिलित थे। बहुत से आर्य बन्धु इतने शोक ग्रस्त थे कि वे अपने भावो मे महाराज के गुणो का प्रकटीकरण ही न कर सके। अनेको का कण्ठ अवरुद्ध था। श्री पण्डित रघुवीर सिह जी किसी प्रकार स्व-हृदय को सँभाल कर, महाराज के गुणो का कुछ शब्दो मे वर्णन कर सके। फिर श्री दीक्षित जी ने साहस को बटोर कर कुछ कहना

आरम्भ किया, पर मध्य-मध्य में महाराज के वियोग का दारुण-शोक उनकी वाणी को विचलित कर देता था। शोक का सब से गहरा घात आचार्य भगवान् देव जी पर था। वे निरन्तर अपने मन को धीरज बँधा रहे थे। दुःख भरे ध्वनि मे थोड़ा-सा महाराज के जीवन पर प्रकाश डाल कर वे भी बैठ गये। पुन. आचार्य मेधाव्रत जी ने शोकाकुल मन से निम्न श्लोको द्वारा अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की .—

अनभ्रवज्रपातः

यतीश्वरव्रतीन्द्रस्यात्मानन्दसद्गुरो. स्वर्गमनम्

हा हन्त हन्त ! यमिन यम उज्जहार।
विश्वार्याणा विघनगगने वज्रपातो ह्यकाण्डे,
जातस्तीव्रः शिरसि हृदयारुन्तुदोऽय नितान्तम्।
आचार्योऽसौ निगमविदुषामार्यविद्वन्नराणाम्,
नेताऽऽर्याणां स्वरगमदर यद् विहायार्यसभ्यान् ॥१॥
आत्मानन्दो व्रतियतिवरो दर्शनानां नवाना,
प्रत्नानाञ्चानुपमविबुध. पुण्यशीलाग्रगण्यः।
यावज्जीव जगदुपकृतौ येन देह स्वकीय',
कष्ट नीतो नृमुकुटमणिर्देवलोकं प्रयात ॥२॥
इन्द्रे* गते नेतरि विज्ञरत्ने, महात्म-पुत्रे जगदार्यमित्रे।
शोकाम्बुधौ स्वर्गमितो निपात्य, द्रुत समग्रार्यजनान् विमुक्तान् ॥३॥
वियोगदुःखार्णवमग्नमस्या, भग्नान्तरा शान्तिमिता न यावत्।
तावत् कृतघ्नस्य विधे. प्रहारो, भूयोऽभवन्मर्मभिदार्यलोपे ॥४॥
पोठोहारपदे चिर गुरुकुल सञ्चाल्य पश्चादसौ,
पिण्डीतो नगराद् विदूरहिमवत्पादान्तिके रावले।
ग्रामे रम्य-कुरङ्ग-निर्झरवरे योऽध्यापयद् धर्मधी-
राचार्येश्वर मुक्तिनामविबुधोऽभून्नैष्ठिको वर्णिराट् ॥५॥
सहस्रशोऽप्यवरा विनिर्मिताः, श्रुतौ स्मृतौ दर्शनशास्त्रसन्ततौ।
चकास्तीह्यार्यसमाजमण्डले, यशोधना ईश्वरचन्द्रसन्निभा. ॥६॥
समाजसन्नार्यसभाशिरोमणे, सभापतित्वं गतवन् कलानिधिः।
व्यराजतार्याम्बर एष नन्दिवद्, यतोऽभूत शान्तमना जनान्तरे ॥७॥
तस्याग्रहे स्वागतसमाजचारिते, स्वाचार्यभावामगिरिकुल मन्दिरे।
सम्पूर्णतियों नूनं आर्यसज्जनैः, स्वर्यात्त्वधर्मेण फलान्वित स्वगुरु ॥८॥

---

*इन्द्र विद्यावाचस्पति।

तदा प्रभृत्येव महामना यतिः, सोऽसृङ्निपीडेन गदेन पीडितः।
भिषग्वरैर्भूयंगदैश्चिकित्सितः, परं मुधा त्वौषधमायुषः क्षये ॥९॥
ऋषि चन्द्र-नभोऽक्ष्यब्दे वैक्रमे पौषिकेऽसिते।
पक्षे प्रगे नवम्या सन्त्सपादषट् सुवादने ॥१०॥
व्योमर्तु-ग्रह-चन्द्राब्दे खीस्तीये चन्द्रवासरे।
दिनाङ्के द्वादशे शान्तो यतिराजो दिसम्बरे ॥११॥
झज्जरे गुरुकुले यतीश्वरः, सेवितोऽपि सकलैर्दिवानिशम्।
स्वर्गतस्य, निखिलान् विहाय हा! क प्रभोर्नियमलङ्घने क्षमः ॥१२॥

कुछ क्षणो तक मौन रहने और ईश-प्रार्थना के पश्चात् शोक-सभा विसर्जित कर दी गई।

"विश्वानि देव" इत्यादि प्रार्थना-मन्त्रोच्चारण के साथ शिविका (अर्थी) उठाई गई और उसे घृत-सामग्री आदि के साथ सर्वयान में रखकर सब ने १॥ बजे दिल्ली के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में निरन्तर वेदमन्त्रो का उच्चारण होता जा रहा था।

झज्जर नगर के प्रवेश मार्ग पर सहस्रो नर-नारियो की भीड़ ने महाराज के अन्तिम दर्शनो की इच्छा से सर्वयान को रोक कर चारों ओर से घेर लिया। फूल मालाओ और पुष्प वृष्टि द्वारा अशेष जनता ने अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित की। बहादुर गढ की जनता का विशाल जन-समूह भी सर्वयान की प्रतीक्षा मे खड़ा था। सर्वयान के पहुँचते ही उसने भी सर्वयान को घेर लिया और एक-से एक आगे बढ कर अपना पुष्पहार समर्पित करने लगा। सतृष्ण नेत्रो से नर-नारियो ने महाराज के शव के अन्तिम दर्शन करके सर्वयान को आगे बढने के लिये मार्ग दे दिया। अन्ततः आर्य नेता अपने प्रिय नेता के शव को लेकर ३॥ बजे सयान-स्थात्र के समक्ष दगल मैदान मे पहुँचे। वहाँ सहस्रो नर-नारी महाराज के अन्तिम-दर्शन करने की प्रतीक्षा मे पहले से ही एकत्रित हो चुके थे। हरयाणा प्रान्त के कई सौ आर्य भी घृत और हवन-सामग्री लिये खडे थे। दयानन्द-उपदेशक-महाविद्यालय और वैदिक साधनाश्रम यमुनानगर के छात्र तथा अधिकारी भी पहुँच गये थे। यमुनानगर से महाशय मुकुन्दलाल जी, श्री बाबूराम जी, श्री अमरनाथ मलहोत्रा आदि श्रद्धालु नागरिक भी उपस्थित हो चुके थे।

गुरुकुल कॉगडी, गाजियाबाद, मेरठ, रुडकी, सहारनपुर एव उत्तर प्रदेश के अन्य अनेक स्थानो से सैकडो आर्य समाजी इस शव यात्रा मे सम्मिलित होने के लिये उपस्थित थे।

शिमला, लुधियाना, अम्बाला, करनाल, पानीपत, रेवाड़ी, गुडगांवा, जीद, रोहतक के आर्य पुरुष भी पहुँच चुके थे।

दिल्ली के समस्त आर्य-समाज, संस्थाएँ और सभाएँ अपनी पूर्ण सज्जा के साथ उपस्थित थी।

कन्या गुरुकुल नरेला की चालीस कन्याओ का सहयोग भी स्तुत्य था। महाराज के शव के साथ गुरुकुल-झज्जर के २२ छात्र भी पहुँच कर उस विशाल जन समूह मे सम्मिलित हो गये।

हरयाणा प्रान्त की ओर से २ लक्ष ९७ सहस्र ६६७ धान्य घृत और इतनी ही सामग्री थी, शेप सब दिल्ली तथा वैदिक साधनाश्रम यमुनानगर की ओर से पहुँची हुई थी।

दगल मैदान मे आर्य समाज दीवानहाल की ओर से एक उद्वाही इस प्रकार से सजाया गया था कि महाराज की दिव्य देह के अन्तिम दर्शन सब जने कर सकें।

शव-पीठिका को उद्वाही पर खड़ी हुई व्यक्ति से भी ऊँचा रचाया गया था। 'ओ३म्' की ध्वजाएँ चहुँ ओर फहरा रही थी। पुष्प मालाओ से सम्पूर्ण उद्वाही सुशोभित था। उस पर निम्न मन्त्र वस्त्र पर लिखकर लटकाया गया था।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

पुष्पाच्छादित महाराज के मृतक शरीर को उद्वाही की ऊँची पीठिका पर रख दिया गया, जिस पर दिल्ली की ११६ आर्य समाजो और सहस्रों स्त्री पुरुषो ने पुष्पहार चढाए।

उद्वाही मे १५ प्रतिष्ठित नेता नीचे खड़े हुए और दो श्री रघुवीरसिंह शास्त्री तथा रामगोपाल शालवाले शव के साथ ऊपर।

ठीक चार बजे दगल मैदान से शव यात्रा प्रारम्भ हो गई। आगे आगे ओ३म् के झण्डे थे। पीछे मन्द-गम्भीर स्वर से गायत्री मन्त्र का जप करती महिलाएँ थीं। दिल्ली के सहस्रों आर्य-पुरुष संख्या में गायत्री मन्त्रोच्चारण करते हुए शान्त रूप से चल रहे थे।

शोभा यात्रा का सुचारु-प्रबन्ध आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के प्रधान लाला रामगोपाल शालवाले और मन्त्री नारायणदास कपूर ने किया था। 'हिन्दुस्तान'-सम्पादक विभाग से श्री क्षितीश कुमार वेदालंकार के प्रबन्ध से शव-चित्र लेने का प्रबन्ध था।

देवर्षि आत्मानन्द सरस्वती की शव यात्रा अन्त्येष्टि कर्म के लिए निगमबोध घाट की ओर जा रही है ।

शोभा यात्रा के मध्य में उद्वाही पर चिर निद्रा मे लीन पुष्पाच्छादित भव्याकृति स्वामी जी का शव जब श्याम प्रसाद मुखर्जी मार्ग और फतहपुरी होता हुआ चान्दनी चौक मे प्रविष्ट हुआ, तब शव यात्रा का अगला सिरा चाँदनी चौक घण्टाघर पर और पिछला सिरा फतेहपुरी पर था।

आठ सौ मान (मीटर) लम्बी, चालीस मान चौडी इस अद्भुत शान्त सयात्रा को देखने के लिये चाँदनी चौक के दोनो ओर के हाटो, छज्जो और छतो पर लोग हाथ जोडे खडे थे और कह रहे थे—"मृत्यु हो तो ऐसा हो। धन्य है वह माता, धन्य है वह पिता, और धन्य है वह कुल, जिसने इस भव्य पुरुष को जन्म दिया है।" बीच बीच मे अनेक स्थानो पर अनेक व्यक्तियो और सस्थाओ ने शव पर अपनी ओर से पुष्प मालाएँ रक्खी। फव्वारे तक पहुँचते-पहुँचते भीड़ इतनी बढ गई कि कुछ देर के लिये यातायात रुक गया। परन्तु गुरुद्वारा शीश गञ्ज के समीप सायुध-आरक्षी* की सतर्कता से शवयात्रा निर्विघ्न आगे बढती गई।

शव जब आर्य समाज दिवान हाल के समक्ष से पार हुआ, तब पुष्प वर्षा की गई और वेद-मन्त्रो के ध्वनि से वातावरण गूँज उठा। निगम बोध घाट तक पहुँचते-पहुँचते कार्यालयो से आते हुए सैकड़ो द्विचक्रिकारोही— भी द्विचक्रिकाओ से उतर कर शव यात्रा मे सम्मिलित हो गये।

निगम बोध घाट पहुँचने पर श्री दयानन्द, श्री सुदर्शन देव आचाय, और ओम्प्रकाश सिद्धान्त शिरोमणि ने शुष्क काष्ठो से चिता का चयन किया। विद्वन्मण्डल ने शव को उद्वाही से उतार कर वेदी पर रक्खा। शव मे अब तक भी विकार उत्पन्न नही हुआ था। योग-साधना से परिशुद्ध शरीर का यह प्रत्यक्ष-दर्शन था। पश्चात् श्री इन्द्रदेव नैष्ठिक ने शव के मुख आदि विभिन्न अङ्गो पर घृत और कपूर रख कर अग्नि क्रिया की। अन्त्येष्टि सस्कार के मन्त्रो से, घृत और सामग्री की आहुतियाँ, दयानन्द उपदेशक विद्यालय के छात्र और गुरुकुल झज्जर के ब्रह्मचारी निरन्तर दे रहे थे। कुछ समय तक कन्या गुरुकुल नरेला की छात्राएँ भी आहुति-प्रक्षेप करती रही। आचार्य भगवान् देव जी समीप खडे सस्कार को नियन्त्रण मे रख रहे थे। अग्निज्वाला इतनी प्रचण्ड थी कि होताओ के

---

*तैनात पुलिस —साईकिल सवार।

शरीर झुलस गये उन्हे पीछे हट कर और फिर आगे दौड़ कर आहुतियाँ डालनी पड़ती थी।

इसके अतिरिक्त दूसरे ओर शोक सभा का कार्य-क्रम चल रहा था। श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी के अश्रु अविरल टप-टप टपक रहे थे। बम्बई निवासी उपदेशक विद्यालय लाहौर के स्नातक श्री भगवान् दास जी ने अन्त्येष्टि समाप्ति तक महाराज के शव के चल-चित्र लिये।

छः से नौ बजे तक निरन्तर ३ घण्टे तक आहुतियाँ पडती रही, जब तक कि घृत और सामग्री समाप्त नही हो गयी। बीच मे आचार्य भगवान् देव जी ने ३ लक्ष ३४ सहस्र ८७५ धान्य (६ मन) लकडियां और मगाई। महाशय कृष्ण आदि प्रतिष्ठित नेता अन्तिम समय तक विद्यमान रहे और जीवन-व्यापी तपस्याग्नि से देदीप्यमान वह शरीर, वहाँ खडे १५ सहस्र नर-नारियों के समक्ष ४ लक्ष × ४६ सहस्र० ५०० धान्य + घृत, इतनी ही सामग्री, ६ लक्ष ६६ सहस्र ७५० धान्य लकडी और ४ सहस्र ६५० धान्य चन्दन के साथ भौतिक अग्नि को भेंट होकर व्यापक पञ्च भूतो मे विलीन हो गया।

१६ दिसम्बर के सायङ्काल श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती श्री ओम्प्रकाश और श्री सत्यव्रत राजेश ने अस्थि-चयन करके उन्हे वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर पहुँचा दिया, जहाँ उनको भूमि गत कर दिया गया।

॥ समाप्त ॥